ed by Arya Samaj Foundation Chennai and eG

KALYAN 1973

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110321

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110321
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

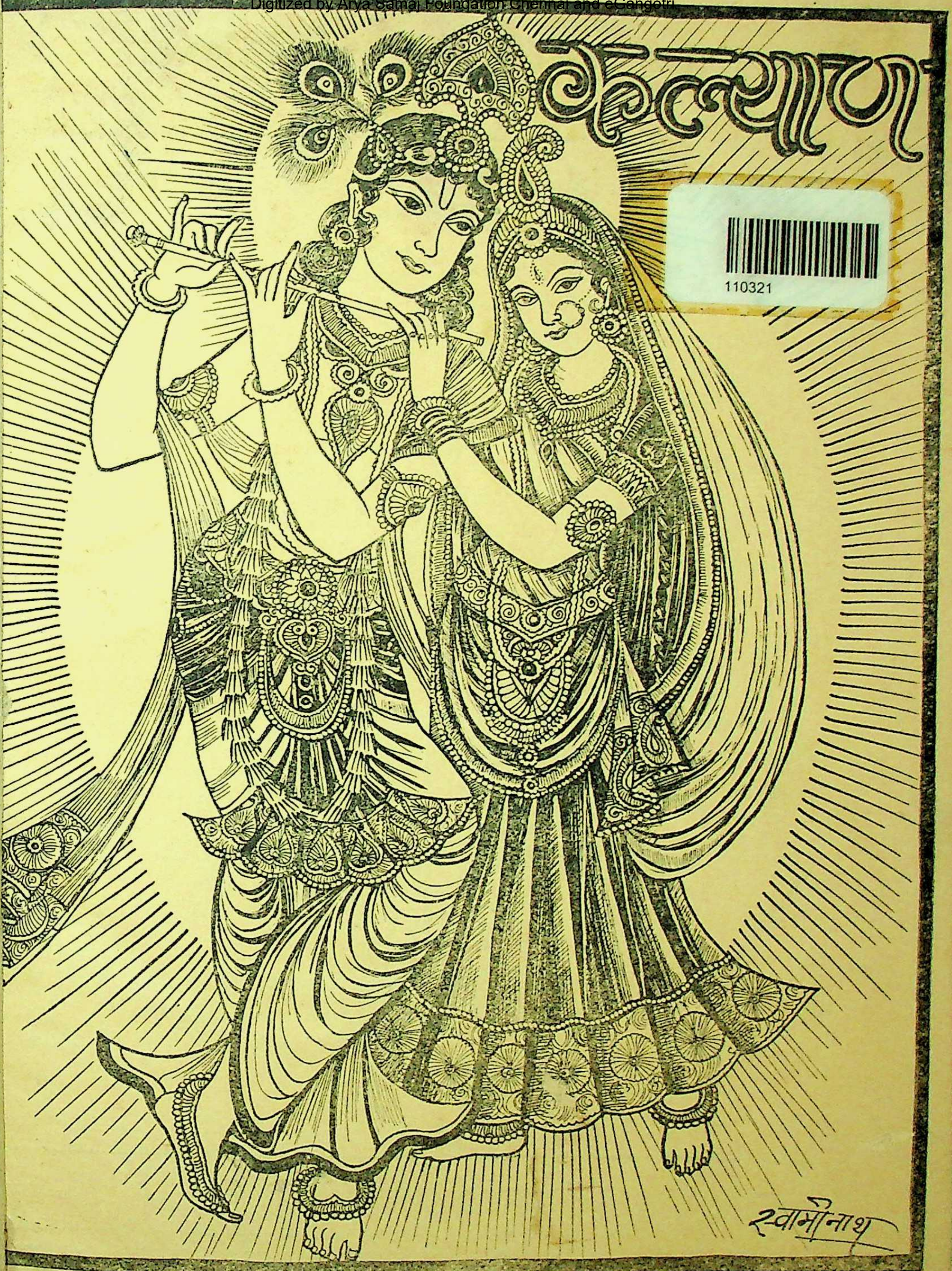

110321
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५७,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, मई १९७३

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–सपरिवार भगवान् शिवकी वन्दना [संकलित—शिवपुराण]	७०९
२–कल्याण ('भाईजी')	७१०
३–ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश (पुराने सत्सङ्गसे)	७११
४–अहंकारका खेल ('साधुवेषमें एक पथिक')	७१३
५–गरब न कीजै बावरे! [कविता] (श्रीमलूकदासजी)	७१५
६–एक महात्माका प्रसाद	७१६
७–पाद-वन्दन [कविता] (स्वामी श्रीसनातनदेवजी)	७१७
८–परमार्थकी पगडंडियाँ [नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के अमृत-वचन]	७१८
९–साधनोंका उपयोग (आचार्य श्रीमुंशी-रामजी शर्मा 'सोम')	७२१
१०–तेरा निमन्त्रण : मेरा अन्वेषण (डा० श्रीशिवबहादुरसिंहजी एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	७२२
११–महावीर हनुमान् [कविता] (श्रीगोपीनाथजी उपाध्याय, साहित्यरत्न)	७२६
१२–आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ	७२७
१३–पतितपावनी श्रीगङ्गाजी (पं० श्री-शिवनाथजी दुबे)	७२९
१४–आत्मा और परमात्मा (श्रीज्वाला-प्रसादजी भार्गव)	७३८
१५–सौन्दर्यवर्द्धक पदार्थ और जीव-हिंसा	७३९
१६–सिकंदर और मृत्यु (श्रीश्यामलालजी)	७४२
१७–व्यक्तित्वका विकास (श्रीशिवानन्दजी)	७४४
१८–तुम्हारे चरण! (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')	७४७
१९–प्रार्थना (तुम्हारा ही एक अपना)	७४८
२०–दुष्टता-निवारणमें सहयोग देना धर्मका एक अङ्ग है (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	७४९
२१–यदि इस मेरे हृदय-द्वारको बंद कभी तुम पाना! [कविता] (श्रीमाधवशरणजी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)	७५०
२२–एक दुःखिनी बहनको परामर्श (सम्पादक)	७५१
२३–'मानस' एवं मानसकारका अभिनन्दन [कविता] पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')	७५३
२४–'मानस'का संदेश—२	७५४
२५–पढ़ो, समझो और करो	७६०

चित्र-सूची

१–ब्रज-नवदम्पति	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२–शिव-परिवारके सहित 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र	(तिरंगा)	७०९

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

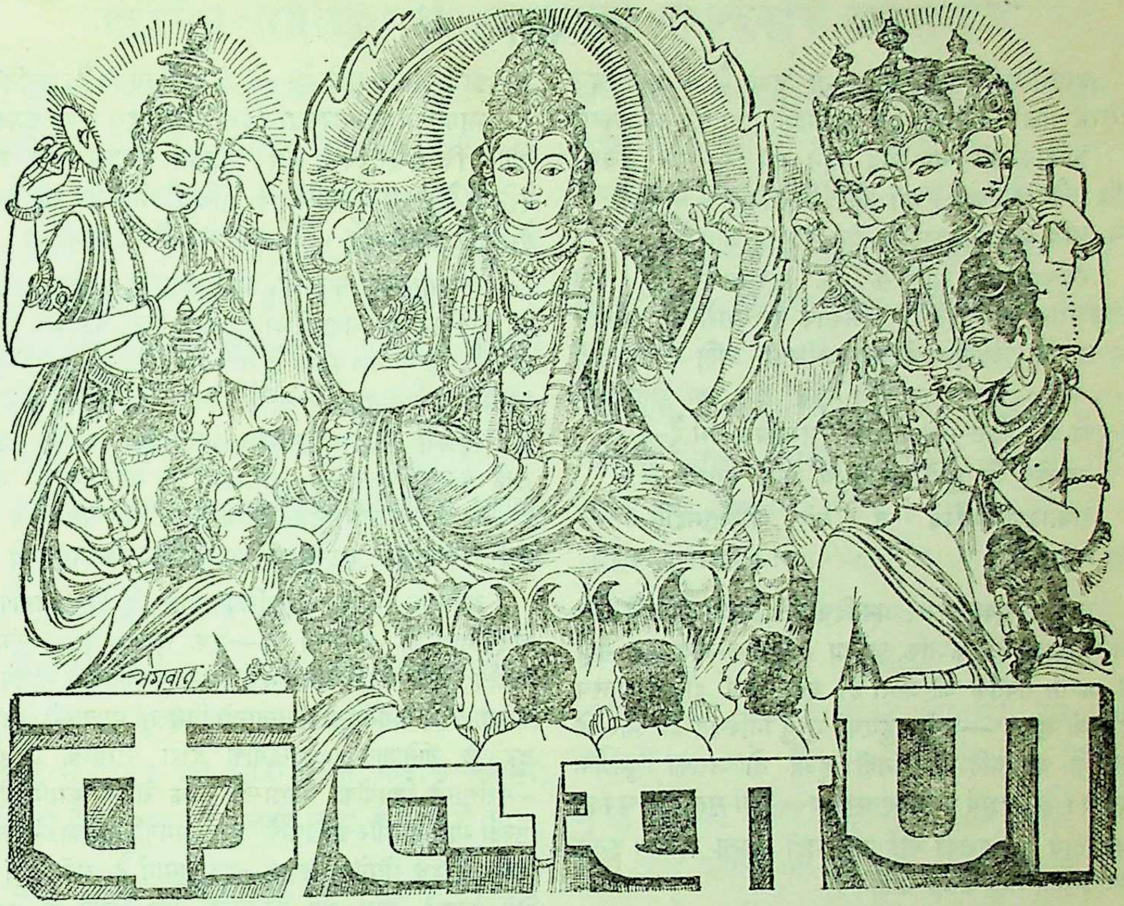

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥
(श्रीविष्णुपुराण १ । २ । १-२)

वर्ष ४७ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, मई १९७३ { संख्या ५ पूर्ण संख्या ५५८

सपरिवार भगवान् शिवकी वन्दना

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥
(शिवपुराण, वायवीय संहिता, पूर्व०)

जो जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन अपने प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा भगवती उमाके सहित भगवान् शिवको प्रणाम है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

हमारा शरीर पञ्चभूतोंसे बना हुआ है। इस स्थूल शरीरमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक अन्तःकरण है। अन्तःकरणके चार भेद माने गये हैं—मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। मन और चित्तको एक मान लें तो मन, बुद्धि और अहंकार–ये तीन भेद रह जाते हैं।

स्थूलशरीरके अतिरिक्त एक सूक्ष्मशरीर है। उसे 'लिङ्गशरीर' भी कहते हैं। जबतक सूक्ष्मशरीरका अस्तित्व है, तबतक जीवात्माको स्थूलशरीरकी प्राप्ति होती रहती है, अर्थात् जन्म-मृत्यु होते रहते हैं। जन्म लेना और मृत्युको प्राप्त होना—ये शरीरके स्वाभाविक धर्म हैं—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(गीता २। २७)

जन्म-मृत्युका क्रम अनादिकालसे चला आया है और कौन जानता है, कबतक चलेगा। जबतक जीव मुक्त नहीं हो जाता, तबतक जो जन्मा है, वह मरेगा ही—**'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'**—जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है; और जो मरा है, वह यदि मुक्त नहीं हुआ तो उसका पुनर्जन्म निश्चित है—**'ध्रुवं जन्म मृतस्य च'**—जन्म-मृत्युका चक्कर अपरिहार्य है—इसको कोई टाल नहीं सकता। अतः इनके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जबतक जीवका इस शरीरके साथ, जो प्रकृतिका बना है, सम्बन्ध है, जबतक जीव इसमें स्थित है, इसको 'मैं', 'मेरा' मानता है, तबतक बन्धन छूटेगा नहीं। गीतामें भगवान्ने कहा है—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(१३। २१)

'यह पुरुष जबतक प्रकृतिके साथ आबद्ध है, जबतक प्रकृतिमें स्थित है, तबतक प्रकृतिसे उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंके सङ्गके कारण बार-बार अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेता है।' मृत्यु हुई; फिर जन्म; जन्म हुआ, फिर मृत्यु—बस, इस प्रकार जीव जन्म-मृत्युके बीच चक्कर काटता रहता है।

यह स्थिति है। अब विचार करना है कि करना क्या है, जिससे शरीरमें स्थित रहते हुए ही हम प्रकृतिके प्रभावसे मुक्त हो जायँ—भगवान्के धाममें चले जायँ। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये हमारे पास साधन क्या है? शरीर है, इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है—ये ही हमारे साधन हैं। उपनिषद्में तथा भागवतमें एक रूपकद्वारा इस सत्यको इस प्रकार समझाया गया है कि शरीर रथ है और आत्मा, जो इस रथपर सवार है, रथी है—रथका मालिक है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथि है और इन्द्रियोंके विषय मार्ग हैं।

घोड़े मार्गपर चलते हैं, घोड़े लगामके अधीन रहते हैं, रथ गतिमान् हो जाता है और लगाम जिस सारथिके हाथमें रहती है, वह भी चल पड़ता है तथा रथमें बैठा हुआ मालिक भी अपने-आप चलायमान हो जाता है। यही स्थिति हमारे शरीरकी है। इन्द्रियाँ विषयरूपी मार्गपर बढ़ती हैं, मनरूपी लगाम उन्हें काबूमें रखती है, शरीररूपी रथ गतिमान् हो जाता है और उसके साथ बुद्धिरूपी सारथि भी चल पड़ता है तथा शरीरका मालिक आत्मा भी अपने-आप चल पड़ता है।

सर्वप्रथम इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं विषय-मार्गपर। विषय-मार्ग दो प्रकारका है—एक सुमार्ग, दूसरा कुमार्ग, अर्थात् एक मार्ग भगवान्के सम्मुख, भगवान्के समीप ले जानेवाला है और दूसरा भगवान्से विमुख, भगवान्से हटाकर दूर ले जानेवाला। इन्द्रियोंके द्वारा संसारके भोगोंका—संसारके विषयोंका भोगासक्तिपूर्वक सेवन कुमार्ग है—उल्टा मार्ग है और इन्द्रियोंके द्वारा भगवद्विषयोंका सेवन—भगवत्प्रीत्यर्थ भोगोंका सेवन—यह सुमार्ग है, सही मार्ग है। जैसे कानके द्वारा हम पर-निन्दा सुन सकते हैं, अपनी प्रशंसा सुन सकते हैं, दूसरोंके पाप सुन सकते हैं, गंदे गाने, गंदी बातें सुन सकते हैं और उन्हीं कानोंके द्वारा हम भगवान्का गुणगान सुन सकते हैं, भगवान्का नाम सुन सकते हैं, भगवान्की लीला-कथा सुन सकते हैं, संतोंके चरित्र सुन सकते हैं, अपने दोषोंकी बात सुन सकते हैं, दूसरोंके उत्तम गुण सुन सकते हैं। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियोंके विषयमें समझना चाहिये।

सुनना कानका काम है; पर क्या सुनना है, यह बुद्धिका काम है। देखना आँखका काम है; पर क्या देखना, यह बुद्धिका काम है। घोड़े चलेंगे रास्तेपर ही, पर किस रास्तेपर जायँगे, यह देखना सारथिका काम है। वह लगाम खींचकर जिधर घोड़ोंको ले जाय, वे उधर ही जायँगे। अतएव सर्वप्रथम हमारी बुद्धि शुद्ध होनी चाहिये, बुद्धि भगवान्की ओर लगनी चाहिये। यदि बुद्धि बिगड़ गयी, विपरीत हो गयी तो हम मारे जायँगे—**'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'** आज अधिकांशमें यही हो रहा है और उसका भीषण परिणाम हमारे सामने है।

—'भाईजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

सांसारिक कार्य रुपये कमानेके उद्देश्यसे करनेसे मन संसारमें रम जाता है। इसलिये सांसारिक कार्य रुपये कमानेके उद्देश्यसे न करके भगवत्प्रीत्यर्थ करने चाहिये। हाँ, जो भी कार्य किया जाय, वह सावधानीसे किया जाय। परंतु कार्यका बाहुल्य नहीं करना चाहिये; कार्यका बाहुल्य होनेसे उद्देश्यमें परिवर्तन हो जाता है। आरम्भमें भगवान्‌की प्रीतिका लक्ष्य होनेपर भी कार्यके बाहुल्यके साथ सांसारिक स्वार्थ, आसक्ति आदि आ जाते हैं।

साधकको सांसारिक वस्तुओं एवं सांसारिक पुरुषोंसे कम संसर्ग रखना चाहिये। सांसारिक विषयोंकी चर्चा भी यथासम्भव कम करनी चाहिये।

बिना पूछे किसीके अवगुण नहीं बताने चाहिये। सर्वोत्तम तो यह है कि किसीके अवगुणोंकी ओर हमारा ध्यान ही न जाय। जब हमारी दृष्टिमें किसीके अवगुण आयेंगे ही नहीं, तब हम उनकी चर्चा कैसे करेंगे।

सबके साथ निष्कामभावसे प्रेम करना चाहिये; भगवान्‌के नाते प्रेम करना चाहिये।

नामका जप नित्य-निरन्तर होता रहे—इसका अभ्यास करना चाहिये। नामको कभी नहीं छोड़ना चाहिये; जो नाममें बाधक हों, उन्हें ही छोड़ देना चाहिये। प्रेम एवं प्रसन्नताके साथ नाम-जप निरन्तर होता रहे—ऐसा प्रयत्न सर्वदा करते रहना चाहिये। निरन्तर नाम-जप होता रहे तो भगवान्‌के दर्शनकी भी परवा नहीं होनी चाहिये। नाम-जपका ऐसा तीव्र अभ्यास करना चाहिये कि अपने शरीरकी भी सुध न रहे। स्वयं भगवान् दर्शन देनेको आयें, तब उन्हें सुतीक्ष्णकी भाँति हमें भी सावधान करना पड़े।

संसारके अन्य कामोंकी तो बात ही क्या, अपने शरीर-निर्वाहकी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। भगवान्‌की घोषणा है—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्—**भक्तके योगक्षेमका मैं वहन करता हूँ।' भगवान्‌की घोषणापर विश्वास करके निश्चिन्त रहना चाहिये।

किसी भी मनुष्यमें अवगुण देखकर उससे घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये; क्योंकि किसीके प्रति घृणा या द्वेष करनेसे दोष लगता है। घृणा और द्वेष तो पापसे, अवगुणोंसे, विकारोंसे करने चाहिये। उदाहरणार्थ किसी व्यक्तिको प्लेगकी बीमारी हो जानेपर कोई भी मनुष्य उसके पास जाना नहीं चाहेगा। दूसरोंकी तो बात ही क्या, उसके माता-पिता, भाई, मित्र आदि भी उसके पास जानेमें हिचकते हैं; परंतु क्या उन सबका उस व्यक्तिके प्रति द्वेष है, घृणा है? वे वास्तवमें प्लेगसे भयभीत हैं। अतएव प्लेगसे बचनेके साधन अपनाकर उस बीमार व्यक्तिके पास जाते हैं, उसकी सेवा करते हैं, उसे अच्छा करनेका प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार चोरी-जारी आदि दोषोंसे भरा-पूरा कोई व्यक्ति हो तो उससे घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये। उसके दोष चोरी-जारी आदि हमपर प्रभाव न डाल सकें, ऐसी सावधानी रखते हुए हमें उस पाप-पङ्कमें लिप्त व्यक्तिके साथ मित्रकी भाँति प्यार करना चाहिये; उसे उन दोषोंकी बुराई समझाकर उनके त्यागके लिये राजी करना चाहिये। हमारे प्यारभरे व्यवहारसे वह निश्चितरूपसे उन दोषोंसे मुक्त हो जायगा और सात्त्विक जीवन व्यतीत करने लगेगा। अतएव पापीके साथ सहानुभूति रखनी चाहिये। यदि हम अपनेमें ऐसी योग्यता अनुभव न करें कि हम उसके दोषोंसे अपनेको बचा पायें, तब हमें चाहिये कि हम उसकी उपेक्षा कर दें; द्वेष या घृणा तो किसी भी अवस्थामें नहीं करनी चाहिये। परमात्मा उसमें भी हैं, वह भी भगवान्‌का है। अतएव किसीके प्रति भी द्वेष या घृणा नहीं होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुजनोंकी सेवा करनेसे तथा भगवान्का भजन-ध्यान करनेसे भगवान्में प्रेम हो सकता है। जो-जो वस्तु अपनेको अच्छी लगे, उसे भगवान्के अर्पण करना चाहिये; तथा जो-जो बातें भगवान्को उत्तम लगें, उन्हें अपनेमें धारण करना चाहिये। ऐसी चेष्टा करनेसे भगवान्में अत्यन्त शीघ्र प्रेम हो सकता है। जैसी चेष्टा करनेसे भगवान् अपने बनें, वैसी ही चेष्टा करनी चाहिये। वास्तवमें तो भगवान्के प्रति प्रेम होनेकी इच्छासे ही प्रेम हो सकता है। मनमें ऐसा भाव होना चाहिये कि भगवान्के सिवा कोई भी सांसारिक पदार्थ अच्छा न लगे।

मोक्ष-प्राप्तिका अत्यन्त सरल उपाय भगवान्के शरण होना ही है। शरण कैसे हों? इसका उत्तर यह है कि पहले भगवान्के प्रभावकी बातें सुनें, उससे श्रद्धा उत्पन्न होगी; श्रद्धा उत्पन्न होनेपर प्रेम होगा और प्रेम होना ही वास्तवमें शरण होना है। भगवान्में प्रेम होनेके लिये भगवान्के भक्तोंमें, ज्ञानियोंमें, महात्माओंमें प्रेम होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। वस्तुतः भगवान्, भक्त, ज्ञानी एवं महात्मा—सब एक ही हैं।

अपने सात्त्विक कर्तव्यकर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। चित्त भजनसे हटे ही नहीं—ऐसी वृत्ति स्वाभाविक हो जाय और कर्तव्यकर्म करनेका ज्ञान ही न रहे, तब बात दूसरी है। किंतु कर्तव्यकर्मोंमें—सेवामें दुःख समझकर, झंझट समझकर भजनके नामपर जो लोग उनका त्याग कर देते हैं, वे आगे चलकर प्रमादी बन जाते हैं। जो थोड़ी देर भजन करके शेष समयमें लोकसेवाका काम करते हैं, उनके द्वारा की हुई सेवा बहुमूल्य होती है; क्योंकि बिना भजनके केवल लोकसेवा करनेवालेके भाव उच्च नहीं रह सकते। अतएव लोक-सेवाके साथ-साथ कुछ देर भजन करना तथा भजनके साथ लोकसेवा—कर्तव्यकर्मोंका करना आवश्यक है। ईश्वरसेवाकी भावनासे भजन करते हुए जो लोकसेवा की जाती है, वह ईश्वरसेवा ही है। यदि ऐसा भाव न हो पाये तो सेवाको अपना कर्तव्य समझकर भगवत्प्रीत्यर्थ करना भी उत्तम है। जो लोकसेवा ईश्वरविहीन, केवल दयावश होती है, उसमें यह भाव आ जाना स्वाभाविक है कि 'मैं इन लोगोंका उपकार करता हूँ, इनपर अहसान करता हूँ।' और ऐसा भाव आना सेवामें कलङ्क है। अतएव ईश्वरसेवाकी भावनासे लोकसेवा करनी चाहिये। इस प्रकार सेवा करनेसे लोकसेवाके साथ भगवत्सेवा भी हो जायगी।

भगवान्के वचनोंमें, शास्त्रोंके वचनोंमें, संत-महात्माओंके वचनोंमें श्रद्धा करनी चाहिये। इनमें श्रद्धा होनेसे कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है—'अर्जुन! जितेन्द्रिय, तत्पर, श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्-प्राप्तिरूप परमशान्तिको प्राप्त होता है'—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

हमारी समझमें भगवान्ने इस श्लोकमें केवल श्रद्धासे परम शान्तिके प्राप्त होनेकी बात कही है। यदि कहें कि "इस लोकमें श्रद्धाके साथ 'तत्परः और संयतेन्द्रियः—ये दो विशेषण और क्यों दिये?" इसका उत्तर यह है कि 'ये विशेषण इसलिये दिये गये हैं कि कोई झूठ-मूठ ही न मान ले कि मेरी श्रद्धा हो गयी। भगवान्के कहनेका भाव यह है कि जहाँ श्रद्धा होगी, वहाँ तत्परता अवश्य होगी और जहाँ तत्परता होगी, वहाँ मनुष्य संयतेन्द्रिय होगा ही। जहाँ तत्परता नहीं, वहाँ श्रद्धा नहीं—यह निश्चित है। जहाँ धूआँ होगा, वहाँ अग्नि अवश्य होगी। (पुराने सत्सङ्गसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकारका खेल

(लेखक—'साधुवेषमें एक पथिक')

एक वीतराग आत्मवेत्ता सिद्ध संतके निकट रहनेवाले साधकोंमें एकको सिद्धि सुलभ हो सकी, अन्य लोग नहीं पा सके। संतसे इसका कारण पूछा गया। उन्होंने उत्तर दिया कि साधककी सिद्धिमें सिद्धि प्राप्त करनेकी चाह ही बाधक रहा करती है। समस्त लौकिक-पारलौकिक कामनाएँ अहंकारमें ही होती हैं। यह अहंकार ही भोगी बनता है, यही योगी होना चाहता है तथा यही ममकारकी सीमा बढ़ाकर बन्धनमें पड़ता है। यह अहंकार ही मुक्त होना चाहता है। अहंकार ही सत्यस्वरूप परमात्मासे विमुख रहकर उन्हींकी (ईश्वरकी) सृष्टिमें अपनी सृष्टि रचकर रागी-द्वेषी बनता है। अहंकारकी सृष्टि ही उसका अपना आकार है—विस्तृत मेरापन ही उसकी विशालताका रूप है। 'मैं यही तो हूँ'—यही 'अहं'-का आकार है। 'यह सब मेरा है'—इस अन्ध स्वीकृतिके मूलमें 'मैं' रूपी केन्द्र विद्यमान है। 'मैं' केवल एक ही है, पर अहंकार अनेक हैं। अहंकारका ही जन्म होता है, उसे ही मृत्युका दुःख होता है। अहंकार बहुरूपिया है। यही तनके सङ्गसे काला-गोरा, मोटा-दुबला, नीरोग और रोगी बनता है; धनके सङ्गसे धनी या निर्धन बनता है। सम्बन्धियोंके सङ्गसे यह अहंकार ही पुत्र-बन्धु, पति-पिता, पुत्री-भगिनी, पत्नी-माता आदिका अभिमानी होता है। अहंकार ही प्रकृतिके गुणों या दोषोंका सङ्गी बनकर अपनेको लोभी या उदार, क्रोधी अथवा क्षमाशील, कठोर या सरल तथा मोही या विरक्तके रूपमें कहीं दोषी तथा कहीं गुणवान् मानता रहता है। यह अहंकार ही आश्रम-भेदसे कभी अपनेको ब्रह्मचारी, कभी गृहस्थ, कभी वानप्रस्थ तो कभी संन्यासी मानता रहता है। अज्ञानमें ही इस अहंकारकी उत्पत्ति, वृद्धि, उन्नति, प्रगति और सद्गति-प्राप्तिकी कामना है। अज्ञानमें ही यह अहंकार बन्धनसे पीड़ित होता है और मोक्ष चाहता है। अहंकार ही कभी धन और घरकी ओर दौड़ता है तो कभी धन छोड़कर वनकी ओर भागता है। यही कभी नारी या नरके रूपमें आसक्त होता है और कभी उसकी मूर्ति भी नहीं देखना चाहता; कभी स्वर्णको छोड़ना नहीं चाहता तो कभी उसे हाथसे न छूनेका संकल्प करता है।

यह अहंकार ही धनका संग्रह करते हुए धनी बननेका प्रयास करता है तो कभी उसे छोड़कर सर्वोपरि त्यागी बनकर रागियोंसे सम्मान चाहता है। अहंकारके बाह्य रूपोंको देख लेना कठिन नहीं है, पर इसका सूक्ष्म रूप पहचानना मेधावी बुद्धिद्वारा ही सम्भव है। यह अहंकार ही असीममें अपनी सीमा निर्मितकर अति दुराग्रही होता है। जगत्में परस्परके आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक संघर्ष दुराग्रही अहंकारके कारण ही चल रहे हैं। यही अहंकार सावधान होकर कभी सत्याग्रही भी हो जाता है। अहंकार सदा परमात्माके विमुख होकर कर्ता-भोक्ता बनता है। अहंकार घर, परिवार और धन छोड़कर संन्यासी-त्यागी बन जाता है, पर अहंकारको छोड़कर संन्यासी होनेवाला कोई विरला ही मिलता है। बने हुए संन्यासीमें जिस अहंकारका परिचय मिलता है, वैसा अन्यत्र किसी बनावटमें नहीं मिलता। सत्यके सम्मुख न होनेतक यह अहंकार ही हीनतासे पीड़ित होकर पदाधिकारकी तृष्णासे अशान्त रहता है तथा दरिद्रतासे दुःखी होकर धन-सम्पदाके पीछे भागता रहता है; उसे संसारमें कहीं विश्राम नहीं मिलता। तमोगुणी अहंकार राक्षसी बलको पोषित करता है, रजोगुणी अहंकार असुरोंके बलसे युक्त होता है और सत्त्वगुणी अहंकार देवताओंके बलका अधिकारी होता है। गुणोंका अभिमान न रहनेपर अहंकारात्माके स्थानमें महात्माका दर्शन होता है।

अहंकार ही कभी रागी बनता है, कभी विरागी बनता है। अहंकार न रहनेपर वीतराग-पद प्राप्त होता है। अहंकारकी सीमामें ही आसक्ति होती है, फिर विरक्ति होती है; जहाँ अहंकार नहीं है, वहाँ अनासक्ति रहती है। अहंकारमें ही अपेक्षा है तो कभी उपेक्षा है। जहाँ अहंकार नहीं है, वहाँ निरपेक्ष भाव होता है। ''जहाँ अन्तःकरण प्रभुके ही समर्पित दीखता है, वहाँ अहंकारके स्थानमें महात्मा, परमात्मा अथवा आत्मा ही शेष रह जाता है। यह अहंकार अव्यक्त प्रकृतिमें उसी प्रकार आत्माके योगसे उत्पन्न होता है, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे बादल उत्पन्न होता है। जिस प्रकार सूर्यके तापसे बादल उत्पन्न होकर सूर्यको आच्छादित-सा करते हुए उसी (सूर्य) के तापसे ही छिन्न-भिन्न होकर लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार आत्माके योगसे प्रकृतिजनित अहंकार आत्माको आच्छादित-सा करते हुए आत्माके ज्ञानद्वारा ही विसर्जित हो जाता है। यह अहंकार जबतक दृश्यका द्रष्टा बना रहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तबतक अपनी कृतिद्वारा दृश्यके साथ तद्रूप—दृश्याकार होकर उनके नामों-रूपोंको ओढ़कर अगणित भेद-भावोंसे सम्बन्धित होता है। समस्त संकल्प अहंकारसे ही गुँथे रहते हैं। संकल्पोंके अनुसार ही अहंकार दुर्गति, सुगति और सद्गतिका भोगी बनता है। यह अहंकार सत्य परमात्मासे विमुख होकर जिसे स्वीकार करता है, उसीके मोहमें बँध जाता है। यह अहंकार पशु-वृत्तियोंके द्वारा पशु, आसुरी अथवा राक्षसी वृत्तियोंद्वारा असुर अथवा राक्षस, दानवी शक्तियों–वृत्तियोंद्वारा दानव और मानवी अथवा दैवी वृत्तियोंद्वारा मानव अथवा देवरूपको प्राप्त होता है। यह अहंकार जब अपने मूल स्रोतकी ओर देखता है, तभीसे परमार्थी होता है और संसारसे विमुख तथा परमात्माके सम्मुख होनेपर फिर वह रह ही नहीं जाता—समाप्त हो जाता है। द्रष्टाका दृश्यके साथ तद्रूप होना ही अहंकार है और अज्ञानमें ही इसका जीवन है। आत्मा—परमात्मा ही परम सत्य है, सब कुछका वही परमाश्रय है—यही ज्ञान है। अहंकार जब ज्ञानमें दीखने लगता है, तब अशान्तिके पीछे प्रशान्ति मिलती है, प्रशान्तिके पीछे प्रेमरूपी प्रभाकी प्रकान्ति दीखती है और उस प्रभा-प्रकान्तिके साथ ही प्रेम-प्रभाकरका आलोक विद्यमान होता है, वहाँ अहंकारकी काली छाया नहीं पहुँच पाती।

अपनेमें सर्वस्व भगवान्‌का ही जानकर समस्त नामों-रूपोंके पीछे निर्विकार चेतन सत्ताको पहचानकर अपना सब कुछ सबकी सेवामें लौटा देनेसे और सेवाका कर्ता न बननेसे अहंकार विसर्जित हो जाता है। परमात्माके अखण्ड ज्ञानकी कुछ किरणोंको लेकर यह अहंकार ज्ञानी होनेका अभिमानी बनता है। इसी प्रकार असीम प्रेमकी सरसता-मधुरताके कण लेकर यह अहंकार प्रेमी बनता है; पर अहंकार-अणुके हटते ही केवल अखण्ड ज्ञान तथा असीम प्रेम ही सर्वत्र ओत-प्रोत मिलता है।……अहंकार अगणित नाम-रूपोंमें परिणत होकर समस्त विश्वमें छाया हुआ है। यह इतना स्वच्छन्द है कि अपने आगे 'मेरा' रखकर अपना आकार बढ़ाता ही रहता है। यह जहाँ-कहीं अपनेको उपस्थित देखता है, 'वहीं' उसीके साथ बलात् मिलकर 'मैं हूँ' कहने लगता है और जो कुछ अपनेमें रख लेता है, उसीको 'मेरा' मानकर अपना आकार बनाता जाता है। जहाँतक 'मेरा' का विस्तार है, वहाँतक फैले हुए 'मैं'का दीर्घाकार है। 'मैं हूँ'—यह चेतना अहं है, 'यह मैं हूँ'—यह ज्ञान अहंकार है।

किसी वस्तु, व्यक्ति और अधिकारसे मिलकर 'अहं' का आकार बन जाना ही अहंकार है। यह 'मैं' ही अहं-भावका मूल स्रोत है; 'यह मेरा है' यही अहंकारकी देह है। अहंकार-की यह देह ही सत्य परमात्माके आगे वह विराट् आवरण है, जो परमात्मासे उत्पन्न होकर (उन्हींके आगे) दीवार बनकर साक्षात्कारमें बाधक होता है। यह अहंकार ही है, जो ज्ञानमें न देखे जानेतक स्वयं ही ज्ञानाभिमानी बनकर भीतरसे नास्तिक बना रहता है, ऊपरसे (बाहरसे) योगी बनकर भीतरसे भोगोंका ही मनन करता है। अहंकारको यदि एक व्यक्तिसे भी सम्मान मिलने लगता है तो उसमें हरापन आने लगता है; पर कालान्तरमें यदि लाखों लोग उसे सम्मान देने लगते हैं, तब भी वह तृप्त नहीं होता; वह सदा दरिद्र और किसी अंशमें सब कुछ पाकर भी भिखारी बना रहता है। अज्ञानमें यह अहंकार जप, तप, व्रत, तीर्थयात्रा, मन्दिरोंकी परिक्रमा और पूजा-पाठ-स्तुतिसे तथा संन्यास लेकर कौपीनमात्र लगाकर सर्दी-गर्मी सहते हुए और तपस्वी बनकर वेष बदलकर नाम-स्थानका परिवर्तन करते हुए अपनी महत्त्वाकाङ्क्षाको तृप्त करना चाहता है। धनिकों तथा पदाधिकारियोंका अहंकार धन एवं पद न रहनेपर दुर्बल भी हो जाता है; पर संन्यासी और तपस्वी लोगोंका अहंकार सदा अकड़ता ही रहता है। अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित अहंकार अपने परमाश्रय परमात्माको नहीं देखता; परमात्मासे विमुख होकर जो कुछ अपने आगे पाता है, उसीका भोगी बना रहता है।

जिस प्रकार प्रकाशमें जहाँतक दृष्टि जाती है, वहाँतक दीखता ही जाता है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी आलोकमें जहाँ-तक देखनेकी क्षमता बढ़ती जाती है, वहाँतक दर्शन अनन्त होता जाता है। बाह्य नेत्रोंसे चींटीसे भी छोटा क्षुद्र जन्तु देखता है तो महान् तत्त्वदर्शी ब्रह्मवेत्ता भी देखता है; पर देखनेवालेकी दृष्टिमें अगणित भेद हैं। मानव-जातिमें भिन्न-भिन्न बुद्धि होनेके कारण ही तो दर्शनके पश्चात् निर्णयमें अनेकों भेद चलते रहते हैं। वासनासे सनी हुई बुद्धिद्वारा देखनेवाले मनुष्योंकी अपेक्षा मेधावी बुद्धिवाले मनुष्य सूक्ष्मदर्शी—अन्तर्दर्शी होते हैं; उनसे भी अधिक सूक्ष्मतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन ऋतम्भरा बुद्धिवालोंके होते हैं और उनसे भी अधिक पारदर्शी प्रज्ञाबुद्धिद्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वके जिन्हें दर्शन होते हैं, उन्हें ही आत्मवेत्ता, तत्त्ववेत्ता महात्मा कहा जाता है। तत्त्ववेत्ता अथवा आत्मवेत्ता संतके सङ्गसे ही यह ज्ञात हो रहा है कि संसारका जहाँतक विस्तार है, वहाँतक 'मैं' और 'मेरा'का ही सर्वाधिपत्य है; 'हम' और 'हमारा'का ही स्वर ध्वनित हो रहा है। इस 'मैं' और 'मेरा'की परिधिसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है।

अहंकारको न जानना अज्ञान है और अहंकारको देख लेना ज्ञान है। संकल्पों अथवा मस्तिष्कके विचारोंका समाप्त होना ही ज्ञानका मार्ग है। 'मैं'के साथ 'मेरा'का जुड़े रहना ही अहंकार है; मेरा कुछ है ही नहीं—यही अहंकारका समर्पण है। अहंकार यदि किसी वस्तु, व्यक्ति, अवस्था अथवा परिस्थितिमें ठहरे ही नहीं, आगेसे आगे बढ़ता ही जाय तो कहीं-न-कहीं इसका अन्त होगा। वहीं वह पूर्णमें—शेषमें विलीन हो सकता है। और यदि अहंकार अपने मूल स्रोतकी ओर लौटता जाय, कहीं रुके ही नहीं, तो लौटते-लौटते 'यह भी नहीं, यह भी नहीं' कहते-कहते शून्यमें आ जायगा। अहंकारसे मुक्तिके लिये करना कुछ है ही नहीं, केवल आवरण—बन्धनको हटाना मात्र है, इसको जानना मात्र है।

जहाँतक आत्माका ज्ञान नहीं है, परमात्म-प्रेमका बोध नहीं है, वहाँतक अहंकारका ही दुर्भाव है। अहंकारमें ही समस्त हिंसा है। चित्तकी वृत्तिके रूपमें अहंकारकी गति है, वृत्ति शान्त होते ही अहंकार नहीं रहता। मैं ही सब कुछ हूँ, यह जगत् मेरे लिये है, यह मेरे ही काम आता रहे—यही अहंकारकी भूख है। अहंकार ही इन्द्रियोंके सहारे सुविधाएँ चाहता है। समस्त भौतिक विज्ञान अहंकारकी सुविधाओंके लिये है। सुविधाओंसे क्षणिक सुख प्रतीत होता है; पर दुःख दूर नहीं होता, अशान्तिका अन्त नहीं होता। सुविधाओंसे कष्ट हट जाता है, पर मनको दुःख घेरे रहता है। दुःखकी पूर्णतामें आनन्दकी अभिलाषा बढ़ती है। यह आनन्द संसार अथवा किसी वस्तु या व्यक्तिके सहारे नहीं मिलता; यह आनन्द तो अनादि, अनन्त-शाश्वत अमृत जीवनके बोधसे सुलभ होता है और यह परम सत्य-बोध अहंकारकी सीमासे मुक्त होनेपर ही होता है।

'गरब न कीजै बावरे !'

गरब न कीजै बावरे, हरि गरब-प्रहारी।
गरबहि ते रावन गया, पाया दुख भारी॥
जरन खुदी रघुनाथके मन नाहिं सुहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती॥
एक दया अरु दीनता ले रहिये भाई।
चरन गहौ जाय साधके, रीझैं रघुराई॥
यही बड़ा उपदेस है परद्रोह न करिये।
कह मलूक हरि सुमिरि कै भौसागर तरिये॥

—मलूकदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

प्राणीका चित्त सुख तथा दुःखमें आबद्ध रहता है। उससे मुक्त होनेके लिये सेवा तथा त्याग परम आवश्यक हैं। प्राणी जिस अंशमें सुखी है, उस अंशमें सेवा और जिस अंशमें दुःखी है, उस अंशमें त्याग करनेमें सर्वदा स्वतन्त्र है।

वास्तवमें तो त्यागका क्रियात्मक स्वरूप सेवा और सेवाका विचारात्मक स्वरूप त्याग है। सेवा तथा त्याग दायें-बायें पैरके समान हैं। इन दोनोंके द्वारा ही प्राणी अपने चरम लक्ष्यतक पहुँचता है।

ऐसी कोई निर्बलता नहीं, जो सेवा तथा त्यागसे मिट नहीं जाती। प्राप्त सुख-दुःखसे मुक्त होनेपर ही प्राणीका चित्त सहज स्वभावसे परमात्मतत्त्वमें विलीन हो सकता है।

× × ×

प्रार्थना प्राणीकी वास्तविक पुकार है। ज्यों-ज्यों अपनी निर्बलताओंसे प्राणी परिचित होता है, त्यों-त्यों स्वभावसे ही प्रार्थना होने लगती है। अपनी निर्बलताका ज्ञान विकासका मूल है; क्योंकि वर्तमानकी आवश्यकतासे ही भविष्यकी उपलब्धि होती है। आवश्यकता उसीकी होती है, जिससे जातीय तथा स्वरूपकी एकता और मानी हुई भिन्नता हो। मानी हुई भिन्नता प्रमादको उत्पन्नकर प्राणीको अनेक निर्बलताओंमें आबद्ध कर देती है। ज्यों-ज्यों निर्बलताजनित वेदना बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उन निर्बलताओंका अन्त करनेके लिये स्वभावसे ही प्रार्थना होने लगती है। प्रार्थना उसीके लिये होती है, जिसकी प्राप्ति अनिवार्य है। इस दृष्टिसे प्रार्थना सफलताकी कुंजी है।

प्रार्थना प्राणीमात्रको स्वभावसे ही अभीष्ट है। दार्शनिक दृष्टि तथा मान्यताओंका भेद होनेपर भी प्रार्थना सभीकी एक है; कारण, स्वाभाविक आवश्यकता सबकी एक और अस्वाभाविक इच्छाएँ अनेक हैं। प्रार्थनाका उद्गम-स्थान स्वाभाविक आवश्यकता है, जो बीजरूपसे प्राणीमात्रमें एक है।

× × ×

जिस प्रकार अचल हिमालयसे अनेक नदियाँ निकलती हैं और भूमिको हरी-भरी बनानेमें समर्थ होती हैं, उसी प्रकार अन्तर्मुख प्रेमयुक्त जीवनसे सेवारूपी अनेक नदियाँ निकलती हैं, जो विश्वको हरा-भरा बनानेमें समर्थ होती हैं; अथवा यों कहें कि प्रेमसे अपना कल्याण और सेवासे सुन्दर समाजका निर्माण होता है। सेवाभावसे उत्पन्न हुई क्रियाशीलता प्रेमको पुष्ट करती है और प्रेम सेवाको सजीव बनाता है। सेवा तथा प्रेमयुक्त जीवनसे ही रुचिका अन्त होता है। रुचि-अरुचिका अन्त होते ही अहंभाव गल जाता है। अहंभावके गलते ही सब प्रकारकी चाहका अन्त हो जाता है। फिर लक्ष्यसे अभिन्नता स्वतः प्राप्त हो जाती है, जो निस्संदेहता और प्रेमकी प्राप्तिमें समर्थ है। यही जीवन-का लक्ष्य है।

× × ×

अधिकार कर्तव्यका दास है; क्योंकि कर्तव्यनिष्ठ प्राणियोंको अधिकार स्वतः ही मिल जाता है और कर्तव्य-पालन न करनेपर मिला हुआ अधिकार छिन जाता है। इसी कारण विचारशील अधिकार माँगनेका प्रयत्न नहीं करते, प्रत्युत अपने कर्तव्यपालनमें सदैव तत्पर रहते हैं। प्रत्येक कर्त्ता अपने कर्तव्यपालनमें सर्वदा स्वतन्त्र है। अकर्तव्य केवल मिली हुई शक्तिके दुरुपयोगमें है। अतः मिली हुई शक्तिका सदुपयोग कर कर्तव्यनिष्ठ बन जाओ, यही उन्नतिका मूल है।

× × ×

साधककी प्रत्येक प्रवृत्ति स्वभावसे ही सर्वहितकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है और सहज निवृत्ति प्रदान करती है। जो प्रवृत्ति निवृत्तिमें विलीन नहीं होती, वह मानवको अनेक प्रकारकी पराधीनताओं तथा अभावोंमें आबद्ध करती है। इस कारण प्रवृत्तिके आरम्भसे पूर्व ही साधकको बड़ी ही सजगतापूर्वक विधिवत् पवित्रभावसे लक्ष्यपर दृष्टि रखकर प्रवृत्त होनेका निर्णय कर लेना चाहिये। प्रवृत्ति अपने लिये नहीं है, अपितु जगत् और जगत्पतिकी सेवा-पूजाके लिये है। अपने लिये तो ज्ञानपूर्वक निवृत्ति ही अपेक्षित है। निवृत्तिका अर्थ अकर्मण्यता तथा आलस्य नहीं है, अपितु अवस्थातीत दिव्य चिन्मय जीवनसे अभिन्न होनेके लिये एकमात्र सहज निवृत्ति ही अचूक उपाय है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रवृत्ति निवृत्तिके लिये है। सहज निवृत्ति आ जानेपर उदारता, समता एवं स्वाधीनता स्वतः प्राप्त होती हैं। उदारता जगत्से अभिन्न करती है और समता देहातीत जीवनसे अभिन्न करती है, तब फिर किसी प्रकारकी पराधीनता, जडता तथा अभाव शेष नहीं रहते। इस दृष्टिसे प्रवृत्ति और निवृत्तिके द्वारा जीवन जगत्के लिये और अपने लिये उपयोगी होता है। उसके पश्चात् स्वतः साधक पावन प्रेमका अधिकारी हो जाता है। प्रेमतत्त्वकी अभिव्यक्ति होनेपर ही जीवन प्रेमास्पदके लिये उपयोगी होता है। अतः प्रत्येक साधकको सतत सहजभावसे यह आवश्यकता अनुभव करनी चाहिये कि जीवन सभीके लिये उपयोगी हो जाय। आवश्यकता अनुभव करनेमें मानव सर्वदा स्वाधीन तथा समर्थ है और उसकी पूर्ति करना अनन्तका सहज स्वभाव है।

इस मङ्गलमय विधानमें अविचल आस्था अनिवार्य है। विधानकी आस्थामें ही जीवनकी आस्था है। विधान अनन्तका स्वभाव है। जब विधानमें आस्था हो जाती है, तब अपने-आप अनन्तमें आस्था हो जाती है। अनन्तके अस्तित्वको स्वीकार करनेपर किसी अन्यके अस्तित्वकी अपेक्षा ही नहीं रहती। जिसके अस्तित्वको साधक स्वीकार कर लेता है, उसीका महत्त्व अभिव्यक्त होता है, जिसके होते ही सभी परिवर्तनशील, क्षणभङ्गुर आकर्षण सदाके लिये समाप्त हो जाते हैं और फिर स्वतः अखण्ड स्मृति उदित होती है, जो प्रेमीकी प्रेमास्पदसे दूरी, भेद-भिन्नता शेष नहीं रहने देती, अर्थात् प्रेमास्पदसे अभिन्नता प्राप्त कराती है। अथवा यों कहें कि योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति और भोग-मोह-आसक्तिकी निवृत्ति सदाके लिये हो जाती है, जो मानवमात्रकी वास्तविक माँग है।

पाद-वन्दन

(रचयिता—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

प्रियाजू के पद-पद्म परूँ।
जावक-जुत अति अमल कमल-सम, उर-पद-पीठ धरूँ॥
निरखि-निरखि नवनीत-मृदुलता, परसत पानि डरूँ।
भाव-भगतिमयि पुहुपावलि सौं, पूजन सतत करूँ॥ १॥
मुनिजन ध्यान धरहिं, हौं तिन की महिमा कहा करूँ।
जिन पद-पंकज के अलि प्रीतम, कैसे तिन बिसरूँ॥ २॥
कृपा होय तिन की तौ म फिर जम सौं कहा डरूँ।
तृन-सम तोरि सकल भव-बंधन प्रीति-बीथि बिचरूँ॥ ३॥
नख-मनि की उज्ज्वल आभा सौं उर-तम-तिमिर हरूँ।
पद-रज सौं रज माँजि हिपें सुचि सत-रबि प्रगट करूँ॥ ४॥
एहि बिधि तीनिहुँ गुन-गन परिहरि चिन्मय देह धरूँ।
चित्स्वरूप पद-पंकज भजि-भजि चिल्लीला बिहरूँ॥ ५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के अमृत वचन]

तुम अपने भगवान्‌के चरणोंमें ही हो, चरणोंमें ही रहोगे

विश्वास रखो—आत्माके नित्य सम्बन्धमें कभी न किसी प्रकारके भी विच्छेदकी सम्भावना है, न वियोगकी। वह परम पावन मधुरतम सम्बन्ध तो नित्य नवीन रूपमें बढ़ता ही जायगा—शरीर कहीं भी रहे, रहे या न रहे; क्योंकि स्थूलशरीर कहीं भी स्थायी नहीं रहता। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके शरीर भगवद्रूप ही हैं, पाञ्चभौतिक नहीं; पर लीलारूपमें उनका भी प्राकट्य तथा अन्तर्धान होता है। अतएव जरा भी चिन्ता-विषाद करना अनुचित है। भगवान् नित्य-निरन्तर तुम्हारे पास हैं, पास रहेंगे—इसमें जरा भी संदेह नहीं। तुम निश्चय समझो—तुम्हारी गति-मति, प्राणोंके प्राण तथा आत्माके आत्मा निश्चय ही भगवान् हैं और वे ही रहेंगे। तुम्हारा स्थान उनके यहाँ निश्चित है। तुमपर भगवान्‌की अनन्त अनुकम्पा और परम प्रीति है, इसका तुम अनुभव करो तथा निरन्तर सुख-सुधा-सागरमें डूबे रहो। शरीरकी चिन्ता ही मत करो। तुम यह स्थूलशरीर नहीं हो—तुम तो वह प्रेमतत्त्व हो, जो प्रेमास्पद, प्रेमस्वरूप भगवान्‌का अपना स्वरूप है। तुम्हें जप-तप-दानकी आवश्यकता नहीं, प्रेम ही सब साधनोंका शिरोमणि तथा सबका अचिन्त्य फल है। तुम अपने भगवान्‌के चरणोंमें ही हो, चरणोंमें ही रहोगे। चिन्ता मत करो; सदा उन चिन्तामणिका ही चिन्तन करते रहो, जो तुम्हारे सर्वस्व हैं तथा जिन्होंने तुमको अपना स्वीकार कर लिया है। वे प्रभु ग्रहण करना जानते हैं, त्याग करना जानते ही नहीं। त्याग करना उनके स्वभावमें ही नहीं है। हम भले ही उनका त्याग करना, उन्हें भूल जाना चाहें; पर वे 'अच्युत' तो कभी भी अपने सहज स्वभावसे च्युत होकर हमारा त्याग नहीं करते, कर सकते ही नहीं।

सदा प्रसन्न रहकर भगवान्‌का प्रसन्नता-सम्पादन किया करो

मनमें बहुत प्रसन्न रहना, जरा भी खिन्न मन मत होना। भगवान् तो सदा तुम्हारे पास हैं ही। दिन-रात तुम्हारे समीप रहते हैं। तुम सदा प्रसन्न रहकर उनका प्रसन्नता-सम्पादन किया करो।

अपनेको केवल अपने भगवान्‌का ही बनाये रखना चाहिये

मनको सदा क्षोभरहित रखनेका प्रयत्न करना है। भगवान् कहते हैं—'मैं उसका हृदय हूँ; वह केवल मुझको जानता है और मैं केवल उसको जानता हूँ'—इस बातपर विश्वास रखना चाहिये। भगवान् तुम्हारे हैं; तुम्हारी चीज सदा तुम्हारी ही है और तुम्हारी ही रहेगी। नित्य-निरन्तर अपनेको केवल और केवल अपने भगवान्‌का ही बनाये रखना चाहिये। दूसरे किसी भी प्राणीका, पदार्थका, परिस्थितिका कभी भी प्रभाव न पड़े। पार्वतीजीने कहा—

> महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
> जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥ (मानस १। ८०)

कोई भी प्रलोभन या भय कभी भी तुम्हें डिगा न सके। 'उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥' (मानस ३। ४। ६) बस, एकमात्र यही दृढ़ स्थिति रहनी चाहिये, अपने भगवान्‌में ही एकमात्र निष्ठा रहनी चाहिये। फिर भगवान् तो सदा मिले हुए हैं ही। वे सदा-सर्वत्र वर्तमान हैं, सदा तुम्हारे पास हैं—तुम निश्चयपूर्वक इसका अनुभव करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूलशरीरकी सीमामें भगवत्प्रेम नहीं आता

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवत्प्रेमका क्षेत्र नित्य, सत्य, शाश्वत है । स्थूलशरीरकी सीमामें भगवत्प्रेम नहीं आता। शरीर रहे या न रहे, अथवा कोई-सा भी शरीर प्राप्त हो जाय—उस प्रेमकी सत्तामें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती है। शरीरतक ही सीमित प्रेम यथार्थ प्रेम नहीं है; बल्कि शरीरका स्थूलभाव तो प्रेममें तिरोहित ही हो जाता है। इसलिये भगवत्प्रेम शरीरके क्षेत्रमें नहीं समझना चाहिये और यह है भी नहीं। अविनाशी, नित्य, सत्य भगवत्प्रेमका आधार अनित्य, विनाशी, असत् स्थूलशरीर नहीं, नित्य आत्मा है, जो इस शरीरके नष्ट होनेके बाद भी सदा रहता है और रहता है भगवत्प्रेमके अगाध रस-सुधा-सागरमें डूबा हुआ। यही मरणोत्तर व्रजरसमें प्रवेश है, जिसके तुम अधिकारी हो। अतएव अपने स्वरूपकी महत्ताको समझकर सदा सुप्रसन्न रहा करो। भगवान् तुमसे कभी अलग नहीं होते, हो सकते नहीं, होंगे नहीं—यह निश्चित है; तुम्हें इसको अनुभव करना चाहिये।

भगवान् दिन-रात प्रेमीके प्रेमरसका आस्वादन करते रहते हैं

प्रेमका यह स्वभाव है—मनमें प्रभुके अमिलनकी भयानक पीड़ा और नित्य मिलनका महान् परम सुख, दोनों ही होते रहते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु इसी भावमें रहते थे। मनका ही 'विप्रलम्भ' और मनका ही 'मिलन'—ये प्रेम-सरिताके दो पावन तट हैं, जिनके बीच यह मधुरतम (कभी-कभी तीव्र-तीक्ष्णरूपमें तथा कभी माधुर्यको छिपाये हुए) प्रेम-सुधा-सरिता प्रवाहित होती रहती है। वस्तुतः प्रभु कभी पृथक् होते नहीं। वे स्वयं इतने प्रेम-परवश हैं कि प्रेमीका क्षणभरका वियोग भी उन्हें सहन नहीं होता। वे कभी प्रकट, कभी अप्रकट रूपमें प्रेमीकी प्रत्येक चेष्टाको दिन-रात बिना विरामके देखते ही रहते हैं और केवल द्रष्टा-साक्षीके रूपमें, तटस्थ-भावसे नहीं, स्वयं प्रेमरसास्वादन करते रहते हैं। प्रेमीको कभी यह अनुभव कराते हैं, कभी नहीं। अनुभव न करानेमें भी उनका रसास्वादन ही हेतु होता है। वे प्रेमीकी 'वियोग-विकलता' और 'संयोग-सुखमयता' देख-देखकर उसपर न्योछावर होते रहते हैं। कितनी व्याकुल हुईं श्रीगोपाङ्गनाएँ रासमण्डलमें भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके अन्तर्धान होनेपर—पर वे भगवान् कहीं गये थोड़े ही थे, छिपे-छिपे प्रेममयी गोपरमणियोंकी एक-एक चेष्टाको देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे। उन्होंने स्वयं प्रकट होनेके बाद यह बतलाया भी था। प्रेमी प्रभुमें अपनेको खो देता है, तो भगवान् अपनी सारी भगवत्ता प्रेमीके प्रेमकी प्रबल धारामें बहा देते हैं। तुम भगवान्के—अपने एकमात्र आश्रय, शरण्य, प्रेमास्पद, परम प्रियतम प्रभुके साथ दिन-रात एक हुए रहो। शरीर कहीं रहे, शरीरका मरना-जीना कोई अर्थ ही नहीं रखता। प्रभुके मिलनमें शरीर प्रभुमय ही रहता है और प्रभुका वह मिलन नित्य है ही। एक क्षण भी अमिलनकी कल्पनाको भी कहीं स्थान मत दो।

प्रेमीसे उसके भगवान्को कोई अलग नहीं कर सकता

सदा मनमें रहनेवाले—और अपने पवित्रतम भावके अनुसार प्रत्यक्षरूपमें भी साथ रहनेवाले भगवान्को प्रेमीसे कोई अलग कर नहीं सकता। यहाँके आदमियोंकी तो शक्ति ही क्या है, मृत्यु तथा देवता भी उनको अलग नहीं कर सकते, शरीरका कोई महत्त्व ही नहीं।

श्रीश्यामसुन्दरकी इच्छामें अपनी सारी इच्छाओंको विलीन कर दें

तुमने अपनी मानसिक अधीरताकी स्थिति लिखी, सो ठीक ही है। पर सब वैसे ही होता है, जैसे मङ्गलमय भगवान्का मङ्गल-विधान होता है। मनमें विश्वास करके सदा प्रसन्न रहना चाहिये। दूसरोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन बदलनेके लिये प्रयत्न करना अच्छा है, पर वास्तवमें किसीका मन बदलनेकी इच्छा ही क्यों करें? बदलना ही हो तो अपना ही मन बदलें, जो दूसरोंका मन बदलनेकी अपेक्षा अधिक सुगम तथा सहज है। इससे भी उत्तम यह है—परम सुहृद्, परम प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी इच्छामें अपनी सारी इच्छाओं-को विलीन कर दें। जो कुछ परेच्छा-अनिच्छासे होता है, सब उनकी इच्छासे होता है और उनकी इच्छाको अत्यन्त हर्षपूर्वक परम अनुकूल बनाकर स्वीकार करना चाहिये।

इस प्रकार देखना चाहिये—भगवान् मेरे और मैं उनका चेरा

श्रीभगवान्‌को सदा-सर्वदा अपने साथ, अपने भीतर, अपने बाहर, सभी समय, सभी कार्योंमें योगदान देते हुए देखना चाहिये। भगवान्‌पर अपना अधिकार मानना चाहिये तथा अपनेको सदा-सर्वदा एवं सर्वथा भगवान्‌के अधीन देखना चाहिये। भगवान् मेरे—एकदम मेरे—सदा मेरे—परम प्रियतम, परम-धन, परमगति—सब कुछ मेरे हैं और मैं नित्य-निरन्तर उनके सुखका साधक, उनका चेरा, दास, उनकी अपनी ही चीज, उनका अपना ही यन्त्र हूँ—इस प्रकार देखना चाहिये। ऐसी ही बात है, निस्संदेह ऐसी ही है।

भगवान्‌को एक बार सौंप देनेपर वे सदाके लिये स्वामी हो जाते हैं

भगवान् कभी भी हृदयसे दूर नहीं होंगे— यह पक्का निश्चित विश्वास रखना। खाली हृदयमें ही तो प्रेमधन प्रियतम भगवान् अपना आसन जमाया करते हैं, अतः उन्होंने तुम्हारे हृदयमें अपना दृढ़ आसन जमा लिया है और वे कभी हृदयसे अपना अधिकार अब उठायेंगे नहीं। उन्हें एक बार सौंप देनेपर तो वे सदाके लिये स्वामी हो जाते हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

जो अपनेको भगवान्‌के अर्पण कर चुका है, वह तो अपने-आप कुछ रहा ही नहीं

तुम अपने मनमें किसी भी बातको लेकर न तो चिन्ता करो, न क्षुब्ध होओ। जो अपनेको भगवान्‌के अर्पण कर चुका है, वह तो अपने-आप कुछ रहा ही नहीं; उसकी सब चिन्ता उसके भगवान्‌को ही है। वह क्यों चिन्ता करे, क्यों किसी चीजकी कल्पना करे? वह तो अपने भगवान्‌के हाथका यन्त्र है। उसे न जीवनसे मतलब है न मरणसे; न लाभसे न हानिसे; न मानसे न अपमानसे; न चाहसे न अचाहसे। सभी चाह, लालसा, चिन्ता, कल्पना अपने प्रभुकी चीज हो गयी। अब तो उसके स्थानपर वह है ही नहीं, उसके प्रभु ही हैं। तुम्हारे मनमें होनेवाला दुःख भी, क्षोभ भी, चिन्ता भी, भय भी—सब उन्हींमें तथा उन्हींसे हो रहा है। तुम्हारी पृथक् मान्यता, अपनेमें प्रेमके अभावका तथा दोषोंका दर्शन—यह भी उन्हींमें तथा उन्हींसे है। वे ही लीलामय तुम्हारे इस ढाँचेमें अपनी लीला कर रहे हैं। वस्तुतः तो तुम हो ही नहीं, तुम्हारी सत्ता उनमें अपनेको खो चुकी है।

समर्पणकर्त्ताके मन-प्राणोंपर उन्हींका एकाधिकार होता है

तुम बहुत-बहुत प्रसन्न रहना। मनमें सदा प्रफुल्लित रहना। तुम्हारे प्रति भगवान्‌की अनुकम्पा, प्रीति तथा आत्मीयता परम श्रेष्ठ तथा सर्वथा विलक्षण है—इस बातपर खूब विश्वास रखना। तुम्हारे मन-प्राणोंपर उन्हींका एकाधिकार है, जो शरीरके अधिकारसे बहुत ही ऊँची चीज है। तुम तो अपनेको उनके समर्पण कर चुके हो। शरीर तथा वस्तुएँ तो समर्पण होती नहीं; क्योंकि ये तो अपनी वस्तु नहीं हैं। इसीसे मृत्युके समय ये सब छूट जाती हैं। अपनी वस्तु तो अपना आप है, जो समर्पित होनेपर अपना रहता ही नहीं। फिर किस बातकी कौन चिन्ता करे और कैसे चिन्ता करे? तुम तो समर्पण करके निश्चिन्त हो चुके हो। तुम्हारा अपना 'तुम' ही जब उनका हो गया है, तब सोचनेवाला उनके सिवा और कौन रह गया? इसलिये तुम सदा निश्चिन्त रहकर अपनेमें प्रभुकी निर्बाध लीला होने दो; बस, मौज-ही-मौज है।

(पुराने पत्रोंसे संगृहीत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार 110321

साधनोंका उपयोग

(लेखक—आचार्य श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम')

मानव साधनोंके बलपर जिस दिशामें चाहे, उन्नति कर सकता है। साधन उसके अंदर भी हैं और बाहर भी। दोनों ही प्रकारके साधनोंमें कुछ दृश्य हैं और कुछ अदृश्य। हाथ, पैर, आँख, कान आदि दृश्य हैं; परंतु भावना और कल्पना अदृश्य हैं। शरीरसे बाहर सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि दृश्य हैं; परंतु प्रकाशकी लहरें और ध्वनिकी लहरें अदृश्य हैं। मन्थन करनेपर अदृश्य उपादान-शक्तियाँ दृश्य भी बन सकती हैं। अनुभूतिमें तो आती ही रहती हैं। जैसे तीनों प्रकारके शरीर मेरे लिये साधनरूप हैं, वैसे ही बाहरकी त्रिलोकी भी मेरे लिये साधनरूप है। इनके अतिरिक्त कुछ साधन मानव-कृत भी हैं। ये सभी प्रकारके साधन सबके लिये सुगम और सुलभ हों, ग्राह्य एवं वर्तनीय हों—ऐसी बात नहीं है। पुण्यकर्म एवं पुरुषार्थ जबतक साथ नहीं देते, अथवा महत्कृपा या भगवत्कृपाका सुयोग नहीं प्राप्त होता, तबतक दूर क्या, समीप रहनेपर भी ये साधन सहायक नहीं बन पाते।

पुण्यकर्मोंके लिये पुरुषार्थकी अपेक्षा है। ये पुण्यकर्म महत्कृपा तथा भगवत्कृपाको भी सुलभ कर देते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है, जब मानव अपने पुरुषार्थसे कारणवश निराश हो जाता है; उस समय यदि पीड़ित अन्तःकरण सहायताके लिये पुकार उठे तो उपयुक्त सहायक प्राप्त हो जाता है। चराचर विश्वका नियामक सहज दयालु है। उसकी भुजाएँ बलवान् और विशाल हैं। उसकी शक्ति अपार है। उसके मार्ग अनन्त हैं। उसकी रक्षण-शक्तियाँ कभी क्षीण नहीं होतीं। अन्तःकरणकी पुकार सुनते ही वह अदृश्य प्रकट हो जाता है, अपने अनन्त बलों और रक्षा-शक्तियोंके साथ आता है और पीड़ित प्राणी त्राण पा जाता है। अदृष्टसे प्राप्त हुए ये रक्षण मानवके अमोघ अवलम्बन हैं। इन्हीं अवलम्बनोंका स्मरण करके मानव आश्वस्त होता रहता है।

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ बौद्धिक एवं शारीरिक पुरुषार्थका परिणाम हैं, परंतु सफलता और असफलताके पीछे कोई-न-कोई नियामिका शक्ति छिपी रहती है। अमेरिकाने चन्द्रमें वायुयान उतार दिया, मनुष्योंको उतार लिया और वे लौटकर पुनः पृथ्वीपर [illegible]। रूस ऐसा नहीं कर सका। अन्य देश ऐसा करनेका या तो साहस नहीं रखते अथवा साधन-शून्य हैं। अमेरिका इस दिशामें विपुल धन व्यय कर चुका है। जिस ऑक्सीजनको यात्री अपने साथ ले गये, उसके मूल्यके साथ यदि यन्त्रोंके निर्माणमें जो धन व्यय हुआ है, उसे भी सम्मिलित कर लें तो यह राशि अरबकी संख्यातक पहुँच जायगी। इस धन-राशिके साथ यन्त्रादिके निर्माणमें जिस बुद्धिने सहयोग दिया है, उसके मूल्यको कौन आँक सकता है? पुरुषार्थका यह खेल अद्भुत है, विचित्र है; पर यहाँ मानवके हाथमें आयी हुई धन-राशिकी भी सीमा है और बुद्धि-वैभवकी भी इयत्ता है। अनन्त सम्पदा तथा अनन्त बुद्धि भी यहींपर हैं और वे सर्वव्यापक परमतत्त्वके आश्रित हैं। जिस दिन मानव अपने पुरुषार्थके साथ इस परमतत्त्वकी संनिधिका अनुभव करेगा, उस दिन वह कृतकृत्य हो जायगा। खण्डमें पड़ा हुआ पुरुषार्थ वैमनस्यका उत्पादक है। उसके साथ असूया, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि लगे रहते हैं। अखण्डके साथ नीरजस्तम अवस्था है। शान्ति भी वहींपर है।

आज विश्व अशान्त है। वातावरण राग और द्वेषसे आक्रान्त है। मानव मानवसे भयभीत है। नाना प्रकारकी चिन्ताओंसे ग्रस्त आजका मानव अपना दुःख दूर करनेके लिये लालसाभरी आँखोंसे किसीकी ओर देख रहा है। दो युद्ध इसी युगमें हो चुके हैं। तीसरे युद्धकी भीषण कल्पना सम्भवतः प्रत्यक्ष होने जा रही है। नियतिका कुछ ऐसा ही विधान जान पड़ता है। अपने बल-पौरुषपर सर्वाधिक विश्वास करके हममेंसे सभी एक-दूसरेको नीचा दिखानेके लिये कटिबद्ध हैं। बेचारी बुद्धि जो हमें प्रकाशके लिये प्राप्त हुई है, हमें विध्वंसके सघन अन्धकारकी ओर ले जा रही है। हम इस बुद्धिका सदुपयोग नहीं कर रहे हैं। उसके साथ व्यभिचार कर रहे हैं। महामाया इसका दुष्परिणाम हमारे सामने उपस्थित कर रही है। सम्भव है, इन दुष्परिणामोंको झेलकर हम अपने स्वत्व और सत्त्वको हृदयंगम कर सकें और विनयपूर्वक आत्मस्थ होकर अपने वाञ्छनीय प्राप्यको प्राप्त कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवमात्रकी आकाङ्क्षा है कि कोई भीषण विपत्ति उसके समक्ष उपस्थित न हो। इस आकाङ्क्षाकी पूर्तिके लिये वह प्रयत्नशील भी है। पर प्रतिस्पर्धा इतनी प्रबल बन गयी है कि वह समस्त उपलब्ध साधनोंके द्वारा सामाजिक, जातीय एवं राष्ट्रीय अहंको तुष्ट करना ही चाहती है। दूसरेके अहंकी उसे रंचमात्र भी चिन्ता नहीं है और स्थिति इतनी विकट होती जाती है कि अवसर मिलते ही एक पक्ष अपने प्रतिस्पर्धीको कुचल डालनेमें कोई भी कसर नहीं रहने देगा।

सर्वमङ्गलकारिणी जगदम्बा यदि अपने देव-दानवरूप पुत्रोंपर अनुकम्पाभरी दृष्टि डाले तो हम सब सहज ही प्राप्त साधनोंका सदुपयोग करके मानवताके उन्नयनमें सहायक बन सकते हैं। पर उसकी एकान्त-प्रसङ्गिता उसे ऐसा क्यों करने देगी? स्वतन्त्रकर्ता जीव अपनी स्वतन्त्रताका फल भोगेगा ही। वह माँकी ओर क्यों उन्मुख होगा? सयाना जो हो गया है—सयाना ही नहीं, विज्ञानने उसे मदान्ध भी बना दिया है। उसकी दृष्टि अम्बाकी ओर है कहाँ? अपने पुरुषार्थकी ओर है। उसीके नृत्यमें वह मग्न है। साधन उसके हैं—यह अहंता ही उसे अलातचक्रमें डाले हुए है। जिस दिन वह समझेगा कि मेरा कुछ नहीं, जो कुछ है, उसी अम्बाका है, उसी दिन वह उसके दिये साधनोंके सुप्रयोगमें जुट पायेगा।

तेरा निमन्त्रणः मेरा अन्वेषण

(लेखक—डा० श्रीशिवबहादुरसिंहजी एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

स्वामिन्! तूने प्रेम-निमन्त्रण दिया। मैं आत्म-विभोर था, भला सुधि तो ली। तेरी वाणी पुनः उद्घोषित हुई—'मैं तुझे प्रेम करता हूँ।' मैं सुध-बुध खोकर नतमस्तक हुआ, अञ्जलि जोड़े चरण-स्पर्श करना चाहा। वाणी मूकथी, भावाभिव्यक्तिके अतिरेकसे गला रुँधा था; अपार आनन्दकी अनुभूतिमें धीरेसे निवेदन किया—धन्य हैं मेरे भाग्य। तूने स्मरण तो किया; मैं तो केवल तेरा हूँ, तू जो चाहे कर। इस क्षुद्र प्राणीपर तेरी महती दया।' इस कथनके साथ ही चरणोंपर गिर पड़ा—परंतु यह क्या! यहाँ तो कोई नहीं!! प्रभुके दर्शन नहीं!!! यह तो एक स्वप्नमात्र था। पर इससे क्या? अन्तरमें बैठे प्रेमास्पद प्रभुका आदेश है—'मैं तुझे प्रेमके गह्वरमें डाल देना चाहता हूँ। क्या तुम इस स्वप्नको लिपिबद्ध कर सकते हो?' स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य, पर क्या हृदयकी सही स्थिति एवं भावको किसीकी लेखनी आजतक उतार सकी है? सम्भवतः नहीं। पुनः मेरी लेखनी अतिशय त्रुटिपूर्ण है। पर इससे क्या? 'स्वामिन्! तेरे आदेशानुसार श्रद्धा-सुमन तो चढ़ाने ही हैं, भले ही वे सुमन निर्गन्ध तथा साधारण हों। मुझे तो, बस, तेरी आज्ञाका पालन करना है। आगे तेरी और केवल तेरी इच्छा, तू जाने और तेरा काम जाने।'

× × ×

मैं तो तेरा दर्शन करना चाहता हूँ, पर तू कहाँ होने देता है? तू स्वतः लुका-छिपी करता है। हर पदार्थमें परोक्षरूपसे स्थित होकर छिपे-छिपे धीरे-धीरे तू बुलाता है—वायुकी मर्मर-ध्वनिमें, वृक्षोंके हिलते किसलयोंमें, नदियोंकी चञ्चल धाराओंमें तथा सागरकी उत्ताल तरंगोंमें केवल तेरा ही संगीत गाया जा रहा है, पर मैं अबोध कहाँ समझ पाता हूँ। मैं तो केवल बाह्य रूपमें उलझ जाता हूँ, उसके अन्तरमें स्थित तेरे दिव्य दर्शन नहीं होते। पदार्थोंमें पदार्थकी ही अनुभूति होती है, तेरी नहीं। क्यों? कारण समझमें नहीं आता। जब तू ही इनकी उत्पत्ति, संचालन तथा व्यवस्था करता है और स्वतः उनके अन्तरतममें निवास करता है, तब फिर तू लक्षित क्यों नहीं होता? तेरा काम तू ही जाने।

× × ×

प्रेमास्पद! रात्रिकी नीरवतामें यह कैसी ध्वनि! क्या पदचाप है? नहीं। अथवा वायुका आलाप है? नहीं। किंवा किसलयका संगीत है? नहीं। भ्रमरका गीत है? कदापि नहीं। फिर यह कैसा गुञ्जन? कार्य-कारणकी परम्पराका तो अटल नियम है—यदि कार्य है तो कारण होगा ही। यह मधुर आलाप हृदयको आनन्दसे उद्वेलित कर देता है। अरे! रात्रिकी इस नीरवतामें भी कोई मेरे साथ है!! वह धीरेसे, प्रत्युत मौनभावसे पुकार रहा है!!! 'देखो, मेरी ओर देखो—इस एकान्तमें भी—इस गहन अन्धकारमें भी मैं, केवल मैं तुम्हारे साथ हूँ।' यह मूक वाणी समझनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमता मुझमें कहाँ। सुनी-अनसुनी कर देता हूँ। प्रेमास्पद उदास हो जाते हैं, पर वे धैर्य नहीं छोड़ते। उनका मर्मभरा संगीत पुनः सुनायी पड़ता है, तब मैं पुनः चौंक पड़ता हूँ। यह क्या? चन्द्रकी ज्योत्स्ना तेरी ही है, तारोंका प्रकाश तेरा ही है, रात्रिकी नीरवता तेरी ही है और इस नीरवताकी ध्वनि भी तेरी ही है। प्रेमास्पद! तू बड़ा मृदुल है, अत्यधिक मधुर है, सुन्दरताकी चरम सीमा है, आनन्दका अपार स्रोत है, पर तू स्वयं क्या है, इसे कौन जाने? तेरा काम, तू ही जाने।

× × ×

न जाने मैं क्या-क्या कह गया। तू बुरा न मानना। तू मुझसे प्रेम करता है और मैं न प्रेमकी भाषा समझता हूँ और न प्रेमकी परिभाषा ही जानता हूँ। फिर कैसे एकीकरण हो? तेरा प्यार भी क्या है—एकदम निर्लिप्त, पूर्ण निष्काम, कोई अपेक्षा नहीं, कोई चाह नहीं, केवल प्यार करना चाहता है। ऐसा प्रेम न देखा न सुना, फिर कैसे समझमें आये? मैं सशङ्क दृष्टिसे तेरी ओर देखता हूँ और तू खिलखिला पड़ता है। मैं हतप्रभ हो जाता हूँ। इतनी बुद्धि नहीं कि इस गहराईको छू सकूँ। मैं हारकर तेरी शरण लेता हूँ। परंतु तू है कहाँ? कहीं नहीं। केवल रात्रिकी नीरवता, एकदम शिथिल टिमटिमाते तारे, स्वच्छ चाँदनी और मन्द वायु! तेरा कहीं पता नहीं!! मैं पुनः छला गया!!! तेरा खेल, तू ही जाने।

× × ×

अतीतकी स्मृति। मेरा बाल्यकाल था। अस्वस्थ हो गया था। शरीर अवाँकी भाँति तप रहा था। रात्रिके समय निवेदन किया—'स्वामिन्! कई दिनोंसे कष्टमें हूँ। यदि स्वस्थ करना चाहते हो तो ये श्रद्धा-सुमन ग्रहण करो।' फूलोंसे भरा एक दोना सिरहाने रखकर सो गया। स्वप्नमें देखा—तू आया और इठलाता हुआ आया और फिर फूलके दोनेको उलट दिया। मैं हतप्रभ था। ग्रहण करनेकी जगह उपेक्षा! दिल भर आया। तत्काल निद्रा टूटी। देखता हूँ—पुष्प बिखरे पड़े हैं, पर तेरा कहीं पता नहीं। दूसरे दिन स्वस्थ था। तेरे इन खेलोंसे अभ्यस्त हो गया हूँ।

पुनः बचपनकी याद आती है। दस वर्षका रहा हूँगा। एक पथपर अकेला जा रहा था। एक छोटी डिबिया मार्गमें मिली। कौतूहलवश उसे उठाकर खोला। अरे! उसमेंसे एक कीट उछलकर बाहर आया। थोड़े समयमें ही उसने एक मनुष्यका रूप धारण कर लिया। मैं आश्चर्यचकित था। उस व्यक्तिने दीक्षाके मन्त्र बताये। मैं तुरंत भूल गया। एक नहीं, तीन बार उस मन्त्रकी आवृत्ति करानेकी कोशिश की, पर मैं भुलक्कड़ भला कैसे याद रख सकता? एक क्षणमें सब कुछ तिरोहित हो गया। अरे! यह तो स्वप्न था, कहीं कुछ नहीं। मैं मन्त्रके बारेमें सोचता रहा; पर कुछ भी तो याद न आया, सिवा चार भाइयोंके नामके। हाय! उनका नाम भी ठीकसे स्मरण न रह सका। दस वर्ष बाद गुरुदेवसे दीक्षा मिली। आश्चर्य, महान् आश्चर्य, दीक्षाका वही बीजमन्त्र, जो स्वप्नमें बताया गया था। स्वप्नमें प्राप्त मन्त्र और प्रसङ्ग एकदम याद आया और आँखें भर आयीं। मेरे प्यारे! तेरे खेलके अनेक रूप देखे, इन्हें मैं कैसे समझूँ? पर इससे क्या? ज्ञान कराना तेरा काम है। तू जाने, तेरा काम जाने।

× × × ×

एक स्वर्णिल संसार। मैं उपवनमें जा रहा था, सहसा तू दिखायी पड़ा—बाल-गोपाल तथा दाऊजीके साथमें। मोर-मुकुट, काछनी, कङ्कण, केयूर, करधनी तथा वंशी धारण किये हुए तेरा अप्रतिम सौन्दर्य, तेरा तेजोमय मुखमण्डल, प्रकाश-पुञ्जसे दीप्त आभा, मधुर हास्य, प्रेमपूर्ण नेत्र, सुन्दर भृकुटि और क्या-क्या नख-शिख वर्णन करूँ? तूने तिरछी चितवनसे देखा। मैं सुध-बुध खो बैठा। बाह्य संज्ञा समाप्त हो गयी। मन्त्र-मुग्ध होकर तेरे पीछे चलने लगा। देखते-देखते अनगिनत व्यक्ति तेरे पीछे हो लिये। कोई तुझसे न तो कुछ कहता और न तू ही बोलता था। केवल तेरे अतीन्द्रिय सौन्दर्यसे सभी अभिभूत थे। और फिर तू ठहरा छलिया—यदा-कदा तिरछी चितवनसे हमें निहार लेता था, पुनः हम आत्म-विभोर हो आनन्दके स्रोतमें बह जाते थे। एक स्थानपर पहुँचकर तू रुक गया। तेरा रुकना मानो संसारका रुकना हो गया। वायुकी गति मन्द हो गयी, चिड़ियोंकी चहचहाट बंद हो गयी, सूर्य और चन्द्र निश्चल हो गये। व्यक्तियोंका समूह स्तब्ध था। किसीको कुछ भी बात करनेका साहस न था। पुनः एक क्षण बाद निद्रा टूटी। मैं पछताकर रह गया—तेरा स्पर्श क्यों नहीं कर लिया, तुझे पकड़ क्यों नहीं लिया, तुझसे बात क्यों नहीं कर ली, तेरी इच्छा क्यों नहीं जान ली? पर अब इन बातोंसे क्या? अवसरपर चूक गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कदाचित् तू चाहता भी यही था, तभी तो मुझे मुग्ध रखा। विचार करनेका अवसर ही कहाँ दिया, आखिर तू ठहरा छलियोंका सिरताज।

× × × ×

पुनः बचपनकी एक स्मृति। मैं एक छोटी-सी पाठशालामें पढ़ता था। पास ही एक मन्दिर था, जहाँ भागवतकी कथा हो रही थी। कृष्णलीला सुनकर कई बार रोमाञ्च हो आया—कितना है नटखट यह खिलाड़ी? क्या इसके दर्शन कभी हो सकेंगे? मन्दिरके पुजारीसे बातचीत की। उसने बताया कि कृष्णके चार हाथ थे और वह मुझे इस रूपमें उनका दर्शन करा सकता है। मैंने श्रद्धावनत होकर उनसे प्रार्थना की कि मुझे इस रूपका दर्शन करा दें। दिवसकी मध्य बेलामें दिखानेके लिये उन्होंने वचन दिया। मैं आनन्दमग्न, अत्यधिक प्रसन्न होकर पाठशाला गया—पढ़नेमें मन नहीं लगा। मध्यदिवस होनेपर कक्षा छोड़कर पुजारीके पास आया। वह मुझे मन्दिरके भीतर ले गया। मैं बहुत उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा था। पर वे गीताप्रेससे छपी श्रीमद्भगवद्गीताकी एक प्रति ले आये। उसमें श्रीकृष्णके चतुर्भुज रूपका चित्र छपा था। पुजारीने उसे खोलकर मुझे दिखाया। कितनी गहरी निराशा हुई—इसका आभास या तो मुझे ही है या फिर प्रेमास्पद तुझे ही। दिल मसोसकर रह गया। आशा थी, तेरे दर्शन होंगे; पर यहाँ तो चित्रसे ही संतोष करना पड़ा। तू नटखट! मेरे विश्वाससे खेलता है!!

× × × ×

आनन्दमय! कितने दिनोंसे तेरा लुका-छिपीका प्रहसन चल रहा है। जब मैं तेरी ओर उन्मुख होता हूँ, तब तू एकदम तिरोहित हो जाता है, तेरा आभासतक नहीं मिलता, तेरा अस्तित्व ही संदिग्ध मालूम पड़ने लगता है। प्रेमास्पद! इस अन्तिम वाक्यपर तू क्रुद्ध हो गया? इसमें नाराज होनेकी कोई बात नहीं। मैं तो अपने हृदयका भाव उँडेल रहा था। पर यदि तुझे यह कथन नापसंद है तो इस वाक्यको मैं हटा देता हूँ। जरूर मुझसे त्रुटि हुई है। अभीतक तेरे मुखपर हास्यका विलास नहीं है, अभीतक तू इस बातपर रुष्ट ही है। पर मैं कहाँ अविश्वास करता हूँ? क्या मैं अपने अस्तित्वपर अविश्वास कर सकता हूँ? करना भी चाहूँ तो क्या कर सकूँगा! आजतक कोई कर सका है? वस्तुतः यह लिखना भी कब चाहता था? केवल तेरे खेलोंसे तंग आकर सहसा यह वाक्य लिख गया हूँ। प्रेमास्पद! तू क्रुद्ध मत होना। मैं तो युग-युगसे तेरा ही हूँ और तेरा ही रहूँगा। हाँ, अब तू दिखायी पड़ा प्रसन्न मुद्रामें। तू पुनः उसी हास्य मुद्रामें खिलखिला पड़ा। ऐसा प्यार नहीं देखा और न ऐसा प्रेमास्पद ही। हाँ, तो मेरी बात अधूरी रह गयी। अब मैं तेरी ओरसे उदासीन हो जाता हूँ, तेरे बारेमें कोई विचार नहीं करता तो तू सहसा चुपचाप आकर छेड़ जाता है। मैं आह्लादित हो उठता हूँ। पुनः तेरी ओर उन्मुख होता हूँ, पर फिर तू भागता-सा प्रतीत होता है। मैं पीछा करता हूँ, परंतु भागनेवालेको कौन पकड़ पाया है? सहसा सब कुछ विलीन हो जाता है। तेरा कोई पता नहीं चलता; आखिर पता बतानेका काम भी तो तेरा ही है। तू जाने, तेरा काम जाने।

× × × ×

आज होली है। चारों ओर होलिकोत्सवकी धूम है। रंग-गुलाल उड़ायी जा रही है। लोगोंकी प्रसन्नताका आर-पार नहीं। बच्चे रंगकी पिचकारी लिये भाग रहे हैं। उनका आनन्द सीमाके पार जा रहा है। पर मेरा हृदय रिक्त क्यों है? कुछ अतीतकी स्मृतियाँ याद आ रही हैं। इसी दिवसको तूने प्रह्लादकी रक्षा की थी, आग भी उसे जला न सकी। उसमें तेरा प्रभाव था अथवा प्रह्लादका असीम विश्वास—शब्दोंसे कह नहीं सकता; कदाचित् प्रह्लादका विश्वास और तेरा प्रभाव—दोनों ही अपनी-अपनी जगह काम कर रहे हों। आज हमलोग उस पर्वको होलिका जलाकर मनाते हैं, पर भावरहित होकर। हृदय तेरे कारुण्यकी ओर उद्वेलित नहीं होता। भावनाओंमें पंख नहीं होते, जो तुम्हारी ऊँचाईको छू सकें। आखिर यह कैसे हो? क्या तुझमें कारुण्य-वृत्तिका अभाव हो रहा है? ऐसी बात होनी नहीं चाहिये। हममें अवगुण बढ़ गये हैं, यह सत्य है; पर क्या उन अवगुणोंको देखकर तू भी बदलेगा? यह असम्भव है, यह तूने कभी नहीं किया; फिर आज ही क्यों करने लगा? अवश्य ही कहीं मेरे समझनेका फेर है—क्या कभी समझा देगा? तेरी इच्छा; जब चाहे, बता देना।

× × × ×

अतीतकी स्मृति। तेरी खोजमें सरयूके तीर प्रतिदिन जाया करता था। घाटपर पीपल, बरगद तथा मौलिश्री आदिके वृक्ष थे। उनपर बैठे पक्षी कलरव किया करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या वे तेरा गीत गाते थे ? कह नहीं सकता । सरयू अब भी उसी मन्थर गतिसे बह रही है । कभी तू उसके किनारे नाना प्रकारके खेल खेलता था, अपना और अन्य मित्रोंका मनोरञ्जन करता था—क्या लच्छी-डाँड़ी भी खेलता था ? देखो ! बरगदकी यह शाखा इस खेलके लिये कितनी उपयुक्त है । अवश्य तूने इस खेलको कहीं खेला होगा, तेरे पीछे बालक-वृन्द भागे होंगे और तूने भी उन्हें दौड़ाया होगा । तेरे हार जानेपर लोगोंने तालियाँ भी पीटी होंगी और सम्भवतः तूने भी विनोदमें उनका साथ दिया होगा । मौलिश्रीका यह पेड़ ! अवश्य तू इसपर बैठा रहा होगा । इसकी डालोंपर तेरे चरण-चिह्न अब भी देखे जा सकते हैं । आह ! कितना मनोरम दृश्य रहा होगा—कितने आनन्दकी गहरी अनुभूति रही होगी ? तेरी मन्द चाल, तेरी तेज दौड़, तेरी मधुर बातें, तेरा मन्द हास्य एवं तेरे विचित्र खेल ! जिसने भी इन्हें देखा होगा, उसके भाग्यके बारेमें क्या कहना ? क्या उसकी कल्पना भी मैं कर सकता हूँ ? ओह ! इस डालीपर तो तू बैठा है !! धृष्टताके साथ हँस रहा है !!! मैं आश्चर्यचकित था । क्या इतना आसान है तुझे देखना ? तुझे छूनेकी लालसासे आगे बढ़ रहा हूँ; पर वाह, यह क्या ! तू गायब हो गया !! कहीं पता नहीं !!! एक बार पुनः धोखा खा गया । प्रेमास्पद ! करता जा खेल—देता जा धोखा । देखता हूँ, तेरा यह गोरखधंधा कबतक चलता है । मैं भी आसानीसे पिंड छोड़नेवाला नहीं । कहाँतक भागेगा ? हर चाहनेवालेसे तुझे हार माननी पड़ी है—क्या मैं अपवाद हूँ ? कदापि नहीं, यह सम्भव नहीं । कभी तो तू आयेगा ही और पुनः तेरा वियोग नहीं होगा । यह आशा बनी हुई है और इसीके सहारे जी रहा हूँ । देखता हूँ, तेरी दयादृष्टि कब होती है ? देर-सबेर खयाल करेगा ही ।

इतिहासके अन्वेषणमें चित्रकूट गया । भला, उस पावन भूमिपर मैं इतिहासका अन्वेषण क्या करता ? मैं तो वहाँ पहुँचकर ही धन्य हो गया । इस भूमिके कण-कणमें तेरे चरण पड़े होंगे । यहाँकी रज पावन हो गयी है । जी चाहता है, इसमें लोट जाऊँ । मन्दाकिनी मन्द गतिसे बह रही है । इसमें तूने कई वर्षोंतक स्नान किया होगा, इसका जल पिया होगा, उसे आचमन किया होगा और यह मन्दाकिनी क्षुद्रसे पावन बन गयी । ऐसा है प्रताप तेरा ! क्या मेरे हृदयकी मन्दाकिनीमें भी अवगाहन करेगा—उसे क्षुद्रसे पावन बना देगा ? पर यह सब कब करेगा ? तेरी सदाशयता; जब चाहे तब करे, मैं तो अभी तेरी मन्दाकिनीके पवित्र जलसे अभिषिक्त हो रहा हूँ ।

कामदगिरिकी परिक्रमा । यहाँ तू कई वर्षोंतक रहा । ऊपर चढ़कर देखनेकी कोशिश करता हूँ—शायद तेरी कुटीका कुछ अवशेष दीख जाय । कदाचित् पाकड़, पीपल, जम्बू, रसाल तथा बरगदके वे पेड़ दिख जायँ, जहाँ बैठकर मुनियोंकी मण्डली तेरे सत्सङ्गका लाभ उठाती थी । अवश्य वह स्थान यहीं कहीं होगा । उन पेड़ोंका पता तो नहीं लगा; रामकुटीके भी अवशेष नहीं दीखे; पर इससे क्या ? स्थान तो वही है, जहाँ तूने निवास किया था, जहाँ तूने ऋषियोंको आश्वासन दिया था, जहाँ तूने पादुका देकर भरतजीके मनको सहलाया था । उस पावन रजको लेकर माथे लगा लिया और परिक्रमामें व्यस्त हो गया । लोगोंका कथन है कि 'कामदगिरि भक्तोंकी इच्छा पूरी करते हैं। एक इच्छा मेरी भी है । क्या वह पूरी हो जायगी ? अस्तु, उसे व्यक्त करनेमें क्या हर्ज ? मुझे प्रियतमका प्रेम चाहिये । देखो कामद ! तुमसे कहता हूँ तुमने बहुतोंकी इच्छा पूरी की है, तुम स्वामीको अपने सिरपर धारे रहे हो—इनके साक्षी रहे हो । तुम्हारी बात वे कभी नहीं टालेंगे । उनसे मेरी ओरसे निवेदन करना । मुझे आशा है, वे तुम्हारी बात अवश्य मानेंगे । यदि ऐसा कर पाये तो तुम्हें पुष्प-माल चढ़ाऊँगा ।' कामदगिरिसे प्रार्थना तो कर आया । देखो, कहाँतक सुनवाई होती है । समय बता देगा ।

और क्या कहूँ ? लंबी चढ़ाईके बाद हनुमानगढ़ीपर पहुँचा । हनुमान्जीकी पूजाके बाद आशीर्वाद देते हुए पंडा कह रहा था—'देखो हनुमान्जी ! इनकी इच्छा पूरी करना ।' वह ठीक ही तो कहता था, यहीं तो पवनपुत्रने तुलसीदासजी-की इच्छा पूरी की थी । क्या वे मेरे ऊपर भी दया करेंगे ? उनसे मैं सहमा रहता हूँ । सुना है, वे थोड़ा नीति-भङ्ग भी सहन नहीं कर सकते । मेरे जैसे अनीतिमय लोगोंके साथ उनका क्या रुख होगा, वे ही जानें । कुछ भी हो, इतना तो निश्चित है कि मेरे कार्योंसे क्षुब्ध होनेपर भी वे क्रोधित नहीं होंगे, इसीलिये कि स्वामीके गुण सेवकमें अवतरित हो ही जाते हैं । धीरे-धीरे वे भी पिघल ही जायँगे । यह विचार कर आशीर्वाद और प्रसाद ले लिया और मैं प्रणाम कर वापस आया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरतकूप वह स्थान है, जहाँ भरतजीने अनेक तीर्थोंके जल डाले थे, उसे उन्होंने राममन्त्रसे अभिषिक्त किया था और जहाँ सर्वप्रथम उन्होंने ही आचमन किया था। स्फटिक-शिला वह स्थान है, जहाँ मनोरम दृश्य है, जहाँ मन्थर गतिसे मन्दाकिनीजी बहती हैं, जहाँ चारों ओर घनघोर जंगल हैं, जहाँ झाड़ियों-झुरमुटोंकी गहनता है, जहाँ प्रस्तरपर कुछ निशान हैं, जिन्हें प्रभुके चरण-चिह्न कहा जाता है। भरतकूप तथा स्फटिकशिलाका दर्शन करके पुनः अत्रि-अनसूया-आश्रमकी ओर बढ़ चला। नंगे पाँव यात्रा हो रही थी। कंकड़-पत्थर लग रहे थे। झलके निकल आये। पर पीड़ा नहीं थी, चुभन नहीं थी; थी केवल प्रेमास्पदकी याद, जो लगातार कई वर्षोंतक इन कंकड़-पत्थरोंसे ठोकर खाते रहे। कितना कष्ट उठाया स्वामीने! काश, मैं उनके मार्गका फूल बन जाता। अत्रि-अनसूया-आश्रम है नितान्त एकान्त स्थानपर, जहाँ है अत्यन्त शान्ति। प्रभु अब भी यहाँ विराजमान हैं—देखनेके लिये आँखें चाहिये। काश, वे ऐसी आँख दे सकते। वापस लौट आया, पर दिल वहीं लगा रहा। इतिहासका क्या अन्वेषण करूँ? अन्वेषण तो तेरा करना है, जब चाहे करा दे। है यह तेरा काम—तू जाने, तुम्हारा काम जाने।

× × × ×

मानसिक शान्ति नहीं है। यह अवसाद कहाँसे घेरे रहता है? क्या मेरी अपरिमित वासनाओंके कारण हैं अथवा अतृप्त इच्छाओंके कारण? कदाचित् दमित विचार ही कष्ट दे रहे हों। वस्तुतः यह दुःख अज्ञानकी तहमें है। यदि इनके कारण ज्ञात हों तो उनका निवारण भी हो सकता है; पर कारणका ही पता नहीं है। मेरी बुद्धि तीव्र नहीं है, विवेक कुण्ठित है, विचारशक्तिका अभाव है। क्या तू मेरी सहायता करेगा? तेरा आदेश यह कि उलझे विचारोंकी विवेचना करूँ। एक सामान्य दुःख हृदयमें घर कर गया; एक रिक्तताकी अनुभूति है, रोजमर्रेका ढर्रा है। कहीं कोई परिवर्तन नहीं, उत्साहका अभाव। जीवन जैसे एक चौराहेपर आकर रुक गया हो। बुद्धि मानो तमसाच्छन्न हो गयी है। निद्रा, आलस्य तथा दीर्घसूत्रतामें मैं आकण्ठ डूब गया हूँ। विचार कहाँतक करूँ, जब विवेक ही नहीं है? विश्लेषण कैसे करूँ, जब बुद्धि ही स्थूल है! एक विसंगति जीवनको रिक्त कर रही है, मस्तिष्कको अज्ञान-के तहमें ढकेल रही है, उस अनुभूतितक पहुँचा देती है, जहाँ विचार कुण्ठित हो जाता है, सोचनेकी शक्ति मारी जाती है, विवेकका प्रश्न ही नहीं उठता। एक खालीपन, जहाँ न सुखका बोध और न दुःखका बोध; केवल जड़ता और उदासी। शक्तिके स्रोतके समाप्त हो जानेकी स्थिति। आखिर यह क्यों है? क्या यह तेरी ही इच्छा है? मैं इससे अधिक इसके तहमें नहीं पैठ सकता, अपनी निर्बल स्थितिके कारण। लोग कहते हैं, तू चाहे तो स्थिति सुधर सकती है। तू चाहता क्यों नहीं? चाहनेमें तेरे सामने कौन-सी कठिनाई है? आह! मैं तो चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता और तू इच्छामात्रसे सब कुछ कर सकता है—तथापि यह अकरुणा क्यों? क्या तेरी शक्ति सीमित है? या मेरे किसी विकर्मके कारण उदासीन हो गया है? मेरी ऐसी क्या त्रुटि है जो सुधारी नहीं जा सकती? मैंने अपना हृदय उँडेल दिया, आगे तू जाने, तेरा काम जाने।

महावीर हनुमान्!

(रचयिता—श्रीगोपीनाथजी उपाध्याय, साहित्यरत्न)

रामसे है नेह, स्वर्ण-शैलके समान देह,
ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, गुणके निधान हैं।
महाबलशाली हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी, यती,
वायुके समान वेग, शौर्यमें महान हैं।
राघवके दूत बन लंकमें निशंक गए,
सीता-सुधि लाये, कपि-यूथके प्रधान हैं।
भक्त-प्रतिपाल, क्रूर दानवोंके काल-व्याल,
अंजनीके लाल महावीर हनुमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

भगवान्‌को जीवनमें मुख्य वस्तु बनाइये !

जो हो रहा है, वह ठीक हो रहा है—यों समझकर सदा निश्चिन्त रहना चाहिये । एक क्षणके लिये भी अपना लक्ष्य नहीं भूलना चाहिये । मुझे इस जीवनमें भगवान्‌के पास पहुँचना है—अगर इस बातको कभी न भूलेंगे तो फिर अपने-आप जीवनकी सारी चेष्टाएँ भगवान्‌के लिये होने लगेंगी । वस्तुतः यहाँका कोई भी पदार्थ हमें इसीलिये साथमें रखना चाहिये कि उसके सहयोगसे भगवान्‌के मार्गमें अधिक-से-अधिक बढ़ा जा सके । जो पदार्थ हमें भगवान्‌से अलग हटाता हो, वह तो सर्वथा त्याज्य है, चाहे वह कितना ही प्रिय क्यों न हो । यह कोई पढ़-सुन लेनेकी बात नहीं है, भगवान्‌के इच्छुक भक्तोंको सचमुच इसका क्रियात्मक प्रयोग करना पड़ता है । अवश्य ही भगवान् परम दयालु हैं और वे अपने ऊपर निर्भर करनेवाले भक्तकी सब प्रकार सहायता ही करते हैं, किंतु कभी-कभी प्रेम-परीक्षाके लिये ऐसा अवसर भी मिला देते हैं, जब भक्तको एक ओर भगवान् तथा दूसरी ओर जगत्‌का प्रलोभन—इन दोनोंमेंसे किसी एक पथको चुनना पड़ता है । भगवान्‌के विश्वासी भक्त तो सारे जगत्‌का ऐश्वर्य ठुकराकर भगवान्‌को वरण करते हैं । अतः आपको भी सदा सावधान रहना चाहिये, जिससे भगवान् ही जीवनमें मुख्य वस्तु हों और उनके लिये यदि आवश्यकता हो तो सब कुछ छोड़ दिया जाय ।

जगत्‌के समर्थनकी चिन्ता न कीजिये

कलियुगका प्रभाव जैसे-जैसे बढ़ेगा, वैसे-वैसे भगवान्‌में विश्वास रखनेवालोंकी संख्या घटेगी । भगवद्-विश्वासी पुरुष मूर्ख समझे जायँगे । उन लोगोंकी सत्यमूलक चेष्टाओंका आदर होना तो दूर रहा, वरं निन्दा होगी । इसलिये 'जगत्‌के लोग मुझे क्या कहेंगे'—इस बातकी ओरसे दृष्टि कम कर लेनी चाहिये । यदि हमें कोई बात सत्य दीखे और उसका ही आचरण भगवदिच्छानुकूल प्रतीत हो तो वैसे ही करना चाहिये । जनसमुदायकी दृष्टि भी आदरणीय अवश्य है, यदि भगवदिच्छानुकूल हो; पर अपनी नीयतमें जो चेष्टा प्रभुको प्रसन्न करनेवाली जँचे, उसका समर्थन सर्वसाधारणके द्वारा न होनेपर भी उसे अवश्य करना चाहिये ।

श्रीकृष्णके प्रति आसक्ति बढ़ाइये

पाँच-पाँच मिनटपर भगवत्स्मरणकी चेष्टा करते हैं, पर भूल हो जाती है, सो इस विषयमें यह निवेदन है कि भूल होती है तो होने दें, पर चेष्टा करते ही चले जायँ । जबतक श्रीकृष्ण प्यारे नहीं लगते, तबतक भूल होगी ही । यह नियम है, सबसे प्यारी चीज भूलती ही नहीं । अभी श्रीकृष्णसे अधिक प्यारी चीज और कोई होगी, जिसके लिये श्रीकृष्णको भूल जाते हैं । श्रीकृष्णको याद करते-करते अपने-आप सब ओरका आकर्षण फीका पड़ जायगा और वे सबसे प्रिय लगने लगेंगे । फिर भूल नहीं होगी ।

भावपूर्ण पुकार सच्चे मनसे नहीं होती, यह ठीक है; पर इससे यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्णकी अभी पूरी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई है । प्यासेको पानीकी पुकारके लिये कहीं सीखने जाना नहीं पड़ता, अपने-आप पुकार होती है; क्योंकि पानी उसके लिये अत्यन्त आवश्यक वस्तु है । वैसे ही श्रीकृष्ण जिस दिन परमावश्यक वस्तु बन जायँगे, उस दिन सच्चे मनसे उनके लिये पुकार होने लगेगी । श्रीकृष्णको याद करते-करते वे अपने-आप आवश्यक बन जायँगे । फिर पुकार होगी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतके सप्ताह-पाठके समय नाम-जप कम हुआ, तो कोई बात नहीं। श्रीमद्भागवत तो भगवान्‌का स्वरूप ही है। नाम एवं पाठ दोनों ही भगवद्रूप हैं। कोई-सा हो, निरन्तर होना चाहिये। मनमें खाने-पीनेकी आसक्ति है, इससे चिन्तित मत होइये। बस, श्रीकृष्णके प्रति आसक्ति बढ़ाइये। श्रीकृष्णकी आसक्ति मोक्ष-सुखसे भी वैराग्य उत्पन्न कर देती है, खाने-पीनेकी आसक्ति तो तुच्छातितुच्छ बात है।

कृपाके लिये श्रीजीके चरणोंका चिन्तन करें

'श्रीजीकी मुझपर कृपा है, इसका अनुभव कैसे हो'—इसका उपाय आपने पूछा है। मेरी समझमें इसका सर्वोत्तम उपाय है—श्रीजीके चरणोंका निरन्तर चिन्तन। मन श्रीजीके चरणोंमें चिपककर ही श्रीजीकी कृपाका अनुभव कर सकता है। अत्यन्त प्रेमसे 'राधे-राधे' कहते हुए श्रीराधारानीके चरणोंमें मनको लीन कर दें। फिर ऐसी कृपाका अनुभव होगा कि आप निहाल हो जायँगे।

अपने भविष्यको सदा निर्मल देखो

संतोंके वचन हैं—'मालिक हैं साहेब सीताराम, सोच मन काहे को करे।' बस, निश्चिन्त रहिये। एक बहुत ऊँचे महात्माने कहा है—'अपने भविष्यको निर्मल देखो। सोचो कि प्रभु तुम्हें अवश्य मिलेंगे, चाहे तुम कितना ही अधम क्यों न होओ।' हमलोग भी ऐसा ही सोचें। सचमुच अपना भविष्य मलिन सोचना भगवान्‌की अपार दयाका अपमान करना है।

भगवान्‌के कृपामय स्पर्शकी प्रतीक्षा कीजिये

एक बात ध्यानमें रहनी चाहिये कि यदि लेशमात्र भी आकर्षण भगवान्‌के अतिरिक्त किसी और जगह होता है तो समझ लेना चाहिये, हम भगवान्‌के शरण हुए ही नहीं। वास्तविक शरणागति हो जानेपर आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाता है। किंतु घबराना नहीं चाहिये। जिस दिन साधककी यह अभिलाषा हृदयसे सम्बद्ध हो जाती है, उसी क्षण भगवान् शरणागति स्वीकार कर लेते हैं। एक बात और है। जिसपर भगवान्‌की अत्यधिक कृपा होती है, जिसे भगवान् अपने पास बुलाना चाहते हैं, वस्तुतः वही इस मार्गमें वाचिक शरणागति भी ग्रहण करता है। देखें, आपकी इच्छा पूरी भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती; किंतु यह वाचिक शरणागति एक दिन उन्हींकी दयासे सच्ची शरणागतिमें परिणत हो जायगी। आप भगवान्‌की दयाकी अलौकिकताका अंदाज नहीं लगा सकते। मानवी बुद्धि भगवान्‌की दया कैसी होती है, इसको नहीं समझ सकती। यही कारण है कि अपने माप (स्टैंडर्ड) से ही हम भगवान्‌को जाँचते हैं और दुःखी रहते हैं। अतः सब प्रकारकी चिन्ता छोड़कर उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहें, जिस दिन भगवान्‌के कृपामय स्पर्शका अनुभव करके आप कृतार्थ होनेवाले हैं।

संतके साथ शुद्ध पारमार्थिक सम्बन्ध ही रहे

जीवनका उद्देश्य यदि भगवान् हैं तो फिर किसी भी जागतिक प्रलोभनमें नहीं भूलना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने राजा मुचुकुन्दको स्वयं प्रलोभन देकर जाँचा; किंतु मुचुकुन्दने भगवान्‌की ही दयासे भगवान्‌को लिया, भोगोंको नहीं। उसी प्रकार संतके साथ सर्वथा शुद्ध पारमार्थिक सम्बन्ध ही रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतितपावनी श्रीगङ्गाजी

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः ।'

'भगवान् श्रीनारायणसे प्रकट हुई विश्वरूपिणी गङ्गाजीको बारंबार नमस्कार है ।*'—महर्षि व्यास ।

बृहन्नारदीय पुराणके गङ्गा-माहात्म्यमें एक कथा आती है । राजर्षि भगीरथके वंशमें सुदास नामक एक नरेश थे । समस्त धर्मोंके ज्ञाता एवं पवित्र मनवाले राजा मित्रसह सुदासके पुत्र थे । मित्रसह अपनी प्रजाके पालनमें सदा तत्पर रहते थे । प्रजा उनके शासनमें प्रत्येक दृष्टिसे सुखी थी ।

एक बारकी बात है । सौदास (राजा मित्रसह) अपने सैनिकोंके साथ आखेटके लिये वनमें गये । तृषाधिक्यसे वे रेवाके तटपर पहुँचे और मन्त्रियोंके साथ स्नान तथा भोजनादिसे निवृत्त हो उन्होंने वहीं रात्रि व्यतीत की ।

दूसरे दिन नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वे अपने मन्त्रियोंके साथ नर्मदातटवर्ती वनमें जानेके विचारसे इधर-उधर घूम रहे थे कि संयोगवश एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करते समय वे अपने सैनिकों एवं सचिवोंसे बिछुड़ गये । वहाँ उन्होंने एक कृष्णसार मृग देखा । राजा मित्रसहने धनुषकी प्रत्यञ्चापर तीक्ष्ण शर रक्खा और उसे कानोंतक खींचकर उस मृगके पीछे दौड़ पड़े । अश्वारूढ़ नरेशने कुछ आगे जाकर गुफामें मैथुनरत व्याघ्र-दम्पतिको देखा । उन्होंने मृगकी चिन्ता छोड़ उक्त शर व्याघ्रीपर छोड़ दिया । व्याघ्रीके चीत्कारसे सम्पूर्ण वन-प्रान्त गूँज उठा ।

उस समय एक आश्चर्यजनक घटना हुई । उक्त व्याघ्रीने भयानक राक्षसीका रूप प्रकट किया और वह छटपटाकर मृत्यु-मुखमें चली गयी ।

'मैं तुमसे बदला लूँगा ।' दुःखके आवेग एवं द्वेषाग्निमें जलते हुए उसके राक्षस पतिने कहा और वह वहीं अदृश्य हो गया ।

राजा मित्रसह भयाक्रान्त हो गये । सैन्य-शिविरमें लौटकर वे मन्त्रियों तथा सैनिकोंसहित अपनी राजधानीको लौट आये और फिर उन्होंने आखेट खेलना ही बंद कर दिया ।

बहुत दिनों बाद धर्मपरायण नरेश मित्रसहने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके साथ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया । यज्ञ सविधि सम्पन्न होनेपर महर्षि वसिष्ठ यज्ञ-मण्डपसे बाहर चले गये और राजा मित्रसह भी अवभृथ स्नान कर वहाँसे चले आये ।

'मैं मांस खाना चाहता हूँ ।' उसी समय प्रतिहिंसाकी ज्वालामें झुलसते हुए उक्त राक्षसने महर्षि वसिष्ठके रूपमें राजाके समीप पहुँचकर कहा । इतना ही नहीं, उस द्वेषी राक्षसने रसोइयेके वेषमें मनुष्यका मांस बनाया और राजाको दे दिया ।

महर्षि वसिष्ठके लौटनेपर धर्मात्मा नरेशने वह मांस सुवर्ण-पात्रमें अत्यन्त आदरपूर्वक उनके सम्मुख उपस्थित किया ।

'मूर्ख नरेश !' कुछ देरतक विचार करनेके अनन्तर नर-मांसका विश्वास होते ही क्रुद्ध होकर वसिष्ठजीने कहा—'तूने मुझे राक्षसोंका भोजन दिया है, अतएव तू इसे खानेवाला राक्षस हो जा ।'

'महाराज ! इसके लिये तो आपने ही आज्ञा प्रदान की थी ।' भय-विह्वल नरेशके उत्तरसे वसिष्ठजीने दिव्य दृष्टिसे देखा तो उन्हें राक्षसका छल विदित हुआ ।

'आपने मुझ निरपराधको कठोर दण्ड दिया है ।' मित्रसह नरेशने दुःखावेशमें वसिष्ठजीको शाप देनेके लिये हाथमें जल उठा लिया ।

'धर्मपरायण क्षत्रियनरेश ! क्रोध शान्त कीजिये ।' उसी क्षण मित्रसहकी साध्वी पत्नीने अपने पतिको रोकते हुए निवेदन किया 'आपको अपने अपकर्मका प्राप्तव्य फल ही प्राप्त हुआ है । अब आप गुरुको शाप न दें, यह भयानक पाप होगा ।'

'यह शापार्थ जल कहाँ फेंकूँ ?' सहधर्मिणीके सत्परामर्शका सम्मान करते हुए राजाने कुछ देरतक विचार किया और फिर वह जल अपने पैरोंपर छोड़ दिया । उस जलके पड़ते

* यह गङ्गाजीका मूल मन्त्र है । इसे साक्षात् श्रीहरिने बतलाया है । इसका एक बार भी जप करके मनुष्य पवित्र हो जाता तथा श्रीविष्णुके श्रीविग्रहमें प्रतिष्ठित होता है । (प० पु०, स० खं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उनके पैर चितकबरे हो गये। उसी क्षणसे वे राजा कल्माषपादके नामसे प्रख्यात हुए।

'भगवन्!' कल्माषपादने हाथ जोड़कर अत्यन्त आर्तस्वरमें गुरु वसिष्ठजीसे निवेदन किया—'आप कृपापूर्वक मेरे सारे अपराध क्षमा करनेका अनुग्रह करें।'

'राजन्!' पश्चात्ताप करते हुए दुःखी मनसे वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'तुम तो सर्वथा निर्दोष थे। मैंने ही विवेक खो दिया। यदि तुम मुझे शाप दे देते तो अच्छा ही करते। किंतु तुम्हें यह शाप केवल बारह वर्षतक ही लगेगा। इसके अनन्तर तुम परब्रह्मस्वरूपिणी गङ्गाजलकी बूँद पड़ते ही राक्षसी कायासे मुक्त होकर पुनः पूर्ववत् पृथ्वीका उपभोग करोगे।'

तद्बिन्दुसेकसम्भूतज्ञानेन गतकल्मषः।
हरिसेवापरो भूत्वा परां शान्तिं गमिष्यसि॥
(बृहन्नारदीय पु०, गङ्गा-माहा० २। ४५)

'गङ्गाजलके अभिषेकसे तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा, तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जायँगे और तुम हरि-सेवा कर परम शान्ति प्राप्त करोगे।'

इतना कहकर महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हुए और राजा कल्माषपादकी भयानक काली आकृति हो गयी। वे निर्जन वनमें जाकर अत्यन्त क्षुधा-पिपासासे व्याकुल होकर निर्ममतासे मृग, मनुष्य, सर्प और बड़े-बड़े बंदरोंको पकड़-पकड़कर खाने लगे। छः महीनेमें उक्त वनके समस्त प्राणियोंको खाकर वे दूसरे वनमें जाकर मनुष्योंका मांस खाने लगे।

इस प्रकार वे नर्मदाके तटपर पहुँचे, जहाँ ऋषियों एवं सिद्ध पुरुषोंके आश्रम थे। वहाँ राक्षसके रूपमें राजा कल्माषपादने अपनी प्रियतमाके साथ अङ्ग-सङ्ग करते हुए एक मुनिको देखा। क्रोधोन्मत्त राक्षसने तुरंत उक्त मुनिको पकड़ लिया।

'राजन्! आप राक्षस नहीं हैं, आप सूर्यवंशोत्पन्न नरश्रेष्ठ मित्रसह हैं।' अत्यन्त भयभीत होकर ब्राह्मणी (मुनि-पत्नी) ने विनयपूर्वक निवेदन किया। 'आप निष्ठुर कर्म न करें। मुझे वैधव्य न प्रदान करें। स्त्रीके लिये वैधव्यसे बड़ी विपत्ति और कुछ नहीं है। मैं माता-पिता एवं भाईसे रहित, छोटे बच्चेकी माँ हूँ। आप मुझपर और इस अनाथ शिशुपर दया करें।'

'राक्षस! तूने रतिमें आसक्त मेरे प्राणपतिको मार डाला।' ब्राह्मणी राक्षसके चरणोंपर गिर पड़ी थी; किंतु फिर भी निर्दय राक्षसने उसके पतिको आत्मसात् कर लिया। तब उसने कुपित होकर उसे शाप दे दिया, 'अतएव तू भी स्त्री-प्रसङ्गके अवसरपर कालके गालमें चला जायगा।'

ब्राह्मणीने एक और शाप दिया—'तुमने मेरे जीवन-सर्वस्वको खा लिया है, अतएव तेरा राक्षसत्व भी अविचल रहेगा।'

'दुष्टे! मैंने एक ही अपराध किया था, किंतु तूने मुझे दो शाप दे दिये?' राक्षस (कल्माषपाद) ने क्रोधोन्मत्त होकर कहा—'अतः तू भी अपने पुत्रसहित राक्षस हो जा।'

उक्त शापके प्रभावसे ब्राह्मणी भी अपने पुत्रसहित राक्षसी हो गयी। वह पुत्रके साथ राक्षसी क्षुधासे व्याकुल होकर रोने लगी।

इस प्रकार शापोपहत वह राक्षस तथा सपुत्र राक्षसी क्षुधाकी ज्वालासे कष्ट पाते हुए पवित्र नर्मदाके तटपर स्थित एक बरगदके वृक्षके पास पहुँचे। उक्त वृक्षपर गुरुकी उपेक्षाके कारण एक राक्षस आसुरी शरीर प्राप्तकर कष्ट पाता हुआ निवास करता था।

'भयानक राक्षसो! तुम यहाँ क्यों आये? राक्षसत्रयको देखते ही उक्त वटवृक्षनिवासी राक्षसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूछा। 'तुमलोगोंने कौन-सा भयानक पाप किया था, जिसके कारण तुम्हारी यह दुर्दशा हो रही है?'

'आप भी कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये कि आप कौन हैं।' सुदास-पुत्र मित्रसहने अपने तथा ब्राह्मणीके अपराधोंको बतलाते हुए उससे पूछा। 'आपको यह दुर्गति क्यों भोगनी पड़ी है?'

'मैं पूर्वजन्ममें मगधवासी वेदज्ञ ब्राह्मण था।' ब्रह्मराक्षसने उत्तर दिया। 'मेरा नाम सोमदत्त था। एक बारकी बात है, मैं आशुतोष शिवकी पूजा कर रहा था। उसी समय मेरे गुरुजी आ गये। शिव-पूजामें संलग्न होनेके कारण मैंने उन्हें प्रणाम नहीं किया। मेरे द्वारा मन्त्रशास्त्रोक्त कार्य किये जानेपर मेरे अत्यन्त बुद्धिमान् और तेजस्वी गुरु प्रसन्न हुए; किंतु जगद्गुरु भगवान् शंकरने गुरुकी अवज्ञाके कारण क्रुद्ध होकर मुझे राक्षस बना दिया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त दुःखी राक्षसने आगे कहा—'मैंने अबतक सहस्रों ब्राह्मणोंको खा लिया है; किंतु क्षुधा-तृषाकी ज्वालासे निरन्तर छटपटाता ही रहता हूँ । भगवान् शंकरके इस दुस्सह शापसे पता नहीं, कब त्राण प्राप्त हो ?'

'हमारा भोजन आ गया ।' सहसा राक्षस और पिशाची एक ब्राह्मणको अपनी ओर आते देखकर दौड़ पड़े । ब्राह्मण देवता कलिङ्गदेशके निवासी थे । गर्ग नाम था उनका । उन्होंने अपने कंधेपर गङ्गाजल ले रखा था और वे मन-ही-मन विश्वाधार प्रभुका ध्यान करते हुए उनके मङ्गल नामका कीर्तन कर रहे थे । श्रीभगवन्नाम-कीर्तनके प्रभावसे राक्षस और पिशाची उक्त ब्राह्मणके समीप नहीं पहुँच सके ।

''महाभाग्यशाली ब्राह्मण ! आपके चरणोंमें हमलोग प्रणाम करते हैं ।'' राक्षसने उनसे विनयपूर्वक कहा । 'आजतक हमने सहस्रों, लाखों ब्राह्मणोंको खा डाला है, पर—

नामप्रावरणं विप्र रक्षति त्वां महाभयात् ।
नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् ॥
परां शान्तिं समापन्ना महिम्ना ह्यच्युतस्य वै ।
(बृहन्ना०, गङ्गा-माहा० ३ । ६४-६५)

'हे ब्राह्मण ! यह भगवन्नामका दुर्ग तुम्हारी महाभयसे रक्षा कर रहा है । हम सब यद्यपि राक्षस हैं, फिर भी भगवान्‌के नाम-श्रवणसे हमें भी परम शान्ति अनुभव हो रही है । अहो ! भगवान् अच्युतकी महिमा अपार है ।'

राक्षसने आगे कहा—'आप गङ्गाजलसे अभिषेक कर हमें पापोंसे बचाइये ।'

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम ॥
तानि सर्वाणि गङ्गायाः कणस्यापि समानि न ।
तुलसीदलसम्मिश्रमपि सर्षपमात्रकम् ॥
गङ्गाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् ।
(बृहन्ना० गङ्गामाहा० ३ । ७०—७२)

'हे द्विजोत्तम ! इस पृथ्वीतलपर जितने भी तीर्थ हैं, वे सब गङ्गाके कणमात्रकी भी समानता नहीं कर सकते । तुलसीदल पड़ा हुआ सरसोंके बराबर भी गङ्गाजल इक्कीस पीढ़ियोंको तारनेवाला है ।'

'अतएव दयामय ब्रह्मण्यदेव ! गङ्गा-जलका दान कर इम पातकियोंका उद्धार कीजिये ।'

राक्षसोंके मुखसे निर्वाणजननी गङ्गाजीकी महिमा सुनकर दयालु ब्राह्मणने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक तुलसी-दल-मिश्रित गङ्गाजल उनके ऊपर फेंका । भुवनपावन गङ्गाजलका तनिक-सा छींटा पड़ते ही पुत्रसमेत ब्राह्मणी और सोमदत्तका राक्षस-स्वभाव नष्ट हो गया और वे तेजस्वी देवस्वरूप हो गये । लक्ष्मीपति श्रीविष्णुकी भाँति उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे । उन्होंने अपने उद्धारक ब्राह्मणकी स्तुति की और परम पावन विष्णुलोकको चले गये ।

उन राक्षसोंको शापमुक्त देखते हुए राजा कल्माषपाद वहीं दुःखी मनसे खड़े थे । तब आकाशवाणी हुई—राजन् ! दुःख और शोक त्याग दो । कर्मभोगके अनन्तर तुम्हारी भी मुक्ति हो जायगी ।'

राजा मित्रसहको संतोष हुआ । उन्होंने कलिङ्गदेशीय ब्राह्मण (गर्ग) को अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, तदनन्तर अविमुक्तक्षेत्र वाराणसी-पुरीको लौट आये । वहाँ उन्होंने श्रद्धापूर्वक छः मासतक गङ्गास्नान एवं काशी विश्वेश्वरका दर्शन किया । इसके फलस्वरूप वे भी ब्राह्मणीके शापसे मुक्त हो गये ।

राजा कल्माषपाद अपनी राजधानीको लौटे । प्रजा अत्यन्त प्रसन्न हुई । महर्षि वसिष्ठने उनका राज्याभिषेक किया और वे पूर्ववत् धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करने लगे । वे स्त्री-समागमसे वञ्चित रहे, किंतु महर्षि वसिष्ठके अनुग्रहसे उन्हें संतान भी प्राप्त हो गयी और अन्ततः वे आवागमनसे मुक्त हो गये ।

पतितपावनी गङ्गाकी महिमा अपार है । इनका गुणानुवाद लोकस्रष्टा, भगवान् शंकर एवं विष्णुने ही नहीं, प्रायः समस्त देवताओंने किया है । ऋषियों, तपस्वियों एवं भक्तजनोंकी तो ये प्राणाधार हैं । स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें देवाधिदेव महादेवने गद्गद कण्ठसे गङ्गा-माहात्म्यका गान किया है । वहाँ नीलकण्ठ भगवान् शंकर त्रैलोक्यपति विष्णुसे कहते हैं—

'विष्णो ! जो गङ्गाजीका सेवन करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, सब यज्ञोंकी दीक्षा ले ली और सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया । कलियुगमें कलुषित चित्तवाले, परधन-लोभी तथा विधिहीन कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है । जो दूर रहकर भी गङ्गाजीके माहात्म्यको जानता है और भगवान् गोविन्दमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति रखता है, वह अयोग्य हो तो भी गङ्गा उसपर प्रसन्न होती हैं। गङ्गा सम्पूर्ण दोषोंको जलानेवाली तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है।

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनो हि यथा दहेत्।
अनिच्छयापि संस्नाता गङ्गा पापं तथा दहेत्॥
(स्क० पु०, काशी० पू० २७। ४९)

'जैसे बिना इच्छाके भी स्पर्श किये जानेपर आग जला देती है, उसी प्रकार अनिच्छासे भी अपने जलमें स्नान करनेवाले मनुष्यके पापोंको गङ्गा भस्म कर देती है।' क्लेशनाशिनी गङ्गास्मरण, चिन्तन एवं भजन करनेवालेको भुक्ति और मुक्ति प्रदान करती हैं।

गच्छंस्तिष्ठञ्जपन् ध्यायन् भुञ्जञ्जाग्रत् स्वपन् वदन्।
यः स्मरेत् सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। ३७)

'जो चलते, खड़े होते, जप और ध्यान करते, खाते-पीते, जागते-सोते तथा बात करते समय भी सदा गङ्गाजीका स्मरण करता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।' इतना ही नहीं—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(प० पु०, सृ० ६०। ७८)

''जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा' कहता है; वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है।''

पापप्रशमनी गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे पाप-ताप शान्त हो जाते हैं। पितृगण अपने वंशजोंसे कामना करते रहते हैं कि वे गङ्गामें स्नान कर उक्त लोकपावन जलसे हमारा तर्पण करें। पापी-से-पापी जीव भी गङ्गाजलसे तर्पण किये जानेपर तृप्त हो जाते हैं। महर्षि व्यास भक्तस्वर्गापवर्गदा गङ्गाजीका गुणगान करते हुए कहते हैं—

गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम्॥
स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा।
तथा गङ्गाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात्॥
(प० पु०, सृ० ६०। ५-७)

'गङ्गाजीके नामका स्मरण करनेमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजीमें स्नान, जलपान और पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूई और सूखे तिनके क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजी अपने जलका स्पर्श होनेपर मनुष्योंके सारे पाप एक ही क्षणमें दग्ध कर देती हैं।'

बृहन्नारदीयपुराणमें भी कहा गया है—

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात्।
पुमान् पुनाति पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥
(बृह०, गङ्गा० ५। ३

''गङ्गाके दर्शन, स्पर्श तथा गङ्गा-नाम-कीर्तनसे पुरुष अपने सैकड़ों-सहस्रों पूर्व पुरुषोंको तारता है।''

मुहुर्मुहुस्तथा पश्येत्स्पृशेद्वापि मुहुर्मुहुः।
भक्त्या यदिच्छति नरः शाश्वतं पदमव्ययम्॥
× × ×
यत्फलं जायते पुंसां दर्शने परमात्मनः।
तद्भवेदेव गङ्गाया दर्शनाद्भक्तिभावतः॥
× × ×
योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः॥
अपि दुष्कृतकर्मा हि लभते परमां गतिम्।
स्मरणादेव गङ्गायाः पापसंघातपञ्जरम्॥
भेदं सहस्रधा याति गिरिर्वज्रहतो यथा।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्ध्यायञ्जाग्रद्भुञ्जन्हसन् रुदन्॥
यः स्मरेत् सततं गङ्गां स च मुच्येत बन्धनात्।
(बृहन्ना०, गङ्गा० ५। ७, ९, १२-१५)
× × ×

'जो मनुष्य शाश्वत पद प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, वह बारंबार गङ्गाका दर्शन करे तथा बारंबार स्पर्श करे।... मनुष्योंको परमात्माके दर्शनसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य भक्ति-भावनासे गङ्गाके दर्शनमात्रसे प्राप्त होता है।... सहस्रों योजनोंके अन्तरपर रहकर भी जो मनुष्य गङ्गाका स्मरण करता है, वह दुष्कर्मी होनेपर भी परमगति प्राप्त करता है। गङ्गाके स्मरणमात्रसे पापसमूहोंका पंजर सहस्र टुकड़ोंमें इस प्रकार टूटकर नष्ट हो जाता है, जैसे वज्रसे आहत होकर पर्वत। चलते, बैठते, सोते, जागते, भोजन करते, हँसते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोते समय जो निरन्तर गङ्गाका स्मरण करते हैं, वे बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।'

स्वार्थपूर्ण संसारमें स्वार्थपूर्तिके अनन्तर मनुष्य एक-दूसरेको त्याग देते हैं, किंतु जगन्माता गङ्गा एक बार अपना लेनेपर सदाके लिये अपना बना लेती हैं, जीवको आवागमनके असह्य दुःखोंसे त्राण दिला देती हैं। वे त्याग करना जानतीं ही नहीं।

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणान्।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत्॥

(प० पु०, सृ० ६० । २६)

'पुत्र पिताको, पत्नी प्रियतमको, सम्बन्धी अपने सम्बन्धीको तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी अपने प्रिय बन्धुको छोड़ देते हैं; किंतु गङ्गाजी उनका परित्याग नहीं करतीं।'

कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित्॥
गङ्गाम्भःकणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि।
पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः॥

(बृह०, गङ्गामा०, ४ । १९–२२)

'सत्ययुगमें सभी तीर्थ महत्त्वशाली थे, त्रेतामें पुष्कर-क्षेत्रका माहात्म्य अधिक था, द्वापरमें कुरुक्षेत्र महत्त्वपूर्ण माना गया है, *कलियुगमें गङ्गाका विशेष महत्त्व है। इसका कारण यह है कि कलियुगमें अन्य सभी तीर्थ स्वभावतः अपने महत्त्व एवं पराक्रमको गङ्गामें छोड़ देते हैं, किंतु ये गङ्गा अपने तेजको कहीं नहीं छोड़तीं। गङ्गाके परम पुनीत जल-कणसे युक्त वायुके स्पर्शमात्रसे ही पापी मनुष्य भी परम गति प्राप्त करते हैं। जो ये सर्वान्तर्यामी चित्स्वरूप भगवान् विष्णु हैं, वे ही द्रवरूपसे गङ्गाके परम पुनीत जल हैं, इसमें संशय नहीं है।'

धर्मकामार्थमोक्षप्रदा गङ्गाजीका एक नाम 'विष्णुपदी' है। ये पाप-ताप-निवारिणी परमपावनी जगन्माता विराट् विष्णुके महिमामय चरण-कमलोंसे प्रकट हुई थीं। यह कल्याणमयी कथा श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

महर्षि कश्यपकी दो (दक्ष-पुत्रियाँ) पत्नियाँ थीं—दिति और अदिति। दिति दैत्य-जननी और अदिति देवताओंकी माता थीं। दोनोंकी संतानें एक-दूसरेको पराजित करनेके लिये सचिन्त रहती थीं। देवता दैत्योंके छोटे भाई थे। दितिके पुत्रोंमें सर्वप्रथम हिरण्यकशिपु नामक महाबली दैत्य हुआ। उसके पुत्र दैत्योंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीहरिके भक्त प्रह्लाद हुए। प्रह्लादके पुत्रका नाम था—विरोचन। वे ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त थे। उनके अमित-तेजस्वी एवं परम पराक्रमी पुत्रका नाम था—बलि। बलि दैत्य-सेनाके अधिपति हुए। उन्होंने सम्पूर्ण भूमण्डलको अपने अधिकारमें कर लिया। फिर स्वर्गपर चढ़ दौड़े। दैत्यों और देवताओंमें आठ सहस्र वर्षोंतक भयानक संग्राम होता रहा। अन्ततः देवगण पराजित हुए और स्वर्ग त्यागकर भाग गये तथा मनुष्यके वेषमें पृथ्वीपर यत्र-तत्र निर्वाह करने लगे। परम पराक्रमी दैत्यराज बलि सर्वलोकमहेश्वर श्रीविष्णुकी चरण-शरण ग्रहण कर त्रैलोक्यका शासन करते हुए ब्राह्मणोंद्वारा देवताओंकी तुष्टिके लिये दिये गये समस्त यज्ञोंका हविष्य भी ग्रहण करने लगे।

इस कारण अत्यन्त दुःखी होकर देवमाता अदिति हिमालयमें जाकर श्रीहरिका ध्यान करती हुई अत्यन्त कठोर तप करने लगीं। उन्हें अनेकों दिव्य वर्षोंतक दुस्साध्य तपश्चरण करते देख मायावी दैत्योंने अनेक विघ्न उपस्थित किये, पर उनका कोई वश नहीं चला। माता अदिति अविचलित रहीं। अन्ततः भगवान् श्रीहरि उनके सामने प्रकट हुए।

'मैं तुम्हारी तपश्चर्या एवं आराधनासे प्रसन्न हूँ।' श्रीहरिने अपने कर-कमलोंसे माता अदितिको स्पर्शकर कहा। 'तुम निर्भय होकर वरकी याचना करो। तुम्हारा कल्याण निश्चित है।'

'सर्वव्यापक, देव-देवाधीश जनार्दन!' गद्गद कण्ठसे स्तुति करनेके अनन्तर महिमामयी महर्षि कश्यपकी प्राणवल्लभा अदितिने निवेदन किया—'मेरे पुत्र दैत्योंसे पीड़ित हैं। मैं दैत्योंका वध नहीं चाहती, वे भी मेरे पुत्र हैं। उनका

* ऋग्वेदके अष्टम मण्डलमें आता है—'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'। इसकी व्याख्या निरुक्तभाष्यमें इस प्रकार की गयी है—'गमयति वा प्राणिनो विशिष्टस्थानमिति गङ्गा'—अर्थात् गङ्गा प्राणियोंको विशिष्ट स्थानमें पहुँचाती हैं, इसलिये इन्होंने गङ्गा-नाम पाया है। ऐसे उत्कृष्ट प्रमाणोंसे कलियुगमें गङ्गाका महत्त्व सिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संहार किये बिना आप मेरे पुत्रोंको राज्य-लक्ष्मी प्रदान कीजिये ।'

'सौतके पुत्रोंके प्रति तुम्हारी वत्सलता देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।' श्रीहरिने मधुर वाणीमें उत्तर दिया । 'जो अपने पुत्रोंके समान अन्यके पुत्रोंके साथ व्यवहार करता है, उसे पुत्र-शोक नहीं होता—यह सनातन धर्म है ।* मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा । मेरा भक्त मुझे धारण करनेमें सदा समर्थ होता है । तुम निर्भय रहना ।'

इतना कहकर दयानिधान प्रभुने माता अदितिको अपने कण्ठकी माला प्रदान की और वहीं अन्तर्हित हो गये । दक्ष-नन्दिनी देवमाता अदिति भी श्रीभगवान्के त्रिभुवनसुन्दर स्वरूपका स्मरण करती हुई अपने स्थानपर लौटीं ।

अन्ततः परम मङ्गलमय अवसर उपस्थित हुआ । भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन चन्द्रमा श्रवण नक्षत्रपर थे । अभिजित् मुहूर्त चल रहा था । धरती, आकाश, तारागण, नक्षत्र एवं पवनादि सभी मङ्गलरूप एवं आह्लाद-जनक थे उसी समय परम भाग्यशालिनी देवमाता अदितिके सम्मुख वामन रूपमें पीतकौशेयवासा, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी नीलघन प्रकट हुए ।

हर्ष-विह्वल हो अत्यन्त श्रद्धापूर्ण हृदयसे महर्षि कश्यपने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उन मुनि-जन-वन्दित त्रैलोक्यनाथकी स्तुति करने लगे ।

'सुरवन्दित ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो ।' भगवान् वामनने अपने माता-पितासे कहा । 'मैं पिछले दो जन्मोंमें भी तुम दोनोंका पुत्र हुआ था । उसी प्रकार इस जन्ममें भी तुम दोनोंको प्रत्येक रीतिसे सुख प्रदान करूँगा ।'

उसी समय विरोचन-पुत्र बलिने शुक्राचार्य एवं ऋषियोंके सहयोगसे सत्र नामक महान् यज्ञ प्रारम्भ किया । उस यज्ञमें ब्रह्मवादी ऋषियोंने हवि ग्रहण करनेके लिये लक्ष्मीसहित श्रीविष्णुका आवाहन किया । भक्तवत्सल वामनभगवान् अपने माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर उक्त यज्ञमें पहुँचे । ज्ञानी ऋषियोंने तत्काल उठकर उन परम प्रभु वामनका सादर अभिनन्दन किया ।

'प्रिय दैत्यराज !' दैत्यगुरु शुक्राचार्यने एकान्तमें बलिसे धीरेसे कहा—'ये वामन साक्षात् विष्णु हैं । तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीका हरण करने आये हैं । सावधान रहना ।'

'गुरो !' बलिने अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर दिया—'इसमें सावधान क्या होना है । दरिद्रावस्थामें अत्यल्प वस्तु भी जिन विष्णुको अर्पित करनेपर अक्षय हो जाती है, वे विष्णु साक्षात् मेरे यज्ञ-मण्डपमें पधारें—इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा ? उन्हींके प्रसन्नतार्थ तो मैंने इस यज्ञका अनुष्ठान किया है ।'

उसी समय अमिततेजस्वी वामनभगवान्ने यज्ञकी प्रज्वलित अग्निसे सुशोभित यज्ञ-मण्डपमें पदार्पण किया । उनका दर्शन करते ही भाग्यवान् बलिने हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया, श्रद्धापूर्वक प्रभुके देव-दुर्लभ चरण पखारे और वह पावनतम जल सपरिवार सिरपर धारण किया । इसके अनन्तर गद्गद वाणीसे स्तुति करते हुए परम सौभाग्यशाली प्रह्लाद-पौत्रने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'आज मेरा जन्म, जीवन और यह यज्ञानुष्ठान सफल हो गया । मैं निस्संदेह कृतार्थ हो गया ।'

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।
तस्मात्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥
त्वदाज्ञया त्वन्नियोगं साधयामीति मन्मनः ।
अत्युत्साहसमायुक्तं समाज्ञापय मां प्रभो ॥

(बृहन्ना० गङ्गोत्पत्ति० ३ । ४६-४७)

'मैं निस्संदेह कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया । इसलिये आपको बार-बार नमस्कार है, नमस्कार है । मेरे मनमें यही भावना है कि आपके आज्ञानुसार ही मैं आपका कार्य करूँ । प्रभो ! अत्यन्त उत्साहित देखकर मुझे निस्संकोच आज्ञा दीजिये ।'

'तपश्चरणके लिये मुझे तीन पग भूमिका दान कर दीजिये ।' यज्ञमें दीक्षित बलिके आनन्दोल्लासपूर्ण वचन सुनकर निखिलपावन भगवान् वामनने अपनी इच्छा व्यक्त कर दी ।

'मेरे वैभवपूर्ण इतने विशाल साम्राज्यके रहते आप यह क्या माँगते हैं ?' बलिने साश्चर्य निवेदन किया । 'राज्य, नगर और अमित धन-रत्नादि माँगिये ।'

'[illegible] दैत्यराज !' सर्वथा निर्विकार परमप्रभु

* स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।
न तस्य पुत्रशोकः स्यादेष धर्मः सनातनः ॥

(बृहन्ना० [illegible] ३ । ४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामनने कहा—'यह सब कुछ मुझमें है । मुझे तो तप करनेके लिये केवल तीन पग भूमि दे दो ।'

भक्ताग्रगण्य प्रह्लादके पौत्र बलिने पृथ्वी-दानके लिये जलपूर्ण कलश हाथमें लिया । दैत्य-गुरु शुक्राचार्यने कलशकी जलधाराका अवरोध किया तो सर्वान्तर्यामी भगवान् वामनने उक्त कलशके छिद्रमें कुशाग्र प्रविष्ट कर दिया ।

शुक्राचार्यका एक नेत्र नष्ट हो गया ।

'शस्त्रतुल्य कुशाग्रकी तीक्ष्णता एवं इसका प्रभाव तो देखो ।' शुक्राचार्य इतना कह ही रहे थे कि बलिने भगवान् वामनको पृथ्वी दान कर दी ।

सर्वात्मा प्रभुने विराट् रूप धारण किया । उन विश्वात्मा श्रीविष्णुने अपने एक पगसे बलिकी सारी पृथ्वी नाप ली, शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाएँ घेर लीं, दूसरे पगसे उन्होंने स्वर्गको भी नाप लिया । भगवान्द्वारा उठाया हुआ दूसरा चरण महर्लोक, जनलोक और तपलोकसे भी ऊपर सत्यलोकमें पहुँच गया । उसके दर्शन कर देवगण सर्वपापतापहारी करुणामय प्रभुकी स्तुति करने लगे । कमलोद्भवने स्वयं विश्वरूप भगवान्के ऊपर उठे हुए चरणका अपने कमण्डलुके जलसे अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रक्षालन किया और पूजन किया । उसके अनन्तर विह्वल कण्ठसे परम प्रभु विष्णुकी स्तुति की ।

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥
(श्रीमद्भा० ८ । २१ । ४)

'परीक्षित् ! ब्रह्माके कमण्डलुका वही जल विश्वरूप भगवान्के पाँव पखारनेसे पवित्र होनेके कारण उन गङ्गाजीके रूपमें परिणत हो गया, जो आकाशमार्गसे पृथ्वीपर गिरकर तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं । ये गङ्गाजी क्या हैं, भगवान्की मूर्तिमान् उज्ज्वल कीर्ति ।'

भुवनपावन श्रीविष्णुके चरण धोनेके कारण आनन्दामृतस्वरूपा गङ्गाजी* 'विष्णुपदी' नामसे प्रसिद्ध हुईं ।

× × ×

ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृतिखण्ड और देवीभागवतके नवम स्कन्धमें परब्रह्मस्वरूपिणी विष्णुपदीके आविर्भावकी एक और बड़ी सुन्दर कथा है । आनन्दामृतस्वरूपा गङ्गाजीके पवित्रतम प्राकट्यका यह मनोहर वृत्तान्त भगवान् श्रीनारायणने अपने मङ्गलमय मुखारविन्दसे देवर्षि नारदको सुनाया था । उक्त पापप्रशमनी कथाका संक्षेप इस प्रकार है—

एक बारकी बात है । गोलोकमें कार्तिकी पूर्णिमाके दिन राधा-महोत्सव हर्षोल्लासपूर्वक मनाया जा रहा था । आनन्दघन श्रीकृष्ण राधाकी सविधि पूजा कर रासमण्डलमें विराजित थे । ब्रह्मादि देवगण तथा शौनकादि ऋषि अचिन्त्य-शक्ति-सम्पन्न राधाका पूजन कर वहीं विराजमान हो गये । उसी समय वीणापाणि सरस्वती वीणाकी मधुर स्वर लहरी पर गीत गाने लगीं । भगवती भारती का भुवनपावन अत्यन्त श्रुति-मधुर संगीत सुन लोकपितामह ब्रह्मा, देवाधिदेव महादेव, भगवान् श्रीकृष्ण, सर्वसार-समन्विता राधा, भगवान् नारायण, लक्ष्मी तथा अग्नि और पवनदेवने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें क्रमशः सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हार, दुर्लभ उत्तम मणि, कौस्तुभमणि, रत्नमय अनुपम हार, सुन्दर पुष्पमाला और बहुमूल्य रत्नोंके दो कुण्डल, चिन्मय वस्त्र और मणिमय नूपुर अर्पित किये । भगवती मूल प्रकृति† ने उनके अन्तःकरणमें अत्यन्त दुर्लभ परमात्म-भक्ति उत्पन्न कर दी और धर्मने देवी सरस्वतीको धार्मिक बुद्धि और प्रपञ्चात्मक जगत्में स्थिर कीर्ति प्रदान की ।

उसी समय लोकस्रष्टाकी प्रेरणासे पार्वतीवल्लभ भगवान् शंकर अत्यन्त मधुर स्वरसे रसोल्लासपूर्ण श्रीकृष्णसम्बन्धी सरस पदका गान करने लगे । उसे सुनकर देववर्ग मूर्च्छित-सा हो गया । बड़ी कठिनाईसे जब उनकी चेतना लौटी, तब वहाँ राधाकृष्णके स्थानपर सम्पूर्ण रासमण्डलमें फैला हुआ जल-ही-जल दीखा । अपने प्राणधन राधाकृष्णके अदर्शनसे गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण—सभी आर्तस्वरसे विलाप करते हुए प्रार्थना करने लगे—'प्रभो ! आप अपनी श्रीमूर्तिके हमें पुनः दर्शन करा दें ।'

* ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि 'विराट् प्रभुके उठाये हुए चरण-अङ्गुष्ठद्वारा स्पर्श होते ही ब्रह्माण्ड विदीर्ण होकर दो भागोंमें विभक्त हो गया और विष्णुभगवान्के चरणको प्रक्षालित करता हुआ लोकपावनकारी कारणार्णवका जल अनेक धाराओंमें बाहर बह निकला और ब्रह्मलोकमें आकर ब्रह्मादिक देवताओंको पवित्र करते हुए मेरुके शिखरपर गिरा ।

† ये विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना [illegible] हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोप, गोपीजन, ब्राह्मण एवं देवसमुदायकी करुण प्रार्थना सुनते ही सर्वान्तर्यामी सर्वान्तरात्मा भक्तवत्सल प्रभुने आकाशवाणीके माध्यमसे मधुर स्वरमें अत्यन्त सुस्पष्ट कहा और उसे सबने सुना—'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी स्वरूपा शक्ति राधा—हम दोनोंने ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह जलमय विग्रह धारण कर लिया है।' इसके अनन्तर करुणामय श्रीकृष्णने अपने दर्शनका मार्ग बतलाया।

× × ×

पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण ही जलरूप होकर गङ्गा बन गये थे। इस प्रकार धर्मस्वरूपिणी गङ्गाका गोलोकमें आविर्भाव हुआ। यह अनाथवत्सला गङ्गा लक्ष्मीपति श्रीविष्णुकी पत्नी हुई, यह कथा ब्रह्मवैवर्तपुराण और देवीभागवतमें आयी है। उक्त पावन कथाका सार इस प्रकार है—

पवित्रतम गोलोककी बात है। परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णके मङ्गलमय अङ्गोंसे प्रकट लावण्यामृतवर्षिणी गङ्गाके रत्नाभरणभूषित भुवनमोहन दिव्य अङ्गोंपर चिन्मय वस्त्र सुशोभित थे। वे सलज्ज भावसे दिव्य-सौन्दर्यसार श्रीकृष्णके समीप विराजमान हो गयीं। वे नीलोत्पल श्यामसुन्दरके अपरिसीम रूप-लावण्यके दर्शन कर पुलकित हो रही थीं।

उसी समय असंख्य गोपियोंके साथ अनुपम-सौन्दर्यमयी राधा वहाँ आकर श्रीकृष्णके समीप सुन्दर रत्नमय सिंहासनपर विराजित हुईं। भगवान् श्रीकृष्ण उनसे प्रसन्नतापूर्वक मधुर वार्तालाप करने लगे।

परम मङ्गलमयी राधा रोषसे काँप रही थीं और उनके रागयुक्त सुन्दर अधर फड़क रहे थे। भयभीत गोपोंने उनके देवदुर्लभ पादपद्मोंमें प्रणाम निवेदनकर उनकी स्तुति की। श्रीकृष्णने भी उनका स्तवन किया। तीर्थमाता गङ्गाने भी उठकर उनकी स्तुति-प्रार्थना की और अत्यन्त विनयके साथ उनकी कुशल पूछी। कल्याणकारिणी गङ्गा मन-ही-मन भयभीत हो रही थीं। इस कारण भयवश नीचे खड़ी हो गयीं। उन्होंने अन्तर्मनसे श्रीकृष्ण-पदारविन्दकी शरण ग्रहण की। भक्तप्राणधन श्रीकृष्णने हृत्कमलमें तपोमयी श्रीगङ्गाको देखकर उन्हें अभय-दान किया।

परम प्रभुसे आश्वस्त होनेके अनन्तर त्रैलोक्यव्यापिनी गङ्गा परम तेजस्विनी राधाके परम मनोहर रूपको निहारने लगीं। वे दिव्यरत्नाभरणभूषिता राधाके नखमणि-चन्द्रिकासे लेकर पावनतम सीमन्ततक जिस मङ्गलमय लोकपावन श्रीअङ्गपर दृष्टि डालतीं, वहीं अतृप्त नेत्रोंसे देखती रह जातीं।

'प्राणेश्वर! आपके विकसित वदनारविन्दको मुस्कराकर अपलक दृगोंसे निहारनेवाली यह कल्याणी कौन है?' उसी समय राधाने अत्यन्त मधुर वाणीमें भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा। 'इसके हृदयमें मिलनेच्छाके भाव जाग्रत् हैं। आपकी अद्भुत सौन्दर्यराशिके दर्शन कर यह पुलकित ही नहीं, अचेत-सी होती जा रही है और आप भी इसकी ओर देखकर मधुर-मधुर मुस्करा रहे हैं। मैं नारी-जातिके मृदुल स्वभावके कारण प्रेमवश क्षमा कर देती हूँ।'

इसके अनन्तर रक्तोत्पलनयना राधाने गङ्गासे कुछ कहना चाहा, किंतु योग-प्रवीणा त्रैलोक्यसुन्दरी गङ्गा राधाके मनोगत भावोंको जानकर तत्क्षण अन्तर्धान होकर अपने जलमें प्रविष्ट हो गयीं। राधा सिद्धयोगिनी थीं। यह रहस्य जानकर उन्होंने सर्वत्र विद्यमान उन जलस्वरूपिणी गङ्गाको अपनी अञ्जलिमें भरकर पीना प्रारम्भ कर दिया। रागद्वेषविनाशिनी गङ्गा पूर्ण सिद्धा थीं। राधाका अभिप्राय समझकर वे निखिलब्रह्माण्ड-पावन श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर उनके अरुण चरण-कमलोंमें लीन हो गयीं। श्रीकृष्ण-हृदय-हारिणी श्रीराधाने उन्हें गोलोक, वैकुण्ठलोक तथा ब्रह्मलोक आदिमें सर्वत्र ढूँढ़ा; किंतु वे कहीं नहीं दीख पड़ीं।

उस समय सर्वत्र जलाभाव हो गया। कीचड़तक सूख गये। ब्रह्माण्डके सम्पूर्ण जलचर तड़प-तड़पकर मृत्युमुखमें चले गये। तब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिसमाज, देवता, सिद्ध और तपस्वी—सभी गोलोकमें प्रकृतिसे परे श्रीकृष्णके समीप पहुँचे। सभीके कण्ठोष्ठ-तालु सूख रहे थे। उन लोगोंने श्रीकृष्णके भक्त-भय-हारी कमल-चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनकी स्तुति की। इसके अनन्तर देवताओंकी प्रेरणासे चतुर्मुख ब्रह्मा परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके निकट गये। क्षीराब्धिशायी विष्णु उनके दायें और कैलासवासी शंकर उनके बायें स्थित थे। उस समय आनन्दघन श्रीकृष्ण एवं राधा—दोनों साथ ही विराजमान थे।

कमलोद्भव चतुरानन आश्चर्यचकित थे। उन्होंने अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखा। सम्पूर्ण रासमण्डल श्रीकृष्णमय था। उसमें सभी समवय द्विभुज श्यामसुन्दर थे। मयूरपिच्छ सबके मस्तकपर सुशोभित था। पीयूषवर्षिणी मुरली सबके कर-कमलोंमें विद्यमान थी और सबके वक्षपर कौस्तुभमणि सुशोभित थी। विधाता सेवक-सेव्यका निर्णय नहीं कर सके।

क्षणार्धमें ही भगवान् श्रीकृष्ण तेजःस्वरूप हो जाते और क्षणार्धमें आसनासीन दीखते। लोकस्रष्टाने एक ही क्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके निराकार और साकार दोनों रूपोंका दर्शन-लाभ किया। एकबार वे नवघनसुन्दर एकाकी और दूसरी बार अपनी प्रियतमा राधाके साथ प्रत्येक आसनपर आसीन दीखते। कभी श्रीकृष्ण राधा और कभी राधा श्रीकृष्ण बन जातीं।

चकित विधाताने अपने हृत्कमलस्थित श्रीभगवान्‌का ध्यान किया। उन्हें ध्यानमें श्रीभगवान्‌के दर्शन हुए। फिर तो पद्मयोनिने प्रभुकी श्रद्धा-भक्तिसे विह्वल होकर स्तुति की और परमप्रभुके आदेशसे उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये। तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको अकेले ही आसनपर विराजमान देखा। उनके वक्षपर राधा सुशोभित थीं। पार्षदों एवं गोपियोंसे घिरे श्रीभगवान्‌के दर्शन प्राप्तकर ब्रह्मादि देव-समुदायने प्रभुको प्रणाम कर उनका स्तवन किया।

'ब्रह्मन्! आप गङ्गाको ले जानेके लिये पधारे हैं, यह मुझे विदित है।' सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी, सर्वभावन परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णने उपस्थित देवताओंका अभिप्राय समझकर कहा। 'किंतु इस समय उसने मेरे चरणोंमें आश्रय लिया है। राधाजी उसे पी जाना चाहती थीं। आपलोग पहले इसे पूर्णतया निर्भय करनेका यत्न करें, मैं आपलोगोंको इसे प्रसन्नतापूर्वक दूँगा।'

'महिमाशालिनी देवि!' चतुराननने सम्पूर्ण देवताओंके साथ श्रीकृष्णपूजिता राधाकी स्तुति करनेके अनन्तर अत्यन्त विनम्रतासे निवेदन किया। 'गङ्गा आपके तथा भगवान् श्यामसुन्दरके ही श्रीअङ्गसे उत्पन्न होनेके कारण आपकी पुत्रीके तुल्य हैं। आपकी आराधनासे वैकुण्ठाधिपति श्रीहरि इसके पति होंगे। साथ ही अपनी एक कलासे ये भूमण्डलपर भी पधारेंगी। वहाँ श्रीभगवान्‌के अंश क्षीरसमुद्रको इनका पति होनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।'

'माता!' विधाताने पुनः निवेदन किया—'गोलोककी ही भाँति इन्हें सर्वत्र रहना चाहिये।'

श्रीराधाने मुस्कराते हुए पद्मयोनिकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। तब आश्चर्यमूर्ति गङ्गा श्रीकृष्णके चरणके अँगूठेके अग्रभागसे निकलकर विराजित हुईं। श्रीहरिके चरणसे प्रकट होनेके कारण वे 'विष्णुपदी' कहलायीं। देवगण प्रसन्न हुए और सबने उनको सम्मान प्रदान किया। फिर जलस्वरूपा गङ्गासे उसकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर परमशान्त विग्रहसे सुशोभित होने लगीं। लोकपितामह ब्रह्माने उस पावन जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया और कर्पूरगौर भगवान् त्रिनयनने उन्हें अपने मस्तकपर धारण किया। इसके अनन्तर लोकस्रष्टाने गङ्गाको राधा-मन्त्रकी दीक्षा देकर उन्हें राधाके स्तोत्र, कवच, पूजा और ध्यानकी विधि भी बता दी।

'ब्रह्मन्! आप गङ्गाको स्वीकार करें।' भगवान् श्रीकृष्णने विधाताके साथ महेश्वरादि देवगणोंको सम्बोधित करते हुए कहा। 'गोलोकमें कालचक्र नहीं चलता, इस कारण तुमलोग, अन्य देवता, मुनिगण, मुक्त और सिद्धादि जो यहाँ उपस्थित हैं, वे ही जीवित हैं, अन्यथा कल्पान्तके कारण सम्पूर्ण सृष्टि प्रलयार्णवमें डूब गयी है। वैकुण्ठके अतिरिक्त सब जलमय हैं। आप जाकर ब्रह्मलोकादि तथा अपने ब्रह्माण्डकी रचना करें। इसके अनन्तर गङ्गा भी वहाँ जायगी। अब आपलोग शीघ्र पधारिये।'

इतना कहकर परमाराध्या राधाके सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये और ब्रह्मादि देवगण वहाँसे लौटकर सृष्टि-रचनामें जुट गये।

जब सौभाग्यसुन्दरी गङ्गा वैकुण्ठमें चली गयीं, तब कुछ देरके अनन्तर विधाता भी उनके साथ ही वैकुण्ठमें पहुँचे।

'करुणामय प्रभो!' भगवान् श्रीनारायणके चरण-कमलोंमें श्रद्धापूरित प्रणाम करनेके अनन्तर कमलोद्भवने अत्यन्त विनम्र निवेदन किया—'ब्रह्मद्रवरूपिणी गङ्गा सत्त्वस्वरूपिणी एवं अमितसौन्दर्यशालिनी हैं। ये श्रीकृष्णके चरणोंसे प्रकट हुई हैं और उन्हें छोड़कर किसी अन्यको पतिके रूपमें वरण करना नहीं चाहतीं, पर तेजस्विनी राधाको यह सह्य नहीं।'

'सर्वाधार प्रभु!' विधाताने गङ्गापर राधा-रोषका वृत्तान्त सुनाते हुए आगे कहा—'परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं दो भागोंमें विभक्त हुए। आधेसे तो द्विभुज श्रीकृष्ण बने रहे और उनका आधा अङ्ग आपके चतुर्भुजरूप श्रीहरिके रूपमें प्रकट हो गया। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके वामाङ्गसे आविर्भूत श्रीराधा भी दो रूपोंमें परिवर्तित हो गयीं। दाहिने अंशसे तो वे स्वयं रहीं और उनके वामांशसे लक्ष्मी प्रकट हुईं। अतएव आपके ही श्रीअङ्गसे प्रकट ये महापुण्योदयप्राप्या गङ्गा आपको ही पतिके रूपमें वरण करना चाहती हैं।'

इतना कहनेके अनन्तर लोकपितामह सौभाग्यमूर्ति गङ्गाको श्रीहरिके समीप बैठाकर वहाँसे चले गये। फिर तो स्वयं श्रीहरिने दिव्यातिदिव्य गङ्गाके साथ सोत्साह सविधि विवाह किया। शेषशायी श्रीविष्णु प्रणतार्तिभञ्जनी गङ्गाके प्रियतम पति बन गये।

(अपूर्ण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा और परमात्मा

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव)

युगोंसे सृष्टिके रहस्योद्घाटनका प्रयत्न मनुष्य करता आ रहा है—'**कस्त्वम्, कोऽहम्**' का प्रश्न-भार लेकर; परंतु कविके शब्दोंमें—

'सदियों फ़िलासफ़ी की चुना-ओ चुनी रही ।
लेकिन ख़ुदा की बात जहाँ थी, वहीं रही ॥'

वह इस समस्याका समाधान आजतक न कर पाया । ज्ञान; जो जनोंके लिये ग्राह्य एवं उपलब्ध होता, उससे दूर ही रहा । समय-समयपर किसी-किसीको झाँकियाँ मिलती रही हैं अवश्य, पर आत्म-ज्ञानका प्रखर सूर्य कभी बादलोंकी ओटसे बाहर निकलकर पूरी तरह देदीप्यमान न हुआ ।

प्रत्येक देशमें—विशेषकर उन देशोंमें, जहाँ बौद्धिक शक्तिका पूर्णतया विकास हुआ, आत्मज्ञान-प्राप्तिकी चेष्टाएँ होती रहीं; परंतु अन्तमें मानव-समाज इसी निष्कर्षपर पहुँचा कि आत्मज्ञानकी प्राप्तिका सोपान आत्मानुभूति ही है, दूसरा नहीं । आत्माके द्वारा ही हम आत्माको पा सकते हैं । आत्माके द्वारा ही आत्मानुभूति सम्भव है । समान ही समानको आकर्षित कर सकता है । फिर एक बार जब आत्मा, जो परमात्माका ही अंश है, उसके प्रतिबिम्बको या उसकी झलकको देख लेता है, तब उससे मिलनेको अहर्निश व्याकुल रहने लगता है; मिलनकी घड़ियाँ आती हैं, पर मायावश वह उससे मिल नहीं पाता ।

पति-पत्नी, प्रिया-प्रियतमके रूपकसे भारतीय कवि-समाजने आत्मा-परमात्माके प्रेम, विरह और मिलनका वर्णन किया है । मुस्लिम शायरोंने भी ऐसा किया है । इससे भी यह स्पष्ट होता है कि एक या अद्वैतकी भावना ही आत्माका सहज स्वभाव है । वह अन्यात्माको अपना ही रूप मानकर उसे आत्मसात् करना चाहता है । जिसने परमात्मानुभूतिकी प्राप्ति कर ली, उसने कहा—'ऐ मूर्ख ! उस प्रियतम परमात्माको तू क्यों ढूँढ़ता फिरता है, नाभिमें कस्तूरी रखकर मृगकी भाँति ? वह तो तेरे पास ही है, अर्थात् तू परमात्माका ही तो एक अंश है, वही है ।

पानी बिच मीन पियासी रे !
मोहे कह-कह आवत हाँसी ।

जो सिद्ध पुरुष हैं, वे अन्तःस्थित ब्रह्मके दर्शन तो कर ही लेते हैं, उनको यह भी ज्ञान हो जाता है कि संसारमें जितनी भी भिन्न वस्तुएँ हैं, उनके भीतर एक छिपी हुई अभिन्नता है, सारे जीवनोंमें एक ही जीवन है और सब-में एक छिपा हुआ सादृश्य है । ब्रह्मका साक्षात्कार हो जानेपर प्रेमीके अन्तःप्रदेशमें वह दीपकके समान जगमगाता है; उस प्रकाशमें वह महान् आत्मा अपनेमें भी ब्रह्मभावका अनुभव करने लगता है और समझता है कि सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रोंमें मेरी ही ज्योति है, समस्त प्रकृतिमें मेरी ही झलक है, वे सब मेरे अन्तर-स्थित ज्योतिके प्रतिबिम्ब हैं और सब मुझमें ही समाये हुए हैं ।

एक उर्दू-शायरने इसी तथ्यको कितनी सुन्दरताके साथ व्यक्त किया है ? वह सृष्टिको सम्बोधित करके कहता है कि 'ऐ सृष्टि ! तू अपनी सुसज्जितता, दिव्यता और महानतापर इतना न इतरा ! इस विश्वरूपी महफ़िलमें तू एक तसवीर मात्र है और सम्पूर्ण महफ़िल मैं हूँ'—

बज़्मे-हस्ती[1] ! अपनी आराइश[2] पै तू नाज़ाँ[3] न हो
तू तो एक तस्वीर है महफ़िल की और महफ़िल हूँ मैं।

एक दूसरे उर्दू-शायरके इस महान् वाक्यको देखिये । एक पहुँचा हुआ पुरुष अपनी तन्मयतामें पूर्ण विश्वाससे दृढ़ता-पूर्वक कह बैठता है कि पूर्ण सृष्टिके फैलावमें इतनी जगह कहाँ है, जहाँ परमात्मा समा सके; सृष्टि तो उसका एक तुच्छ अंश है । वह तो मेरा ही दिल है, जो इतना विशाल है कि वहाँ परमात्माके समा जाने या रहनेका स्थान है—

अर्श[4]-समाँ[5] कहाँ तेरी वसअत[6] को पा सके ।
मेरा ही दिल है वह कि जहाँ तू समा सके ॥

इस युग-युगान्तरव्यापी अखण्ड जीवन-प्रवाहमें महत्त्व उन्हीं कर्मोंका है, जिनसे मानव-जाति समुन्नत होती है, अधिकतर पूर्णता लाभ करती है, उस साधनशक्तिसे युक्त होती है, जिसके द्वारा जातीय जीवनकी धारा परमात्म-सत्ताके महासमुद्रमें जा मिलनेके लिये प्रवाहित होती है । प्रेमकी

१. सृष्टिकी महफ़िल । २. सजावट । ३. इतरा न । ४. अर्श । ५. आसमान । ६. फैलाव ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति एक विलक्षण ज्योति है, जो उस ज्योतिःस्वरूप परब्रह्मकी ज्योतिसे मिलकर भी सर्वथा लीन नहीं हो जाती और चमकती ही रहती है। यद्यपि आत्मा परमात्मामें इसी ज्योतिके प्रभावसे मिल जाती है, फिर भी उसका प्रेम-प्रकाश उस अक्षय प्रकाशमें ऐसे प्रकाशित रहता है, जैसे पानीमें लहर।

मानवमात्र इस लोकमें सुखी रहना तथा आगे परलोकमें शान्ति और यश प्राप्त करना चाहता है। सब अपने लोक-परलोक बनानेके लिये परमात्माकी याद करते हैं, शुभकर्म करते हैं, बहुत कुछ त्याग भी करते हैं; परंतु ऐसे प्रेमी बहुत ही कम हुए हैं, जिन्होंने अपना समस्त जीवन परमात्माकी यादमें उसीके लिये बिताया हो।

जो निःशेष भावसे और समग्ररूपसे अपने आपको भगवान्‌को दे डालते हैं, उन्हें भगवान् भी अपनेको दे डालते हैं। उन्हींके लिये है—शान्ति, सुख, प्रकाश, शक्ति, स्वातन्त्र्य, प्रसार, ज्ञानके शिखर और आनन्दके सागर।

सौन्दर्यवर्द्धक पदार्थ और जीव-हिंसा

आजकलके सौन्दर्यवर्द्धक पदार्थों (Cosmetics and scent) में हिंसासे प्राप्त वस्तुओंका उपयोग होता है—ऐसी बात सुनी जाया करती थी, लेकिन सहसा उसपर विश्वास नहीं जमता था। अब इसका विवरण Victor Gollence Ltd., London द्वारा प्रकाशित 'Animals, men and morals' (जीव, मनुष्य और सदाचार) नामक ग्रन्थमें पढ़नेको मिला, जिसको देखनेपर पता चलता है कि मनुष्य अपनी क्षणिक मौज-शौकके लिये अन्य मूक प्राणियोंको कितना कष्ट देता है। उस पुस्तकके Muriel, the Lady Dowding द्वारा लिखित 'Furs and Cosmetics: Too High a Price ?' (जानवरोंके रोएँ और अङ्गराग—बहुत बड़ी कीमत) शीर्षक प्रबन्धके कुछ उद्धरणोंका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है।

(पृष्ठ-संख्या ३६ के चौथे अनुच्छेदसे पृष्ठ-संख्या ३८ की सातवीं पंक्तितक—)

मुश्क-बिलाव (Civet Cat) को ३ फुट लंबे और डेढ़ फुट चौड़े अलग-अलग पिंजरोंमें बंद रखा जाता है। ये पिंजरे इतने बड़े इसलिये बनाये जाते हैं कि वे अगल-बगल घूम सकें और ऊपर-नीचे हो सकें। उनको २४ घंटोंमें एक बार भोजन दिया जाता है, एक दिन शामको मांस और दूसरे दिन शामको चूहेका सूप। प्रत्येक ९दिनोंके बाद इनका 'सफाई' (cleaning) नामक ऑपरेशन होता है। मुश्क-बिलावको छदि-द्वार (trap door) से पकड़ा जाता है, उनकी टाँगोंको अलग चौड़ा करके हाथसे फैलाया जाता है तथा उसके कोश या थैलीको, (sac or pouch) जो नर-पशुओंकी जननेन्द्रियके अधर भागमें स्थित होती है—हाथसे खोला जाता है और सींगकी तरहके चुवेके द्वारा ग्रन्थिसे कस्तूरी खुरच ली जाती है। ऑपरेशन करनेके बाद कोशकी थैलीमें मक्खनकी डली भर दी जाती है। इस प्रकार ये पीड़ित मुश्क-बिलाव बन्धनमें रहनेपर बच्चे पैदा नहीं कर सकते और उनका सामान्य जीवन १०-१२ वर्षोंसे घटकर ६-७ वर्ष रह जाता है।

प्रत्येक वर्ष इथियोपिया (Ethiopia) से लगभग १२५० किलो मुश्क-बिलाव-कस्तूरी बाहर भेजी जाती है। इसमेंसे कुछ मात्रा तो स्विजरलैंडको और कुछ अमेरिकाको भेजी जाती है, जहाँ पैनिसिलिन सस्पेंशन तैयार करनेमें इसका उपयोग किया जाता है। किंतु इसका अधिक भाग फ्रांसको भेजा जाता है, जहाँ परिमल-द्रव्य (सुगन्धित वस्तुएँ) तैयार करनेमें ही इसका उपयोग किया जाता है।

कान्तिवर्द्धक द्रव्यों (अङ्गरागों) के निर्माणमें अश्व-पशुका भी उपयोग किया जाता है। कान्तिवर्द्धक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुएँ तैयार करनेमें पशुओंके शरीरसे प्राप्त द्रव्यका उपयोग एक बहुत ही गुप्त रहस्य है। उदाहरणके लिये स्त्री-मदजन (Oestrogen) का उपयोग अनेक वस्तुओंके बनानेमें होता है। यह स्त्री-मदजन गर्भवती घोड़ीके मूत्रसे निकाला जाता है। ओंटारियो (Ontario) में एक औषध-निर्माता कम्पनीकी आवश्यकताकी पूर्ति करनेके लिये गर्भवती घोड़ियोंके मूत्रके कम-से-कम १२३ ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें प्रत्येकमें २५ से ५० तक घोड़ियाँ रहती हैं। इन सबको निरन्तर ब्यानेकी स्थितिमें रखा जाता है। इन्हें हर समय एक विशेष साजमें आबद्ध रखा जाता है, किसी प्रकारका (घूमने-फिरनेरूप) व्यायाम नहीं करने दिया जाता तथा अप्राकृतिक भोजन दिया जाता है, जिससे अधिक मात्रामें मूत्र पैदा हो।

कुछ सामान्य उत्पादनोंके उपादानोंका संक्षिप्त विवरण देना यहाँ उपयुक्त होगा।

साबुन—इस देशमें अधिकांश साबुन तैयार करनेमें ऐसे साबुनके टुकड़ोंका उपयोग किया जाता है, जिनमें गोमांसकी चरबी, तिमि-मत्स्य (Whale) का तेल या कसाईखानोंसे प्राप्त अन्य पशुओंकी चरबी होती है। चूँकि साबुनका व्यापार एक विशिष्ट व्यापार है, अतः कुछ ही व्यवसाय-संघ अपना साबुन तैयार करते हैं। यह कार्य सामान्यतः उनके लिये संवेदित निर्माताओं (contracted manufacturers) द्वारा किया जाता है। थोक-व्यापारी इन संवेदित निर्माताओंको साबुनके टुकड़े देते हैं और उनमें ऊर्णा-वपा (lanolin—wool-fat), ताल-जैतूनका तेल (palm-olive oil) या व्यवसाय-संघकी कैसी भी आवश्यकता हो, उसी प्रकारके पदार्थ मिला देते हैं। साबुनमें अनिर्दिष्ट-पशु-चरबी पालतू पशुओंकी भी हो सकती है। एक बार दुर्भाग्यवश एक भारयान (lorry) उलट गया, जिससे उसमें भरे हुए बिल्लियों और कुत्तोंके शव मुख्य-मार्गपर बिखर गये। जाँच करनेपर पता चला कि उन मरे हुए पशुओंमें बूढ़े और बीमार कुत्ते-बिल्ली थे, जिनमें बहुत-से कैंसरसे पीड़ित भी थे। ये शव साबुन और प्रक्षालक तैयार करनेके लिये किसी प्रसिद्ध कारखानेमें जा रहे थे।

परिमल-द्रव्य—सुगन्धको स्थिर और अधिक समय-तक टिकाऊ बनानेके लिये इसके निर्मातागण वंश-परम्परासे पशु-तत्त्व (animal extract) का उपयोग करते हैं। इस पशु-तत्त्वमें केन्द्रितरूपमें बहुत ही बुरी दुर्गन्ध होती है, लेकिन जब उसमें फूलों तथा जड़ी-बूटियोंका सार (अर्क—essence) मिलाकर उसे हल्का कर दिया जाता है, जिससे सुगन्ध और उसकी स्थिरताकी अवधि बढ़ जाती है। सुगन्धको स्थिर करनेके लिये सामान्यतः जिन वस्तुओंका उपयोग किया जाता है, वे हैं मुश्क-बिलाव-कस्तूरी (civet), ह्वेल मच्छकी आँतोंमें पाया जानेवाला तीव्र गन्धवाला पदार्थ, अम्बर्ग्रिस (ambergris), कस्टोरियम (ऊद-बिलावसे प्राप्त तीव्र गन्धवाला पदार्थ) एवं मृग-कस्तूरी।

मुश्क-बिलाव-कस्तूरीके सम्बन्धमें पहले ही विवेचना की जा चुकी है। अम्बर्ग्रिस ह्वेल मच्छसे प्राप्त होता है। कभी-कभी इसे ह्वेल मच्छद्वारा उगला जाता है और यह समुद्रमें तैरते हुए पाया जाता है। यह पदार्थ ह्वेल मच्छकी मर्मान्तक मृत्युके बाद उसके शरीरसे भी निकाला जाता है और ह्वेल-पर्क (Whaler's 'perk') के नामसे बेचा जाता है।

कैस्टोरिया मुश्क-बिलाव (civet cat) की तरह नर और मादा ऊद-बिलावकी ग्रन्थियोंका स्राव है। यह पदार्थ बंदी ऊदबिलावसे प्राप्त नहीं किया जाता, बल्कि यह फंदेमें मारे हुए ऊद-बिलावोंसे मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कस्तूरी हिमालयके कस्तूरी-मृगोंसे अधिक मात्रामें प्राप्त होती रही है। ये पशु संगीतका स्वर सुनकर अपने गुप्त स्थानोंसे बाहर निकल आते हैं और बाहर निकलते ही इन्हें पकड़कर मार दिया जाता है। कस्तूरीकी प्राप्तिके लिये इन मृगोंकी अत्यधिक संख्यामें हत्याके परिणामस्वरूप ये पशु प्रायः समाप्त हो चले हैं। लुईसियाना (Louisiana)के कस्तूरी-मूषकमें अब इसका एक अनुकल्प (substitute) मिल गया है, जिनको लाखों-करोड़ों (मिलियन्स) की संख्यामें पकड़कर मारा जा रहा है।

जरायु (placenta), चूर्ण किये हुए घोंघे (crushed snails) एवं मिन्क तेल (mink oil)-जैसे अन्य पदार्थ,—जो आधुनिक (नकली) कान्तिवर्द्धक वस्तुओंमें पाये जाते हैं, वे जादूगरनीकी कड़ाहीकी याद दिलाते हैं।

उपर्युक्त पुस्तककी पृष्ठ-संख्या ३४ की नीचेकी दो पंक्तियोंसे लेकर पृष्ठ- संख्या ३५ की सत्रहवीं पंक्तितक—'The CosmeticTrade' (कान्तिवर्द्धक वस्तुओंका व्यापार) शीर्षकसे—

पिछली शताब्दीमें उत्तरी गोलार्द्ध (नार्दन) से तिमि-मत्स्य (ह्वेल मच्छ) को समाप्तप्राय करनेके बाद अब ऐंटारक्टिक महासागरमें उसकी पुनरावृत्ति की जा रही है। ९० फुटतक लंबे तथा १०० टनसे भी अधिक भारी इन जीवोंकी विस्फोटक भालोंसे हत्या की जाती है,* जो उनकी आँतोंमें जाकर धमाकेसे फट जाते हैं और जो फटनेके पश्चात् ह्वेलके अवशेषको चीरनेमें प्रायः एक घंटा या उससे भी अधिक समय लेते हैं—इतने बड़े काण्डकी तो कल्पना ही कठिन है। उस घोड़ेकी कल्पना कीजिये, जिसके पेटके अंदर बर्छी घुसा दी गयी हो और आपकी सड़कपर रक्त बहाते हुए कसाईखानेके भारयान (गाड़ी) को खींचता जा रहा है, जबतक कि घंटे भरमें वह मृत्युमुखमें न गिर पड़े। तब आपको अनुमान होगा कि इस तिमि-मत्स्यको कैसी भयंकर पीड़ामेंसे गुजरना पड़ता है।

कुछ अन्य देशोंके साथ मिलकर ब्रिटेन पिछले कई वर्षोंसे नकली मक्खन, साबुन, स्नेहक (लुब्रीकैंट—lubricant) तथा कान्तिवर्द्धक पदार्थोंके उत्पादनके लिये प्रतिवर्ष ५०,००० से भी अधिक इन उत्कृष्ट जीवों (तिमि-मत्स्यों—Whales) की हत्या कर रहा है एवं इन प्राणियोंके संतप्त शरीरके मांसको मनुष्योंको तथा उनके प्यारे कुत्ते-बिल्लियोंको खिलाया जाता है तथा मिन्क (mink) को खिलाया जाता है, जो फैशनके व्यापारके लिये पाले जाते हैं (जिनका तेल कान्तिवर्द्धक वस्तुओंमें उपयोग होता है)।

* पहाड़ोंके सुरंगमें विस्फोटक लगाकर जैसे उन्हें उड़ाया जाता है, वैसे ही बारूदके बने विस्फोटक कोई खानेकी वस्तुमें लपेटकर ह्वेल-मच्छको खिला दिया जाता होगा। इतने बड़े मत्स्यका मुँह भी उसीके अनुरूप बड़ा होगा, जिससे वे उसको निगल जाते होंगे। उसमें बिजलीकी बैटरी रक्खी रहती होगी, जिसमें ऐसा हिसाब रक्खा जाता होगा कि उस विस्फोटक द्रव्यको निगलनेके अमुक समयके बाद वह फटता होगा और जिस तरह आतिशबाजीमें वस्तुएँ उड़ायी जाती हैं, वैसे ही उसमें रखी बर्छियाँ बारूदके बड़े वेगसे उड़कर उन ह्वेल मत्स्योंकी आँतें फाड़ देती होंगी। इससे उन्हें कितना कष्ट होता होगा और वे वेदनासे किस प्रकार छटपटाते होंगे, इसका अनुमान कौन कर सकता है। कितनी निर्दयताका काम है, यह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिकंदर और मृत्यु

(लेखक—श्रीश्यामलालजी)

यूनानके बादशाह सिकंदरके घोड़ोंकी टापें जहाँ पड़ीं, वहीं उसका शासन मान लिया गया। समस्त विश्वको जीत लेनेके बाद उसे विचार आया, यदि मृत्यु न हो तो यह विजय काम आये, अन्यथा सारा आयास धूलपर की गयी लीपा-पोतीके ही समान है। इसलिये उसने अपने सभी मन्त्रियोंको बुलाया और आदेश दिया, 'जाओ पृथ्वीका कोना-कोना छान डालो और मेरे लिये कोई ऐसी रसायन ढूँढ़ लाओ, जो मुझे अमर बना दे।'

सिकंदर-जैसे कठोर बादशाहका हुक्म था; अतः वजीर, मन्त्री, सेनापति—सब कोई रसायन ढूँढ़ने निकल पड़े। वे लोग अनेक पीर, पैगम्बर, साधु, संन्यासी, योगी-यतियोंसे मिले; परंतु कोई भी उनकी इस जटिल समस्याका समाधान करनेमें समर्थ न हुआ।

अच्छे-अच्छे वैद्य-हकीमोंको भी उन्होंने ढूँढ़ निकाला। वे भी निराश होकर बोले—'जिससे बूढ़ा जवान बन सके, ऐसी जड़ियाँ और मनुष्य देवरूपको प्राप्त हो सके, ऐसी रसायन तो बहुत हैं, पर मृत्युसे बचानेकी कोई औषध हमारे पास नहीं है।'

निराश होकर सब फौजी राजधानीके पास आ पहुँचे। उसी समय उन्हें अचानक एक फकीर मिला। किसीका उसकी ओर ध्यान ही नहीं गया; क्योंकि वे लोग अच्छे-से-अच्छे संत-फकीरोंसे निराश हो चुके थे। उन लोगोंकी परस्पर चर्चा सुनकर वह फकीर बोला—'अरे, इस जरा-सी बातके लिये तुम सारी दुनियामें भटक आये? बुलाओ अपने बादशाहको। मैं उसे अमर बनानेकी रसायन बताता हूँ।' उन लोगोंको पहले तो विश्वास नहीं हुआ, पर फकीरका तेजस्वी चेहरा देखकर वे बादशाहको बुलाने चल पड़े। उन्होंने दरबारमें उपस्थित होकर निवेदन किया, "हुजूर! आपके आदेशानुसार हम सारी दुनियामें भटक आये, पर सब लाचारी प्रकट कर रहे हैं। वे कहते हैं—'यदि हममें इतनी शक्ति होती तो अपने माँ-बापको ही हम क्यों मरने देते?' निराश होकर हम आपके चरणोंमें अपना मस्तक रखने आ ही रहे थे कि नगरके द्वारपर एक फकीर मिला। वह कहता है कि बादशाहको बुला लाओ, मैं उसे अमर होनेकी रसायन बताऊँगा।"

बादशाह तत्काल उठा और बोला—'चलो, मैं उस जगह चलनेको तैयार हूँ। मुझे तो बादशाह और गरीब, दोनोंको ही एक-सी मिलनेवाली मृत्युमें हेर-फेर करवाना है। मृत्युको भी छोटे-बड़ेका अन्तर समझना चाहिये।'

बादशाह बड़ी उतावलीसे फकीरके पास पहुँचा; बड़ी विनयसे उन्हें प्रणाम किया, उनके पैर दबाये, फिर अदबके साथ खड़ा हो गया। फकीरने मधुर स्वरमें कहा—'बादशाह! तुम अमर होना चाहते हो?'

'जी हाँ! प्रकृतिका अन्याय तो देखिये। जिस प्रकार निर्धन मृत्युका आलिङ्गन करता है, उसी प्रकार मुझ बादशाह-को भी करना पड़ेगा। गरीब खाली हाथों जाता है, मुझे भी खाली हाथों जाना पड़ेगा।'

'कोई चिन्ता नहीं। मैं तुम्हें अमर बना दूँगा। यहाँसे थोड़ी दूरपर एक अमरताल नामक तालाब है। तुम वहाँ जाना और उसका जल पी लेना। बस, तुम अमर बन जाओगे।'

'वह अमरताल किस दिशामें है?'

'उत्तर दिशामें', फकीरने खड़े होकर सिकंदरके मस्तक-को उस दिशामें घुमाया। सिकंदरको उसके हाथका स्पर्श शीतल और मधुर लगा।

सिकंदरने आँखें बंद कर लीं। जीवनमें उसे कभी ऐसी शान्ति नहीं मिली थी, जैसी आज मिल रही थी।

न हाथी न घोड़ा, न अङ्गरक्षक न सेना। सिकंदर पैदल ही उत्तर दिशाकी ओर दौड़ा जा रहा था। खाई, पहाड़ और नदी पार करता वह एक सँकरे नालेमें प्रविष्ट हुआ।

नालेके उस पार अमरताल स्थित था। सरोवरका जल काँचकी तरह चमक रहा था। पर अमरतालका वातावरण इतना गम्भीर? इसकी अपेक्षा तो कब्रिस्तानका वातावरण कम गम्भीर होता है। यहाँ तो अमरत्वका उल्लास और उत्साह मूर्तिमान् होना चाहिये, पर बादशाहको अधिक विचार करनेका समय नहीं था। उसे तो अमर बनना था। अमरतालका जल पीनेके लिये वह वेगसे आगे बढ़ा। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेढ़ा होकर पानीका चुल्लू भरकर उसे पीने ही जा रहा था कि कहींसे कोई गम्भीर स्वरमें कहता सुनायी पड़ा, 'भले आदमी ! यह पानी पीकर व्यर्थ ही दुःखी मत हो ।'

बादशाहको आश्चर्य हुआ । निश्चय ही मनुष्यके मनमें बैठा शैतान ऐसे ही समय उसे भ्रममें डालता है ।

बादशाहने फिर चुल्लू भरा । फिर वही आवाज आयी । तब बादशाहने रोषसे कहा—'भूत-प्रेत, डाकिनी, मानव या दानव ! तुम्हारे समक्ष चक्रवर्ती सम्राट् सिकंदर खड़ा है । सिकंदरको सीख देनेकी कौन हिम्मत कर रहा है ? जो भी हो, शीघ्र यहाँ आये ।'

उन शब्दोंकी तालाबके किनारेपर प्रतिध्वनि हुई । तालाबका जल गोलाकार घूमने लगा । थोड़ी देरमें ही पानीमेंसे एक मगरमच्छ बड़े परिश्रमसे शरीर घसीटता हुआ आगे आया । उसकी आँखें बिल्कुल धुँधली पड़ गयी थीं, पैर भी काम नहीं दे रहे थे । सारी चमड़ी ढीले तकियेकी भाँति पिलपिली एवं खोलकी भाँति लटक रही थी । अवस्था लगभग पाँच हजार वर्ष होगी ।

बादशाह उसे देख रहा था । उसके मनमें स्वतः दया आ गयी । वह बोल पड़ा, 'अरे ! तुम्हारा भी यह कोई जीवन है !'

मगरमच्छ बड़ी कठिनाईसे किनारेकी बालूपर आया और हाँफता हुआ बोला, 'सुखी मनुष्य ! मैंने ही तुझे सावधान किया था । भूलकर भी इस तालाबका पानी मत पीना ।'

'कारण ?' बादशाहने रोषसे पूछा ।

'कारण !' मगरमच्छने बादशाहसे कहा, 'अरे अंधे ! जरा अपने चारों ओर तो देखो !' उसने चारों ओर नजर घुमाकर देखा तो किनारेपर बड़े-बड़े मगरमच्छ सुस्त, निराश और निष्क्रिय पड़े तड़प रहे थे ।

बादशाहने कहा, 'अरे ! ये सब अमरतालका पानी पीकर भी सुस्त क्यों पड़े हैं ?'

मगरमच्छने उत्तर दिया, 'यदि पड़े न रहें तो करें क्या ? जिस भूलको करनेसे मैंने तुम्हें रोका था, वह हम कर बैठे हैं । यह पानी हमने पिया है और मौत हमसे दूर जा बैठी है । जीवनकी ताजगी हम बिल्कुल खो बैठे हैं । जीवनका अन्त हमें तो दीखता नहीं । मनुष्यसे जैसे जोंक चिपट जाती है, वैसे ही हमसे जीवन चिपट गया है । शरीर क्षीण हो गया हो, अङ्ग काम न करते हों तो जीना कैसे अच्छा लगे ? अहा, कितनी मीठी होती है मृत्यु, जैसे नव-जीवनका एक प्रवेश-द्वार हो ।'

'ठीक है, ऐसे दुःखी जीवनसे तो मौत अच्छी है ।' बादशाहने कहा । बादशाह अमरतालके किनारेसे प्यासा ही लौट पड़ा । परंतु वह चतुर था । आया हुआ लाभ हाथसे निकल जाने दे, ऐसा मूर्ख नहीं था । मार्गमें उसे विचार आया—'अरे, वह योगी अमर जवानी दे दे, तभी तो अमर जीवनका मूल्य है । जवानीके बिना जीनेका क्या आनन्द ?'

उसने फकीरके चरणोंमें पड़कर कहा, 'महायोगी ! अमरतालका पानी तो तभी पिया जा सकता है, जब आप मेरी जवानीको अमर बनानेकी रसायन बतायें ।' योगीने हँसकर कहा, 'अमरतालके उस पार एक वन पड़ता है । वह यौवन-वन है । वहाँके वृक्षका फल खाना । जवान बने रहोगे ।'

यौवन-वन तो यौवन-वन ही था । उसके किनारे सुन्दर अमर वृक्षोंके झुंड थे । वृक्षोंपर अमरफल प्रचुर मात्रामें लटक रहे थे ।

बादशाहने फल तोड़नेकी इच्छासे ज्यों ही हाथ बढ़ाया कि एक भयंकर कोलाहल सुनायी दिया । बादशाहने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, भयंकर लड़ाइयाँ चल रही थीं । कितने ही अलमस्त जवानोंने भयंकर क्रोधके अभिभूत होकर मार-काट मचा रखी थी । खूनके तो तालाब भरे थे । यह मेरा, यह मेरी । हम मालिक, हमारी सत्ता है—इस तरहकी चीत्कार सर्वत्र उठ रही थी । बादशाह यह देख व्याकुल हो उठा । उसने चिल्लाकर कहा, 'भाइयो ! लड़िये मत ! भाईचारा सीखिये ! यौवनका महत्त्व जानिये !' यह सुनकर कुछ लोग लड़ते-लड़ते ठहर गये और कुछ बोले, 'लड़ाई ही तो हमारा जीवन है । अनन्त कालसे लड़नेके सिवा हमारे पास कुछ बचा ही नहीं है । यह मत समझना कि हम एक दूसरेके लिये पराये हैं । हममेंसे कोई किसीका बाप है, कोई भाई है, कोई बहन है, कोई बेटा है । किंतु सम्बन्धोंको हम भूल चुके हैं । कभी न मरनेवाले बापके लिये बेटेके मनमें प्रेम नहीं । नित्य प्रति छातीपर ही रहनेवाली माँके लिये बेटेके हृदयमें प्यार नहीं । सब अमर हैं । इसलिये जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है, उसके लिये लड़ना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हमलोग अधिक, वस्तुएँ कम हैं, मनुष्यको मनुष्य खाने लगे, तभी काम चल सकता है। पर ऐसा हो कैसे, हमलोग तो अमर हैं।'

बादशाह बोला—'तुमलोग मेल-जोलसे नहीं रह सकते? मानवता और सत्कर्मके विषयमें कुछ भी नहीं सोच सकते?'

'बादशाह! तुम समझदार होकर भी भूल क्यों कर रहे हो? जहाँ मृत्युकी रमणीयता होती है, वहीं सत्कर्मके वृक्ष लहलहाते हैं। जहाँ वृद्धावस्थाकी शान्ति होती है, वहीं मानवताके विषयमें कुछ विचार होता है। पाप-पुण्यका विचार तो मृत्यु लाती है। धधकते हुए शोलों-जैसी जवानीने हमें खिंचे हुए धनुष-जैसा उग्र बना डाला है। जीवनकी अमरता एवं अजरताने शुभाशुभका विवेक ही भुला डाला। जीवन-उद्यानको हरा-भरा बनाये रखनेवाली मृत्युका विचार और वृद्धत्वकी समझदारी जहाँ होती है, वहाँ एक दूसरेके लिये स्थान खाली कर देता है। एक पका हुआ फूल कुम्हला जाता है तो दूसरे नये फूलकी सुगन्ध फैलने लगती है। कसी सुखद परम्परा है।' बादशाह अमरफलको देखे बिना ही लौट पड़ा। उसे शीघ्र ही इस जगत्में आ जाना था। इस जगत्-जैसी सुव्यवस्थित परम्परा और सुन्दर जीवन कहीं भी नहीं था। वह फकीरके चरणोंमें गिर पड़ा।

फकीरने सिकंदरके सिरपर हाथ रखा हुआ उठाया। जैसे कोई नींदसे उठा हो, उसी तरह सिकंदर जागा और बोला—'श्रीमान्! जिस जगत्में हम जी रहे हैं, वह कितना मधुर है। हम व्यर्थ ही इसकी निन्दा करते हैं। कितना सुव्यवस्थित है इस जगत्का तन्त्र! कितनी मिठास है यहाँ! और मृत्यु! अहा, कैसी मीठी चीज हमें भेंट रूपमें मिली है। हम इससे व्यर्थ डरते हैं। जीवनकी प्रत्येक अवस्था कितनी सुन्दर है।'

फकीरने बादशाहको आशीर्वाद देते हुए कहा—'मनुष्य कर्तव्यसे अमर होता है, उत्साहसे अजर रहता है, प्रार्थनासे प्रफुल्लित रहता है और परोपकारसे चिरंजीव बनता है। इससे अधिक सुन्दर कुछ भी नहीं है। इस जगत्की, जिसमें हम रह रहे हैं, इन सुख-दुःखकी, जिन्हें हम रोज सह रहे हैं, कोई निन्दा न करे। इनसे मानव कितनी शोभा पाता है।'

व्यक्तित्वका विकास

(लेखक—श्रीशिवानन्दजी)

आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकके आधारपर मानव-सभ्यताने विविध दिशाओंमें अद्भुत उन्नति की है और मानवको उसपर गर्व होना स्वाभाविक है। विज्ञान और तकनीकने जीवनमें कल्पनातीत सुख-सुविधा ला दी है, किंतु प्रतिद्वन्द्वितामय संघर्ष, मानसिक तनाव, विषैला वातावरण इत्यादि समस्याएँ भी खड़ी कर दी हैं और शान्तिको तो मानो छीन ही लिया है। मानव अपनी ही सभ्यताके बोझमें कुचला जा रहा है और भौतिक उन्नतिके प्रतिफल उसके लिये एक सरदर्द बन गये हैं।

कैसी विडम्बना है कि सुख और सुविधाकी सामग्रियोंका प्रसार होनेके साथ चिन्ताएँ और अशान्ति बढ़ती जा रही हैं। साहित्यिक एवं शैक्षिक प्रसारके साथ घृणा, ईर्ष्या, द्वेष और भयका वातावरण फैलता जा रहा है, विश्व-स्तरपर सेवा-संस्थाएँ बननेके साथ पारस्परिक सद्भाव एवं प्रेम लुप्त होता जा रहा है, पौष्टिक आहारके सेवनके साथ दुर्बलता, थकावट और स्वास्थ्यभङ्ग होते जा रहे हैं। उत्कृष्ट औषधोंके उपलब्ध होनेपर भी रोग-विमुक्ति नहीं हो रही है, ज्ञानवृद्धि होनेके साथ ही व्यक्तिगत एवं समाजगत सुरक्षाका अभाव बढ़ता जा रहा है। स्थायीरूपसे शान्ति एवं आनन्दकी प्राप्ति किस प्रकार हो, जीवनमें अभयका समावेश कैसे हो, पारस्परिक प्रेमभावका उदय कैसे हो, शक्ति एवं सबलता कैसे उपलब्ध हों, नीरोगता एवं स्वास्थ्य कैसे उपलब्ध हों, व्यक्ति एवं समाजके जीवनमें सुरक्षाके भावका उदय कैसे हो—यह एक समस्या हो गयी है। मानव प्रकृतिसे दूर हटता जा रहा है और उसके जीवनमें सरलता समाप्त होती जा रही है। शिक्षाका प्रसार होनेपर भी आधुनिक सभ्यताके प्रभावके कारण व्यक्तित्वका निर्बाध विकास नहीं हो रहा है और मनोग्रन्थियाँ व्यक्तिके जीवनको बोझिल बना रही हैं। पश्चिमी देश जिन बातोंपर पछता रहे हैं, भारतके लोग अनुकृतिके द्वारा उन्हें अपना रहे हैं। यह एक दुर्भाग्यका विषय है।

इस युगमें ही जब कुछ तथाकथित चतुर लोग कह रहे हैं कि विज्ञानने धर्मको निरस्त कर दिया है, विनाशके कगारपर खड़ी हुई मानवताकी आत्मरक्षाके लिये तथा सुख-शान्तिके लिये अध्यात्मकी अत्यधिक आवश्यकता हो गयी है। मानवको अध्यात्म-औषधकी कभी इतनी आवश्यकता नहीं हुई, जितनी इस युगमें है, यद्यपि यह विज्ञान और तर्कका युग है।

भारतीय चिन्तनके आधारपर ग्रन्थिरहित व्यक्तित्वका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास होना न केवल सम्भव है, अपितु सरल एवं सहज है। भारतीय विचारधारा एवं स्वस्थ भारतीय परम्पराओंका प्रसार होना नितान्त आवश्यक है। आज भारतमें बेकारी, बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक विषमता इत्यादि जन-जीवनको कटु बना रहे हैं; किंतु शाश्वत मूल्योंकी अवमानना, अनुशासनहीनता, फैशनपरस्ती, उच्छृङ्खलता तो अभिशाप बनकर सामाजिक व्यवस्थाको अस्त-व्यस्त कर रहे हैं। परिवर्तन एवं प्रगतिके नामपर अस्वस्थ जीवन-पद्धतियाँ अपनायी जा रही हैं। आधुनिक सभ्यता भौतिकतापर आधारित है और इसके प्रभावसे जडवाद फैल रहा है। अध्यात्ममार्गपर चलनेसे ग्रन्थि-रहित विकास होना तथा मनोग्रन्थियोंका पूर्ण निर्मूलन अथवा ग्रन्थिछेदन होना अवश्य ही सम्भव है। जडताके साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध होनेपर मानवकी मनोग्रन्थियाँ भी दृढ़ हो जाती हैं। यदि मनमें संसार बसा हुआ है तो ग्रन्थियाँ ही बसी हुई हैं। हम संसारमें रहकर और सारे लोक-व्यवहारको करते हुए भी संसारमें न फँस सकें, यही ग्रन्थियोंसे मुक्तिका श्रेष्ठ उपाय है। भारतीय विचारधारा हमें संसारमें जलस्थित कमलकी भाँति निर्लेप रहना सिखाती है।

संसार कर्मभूमि है। हम सब अपना कर्तव्यकर्म करें, किंतु संसारकी क्षणभङ्गुरता, भौतिक भोगोंकी निस्सारता तथा मोहका खोखलापन समझकर संसारमें कदापि न फँसें। यह कोई पलायन नहीं है, बल्कि स्वस्थ वैराग्यभाव है, जिसके बिना हम समुचित प्रकारसे कर्तव्यपालन भी नहीं कर सकते। संसारका भौतिक आकर्षण कम होनेपर ही ग्रन्थियाँ निर्मूल हो सकती हैं। संसारके भौतिक नाते शिथिल होनेपर ही जडतासे मुक्ति मिलती है तथा मनुष्य स्वस्थ-चिन्तन कर सकता है। भौतिकताका दास होकर मनुष्य ग्रन्थियोंसे जकड़ा ही रहेगा। उन्मुक्त व्यक्ति उन्मुक्त चिन्तन एवं उन्मुक्त व्यवहार कर सकता है। विद्वान् व्यक्ति तो अनेक हैं, किंतु उन्मुक्त व्यक्ति बहुत कम होते हैं। परमात्माके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध जुड़नेपर अथवा आत्मसाक्षात्कार होनेपर मनुष्य पूर्ण निर्ग्रन्थ हो सकता है—

> भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
> क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
> (मुण्डक० २। २। ८)

'कारण और कार्यस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार होनेपर हृदयकी ग्रन्थियोंका भेदन हो जाता है, समस्त संदेहोंका निराकरण हो जाता है तथा समस्त कर्मोंका क्षय हो जाता है।' ग्रन्थि-छेदनका श्रेष्ठ उपाय अध्यात्मकी राहपर चलकर प्रभुके साथ एक प्रगाढ़ व्यक्तिगत नाता जोड़ना है, प्रभुके साथ तादात्म्य स्थापित करना है। प्रभुके साथ नाता होनेपर जडता नष्ट हो जाती है और संसारके साथ भौतिक बन्धन शिथिल हो जाता है। जिस अनुपातमें मनुष्य भौतिक बन्धनसे मुक्त होता है, उसी अनुपातमें मनोग्रन्थि भी निर्मूल हो जाती है। प्रभुके साथ नाता स्थापित होनेपर स्वस्थ वैराग्यका उदय हो जाता है। मनुष्यमें दीनता नहीं रहती और न वह विषम स्थितियोंसे पलायन करता है—'न दैन्यं न पलायनम्।' प्रभुके साथ नाता होना 'योग' कहलाता है। योगके अनेक प्रकार हैं।

गीताने कर्मयोगका संदेश दिया है। मनुष्य कर्म किये बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता। किंतु कर्म कैसे करें? प्रायः मनुष्य स्वार्थसे प्रेरित होकर कर्म करते हैं और आशा-निराशामें फँसकर व्यर्थ ही शक्ति खोते रहते हैं और फलके अनुकूल-प्रतिकूल होनेपर सुखी-दुःखी हो जाते हैं। कर्मयोगी स्वार्थसे प्रेरित नहीं होता, बल्कि परमार्थसे प्रेरित होता है तथा सब कर्म प्रभुकी प्रसन्नताके लिये, प्रभुप्रीत्यर्थ करता है। वह अपने लिये कुछ नहीं करता। वह कर्तव्यपालनकी दृष्टिसे कर्म करता है तथा फल प्रभुपर छोड़ देता है—

> 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'
> (गीता २। ४७)

'कर्मयोगीका अधिकार कर्म करनेमात्रमें ही है, फलमें कभी नहीं।' वह कर्मफलकी वासनासे मुक्त होता है। उसकी कर्म न करनेमें प्रीति नहीं होती तथा वह कर्मक्षेत्रसे पलायन नहीं करता। कर्मयोगी प्रभुके साथ जुड़कर कर्म करता है, अतएव उसमें आसक्ति नहीं होती—

> 'योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।'
> (२। ४८)

यही समत्वयोग है—सम भावमें रहना तथा फलसे विचलित न होना। कर्मयोगी सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, जय-पराजयमें सम रहता है। काम (इच्छा) से प्रेरित होकर कर्म करनेपर फलकी आशा होती है तथा फल मिलनेपर सुख-दुःख होता है। कर्मयोगी निराशी (निराश नहीं, आशामुक्त) होकर प्रभुप्रीत्यर्थ उत्साहसे कार्य करता है और प्रत्येक फलको समभावसे ईश्वर-इच्छाके रूपमें स्वीकार कर लेता है। उसके जीवनमें निराशा (फ्रस्ट्रेशन) का प्रभाव कदापि नहीं होता।

कर्मयोगी श्रमकी प्रतिष्ठाको समझता है तथा किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामको भी निकृष्ट नहीं समझता । उसे जो भी कर्म करना पड़ता है, वह उसे रुचि एवं ध्यानसे करता है ।

गीताका उपदेश है कि मनुष्यको काम (व्यक्तिगत इच्छा, महत्त्वाकाङ्क्षा) का पूर्ण-परित्याग कर देना चाहिये । मनुष्यको प्रदत्त परिस्थितिमें कर्तव्यानुसार, प्रभुप्रीत्यर्थ कर्म करना चाहिये । कामनासे आशा, निराशा, चिन्ता, भय, आशङ्का, अस्थिरता उत्पन्न होते हैं और कामकामीको कदापि शान्ति नहीं मिलती । जीवनमें संघर्षकी आवश्यकता है, किंतु उसका उद्देश्य कामनापूर्ति नहीं होना चाहिये । कामना-की विफलतासे ग्रन्थियोंका जन्म होता है एवं ग्रन्थियाँ प्रगाढ़ होती हैं । कामनाका निर्मूलन मानो ग्रन्थियोंका निर्मूलन है । चाह मिटनेपर चिन्ता भी मिट जाती है ।

समाज प्रभुका एक विराट् रूप है—

'सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥'

निःस्वार्थ समाज-सेवा प्रभुकी पूजा ही है । जिसने सेवा-धर्मको अपना लिया, उसने जीवनका सुख ही पा लिया । सेवाका अर्थ है—स्वार्थ छोड़कर त्याग और बलिदानकी राहको स्वीकार करना ।

'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।'

'सेवाधर्म योगियोंके लिये भी अगम्य है, अत्यन्त कठिन है ।' सेवाभावसे प्रेरित होकर समाजकी सेवा करनेसे मनुष्यकी ग्रन्थियोंका छेदन हो जाता है, विशेषतः अहं-ग्रन्थिका । दीन-दुःखीकी सेवाको प्रभुसेवा मानना मनुष्यकी भावनाओंको पवित्र कर देता है तथा अनेक मूल प्रवृत्तियोंका उदात्तीकरण (सबलीमेशन) हो जाता है । सेवासे प्राप्त सुख अनिर्वचनीय है । स्वयं कष्ट उठाकर दूसरोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य धन्य होता है । सेवाधर्मको अपनानेपर मनुष्य संकीर्णताके दायरोंसे ऊपर उठता जाता है और उसके 'स्व' का विस्तार हो जाता है । संकीर्णता मृत्यु है और विस्तार (व्यापक होना) जीवन है । मोह संकीर्ण होता है, प्रेम व्यापक होता है ।

जब हृदय सेवाभावसे परिपूर्ण हो जाता है, तब मनुष्यकी अहं-ग्रन्थिका उदात्तीकरण हो जाता है, मिथ्या अहंकार नहीं रहता और वह किसी मामलेको व्यक्तिगत प्रतिष्ठाका प्रश्न नहीं बनाता । उसके लिये सेवा, परोपकार ही सर्वोपरि होता है । वह ईर्ष्या, द्वेष और घृणासे मुक्त हो जाता है । उसे कोई ऊँचा-नीचा नहीं दीखता । संतोंने दीन-दुःखी जनकी सेवा करना परम पुण्य समझा है ।

सेवाव्रतीके लिये प्राणिमात्र सेव्य होता है । व्यक्ति कुटुम्बके लिये, कुटुम्ब राष्ट्रके लिये और राष्ट्र मानवताके लिये होता है । सेवाव्रत लेनेपर व्यक्ति मानवताका उपासक हो जाता है । 'वसुधैव कुटुम्बकम्—सारा विश्व एक कुटुम्ब है ।' सम्प्रदाय, जाति, वर्ण आदिकी संकीर्णता मानववादीको छू भी नहीं सकती । मानवमात्र एक है । वह सबके कल्याणकी कामना करता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

मानवमात्रके हितमें व्यक्तिका हित भी निहित होता है । मानववादीके हृदयमें सम्पूर्ण मानवमात्रके लिये ही प्रेम उमड़ता रहता है । सेवाव्रती परम उदार होता है और उसका व्यक्तित्व प्रेमपूर्ण हो जाता है । प्रेमका अर्थ है—सेवा, त्याग, बलिदान, क्षमा, सहनशीलता । प्रेमपूर्ण व्यक्तित्व ही ग्रन्थिरहित हो सकता है । अहं-ग्रन्थि प्रेमसे गल जाती है । महात्मा गांधी कहते थे—'मुझे अपनेको घटाते-घटाते शून्य बना देना चाहिये (I must reduce myself to zero).' जो मनुष्य निरभिमान एवं नम्र हो जाता है, उसका व्यक्तित्व मधुर हो जाता है । वह लोक-व्यवहारमें सदा संतुलित रहता है । वह किसीके आगे दीन होकर न गिड़गिड़ाता है, न किसीको अहंकार अथवा क्रोधमें गाली ही देता है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥

उसमें आत्मबल एवं मनोबलका उदय हो जाता है और सबपर उसके माधुर्यकी छाप लग जाती है । वह घृणाको प्रेमसे, क्रोधको क्षमासे जीतता है । हठधर्मी उसके प्रभावके सामने निस्तेज हो जाते हैं । यदि उसे किसीको दण्ड देना पड़ता है तो वह प्रेम एवं सद्भावसे प्रेरित होकर तथा घृणा एवं प्रतिशोध छोड़कर ही दण्ड देता है । वह पापसे घृणा करता है, पापीसे नहीं । महान् संत तो इतने सहनशील एवं क्षमाशील हो जाते हैं कि उन्हें दण्ड देनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती और उनकी सहिष्णुता एवं क्षमा आततायीको भी धीरे-धीरे सहिष्णु एवं क्षमावान् बना देती है । प्रेमपूर्ण व्यक्तित्वका प्रभाव अमित होता है । भगवान् बुद्ध, महावीर एवं ईसाके उदाहरण हमारे सामने हैं ।

मानव-समाजके प्रति प्रेम ही प्रभुके प्रति उन्मुख होकर भक्तिका रूप ग्रहण कर लेता है । जीव प्रभुके सामने आत्मसमर्पण कर देता है और अपनी इच्छाओं तथा चिन्ताओंकी गठरीको भी समर्पित कर देता है । वह प्रभुके प्रति क्षण-क्षण कृतज्ञता प्रकटकर गद्गद हो जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनेको कृतकृत्य समझ लेता है । भक्तिभावके द्वारा भावात्मक विवेचन (emotional catharsis) हो जाता है, प्रेमाश्रुओंसे ग्रन्थियाँ धुल जाती हैं । मन निर्मल हो जाता है । निर्मल व्यक्ति सरल हो जाता है । सरलता ही सुख और शान्तिके मार्गका प्रथम सूत्र है, प्रथम पाठ है । भगवान्‌के भक्तको प्रभुका विधान ही मङ्गलमय दीख पड़ता है और उसे किसी भी वस्तुसे क्षोभ नहीं होता । परमात्माके साथ जुड़कर वह सशक्त हो जाता है और उसमें हीनताका भाव लुप्त हो जाता है । परमात्माका विश्वास उसके लिये अद्भुत सम्बल हो जाता है ।

प्रभुभक्त प्रभुका उपकरण बन जाता है । मैं प्रशासक हूँ, मैं मन्त्री हूँ, मैं शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति हूँ, मैं धनी हूँ, मैं निर्धन हूँ, मैं दीन हूँ—इस भावके स्थानपर, मैं प्रभुका यन्त्र हूँ, उपकरण हूँ, निमित्तमात्र हूँ तथा प्रत्येक परिस्थितिमें प्रभु-प्रेरणा पाकर प्रभु-प्रीत्यर्थ आचरण करता हूँ—यह भाव उसके मनमें उत्पन्न हो जाता है । उसे प्रभुप्रदत्त शक्तिका भान होता है, किंतु अभिमान नहीं होता । समस्त शक्तियोंके मूलस्रोत प्रभुके साथ भक्तिके द्वारा जुड़नेपर व्यक्तिमें रहस्यमयी शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है ।

ज्ञानयोगका मार्ग ग्रहण करनेपर भी मनुष्यकी अहं-ग्रन्थिका उदात्तीकरण हो जाता है । मैं जड देह नहीं हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मैं सत्-चित्-आनन्द हूँ । संसारके नाते मिथ्या हैं और मोह अज्ञान है । मैं ईश्वरका अंश हूँ; अतएव अमर हूँ—इस प्रकार ज्ञान होनेपर सांसारिक बन्धन शिथिल हो जाते हैं और मोह छूट जाता है । सीमित मैं 'अहं ब्रह्मास्मि' में विलीन हो जाता है ।

ध्यानयोगके द्वारा मनुष्य गहरे स्तरपर परमात्मासे सम्बन्ध जोड़ लेता है । ध्यानका अभ्यास मनुष्यको निर्मल एवं पवित्र बना देता है । मनुष्यकी ग्रन्थियोंका छेदन हो जाता है तथा उसका व्यक्तित्व निखर जाता है ।

प्रभुके साथ एक सच्चा नाता स्थापित होनेपर साधक स्वाधीन हो जाता है । उसे अपने लिये कुछ नहीं चाहिये तथा उसके पास अपना कुछ भी नहीं होता । उसे शरीर भी अपना नहीं दीखता और वह अपने लिये शरीरकी भी इच्छा नहीं करता । वह अपने सुखके लिये बाह्य वस्तुओंके अधीन (पराधीन) नहीं रहता, वह सुखके विषयमें सर्वथा स्वाधीन होता है ।

अध्यात्मके मार्गपर चलनेसे व्यक्तित्वका स्वस्थ विकास हो सकता है और मानवको जीवनमें स्थायी सुख एवं शान्ति प्राप्त हो सकते हैं ।

तुम्हारे चरण !

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

नाथ !

तुम्हारे चरण मेरा सर्वस्व हैं । मुझ दीन-हीन-अकिंचनके ये ही एकमात्र आश्रय हैं; इनतक ही, बस, मुझ अगतिकी गति है ।

मेरे श्रान्त-क्लान्त चरण इन परमगति-प्रदाता चरणोंका अनुसरण करके, इनके अनुगामी होकर—भले ही घुटरुओं चलते शिशुके सदृश ही गिरते-पड़ते दिन-प्रतिदिन, पल-पल मंजिलके निकट पहुँच रहे हैं ।

मेरे हारे-थके हाथ—शिथिल पड़कर इन सुकुमार चरणोंको चाँपकर बिना कुछ भी किये, सम्पूर्ण करणीय कार्य कर चुके हैं; इनकी मुट्ठियाँ भरकर सहज ही सब कुछ मुट्ठीमें भर चुके हैं ।

मेरा मूढ़ता-ग्रस्त मस्तिष्क ज्ञान-कन्दुकसे खेलते इन चरणोंको अपनेमें आसीन करके ज्ञानकी महान् महिमासे महिमान्वित एवं अपूर्व गरिमासे गौरवान्वित हो उठा है ।

मेरा रस-शून्य हृदय इन रसार्णव चरणोंको अपनेसे चिपटाकर स्वयं रस-निर्झर हो उठा है, प्यासा स्वयं अब जन-जनकी—जन-जनके कण-कणकी प्यास बुझा रहा है ।

मेरा ज्ञान-अज्ञान परिचित-अपरिचित चरणोंपर समर्पित होकर इन्हें अपनेमें विलीनकर सब कुछ जाननेवाला हो गया है—अपनेसहित समूचे जगत्‌को तत्त्वतः जान रहा है ।

इन चरणोंको पाकर—इनमें अपने आपको खोकर मैं तुम्हें पा गया हूँ······'तुम' हो गया हूँ और इस प्रकार मैंने होने-पानेको एक सिरेसे निःशेष कर दिया है ।

हाँ, तुम्हारे चरण मेरा सर्वस्व हैं । मुझ दीन-हीन-अकिंचनके ये ही एकमात्र आश्रय हैं; इनतक ही, बस, मुझ अगतिकी गति है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

तड़पता इसलिये हूँ कि तड़पनेसे प्राणधन मिलते हैं

मेरे प्राणधन !

कभी-कभी मेरे मनमें यह जिज्ञासा होती है कि सर्वप्रथम मेरा परिचय तुमसे कब हुआ था, किस क्षण पहली बार तुम मेरे अपने हुए थे। इस जीवनमें तो वह घड़ी याद नहीं आती, जब पहले-पहल तुम्हारा नाम मेरे कानोंमें पड़ा, पहली बार मेरे नेत्रोंने तुम्हारी छवि निहारी। लगता है, जैसे मैं इस जन्मसे भी पहले खूब लंबे समयसे तुम्हें जानता रहा हूँ। सच ही मेरे-तुम्हारे प्रेमकी अवधि अनन्त युगोंकी है—अनन्त जन्मोंकी है।

कभी सोचने लगता हूँ—क्या मैं अनन्त युगोंसे प्यासा ही हूँ ? क्या मैं अनन्त जन्मोंसे तुमसे बिछुड़ा ही हूँ ? मेरे ये प्राण फिर किस धातुसे निर्मित हैं कि अगणित जन्मोंके भीषण विरह-तापसे भी पिघले नहीं हैं ? अनन्त युगोंसे प्यासे रहकर भी तड़पते-तड़पते निःशेष नहीं हो सके हैं। अनन्तकालके वियोगके पश्चात् भी ये जीवन-धारण किये हुए ही हैं !

ऐसा भीषण अपराध मुझसे किस जन्ममें हुआ, जिसका प्रायश्चित्त अनन्त युगोंकी इस विषम वियोग-यातनाके बाद भी अबतक पूर्ण नहीं हो पाया, जिसकी सजा आगे भी न जाने कितने जन्मों, कितने युगोंतक विरह-व्यथाके रूपमें दी जाती रहेगी ? मेरे हृदयधन ! क्या तुम इतने कठोर शासक हो ? सचमुच क्या तुम इतने लंबे दण्डविधान कर डालते हो ? मेरा हृदय तो नहीं मानता। तब क्या वियोग सजा न होकर पुरस्कार है ? प्यास अभिशाप न होकर वरदान है ? क्या तड़पना भी दुर्भाग्य होकर सौभाग्य है ?

हाँ, एक बात अवश्य है। वियोग जीवनका अवलम्ब अवश्य है। मिलनकी लालसा नहीं होती, दर्शनकी प्यास नहीं होती, तुम्हारे लिये हृदयमें तड़पन नहीं उठती तो क्या यह जीवन टिक पाता ? चाह, प्यास और तड़पन जीवनके साथ सदासे ही हैं, इसलिये जीवनके चिर सहचर हैं, अविच्छेद्य अङ्ग हैं।

अकेला मैं ही क्यों, यह सम्पूर्ण सृष्टि ही तुमसे मिलनेकी प्यास हृदयमें लिये तड़प रही है। संसारभरके वाद्य एक ही विकल विरह-रागिणी बजा रहे हैं। रुदनका ही एक व्यापक स्वर रात-दिन पक्षी गाये जा रहे हैं। सृष्टिके कण-कणमें वियोग-व्यथाकी तन्त्री अविश्रान्तरूपसे बज रही है। यह प्रकृति-सुन्दरी सोलहों शृङ्गार किये किसीके मिलनहेतु अविराम चली जा रही है। इसके हृदयमें जो मिलनकी चाह बसी हुई है, वह अबतक पूरी नहीं हो सकी।

तुम्हीं कहो, क्या जन-जनके, कण-कणके हृदयमें तड़पन नहीं है ? सभी तो विरह-सागरमें आकण्ठ डूबे हुए हैं। इस सृष्टिका अणु-अणु युगों-युगोंसे तड़प रहा है। यह व्यथा, यह तड़पन, कब, कहाँसे और कैसे आयी ? क्या यह सृष्टिकी जन्मसङ्गिनी नहीं ? सृष्टिका स्वरूप ही क्या प्यास, वियोग और तड़पन नहीं है ?

यदि ऐसी बात है तो तुमने ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण सृष्टि क्यों रची ? सभीको रोते-बिलखते, तड़पते, व्यथा पाते छोड़कर कहाँ चले गये तुम ? क्यों छिप गये, कहाँ तिरोहित हो गये ? क्यों नहीं आकर मिलते ? आकर सबकी प्यास सदैवके लिये क्यों नहीं मिटाते ? क्यों बिछुड़े हो और कबतक बिछुड़े रहोगे ?

पानीमें डूबते हुए किसी प्राणीको कभी देखा है ? पानीसे बाहर निकलनेके लिये वह कितनी तेजीसे छटपटाता है ! तबतक तड़पता ही रहता है, जबतक डूब नहीं जाता। बुझते हुए दीपककी लौ कितनी तेजीसे टिमटिमाती है ! जलसे बिछुड़नेपर मछली कितना तड़पती है ? क्षण-क्षणमें उसका तड़पना बढ़ता ही जाता है। इसी प्रकार तो मेरे प्राण भी तड़पते हैं। जबसे तुम बिछुड़े हो, तभीसे तड़प रहे हैं। चाहता हूँ, यह तड़पना बढ़े, खूब बढ़े। तड़पें, खूब तड़पें—इतना तड़पें कि केवल तड़पन शेष रह जाय। तड़पन, तड़पन, केवल तड़पन—क्षण-क्षण तड़पन, दिन-रात तड़पन। यह मेरा जीवन केवल तड़पन-ही-तड़पन बन जाय। तड़पना ही सृष्टिका स्वरूप है, सृष्टिका प्रारब्ध है। तड़पनेसे ही प्राणधन मिलेंगे, तब तड़पनेमें बुराई क्या है ? इसीलिये तड़पता हूँ। कबसे तड़प रहा हूँ, कबतक तड़पता रहूँगा—इसे वही जानता है, जिसके लिये तड़प रहा हूँ।

—तुम्हारा ही एक अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्टता-निवारणमें सहयोग देना धर्मका एक अङ्ग है

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने धर्मका एक मर्म बताया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

(४।७-८)

अर्थात् इस विश्वमें जब-जब नाना रूपोंमें धर्मका पतन और अधर्म (पाप, दुष्टता, बुराई, पतन) की अभिवृद्धि होती है, तब-तब मैं दुष्टता-निवारणके हेतु जन्म लेता हूँ (और पापको दूर करता हूँ) । मैं साधुओं (सत्पुरुषों, सज्जनों, उत्तम आदर्शों) की रक्षाके लिये, दुष्टों और पापियोंके विनाशके लिये और समाज तथा संसारमें धर्म-स्थापना (नैतिक मूल्योंके प्रचार)के लिये युग-युगमें अवतार लेता हूँ ।

प्रश्न उठता है कि हमारे समाज और संसारमें दुष्टता, बुराई और पाप क्यों बढ़ते हैं ?

क्या इसका कारण यह है कि पुण्य और सत्यकी अपेक्षा समाजमें पाप और असत्यके तत्त्व अधिक हैं ? क्या सज्जनोंकी अपेक्षा दुष्टोंकी संख्या अधिक है ? उत्तरमें आप कहेंगे कि पाप और दुष्टताके तत्त्व अधिक नहीं हैं । दुष्टोंकी संख्या भी सज्जनोंकी अपेक्षा अधिक नहीं है । मनुष्य भगवान्‌की सर्वश्रेष्ठ रचना है, इसलिये पतित लोगोंकी संख्या कम ही है । पुण्याचारकी अपेक्षा पापाचार कम ही है । यदि पापाचार पुण्य-आचरणसे अधिक हो जायगा तो समाज हिंसक नर-पशुओंसे भर जायगा । आज भी मनुष्यरूपमें देवता अधिक हैं, असुर अपेक्षाकृत कम ही हैं । भलाईके आधारपर ही यह समाज टिका हुआ है । सत्य और शिव तत्त्व अधिक हैं ।

फिर बुराई क्यों बढ़ती दीखती है ? असुरोचित कार्य—जैसे हिंसा, लूट-खसोट, पशुबलि, हत्याएँ, रिश्वतखोरी, कालाबाजार, मुकदमेबाजी, अश्लीलता, कामलोलुपता आदि क्यों बढ़ रहे हैं ?

समाजमें दुष्टता इसलिये बढ़ती है कि अच्छाई (अर्थात् सज्जनों और सत्पुरुषों) द्वारा उसके प्रतिरोधका समुचित और संगठित प्रयत्न नहीं किया जाता । सज्जनोंकी यह कमजोरी है कि वे जल्दी ही संगठित होकर पापियों और दुष्टोंके विरुद्ध मोर्चा नहीं लेते । वे शरारती तत्त्वोंसे लोहा लेनेमें देर करते रहते हैं; जबकि दुष्टलोग बड़ी जल्दी शरारतके कामोंको करनेके लिये एक दूसरेसे मिल-जुलकर संगठित हो जाते हैं । इसी कारण असुरोंने अनेक बार देवताओंको परेशान किया था । खेदका विषय है कि भले आदमी बुराईको देखते रहते हैं, पर उस दुष्टताकी रोक-थामके लिये कुछ भी नहीं करते । सज्जन पृथक्-पृथक् पड़े रहते हैं । एक दुष्ट दस सज्जनोंके सामने पाप-आचरण कर बैठता है । वे उसे नहीं रोकते ।

यदि भले आदमी, जो संख्यामें बहुत अधिक होते हैं, चाहें तो दुष्टोंको बात-की-बातमें पीसकर रख दें । सज्जनता अब भी इतनी अधिक है कि यदि वह संगठित हो जाय तो असामाजिक तत्त्वोंका यह साहस ही न हो कि वे उत्पातके लिये सिर उठा सकें ।

भले आदमियोंकी एक कमजोरी है—आप इसे चाहे गुण कहें या अवगुण । वे स्वभावसे विनयशील, सभ्य, शिष्ट और अति संकोची होते हैं । वे बुराईको आसानीसे दबा सकते हैं, किंतु उसके निवारणमें दिलचस्पी नहीं लेते । वे स्वयं कष्ट सह लेते हैं, पर दुष्टताको नहीं रोकते । सज्जन पुरुष झगड़ों, मारपीटकी रोकथाम, हिंसा दूर करने, मांस-शराबके व्यवहार, अश्लील नाच-गानों, झूठे मुकदमोंको दूर करने आदिके अच्छे कामोंमें व्यर्थ ही नहीं पड़ना चाहते ।

फल यह है कि आज हमारे समाजमें असामाजिक तत्त्व असुर, दनुज, दोषी और दुर्गुणी लोग चुपचाप पनपते रहते हैं । शुभतत्त्व मानो सोये पड़े रहते हैं । सज्जन आँखें खोले रखकर भी जैसे अन्धे बने रहते हैं । आदर्शवादी समुदाय हाथ-पाँव होते हुए भी जैसे निष्क्रिय पड़ा रहता है । यह उदासीनता ठीक नहीं । सत्पुरुषों, सज्जनों और धार्मिक वृत्तिके लोगोंके लिये यह संकोचशील उपेक्षावृत्ति कदापि उचित नहीं है । भले आदमियोंकी इस उदासीनताके कारण ही आज समाजमें तरह-तरहके ढोंग, अत्याचार, मुनाफाखोरी, मिलावट, छल-कपट, रक्तपात और अशान्ति चली आ रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हमारे आस-पास कँटीली झाड़ियोंकी तरह भाँति-भाँतिकी बुराइयाँ तेजीसे बढ़ रही हैं। अनेक क्षेत्रोंमें अनुशासनहीनता और कानूनको भंग करनेकी दुर्घटनाएँ हो रही हैं। ग्रामीण-क्षेत्रोंमें धोखेबाजी, हिंसा और लूटपाटका बोलबाला है। दस्यु-समस्या उठ खड़ी है। अपराधवृत्ति, कुमन्त्रणाएँ, दुष्कर्म, व्यभिचार आदि अभिवृद्धिपर हैं। होटलोंमें भक्ष्य-अभक्ष्यका कोई विवेक नहीं है। ये तथा इसी प्रकारके अन्य बहुत-से कुकर्म इसीलिये पनप रहे हैं कि अच्छाई (अर्थात् सत्पुरुषों) द्वारा उनके विरोधके संगठित प्रयत्न नहीं किये गये हैं। सज्जनलोग दुष्टताको न दबानेके लिये दोषी हैं। वे दुष्टताको खुली छूट दे रहे हैं। पाप-निवारण धर्मका अङ्ग है। इस दिशामें प्रयत्न करनेकी अतीव आवश्यकता है।

सरकार और कानूनद्वारा तो असामाजिक तत्त्वोंको दबाने और दुष्टताको सजा देनेके प्रयत्न चले आ रहे हैं, किंतु समाजसुधारकों, हितैषियों, परोपकारी संस्थाओं, प्रबुद्ध और विवेकशील नागरिकोंका भी यह महान् नैतिक उत्तरदायित्व है कि आस-पास फैली हुई दुष्टताकी रोकथामके प्रयत्न करते रहें। संगठन बनाकर अराजकता, अनुशासनहीनता, पर-पीड़न, स्वार्थवासना, लोलुपताका दृढ़तासे प्रतिरोध करते रहें। शरारती लोगोंको आतङ्क न फैलाने दें। दुष्टताके विरुद्ध जनमत जाग्रत् करें। सद्विचार फैलायें। लोगोंमें जहाँ अच्छाई देखें, उसे भरसक प्रोत्साहित करें। शठताके सामने संकोचवश घुटने न टेक दें।

सम्भव है आप दुष्टता, शरारत और शठताको पूरी तरह न दबा पायें, पर आपको देखकर और भी सात्त्विक प्रवृत्तिके लोग आपके साथ आगे आयेंगे और दुष्टता-निवारण करनेमें आपकी सहायता करेंगे। आपसे जितना भी बन पड़े, वह अवश्य कीजिये। अपने अच्छे मित्रोंको इस शुभ कार्यमें साथ लीजिये। आपके सत्साहससे कुछ अंशोंमें पापवृत्ति कम हो जायगी। धर्मका एक उद्देश्य व्यक्ति और समाजका सुधार है, गुणों और अच्छाईका विस्तार है। देवत्वको प्रोत्साहन और असुरत्वको निरुत्साहित करनेसे धर्म-प्रसारका कार्य होगा।

याद रखिये, समाजसे पाप दूर करनेका उत्तरदायित्व भी विवेकशील सत्पुरुषोंका ही है। अच्छी समाजोपयोगी प्रवृत्तियोंको संगठित होकर असामाजिक तत्त्वोंको दबाना चाहिये। भले आदमी भी संगठित हों और ऐसा सामाजिक वातावरण विकसित करें, जिसमें दुष्प्रवृत्तियोंको पनपनेका मौका ही न मिले। यदि शुभशक्तियाँ संगठित नहीं होंगी तो दुष्टता बढ़ती ही जायगी। इस कार्यमें कठिनाइयाँ भी आयेंगी और निराशाएँ भी; पर समाजको दुष्टतासे बचानेके कामको यथाशक्ति करना ही चाहिये।

यदि इस मेरे हृदय-द्वारको बंद कभी तुम पाना !

[विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'यदि ए आमार हृदय दुयार बंद रहेगो कभू'—गीतका भावानुवाद]

यदि इस मेरे हृदय-द्वारको बंद कभी तुम पाना !
द्वार तोड़ प्राणोंमें आना, प्रभु ! तुम लौट न जाना !!
यदि न किसी दिन हृत्तन्त्रीपर बजे तुम्हारा नाम रसाकर,
तब भी रहना खड़े दया कर, प्रभु ! तुम लौट न जाना ॥
यदि न किसी दिन तवाह्वानपर बजे सुप्तिमें मम जागृति-स्वर,
वज्र-विद्ध कर मुझे जगाना, प्रभु ! तुम लौट न जाना ॥
किसी दिवस यदि तव आसनपर बिठा अन्यको दूँ प्रयत्न कर,
चिरकालिक अधिराजा मेरे, प्रभु ! तुम लौट न जाना ॥
यदि इस मेरे हृदय-द्वारको बंद कभी तुम पाना !
द्वार तोड़ प्राणोंमें आना, प्रभु ! तुम लौट न जाना !!

—माधवशरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दुःखिनी बहनको परामर्श

सम्मान्या बहनजी ! सादर हरिस्मरण ।

आपने लिखा कि आपके जीवन-सहचरका स्वभाव आपके स्वभावसे बिल्कुल मेल नहीं खाता। वे धर्मकी बातें जानते हुए भी मानते बिल्कुल नहीं तथा सर्वथा आसुरी विचारके हैं, जिसके कारण आप सदा दुःखी रहती हैं । उनकी दृष्टिमें धर्म-अधर्ममें कोई भी अन्तर नहीं है, धर्म नामकी कोई वस्तु उनके लिये जैसे है ही नहीं। धर्मकी बात वे सुनना भी नहीं चाहते । आपको उनके ढंग देखकर उनपर तरस आता है और आप उनके भविष्यको लेकर दिन-रात चिन्तित रहती हैं । उनके आचरण भी शुद्ध नहीं हैं, इत्यादि । आप यह भी जानती हैं कि हिंदू नारीको अपने पतिके दोष देखने भी नहीं चाहिये, उनकी चर्चा तो किसीके सामने करनी ही नहीं चाहिये । ऐसी दशामें उनके दोषोंका उल्लेख करनेमें आपके मनमें ग्लानि होना स्वाभाविक है—यद्यपि आपने उनके दोषोंकी बात निन्दाके भावसे नहीं, अपितु उनके हितकी दृष्टिसे, उनके सुधारके लिये लिखी हैं, अतः इसमें कोई दोषकी बात नहीं है । इस सम्बन्धमें मेरे आपके लिये तीन सुझाव हैं। इनमेंसे जो भी आपको सुसाध्य लगे, उसीको आप काममें ला सकती हैं—

(१) अपने पतिदेवको सन्मार्गपर लानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय तो मेरी समझसे यह है कि आप उनमें भगवद्भावना करें और उन्हें साक्षात् परमेश्वर मानकर मन-ही-मन उनके चरणोंमें प्रार्थना करें कि 'प्रभो ! अपना यह रूप बदल दीजिये ।' अवश्य ही यह प्रार्थना करनी चाहिये मन-ही-मन और तुम्हें साक्षात् भगवान् समझते हुए । सम्भव है, आपकी प्रार्थनामें यथेष्ट बल न होनेके कारण अथवा आपके भगवद्भावमें त्रुटि होनेके कारण आपको सफलता जल्दी न दीखे अथवा आपके विश्वासकी परीक्षा करनेके लिये भगवान् आपके सामने कुछ समयतक प्रतिकूल फल भी प्रकट कर दें अर्थात् आपके पतिदेवमें सुधार होनेकी अपेक्षा बुराई कुछ बढ़ती भी दीख सकती है । परंतु उस परिस्थितिमें आपको न तो घबराना चाहिये और न निराश ही होना चाहिये; अपितु अपनी प्रार्थनामें अथवा विश्वासमें कमी मानकर और भी दृढ़ विश्वासके साथ अत्यन्त आर्तभावसे प्रार्थना करते रहना चाहिये—इस निश्चयके साथ कि आपके पति बने हुए प्रभु आपकी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करेंगे। अवश्य ही आपको अपने पतिदेवके सामने कुछ भी नहीं कहना चाहिये और उनके चरणोंमें अपने-आपको न्योछावर करते हुए उनके प्रति दोषबुद्धि न करके सर्वथा उनके अनुकूल बन जाना होगा। थोड़ी देरके लिये मान लें कि भगवान्‌के किसी मङ्गलमय विधानके अनुसार उनमें सुधार न भी हो; फिर भी आपके द्वारा तो इस रूपमें भगवच्छरणागतिकी ऊँची-से-ऊँची साधना बन पड़ेगी, जो यदि हृदयके सच्चे भावके साथ की जायगी तो कम-से-कम आपके लिये तो परम कल्याणका कारण बनेगी ही और भगवान्‌ने चाहा तो आपके पतिदेवमें भी उनके और आपके जीवनकालमें ही मनचाहा परिवर्तन लाकर रहेगी; क्योंकि यह साधना अमोघ है ।

(२) यदि यह साधना आपको कठिन प्रतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो और बनती न दीखे—क्योंकि किसी भी ऐसे व्यक्तिमें, जिसमें हमें प्रत्यक्ष दोष दीखते हों, भगवद्भावका स्थिर रहना अत्यन्त कठिन है, तो दूसरा साधन यह है कि दयामय एवं सर्वसमर्थ भगवान्से उनकी सत्ता पतिदेवसे भिन्न मानकर आप अपने पतिदेवके सुधारके लिये—उनमें विवेक-बुद्धि जाग्रत् करनेके लिये कातर प्रार्थना करें। साथ ही वे धर्मके अनुकूल आचरण करें तथा आपकी हितभरी सलाह मानने लगें—इसके लिये आप उनके अनुकूल आचरण करें तथा उनके दोषोंको सहन करें, उद्विग्न न हों और प्रेमके द्वारा उन्हें अनुकूल बनायें। किसीमें परिवर्तन लानेकी जितनी शक्ति प्रेम एवं सद्व्यवहारमें है, उतनी सदुपदेशमें भी नहीं है; झगड़ा करनेमें अथवा भर्त्सनामें तो सर्वथा नहीं है। इस साधनमें भी बड़े धैर्य एवं आत्मविश्वासकी आवश्यकता होगी।

(३) अन्तिम उपाय यह है कि आप अपने पतिदेवके आचरणके प्रति सर्वथा उदासीन हो जायँ, उन्हें सुधारनेकी चिन्ता छोड़ दें अथवा सर्वोत्तम यह है कि उन्हें सुधारनेका भार सर्वसमर्थ एवं जीवमात्रके सुहृद् भगवान्के सबल कंधोंपर डाल दें और—

तेरे भाऍं जो करौ भलौ-बुरौ संसार।
नारायन तू बैठ कैं अपनौं भवन बुहार॥

—इस सिद्धान्तके अनुसार अपने सुधार—अपने कल्याणके साधनमें प्राणपणसे जुट जायँ और जीवन रहते भगवान्के शरणागत होकर मनुष्य-जीवनके चरम एवं परम फलको प्राप्त कर लें। अवश्य ही इसके लिये आपको घर छोड़कर कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं है और न घरसे बाहर कहीं भी जाकर आप निरापद एवं पवित्र जीवन बिता सकती हैं। रहना होगा आपको घरमें ही और शरीरपर—जिसपर आपके माता-पिताने सम्पूर्ण अधिकार आपके पतिदेवको दे दिया है, निर्लेप भावसे उनकी, उनकी संतानकी एवं उनकी सम्पत्तिकी पूरी सेवा एवं सँभाल करते हुए अपने आत्माको भगवान्का दास या दासी मानकर अपने मनको सुखसागर भगवान्के अभय चरणोंसे निरन्तर जुड़ा रखनेकी चेष्टा कीजिये। बस, मेरी समझसे आपके लिये ये ही तीन साधन हैं, जिनमेंसे किसी एकको, जो आपको सुकर जान पड़े, अपनाकर आप शान्तिलाभ कर सकती हैं।

इसके अतिरिक्त आपके दो अन्य प्रश्नोंका उत्तर भी मैं अपनी अल्पमतिके अनुसार नीचे दे रहा हूँ—

पहला प्रश्न तो आपका मदिरापानके सम्बन्धमें है। उससे बुद्धि तो विकृत होती ही है, भले-बुरेका ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। मदिरापानके निषेधका मूल कारण यह होता है कि उसे बनानेमें जौ, गुड़, अंगूर आदिको सड़ाया जाता है, जिससे असंख्य जीवोंकी हिंसा होती है।

दूसरा प्रश्न आपका सधवा स्त्रीके लिये एकादशी आदिका व्रत करनेके सम्बन्धमें है। इसका उत्तर यह है कि सधवा स्त्रीको कोई भी व्रत पतिकी आज्ञासे ही करना चाहिये और ऐसा कोई भी व्रत-उपवास नहीं करना चाहिये, जिससे पति-सेवामें बाधा आती हो।

शेष भगवत्कृपा।

आपका भाई,
चिम्मनलाल गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' एवं मानसकारका अभिनन्दन !

'रामचरितमानस' विमल संतन जीवन-प्रान ।
हिंदुआन को वेदसम, जमनहि प्रगट कुरान ॥
—अब्दुर्रहीम खानखाना—कवि रहीम

× × ×

धन्य भाग्य मम, संत-सिरोमनि चरन-कमल तकि आयउँ ।
बदन प्रसाद-सदन दृग भरि लखि सुख संदोह समायउँ ॥
दयादृष्टि ते मम दिसि हेरेउ तत्त्व-स्वरूप लखायौ ।
कर्म-उपासन-ग्यान-जनित भ्रम-संसय-मूल नसायौ ॥
हरिलीला गायौ, तेहि सुनि तनु पुलकित, मानस धीर ।
सुधा-समान बचन कहि पोषेउ सुमिरत सिय-रघुबीर ॥
श्रीतुलसी सुचि संतसमागम अद्भुत अमल अनूप ।
'सूरदास' जीवन-फल पायौ दरसन जुगल स्वरूप ॥
—सूरदास

× × ×

रामचरित सरसिज मधुप पावन चरित नितान्त ।
जय तुलसी कवि-कुल-तिलक कविता-कामिनि-कान्त ॥ १ ॥
सुरसरि-धारा-सी सरस, पूत, परम रमणीय ।
है तुलसीकी कल्पना कल्पलता कमनीय ॥ २ ॥
अमित मनोहरतामयी अनुपमता-आवास ।
है तुलसी-रचना रुचिर बहु शुचि सुरुचि विकास ॥ ३ ॥
सकल अलौकिकता सदन सुंदर भाव उपेत ।
है तुलसीकी कान्त कृति निरुपम कला निकेत ॥ ४ ॥
जबतक कवि-कुल-कल्पना करे कलित आलाप ।
अवनि लसित तबतक रहे तुलसी-कीर्ति-कलाप ॥ ५ ॥
— पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरि औध'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस'का संदेश—२

'सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥'

'गुणवान् तथा बड़भागी वही है, जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका प्रेमी है।'

'मानस'के प्रणेता गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य भक्त थे। श्रीभरतजीके भावके प्रति विदेहराज श्रीजनकजीके वचन 'साधन सिद्धि राम पग नेहू' श्रीतुलसीदासजीके लिये भी अक्षरशः सत्य हैं। भगवान् श्रीराघवेन्द्रके चरणोंकी प्रीति ही श्रीतुलसीदासजीका साधन थी और यही उनकी सिद्धि थी। अपनी इसी निष्ठाको श्रीगोस्वामीजी महाराजने 'मानस'में विभिन्न रूपोंमें व्यक्त किया है। गत अङ्कमें हमने 'मानस'का संदेश शीर्षकसे विचार किया था कि 'मानस'के अनुसार 'जनम जनम रति राम पद'—अर्थात् 'जन्म-जन्ममें भगवान् श्रीसीतारामके श्रीचरणोंकी प्रीति ही एकमात्र प्राप्तव्य वस्तु है।' इसी भावको श्रीगोस्वामीजीने दूसरे शब्दोंमें इस रूपमें व्यक्त किया है—

'सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥'

अर्थात् भगवान् श्रीराघवेन्द्रके पतितपावन चरणोंका अनुरागी ही सच्चे अर्थमें सर्वगुणसम्पन्न है और वही वास्तविक रूपमें भाग्यशाली है। प्रस्तुत संदर्भमें कुछ वचनों एवं प्रसङ्गोंका विवेचन करते हुए हम 'मानस'के इसी संदेशपर विचार करेंगे।

श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रकारके प्रसङ्ग हैं और अनेक स्तरके पात्र हैं; परंतु किसी भी प्रसङ्गमें कैसा भी पात्र क्यों न हो, श्रीगोस्वामीजी महाराजने उसी पात्रको उसी समय बड़भागी, श्रेष्ठ, गुणज्ञ, वरेण्य आदि माना है, जब वह भगवान् श्रीरामचन्द्रके चरणोंका संस्पर्श प्राप्त करता है, या भगवान्‌के दिव्य रूपका दर्शन करता है अथवा भगवान्‌की अमोघ संनिधिकी उपलब्धि करता है अथवा भगवान्‌के चिन्मय धामका वास प्राप्त करता है अथवा भगवान् श्रीसीतारामकी सर्वमलापहारिणी एवं सर्वमङ्गलविधायिनी भक्ति उसके हृदयमें उत्पन्न होती है। इसके ठीक विपरीत जब भी जो पात्र भगवान् श्रीसीतारामके विमुख होकर विषयानुरागी होता है, या जिससे भगवान् विलग होते हैं अथवा इस विलगावमें जो-जो हेतु बनता है, श्रीगोस्वामीजी उसी क्षण उसे 'अभागी' कह देते हैं—

'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥'

'मानस' के इस मर्मको हृदयंगम करते हुए हमें अपने लिये कर्तव्य निश्चय करना चाहिये तथा अपनी दृष्टिको भी उसी साँचेमें ढालकर प्रत्येक व्यक्तिके सौभाग्य एवं बड़प्पनको इसी कसौटीपर आँकना चाहिये।

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

(सुग्रीव)

श्रीसुग्रीवजीने कहा—हे भाई! (अंगद-नल आदि) देह धारण करनेका यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर श्रीरामजीका भजन ही किया जाय। सद्गुणोंको पहचाननेवाला (गुणवान्) तथा बड़भागी वही है, जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका प्रेमी है।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जल धार बही॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामजीके पवित्र और शोकका नाश करनेवाले चरणोंका स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या (शिलारूपका परित्यागकर) अपने रूपमें प्रकट हो गयी। भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीको देखकर, वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी । अत्यन्त प्रेमके कारण वह अधीर हो गयी; उसका शरीर पुलकित हो उठा; मुखसे वचन कहनेमें नहीं आते थे । वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभुके चरणोंसे लिपट गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे जल (प्रेम और आनन्दके आँसुओं) की धारा बहने लगी ।

कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनीं॥
बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥

(जनकपुरवासिनी स्त्रियाँ)

(श्रीअवधसे बरात आ जानेपर) कोयलके समान मधुर बोलनेवाली (श्रीजनकपुरकी) स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं—'हे सुन्दर नेत्रोंवाली बहनो ! इस विवाहमें बड़ा लाभ है । बड़े भाग्यसे विधाताने सब बात बना दी है कि ये दोनों भाई हमारे नेत्रोंके अतिथि हुआ करेंगे ।'

तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं॥
मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥

—श्रीअयोध्यावासी

(पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग) तीनों भुवनोंमें और (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालोंमें दशरथजीके समान बड़भागी (और) कोई नहीं है । मङ्गलोंके मूल श्रीरामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिये जो कुछ कहा जाय, सब थोड़ा है ।

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी॥ (माता कौसल्या)

हे पुत्र राम ! यदि केवल पिताजीकी आज्ञा हो तो माताको (पितासे) बड़ी जानकर वनको मत जाओ । किंतु यदि पिता और माता (कैकेयी)—दोनोंने वन जानेको कहा हो, तो वन तुम्हारे लिये सैकड़ों अयोध्याके समान है । वनके देवता तुम्हारे पिता होंगे, वनदेवियाँ माता होंगी तथा वहाँके पशु-पक्षी तुम्हारे चरण-कमलोंके सेवक होंगे । हे रघुवंशके तिलक ! वन बड़ा भाग्यवान् है, जो तुम वहाँ जा रहे हो और यह अवध अभागी है, जिसे तुमने त्याग दिया है ।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥ (माता सुमित्रा)

हे पुत्र लक्ष्मण ! जगत्‌में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही (पूजनीय और परम प्रिय) माननेयोग्य हैं । हृदयमें यों जानकर, हे तात ! उन (श्रीरामचन्द्र) के साथ वन जाओ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्‌में जीनेका लाभ उठाओ ! मैं बलिहारी जाती हूँ; हे पुत्र ! मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर श्रीरामजीके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है ।

सहज सनेह बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥
नाथ कुसल पद पंकज देखें । भयउँ भागभाजन जन लेखें ॥

(श्रीनिषादराज)

श्रीरघुनाथजीने स्वाभाविक स्नेहके वश होकर (श्रीनिषादराजको) अपने पास बैठाकर कुशल पूछी। श्रीनिषादराजने उत्तर दिया—हे नाथ ! आपके चरण-कमलके दर्शनसे ही कुशल है (आपके चरणारविन्दोंके दर्शन कर) आज मैं भाग्यवान् पुरुषोंकी गिनतीमें आ गया ।

सुनत तीरबासी नर नारी । धाए निज निज काज बिसारी ॥
लखन राम सिय सुंदरताई । देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ॥

(यमुनाजीके) किनारेपर रहनेवाले स्त्री-पुरुष (यह सुनकर कि निषादके साथ दो परम सुन्दर सुकुमार नवयुवक और एक परमसुन्दरी युवती आ रही है) सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजीका सौन्दर्य देखकर अपने भाग्यकी बड़ाई करने लगे ।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई । करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा ॥

(वनवासके समय) जिस वृक्षके नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंकी रजका स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है ।

अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय ।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय ॥

(कोल-भील-वनचरवृन्द)

हे नाथ ! प्रभु (आप) के चरणोंका दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गये । हे कोसलराज ! हमारे ही भाग्यसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है ।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना । भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता । दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं । पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ॥

(मुनि भरद्वाज)

हे भरत ! वह (श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है; तुम्हारे समान बड़भागी कौन है ? हे तात ! तुम्हारे लिये यह आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम दशरथजीके पुत्र और श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे भाई हो । भैया ! सुनो, श्रीरामचन्द्रके मनमें तुम्हारे समान प्रेमपात्र दूसरा कोई नहीं है ।

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

अयोध्यापुरीमें भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पाके बागमें भौंरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मीके विलास (भोगैश्वर्य) को वमनकी भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं) ।

आगें देखि राम तन स्यामा । सीता अनुज सहित सुखधामा ॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥

(श्रीसुतीक्ष्ण) मुनिने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्यामसुन्दरविग्रह सुखधाम श्रीरामजीको देखा । प्रेममें मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि श्रीरामके चरणोंके समीप लाठीकी तरह गिर गये ।

तात राम कहुँ नर जनि मानहु । निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
हम सब सेवक अति बड़भागी । संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥ (श्रीजाम्बवान्)

हे तात (अङ्गद) ! श्रीरामजीको मनुष्य न मानो; उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो । हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं, जो निरन्तर सगुण ब्रह्म (श्रीरामजी) में प्रीति रखते हैं ।

कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥
राम काज कारन तनु त्यागी । हरि पुर गयउ परम बड़भागी ॥ (श्रीअङ्गद)

अङ्गदजीने मनमें विचारकर कहा—'अहा ! जटायुके समान धन्य कोई नहीं है । श्रीरामजीके कार्यके लिये शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान्‌के परमधामको चला गया ।'

बड़भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत बिधि नाना ॥

परम भाग्यशाली अङ्गद और हनुमान् अनेकों प्रकारसे प्रभुके चरण-कमलोंको दबा रहे हैं ।

कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिंदु अनुरागी ॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥ (श्रीभरत)

क्या कारण हुआ कि नाथ (श्रीरामचन्द्रजी वनसे लौटकर) नहीं आये ? प्रभुने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया ? अहा ! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं, जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दके प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए) । मुझे तो प्रभुने कपटी और कुटिल रूपमें पहचान लिया, इसीसे नाथने मुझे साथ नहीं लिया ।

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवँराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥
मारुतसुत तब मारुत करई । पुलक बपुष लोचन जल भरई ॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी । नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥

संसारके सभी श्रमोंको हरनेवाले प्रभुने (हाथी, घोड़े आदि बाँटनेमें) श्रमका अनुभव किया और (श्रम मिटानेको) वहाँ गये, जहाँ शीतल अमराई (आमोंका बगीचा) थी । वहाँ भरतजीने अपना वस्त्र बिछा दिया । प्रभु उसपर बैठ गये और सब भाई उनकी सेवा करने लगे । उस समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी पवन (पंखा) करने लगे । उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें (प्रेमाश्रुओंका) जल भर आया । (शिवजी कहने लगे—) हे गिरिजे ! हनुमान्‌जीके समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजीके चरणोंका प्रेमी ही ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहें न मागसि अस बरदाना ॥
सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई ॥

(भगवान् श्रीरघुनाथ)

हे काक ! सुन, तू स्वभावसे ही बुद्धिमान् है । ऐसा वरदान कैसे न माँगता ? तूने सब सुखोंकी खान भक्ति माँग ली, जगत्में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है । वे मुनि जो जप और योगकी अग्निसे शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्तिको) नहीं पाते, वही भक्ति तूने माँगी । तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया । यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी ।

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए ॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा ॥
पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी ॥ (श्रीगरुड़)

हे नाथ (श्रीकाकभुशुण्डिजी) ! मोहरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे लिये आप जहाज हुए । आपने मुझे बहुत प्रकारके सुख दिये (परम सुखी कर दिया) । मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकारके बदलेमें उपकार) नहीं हो सकता । मैं तो आपके चरणोंकी बार-बार वन्दना करता हूँ । आप पूर्णकाम हैं और श्रीरामजीके प्रेमी हैं । हे तात ! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है ।

* * * * *

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

हे पार्वती ! सुनो, वे लोग अभागे हैं, जो भगवान्को छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं ।

× × × × ×

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी ॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥
देहिं परमगति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी ॥

(भगवान् शंकर)

ब्राह्मणोंका मांस खानेवाले वे नरभोजी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं, जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं (परंतु सहजमें नहीं पाते) । हे उमा ! श्रीरामजी बड़े ही कोमलहृदय और करुणाकी खान हैं । (वे सोचते हैं कि) राक्षस मुझे वैर-भावसे ही सही, स्मरण तो करते ही हैं । यह हृदयमें जानकर वे उन्हें परम गति (मोक्ष) देते हैं । हे भवानी ! कहो तो, ऐसे कृपालु (और) कौन हैं ? प्रभुका ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्यागकर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यन्त मन्दबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं ।

ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी ॥

(श्रीराम-वन-गमनका वरदान सर्वथा अहितकर है, यह समझाये जानेपर भी जब कैकेयीने सखियोंकी इस हितकर सीखको नहीं माना) तब सखियोंने रोगको असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया । सब उस (कैकेयी) को मन्दबुद्धि अभागिनी कहती हुई चल दीं ।

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुविधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥ (श्रीकौसल्या)

माता कौसल्या बोलीं—'हे पुत्र राम ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवारवालों और नगरभरको अनाथ करके सुखपूर्वक वनको जाओ । आज सबके पुण्योंका फल पूरा हो गया । कठिन काल हमारे विपरीत हो गया ।' (इस प्रकार) बहुत विलाप करके और अपनेको परम अभागिनी जानकर माता (कौसल्या) श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लिपट गयीं ।

कैकेई भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे॥
जौं प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥
× × × ×
जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥ (श्रीभरत)

कैकेयीसे उत्पन्न देहमें प्रेम करनेवाले ये पामर प्राण भरपेट (पूरी तरहसे) अभागे हैं । जब प्रियके वियोगमें भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं, तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँगा-सुनूँगा ।········जीवनका उत्तम लाभ तो लक्ष्मणने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाया । मेरा जन्म तो श्रीरामजीके वनवासके लिये ही हुआ था । मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ ?

नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा। (श्रीविभीषण)

हे नाथ ! रावण एक यज्ञ कर रहा है । उसके सिद्ध होनेपर वह अभागा (रावण) सहज ही नहीं मरेगा ।

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥
हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा॥
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥ (श्रीकाकभुशुण्डि)

बालक घूमते (चक्राकार दौड़ते) हैं, घर आदि नहीं घूमते, पर वे आपसमें एक दूसरेको झूठा कहते हैं । हे गरुड़जी ! श्रीहरिके विषयमें मोहकी कल्पना भी ऐसी ही है, भगवान्‌में तो स्वप्नमें भी अज्ञानका प्रसङ्ग (अवसर) नहीं है । किंतु जो मायाके वश, मन्दबुद्धि और भाग्यहीन हैं और जिनके हृदयपर अनेकों प्रकारके पर्दे पड़े हैं, वे मूर्ख हठके वश होकर संदेह करते हैं और अपना अज्ञान श्रीरामजीपर आरोपित करते हैं ।

रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥(शूद्रके ब्राह्मण गुरु)

हे तात ! शिवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामजीको भजते हैं, (फिर नीच मनुष्यकी तो बात ही कितनी है ?) ब्रह्माजी और शिवजी जिनके चरणोंके प्रेमी हैं, अरे अभागे ! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है ?

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥
कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
(द्विजदेहमें श्रीकाकभुशुण्डि)

सयाना होनेपर पिताजी मुझे पढ़ाने लगे । मैं समझता, सुनता और विचारता; पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था । मेरे मनसे सारी वासनाएँ भाग गयीं । केवल श्रीरामजीके चरणोंमें लौ लग गयी । हे गरुड़जी ! कहिये, ऐसा कौन अभागा होगा, जो कामधेनुको छोड़कर गदहीकी सेवा करेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बालकका अप्रतिम बलिदान

यह कहानी नहीं, प्रत्युत तेरहवीं शताब्दीके उस मासूम बालकसे सम्बन्धित ऐतिहासिक घटना है, जिसने अपना जीवन उड़ीसाके सूर्य-मन्दिरके लिये उत्सर्ग कर दिया था।

महाराजा नरसिंहदेवको एक विशाल मन्दिर बनानेकी इच्छा हुई। छः सौ फुट ऊँचे मन्दिरके शिखरपर एक विशाल कलश बैठानेकी योजना बनायी गयी। सोलह वर्ष व्यतीत हो गये, परंतु मन्दिर-निर्माण-कार्य पूरा नहीं हो सका। दो हजार टनका भारी प्रस्तर-कलश मन्दिरके शिखरपर स्थापित नहीं किया जा सका।

उड़ीसाके तत्कालीन वास्तुकलाके प्रसिद्ध अभियन्ता, कलाकार, योजनाके उच्चाधिकारी—सभी इस कार्यको पूर्ण करनेमें असमर्थ रहे। इस कारण लज्जाके साथ ही उन्हें भीषण रूपसे दण्डित होनेका भय भी था।

उन लोगोंके सौभाग्यसे अथवा भगवत्कृपासे एक दिन एक पंद्रहवर्षीय बालक अपने पिताके, जो उन कलाकारोंमें प्रधान थे, साथ मन्दिरकी कलाको देखता हुआ टहल रहा था। जन्मसे अपने पितासे अलग रहनेके कारण उसे भवन-निर्माण-कलाका ज्ञान नहीं था; तथापि उसने उसकी बनावटमें हुई त्रुटियोंको देख लिया, परंतु उन्हें वह शिष्टाचारके विरुद्ध समझकर कह नहीं सका। उसके पिताने यह स्वीकार किया कि वे मन्दिर-निर्माण-कार्य पूरा नहीं कर सकेंगे; क्योंकि कलशको शिखरपर स्थापित करनेमें उन्हें सफलता नहीं मिल रही थी। वे एक लज्जाजनक पराजयका अनुभव कर रहे थे। उन्होंने अपनी इस स्थितिसे पुत्रको भी अवगत कराया। बालक मुस्कुराया और उसने कहा—'इसकी त्रुटियोंको मैंने देख लिया है और उन्हें मैं ठीक कर दूँगा। अतएव किसीको चिन्तित अथवा भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है।' पिताने पुत्रके निर्देशमें कार्य करवाया और प्रस्तर-कलश मन्दिरके शिखरपर सुशोभित हो गया।

प्रसन्नतासे पिताका हृदय खिल उठा। हर्षके साथ उन्होंने घोषणा की—'मन्दिर पूर्ण हो गया है।' परंतु अब एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। यदि महाराजको यह ज्ञात हो जायगा कि यह कार्य उन बारह सौ कलाकारोंद्वारा नहीं, अपितु एक छोटे बालकद्वारा सम्पन्न हुआ है तो निश्चय ही वे कलाकारोंको दण्डित करेंगे।

जैसे ही बालकने यह बात सुनी, उसने एक निर्णय लिया। वह मन्दिरके शिखरपर चढ़ा। भगवान् सूर्यदेवका स्मरण करते हुए उसने मन्दिरके पाससे बहती हुई नदीमें छलाँग मार दी। चारों ओरसे 'हाय! हाय!!' का चीत्कार उठा, पर बालक भगवान्के चरणोंपर समर्पित हो चुका था।

वह छोटा-सा बालक अपने पिता एवं बारह सौ कलाकारोंकी प्रतिष्ठा एवं जीवन-रक्षाके लिये अपने आपको न्योछावर कर अमर हो गया। आज भी जो सूर्य-मन्दिरके दर्शन करते हैं और बालकके बलिदानकी गाथा सुनते हैं, उनका मस्तक उस बालकके प्रति श्रद्धासे नत हो जाता है।

(२)

प्यारका जादू!

मेरे पिताजी पुलिस-विभागके कर्मचारी थे। बाल्यकालसे ही उनकी प्रकृति कुछ उग्र थी; फिर पुलिसके कार्यने उनके स्वभावको और भी अधिक उग्र बना दिया था। इस कारण हमलोग उनसे बहुत डरते थे। न जाने क्यों, मुझे बचपनसे ही चोरी करनेकी आदत पड़ गयी थी; परंतु घरमें इस बातका किसीको पता नहीं था। मेरे पिताजी बहुधा अपनी जेबमें बिना गिने ही रुपये रख दिया करते थे। उनमेंसे यदि दो-चार रुपये कम भी हो जायँ तो भी उन्हें उनका पता नहीं लग सकता था। मैं पिताजीकी जेबमेंसे रोज दो-चार रुपये निकाल लेता था। मेरी छोटी बहन मीनाके सिवा इस बातका किसीको पता नहीं था। किंतु वह मेरी इस बुरी आदतको किसीके सामने प्रकट नहीं करती थी, वह मौन रहती थी। शायद उसे मुझसे डर लगता था। इस प्रकार मेरी यह बुरी आदत आगे बढ़ रही थी।

कुछ दिनोंके पश्चात् पिताजीको संदेह होने लगा—'मेरी जेबसे थोड़े-थोड़े रुपये गायब होते रहते हैं।' अब वे गुप्तरूपसे सावधानी रखने लगे, किंतु चोरका पता नहीं लग रहा था। मैं भी पिताजीकी सावधानीसे सतर्क हो गया था कि यदि एक बार भी पकड़ा गया तो मारके रूपमें तमाम चोरीके रुपये वसूल हो जायँगे। मैंने सोचा कि इसका कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाय करना चाहिये । एक-दो बार मैंने यह निश्चय भी किया कि अब चोरी नहीं करूँगा; किंतु मैं अपने मनपर काबू नहीं पा सका । मौका लगनेपर पिताजीकी जेबमेंसे रुपये निकाल ही लेता था । उन दिनों मैं कालेजमें पढ़ रहा था । मित्र-मण्डलीमें अपने स्टैंडर्डको बनाये रखनेके लिये पैसेकी भी अधिक आवश्यकता पड़ती थी । बहुत विचार करनेके बाद मैंने निश्चय किया कि अब कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे चोरीका काम चालू रहे, पैसे बराबर मिलते रहें और चोरका पता भी न चले । पिताजीको धोखा देनेका मैंने निश्चय किया ।

एक दिन प्रातःकाल मौका पाकर मैंने पिताजीकी जेबमेंसे बीस रुपये चुरा लिये । बहन मीना उस समय मैट्रिक (एस्० एस्० सी०) में पढ़ रही थी । उस समय वह प्रातःकालीन स्कूलमें पढ़नेके लिये गयी हुई थी । मैंने धीरेसे मीनाकी एक किताबमें उन बीस रुपयोंको छिपा दिया । मैंने यह काम सुनियोजितरूपसे किया; कारण, बीस रुपये चोरी हो जानेका पता लग जानेकी विशेष सम्भावना थी और उस समय मेरी यह तरकीब मुझे बचानेमें सहायक होती । थोड़ी देर पश्चात् पिताजीको यह ज्ञात हो गया कि जेबमेंसे बीस रुपये गायब हो गये हैं । आजतक तो दो-चार रुपये ही गायब होते थे और आज ''? एक साथ बीस रुपये गायब हो गये ! पिताजीने घरमें सबसे पूछना आरम्भ किया ।

मैंने अभिनयका आश्रय लिया । प्रथम तो मैंने अनजान बनकर पिताजीको विश्वासमें ले लिया और फिर इधर-उधर देखनेका अभिनय करने लगा, जैसे कि मैं पिताजीकी चोरीका पता लगानेमें उनकी सहायता कर रहा हूँ । धीरे-धीरे मीनाकी पुस्तकोंकी छान-बीन होने लगी । एक पुस्तकमेंसे दस-दस रुपयोंके दो नोट मिल गये ।

मुझे लगा कि मेरा मार्ग साफ हो गया । अब भविष्यमें जब भी रुपये गायब होंगे, तब मीनाका ही नाम उन्हें चुरानेवालीके रूपमें लिया जायगा—चाहे मीना इसे स्वीकार करे या न करे; क्योंकि यहाँ तो प्रत्यक्ष प्रमाण मिल चुका था । अब चिन्ताकी कोई बात नहीं थी । मीना स्कूलसे लौटी । पिताजीने उसे अपराधी मानकर दण्ड देना आरम्भ किया । पिताजीका पुलिसवालों-जैसा मिजाज जो था ! ······ओह ! आज भी उस दण्डका स्मरण आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं । बुरी तरह पिटाई होनेपर मीनाने अपराध स्वीकार कर लिया ।

दिन बीता, रात हुई; पर मुझे नींद नहीं आयी । मेरा हृदय मर्माहत था । उस दिन सायंकाल मुझे भोजन भी रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ । मेरे अन्तर्हृदयमें इस कष्टका अनुभव हो रहा था कि आखिर मीनाने निर्दोष होते हुए भी अपराधको स्वीकार क्यों किया । मेरे मस्तिष्कका बोझ असह्य हो रहा था । किसी प्रकार रात्रि समाप्त हुई । दिन होनेपर मैंने मीनासे एकान्तमें प्रश्न किया—'तुमने अपराध स्वीकार क्यों किया ?' उसने उत्तर दिया—'भैया ! आप मेरे बड़े भाई हैं ! मुझे हर परिस्थितिमें आपका सम्मान करना चाहिये । अतएव मैं आपका नाम कैसे लेती और पिताजी नाम जाने बिना शान्त होनेवाले नहीं थे । अतएव मैंने अपना नाम अपराधीके रूपमें ले लिया । बड़े भैयाके सम्मानके लिये जितना सहन किया जाय, कम ही है ।'

मीनाका प्यारभरा उत्तर सुनकर मेरे हृदयमें ग्लानि उत्पन्न हो गयी—'मैं मीनाका बड़ा भाई हूँ, किंतु क्या मेरेमें बड़ा भाई होनेकी योग्यता है ?' यह विचार उदय होते ही मेरा मस्तक मीनाके समक्ष झुक गया । बस, उसी दिनसे मैंने चोरी न करनेकी प्रतिज्ञा ले ली । उस दिनसे जैसे मेरा बड़ाभाईपना मिट गया और मीना मेरी बड़ी बहिन बन गयी । आज भी मेरा मन और मस्तिष्क—दोनों मीनाके सामने आते ही झुक जाते हैं । मीनाने उस दिन कितनी उत्तम भावना, कितना प्यार और कितनी सहनशक्तिका परिचय दिया—आज भी मेरा हृदय उनकी स्मृतिसे द्रवित हो रहा है । सचमुच विशुद्ध प्यारका जादू विलक्षण होता है ।

'अखण्ड आनन्द' —अर्जुन राउलजी

(३)

निर्मम विधि

पण्डित श्रीकंजनाभजी मिश्र मेरे गाँव (धानापुर, वाराणसी) के निवासी थे । वे अत्यन्त सरल, स्नेही, हँसमुख, संस्कृतके विद्वान् एवं विनोदी थे । उनकी विनोदपूर्ण बातोंसे बालक, युवा और वृद्ध—सभी हँसने लगते और प्रसन्न हो जाते ।

एक बार उनकी पीठमें बहुत बड़ा फोड़ा हो गया । पिताजी उन्हें देखने गये । श्रीमिश्रजी महाराज चारपाईपर पेटके बल लेटे हुए थे । फोड़ा इतना बड़ा था कि उनकी समूची पीठ सूज गयी थी । उसे देखकर ही उनकी पीड़ाका अनुमान हो सकता था । वे दायीं-बायीं करवट भी नहीं बदल सकते थे । केवल लंगोट पहने श्रीभगवान्का नाम ले-लेकर कराह रहे थे ।

पिताजीने उनका समाचार पूछा तो उन्होंने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ाका वर्णन जिन शब्दोंमें और जिस प्रकार किया, उसे सुनकर उनकी अत्यन्त करुण स्थितिमें भी मुझे हँसी आ गयी। अद्भुत कष्ट-सहिष्णुता थी उनमें। निश्चय ही उनकी जीवनरक्षाकी आशा नहीं थी।

उनके चरणोंका स्पर्श कर पिताजी चलने लगे तो उनके पुत्र श्रीव्रजमोहनजी मिश्र पिताजीके साथ घरके बाहर आये। श्रीमिश्रजी अब दो-चार दिनोंमें ही विदा हो जायँगे, इस विश्वाससे उनके पुत्र श्रीव्रजमोहनजीने सूखी लकड़ियोंके ढेरकी ओर संकेत करते हुए मेरे पिताजीसे कहा—'भैया! ये लकड़ियाँ मैंने जुटा ली हैं। गेहूँ भी आ गया है। अब पिताजीके श्राद्धादिकी कोई चिन्ता नहीं है। मैंने सारी व्यवस्था कर ली है।'

श्रीमिश्रजी मेरे पिताजीको अत्यधिक प्यार करते थे। पिताजी जब भी घर जाते, श्रीमिश्रजी स्वयं डंडेके सहारे चलकर मेरे घर आते। चरण-स्पर्श करनेके पूर्व ही मङ्गलकर आशीष् देने लगते और घंटों मेरे घरपर बैठकर बातें करते रहते। बड़ा सुख मिलता उनकी बातोंसे। इन बातोंको स्मरणकर पिताजी बड़े दुःखी थे। उदास-मन घर लौटे और गोरखपुर चले आये।

लगभग तीन मास बाद मेरे पिताजी जब पुनः घर गये, तब दूसरे दिन उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। पिताजी बैठकेपर बैठे थे कि देखा, पूज्य पं० श्रीकंजनाभजी मिश्र अपनी लाठीके सहारे धीरे-धीरे बैठकेकी ही ओर आ रहे थे। पिताजी हर्षोल्लाससे उठकर खड़े हो गये और आगे जाकर श्रीमिश्रजीके चरणोंपर सिर रख दिया। आशीष् देते हुए श्रीमिश्रजी महाराज आकर चारपाईपर बैठ गये।

'मैंने सुना कि तुम कल आये तो मिलने चला आया, बेटा।' श्रीमिश्रजी महाराजने चारपाईपर बैठते ही पिताजीसे कहा। 'मैं तुम्हें सदा याद किया करता हूँ।'

पिताजी तो श्रीमिश्रजी महाराजकी प्राणरक्षा हो जानेसे अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने श्रीमिश्रजीसे पूछा—'आपका फोड़ा कैसे ठीक हुआ?'

'फोड़ा तो भगवान्ने ठीक कर दिया, बेटा।' श्रीमिश्रजीने धीरे-धीरे अपने सहज विनोदका पुट देते हुए कहा। 'उसकी लीलामें मनुष्यका कोई वश नहीं। मेरी असह्य पीड़ा देखकर व्रजमोहन मुझे वाराणसी अस्पतालमें ले गये। वहाँ डाक्टरने मुझे सुँघनी (क्लोरोफार्म) सुँघाते हुए कहा—'पण्डितजी गिनती गिनिये।'

पू० श्रीमिश्रजी महाराजने आगे कहा—'बेटा! मैं निन्यानबेतक गिन गया, पर मैं बेहोश नहीं हुआ। डाक्टर चकित था। वह सोचता था कि पण्डितजी बेहोश हो जायँ, तब मैं चीर-फाड़ (ऑपरेशन) करूँ; किंतु मुझे उसकी दवासे तनिक भी नशा नहीं हो रहा था। परेशान डाक्टरसे मैंने कहा—'डाक्टर साहब! मैं जीवनभर भंगका बड़ा गोला लेता आया हूँ। मुझपर तुम्हारी इस सुँघनी-फुँघनी (क्लोरोफार्म) का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। तुम अपने इच्छानुसार चीर-फाड़ करो। मैं न हिलूँ-डोलूँगा और न आह-ऊह करूँगा।'

डाक्टर मेरी बात सुनकर हैरान था। पर वह करता ही क्या? तेज धारकी छुरी ली और लगा मांस काटने, छीलने। बेटा! मैंने उफतक नहीं की।

डाक्टरने जीभर मेरे फोड़ेको काटा, मांस और पीब-मवाद बाहर करके दवा लगायी। फिर पट्टी बाँधकर उसने सूई लगवा दी। मेरा धैर्य देखकर डाक्टरने कहा—'वाह पण्डितजी, वाह! मैंने जीवनमें इतना धीरज रखनेवाला आदमी नहीं देखा।'

'और महीनेभरमें मैं ठीक हो गया।' इतना कहनेके बाद पूज्य श्रीमिश्रजी महाराजका मुख कुछ म्लान हो गया। उन्होंने सिर नीचे किये कहा—'पर बेटा! मेरे ठीक होते ही एक अत्यन्त दुःखद घटना हो गयी; पर सब श्रीभगवान्की लीला है।'

'क्या हुआ, पण्डितजी!' अत्यन्त पीड़ाके क्षणोंमें भी हँसने और हँसानेवाले श्रीमिश्रजीका उतरा हुआ मुँह देखकर मेरे पिताजीने सशङ्क होकर उनसे पूछा।

'मैं अच्छी तरह स्वस्थ भी नहीं हो पाया कि मेरा जवान बेटा व्रजमोहन चला गया।'

'एं!' पिताजी घबराहटमें पूछने ही जा रहे थे कि पू० श्रीमिश्रजीने कहा—'उसने मेरे शव-दाहके लिये जो लकड़ियाँ एकत्र की थीं, उनसे उसीका दाह-कर्म किया गया। भगवान्की लीला बड़ी अद्भुत है।'

अमित-धैर्य-सम्पन्न, सबको हास्य और आनन्द वितरण करनेवाले वयोवृद्ध श्रीमिश्रजी महाराजसे पिताजी क्या कहते? उनके मुँहसे बरबस निकल गया—'विधिका विधान कितना निष्ठुर है!'

'सामान तो सौ बरसका, कलकी खबर नहीं।'

—कुमारी मीनाक्षी दुबे

(४)

कर्तव्यपरायणता

घटना कुछ वर्षों पूर्वकी है। गोरखपुरमें एक अंग्रेज डाक्टर थे। वे बड़े ही कर्तव्यपरायण थे। कर्तव्यपालनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने वे अपनी तथा अपने परिवारवालोंकी सुख-सुविधाका तनिक भी ध्यान नहीं रखते थे ।

डाक्टर साहेबकी पत्नीको प्रसव होनेवाला था । एक दिन प्रसव-वेदना आरम्भ हुई । डाक्टर साहेब घरपर ही थे । इतनेमें अस्पतालसे टेलीफोन आया'……'एक सज्जन बड़ी ही कष्टकी स्थितिमें अस्पताल आये हैं । कृपया शीघ्र पधारकर उनकी चिकित्साकी व्यवस्था करें ।'

डाक्टर साहेब टेलीफोन सुनकर तुरंत अपनी पत्नीके पास गये और बोले—'प्रिये ! तुम्हारी अवस्था स्वाभाविक है और नर्स तुम्हारी सेवामें हैं। उधर अस्पतालमें एक गम्भीर रोगी आया है; उसकी अवस्था सांघातिक हो रही है । मेरे लिये उसे सँभालना आवश्यक है । मैं अस्पताल जा रहा हूँ ।'

प्रसव-काल नारीके जीवनका विशेष महत्त्वपूर्ण समय होता है । दो प्राणियोंके जीवनका प्रश्न निरन्तर बना रहता है । ऐसे समय परिवारके स्वजन, परिचित व्यक्ति नारीके समीप रहते हैं । डाक्टर साहेबके परिवारमें वे तथा उनकी पत्नी थीं । अतएव पत्नीकी ऐसी स्थितिमें उनका घरपर उपस्थित रहना अनिवार्य था, परंतु दूसरे महत्त्वपूर्ण कर्तव्यके सामने इस कर्तव्यको गौण मानकर वे अस्पताल जानेको तैयार हो गये । उधर पत्नी प्रसव-वेदनाके समय पतिके घरसे बाहर जानेकी बात सुनकर सन्न रह गयी । वह वेदनासे ही घायल थी, फिर ऐसी संकटकी घड़ीमें पतिका छोड़कर जाना उसे बड़ा ही अरुचिकर हुआ । वह एक भी शब्द न बोल पायी थी कि डाक्टर साहेब अस्पतालके लिये चल दिये ।

अस्पताल पहुँचकर उन्होंने देखा कि रोगीका तत्काल ऑपरेशन करना आवश्यक है । वे रोगीको ऑपरेशन-थियेटरमें ले गये । लगभग तीन घंटे उन्हें ऑपरेशन करनेमें लगे । ऑपरेशनका कार्य सम्पन्न करके डाक्टर साहेब घर लौटे; देखा—पत्नीके बच्चा हो गया है । उन्होंने बड़े ही प्यारसे पत्नीसे उसकी अवस्थाके विषयमें पूछ-ताछ की । पत्नी तथा नर्सोंने बताया कि भगवान्‌की कृपासे बच्चा स्वाभाविक रूपमें उत्पन्न हो गया; परंतु पत्नीने यह उपालम्भ दिया—'ऐसे संकटके समय आप मुझे छोड़कर अस्पताल क्यों चले गये ?'

डाक्टर साहेबने धीरेसे उत्तर दिया—'तुमसे अधिक उस रोगीको मेरी आवश्यकता थी ।'

पत्नी उत्तर सुनकर चुप हो गयी, पर उसके हृदयमें पतिके इस रूखे व्यवहारकी कसक बराबर बनी रही; किंतु कर्तव्यपरायण डाक्टर साहेबपर पत्नीकी इस रुखाईका कुछ भी प्रभाव नहीं था ।

(५)

सेवाकी लगन

कुछ दिनों पूर्व एक कन्या-माध्यमिक-विद्यालयकी ओरसे कुछ छात्राएँ प्रवासपर गयी थीं । उस प्रवासमें गये हुए एक शिक्षकने बताया—जब अजमेरके आनासागर तालाबको देखकर हमलोग आगे बढ़ रहे थे, तब हमारे मार्गदर्शकने सूचित किया कि वहाँसे समीप ही एक दर्शनीय स्थान है । अतः १२५ छात्राओंके साथ हम छः-सात शिक्षक उस रास्तेपर चल पड़े ।

दोपहरका समय था । हमलोग नाश्ता करके निकले थे; अतः कुछ लड़कियोंको प्यास लग गयी थी । मार्गदर्शकने कहा—'थोड़ी ही दूरपर एक प्याऊ है, वहाँ ठंडा जल मिलेगा ।' कुछ दूर चलनेपर हमलोग उस प्याऊके पास खड़े हो गये । एक बड़े मकानके सामनेके चबूतरेपर बैठकर एक वृद्ध सज्जन सभीको पानी पिला रहे थे । वृद्ध सज्जनकी उम्र लगभग ६५ वर्ष थी । पानी पीनेवाले लगभग १५० व्यक्ति एक साथ पहुँच जानेपर भी उस वृद्धके चेहरेपर प्रसन्नता झलक रही थी; उसके मुखपर परीशानी या उपेक्षाकी छाया भी नहीं थी । वृद्ध व्यक्तिकी सहायता करनेके लिये हमलोग भी मटकोंमेंसे पानी ले-लेकर पिलाने लगे । वह वृद्ध कुएँसे पानी ला-लाकर मटकोंमें डालने लगा । सब लोगोंने पूर्ण तृप्तिके साथ पानी पी लिया । मेरे मनमें आया कि इस बूढ़ेको कुछ इनाम देना चाहिये और मैंने एक रुपया निकालकर बूढ़ेकी ओर बढ़ाया । बूढ़ेने मेरे सामने हाथ जोड़ दिये और रुपया लेना अस्वीकार कर दिया । मैंने समझा—बूढ़ेको एक रुपया कम लगता होगा; मैं एक-दो रुपया और निकालनेवाला था कि वह वृद्ध मेरे चरणोंपर गिरकर नमस्कार करने लगा । वृद्धको कुछ भी कहनेका मेरा साहस समाप्त हो गया; परंतु मैंने रुपया वहीं रख दिया और हमलोग आगे चल दिये ।

आगे चलनेपर अजमेरी गेट आया । उसके पास कोयलेकी एक बड़ी बखार थी । मार्गदर्शकने बखारकी ओर संकेत करते हुए कहा—'देखिये साहब, कोयलेकी यह बड़ी बखार है । सारे शहरके दूकानदार यहींसे कोयला खरीद करके बेचते हैं ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हमलोग कोयलेकी बखार देखनेको नहीं निकले हैं'—एक शिक्षकने हँसते हुए कहा। मार्गदर्शकने तुरंत उत्तर दिया—'यह बखार दिखानेका मेरा हेतु दूसरा है, साहब! हमलोगोंने अभी जिसके हाथका पानी पिया था, उसी वृद्धकी यह कोयलेकी बखार है।' हमलोग आश्चर्यचकित होकर बखार देखने लगे। सचमुच कोयलेका अम्बार लगा हुआ था। मैंने पूछा—'इतनी बड़ी बखारका मालिक प्याऊमें पानी पिलाता है?'

'हाँ, साहब!' मार्गदर्शक बोला। 'उस वृद्ध महाशयके चार पुत्र यही व्यापार चलाते हैं तथा उसके चार बँगले इसी शहरमें हैं। वृद्धावस्था हो जानेसे उसने व्यापारका काम देखना छोड़ दिया है। निवृत्तिकी अवस्थामें उसको सेवाकी धुन लगी है। वह दिनभर इसी लगनसे अपने ही हाथोंसे सबको पानी पिलाता रहता है।'

पानी पिलानेवाले वृद्ध महाशयका ऐसा परिचय प्राप्तकर हमलोग अवाक् रह गये। हमारे मनोंमें यह विचार उत्पन्न हुआ—इतने बड़े सेवाभावी वृद्ध सज्जनके सामने एक रुपया फेंककर हमलोगोंने सचमुच उनकी सेवावृत्तिका अपमान ही किया था। 'जन-कल्याण' —बहादुरशाह पण्डित

(६)

जब स्वयं भगवान्‌ने ड्यूटी दी

'अरे गजब हो गया'—भक्त रामकृष्णदास घबराकर सहसा बोले।

'क्या हुआ, भाई?'—कई भक्तोंने एक साथ पूछा।

'इस रातको तो मेरी ड्यूटी थी पुलिस लाइनमें। मैं तो बिल्कुल भूल ही गया।' वे कुछ घबराकर बोले।

रामायणके अनन्य प्रेमी भक्त, कांस्टेबल रामकृष्णदास, मानसपारायणमें कुछ ऐसे तल्लीन हो गये कि उन्हें उस रातको ड्यूटीपर जानेका स्मरण ही नहीं रहा। वे आत्म-विस्मृत हो गये थे। भक्तोंने सहानुभूति प्रकट की। शीघ्रतासे उन्होंने वर्दी पहनी, पेटी लगायी और लपकते हुए पहुँचे पुलिस लाइन।

'माफ करिये, साहब!'—सिपाही रामकृष्णने अंग्रेज पुलिस सुपरिंटेंडेंटको सलाम करके गिड़गिड़ाते हुए कहा—'मैं कल रात ड्यूटीपर हाजिर नहीं हो सका।'

'वेल मैन!'—साहब आश्चर्य-मुद्रासे बोला—'क्या बोलटा टुम। क्या टुम नशा करटा है? टुम हाजिर था नाइट में, टो ऐसा माफिक क्यों बोलटा? रजिस्टरमें तुम्हारा साइन है।'

आश्चर्यसे अवाक् कांस्टेबल रामकृष्णने साहबकी बात सुनी। साहबने मेजपर रखी घंटी बजायी, अर्दली हाजिर हुआ। हाजिरी रजिस्टर लानेका आदेश हुआ उसे। रजिस्टर आया। साहबने उन्हें खोलकर दिखाया—'डेखो मैन। इढर टुमारा डसखट।'

'आँखें फाड़कर देखा रामकृष्णने; उन्हींके हस्ताक्षर हैं। किसने किये हूबहू मेरे-जैसे दस्तखत! और कौन आया मेरी ड्यूटीपर? भावनाओंका झंझावात हृदयको झकझोरने लगा। एक बार, दो बार, कई बार देखे उन्होंने वे हस्ताक्षर। और तब सहसा उनके अन्तःपटपर बिजली-सी कौंध गयी। धनुर्बाणधारी, भक्त-भयहारी, भगवान् श्रीराघवेन्द्रकी मुनिमन-हारी छवि मुस्करा उठी उनके हृदय-सिंहासनपर। 'तुम्हीं थे, मेरे सरकार! रातमें इस अधम जनकी ड्यूटी बजाने-वाले।'—आवरण हट गया और साथ ही प्रेमका बाँध टूट पड़ा। आँसुओंकी वेगमयी धारा प्रवाहित हो चली। अंग्रेज अवाक् होकर इस पागल सिपाहीको देखने लगा। 'टुम क्यों रोटा है?'—वह कहता ही रहा और ये लौट पड़े उसी क्षण। 'हाय! मेरे प्रभुको इस अधम जनके लिये रातभर ड्यूटी देनी पड़ी।'

पुलिसकी वर्दी-पेटी आदि, किसीके द्वारा वापस कर दी भक्तराज रामकृष्णदासने और अपने त्याग-पत्रमें लिख दिया—'जिसने मेरी ड्यूटी पूरी की, अब मैं उसीकी ड्यूटी पूरी करने जा रहा हूँ, उसीकी खोजमें'''और वे चले गये उसी रातको श्रीअयोध्यापुरी, अपने सरकार श्रीरामका सामीप्य प्राप्त करने।

यह घटना कोई कल्पित कहानी नहीं है। लगभग आधी शताब्दी पूर्व हमारे नगर शाहजहाँपुर (उत्तर प्रदेश) में यह अविस्मरणीय घटना घटित हुई थी। नौकरी छोड़कर परम भागवत रामकृष्णदास श्रीअयोध्यापुरी पहुँचे। साधकसे सिद्ध बनकर अन्तिम दिनोंमें उन्होंने शाहजहाँपुरको पवित्र किया था। आज भी इस नगरके मुहल्ला सराय काइयाँमें उनकी समाधि विद्यमान है और आज भी ऐसे एकाध वृद्ध जन हैं इस नगरमें, जिन्हें उन भक्तप्रवरके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

—कालीचरण दीक्षित 'कवीश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमश्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका व्यवहार एवं परमार्थमें सहायक अनमोल साहित्य

निबन्ध-संग्रह

	मूल्य
१–भगवच्चर्चा–भाग १ (तुलसीदल)	.६०
२–भगवच्चर्चा–भाग २ (नैवेद्य)	.६०
३–भगवच्चर्चा–भाग ३	.९०
४–भगवच्चर्चा–भाग ४	.९५
५–भगवच्चर्चा–भाग ५	.९०
६–भगवच्चर्चा–भाग ६ (पूर्ण समर्पण)	.९०
७–भवरोगकी रामबाण दवा	.३५
८–श्रीराधामाधव-चिन्तन	५.००
९–श्रीराधामाधव-चिन्तन-परिशिष्ट	२.००

पत्र-संग्रह

(साधना एवं व्यवहारके सम्बन्धमें पत्ररूपमें दिये गये निर्देश)

१०–लोक-परलोकका सुधार–भाग १	.४५
११–लोक-परलोकका सुधार–भाग २	.४५
१२–लोक-परलोकका सुधार–भाग ३	.६०
१३–लोक-परलोकका सुधार–भाग ४	.६०
१४–लोक-परलोकका सुधार–भाग ५	.६०

पद-संग्रह

(खड़ी बोली, व्रजभाषा एवं राजस्थानीके पदोंका संग्रह)

१५–पत्र-पुष्प (भजन-संग्रह भाग ५)	.१९
१६–प्रार्थना-पीयूष	.१५
१७–हरिप्रेरित हृदयकी वाणी	१.४०
१८–श्रीराधामाधव-रस-सुधा (खड़ी बोलीके अनुवादसहित)	.३०
१९–श्रीराधामाधव-रस-सुधा (व्रजभाषाके अनुवादसहित)	.२०
२०–श्रीराधामाधव-रस-सुधा (केवल मूल)	.१०
२१–व्रजरस-माधुरी	.७०
२२–व्रजरसकी लहरें	१.७०
२३–मधुर–भाग १ (झाँकी सं०-४०)	.६५
२४–मधुर–भाग २ (झाँकी सं०-३३)	.६०
२५–शिव-चालीसा	.०८

समाज-निर्माणात्मक साहित्य

२६–हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप	.०८
२७–सिनेमा—मनोरञ्जन या विनाशका साधन	.०८
२८–विवाहमें दहेज	.०४
२९–नारी-शिक्षा	.४५
३०–स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	.१२
३१–वर्तमान शिक्षा	.१२
३२–गोवध—भारतका कलङ्क	.०४
३३–बलपूर्वक देवमन्दिर-प्रवेश और भक्ति	.०४

साधना-साहित्य

३४–मानव-धर्म	.२५
३५–साधन-पथ	.२०
३६–श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सवकी प्राचीनता, महिमा और पूजाविधि	.३०
३७–मनको वशमें करनेके कुछ उपाय	.१०
३८–श्रीभगवन्नाम	.०८
३९–दिव्य संदेश	.०३
४०–गीतामें विश्वरूप-दर्शन	.०८
४१–ब्रह्मचर्य	.०८
४२–सत्सङ्गके बिखरे मोती	.९०
४३–मनुष्य सर्वप्रिय और सफल-जीवन कैसे बने ?	.०७
४४–जीवनमें उतारनेकी सोलह बातें	.०३
४५–कल्याणकारी आचरण	.१५
४६–प्रार्थना	.२५
४७–गोपी-प्रेम	.१२
४८–रस और भाव	.१५

उद्बोधक साहित्य

(जीवनमें आशा, उत्साह, स्फूर्ति प्रदान करनेवाला साहित्य)

४९–कल्याण-कुञ्ज भाग १	.३०
५०–कल्याण-कुञ्ज भाग २	.३५
५१–कल्याण-कुञ्ज भाग ३	.४५
५२–मानव-कल्याणके साधन (कल्याण-कुञ्ज भाग ४)	१.००
५३–दिव्य सुखकी सरिता (कल्याण-कुञ्ज भाग ५)	.५०
५४–सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (कल्याण-कुञ्ज भाग ६)	.६२
५५–दैनिक कल्याण-सूत्र	.२५
५६–आनन्दकी लहरें	.८
५७–दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य	.८

भक्त-गाथा-साहित्य

५८–उपनिषदोंके चौदह रत्न	.४५

टीका-साहित्य

५९–प्रेम-दर्शन (श्रीनारदभक्तिसूत्रोंकी हिंदी व्याख्या)	.३५

विशेष जानकारीके लिये सूचीपत्र मँगाइये ।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नमः शिवाय' मन्त्रकी वन्दना

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न'काराय नमः शिवाय॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म'काराय नमः शिवाय॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि'काराय नमः शिवाय॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व'काराय नमः शिवाय॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य'काराय नमः शिवाय॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥

(श्रीशंकराचार्य)

जिनके कण्ठमें साँपोंका हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अङ्गराग (अनुलेपन) है, दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हैं (अर्थात् जो वस्त्रहीन हैं), उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। गङ्गाजल और चन्दनसे जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमोंसे जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दीके अधिपति, प्रमथ-गणोंके स्वामी महेश्वर 'म'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजीके मुख-कमलको विकसित (प्रसन्न) करनेके लिये जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्षके यज्ञका नाश करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजामें बैलका चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने तथा इन्द्र आदि देवताओंने जिनके मस्तककी पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन 'व'-कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथमें पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।

जो शिवके समीप इस पवित्र पञ्चाक्षरका पाठ करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता और वहाँ शिवजीके साथ आनन्दित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५७,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, अप्रैल १९७३

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—'नमामि रामं रघुवंशनाथम्' (संकलित पद्य—श्रीरामचरितमानस) ...	६५३
२—कल्याण ('भाईजी') ...	६५४
३—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश ...	६५५
४—ईश्वर-समर्पण-बुद्धि [पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश] (प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी ऐडवोकेट)	६५९
५—एक महात्माका प्रसाद	६६१
६—परमार्थकी पगडंडियाँ [नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)के अमृत-वचन] ...	६६३
७—'आसन मार्‍यो पै आस न मारी' (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ...	६६६
८—चेतावनी [कविता] (स्वामी हरिदासजी)	६६९
९—गृह-दीप बुझते जा रहे हैं (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	६७०
१०—दया-अम्बुसे धोना होगा मेरा जीवन ! [कविता] (अनुवादक—श्रीमाधवशरणजी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ...	६७२
११—आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ ...	६७३
१२—प्रार्थना (तुम्हारा ही अपना एक) ...	६७५
१३—स्वामी सहजानन्द (श्रीरामलाल) ...	६७६
१४—संस्कारोंपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है (स्वामी विवेकानन्द) ...	६८२
१५—विप्र ही खाना हो तो अंडा खाइये ! ('युग-निर्माण-योजना'से साभार) ...	६८३
१६—आज धर्मपर एक नैतिक संकट क्यों आया हुआ है ? (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	६८४
१७—भूल-सुधार (सम्पादक) ...	६८६
१८—'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'श्रीगणेश-अङ्क'	६८७
१९—कर्मकी गहनता (संकलित—महाभारत)	६८९
२०—धन्य 'रामचरित्रमानस', धन्य तुलसीदास ! [कविता] (कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)	६९०
२१—'मानस'से धर्म और अध्यात्मविद्याका विस्तार (देशरत्न डा० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी)	६९१
२२—'मानस'का संदेश ...	६९२
२३—मानवता और रामचरितमानस (डा० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्० ए०, डी० लिट्०)	६९४
२४—'मानस'के प्रणेता श्रीतुलसीदास—महापुरुष, महाकवि ! (रे० एड्विन ग्रीव्ज़ महोदयके विचार)	७०२
२५—पढ़ो, समझो और करो ...	७०४

चित्र-सूची

१—भगवान् शंकर	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२—श्रीसीताराम	(तिरंगा) ...	६५३

Free of charge] जय विराट जय जगतपते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

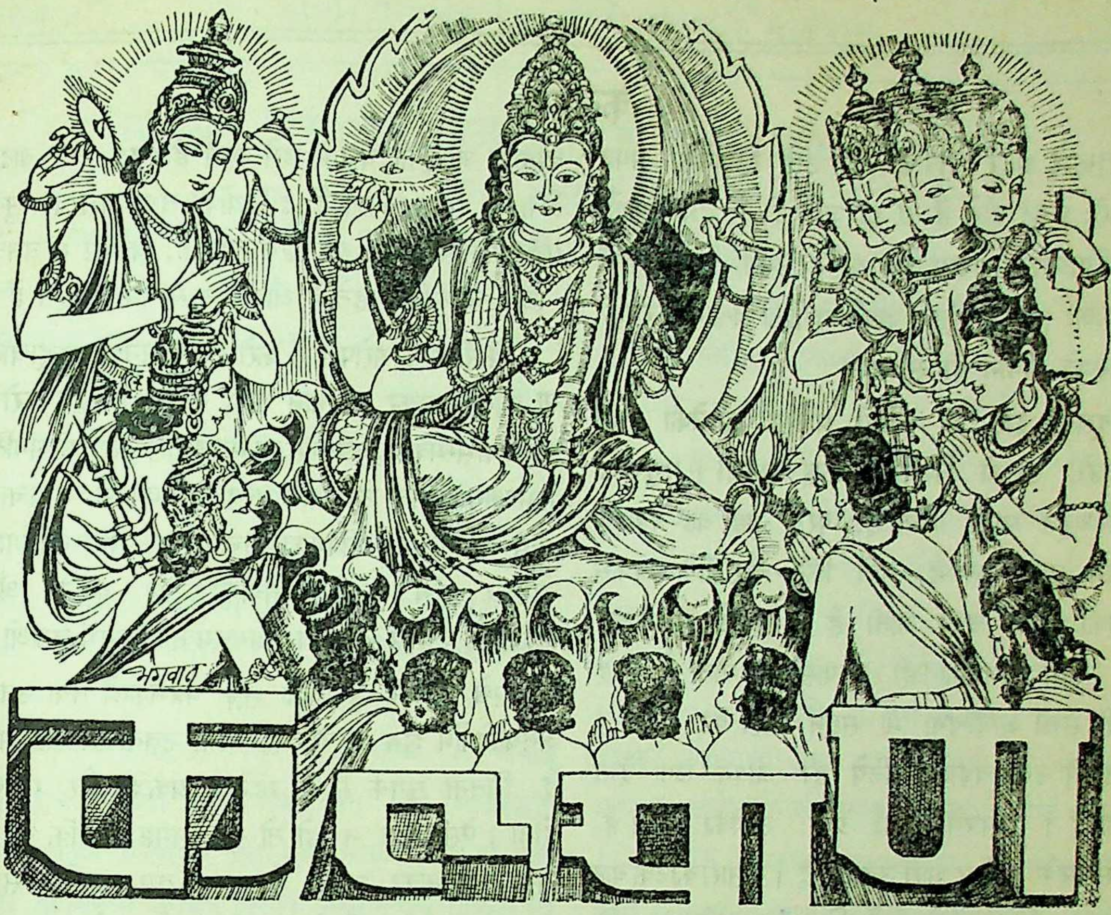

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । २ । १-२)

वर्ष ४७ } गोरखपुर, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, अप्रैल १९७३ { संख्या ४
पूर्ण संख्या ५५७

'नमामि रामं रघुवंशनाथम्'

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

(मानस; अयो० ३)

'नील कमलके समान श्याम और कोमल जिनके अङ्ग हैं, श्रीसीताजी जिनके वाम भागमें विराजमान हैं और जिनके हाथोंमें क्रमशः अमोघ वाण और सुन्दर धनुष हैं, उन रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

तुम्हारे अंदर दोष हैं तो उन्हें छिपानेका प्रयत्न न करो; प्रकट होते हैं तो हो जाने दो। हाँ, सद्गुणोंको छिपानेका अवश्य यत्न करो, उनके प्रकट होनेमें सकुचाओ। अपने मुँहसे अपने गुणोंका बखान करनेको तो मरणके समान ही समझो।

दूसरेके द्वारा भी अपनी प्रशंसा सुननेकी इच्छा न करो, उसको विषभरी मिठाई समझो। मनुष्यको बड़ाई बहुत प्यारी लगती है; परंतु जहाँ वह बड़ाईके चक्करमें पड़ जाता है, वहाँ फिर चौरासीके चक्रसे छूटनेकी आशा चली जाती है। बड़ाई सुननेवाला सदा बड़ाई सुननेका ही अभ्यासी हो जाता है, वह अपनी सच्ची आलोचना भी सहन नहीं कर सकता। परिणाममें उसे बड़ाईके लिये ही जीवन लगा देना पड़ता है। संसारमें बड़ाई प्रायः उसीकी होती है, जो संसारके काँटेपर भारी उतरता है। संसारी काँटेके बाट आजकल अधिकांशमें वे ही हैं, जिनसे मनुष्य केवल प्रकृतिका ही उपासक बनता है, चेतनसे जड होना चाहता है।

सुनो तो साहस करके निन्दा सुनो; निन्दासे घबराओ नहीं। अवश्य ही शास्त्र और आत्माकी ध्वनिके विपरीत कोई निन्दनीय काम तुम कभी न करो। महात्मा पुरुष तो निन्दा-स्तुतिके परे होते हैं, वे समबुद्धि होते हैं। महात्माओंका पदानुसरण करनेवालोंको भी पहले निन्दासे प्रेम और स्तुतिसे भय करना पड़ता है, तभी वे आगे चलकर महात्माका पद प्राप्त कर सकते हैं।

निन्दाके योग्य पाप-कर्म कभी न करो, पाप-कर्म करनेवाला महात्मा कभी नहीं बन सकता। सत्कर्म करो। महात्मा पुरुषोंको खोजकर उनके आज्ञानुसार चलो। महात्मा न मिलें तो कम-से-कम उन लोगोंसे तो सदा बचते रहो, जो पर-स्त्री, पराये धन और पर-निन्दाके प्रेमी हैं। उन लोगोंका सङ्ग भी यथासाध्य छोड़ दो, जो विषयी हैं, विलासी हैं, भगवान्‌का भजन छोड़कर जगत्‌की चर्चामें लगे रहते हैं, तर्क और वाद-विवादमें समय बिताते हैं, इन्द्रियोंको तथा शरीरको सुख पहुँचानेके लिये सदा यत्न करते रहते हैं, स्वादिष्ट भोजनके लिये लालायित रहते हैं और मान-सम्मान चाहते हैं।

किसीपर दोषारोपण न करो। न अपनेको शुद्धाचारी या त्यागी मानकर अभिमान करो, न किसीसे द्वेष करो। जहाँतक सम्भव हो, अपना समय भजनमें, सत्पुरुषोंकी संगतिमें भगवान्‌की ओर लगानेवाले ग्रन्थोंके अध्ययनमें, सदाचारी साधु-महात्माओंके जीवनका अनुसरण करनेमें, अभिमान छोड़कर सच्चे भावसे गरीबोंकी सेवा करनेमें और अहंकारसे बचकर अपने वर्णाश्रमधर्मके पालनमें लगाओ।

सच्चे महात्मा पुरुषोंका सङ्ग करनेवालों तथा उनके अनुयायियोंमें शुद्ध आचरणका होना उतना ही आवश्यक है, जितना सूर्यके सामने रहनेपर प्रकाश और गर्मीका होना। ऐसी बात न हो तो यह समझ लो कि या तो सच्चे महात्माका अभाव है, या तुम उनके सङ्गी अथवा अनुयायी नहीं हो। सङ्गी वह है, जो महात्माके आचरणोंका सङ्ग (अनुकरण) करता है; और अनुयायी वह है, जो उनके कहे अनुसार चलता है।

सच बात तो यह है कि महात्माका सङ्ग तो दूर रहा, श्रद्धायुक्त चित्तसे उनके स्पर्श, दर्शन, चिन्तन, नाम-गुण-श्रवण-कथनसे ही अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, उनकी चरण-धूलिके स्पर्शसे ही चित्तका मल नष्ट हो जाता है। अतएव महात्मा पुरुषोंमें सच्ची श्रद्धा करो, उनका यथार्थ सङ्ग करो, उनके सच्चे अनुयायी बनो। फिर तुम यथार्थ महात्मा बन जाओगे।

महात्माके चरण-चिह्नोंका अनुसरण करो, महात्माके योग्य आचरण करो, महात्मा बनो; यह आकाङ्क्षा कदापि मनमें न उदय होने दो कि लोग मुझे महात्मा मानें या जानें। लोगोंके मानने या जाननेका कुछ भी मूल्य नहीं है; मूल्य तुम्हारे उत्तम आचरणोंका है, तुम्हारी श्रेष्ठ स्थितिका है।

—'भाईजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

गीतामें भक्तिका स्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीता एक अद्वितीय आध्यात्मिक ग्रन्थ है; यह कर्म, उपासना और ज्ञानके तत्त्वोंका भंडार है। इस बातको कोई नहीं कह सकता कि गीतामें प्रधानतासे केवल अमुक विषयका ही वर्णन है। यद्यपि यह छोटा-सा ग्रन्थ है और इसमें सब विषयोंका सूत्ररूपसे वर्णन है, तथापि किसी भी विषयका वर्णन स्वल्प होनेपर भी अपूर्ण नहीं है। इसीलिये कहा गया है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिस्सृता॥

(महा० भीष्म० ४३। १)

'गीता भलीभाँति गान करने योग्य है अर्थात् श्रीगीताजीको भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है—जो गीता स्वयं श्रीपद्मनाभ भगवान् विष्णुके मुखारविन्दसे निकली हुई है। (फिर) अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है?'

इस कथनमें दूसरे शास्त्रोंका निषेध नहीं है, यह तो गीताका सच्चा महत्त्व बतलानेके लिये है। वास्तवमें गीतोक्त ज्ञानकी उपलब्धि हो जानेपर और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। गीतामें अपने-अपने स्थानपर कर्म, उपासना और ज्ञान—तीनोंका विशद और पूर्ण वर्णन होनेके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें कौन-सा विषय प्रधान और कौन-सा गौण है। सुतरां जिनको जो विषय प्रिय है—जो सिद्धान्त मान्य है, वही गीतामें भासने लगता है। इसीलिये भिन्न-भिन्न टीकाकारोंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार गीताके भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं; पर उनमेंसे किसीको हम असत्य नहीं कह सकते। जैसे वेद परमात्माका निःश्वास है, उसी प्रकार गीता भी साक्षात् भगवान्‌की वाणी होनेसे भगवत्-स्वरूप ही है। अतएव भगवान्‌की भाँति गीताका स्वरूप भी भक्तोंको अपनी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारसे भासता है। कृपासिन्धु भगवान्‌ने अपने प्रिय सखा भक्त अर्जुनको निमित्त बनाकर समस्त संसारके कल्याणार्थ इस अद्भुत गीता-शास्त्रका उपदेश किया है।

गीतामें यद्यपि कर्म, भक्ति और ज्ञान—तीनों सिद्धान्तोंकी ही अपनी-अपनी जगह प्रधानता है, तथापि यह कहा जा सकता है कि गीता एक भक्तिप्रधान ग्रन्थ है; इसमें ऐसा कोई अध्याय नहीं, जिसमें भक्तिका कुछ प्रसङ्ग न हो। गीताका प्रारम्भ और पर्यवसान भक्तिमें ही है। आरम्भमें अर्जुन **'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'** (२। ७) कहकर भगवान्‌की शरण ग्रहण करता है और अन्तमें भगवान् **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'** (१८। ६६) कहकर शरणागतिका ही पूर्ण समर्थन करते हैं—समर्थन ही नहीं, समस्त धर्मोंके आश्रयका सर्वथा परित्याग कर केवल भगवदाश्रय—अपना आश्रय ग्रहण करनेकी आज्ञा करते हैं और साथ ही समस्त पापोंसे मुक्त कर देनेका भी जिम्मा लेते हैं। यह मानी हुई बात है कि शरणागति भक्तिका ही एक स्वरूप है। अवश्य ही गीताकी भक्ति अविवेकपूर्वक की हुई अन्धभक्ति या अज्ञानप्रेरित आलस्यमय कर्मत्यागरूप जडता नहीं है; गीताकी भक्ति क्रियात्मक और विवेकपूर्ण है। गीताकी भक्ति पूर्णपुरुष परमात्माकी पूर्णताके समीप पहुँचे हुए साधकद्वारा की जाती है। गीताकी भक्तिके लक्षण बारहवें अध्यायमें भगवान्‌ने स्वयं बतलाये हैं। गीताकी भक्तिमें पापको स्थान नहीं है। भगवान्‌का शरणागत अनन्य भक्त तो वास्तवमें सब और सबमें सर्वदा भगवान्‌को देखता है, वह छिपकर भी पाप कैसे कर सकता है। जो शरणागत भक्त अपने जीवनको परमात्माके हाथोंमें सौंपकर उनके इशारेपर नाचना चाहता है, उसके द्वारा पाप कैसे बन सकते हैं। जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त सब जगत्को परमात्माका स्वरूप समझकर सबकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझता है, वह निष्क्रिय अथवा आलसी कैसे हो सकता है; तथा जिसके पास परमात्मस्वरूपके ज्ञानका प्रकाश है, वह अन्धतममें कैसे प्रवेश कर सकता है।

इसीसे भगवान्ने अर्जुनसे स्पष्ट कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(८।७)

'युद्ध करो, परंतु सब समय मेरा (भगवान्का) स्मरण करते हुए और मुझमें (भगवान्में) अर्पित मन-बुद्धिसे युक्त होकर करो।' यही तो निष्कामकर्मसंयुक्त भक्तियोग है, इससे निस्संदेह परमात्माकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकारकी आज्ञा ९।२७ और १८।५७ आदि श्लोकोंमें दी गयी है।

इसका अर्थ यह नहीं कि केवल कर्मयोग या केवल भक्तियोगके लिये भगवान्ने स्वतन्त्ररूपसे कहीं कुछ भी नहीं कहा है। **'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** (२।४७) **'योगस्थः कुरु कर्माणि'** (२।४८) आदि श्लोकोंमें केवल कर्मका और **'मन्मना भव'** (९।३४) आदिमें केवल भक्तिका वर्णन मिलता है; परंतु इनमें भी कर्ममें भक्तिका और भक्तिमें कर्मका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध प्रच्छन्न है। समत्वरूप योगमें स्थित होकर फलका अधिकार ईश्वरके जिम्मे समझकर जो कर्म करता है, वह भी प्रकारान्तरसे ईश्वरस्मरणरूप भक्ति करता है और पूजा, नमस्कार आदि भगवद्भक्तिपरक क्रियाओंको करता हुआ भी साधक तत्तत् क्रियारूप कर्म करता ही है। साधारण सकामकर्मीमें और उसमें भेद इतना ही है कि सकामकर्मी कर्मका अनुष्ठान सांसारिक कामना-सिद्धिके लिये करता है और निष्कामकर्मी भगवत्प्रीत्यर्थ करता है।

स्वरूपसे कर्मत्यागकी तो गीताने निन्दा की है और उसे तामसी त्याग बतलाया है। १८।७ एवं अध्याय ३ के श्लोक ४ में कर्मत्यागसे सिद्धिका नहीं प्राप्त होना कहकर अगले श्लोकमें स्वरूपसे कर्मत्यागको अशक्य भी बतलाया है। अतएव गीताके अनुसार प्रधानतः अनन्यभावसे भगवान्के स्वरूपमें स्थित होकर, भगवान्की आज्ञा मानकर, भगवान्के लिये मन, वाणी, शरीरसे स्ववर्णानुसार समस्त कर्मोंका आचरण करना ही भगवान्की भक्ति है और इसीसे परम सिद्धिरूप मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान् घोषणा करते हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(१८।४६)

'जिस परमात्मासे समस्त भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको पा लेता है।'

इस प्रकारके कर्म बन्धनके कारण न होकर मुक्तिके कारण ही होते हैं; इनमें पतनका डर बिल्कुल नहीं रहता है। भगवान्ने साधकको भगवत्प्राप्तिके लिये और साधनोत्तर सिद्धिकालमें ज्ञानीको भी लोकसंग्रह यानी जनताको सन्मार्गपर लानेके लिये अपना उदाहरण पेशकर कर्म करनेकी आज्ञा दी है, यद्यपि उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं है—**'तस्य कार्यं न विद्यते'** (३।१७)।

इसके सिवा अर्जुन क्षत्रिय, गृहस्थ और कर्मकुशल पुरुष थे; इसलिये भी भगवान्ने उन्हें कर्मसहित भक्ति करनेके लिये ही विशेषरूपसे कहा और वास्तवमें सर्वसाधारणके हितके लिये भी यही आवश्यक है। संसारमें तमोगुण अधिक छाया हुआ है। तमोगुणके कारण लोग भगवत्-तत्त्वसे अनभिज्ञ रहकर एकान्तवासमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन-ध्यानके बहाने नींद, आलस्य और अकर्मण्यताके शिकार हो जाते हैं। प्रायः देखा भी जाता है कि कुछ लोग, 'अब तो हम निरन्तर एकान्तमें रहकर भजन-ध्यान ही किया करेंगे' कहकर कर्म छोड़ देते हैं, परंतु थोड़े ही दिनोंमें उनका मन एकान्तसे हट जाता है। कुछ लोग सोनेमें समय बिताते हैं, तो कोई कहने लगते हैं—'क्या करें, ध्यानमें मन नहीं लगता।' फलतः कुछ तो निकम्मे हो जाते हैं और कुछ प्रमादवश इन्द्रियोंको आराम देनेवाले भोगोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। सच्चे भजन-ध्यानमें लगनेवाले बिरले ही निकलते हैं। एकान्तमें निवास करते हुए भजन-ध्यान करना बुरा नहीं है, परंतु यह साधारण बात नहीं है। इसके लिये बहुत अभ्यासकी आवश्यकता है और यह अभ्यास कर्म करते हुए ही क्रमशः बढ़ाया और गाढ़ किया जा सकता है। इसीलिये भगवान्ने कहा है कि 'नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करते हुए फलासक्तिरहित होकर मेरी आज्ञासे मेरी प्रीतिके लिये कर्म करना चाहिये।' परमेश्वरके ध्यानकी गाढ़ स्थिति प्राप्त होनेमें कर्मोंका संयोग-वियोग बाधक-साधक नहीं है; प्रीति और सच्ची श्रद्धा ही इसमें प्रधान कारण हैं। प्रीति और श्रद्धा होनेपर कर्म उसमें बाधक नहीं होते, बल्कि प्रीति एवं श्रद्धाके साथ कर्म करनेवालेका प्रत्येक कर्म भगवत्-प्रीतिके लिये ही अनुष्ठित होकर शुद्ध भक्तिके रूपमें परिणत हो जाता है। इससे भी कर्मत्यागकी आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। परंतु इस कथनसे एकान्तमें निरन्तर भक्ति करनेका निषेध भी नहीं समझना चाहिये।

अधिकारियोंके लिये **'विविक्तदेशसेवित्वम्'** (निर्जन स्थानमें रहना) और **'अरतिर्जनसंसदि'** (१३ । १०) (लोकालयसे वैराग्य) होना उचित ही है, परन्तु संसारमें प्रायः अधिकांश अधिकारी कर्मके ही मिलते हैं। एकान्तवासके वास्तविक अधिकारी वे हैं, जो भगवान्की भक्तिमें तल्लीन हैं, जिनका हृदय अनन्यप्रेमसे परिपूर्ण है, जो क्षणभरके भगवान्के विस्मरणसे ही परम व्याकुल हो जाते हैं, भगवत्-प्रेमकी विह्वलतासे बाह्य ज्ञान लुप्तप्राय रहनेके कारण जिनके सांसारिक कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न नहीं हो सकते और जिनको संसारके ऐशो-आरामरूप भोगके दर्शन-श्रवणमात्रसे ही ताप होने लगता है। ऐसे अधिकारियोंके लिये जनसमुदायसे अलग रहकर एकान्तदेशमें निरन्तर अटल साधना करना ही अधिक श्रेयस्कर होता है। ये लोग कर्मको नहीं छोड़ते; कर्म ही इन्हें छोड़कर अलग हो जाते हैं। ऐसे लोगोंको एकान्तमें कभी आलस्य या विषय-चिन्तन नहीं होता। इनके भगवत्प्रेम-की सरितामें एकान्तसे उत्तरोत्तर बाढ़ आती है और वह बहुत ही शीघ्र इन्हें परमात्मारूपी महासमुद्रमें मिलाकर इनके स्वतन्त्र अस्तित्वको उन परमात्माके विशाल असीम अस्तित्वमें अभिन्नरूपसे मिला देती है। परंतु जिन लोगोंको एकान्तमें सांसारिक विक्षेप सताते हैं, वे अधिक समयतक कर्मरहित होकर एकान्तवासके अधिकारी नहीं हैं। जगत्में ऐसे ही लोग अधिक हैं। अधिकसंख्यक लोगोंके लिये जो उपाय उपयोगी होता है, प्रायः वही बतलाया जाता है—'यही नीति है। इसलिये शास्त्रोक्त सांसारिक कर्मोंकी गति भगवत्की ओर मोड़ देनेका ही विशेष प्रयत्न करना चाहिये, कर्मोंको छोड़नेका नहीं।

ऊपर कहा गया है कि 'अर्जुन गृहस्थ, क्षत्रिय और कर्मशील थे; इससे उनके लिये कर्मकी बात कही गयी है।' इसका यह अर्थ नहीं है कि गीता केवल गृहस्थ, क्षत्रिय या कर्मियोंके लिये ही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गीतारूपी दुग्धामृत अर्जुनरूप वत्सके व्याजसे ही विश्वको मिला; परंतु वह इतना सार्वभौम और सुमधुर है कि सभी देश, सभी जाति, सभी वर्ग और सभी आश्रमके लोग उसका अबाधितरूपसे पान कर अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं। जैसे भगवत्प्राप्तिमें सबका अधिकार है, वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गीताके भी सभी अधिकारी हैं । अवश्य ही सदाचार, श्रद्धा, भक्ति और प्रेमका होना आवश्यक है; क्योंकि भगवान्ने अश्रद्धालु, सुनना न चाहनेवाले, आचरणभ्रष्ट, भक्तिहीन मनुष्योंमें इसके प्रचारका निषेध किया है— (१८ । ६७) । भगवान्के आश्रित जन कोई भी क्यों न हों, सभी इस अमृतपानके पात्र हैं (१८ । ६८) ।

यदि यह कहा जाय कि 'गीतामें तो सांख्ययोग और कर्मयोग नामक दो ही निष्ठाओंका वर्णन है, भक्तिकी तीसरी कोई निष्ठा ही नहीं; तब गीताको भक्तिप्रधान कैसे कहा जा सकता है ?' इसका उत्तर यह है कि यद्यपि भक्तिकी पृथक् निष्ठा भगवान्ने नहीं कही है, तथापि पहले यह समझना चाहिये कि निष्ठा किसका नाम है और क्या योग और सांख्यनिष्ठा उपासना बिना सम्पन्न हो सकती हैं । उपासना-रहित कर्म जड होनेसे कदापि मुक्तिदायक नहीं होते और न उपासना-रहित ज्ञान ही प्रशंसनीय है । गीताके मतमें भक्ति ज्ञान और कर्म दोनोंमें ओतप्रोत है । निष्ठाका अर्थ है—परमात्माके स्वरूपमें स्थिति । जो स्थिति परमेश्वरके स्वरूपमें भेद-रूपसे होती है, अर्थात् परमेश्वर अंशी और मैं उसका अंश हूँ, परमेश्वर सेव्य और मैं उसका सेवक हूँ'—इस भावसे परमात्माकी प्रीतिके लिये उसके आज्ञानुसार फलासक्ति त्यागकर जो कर्म किये जाते हैं, उसका नाम है 'निष्काम कर्मयोगनिष्ठा'; और जो सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अभेदरूपसे स्थिति है, अर्थात् ब्रह्ममें स्थित रहकर प्रकृतिद्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंको प्रकृतिका विस्तार और मायामात्र मानकर वास्तवमें एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—यों निश्चय करके जो अभेद स्थिति होती है, उसे 'सांख्यनिष्ठा' कहते हैं । इन दोनों ही निष्ठाओंमें उपासना सम्मिलित है । अतएव भक्तिका तीसरी स्वतन्त्र निष्ठाके नामसे उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । इसपर यदि कोई कहे कि तब तो निष्काम कर्मयोग और ज्ञानयोगके बिना केवल भक्तिमार्गसे परमात्माकी प्राप्ति ही नहीं हो सकती, तो यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि भगवान्ने केवल भक्तियोगसे परमात्माकी प्राप्ति स्थान-स्थानपर बतलायी है । साक्षात् दर्शनके सम्बन्धमें तो भगवान्ने यहाँतक कह दिया है कि अनन्य भक्तिके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे वह नहीं हो सकता—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥
(११ । ५४)

'शत्रुतापी अर्जुन ! अनन्यभक्तिसे ही इस प्रकार चार भुजाओंवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेमें, तत्त्वसे जाननेमें, तथा प्रवेश करनेमें अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेमें आता हूँ ।'

ध्यानयोगरूपी भक्तिका (१३ । २४ में) **'ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति'** कहकर भगवान्ने और भी स्पष्टीकरण कर दिया है । इस ध्यानयोगका प्रयोग उपर्युक्त दोनों साधनोंके साथ भी होता है और अलग भी । यह उपासना या भक्तिमार्ग बड़ा ही सुगम और महत्त्वपूर्ण है । इसमें ईश्वरका सहारा रहता है और उसका बल प्राप्त होता रहता है । अतएव हमलोगोंको इसी गीतोक्त निष्काम विशुद्ध अनन्य भक्तिका आश्रय लेकर अपने समस्त स्वाभाविक कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ करने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर-समर्पण-बुद्धि

[पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश]

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी ऐडवोकेट)

संसारमें दो प्रकारकी व्यवस्था हम देखते हैं—एक मनुष्योंद्वारा निर्मित, जिसे हम 'शासन-व्यवस्था' कहते हैं, जिसके अनुसार शासन हमारी सुख-सुविधाकी योजना करता है और बदलेमें हम शासनको कई प्रकारके कर देते हैं।

ठीक इसके विपरीत भगवान्‌की अपनी व्यवस्था है, जो बड़ी ही सरल, सुलभ और सस्ती है। भगवान्‌की इस व्यवस्थाका नाम 'भगवत्कृपा' है। अपने द्वारा दी हुई वस्तुओंका कोई भी मूल्य भगवान् हमसे नहीं लेते। भगवान् तो करुणानिधान हैं। उनकी अहैतुकी कृपा सदा हमपर बरसती रहती है। भगवान्‌के द्वारा हमें क्या-क्या प्राप्त है, हम इसे भूल जाते हैं और भगवान्‌का भी विस्मरण कर देते हैं। इतना ही नहीं, हम भगवान्‌की कृपापर टीका-टिप्पणी भी करने लग जाते हैं। एक लोककथा है, एक मुस्लिम सज्जन 'अल्लाह'की गलतियाँ बताने लगे और उनकी रचनाओंपर टीका-टिप्पणी करने लगे। मुस्लिम सज्जनने कुछ अन्य गलतियोंको बताते हुए एक गलती यह बतायी कि 'अल्लाहने कितनी बड़ी भूल की है, जो इतना विशाल आमका वृक्ष बनाया है, पर उसमें फल छोटे-छोटे लगाये हैं। दूसरी ओर उन्होंने खरबूजा, तरबूज और लौकीकी बेलें बनायी हैं, जिनमें बहुत पतली डालीपर बड़े-बड़े तरबूज, खरबूजे और लौकीके फल फलते हैं। अच्छा होता यदि अल्लाह छोटे-छोटे फल छोटे-छोटे वृक्षोंपर लगाते और तरबूज, खरबूजा और लौकी-जैसे फल आम-जैसे विशाल वृक्षोंपर लगाते।' उनकी यह दलील लोगोंको सुननेमें अच्छी लग रही थी। किंतु ठीक उसी समय आमके वृक्षसे एक पका आम उन सज्जनके सिरपर गिरा, जिससे उन्हें चोट आयी। तत्काल उनकी समझमें यह बात आ गयी कि यदि तरबूज-जैसा बड़ा फल मेरे सिरपर गिरा होता तो आज मेरा कचूमर निकल जाता। वे झट बोल उठे—'खूब शुद कि तरबूज न बूद'—अच्छा हुआ यह तरबूज नहीं था।

ये दो विधान हमारे समक्ष हैं—एक मानुषी विधान, दूसरा ईश्वरीय। इन दोनों विधानोंकी एक दूसरेके साथ तुलना कीजिये। मनुष्यकृत विधान कितना कटु, अपर्याप्त और परिणाममें दुःखदायी है, जब कि ईश्वरीय विधान कितना दयापूर्ण, पर्याप्त और सुखदायी है। यथार्थमें कोई तुलना ही दोनोंमें नहीं हो सकती।

यह एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि एक ओर तो शासन जनताकी सुविधाके लिये जनतासे करके रूपमें कुछ द्रव्य लेता है, तभी वह जनताके लिये कुछ सुख-सुविधाकी व्यवस्था करता है। दूसरी ओर हमारी सुख-सुविधाके लिये भगवान्‌ने अनेकानेक वस्तुएँ हमें प्रदान कर रखी हैं और कर रहे हैं तथा अपनी दयाकी धारा सतत हमपर बरसा रहे हैं, किंतु इसके बदलेमें भगवान् हम-लोगोंसे कुछ भी नहीं लेते। ऐसी दशामें उनके प्रति मनुष्य—विवेकशील प्राणी होनेके नाते हमारा कोई कर्तव्य है या नहीं?

इस प्रश्नका उत्तर बहुत गहन और गम्भीर है। ईश्वर और जीवके सम्बन्धपर हमारे शास्त्रोंमें जो कुछ लिखा गया है, उसके अध्ययनसे हमारा यही कर्तव्य समझमें आता है कि भगवान्‌से हम जुड़े रहें, उनसे विलग या विमुख न हों। भगवान्‌के साथ हमारा जितना निकटका सम्बन्ध होगा, भगवान्‌की करुणा; दया हमें उतनी ही मात्रामें प्राप्त होती जायगी। भगवान्‌के साथ हमारे सम्बन्धको 'उपासना' कहते हैं। 'उपासना'-का अर्थ है—'उप' अर्थात् निकट और 'आसन' अर्थात् स्थित होना। भगवान्‌के निकट होने-का नाम ही उपासना है। उपासना कभी व्यर्थ नहीं जाती; हम जो कुछ करेंगे, उसका फल हमें अवश्य मिलेगा। भगवान्‌ने जो आश्वासन दिया है, वह बड़ा विचारणीय है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌की घोषणा है—"जो एक बार मेरी शरणमें आकर यह कह देता है कि 'भगवन् ! मैं तुम्हारा हूँ' और मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं सभी प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है ।" इतना होनेपर भी हममेंसे कितने व्यक्ति हैं, जो भगवान्‌की शरणमें जाकर उनसे रक्षाकी प्रार्थना करते हैं । किसीसे यदि पूछा जाय कि 'क्या आप भगवान्‌का स्मरण करते हैं, निश्छल अन्तःकरणसे क्या आप भगवान्‌को पुकार करते हैं ?' तो उसका उत्तर आपको नकारात्मक ही प्राप्त होगा । हमलोग शुद्ध अन्तःकरणसे भगवान्‌के सम्मुख कभी होते ही नहीं । 'यह काम हम कर चुके और अमुक काम हमें करने हैं' इत्यादि अनेकों बहाने हम उपस्थित करते रहते हैं । इस प्रकार हमारी भगवान्‌से कभी निकटता होती ही नहीं । भगवान् यह कभी नहीं चाहते कि जो काम हमें करना है, उसे हम न करें और केवल उनको ही स्मरण करते रहें । वे तो यही चाहते हैं कि अपने सारे कार्योंको हम यथावत् करते रहें, उनमें कोई त्रुटि न हो और साथ ही हम उनसे सम्बन्ध बनाये रहें । इसके लिये उन्होंने गीतामें सरल उपाय भी बतलाया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
(९ । २७)

'जो कुछ तुम करो, जो कुछ भी खाओ, जो भी हवन करो, जो कुछ दो या जो कुछ अपने धर्मके लिये कष्ट सहन करो, वह सब-का-सब मेरे (भगवान्‌के) अर्पण कर दो ।' भगवान्‌के बताये इस ढंगसे चलनेपर ईश्वर-समर्पण-बुद्धिसे हमारे सारे-के-सारे कार्य तो होते ही रहेंगे, वे सफल भी होंगे और भगवान्‌के साथ हमारा सांनिध्य बना रहेगा । भगवान्‌से निकटता प्राप्त करनेका यह कितना सरल साधन है ! इसके लिये कोई तप, जप या अनुष्ठान हमें करना नहीं है; सभी कर्तव्य करनेकी छूट है । आवश्यकता है केवल इस बातकी कि हम अपना काम ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करें । इस छोटी-सी बातको यदि हम अपने दिन-प्रतिदिनके कार्योंको करते समय याद रखें तो हममें और किसी संत-महात्मामें कोई अन्तर नहीं रह जायगा । मान लें हम पतित हैं; फिर भी भगवान्‌के इस प्रकारके सांनिध्यसे—भगवदर्पण-बुद्धिसे कार्य करनेकी प्रणालीसे हमको भगवान्‌को प्राप्त करनेमें बड़ी सरलता हो जायगी । भगवान् किसी व्यक्तिविशेषसे ही सम्बन्ध रखते हों, केवल साधु-महात्माओंके ही हाथोंकी कठपुतली हों—ऐसी बात कदापि नहीं है । सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी—यहाँतक कि दुराचारी भी उन्हें प्राप्त कर सकता है । उनकी घोषणा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
(गीता ९ । ३०)

यदि कोई दुराचारी व्यक्ति भी ईश्वरार्पण-बुद्धिसे अपने काम करता है या करनेका निश्चय कर लेता है तो भगवान्‌की दृष्टिमें वह साधु ही मानने योग्य है । भगवान् कोई खास नियम या विधान नहीं बतलाते हैं कि अमुक नियमपर सबको समानरूपसे चलना ही होगा, तभी वे हमको प्राप्त कर सकेंगे, अन्यथा नहीं । यह कितनी छूट भगवान्‌ने हमलोगोंको दे रखी है । भगवान् अपनेतक पहुँचनेका सरल-से-सरल मार्ग सबके लिये बतलाते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥
(गीता ९ । ३४)

'तुम्हारा मन निरन्तर मुझमें लगा रहे, तुम निरन्तर श्रद्धासहित मुझको भजते रहो—मन, वाणी और शरीर-द्वारा मेरे परायण तो हो जाओ, मेरी पूजा-अर्चा करो, मेरे शरण होकर मुझे नमस्कार करो । इस प्रकार मेरे शरण होकर—अपनेको मेरे साथ युक्त करके तुम मुझको अवश्य प्राप्त कर लोगे ।' भगवान्‌के प्रति इस प्रकार सरल समर्पण होना चाहिये । यह संसार कर्मक्षेत्र है और कर्म करनेके लिये हम यहाँ भेजे गये हैं; किंतु हम जो कुछ करते हैं, उसे भगवत्-प्रीत्यर्थ नहीं करते, अपितु अपने स्वार्थके लिये करते हैं और इस प्रकार हम भगवान्‌को क्रमशः भूल जाते हैं । हमें चाहिये कि हम अपने कर्म भगवान्‌को समर्पण करके भगवत्-प्रीत्यर्थ करें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

'सत्सङ्ग' सफलताकी कुंजी है

प्रकृतिके परेके विधानसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि मानवका निर्माण मानवके अपने प्रयासका फल नहीं है; क्योंकि प्रयासका दायित्व मानव होनेके पश्चात् ही आता है। मानवका निर्माण उसीने किया है, जिसने सृष्टि रची है। यदि कोई यह कहे कि सृष्टिका निर्माता नहीं है, वह तो स्वतःसिद्ध है, तो मानना होगा कि सृष्टिका ज्ञाता होनेके कारण मानवका अस्तित्व सृष्टिसे पूर्व है। मानवको इस सृष्टिका कार्य न मानकर सनातन और अविनाशी मानना होगा। परंतु यह सभी विचारकोंका मत नहीं है। सृष्टिके ज्ञाताका अस्तित्व सृष्टिकी अपेक्षा अधिक सनातन और अविनाशी है; परंतु जो मानवको किसीकी रचना मानते हैं, उन आस्थावान् साधकोंके जीवनमें सृष्टि और मानवका कोई आश्रय तथा प्रकाशक है और वही सनातन सत्य है तथा सब प्रकारसे पूर्ण है। पूर्णके द्वारा निर्मित मानव प्राप्त विवेक, आस्था और बलके द्वारा शान्ति, मुक्ति एवं भक्ति प्राप्त करनेका जन्मजात अधिकारी है।

जो मानव शान्ति, मुक्ति एवं भक्तिका अधिकारी है, उसको अपना कोई संकल्प नहीं रखना चाहिये; क्योंकि शान्ति, भक्ति स्वतः सिद्ध तत्त्व हैं, उनकी उपलब्धिके लिये उनकी माँग ही अपेक्षित है। माँगकी पूर्ति पराश्रय तथा परिश्रमके द्वारा नहीं होती। पराश्रय एवं परिश्रमके द्वारा संकल्पोंकी पूर्ति होती है, किंतु अन्तमें संकल्प-अपूर्तिका अभाव ही शेष रहता है। इस दृष्टिसे सजग मानव अपना कोई संकल्प नहीं रखते। उन्हें जो वस्तु, योग्यता और सामर्थ्य प्राप्त हैं, उनके द्वारा जगत् और जगत्पतिके संकल्प पूरे किये जा सकते हैं। जगत्पतिके नाते किया हुआ कर्तव्य-कर्म भक्ति प्रदान करता है और जगत्के नाते किये हुए कर्तव्य-कर्मसे मानव निस्संकल्प होनेके कारण शान्ति और सेवाभावसे की हुई प्रवृत्तिके द्वारा जगत्के रागसे रहित होकर जगदतीत जीवनमें प्रवेश पाता है। उसी कर्तव्य कर्मको जब आस्थावान् साधक प्रभुकी पूजाके भावसे करता है, तब वह प्रभु-प्रेम पाता है। इस दृष्टिसे मानवकी प्रत्येक प्रवृत्ति निवृत्तिमें विलीन होकर शान्ति, मुक्ति और भक्ति देती है। निवृत्तिमें भी एक अलौकिक शक्ति है, जिससे मानव जगत्के उद्गमको और अपनेमें अपने अविनाशी जीवन और अविनाशी जीवन-धनको पाकर कृतकृत्य होता है। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है; जब मानवका अपना कोई संकल्प नहीं रहता, केवल कर्तव्य-परायणता रह जाती है। कर्तव्य-परायणतासे मानव सभी विकारोंसे रहित हो जाता है और निर्विकारताकी भूमिमें ही योग, बोध, प्रेमकी अभिव्यक्ति होती है। शान्ति मुक्ति-भक्तिमें हेतु है। अपना संकल्प ही अपनेको भोग, मोह और आसक्तिमें आबद्ध करता है, जो विनाशका मूल है। इस वास्तविकताका यथेष्ट अनुभव होनेपर मानव अपने सभी संकल्पोंका त्याग कर निस्संकल्प हो जाता है, अर्थात् उसके सभी संकल्प जगत् और जगत्पतिके संकल्पमें विलीन हो जाते हैं।

अपना संकल्प न रहना साधन है। जगत्के संकल्पोंको पूरा करना कर्तव्य अर्थात् सेवा है और प्रभुके संकल्पोंको पूरा करना पूजा है। जब अपना कोई संकल्प नहीं रहता, तब किसी विकारकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् निर्विकारताकी अभिव्यक्ति होती है, जो वास्तवमें साधन है। जगत्के संकल्पोंकी पूर्तिसे जीवनमें उदारताकी अभिव्यक्ति होती है, जिससे मानव जगत्के लिये उपयोगी होता है। प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग पूजा-भावसे करनेपर प्रभुसे आत्मीय सम्बन्ध सुदृढ़ तथा सजीव होता है, जिससे अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियताकी अभिव्यक्ति होती है और जीवन अनन्त रससे भरपूर हो जाता है। शान्तिसे उदित सामर्थ्य तथा ज्ञानके प्रकाशसे एवं प्रेमके रससे परिपूर्ण होना ही मानव-जीवनकी पूर्णता है। इसी पवित्रतम उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अनन्तकी अहैतुकी कृपासे मानव-जीवनका निर्माण हुआ है। मानवकी माँग सभीको है; क्योंकि उसके द्वारा सभीके अधिकार सुरक्षित होते हैं। इस दृष्टिसे मानव सर्वप्रिय है। मानवकी जो अपनी माँग है, उसकी पूर्ति सत्सङ्गसे होती है, जो उसका स्वधर्म है। स्वधर्मका सम्पादन 'स्व'के द्वारा ही होता है। उसके लिये किसी पराश्रय तथा परिश्रमकी अपेक्षा नहीं है। मानव-जीवनमें जो पराश्रय और परिश्रम दिखायी देते हैं, उनका उपयोग पर-सेवामें ही है। पर इस वास्तविकताका बोध तभी होता है, जब मानव इस तथ्यको अपना ले कि उसका कोई संकल्प नहीं है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वमान्य सत्य होगा कि मानवका अविभाज्य सम्बन्ध जगत् और उसके आश्रय तथा प्रकाशकसे है। तदनुसार जगत्के प्रति उदारता और उसके प्रकाशकके प्रति अनन्त प्रेम होना ही चाहिये । यह तभी सम्भव होगा, जब मानव निज-ज्ञानके प्रकाशमें निर्मम, निष्काम एवं असङ्ग होकर स्वाधीन हो जाय और कर्तव्य-बुद्धिसे निस्संकल्प होकर प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करता रहे। परिस्थितिके सदुपयोगसे ही सभी परिस्थितियोंसे अतीत, अविनाशी, स्वाधीन, चिन्मय और रसरूप जीवनसे अभिन्नता होती है। प्रत्येक परिस्थिति प्राकृतिक न्याय है। इस कारण प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करनेमें मानव स्वाधीन है; परंतु प्रमादवश पराधीनतामें आबद्ध होनेके कारण वह प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग नहीं करता और अप्राप्तके चिन्तनमें आबद्ध हो जाता है, जो अहितकर है।

प्राप्त वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यका सदुपयोग करना अनिवार्य है; पर उसके लिये सजगतापूर्वक निस्संकल्प होकर कार्य करना होगा। आवश्यक कार्य बिना किये कर्मके प्रति रागकी निवृत्ति नहीं होती। अनावश्यक कार्यका त्याग तभी हो सकता है, जब मानव यह स्वीकार करे कि जो भी वर्तमान कार्य है, वह भौतिकवादी दृष्टिकोणसे जगत्का और आस्तिकवादी दृष्टिकोणसे जगदाधारका है। व्यक्तिगत कार्य कुछ नहीं है, यह वैज्ञानिक तथ्य है। परंतु असावधानीके कारण जब मानव कार्यके बदलेमें अपने लिये कुछ भी चाहता है, तब कर्तव्य-पालनमें अनेक दोष ँदा हो जाते हैं और फिर व्यक्तिगत जीवनमें अशान्ति एवं सामाजिक जीवनमें संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं, जो किसी भी सजग मानवको अभीष्ट नहीं हैं। जिसका अपना कोई कार्य नहीं है, उसीके द्वारा जगत् एवं जगदाधारके कार्य सम्पन्न होते हैं। यह अनन्तका मङ्गलमय विधान है। अपना कोई कार्य नहीं है, इस वास्तविकताका अनुभव करनेके लिये कार्यके आदि और अन्तमें विश्रामका सम्पादन अनिवार्य है। वह तभी सम्भव होगा, जब अनावश्यक और अशुद्ध संकल्प नष्ट हो जायँ और आवश्यक तथा शुद्ध संकल्प पूरे हो जायँ। संकल्प-निवृत्ति और संकल्प-पूर्ति—दोनों ही अवस्थाओंमें निस्संकल्पता स्थायी होती है। किंतु सजग मानवको निस्संकल्प स्थितिमें भी रमण नहीं करना है, अर्थात् उससे असङ्ग होना है। इसके होते ही मानव अपनेमें अपने अविनाशी जीवन तथा जीवन-धनको पाता है। इस वास्तविकतामें अविचल आस्था अत्यन्त आवश्यक है। जीवन तथा जीवन-धन अपनेमें नहीं हैं, इस प्रकार माननेकी भूलसे ही मानव देहाभिमान तथा अनेक प्रकारकी पराधीनतामें आबद्ध हो जाता है, जिसका मानव-जीवनमें कोई स्थान ही नहीं है।

जगत् तथा जगदाधारके कार्यको अपना मान लेना भारी भूल है। इस भूलसे ही मानव कर्तव्य-पालनमें असमर्थताका अनुभव करता है और क्षुब्ध तथा क्रोधित हो जाता है। यदि प्राकृतिक विधानके अनुसार कोई भी कार्य अपना होता तो उसके द्वारा अभावका अभाव हो जाता, जो मानवकी वास्तविक माँग है। माँगकी पूर्ति विश्राममें है। विश्रामके सम्पादनके लिये कर्मके प्रति रागकी निवृत्ति अनिवार्य है। उस राग-निवृत्तिके लिये ही कर्तव्य-पालनका विधान है। क्रियाके रागकी निवृत्ति और सुन्दर समाजका निर्माण कर्तव्य-परायणतासे ही साध्य हैं। कर्तव्य-निष्ठ मानवका किसीपर कोई अधिकार नहीं है, अपितु उससे सभीके अधिकार सुरक्षित होते हैं। यह विशेषता मानवमें ही है। जब मानव अपने जीवनके महत्त्वको भूलता है, तब अधिकार-लोलुपतामें आबद्ध होकर कर्तव्यसे विमुख हो जाता है। बाह्य परिस्थिति परस्पर कितनी ही भिन्न क्यों न हो, किंतु मानव-जीवनके महत्त्वकी दृष्टिसे सब मानव बराबर हैं। मानव-जीवनका यह गौरव सुरक्षित रखना अनिवार्य है। पर यह तभी सम्भव होगा, जब मानव अपनेद्वारा ही अपने सत्यको अपनाये और भूलसे उत्पन्न हुए असत्का त्याग कर सत्का सङ्गी हो जाय।

'सत्सङ्ग' कोई अभ्यास नहीं है, अपितु विचार तथा विश्वाससे साध्य जीवन-तत्त्व है। सत्सङ्गके बिना व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक समस्याओंका हल नहीं हो सकता। इस दृष्टिसे सत्-सङ्गमें ही मानवके पुरुषार्थकी परावधि है। यदि यह कह दिया जाय कि सत्-सङ्ग ही एकमात्र सफलताकी कुंजी है तो अत्युक्ति न होगी, अपितु यही वास्तविकता है। वास्तविकताको अपनाकर प्रत्येक मानव मानव-जीवनके लक्ष्यको प्राप्तकर कृतकृत्य हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के अमृत-वचन]

भगवान्‌में ममता-प्रीति हुई कब मानी जाय ?

संसार दुःखमय और अनित्य है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है। मिथ्या ममता-आसक्ति करके जीवनभर मनुष्य दुःख तथा अशान्तिसे पिसता रहता है। यह बड़ा ही मोह है। श्रीभगवान्‌में ही ममता-आसक्ति हो जाय तो फिर इस दुःख तथा अशान्तिसे पिण्ड छूट जाय। भगवान्‌में ममता-प्रीति तभी हुई मानी जाय, जब दुःख-अशान्ति नामकी कोई वस्तु रह ही न जाय। प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌के सांनिध्यका अनुभव होता रहे और चित्त उनके प्रेमानन्द-रसमें डूबा रहे। नहीं तो बहुत बार हम भूलसे भगवान्‌के नामपर भी भोगासक्तिको बसा लेते हैं और उसका अवश्यम्भावी फल होता है—दुःख तथा अशान्ति। भगवान्‌का प्रेम प्राप्त होनेपर यह सब रहता ही नहीं।

जगत्‌में मर जाय और भगवान्‌में जीवित रहे

मनुष्यका जीवन अत्यन्त क्षणभङ्गुर और अनित्य है; पता नहीं, कब समाप्त हो जाय। इसलिये यहाँकी ममता-आसक्ति समेटकर तैयार रहना चाहिये। जिसका जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंमें 'मैं-मेरा' मर गया, वह शरीरकी दृष्टिसे जीवित होनेपर भी वस्तुतः मर गया। यों जीते-जी मर जाना सर्वोत्तम है। मनुष्य जगत्‌में मर जाय और भगवान्‌में जीवित रहे। संसारकी किसी भी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिका उसपर फिर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह सदा-सर्वदा अपने भगवान्‌में घुला-मिला मस्त रहता है। ऐसा ही बननेका प्रयत्न करना चाहिये।

विशुद्ध प्रेम

प्रेम-धन तो नित्य बढ़नेवाला होता है। यह उसका सहज स्वरूप है। जहाँ विशुद्ध प्रेम होगा, वहीं वह बढ़ता रहेगा, कभी होने या रुकनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं।

अपनेको कभी अभागा मानकर प्रभुकी परम आत्मीयतापर संदेह नहीं करना चाहिये

तुमने अपने मनमें मान-बड़ाईकी इच्छा, आसक्ति-कामना, हृदयकी क्षुद्राशयताकी बात लिखकर लिखा है—'भोग-वासनाभरे हृदयमें प्रभु-प्रेम कैसे रह सकता है, एक म्यानमें दो तलवारें कैसे रह सकती हैं।' तुम्हारा यह लिखना तो सत्य है; किंतु जिसने अपनेको भगवान्‌के समर्पण कर दिया है, उसकी सारी आसक्ति-वासना-कामनाको भगवान् स्वयं पवित्र करके प्रभु-चरणासक्ति, प्रभु-सुख-वासना तथा प्रभु-प्रेम-कामनामें परिणत कर लेते हैं। इसे कदापि असम्भव तो समझना ही नहीं चाहिये, कठिन भी नहीं। वरं यह विश्वास तथा निश्चय करना चाहिये कि 'मेरा जीवन—मेरा हृदय तो श्रीभगवान्‌का निवास-मन्दिर बन चुका है। उसमें अन्य कुछ रह ही नहीं सकता।' यदि कहीं कोई कूड़ेका कण होगा तो वह प्रभुके दृष्टिपातसे ही जल जायगा। अतः अपनेको कभी अभागा मानकर प्रभुकी परम आत्मीयतापर संदेह नहीं करना चाहिये। यह प्रत्यक्ष ही है कि भगवान्‌के सिवा दूसरे किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिकी न तुम इच्छा करते हो, न तुम्हें अन्य कुछ सुहाता है। एक दिव्य अनन्यनिष्ठाका सागर तुम्हारे हृदयमें लहर रहा है। फिर उसमें किसी भी वासना-कामना, ... मोह-लोभ, मानापमान, निन्दा-स्तुति आदिके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान ही कहाँ है । वे सब तो कभीके डूब गये । अब यदि ये नामके लिये रह भी जायँ तो नाम चाहे ये ही हों, पर वास्तवमें प्रभुके साथ घुल-मिल जानेसे इन सबका स्वरूप बदल गया है । ये सब इन नामोंसे यदि बने हैं तो ये प्रभुकी लीलामें सहायक, सेवक लीलाके अङ्ग या उपकरणके रूपमें ही रहते हैं, बाधकके रूपमें नहीं—भगवान्‌के स्थानको छेंककर नहीं । अतएव तुम चाहे जहाँ रहो, तुम्हारे साथ भगवान् हैं । तुम्हारे अंदर कुछ भी दिखायी देते हों, ये सभी भगवान्‌की पवित्र लीलाके अङ्ग हैं, दोष नहीं—यह विश्वास तथा अनुभव करो ।

ऐसा भाग्य, ऐसा मन मिल जाय तो फिर और क्या चाहिये

जो भगवान्‌के सिवा दूसरी या दूसरेकी वाणी सुनना नहीं चाहता, जिसकी आँखें दूसरेको देखना नहीं चाहतीं, वाणी दूसरे शब्दका उच्चारण नहीं करना चाहती, जिसका मन निरन्तर श्रीभगवान्‌की रूप-सुधा-माधुरीका ही पान करना चाहता है, जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं जिसे अपने प्रेमाराम प्रभु ही दिखायी देते हैं, जिसके कानोंमें निरन्तर उनके पैरोंकी आहट और नूपुरध्वनि एवं मुरलीध्वनि ही सुनायी पड़ती हैं, जिसकी नासा सदा श्यामसुन्दरके अङ्ग-सुगन्धका आनन्द लेती रहती है, जिसके अङ्ग श्रीश्यामसुन्दरके पवित्रतम मधुरतम स्पर्शका अनुभव करते हैं, जो सब कुछसे—दूसरोंसे दूर हो गया है, उसके मनकी स्थिति खराब है या अत्यन्त श्रेष्ठ है, वह दुष्ट मन है या सर्वश्रेष्ठ मन—इसका निर्णय तो प्रभु ही करते हैं और उनके निर्णयका यही प्रबल प्रमाण है कि वे ऐसे भक्तके भक्त बने रहते हैं ! उसका दिया प्रत्येक पदार्थ महान् रसमय होता है और उसका आस्वादन करनेको भगवान् नित्य लालायित रहते हैं; उसकी चरण-धूलिसे वे अपनेको पवित्र हुआ मानते हैं । ब्रह्मा, शिव तथा नित्यवक्ष-विहारिणी लक्ष्मीसे भी उसको वे अधिक प्रिय मानते हैं ।

भगवान्‌के शब्द हैं—'अहं भक्त पराधीनः' (श्रीमद्भाग० ९ । ४ । ६३) मैं भक्तोंके वशमें हूँ । 'मयि ते तेषु चाप्यहम् ।' (गीता ९ । २९) 'वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ ।' 'मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ।' (भागवत ९ । ४ । ६८) 'वे मुझको छोड़कर किसीको नहीं जानते और मैं उनको छोड़कर किसी अन्यको नहीं जानता ।' 'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ।' (भागवत ११ । १४ । १६) 'मैं सदा उनके पीछे-पीछे चलता हूँ, जिससे उनकी चरणधूलिसे अपनेको पवित्र कर सकूँ ।' 'अश्नामि प्रयतात्मनः ।' (गीता ९ । २६) 'मैं भक्तोंकी दी हुई वस्तुका बड़े चावसे—प्रयत्नपूर्वक भोग लगाता हूँ ।'

ऐसा भाग्य, ऐसा मन मिल जाय तो फिर और क्या चाहिये । रही रोनेकी बात, इस सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि क्या पता, वह रोना हँसनेसे कहीं अधिक महान्, अधिक सुख देनेवाला हो । श्रीराधा तो कहती हैं—'मैं सदा रोती ही रहूँ और इस रोनेका भी श्यामसुन्दरको पता न लगे, नहीं तो वे दुखी होंगे ।' धन्य !

भगवान्‌के मनकी होती रहे, यही अपनी चाह हो

सदा-सर्वदा प्रभुकी राजीमें राजी रहकर उनकी हाँमें हाँ मिलाना चाहिये । उनके मनकी होती रहे, बस, यही एकमात्र अपनी चाह हो । तुम अपने मनमें बहुत प्रसन्न रहना । जरा भी खेद मत मानना । बहुत-बहुत प्रसन्न रहना—इस पदके भावोंपर ध्यान देना—

उनके होकर हम दुःखी हों तो उनको दुख पहुँचाते हम ।
उनके सुखोंमें बाधक बन, उनपर ही कलंक लगाते हम ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनपर यदि है विश्वास हमें, तो क्यों इतना सकुचाते हम।
यों भय-विषादके अति वश होनेमें क्यों नहीं लजाते हम॥
हमको दुखी देखकर प्यारे तनिक दुःख यदि हैं पाते।
अति अपराधी, क्यों न हमारे सभी मनोरथ मर जाते॥
क्यों न सदा हम सुखी परम हों, उन्हें खूब सुख पहुँचाते।
क्यों न सदा प्रसन्न-मुख हँस-हँसकर हम उन्हें हँसा पाते॥
प्यारे, हँसो, रहो ही हँसते, तुमको खूब हँसायें हम।
प्यारे, सदा प्रसन्न रहो, तुमको अति सुखी बनायें हम॥
तन-मन-बुद्धि तुम्हारे सारे, इनको नहीं रुलायें हम।
वस्तु तुम्हारीको सुख देते संतत शुचि सुख पायें हम॥

हमारा नित्य-सम्बन्ध भगवान्के साथ है

तुम सदा ही आनन्दमग्न रहा करो। मनमें कभी क्षोभ-दुःख आना ही नहीं चाहिये। शरीरके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है। तुम्हारा नित्य-सम्बन्ध तुम्हारे भगवान्के साथ है और वे नित्य-निरन्तर तुम्हारे साथ रहते हैं, साथ रहेंगे। तुम सदा निश्चिन्त रहकर निरन्तर उनके प्रसन्न मुख-कमलको देखते रहा करो।

सुखमयता भगवान्के प्रेम-रस-सुधा-सिन्धुमें ही है

तुम निरन्तर भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके प्रेम-सागरमें ही निमग्न रहो, यह मैं हृदयसे चाहता हूँ और जब जब तुम्हें इसमें डूबे पाता हूँ, तब चित्तमें बड़ी प्रसन्नता होती है। मन संसारमें आता है, तभी संसारके असह्य तापोंका अनुभव होता है। यह विषय-संसार तो सर्वथा और सर्वदा संतापमय ही है। शान्ति, सुख, शीतलता, मधुरता, अमरता, सुखमयता तो श्रीभगवान्के अनन्त असीम प्रेम-रस-सुधा-सिन्धुमें ही हैं।

प्रेम अन्तरमें पवित्र, दिव्य, कामनारहित होना चाहिये

हमलोग जितनी, जो कुछ अच्छी बातें किसीसे सीख सकें, अवश्य सीखनी चाहिये; पर सबके प्रेमका स्वरूप एक-सा नहीं हो सकता। सीताके प्रेममें श्रीरामके साथ जाना ही आवश्यक तथा शोभनीय था एवं ऊर्मिलाके आदर्श प्रेममें अपनेको साथ ले जानेकी बात निकालना भी अनुचित और अशोभन था। प्रेमका बाह्य रूप कैसा भी हो—अन्तरमें वह पवित्र, दिव्य, कामनारहित होना चाहिये। बाहरसे भी आदर्श तथा अनुकरण करनेयोग्य हो तो और भी उत्तम है।

प्रतिकूलताको लेकर दुःख या क्षोभ नहीं करना चाहिये

दूसरोंसे प्राप्त व्यवहारकी प्रतिकूलताको लेकर जरा भी मनमें दुःख या क्षोभ नहीं करना चाहिये। संसारमें सबके मन तथा सबकी रुचि एक-सी नहीं होती। जैसे हमारी घरवालोंसे भिन्न रुचि है, वैसे ही घरवालोंकी भी हमसे भिन्न है। अतएव यदि उनकी सभी बातें हमसे मेल नहीं खातीं तो हमें दुःख नहीं करना चाहिये।

तुम्हारा 'स्व' तुम्हारे भगवान् हैं

तुम सदा 'स्वस्थ' रहो। थोड़ी देरके लिये भी अस्वस्थ मत होओ। मैं तो यही चाहता हूँ। तुम्हारा 'स्व'—तुम्हारे भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं। बस, निरन्तर उनके चरणोंमें लगे रहो। वे चाहे उठाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयसे लगा लें, चाहे चरणोंमें रखें, उनसे कभी दूर हटो ही मत। वस्तुतः उनकी यह स्वभाव-विवशता है कि वे अपने प्रेमीको छोड़ नहीं सकते। यहाँ उनकी भगवत्ता कुण्ठित हो जाती है। उन्हें इसमें एक ऐसा रस आस्वादन करनेको मिलता है कि उनकी रस-लालसा निरन्तर बढ़ती रहती है। उनका स्वभाव, बस; उन्हींका है—

'अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ।' (मानस ७। १२३। २)

सदा प्रसन्न रहना चाहिये

संसारके शरीरोंका संयोग-वियोग प्रारब्धाधीन है। और भगवान्के मङ्गल-विधानानुसार सब मङ्गल ही होता है। इसलिये सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

'पुराने पत्रोंसे संगृहीत'

आसन मार्‍यो पै आस न मारी!

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'दुनियामें कोई मुझसे प्रसन्न नहीं—न बाप न बेटा, न भाई न बहन, न बीबी न बच्चे। व्यर्थ गया मेरा इतना जीवन···!'

उस दिन हमारे एक साथी लगे अपने हृदयकी वेदना व्यक्त करने।

विश्वविद्यालयोंकी ऊँची-से-ऊँची डिग्रियाँ इनके पास हैं; योग्यता है, ज्ञान है, अनुभव है। पर बेचारोंका भाग्य!

ऐन मौकेपर किस्मत धोखा दे देती है। इंटरव्यू (साक्षात्कार) में जाते हैं; पर भाग्यके चलते जब देखो पहला नंबर हाथसे निकल जाता है; दूसरा नंबर आ जाता है।

क़िस्मत तो देखिये कि कहाँ टूटा जा कमंद,
दो-चार हाथ जब कि लबे बाम रह गया।

× × ×

लाचार होकर गृहस्थीका गड्हा पूरा करनेको वे नाना प्रकारके छिटपुट काम-धंधे करते हैं। यहाँ दौड़ते हैं, वहाँ दौड़ते हैं। फिर भी जब देखो अभावोंका रोना।

हाँ, तो वे कहने लगे उस दिन—"आपसे क्या छिपा है, भाई साहब! पिताजी बीमार पड़े। महीनों रात-दिन लगकर उनकी सेवा और दवादारू की, तब कहीं किसी तरह चलने-फिरने लायक हुए। अभी थोड़े दिनोंसे छोटे भाईके पास हैं और वहाँसे लिखते हैं—'तू निरहंकार हो जा, हमारी यही कामना है।'····,

"बड़े बेटा रामको पढ़ा-लिखाकर शादी कर दी। चार पैसे कमाने लगे तो बहूको लेकर अलग जा बसे। सारा किया-धरा पानी हो गया।

"विधवा बहनको पढ़ा-लिखाकर कामसे लगाया। अब उसका मिजाज सातवें आस्मानपर रहता है।

'बीबी-बच्चोंका भी वही हाल। मुँह अँधेरे उठकर रातके बारह बजेतक रोज कोल्हूके बैलकी तरह काममें जुता रहता हूँ, पर उनकी फर्मायशें कहाँ पूरी हो पाती हैं। जहाँ कोई कोर-कसर रही कि शिकायतोंका दफ्तर खुल जाता है।

"जीऊब गया है ऐसे जीवनसे, भाई, साहब! जी चाहता है, बार-बार चाहता है, कि गोली मार दूँ इस गृहस्थीको। सब छोड़-छाड़कर चल दूँ—कहीं एकान्तमें।···,

× × ×

यह कहानी हमारे एक साथीकी ही नहीं, हममेंसे बहुतोंकी है। मैंने कहा उनसे—'क्या होगा एकान्तसे? आपकी समस्या हल हो जायगी? सच पूछो तो, भाई। आपका यह वैराग्य वैराग्य नहीं, यह है पलायनवाद। यह है परिस्थितिसे मुँह चुराना। इसीको कहते हैं—'श्मशान-वैराग्य'। परिवारवाले, स्त्री और पुत्र, भाई और बहन जहाँ अनुकूल हुए, जहाँ वे आपकी आशाओं और अपेक्षाओंके अनुरूप बरतने लगे कि आपका वैराग्य हवा हो जायगा। है न ऐसी बात?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चा बढ़ी तो साथी महोदयने कबूल किया कि सचमुच उनका यह वैराग्य बालूकी नींवपर है। अनुकूलताके अभावकी, घरवालोंसे आशा-अपेक्षाओंकी पूर्ति न होनेकी प्रतिक्रिया है यह।

× × ×

प्रत्येक मनुष्य सुखका कीड़ा है।

पैसेके माध्यमसे, परिवारके माध्यमसे, बाल-बच्चोंके माध्यमसे, मित्रोंके माध्यमसे उसे सुख चाहिये। सभीसे उसे अपेक्षाएँ रहती हैं। जब ये अपेक्षाएँ पूरी नहीं होतीं तो उसका जी खीझता है—कचोटता है।

और आशाएँ तथा अपेक्षाएँ ठहरीं द्रौपदीका चीर। एक पूरी हो नहीं पाती, दूसरी दस नयी तैयार।

बस, जी भीतरसे भिन्नाने लगता है—'क्या रखा है इस गृहस्थीमें!'

× × ×

सुरसाके मुँहकी भाँति दिन-दिन बढ़नेवाली हमारी आवश्यकताओंकी पूर्तिका एक साधन है—पैसा।

पैसा भरपूर न मिले, नौकरी छूट जाय, दूकानका दिवाला निकल जाय, व्यापारमें घाटा हो जाय, आयमें कमी पड़ जाय, आर्थिक तंगीसे मनुष्य बाल-बच्चोंकी अनिवार्य आवश्यकताएँ भी पूरी न कर सके—तो राणा-प्रताप-जैसा वीर-धीर-गम्भीर आदमी भी विचलित हो सकता है, साधारण आदमियोंकी तो बात ही क्या।

आर्थिक संकटके चलते कुछ लोगोंको जीवनसे विरक्ति हो सकती है, पर इसे 'वैराग्य' कहना वैराग्यका उपहास है।

'नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहि संन्यासी॥'
(मानस ७।९९।३)

× × ×

जो हमारे आत्मीय हैं, प्यारे हैं, जिन्हें सुख देनेके लिये हम जमीन-आसमानके कुलावे एकमें मिलाया करते हैं, जिनका साहचर्य हमें चाहिये, रात-दिन चाहिये—उनका बिछोह होनेपर भी कुछ लोगोंको वैराग्य हो जाता है।

अमेरिकाके एक धनीने माँके मरनेपर आत्महत्या कर ली। उसके पास तिजोरीमें पैसा था, घरमें बीबी थी, बच्चे थे; पर माँके प्रति उसके मोहका पार नहीं था।

घरवालोंने, मित्रोंने, डाक्टरोंने, मानस-चिकित्सकोंने दो-दो बार समझा-बुझाकर उसे आत्महत्यासे विरत किया, पर तीसरी बार उसने आत्महत्या कर ही ली। कहने लगा—'मम्मीके बिना मैं जिंदा रहूँ तो कैसे?'

कुछ भावुक लोग प्रियजनोंके बिछोहमें पागल-जैसे बन जाते हैं। जीवनसे उन्हें घृणा हो जाती है। पर दुःखकी चपेटसे होनेवाला यह वैराग्य भी वैराग्य नहीं है।

× × ×

भयकी चपेटसे त्रस्त होकर भी कुछ लोग वैराग्यकी दिशामें मुड़ते हैं।

'भोगे रोगभयम्।' (वैराग्य० ११६)

भोग-रोगका जोड़ा है। वैद्यजी कहते हैं, रोगसे बचना है तो भोग छोड़ो। यह कड़वा काढ़ा पियो। परहेज है—तेल, मिर्च, गुड़, खटाई।

अब लीजिये—तेल गया तो सारी तली चीजें चली गयीं। पापड़ और नमकीन, तले साग और सब्जी आदि सब बंद।

मिर्च गयी तो सारे चटपटे पदार्थ—दही-बड़े और जायकेदार पदार्थ ही चले गये।

गुड़ गया तो गुड़की बनी सारी मिठाइयाँ—गायब हो गयीं!

खटाई गयी तो सारे अचार-मुरब्बे समाप्त। मतलब?

इस परहेजके नामपर हमें वे सारे जायकेदार पदार्थ छोड़ने पड़ेंगे, जिनके लिये हमारी जीभ चौबीसों घंटे लपलपाती रहती है!

इतना ही नहीं! वैद्यजीने पौष्टिक आहार तो छुड़ाया ही, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहनेका आदेश भी दे रखा है।

बीमारीका भय ऐसे अनेक प्रतिबन्ध लगा देता है।

× × ×

एक श्रीमतीजीको चीनीसे परहेजकी बात कहते सुनकर मैंने पूछा, 'बात क्या है?' तो लोगोंने बताया कि उन्हें मधुमेहकी शिकायत है। ऐसे रोगियोंको चीनीसे वैराग्य लेना ही पड़ता है, वर्ना मामला गोल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्य और डाक्टर, हकीम और प्राकृतिक चिकित्सक—सभी अनेक रोगियोंसे स्पष्ट कह देते हैं कि 'स्वास्थ्य बनाये रखना है, जिंदा रहना है तो शराबसे, सिगरेटसे और अमुक-अमुक चीजोंसे किनाराकशी करनी ही होगी। आगे मर्जी तुम्हारी। मरना हो, मरो!'

स्वास्थ्यनाशके भयसे होनेवाला यह वैराग्य मजबूरीका सौदा है। 'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।' (गीता २।५९) विषय भले ही छूट जायँ, पर उनका रस? राम कहिये।

× × ×

डंडेके डरसे भी कुछ लोग अवैध कर्मोंसे वैराग्य ले लेते हैं।

कांस्टेबलका 'बैटन' हमें नैतिकताकी सीख देता है। वह सड़कके चौराहेपर न खड़ा हो तो उल्टी पटरीपर जानेसे हमें कौन रोक सकता है।

चोरी और डकैती, खून और कत्ल, हिंसा और व्यभिचार, धोखेबाजी और जालसाजी, अन्याय और अत्याचारसे कुछ लोगोंको पुलिसका डंडा ही विरत करता है, राजदण्ड ही दूर रखता है।

राजका दण्ड, जेल और जुर्माना, कालापानी और फाँसीका फंदा बहुतोंको पापकर्मोंसे विरत करनेमें सहायक होता है।

डंडेके डरसे होनेवाला यह वैराग्य भी असली वैराग्य नहीं है।

× × ×

'लोग क्या कहेंगे, मुहल्लेवाले क्या कहेंगे, पास-पड़ोसी क्या कहेंगे, समाज क्या कहेगा, बिरादरीवाले क्या कहेंगे?'—इस डरसे भी कुछ लोग निन्दनीय कर्मोंसे विरत हो जाते हैं।

हम गलत काम करेंगे, हम नशेमें धुत होकर नालियोंमें पड़े रहेंगे तो लोग हमें नीची नजरसे देखेंगे, हमारी प्रतिष्ठा, कुल-मर्यादा धूलमें मिल जायगी—ये सब डर भी मनुष्यको विषयोंसे वैराग्यकी कुछ प्रेरणा देते रहते हैं।

पर सामाजिक भयसे होनेवाला ऐसा वैराग्य भी वास्तविक वैराग्य नहीं है।

× × ×

और रौरव और कुम्भीपाकका डर?

वैतरणी, असिपत्रवन, लालाभक्ष, महारौरव आदि नरकोंका भय? यह भय भी तो लोगोंको वैराग्यकी ओर ले जाता है।

पुरस्कार और दण्डकी मनोवैज्ञानिक पद्धति बच्चोंके शिक्षणमें प्रयुक्त की जाती है।

धर्मशास्त्रकार भी कम मनोवैज्ञानिक नहीं थे। उन्होंने भी व्यवस्था दे दी—शुभकर्मोंका पुरस्कार—स्वर्ग, बहिश्त, जन्नत, हैवेन, लोक-परलोकमें आनन्द-ही-आनन्द, सुख ही सुख!

अशुभ कर्मोंका दण्ड—नरक, दोजख, हेलके! कष्टोंकी क्रीड़ाभूमि।

पढ़िये गरुड़पुराणमें नरकोंका वर्णन। रोंगटे खड़े हो जायँगे। काशीके तीर्थयात्री इन नरकोंके भयावने चित्र प्रायः यहींसे खरीदकर घर ले जाते हैं। उनका अपना प्रभाव पड़ता ही है।

सेठ गोविन्ददासका उदाहरण मौजूद है।

लिखा है उन्होंने अपनी आत्मकथामें कि किस प्रकार गरुड़पुराणके बीभत्स और भयंकर वर्णनोंने उन्हें पतनके मार्गपर पैर रखनेसे रोका।

× × ×

यों वैराग्यके एक नहीं, अनेक कारण हैं।

पर प्रायः ऐसे सभी कारणोंसे होनेवाला वैराग्य टिकता कम है। अनुकूल वायुका झोंका आते ही वैराग्य कपूरकी भाँति हवामें उड़नछू हो जाता है।

जबतक मनमें किसी भी प्रकारकी आशा और आकाङ्क्षा रहती है, कामना और वासना रहती है, भोगकी हल्की-सी भी लिप्सा रहती है, तबतक लाख स्वाँग करिये, वैराग्य पास फटकनेवाला नहीं।

घर-बार, बाल-बच्चे, धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठाको तिलाञ्जलि देकर जंगलमें धूनी रमानेवालोंमें भी सच्चे वैरागी बहुत कम होते हैं। सुन्दरदासने ठीक ही कहा है—

ग्रेह तज्यौ, अरु नेह तज्यौ, पुनि खेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेह सहे सिर, सीत सह्यौ तन, धूप समै जु पँचागिनि बारी॥
भूख सही रहि रूख तरै परि सुंदरदास सहे दुख भारी।
डासन छाँड़ि कै काँसन ऊपर आसन मार्यौ पै आस न मारी॥

आसन तो मारा—पर—'आस न मारी!'—मूल समस्या तो यही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकन्हैयालाल मुंशीने गीताकी अपनी विवेचनामें एक फकीरका वर्णन किया है। वह फकीर पड़ा रहता था एक मस्जिदमें। जाड़ा हो, गर्मी हो, बरसात हो—वह नंग-धड़ंग प्रकृतिकी सारी चपेटें बर्दाश्त करता रहता था।

पर एक दिन वह दिखायी पड़ा हवालातमें।

बात क्या हुई ?

कुछ नहीं। लड़कोंकी वानरी सेना——शरारतका अवतार होती ही है। उन्होंने फकीरपर कुछ ढेले-कंकड़ चला दिये। बस, तितिक्षावान् सहिष्णु फकीर असहिष्णु बन बैठा। झपटकर उसने एक बच्चेको पकड़ा और पटक ही तो दिया—इस बुरी तरहसे कि बेचारा 'टें' बोल गया !

× × ×

मनुष्य सब कुछ छोड़कर जंगलमें जाकर आसन लगाता है, मन्दिर-मस्जिद-गिरजामें पूजा-उपासना करता है, काशी और काबेमें आराधना करता है—फिर भी वह आशाका परित्याग नहीं करता। उसकी आशा नहीं छूटती। आशाको वह मार नहीं पाता—

'आसा-तृस्ना ना मरै, मरि-मरि जात सरीर।'

× × ×

और जबतक आशा नहीं मरती, तबतक क्या योग, क्या तप, क्या साधना और क्या वैराग्य।

बाल-बच्चेदार गृहस्थ परीशान है कि इस मँहगीमें वह ईमानदारीसे किस प्रकार बच्चोंको दो समय रोटी जुटा पाये। फक्कड़ फकीर परीशान है कि गुदड़ीमें जो चीलर और जुएँ पड़ गये हैं, उनके दंशसे किस प्रकार छुटकारा मिले। बाबाजी परीशान हैं कि मठके लिये उन्होंने जिस जमीनकी माँग की है, उसपर तहसीलदारने कोई कानूनी ऐतराज पेश कर दिया है। स्वामीजी परीशान हैं कि फलाँ स्वामीको प्रणाम करने फलाँ राज्यका मुख्यमन्त्री भी आता है और मेरे पैर छूने उसका चपरासी भी नहीं आता !

स्पष्ट है—गृहस्थ हों या संन्यासी, साधु हों या फकीर, पुजारी हों या महंत, राजा हों या रईस, जबतक लोग सुत-वित्त-लोककी ईषणाओंके जालमें फँसे हैं, आशा और तृष्णाके झोंके खा रहे हैं, तबतक वैराग्य कहाँ।

बीवी-बच्चोंके लिये, रुपये-पैसेके लिये, नाम-प्रतिष्ठाके लिये, पद और सम्मानके लिये, पूजा और चढ़ावेके लिये जबतक मनमें आशा लगी है—तबतक वैराग्य कोसों दूर है।

वैराग्यकी पहली सीढ़ी है—आशाका त्याग, अपेक्षाका त्याग, तृष्णाका त्याग, कामनाका त्याग, वासनाका त्याग।

यह त्याग जबतक नहीं है, तबतक चाहे घरमें रहिये, चाहे वनमें, चाहे कंठी पहनिये चाहे गुदड़ी—उससे कुछ बननेवाला नहीं। तबतक दुःखोंका चक्र मनुष्यका पीछा छोड़ेगा नहीं।

× × ×

महात्मा कबीरदासके इस पदमें अनुभव ही तो बोल रहा है—

या जग सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
राजा-परजा, रंक-धनी नर, अधमाधम या मुखिया हो॥
जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तपसीको दुख दूना हो।
आसा-तृस्ना सब घट ब्यापै, कोई महल नहिं सूना हो॥

एक सहज प्रश्न उठता है—'तब उपाय क्या है ?'

उपाय भी कबीरने बताया है—

'सुखिया मनके जीते हो।'

जबतक संसारकी आसक्ति है, संसारके प्राणी-पदार्थोंसे सुख पानेकी आशा है, तबतक दुःख हमारा साथ छोड़नेवाला नहीं, भले ही हम अपनेको साधु और वैरागी ही क्यों न कहते रहें ! आशा और अपेक्षा, तृष्णा और कामना छोड़ते ही वैराग्य आता है और वैराग्य ठहरा आनन्दका समुद्र। तभी तो कहा है—

'कस्य सुखं न करोति विरागः।' (मोहमुद्गर ७)

इस सुखका एकमात्र मार्ग है—आशाका त्याग। मारिये आशाको, बेड़ा पार है !

चेतावनी

हरि के नाम कौ आलस क्यौं,
करत है रे, काल फिरत सर साँधें।
हीरा बहुत जवाहर संचे,
कहा भयौ हस्ती दर बाँधें॥
बेर-कुबेर कछू नहिं जानत,
चढ़ौ फिरत है काँधें।
कहि 'हरिदास' कछू है न चलत, जब
आवत अंत की आँधें॥

—स्वामी हरिदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह-दीप बुझते जा रहे हैं !

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

हमारे शास्त्रोंने गृहस्थाश्रमको धन्य कहा है—धन्य इसलिये कि वही आश्रम-धर्मकी रीढ़ था। उससे अन्य तीनों आश्रमोंको बल मिलता था। वह व्यक्तिमें समष्टि-धर्मकी प्रयोगशाला था। वह सभ्यता और संस्कृतिका मेरुदण्ड था। वह एक ऐसी इकाई था, जिसके गर्भमें अगणित दहाइयाँ अँगड़ाई लेती थीं। वह एक ऐसा दीपक था, जिसमें स्नेह स्वयं जलकर दूसरोंको प्रकाश देता था। मानव-संस्कारोंकी प्रथम रङ्गस्थली। परंतु आज वह विवर्ण है, अपनेमें खोया और लुटा हुआ।

अनेक मतों, वादों और सिद्धान्तोंके होते हुए भी एक तथ्य हम चतुर्दिक् देख सकते हैं कि आज भी संसारका विशाल बहुमत विवाहित जीवन व्यतीत करनेवाला है। असाधारण वृत्तिके बुरे-भले आदमियोंको छोड़कर विचार करें तो ज्ञात होगा कि यह मानव-जीवनका एक सामान्य और प्रायः निश्चित-सा कार्य बन गया है। यह जीवनका एक सत्य है।

क्यों है यह जीवनका सत्य ? इसलिये कि वह जीवनका कवच है। वह हमें अनेक बुराइयोंसे बचा लेता है, जीवनके युद्धमें हमें शक्ति देता है—मेरा प्रयोजन यह है कि बचा सकता है, शक्ति दे सकता है। जब हमारा मन अगणित उत्तेजनाओंसे थक जाता है, तब वह हमें थपकियाँ देकर शान्त कर देता है। जब हम वासनाओंसे प्रकम्पित होते हैं, यह हमारे चरण पकड़ लेता है। इसके कारण हजारों अकर्मण्य जीवनके वीर सैनिक बन गये हैं, लाखों मानसिक संतुलन खोनेसे बच गये हैं। इसने उच्छृङ्खल यौन अतिचारोंपर अङ्कुश रखा है, इसने जीवनके लुब्धक मिथ्याचारोंमें डूबनेसे हमें रोक लिया है।

आजके संघर्षसे भरे जीवनमें, जब हमारे चतुर्दिक् ईर्ष्या-द्वेष-दम्भका बवंडर उठ रहा है, जब हमारी सूनी कातर आँखें करुणाके सुखद स्पर्शके लिये व्याकुल हैं, जब मित्रोंकी पहचान करना कठिन हो रहा है, जब जीविकोपार्जनकी अगणित कठिनाइयोंमें पड़ा मानव पग-पगपर निराश और अप्रतिभ होता है—खीझता है, जब उसके साहसके पाँव उखड़ जाते हैं और आकाङ्क्षाएँ दम तोड़ देती हैं, तब कुछ ही क्षणके लिये सही, जहाँ तप्त बालुका-भूमिमें शीतल जलकी फुहार मिल जाती है, दो मधुर बोल और तुम्हारे दुःख-कष्ट एवं चिन्ताको तुमसे छीन लेनेकी उत्कण्ठा जहाँ है, वह घर ही है। अपनी समस्त विवशताओंके साथ भी, यान्त्रिक सभ्यता, संघर्ष और आर्थिक दुष्प्रेरणाओंसे दिन-दिन टूटते घर आज भी पृथ्वीपर स्वर्ग हैं।

× × × ×

जीवन-युद्धमें थके, संध्याके समय लौटते हुए अपनेको देखो। आज काम ज्यादा करना पड़ा, दम मारनेकी फुर्सत न मिली, फाइलमें एक गलती हो गयी, साहबकी डाँट पड़ी, मन खट्टा हो गया है। कारखानेमें आज साथीके न आनेसे काम इतना करना पड़ा कि शरीर चूर है; दुकानपर आज सेठसे कहा-सुनी हो गयी है, या आज शरीर थका-थका-सा और मन बोझिल है। पग रास्ता नहीं काटते, लगता है, रास्ता ही पगोंको काटता हो; साहस और उमंग सो गये; चित्त भ्रान्त, अशान्त है; दिल बैठा-बैठा-सा लगता है। परंतु लौटना है, और लौट रहे हो घरकी ओर।

और एक नारी, जिसके जीवनकी समस्त उमंगें, समस्त आशाएँ तुममें ही सिमटकर रह गयी हैं—तुम्हारी थकावटको अनुभव करनेवाली, स्वयं गृहकार्योंमें थकी होकर भी, द्वारपर तुम्हारी प्रतीक्षामें दो अबोले, तुम्हारे स्नेहमें उमड़े, नयन बिछाये खड़ी है। तुम्हारे दृग् मिलते हैं, और हृदय-टूटता हृदय फिर उभरता है; निराशापर मौन प्यारकी एक थपकी जीवनको टूटनेसे बचा लेती है। जब दुनियामें और कोई तुम्हारा नहीं है, तब भी वह है—यह भावना पुरुषमें विद्युत्की भाँति कौंधकर उसे पुनः शक्तिसे पूरित कर देती है। कोई तुम्हारी राह देखनेवाला है, तुम्हींमें समाया हुआ—यह भावना जीवनके समस्त विघ्नोंपर अमृतकी भाँति छा जाती है। जीवनको आगे बढ़ानेकी प्रेरणासे मन-प्राण पूरित हो उठते हैं।

× × × ×

तुम कहोगे, इस भावुकताके वर्णनसे दुनिया नहीं चलती; यह कविताकी भाषा है, जीवनके कठोर तथ्योंकी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता हूँ। मैं मानता हूँ, गृहस्थ-जीवनमें भी शत-शत वृश्चिक-दंशोंवाली जिह्वा मिलती है; फूलोंका कलेजा मसलनेवाले तुषारपात भी वहाँ होते हैं; जब हम वर्षाकी आशा कर रहे होते हैं तो सूखा पड़ जाता है और जब हल्की चाँदनीमें मन विभोर हो रहा होता है, तब भयानक कड़कड़ाहट होती है, उल्कापात होते हैं और तूफानोंसे जीवनका क्षितिज भर जाता है। परंतु ये बातें तो गृहस्थ-जीवनके बाहर भी होती हैं। अविवाहित सम्बन्धोंमें इनका अनुपात कुछ अधिक ही होता है। वहाँ भी कल्पनाओं और स्वप्नोंकी छाती फट जाती है और गहरी खाइयाँ दिलोंके बीच एकाएक निकल आती हैं। सामान्य विवाहित गृहजीवनमें ऐसे आकस्मिक उल्कापात कम ही होते हैं।

गृहजीवनका अपना सिरदर्द भी अवश्य है। यह औसत मानवी भावनाओं एवं प्रेरणाओंका जीवन है; यह ब्यौरेका, तफसीलका जीवन है। यह सब मैं मानता हूँ; किंतु यही उसका सौन्दर्य भी है—यह सरलता, यह हृदयकी भाषा, जहाँ घुमाव नहीं है; अटपटे, तरल शब्द सीधे दिलसे ओठोंपर आनेवाले,—अगणित प्रसाधनोंका माध्यम जहाँ उन्हें बीचमें ही लोक नहीं लेता। तुम्हारी गरीबी यहाँ घृणास्पद नहीं है; तुम्हारा धन नहीं, धनी यहाँ काम्य है; कोरे हाथ नहीं, अबोली भावनाएँ, स्नेहके शत-शत अदृश्य वरदान आँखोंमें लिये अन्नपूर्णा यहाँ तुम्हारा स्वागत करती है। चाञ्चल्य, विच्छिलता, मृगजलकी भ्रमपूर्ण प्रलुब्धता, रहस्यमयी क्षणिक मादकता यहाँ नहीं है।

मैं जानता हूँ कि आजका मानव मादकता चाहता है। संघर्षमें मदिरा उसे खींचती है और अपने आँचलके चञ्चल आन्दोलनोंसे थपकियाँ देकर उसे सुला देती है। तुम सोते हो, क्षणभरके लिये अपनेको भूल जाते हो। परंतु क्या यह जीवनके प्रश्नों और समस्याओंका समाधान है? क्या यह उनसे और इसीलिये अपनेसे भी भागना नहीं है! मदिरा अपनी मूल्यवान् वेषभूषामें, कीमती टेबुलोंपर, कीमती और रंगीन पात्रोंमें तुम्हें लुभा ले, क्षणभरको अचेत कर दे; किंतु शीतल, सुखद और बेदाम जलके बिना—जिसे ठीक ही देववाणीमें 'जीवन' कहा गया है—आदमी कब जी पाया है? वही अमृत, वही जीवन, जिसकी कुछ शीतल बूँदोंके छींटे बेहोश मानवको चैतन्य कर देते हैं, तुम्हें यहाँ मिलेगा। किंतु इसके लिये जरा गहराईमें पैठना होगा। अरे आँखें बंद करके चलनेवाले मानव! प्रेमकी योगिनी, सतत आत्मदानसे विश्वको ऊर्जस्वल करनेवाली, अन्नपूर्णा-सी इस गृहकी नारीको देख। महामायाका, जगदम्बाका घर-घरमें प्रात अवतरण!

इसीलिये कह रहा था कि गृहस्थ-जीवन पृथ्वीका स्वर्ग है।

किंतु आज?

वह नरक बनता जा रहा है।

क्यों?

इसलिये कि पति और पत्नी, पुरुष और स्त्री, जो मिलकर घरका निर्माण करते हैं, आजके भोगप्रधान जीवनकी आँधियोंमें पड़कर असाधारणरूपसे चञ्चल और विकृत होते जा रहे हैं। पुरुष है कि नारीके वास्तविक महत्त्वको, उसके विराट् रूपको भूल गया है। वह उस वरदानका रहस्य समझनेकी मानसिक स्थितिमें नहीं है, जो नारी अपने साथ उसके लिये, उसकी संततिके लिये लाती है। वह उसे केवल शरीर-तुष्टिका साधन बनाता जा रहा है। उसके पास दृष्टि नहीं, प्रेरणा नहीं और शायद समय एवं मनःस्थिति भी नहीं कि गहरी सहानुभूतियों एवं निजत्वसे भरे उसके विराट् अन्तर्मनको स्पर्श करे; रससे भरे मनको, जो सहानुभूतिके एक स्पर्शसे द्रवित हो उठता है और पारिजातकी भाँति अपने जीवन-पुष्पको चरणोंमें उँडेल देता है। इसका परिणाम यह है कि शरीरकी तुष्टि भी नहीं हो पाती। यान्त्रिक मिलन मात्र होकर रह जाता है। दोनों अतृप्त, खोये, खीझसे भरे रह जाते हैं।

उधर नारी अन्तरमें पुरुषके प्रति प्राकृतिक जातीय संवेदनाओंसे भरी, किंतु परम्परासे भयत्रस्त, शिक्षासे या तो गतानुगतिक अथवा फिर मिथ्या दम्भ और विद्वेषसे विकृत अनिश्चितता और शङ्काओंके झंझावातमें अस्थिर है। आत्मदानकी प्रेरणा अशक्त हो गयी है और पानेकी आकाङ्क्षा बढ़ी हुई है। स्वभावतः आजके भयंकर जीवन-संघर्षमें, आर्थिक अवपीड़नके इस युगमें उसमें निराशाएँ उत्पन्न होती हैं, धक्के लगते हैं; उमंगोंके तन्तु टूट जाते हैं, सपने अस्थिर हो जाते हैं। वह पतिके प्रति अनुरागसे भरी, उसमें खोयी न होनेके कारण मिलकर भी अलग रह जाती है, एक होनेपर भी उसमें द्विधा है। यह जीवनसे जीवनका मिलन नहीं, जीवन-खण्डोंका मिलन है। कुछ खण्ड मिलते हैं, कुछ ज्यों-के-त्यों स्तब्ध पड़े रह जाते हैं और कुछ प्रतिकूल दिशाओंमें अग्रसर हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जब हमारे पास प्रेमकी वह पूँजी न हो, जो जीवनकी सब कठिनाइयोंको चुनौती देनेकी शक्ति रखती है, तब छोटी-छोटी बातें भी बड़ी होने लगती हैं। जरा-सा उलाहना, जरा-सा आदिष्ट स्वर तीर-सा कलेजेमें लगता है। बातोंमें बातें पैदा होती हैं, मन खराब होता है और फिर तो व्यथाओंकी दुनिया अपने-आप बनने लगती है। जीवन नरक हो जाता है।

क्या यह नरक स्वर्ग नहीं बन सकता? थोड़े संयम, थोड़ी समझदारीसे सब हो सकता है। यदि दोनों एक-दूसरेके लिये जीना सीखें तो सब हो सकता है। केवल दृष्टिका अभाव है। जीवनमें नारी और पुरुष आज जिन मूल्योंको अपना रहे हैं, उनसे सुविधाओंमें वृद्धि हो सकती है, किंतु उनसे आनन्द नहीं खरीदा जा सकता।

दुःख तो यह है कि शताब्दियोंकी अपनी साधनामें नारीने जो दीप गृह-प्रकोष्ठमें जलाये थे—तिमिरावरणको चुनौती देनेवाले दीपक, तुलसीके चौरेपर रखनेके लिये अञ्चलकी छायामें ले जाये जा रहे दीपक, देवार्चनके लिये जल रहे घृतके दीपक और सबके ऊपर आँधीमें, पानीमें, दुःखमें, सुखमें आमरण जलनेवाले स्नेहके दीपक बुझते जा रहे हैं—एक-एक करके बुझते जा रहे हैं। मरणका अन्धकार जीवनको निगलता जा रहा है और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं; क्षितिजपर आँधियाँ उमड़ती आ रही हैं और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं; पतनकी खाइयाँ मुँह बाये हमारी ओर दौड़ी आ रही हैं और हमारे दीपक बुझते जा रहे हैं—गृहके दीपक, स्नेहके दीपक, निष्ठाके दीपक, श्रद्धाके दीपक, अर्चनाके दीपक, साधना और शीलके दीपक!

दया-अम्बुसे धोना होगा मेरा जीवन !

[विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'दया दिये हबे गो मोर जीवन धूते' गीतका भावानुवाद]

दया-अम्बुसे धोना होगा मेरा जीवन।
न तो भला, क्या छू पाऊँगा तव पद पावन॥
दया तुम्हारीसे धोना होगा मम जीवन।
तव पूजनका थाल उठाते,
प्रकट समस्त कलुष हो जाते,
अतः न कर पाता चरणोंपर प्राण-विसर्जन॥
दया तुम्हारीसे धोना होगा मम जीवन।
व्यथा न कोई भी जागी थी मुझमें अबतक॥
अङ्ग-अङ्ग था गया मलिनतासे मेरा ढक।
आज विमल उस अङ्क हेतु, पर,
विकल हृदय मरता क्रन्दन कर,
मत देना, मत देना करने अब रज-लुण्ठन।
दया तुम्हारीसे धोना होगा मम जीवन।
न तो भला क्या छू पाऊँगा तव पद पावन॥

—माधवशरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्तिकताकी आधारशिलाएँ

कम-से-कम बोलकर काम चलायें और शेष समय मशीनकी तरह भगवान्‌का नाम लें

श्रीसीताजीकी अवस्थाका वर्णन करते हुए हनुमान्‌जी महाराज कहते हैं—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥
(मानस ५। ३०)

'रात-दिन नामका पहरा लगा हुआ है, ध्यानके किवाड़ बंद हैं एवं अपने ही चरणोंमें नेत्रोंका लगा रहनारूप ताला बंद है, इसीलिये श्रीसीताजीके प्राण नहीं निकल पा रहे हैं।'

यह श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी कोरी कल्पना नहीं है, श्रीरामजीके विरहमें श्रीसीताजीकी वास्तविक अवस्थाका वर्णन है। श्रीभगवान्‌ने अपनी ह्लादिनी शक्तिके द्वारा यह आदर्श स्थापित करवाया है कि हमसे बिछुड़े भक्तकी यही दशा होनी चाहिये। आप भी प्रभुसे बिछुड़े हुए हैं, अतः आप भी इस दशाको प्राप्त करनेकी सुन्दरतम अभिलाषाको लेकर नामका पहरा लगा दीजिये। कंजूसके धनकी तरह वाणीका संयम कीजिये। अनावश्यक बिल्कुल मत बोलिये। कामके लिये बोलते समय भी यह ध्यान रहे कि कम-से-कम बोलकर काम चलाया जाय और शेष समय मशीनकी तरह नाम लें। आप अध्यापक हैं, आप विद्यालय जाइये; पर कक्षामें पढ़ाते समय ध्यान रखिये कि जिस समय चुप रहनेका अवसर हो, उस समय नाम लेने लगें। लज्जा छोड़ दीजिये। वहाँके लोग ढोंगी कहेंगे अथवा प्रशंसा करेंगे, इस विचारको छोड़ दीजिये। दृढ़तासे उद्देश्य स्थिर करके प्रभुके चरणोंको पकड़िये। इसीमें जीवनकी सार्थकता है। जिस सुन्दर भावको लेकर आप साधनामें प्रवृत्त हुए हैं, जैसा सुन्दर मधुर सम्बन्ध आपने प्रभुके साथ स्थापित किया है, उसे एक क्षणके लिये भी कलुषित और ढीला मत कीजिये। अब इस सम्बन्धको निभानेके लिये ही जीना और मरना है।

मनसे एवं मानसिक देहसे अपने प्रियतमकी सेवा कीजिये

भगवान्‌के चरणोंकी साक्षात् नित्य सेवा जिस देहसे होती है, वह देह आपको प्राप्त नहीं है। यह देह पाञ्चभौतिक है, नश्वर है, मल-मूत्रसे भरा है, गंदा है। इसकी ओरसे उपराम हो जाइये। लालसा कीजिये उस देहकी, जिसको पाकर नित्य-निरन्तर उनके चरणोंमें बैठकर उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो। जबतक वह देह नहीं मिलती, तबतक वाणीसे, मनसे एवं मानसिक देहसे उनकी सेवा कीजिये, बड़ी लगनसे कीजिये। वही आपका असली धन है। वाणीसे प्रियतमका नाम लीजिये, मनसे लालसा कीजिये तथा उस देहकी ओर ध्यान रखिये एवं अभ्यास कीजिये कि मनका प्रत्येक संकल्प उनकी सेवाकी भावनासे सना हुआ हो। उनकी कृपाका आश्रय करके अपनी पूरी ताकत लगा दीजिये। वे देखेंगे और आपकी व्याकुलता देखकर उनके हृदयमें अनुरागकी लहरें उठने लगेंगी—उनके हृदयमें चाह होने लगेगी आपसे मिलकर आनन्द लेनेकी और आप निहाल हो जायँगे।

जगत्‌की परिस्थितियोंके हेर-फेरको खेल समझकर देखते चले जाइये

आप शिक्षक हैं और विद्यालयकी स्थिति बड़ी विचित्र है, यह माना; परंतु विद्यालय ही क्या, आपको चाहिये सारे जगत्‌की परिस्थितियोंके हेर-फेरको बिल्कुल गौणतम कर दें। भगवान्‌ने जैसे रच रखा है, वही होगा और उसीमें सबका मङ्गल है। सिनेमा-हाउसमें जिस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रील घूमती रहती है और एक-पर-एक दृश्य बदलते रहते हैं, उसी प्रकार विश्वास रखियेगा कि फिल्म घूम रही है। एकके बाद एक दृश्य आ रहे हैं। बस, इन्हें खेल समझकर देखते चले जाना चाहिये। खूब विश्वास रखिये—जिस फिल्मके ऑपरेटर, संचालक, मैनेजर मङ्गलमय भगवान् हैं, उसका पर्यवसान किसीके न चाहनेपर भी जो होनेवाला है, वह तो होकर ही रहेगा। फिर चिन्ता क्यों करें। चिन्ता तो, बस, हरिनामकी करनी है। ये बातें केवल कथनमात्रकी नहीं हैं। मनुष्य भगवद्दयापर विश्वास करके इन्हें अनुभव कर सकता है। अतएव किसी भी प्रकारकी परिस्थितिमें किंचिन्मात्र भी विचलित न होकर भगवान्‌की ओर ही बढ़नेकी चेष्टा करें।

एक बात और है। विद्यालयसे आपका सम्बन्ध सच पूछें तो यही है कि इसके द्वारा आपकी रोटीका प्रश्न हल होता है। बस, इसके सिवा आपको उससे क्या लाभ है? थोड़ी देरके लिये कल्पना करें कि परिस्थितिसे बाध्य होकर आपलोगोंको विद्यालय छोड़ देना पड़े; पर इससे आपका क्या बनता-बिगड़ता है? विश्वास रखिये—यदि भगवान्‌की मर्जी है कि आपलोगोंको भोजनाच्छादन अच्छी तरहसे प्राप्त होता रहे तो जगत्‌में ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ है, जो इसे बंद कर सके। किंतु यदि उनकी मर्जी है कि आपलोगोंको भूखों मरना पड़े तो जगत्‌में ऐसा कोई भी नहीं है, जो आपलोगोंको खिला सके। भले ही पूर्णरूपसे न हो, आंशिकरूपसे आपने उस सर्वेश्वरकी शरण ली है। इस आंशिक शरणागतिका मूल्य थोड़ा नहीं है। आपलोगोंको भगवान्‌के सिवा और किसीका मुँह जोहनेकी जरूरत नहीं है।

सत्यपर स्थित रहियेगा। जगत्‌का प्रलोभन चाहे कितना भी आकर्षक क्यों न हो, सत्यसे न हटियेगा। आवश्यकता पड़नेपर मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिये, किंतु सत्यका आश्रय नहीं छोड़ना चाहिये। जितनी मात्रामें आपके पास दृढ़ भगवद्विश्वास रहेगा, उतनी ही मात्रामें आप सत्यपर भी दृढ़ रह सकेंगे—यह बात भी ध्यानमें रखेंगे।

आपने जीवनके अन्तिम समयमें भगवत्स्मृति होनेकी बात लिखी है। यह खूब ध्यान रहे कि यदि कोई साधनके बलपर अन्त-समय भगवान्‌को याद कर लेनेका दावा करे तो मेरी समझमें वह भूल करता है। अन्त-समयमें भगवत्स्मृति होना एकमात्र भगवत्कृपासापेक्ष है। इसलिये भगवत्कृपाका अवलम्बन करके आप निरन्तर प्रसन्न रहें और यह विश्वास रखें—'प्रभु अत्यन्त दयामय हैं, वे मेरी वाचिक शरणागतिकी अवहेलना नहीं करेंगे। चाहे मैं कितना ही अधम क्यों न होऊँ, अन्त-समयमें वे मुझे स्वयं आकर ले जायँगे।'

निराश न होकर भगवान्‌की ओर बढ़ चलें

बिल्कुल निराश न होकर श्रीभगवान्‌की ओर बढ़ चलें। सचमुच बढ़नेकी इच्छा रखनेवालेको प्रभु बुला लेते हैं। जगत्‌के किसी हेर-फेरसे चकित होनेकी आवश्यकता नहीं। जो कुछ होता है, भगवान्‌का रचा हुआ होता है। आपके न चाहनेपर भी वह होकर ही रहेगा। उसे कोई टाल नहीं सकता। इसलिये यहाँसे अपनी दृष्टि सर्वथा मोड़ लेनी चाहिये और अधिक-से-अधिक भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये। अन्यथा इस जगत्‌को देखकर कभी हँसना और कभी रोना पड़ेगा ही।

एक बात और है। जहाँतक हो, प्रपञ्चके काममें कम पड़ियेगा; नहीं तो भगवान् गौण हो जायँगे और प्रपञ्च मुख्य।

भगवान्‌का नाम यदि नहीं भूले तो सब ठीक हो जायगा। यही सबसे मुख्य बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

मैं तुम्हारा शरणागत हूँ, इसलिये निश्चिन्त हूँ

मेरे आराध्य !

वेद-शास्त्रोंमें तुम्हारी प्राप्तिके अनेकों साधन वर्णित हैं तथा संत-महात्माओंने भी एक-से-एक सुगम, स्वानुभूत उपायोंका निर्देश किया है; किंतु ऐसे किसी साधन-पथपर अग्रसर होना तो दूर रहा, मैं तो अभीतक अपने लिये किसी निश्चित साधन-प्रणालीका चयन भी नहीं कर पाया हूँ।

विशुद्ध ज्ञानको तुम्हारी प्राप्तिका साधन बतलाया गया है, परंतु मेरी तो जगत्के मिथ्या विषय-भोगोंमें सुख-भ्रान्तिरूप अज्ञानकी निवृत्ति भी नहीं हो सकी है। आसक्तिशून्य-कर्म-कौशलको तुम्हारी प्रसन्नताका हेतु कहा गया है; इधर मैं तो अभीतक दुष्कर्मोंकी ओर प्रवृत्तिका भी त्याग नहीं कर पाया हूँ। निष्काम एवं अनन्य भावसे उपासना करनेसे तुम्हारी कृपाकी अविलम्ब प्राप्ति होनेकी बात सुनी जाती है, किंतु मैं तो अभी विभिन्न कामनाओंकी लहरोंमें ही डूब-उतरा रहा हूँ। ऐसी स्थितिमें, मेरे स्वामी! तुम्हीं कहो, मेरे उद्धारका उपाय तुमने कौन-सा निश्चित किया है ? मुझे तुम्हारे चरण-तलोंकी प्राप्ति किस रीतिसे सम्भव होगी ?

जब-जब मैं हमारे पारस्परिक सम्बन्धकी कल्पना करने बैठता हूँ, तब अनेक विचार मेरे मनमें छा जाते हैं। मैं अवश्य पाप करता हूँ, परंतु मेरे पापोंका दण्डदाता दूसरा भले ही कोई हो, तुम तो कदापि नहीं हो सकते। तुम, भला, दण्ड देना क्या जानो। तुम तो अपराधीमात्रको प्यारसे गले लगा लेना जानते हो।

मैं कुमार्गगामी हूँ, कुप्रवृत्तियों तथा कुटेवोंका चिर अभ्यासी हूँ। तुम मेरे परमसुहृद् हो, तुम्हें सही मार्गका ज्ञान भी है तथा तुम पथ-निर्देश करना भी जानते हो, इसपर भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम मेरे साथ उपदेशकका शुष्क, प्रेमहीन नाता कदापि स्थापित नहीं करोगे। तुम तो मार्गभ्रष्ट मुझको अपनी मधुर बाँसुरीकी तानसे मोहित करके ही कुमार्गसे हटाकर सन्मार्गपर ले आओगे।

तब मेरा-तुम्हारा परस्पर क्या नाता है ? मैं अपने मनकी बात बताऊँ ? सच पूछो तो मैं तुम्हारा शरणागत हूँ, तुम मेरे अभयदाता हो। मैं तुम्हारा चरणाश्रित हूँ, तुम मेरे योग-क्षेमको वहन करनेके लिये, मुझे अपने स्वरूपका, अपनी ऐकान्तिक प्रीतिका दान करनेके लिये कृत-प्रतिज्ञ हो। मैं तुम्हारे द्वारका याचक हूँ, तुम अपना सर्वस्वका दान दे डालनेवाले उदार दानि-शिरोमणि हो।

मुझे तुम्हारे सम्मुख यह प्रकट करनेमें तनिक भी संकोच नहीं है कि मेरी स्थिति अधम-से-अधम है। तुम मेरी पतित-से-पतित अवस्थाको अपरिवर्तित देखकर भी कभी उद्विग्न नहीं होते हो। मेरी प्रत्येक दयनीय दशा तुम्हारे हृदयमें अधिकाधिक कृपा एवं करुणाका ही संचार करती रहती है।

जैसे एक रोगी कुशल चिकित्सकके समक्ष अपनी व्याधिकी गम्भीरताका प्रकाश निस्संकोचभावसे कर देता है, अपनी दुर्बलताओं तथा आशङ्काओंका चित्रण भी विना किसी हिचकके कर डालता है, उसी रीतिसे मैं भी अपनी सम्पूर्ण दुर्दशा तुम्हारे सम्मुख निवेदन करके निश्चिन्तता-लाभ कर लेता हूँ। मेरी दुरवस्था जान लेनेपर मुझे उबारनेका दायित्व स्वतः ही तुमपर आ जाता है।

जैसे एक अबोध छात्र अपनी अज्ञान दशाको अपने शिक्षा-गुरुके सामने प्रकट करते लज्जित नहीं होता, जैसे एक अनजान यात्री अपने मार्गदर्शकके सम्मुख अपनी जिज्ञासाएँ रखते हुए सकुचाता नहीं, वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही तुम मेरी जीवन-यात्राके कर्णधार हो, तुम्हें मेरी असमर्थताओंका ज्ञान है—यह विश्वास मुझे निश्चिन्त बना देता है।

मेरी कोई हीनता, असमर्थता अथवा अपात्रता मेरे तुमतक पहुँचनेमें बाधक नहीं बन सकती; क्योंकि तुम्हारी सामर्थ्य अपार है। मेरी कोई भी अधोगामिनी प्रवृत्ति तुम्हारी उद्धार-क्रियामें रुकावट नहीं डाल सकती; क्योंकि तुम्हारा औदार्य अनुपमेय है।

मेरे उदार शरणदाता! मैं तुम्हारी बलिष्ठ भुजाओंके आश्रयमें पूर्णतया सुरक्षित हूँ। मैं तुम्हारा शरणागत हूँ, अतएव प्रत्येक परिस्थितिमें परम निश्चिन्त हूँ।

—तुम्हारा ही अपना एक

स्वामी सहजानन्द

(लेखक—श्रीरामलाल)

स्वामी सहजानन्द भागवतोत्तम थे। उन्होंने सनातनधर्मके संरक्षण, वर्णाश्रम-मर्यादाके पालन तथा भागवतधर्मके परिशीलनद्वारा विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दीके दूसरे चरणमें सौराष्ट्रप्रदेशमें ही नहीं, उत्तरप्रदेश तथा भारतके अन्य प्रदेशोंमें भी मधुर भगवद्भक्तिसे प्राणान्वित आध्यात्मिक क्रान्तिका प्रवर्तन कर जन-जीवनको नवजागरणसे सम्पन्न किया। उन्होंने देशको अधोगतिकी ओर जानेसे बचा लिया। उनकी 'शिक्षापत्री'के उपदेशोंको अपने जीवनमें श्रद्धापूर्वक चरितार्थकर तथा भागवतधर्मका आश्रय ग्रहणकर असंख्य लोगोंने (गृहस्थों, त्यागियों तथा संन्यासियोंने) मुक्ति और भक्तिका अपने-अपने आश्रमकी मर्यादाके अनुसार रसास्वादन किया। उनके समकालीन स्वामी ब्रह्मानन्दने उनका दर्शन कर अपने आपको परम सौभाग्यशाली समझा था। उनका उद्गार है—

'आज नी घड़ी धन्य छे,
मे आजे सहजानन्दने निरख्या छे।
× × × ×
ए सहजानन्दने निहालताँ मारी
आँखड़ी ठरी छे।'

महाराज सहजानन्दने कृपापूर्वक धर्म, ज्ञान, भक्ति और वैराग्यका मर्म समझाकर लोगोंको आध्यात्मिक जीवन अपनानेकी सीख दी। स्वामिनारायण-सम्प्रदायमें वे हरि, कृष्ण, हरिकृष्ण, श्रीहरि, सरयूदास, नीलकण्ठ, सहजानन्द, स्वामिनारायण और नारायणमुनि आदि नामोंसे प्रख्यात हैं। स्वामी सहजानन्द विक्रमकी उन्नीसवीं शताब्दीकी अप्रतिम भागवत विभूति थे। उनका परम पवित्र भागवतचरित्र—भगवद्भक्तिमय जीवन सर्वथा-सर्वदा अभिवन्द्य है।

स्वामी सहजानन्दके परम पवित्र चरित्रकी यह अलौकिकता है कि वे आजीवन—बचपनसे शरीर-त्यागकी अवधितक भगवान्‌की सहज भक्तिके अभिमुख रहे। उनके जन्म-कर्म—सब-के-सब भागवत धरातलपर दिव्य थे। अयोध्याके संनिकट छपिया (छपैया) ग्राममें स्वामी सहजानन्दने जन्म लिया था। अयोध्याके उत्तरका भूमिभाग सरवार प्रदेश कहलाता है। इसमें सरयूपारीण अथवा सरवरिया ब्राह्मण निवास करते हैं। इस प्रदेशमें भगवती मनोरमाके तटपर मखोड़ा नामक तीर्थसे आठ मील उत्तर छपिया ग्राम स्थित है। इस ग्राममें निवास करनेवाले हरिप्रसाद पाण्डेय अपनी पत्नी प्रेमवतीके साथ वृन्दावन तीर्थयात्राके लिये गये थे। वृन्दावनमें उन्हें भगवान् श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था। तीर्थयात्रासे वापस आनेपर संवत् १८३७ वि०की रामनवमीको दस बजे रातमें दम्पति श्रीकृष्णके कृपा-प्रसादके रूपमें एक दिव्य शिशुके जन्मसे गौरवान्वित हुए। नवजात शिशुका नाम घनश्याम रखा गया, जो आगे चलकर सहजानन्दके रूपमें प्रसिद्ध हुए। घनश्यामके पितामह पहले इटारग्रामके निवासी थे, जो उन्हें स्थानीय श्रीनेतवंशीय शासकसे प्राप्त हुआ था, इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनश्यामके पिता निवास करनेके लिये छपिया आनेपर इटारब्राह्मणकी उपाधिसे प्रसिद्ध थे।

घनश्यामके माता-पिताने अयोध्याको अपना निवास-स्थान बनाया। थोड़ी ही अवस्थामें घनश्याम विद्याध्ययनके द्वारा समस्त शास्त्रोंमें पारंगत हो गये। कहा जाता है कि आठ सालकी ही अवस्थामें उन्होंने वेद आदि शास्त्रोंका अध्ययन कर लिया था। जब वे ग्यारह सालके थे, उनकी माँने स्वर्गकी यात्रा की तथा छः माहके बाद पिताने भी शरीर-त्याग कर दिया। घनश्यामके मनमें सांसारिक वस्तुओं और सम्बन्धोंके प्रति सहज अनासक्ति उमड़ आयी। उन्होंने संवत् १८४९वि०की आषाढ़ शुक्ला दशमीको अपने दोनों भाइयों—रामप्रताप और इच्छारामके कंधोंपर घरके प्रबन्धका भार रखकर वैराग्यका वरण कर लिया। वे घरसे बाहर निकल पड़े। वे भगवती सरयूको पारकर उत्तर-दिशाकी ओर चल पड़े और हिमालयकी ओर बढ़ते गये। इस कठोर वैराग्य-अवस्थामें उन्होंने अपना नाम नीलकण्ठ रखा। उन्होंने पुलहाश्रममें आकर मुक्तिनाथका दर्शन किया। चार मास वहाँ निवास कर वे हिमालयकी तराईमें दक्षिणकी ओर गये। एक अरण्यमें उन्होंने गोपाल-नामक योगीका दर्शन किया। उन्होंने योगीसे एक वर्षतक योगाभ्यास सीखा। उसके बाद वे बंगालकी ओर चल पड़े। इस यात्रामें उन्होंने वाम-मार्गका खण्डन किया। वे जगन्नाथपुरी, आदिकूर्म, वेंकटाद्रि, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, श्रीरङ्गक्षेत्र, रामेश्वरधाम, धनुष्कोटि आदिका भ्रमण करते हुए पंढरपुर पहुँच गये; वहाँ भगवान् पाण्डुरङ्ग विट्ठलके लीलाक्षेत्रमें दो मासतक निवास कर नासिक होते हुए काठियावाड़में आ गये।

गुजरात प्रदेशके लोज नामक स्थानमें स्वामी रामानन्दका आश्रम था। स्वामी रामानन्दने गुजरातमें आध्यात्मिक और धार्मिक जागृतिका नेतृत्व किया था। श्रीनीलकण्ठके मनमें उनके दर्शनकी उत्कट इच्छा थी। स्वामी रामानन्द उद्धवके अवतारके रूपमें प्रख्यात थे। उनके पूर्वाश्रमका नाम रामशर्मा था। उन्होंने १७९५वि०की जन्माष्टमीको अयोध्यामें जन्म लिया था। उनके पिता अजयप्रसाद थे तथा माताका नाम सुमति था। रामशर्मा उच्चकोटिके भगवद्भक्त थे। तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें वे काठियावाड़ आये और द्वारका आदि तीर्थोंका भ्रमण करते हुए त्रंवा ग्राममें रहनेवाले स्वामी आत्मानन्दके शिष्य हो गये। उनका नाम रामानन्द रखा गया। स्वामी आत्मानन्द केवलाद्वैत मतके अनुसार निर्गुण ब्रह्मके उपासक थे। रामानन्द भक्त थे। वे दूसरे गुरुकी खोजमें तत्पर हो गये। उन्होंने श्रीरङ्गक्षेत्रमें आकर रामानुजाचार्यके विशिष्टाद्वैत मतमें निष्ठा प्रकट की। आचार्य रामानुजने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर श्रीकृष्णके दर्शनके साधन बताये। वैष्णवी दीक्षा प्राप्तकर स्वामी रामानन्द सौराष्ट्रमें विचरण करने लगे। नीलकण्ठ उनके दर्शनके लिये लोज आये। लोज स्वामी रामानन्दका मुख्य स्थान था। वहाँ मुक्तानन्द तथा उनके दूसरे शिष्य रहते थे। मुक्तानन्दके शिष्य सुखानन्दने नीलकण्ठसे पूछा—'आप कहाँसे आये हैं।' उन्होंने तत्काल उत्तर दिया कि 'मैं ब्रह्मपुरसे आया हूँ, ब्रह्मपुर जाऊँगा। जो मुझे वहाँ ले जायँगे, वे ही मेरे माँ-बाप हैं।' इस उत्तरसे सुखानन्द बहुत प्रसन्न हुए। उनकी प्रेरणासे स्वामी मुक्तानन्द-ने स्वामी रामानन्दको पत्र लिखा कि 'ब्रह्मचारी नीलकण्ठको देख-कर मेरे मनमें बड़ी शान्ति होती है। वे तरुण होकर भी असाधारण रूपसे योगनिष्णात हैं। वे जीवन्मुक्त हैं।'...''स्वामी रामानन्दने उनकी श्रद्धा और निष्ठासे प्रसन्न होकर संवत् १८५७ वि०-की कार्तिक शुक्ला एकादशीको उन्हें भागवती दीक्षा प्रदान की और वे नारायणमुनिके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हें स्वामी सहजानन्द भी कहा जाने लगा। स्वामी रामानन्दके १८५८ वि०के मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला त्रयोदशीको वैकुण्ठ प्राप्त करनेके बाद स्वामी सहजानन्दने असंख्य जीवात्माओंको भवसागरसे पार उतारनेके लिये उनका उत्तरदायित्व सँभाला। उन्होंने विशिष्टाद्वैतपरक स्वामिनारायण-सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्होंने घोषणा की कि 'मेरा मत विशिष्टाद्वैत है। मेरा इष्टधाम गोलोक है। श्रीकृष्ण-सेवा और मुक्ति-प्राप्ति ही हमारा परम आध्यात्मिक उद्देश्य है।'

मतं विशिष्टाद्वैतं मे गोलोको धाम चेप्सितम्।
तत्र ब्रह्मात्मना कृष्णसेवा मुक्तिश्च गम्यताम्॥

(शिक्षापत्री १२१)

उन्होंने अपने सम्प्रदायके सत्सिद्धान्तका निरूपण करते हुए कहा कि 'मन्दिरोंमें मेरे द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीलक्ष्मीनारायण आदिके विग्रहोंकी यथाविधि पूजा-सेवा होनी चाहिये'—

मया प्रतिष्ठापितानां मन्दिरेषु महत्सु च।
लक्ष्मीनारायणादीनां सेवा कार्या यथाविधि॥

(शिक्षापत्री १३०)

स्वामी सहजानन्दने भगवत्प्राप्तिके मार्गमें निष्कामता, निर्लोभता, निर्मानता, निस्स्वादता और निःस्नेहता—पञ्चव्रतके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालनको महान् साधन स्वीकार किया और लोगोंको इन्हें अपने जीवनमें चरितार्थ करनेकी सत्प्रेरणा प्रदान की। उनकी प्रेरणाके परिणामस्वरूप स्थान-स्थानपर मन्दिर बन गये और असंख्य प्राणी भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति कर कृतार्थ हो उठे।

अपने स्वामिनारायण सम्प्रदायके प्रचारका उत्तरदायित्व स्वीकार करनेके समयसे अट्ठाईस सालतककी अवधिमें उन्होंने बड़ी तत्परतासे लोगोंको भागवत जीवन अपनानेकी सीख दी। धीरे-धीरे स्वामी सहजानन्दका शरीर शिथिल होने लगा; पर संयम और व्रतपालन आदिमें रंचमात्र भी शिथिलता नहीं आने पायी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें उन्होंने व्रत-उपवासका क्रम अधिकाधिक बढ़ा दिया, मौन धारण कर लिया तथा वे संसारसे उदासीन और सर्वथा अनासक्त हो गये। भक्तों और अनुयायियोंकी भीड़ दूर-दूरसे उनके दर्शनके लिये उमड़ पड़ी। उन्होंने अपने सभी दर्शनार्थियोंको बताया कि 'सदा अपने धर्ममें स्थिर रहना चाहिये।' सन् १८३० ई०की अट्ठाईस जून (ज्येष्ठ मासकी शुक्ला एकादशी)को स्वामी सहजानन्दने दिव्य भगवद्धाममें प्रवेश किया। वे भागवतधर्मके महान् शिक्षक थे। उन्होंने सनातनधर्म और ऐकान्तिक (शुद्ध भागवत) धर्मका संरक्षण किया।

स्वामी सहजानन्दकी साधना और सिद्धान्तके सर्वेक्षणकी आधारशिला उनकी 'शिक्षापत्री' है, जिसमें उनके द्वारा समर्थित भागवतधर्म तथा संरक्षित वर्णाश्रम-मर्यादाका समीचीन विश्लेषण उपलब्ध होता है। उनकी शिक्षापत्री केवल उनके द्वारा समर्थित विशिष्टाद्वैत-दर्शन और तदनुकूल जीवन-यापनकी ही नहीं, अपितु शास्त्रसम्मत भागवतधर्मकी अक्षर आचारसंहिता है। शिक्षापत्रीमें उन्होंने सम्पूर्ण भक्ति-सिद्धान्तका सार भर दिया है। उसमें स्वामी सहजानन्दकी विज्ञप्ति है कि "किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। अहिंसा परम धर्म है। सभीको अपने-अपने वर्णाश्रमकी मर्यादाका पालन करना चाहिये, यही सनातन धर्मका स्वरूप है। जिन ग्रन्थोंमें ईश्वरके स्वरूपका खण्डन हो, उन्हें प्रमाण नहीं मानना चाहिये। श्रुति-स्मृति और सदाचारके द्वारा ही धर्मके स्वरूपका बोध होता है। परमात्माके माहात्म्यज्ञानपूर्वक उनमें आत्यन्तिक स्नेह होना ही 'भक्ति' है। जीव, ईश्वर और मायाके स्वरूपको जान लेना ही 'ज्ञान' है।" शिक्षापत्रीके अतिरिक्त उनके उपदेशोंका संग्रह 'वचनामृत' नामक ग्रन्थमें भी प्राप्त होता है। स्वामी सहजानन्दका कथन है कि 'हमारे आश्रित स्त्री-पुरुष, जो हमारी शिक्षापत्रीके उपदेशके अनुसार जीवन-यापन करेंगे, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि प्राप्त करेंगे।'

स्वामी सहजानन्दने पाखण्ड और दम्भका खण्डन किया तथा सामाजिक जागरणकी भूमिका प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'स्त्री और धनमें आसक्त जो पुरुष भक्ति अथवा ज्ञानका आश्रय लेकर पाप-कर्ममें तत्पर रहते हैं, उनका किसी भी स्थितिमें सङ्ग नहीं करना चाहिये।'

भक्तिं वा ज्ञानमालम्ब्य स्त्रीद्रव्यरसलोलुभाः।
पापे प्रवर्तमानाः स्युः कार्यस्तेषां न संगमः॥
(शिक्षापत्री २८)

उन्होंने भगवद्भक्तिमयी प्रवृत्तिको निरन्तर अक्षुण्ण रखनेके मार्गमें भगवान्‌के मन्दिरमें जाने तथा राधिका-पतिके नाम-कीर्तन और उनकी कथा-वार्तामें संलग्न रहने और आदरपूर्वक उन्हें सुनने तथा बाजेके साथ श्रीकृष्ण-कीर्तनोत्सव करनेको महान् साधन स्वीकार किया है। उनके वचन हैं—

भगवन्मन्दिरं सर्वैः सायं गन्तव्यमन्वहम्।
नामसंकीर्तनं कार्यं तत्रोच्चै राधिकापतेः॥
कार्यास्तस्य कथावार्ताः श्रव्याश्च परमादरात्।
वादित्रसहितं कार्यं कृष्णकीर्तनमुत्सवे॥
(शिक्षापत्री ६३-६४)

उन्होंने सच्छास्त्रोंका सारतत्त्व अच्छी तरह उद्धृतकर शिक्षापत्रीकी रचना की। उन्होंने संवत् १८८२ वि०में शिक्षापत्री लिखी थी—

सच्छास्त्राणां समुद्धृत्य सर्वेषां सारमात्मना।
पत्रीयं लिखिता नृणामभीष्टफलदायिनी॥
विक्रमार्कशकस्याब्दे नेत्राष्टवसुभूमिते।
वसन्ताद्यदिने शिक्षापत्रीयं लिखिता शुभा॥
(शिक्षापत्री २०४, २११)

स्वामी सहजानन्दके कार्यको उनके अनुयायियोंने भी आगे बढ़ाया। स्वामी गोपालानन्दने उनके सत्सिद्धान्तके अनुसार ... भाष्य लिखा। स्वामी नित्यानन्दने 'हरि-दिग्विजय' ग्रन्थकी रचना कर उनके वेदान्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तका विशिष्टाद्वैतपरक मर्म समझाया । शतानन्द और वासुदेवानन्द ब्रह्मचारीने 'सत्सङ्गी जीवन' और 'सत्सङ्गी भूषण' ग्रन्थोंकी रचना कर स्वामी सहजानन्दकी शिक्षा और भागवतधर्म-प्रचारका महत्त्व निरूपित किया ।

स्वामी सहजानन्द अपने समयकी परम दिव्य भागवती शक्ति थे । उन्होंने भगवान्‌की भक्तिसे मानवताको सम्पन्न किया । उन्होंने भगवद्भक्तिके आश्रयको ही आत्मकल्याणका पथ बताया । भागवतधर्म ही ऐकान्तिक धर्म है । भगवान्‌की आज्ञासे उन्हींकी प्रसन्नताके लिये किया गया धर्माचरण ही 'भागवतधर्म' कहा जाता है । भगवान्‌के भक्त ही इस धर्मको धारण करते हैं । भागवतधर्म सनातन है । इसका कभी नाश नहीं होता । इस भागवतधर्मकी ग्लानि होनेपर भगवान्‌का अवतार होता है । स्वामी सहजानन्दने भागवतधर्मके निरूपणमें कहा है—'धर्म दो प्रकारका होता है, एक प्रवृत्तिधर्म है तो दूसरा निवृत्तिधर्म कहा जाता है । ये दोनों भगवत्-सम्बन्धसहित और भगवत्सम्बन्धरहित होते हैं । इनमें जो भगवत्सम्बन्धसहित धर्म है, वह नारद, सनकादि, शुक, ध्रुव, प्रह्लाद और अम्बरीष आदिका है; यह भागवतधर्म है । वर्णाश्रमधर्म भागवतधर्मकी अपेक्षा गौणस्थानीय है । भागवत-धर्मसे मनुष्य मायाका (भगवान्‌की मायाका) संतरण कर पुरुषोत्तमके धामकी प्राप्ति करता है । भागवतधर्म और भक्ति—दोनों समानार्थक हैं ।'

स्वामी सहजानन्दने भगवत्स्वरूपके सम्बन्धमें कहा है कि "परमात्मा द्विभुज, दिव्य और सदा साकार हैं । वे मायिक आकाररहित—निराकार और दिव्य आकारसहित—साकार हैं । शास्त्रका मर्म ऐकान्तिक भक्त ही समझ पाता है । शास्त्रका कथन है कि 'भगवान् अरूप हैं, ज्योतिःस्वरूप हैं, निर्गुण और सर्वव्यापक हैं ।' मूर्ख तो समझेंगे कि शास्त्रमें भगवान्‌को 'अरूप' कहा गया है । पर ऐकान्तिक भक्त यह जानता है कि 'अरूप' मायिक रूपका निषेध है; भगवान् तो नित्य दिव्यमूर्ति हैं तथा अनन्त कल्याण-गुणयुक्त हैं । वे तेजःपुञ्जरूप हैं । मूर्तिके बिना तेज हो ही नहीं सकता । यह तेज तो मूर्तिका ही है ।" उन्होंने कहा है कि श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, भगवान् हैं, पुरुषोत्तम हैं । वे हमारे उपास्य इष्टदेव हैं, सबके आविर्भावके कारण हैं । राधासे युक्त होनेपर वे प्रभु 'राधाकृष्ण' हैं । रमास्वरूपिणी भगवती रुक्मिणीसे युक्त होनेपर वे 'लक्ष्मीनारायण' हो जाते हैं ।"

स श्रीकृष्णः परं ब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तमः ।
उपास्य इष्टदेवो नः सर्वाविर्भावकारणम् ॥
स राधया युतो ज्ञेयो राधाकृष्ण इति प्रभुः ।
रुक्मिण्या रमयोपेतो लक्ष्मीनारायणः स हि ॥

(शिक्षापत्री १०८-१०९)

उन्होंने श्रीकृष्णमें भक्ति सुदृढ़ करनेके लिये श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके प्रतिदिन अथवा वर्षमें एक बार पण्डितोंसे आदर पूर्वक श्रवण करनेपर बड़ा जोर दिया । उनका स्पष्ट आदेश है—

श्रव्यः श्रीमद्भागवतदशमस्कन्ध आदरात् ।
प्रत्यहं वा सकृद् वर्षे वर्षे वाच्योऽथ पण्डितैः ॥

(शिक्षापत्री ११७)

स्वामी सहजानन्दने कहा कि 'चारों वेद, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्-भागवत, महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भगवद्गीता, विदुरनीति, स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डका वासुदेव-माहात्म्य और याज्ञवल्क्यस्मृति—ये आठों हमारे इष्ट शास्त्र हैं । मिताक्षरा टीकासे युक्त याज्ञवल्क्यस्मृति हमारा धर्मशास्त्र है, श्रीमद्भागवतका पञ्चमस्कन्ध हमारा योगशास्त्र है । उसका दशमस्कन्ध हमारा भक्तिशास्त्र है । श्रीरामानुजकृत व्याससूत्र-भाष्य और श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य—दोनों हमारे अध्यात्म-शास्त्र हैं । हमारा मत विशिष्टाद्वैत है और हमारा प्रियधाम गोलोक है ।' शिक्षापत्रीमें उनकी स्वीकृति है—

वेदाश्च व्याससूत्राणि श्रीमद्भागवताभिधम् ।
पुराणं भारते तु श्रीविष्णोर्नामसहस्रकम् ॥
तथा श्रीमद्भगवद्गीता नीतिश्च विदुरोदिता ।
श्रीवासुदेवमाहात्म्यं स्कान्दवैष्णवखण्डगम् ॥
धर्मशास्त्रान्तर्गता च याज्ञवल्क्यऋषेः स्मृतिः ।
एतान्यष्ट ममेष्टानि सच्छास्त्राणि भवन्ति हि ॥

× × × ×

दशमः पञ्चमः स्कन्धो याज्ञवल्क्यस्य च स्मृतिः ।
भक्तिशास्त्रं योगशास्त्रं धर्मशास्त्रं क्रमेण मे ॥
शारीरकाणां भगवद्गीतायाश्चावगम्यताम् ।
रामानुजाचार्यकृतं भाष्यमाध्यात्मिकं मम ॥

(९३—९५, ९९-१००

स्वामी सहजानन्दने भगवत्स्वरूपोंमें भेदभाव न रखनेकी शिक्षा दी । उन्होंने विष्णु और शिवको स्वरूपतः एक बताया । उन्होंने कहा कि 'नारायण और शिवको एक ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानना चाहिये, वेदमें इनका ब्रह्मरूपसे प्रतिपादन किया गया है।' इसी तरह उन्होंने साम्प्रदायिक सहानुभूति दिखायी। यद्यपि उनका मत विशिष्टाद्वैत था, तथापि वल्लभ-सम्प्रदायके प्रति उन्होंने जो भाव प्रकट किया है, उसमें उनकी उदार मनोवृत्तिका परिचय मिलता है। उन्होंने कहा है कि 'समस्त वैष्णवोंके राजाकी तरह श्रीवल्लभाचार्य और उनके पुत्र श्रीविठ्ठलनाथजीने जो व्रत-उत्सव आदिका निर्णय किया है, उसीके अनुसार व्रत-उत्सव तथा श्रीकृष्णकी सेवा-रीति आदिका ग्रहण करना चाहिये।'

भगवान् और उनके अक्षर धामके प्रति स्वामी सहजानन्दने कहा है—'जो अक्षराधिपति परम दिव्यमूर्ति परमात्मा हैं, वे अपने ऐश्वर्य तथा तेजको अपनेमें प्रविष्टकर जीवके कल्याणके लिये मनुष्यरूपमें प्रकट होते हैं, जिससे मनुष्य उनका दर्शन कर सके, उनकी सेवा-अर्चना कर सके। इस तरह वे रूप धारणकर मनुष्यके समान आचरण करते हैं।

'निस्संदेह अक्षर धामके सुखके समान दूसरे धामका सुख नहीं है। पशुके सुखसे मनुष्यमें अधिक सुख होता है, उससे अधिक राजाका सुख है, उससे अधिक देवताका सुख है, उससे अधिक इन्द्रका सुख है, उससे अधिक बृहस्पति-का सुख है, उससे अधिक ब्रह्माका है, उससे अधिक वैकुण्ठका है, उससे अधिक सुख गोलोकका है और उससे भी अधिक भगवान्के अक्षर धामका सुख है।' सहजानन्द स्वामी फिर कहते हैं—'भगवान्का सनातन, अनादि, दिव्य मूलरूप उनके अक्षर धाममें रहता है। वे भगवान् जब जीवोंको अपना दर्शन देना चाहते हैं, तब अपने अलौकिक ऐश्वर्यको छिपाकर मनुष्यदेह धारण करते हैं और मनुष्यके समान चेष्टा करते हैं।.....'पुरुषोत्तम भगवान् तो कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्रके समान तेजोमय अपने अक्षर धाममें दिव्य आकारमें सदा विराजमान रहते हैं।.....वे परब्रह्म पुरुषोत्तम कृपा कर अपने (स्वजनों) जीवोंके कल्याणके लिये पृथ्वीपर प्रकट होते हैं। वे उस समय जो-जो तत्त्व अङ्गीकार करते हैं, वे सब (तत्त्व) ब्रह्मरूप ही होते हैं।' स्वामी सहजानन्दकी स्वीकृति है कि "जो भगवान् पुरुषोत्तम हैं, वे सदा साकार हैं, वे महातेजोमयमूर्ति हैं। अन्तर्यामीरूपमें जो भगवान् सर्वत्र पूर्ण हैं, वे सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं। वे तो मूर्तिमान् भगवान् पुरुषोत्तमके तेज हैं। कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रुतिमें परमेश्वर कर-चरण आदिसे रहित वर्णित हैं, सर्वत्र पूर्ण हैं।' यह तो मायिक चरणादिका निषेध है। भगवान्का आकार दिव्य है, मायिक नहीं। भगवान् पुरुषोत्तम सदा साकार हैं।"

स्वामी सहजानन्दने आध्यात्मिक साधनाके क्षेत्रमें भगवद्भक्तिको सर्वोपरि ठहराया। उन्होंने भक्ति-सिद्धिके लिये सत्सङ्ग, वैराग्य और मुक्तिको अन्य साधनोंकी अपेक्षा प्रमुख महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने कहा है—'परमेश्वरका भजन-स्मरण करते हुए सत्सङ्ग करना चाहिये; मनमें किसी भी बातके प्रति आग्रह नहीं रखना चाहिये। आग्रह केवल भगवान्के भजन और भक्तोंके सत्सङ्गके लिये होना चाहिये। ...यदि श्रीकृष्णकी इच्छा होगी, तो सत्सङ्ग बढ़ेगा, यदि उन्हें उसे घटाना होगा तो वह घटेगा। भगवान्की इच्छा होगी, तो जगत् सत्सङ्गी होगा।' सत्सङ्गका फल है—जगत्की विनश्वर वस्तुओं तथा सम्बन्धोंके प्रति मनमें अनासक्तिका उदय; यही 'वैराग्य' कहलाता है। उन्होंने कहा है—'आत्मा-परमात्माके ज्ञानसे उत्पन्न वैराग्य ही खरा वैराग्य है। इसके बिना जो वैराग्य है, उसमें कोई बल नहीं है। वह तो ऊपरी वैराग्य अथवा दिखावा है। बल तो उस वैराग्यमें है, जो ज्ञानांश है।' उन्होंने परमेश्वरके साथ प्रेम-सम्बन्धका महत्त्वाङ्कन करते हुए कहा है—'जिसे परमेश्वरसे प्रेम है, उसे उनके सिवा किसी और पदार्थमें प्रीति ही नहीं होती। परमेश्वरके अतिरिक्त जो और पदार्थ अधिक प्रिय जान पड़ते हैं, उनका अतिशय त्याग ही त्याग है। जो पदार्थ परमेश्वरके प्रेममें बाधक हैं, उनका त्याग न कर ऊपरी वस्तुका त्याग तो केवल दिखावामात्र है।'

वास्तविक वैराग्य तथा त्यागसे ही मुक्तिका उदय होता है। स्वामी सहजानन्दके सिद्धान्तके अनुसार दिव्य धाममें रहते हुए ब्रह्मरूपमें भगवान्की सेवा करना ही मुक्ति है। उनके वचन हैं—'भगवान्के लोकमें रहना, उनके समीप रहना, उनके रूपमें लीन होना तथा उनका समस्त ऐश्वर्य पाना—ये ही चार मुक्तियाँ हैं। भगवान्का भक्त इनकी इच्छा न कर केवल उनकी सेवाकी ही इच्छा करता है। जो निष्काम भक्त है, उसीको भगवान् अपनी सेवामें रखते हैं और उसकी इच्छा न होनेपर भी भगवान् उसे अपना ऐश्वर्य-सुख प्रदान करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी सहजानन्दने भक्तिको ही भक्तकी सहज सम्पत्ति स्वीकार किया है। आत्मनिष्ठाके बाद उपासनाका आरम्भ होता है और उपासनासे भक्तिकी प्राप्ति होती है। दृढ़ भगवदाश्रयसे ही भक्त मृत्युको जीतकर भक्तिराज्यमें प्रतिष्ठित हो जाता है। स्वामी सहजानन्दने कहा है—'मैं देह नहीं, सबको जाननेवाला आत्मा हूँ। जिसका ऐसा निश्चय हो जाता है, आत्मनिष्ठा हो जाती है, उसका काम, क्रोध, लोभ तथा भयके समय धैर्य नहीं डिगता। आत्मनिष्ठाके बिना अनेक उपाय करनेपर भी धैर्य नहीं रहता। जब आत्मनिष्ठा सहायता नहीं करती, तब भगवान्‌की उपासना काम आती है। जिसको नदी तैरना आता है, वह तैरकर पार हो जाता है; पर जो तैरना नहीं जानता, वह तो खड़ा ही रहता है। जिसे समुद्र पार करना होता है, उसे बड़े बेड़ेकी आवश्यकता पड़ती है। भूख-प्यास, मान-अपमान और सुख-दुःखको तो आत्मनिष्ठावाला तैरकर पार कर लेता है, पर मृत्युका समय तो समुद्रके समान है। इसके लिये तो आत्मनिष्ठावाले और बिना आत्मनिष्ठावाले—दोनोंको भगवान्‌की उपासनारूपी नौकाकी आवश्यकता पड़ती है। अन्तकालमें भगवान्‌का दृढ़ आश्रय ही काम देता है, आत्मनिष्ठासे काम नहीं चलता; इसलिये भगवान्‌की उपासना दृढ़ कर रखनी चाहिये।'

आत्मनिष्ठको तीव्र वैराग्य होता है, आत्मनिष्ठा होती है। उसे बन्धन तो नहीं होता; पर यदि उसमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है तो जिस तरह अनेक प्रकारके व्यञ्जनोंमें नमक न होनेसे सब कुछ व्यर्थ हो जाता है, उसी तरह भगवान्‌की भक्तिके बिना ब्रह्मज्ञान और वैराग्य—दोनों व्यर्थ हैं। स्वामी सहजानन्दका कथन है—'शुकदेवजी ब्रह्मस्वरूप थे, फिर भी वे श्रीमद्भागवतके वक्ता थे और भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी दृढ़ भक्ति थी। आत्मनिष्ठमें यदि भगवान्‌की भक्ति नहीं है तो यह उसका महान् दूषण है।'

निस्संदेह भक्तिमें जितनी शक्ति है, उतनी ज्ञान-वैराग्यमें नहीं है। स्वामी सहजानन्दकी उक्ति है कि "श्रीकृष्णके प्रति माहात्म्यज्ञानसहित जो घनिष्ठ स्नेह है, वही 'भक्ति' है। ...भगवान्‌की मूर्तिकी अखण्ड स्मृतिका नाम ही 'स्नेह' है।"

स्वामी सहजानन्दने श्रीकृष्ण-चिन्तनको ही भक्तिका स्वरूप बताया है। उन्होंने शिक्षापत्रीमें अपना मत व्यक्त किया है—

वामे यस्य स्थिता राधा श्रीश्च यस्यास्ति वक्षसि।
वृन्दावनविहारं तं श्रीकृष्णं हृदि चिन्तये॥
(शिक्षापत्री १)

आत्मनिष्ठा—आत्मज्ञान, वैराग्य और धर्म भगवान्‌की भक्तिके सहायक हैं। धर्म, ज्ञान और वैराग्य क्रमशः भक्तिके मस्तक, हृदय और चरण हैं। भक्ति धर्म, ज्ञान और वैराग्यसहित करनी चाहिये। सहजानन्दकी विज्ञप्ति है—

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यं भक्तेर्वेद्यानि तत्त्वतः।
अङ्गानि त्रीण्युत्तमाङ्गहृत्पादाख्यान्यनुक्रमात्॥
(सत्सङ्गी-जीवन, प्रकरण २, अध्याय ७। ३४)

स्वामी सहजानन्द सनातनधर्मके महान् संरक्षक थे। उन्होंने वर्णाश्रम-मर्यादाको अक्षुण्ण रखा। उन्होंने कहा कि—'देवता, तीर्थ, ब्राह्मण, पतिव्रता, साधु और वेदकी न तो निन्दा करनी चाहिये, न सुननी चाहिये'—

देवतातीर्थविप्राणां साध्वीनां च सतामपि।
वेदानां च न कर्तव्या निन्दा श्रव्या न च क्वचित्॥
(शिक्षापत्री २१)

उन्होंने आहार-शुद्धिपर बड़ा जोर दिया है। आहार-शुद्धिसे अन्तःकरण पवित्र रहता है। स्वामी सहजानन्दने कहा—'पाँच इन्द्रियोंसे जीव जो आहार करता है, यदि वह शुद्ध है तो अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेपर भगवान्‌की अखण्ड स्मृति रहती है। यदि पाँच इन्द्रियोंमेंसे एकका भी आहार अशुद्ध रहता है तो अन्तःकरण मलिन ही रहता है। इन्द्रियोंकी क्रियाको भगवान् और भक्तकी सेवामें रखनेसे अन्तःकरण शुद्ध रहता है, अनन्त कालका पाप नष्ट हो जाता है।'

स्वामी सहजानन्दने पञ्च वर्तमान, एकादश नियम और आहार-शुद्धिको अपने उपदेशमें प्रथम स्थान प्रदान किया है। 'वर्तमान' स्वामिनारायण-सम्प्रदायका पारिभाषिक शब्द है—वर्तन करनेकी प्रतिज्ञा ही 'वर्तमान' है।

उपर्युक्त सम्प्रदायमें प्रवेश करनेके लिये वर्तमानका पालन करना आवश्यक है। प्रवेशके समय यह कहना पड़ता है कि 'काल, माया, पापकर्म और यमदूतके भयसे मुक्त होकर मैं श्रीकृष्णके शरणागत हूँ; वे भगवान् हमारी रक्षा करें।' इस प्रतिज्ञाका उच्चारण कर वर्तमान ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला ही उपर्युक्त सम्प्रदायका अनुयायी कहा जाता है। जिस तरह गृहस्थके लिये वर्तमान पाँच हैं, उसी तरह त्यागियोंके लिये भी पाँच वर्तमान हैं। गृहस्थके लिये मदिरा न पीना, मांस-भक्षण न करना, चोरी न करना, व्यभिचार-का मनसा-वाचा-कर्मणा त्याग करना तथा अशुद्ध व्यक्तिके अन्न-जलका ग्रहण न करना ही पाँच वर्तमान हैं। त्यागाश्रमी-के लिये निष्कामता, निर्लोभता, निःस्वादता, निःस्नेहता और निर्मानता—पाँच व्रत ही पाँच वर्तमान हैं। स्वामी सहजानन्दने कहा है कि 'पाँच वर्तमानकी अवज्ञा कर केवल ज्ञान या भक्तिका आश्रय ग्रहण करनेवाला असुर है। वह गुरुद्रोही है।' उन्होंने कहा है—'वर्तमान ग्रहण करनेपर ही शरणागति सार्थक होती है। जो शरणागत है, वह एक परमात्माका ही आश्रय रखता है;... महाप्रलय-के समान दुःखमें भी परमात्माको ही रक्षक समझता है।... परमात्माकी आज्ञाके अनुसार वह जीवन-यापन करता है। वर्तमानका आचरण करनेवाले शरणागतके कर्मको परमात्मा स्वयं अङ्गीकार करते हैं और उस भक्तका इस लोक और परलोकमें परम कल्याण होता है। वर्तमान ग्रहण करते ही जीवका संचित कर्म नष्ट हो जाता है। क्रियमाण तो वह करता ही है और प्रारब्धको, जो शास्त्रके अनुसार भोगनेपर ही नष्ट होता है, परमात्मा स्वयं ले लेते हैं।'

शिक्षापत्रीमें स्वामी सहजानन्दने एकादश नियमोंपर भी प्रकाश डाला है। उनका त्यागी और गृहस्थ—दोनों ही पालन करते हैं। भगवत्प्रतिमाके सामने दोनों उपर्युक्त नियमोंको नित्य सायं प्रार्थनामें दुहराते हैं। हिंसा नहीं करनी चाहिये, परस्त्री-सङ्गका त्याग करना चाहिये, मांस नहीं खाना चाहिये, मद्य-पान नहीं करना चाहिये, विधवाका स्पर्श नहीं करना चाहिये, आत्मघात नहीं करना चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये, किसीको कलङ्क नहीं लगाना चाहिये, किसी देवताकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, भगवद्विमुखसे कथा नहीं सुननी चाहिये—आदि एकादश नियम हैं।

स्वामी सहजानन्दने कहा है—'जिसे मैं अपने आचरणमें लाता हूँ, उसीकी बात करता हूँ। जो मेरे सदुपदेशोंको अपने आचरणमें नहीं उतारता, वह हमारे सम्प्रदायमें बहिर्मुख है।'

उन्होंने अपने अनुयायियों, त्यागी शिष्यों और गृहस्थ शिष्योंमें पारस्परिक सद्भावना बनाये रखनेकी दृष्टिसे गुजरात प्रदेशमें बड़तालमें लक्ष्मीनारायण, अहमदाबादमें नरनारायण तथा अन्य प्रमुख स्थानोंमें वासुदेव, नारायण तथा गोपीनाथकी मूर्ति स्थापित की तथा अनेक मन्दिरोंका निर्माण कराया।

स्वामी सहजानन्दद्वारा स्थापित स्वामिनारायण-सम्प्रदाय-के असंख्य अनुयायी तथा वैष्णवभक्त गुजरात प्रदेशमें पाये जाते हैं। विशिष्टाद्वैतमतानुयायी रामानुज-सम्प्रदायमें ही नहीं, अपितु समस्त वैष्णव-जगत्में स्वामी सहजानन्दका नाम अमर है। निस्संदेह विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दीके महापुरुषोंमें उनको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। वे परम भागवत अथवा भागवतरत्न थे। उनके पावन पुण्यस्मरणका अवसर बड़े ही सौभाग्यका फल है।

संस्कारोंपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है

लोहेकी जंजीर भी एक जंजीर है और सोनेकी जंजीर भी एक जंजीर ही है। यदि हमारी अँगुलीमें एक काँटा चुभ जाय तो उसे निकालनेके लिये हम एक दूसरा काँटा काममें लाते हैं, परंतु जब वह निकल जाता है, तब हम दोनोंको ही फेंक देते हैं। हमें फिर दूसरे काँटेको रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती; क्योंकि दोनों आखिर काँटे ही तो हैं। इसी प्रकार कुसंस्कारोंका नाश शुभ संस्कारोंद्वारा करना चाहिये और मनके अशुभ विचारोंको शुभ विचारोंद्वारा दूर करते रहना चाहिये, जबतक कि समस्त अशुभ विचार लगभग नष्ट न हो जायँ, अथवा पराजित न हो जायँ या वशीभूत होकर मनमें कहीं एक कोनेमें न पड़े रह जायँ। परंतु उसके उपरान्त शुभ संस्कारोंपर भी विजय प्राप्त करना आवश्यक है। तभी जो 'आसक्त' था, वह 'अनासक्त' हो जाता है। कर्म करो, अवश्य करो; पर उस कर्म अथवा विचारको अपने मनके ऊपर कोई गहरा प्रभाव न डालने दो। लहरें आयें और जायँ, मांसपेशियों और मस्तिष्कसे बड़े-बड़े कार्य होते रहें, पर वे आत्मापर किसी प्रकारका गहरा प्रभाव न डालने पायें। —स्वामी विवेकानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष ही खाना हो तो अंडा खाइये !

'अंडे खानेसे हाई ब्लड-प्रेशर होता है, जो बादमें हृदयरोग बन जाता है । यह दुष्पाच्य होनेसे पेटमें तो गड़बड़ करता ही है, पथरी भी पैदा करता है । अंडे खानेवालोंके आमाशयकी दीवारों तथा आँत एवं रक्तवाही नलिकाओंमें घाव पड़ जाते हैं, जो रोगका कारण बनते हैं । पेचिश भी अंडे खानेसे होती है ।'

ये विचार हैं कैलिफोर्निया (अमेरिका) के वैज्ञानिक डा० कैथरिन निम्मो तथा डा० जे० अमेनके । परीक्षणोंके बाद ये इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि अंडेमें 'कालेस्ट्राल' नामक विष पाया जाता है। यह विष रक्त-वाहिनी नलिकाओंको घायल करता है, जिसके कारण उनपर गंदगी जमती है तथा उनका मार्ग सँकड़ा हो जाता है। इनमें लचकका अभाव हो जाता है। ये नलिकाएँ बड़ी कोमल एवं संवेदनशील रचनाएँ हैं। इनकी कोमलता एवं संवेदनशीलता घटनेसे ही बुढ़ापा आता है । इस कारण अंडे खानेसे व्यक्ति शीघ्र बूढ़ा हो जाता है और उसकी आयु कम हो जाती है। इसके विवरणको अमेरिकाके फ़्लोरीडा विश्वविद्यालयने सन् १९६७ में ही अपनी एक स्वास्थ्य बुलेटिनमें प्रकाशित किया था ।

ये तथ्य बड़े चौंकानेवाले हैं । अंडेको स्वास्थ्य-विज्ञान पिछले दिनों 'सम्पूर्ण भोजन' मानता आया था। नयी शोधोंने उन्हें अधिक गहराईतक विचार करनेके लिये विवश किया और इस निष्कर्षपर पहुँचाया है कि अंडेकी उपयोगिता वैसी नहीं है, जैसी अबतक प्रतिपादित की जाती रही है । अभी-अभी रूसमें १६० वर्षकी आयुमें एक दीर्घजीवी व्यक्तिकी मृत्यु हुई । उसके दीर्घजीवनका कारण शाकाहारी जीवन था।

इंग्लैंडके डाक्टर राबर्ट ग्रास, प्रो० ओकाडा, डेविडसन इरविंग आदि वैज्ञानिकोंने भी परीक्षण-प्रयोग किये । इनके आधारपर उन्होंने स्वीकार किया है कि 'अंडे खानेवालोंको इसके हानिकारक प्रभावके कारण पेचिश तथा मन्दाग्निसे पीड़ित होना पड़ता है तथा आगे चलकर यह आँतों तथा आमाशयके क्षय-रोगके रूपमें परिणत हो सकता है ।' डा० ई० बी० एम० सी० (अमेरिका) तथा डा० डोन्हा (इंग्लैंड) ने अपनी विश्वविख्यात स्वास्थ्य-पुस्तकों 'पोषणका नवीनतम ज्ञान' एवं 'बीमारियोंकी प्रकृति'में स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'अंडे मनुष्यके लिये विष हैं । कैल्शियम तथा कार्बोहाइड्रेट अंडेमें कम होते हैं । इसीलिये यह पेट सड़ाता है तथा बीमारियाँ पैदा करता है ।'

इंग्लैंडके डा० आर० जे० विलियमने कहा है—'हो सकता है, अंडे खानेवाले लोग शुरूमें अपनेको अधिक स्वस्थ अनुभव करें और दूसरोंको भी ऐसा लगे; पर बादमें वे कई रोगोंसे ग्रस्त हो जाते हैं, जिनमें रक्तचाप और एग्ज़ीमा-जैसे भयानक रोग भी हैं ।'

उपर्युक्त कथन मांसभोजियोंके लिये एक चेतावनी है । वैज्ञानिक निष्कर्षोंके आधारपर अब यह सिद्ध हो चला है कि मांसाहारसे लाभकी अपेक्षा शरीरको हानि ही अधिक उठानी पड़ती है ।

मनुष्यका भोजन वनस्पति, फल-फूल तथा दूध ही है । यही दीर्घजीवी होनेका राजमार्ग है। प्रबुद्ध वर्गके वैज्ञानिक एवं विचारक धीरे-धीरे मांसाहारके कारण होनेवाले शारीरिक दुष्प्रभावको समझने लगे हैं । मांसाहारसे बौद्धिक और भावनात्मक हानि तो इतनी अधिक है कि उसकी तुलनामें यदि शरीरको कुछ लाभ भी होता हो तो वह त्यागने ही योग्य है ।

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक हानि उठाकर मांसाहार तथा अंडोंका सेवन यदि जिह्वाके स्वादके लिये किया जाता रहे तो इससे बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती है । इतना संयम तो मनुष्य-जैसे विवेकशील प्राणीको रखना ही चाहिये कि वह स्वादके वशीभूत होकर विष-भक्षण न करे ।

('युग निर्माण योजना' से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज धर्मपर एक नैतिक संकट क्यों आया हुआ है ?

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आजके भौतिकवादी युगमें धर्मपर एक नैतिक संकट आया हुआ है । वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनमें पतन दिखायी देता है । राजतन्त्र, कानून तथा सामाजिक न्यायकी व्यवस्थाओंमें अनीति और अवज्ञा घुस गये हैं । सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवनमें दुष्ट, पतित निम्नगामी व्यक्ति प्रविष्ट हो गये हैं । शिक्षा-जगत्‌में उच्छृङ्खलता, अवज्ञा, कृतघ्नता, असहयोग और अनुशासन-हीनताका दौरदौरा पूरे वेगपर है । सार्वजनिक जीवनमें भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, रिश्वतखोरी, ठगी, बेईमानी, गुंडागर्दी, विलासिता, नशेबाजी, कामुकता तथा हिंसा-जैसी राक्षसी प्रवृत्तियाँ जोरोंसे बढ़ रही हैं । राजनीति-क्षेत्रमें गुटबंदी और पक्षपात चल रहे हैं । राष्ट्रीय जीवनमें छोटी-छोटी बातोंको लेकर झगड़े होते रहते हैं ।

ऐसी स्थिति क्यों है ?

कारण यह है कि उपर्युक्त सब व्यवस्थाओंको चलानेवाले तत्त्व—धर्मका लोकजीवनमें अभाव हो गया है । रामराज्यमें समाज तथा राज्यकी उन्नति, विकास और समृद्धि चलती रही । उसमें इन सबके मूल कारण धर्मतन्त्र और धर्मनीतिका पालन हो रहा था । आज हमारे धर्मपर संकट है । इसीलिये सब कुछ अस्त-व्यस्त और विशृङ्खलित हो गया है । बिना धर्मके ऐसी ही अवस्था फैल जाती है ।

जैसे दूधमेंसे मक्खन निकाल लिये जानेपर दूध बेकार हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य और समाजमेंसे धर्मके निकल जानेपर वे दुर्बुद्धि, आलस्य, अपराध, अन्याय, असंयम, आवेश-जैसे दोष-दुर्गुणोंसे युक्त हो जाते हैं । धर्म व्यक्तिको नियन्त्रित और संयमित करता है । धर्म समाजको संतुलित करता है । धर्म देशमें समता, भ्रातृत्व, बन्धुत्व और समृद्धिकी वृद्धि करता है । धर्म विश्वमें सद्विचार और सद्भावनाएँ विकसित करता है । धर्म लोकरक्षण करता है । धर्म उन्नतिका आधार है । लोक-जीवनका अभ्युदय धर्मसे ही सम्भव है ।

फिर धर्मपर संकट क्यों आया है ? कौन है उसके लिये उत्तरदायी ? विनाश और अशान्तिका कारण क्या है ?

आप अपनेको धार्मिक कहते हैं । प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक मस्तकपर चन्दन लगा, रुद्राक्षकी माला पहन भगवान्‌के दर्शन करने मन्दिरमें जाते हैं । दिखानेके लिये पूजा-पाठ, संध्या-वन्दन, कीर्तन, यज्ञ आदि धार्मिक कार्योंमें भाग लेते हैं । धार्मिक पर्वोंपर उपवास भी रखते हैं । दान-दक्षिणाका प्रदर्शन भी करते हैं । खेद है कि इस बाहरी दिखावे-से ही आप संतुष्ट हो जाते हैं । केवल धर्मका नाटक खेलते रहते हैं । कोरा अभिनय ही आपका लक्ष्य रह जाता है ।

अमल करनेकी दृष्टिसे आप धर्मसे दूर रहते हैं । आप धर्मके नियमोंपर व्यवहार नहीं करते । जिन दया, क्षमा, प्रेम, सहयोग, न्याय, मर्यादा, अहिंसा, सदाचारकी आप बातें करते हैं, खेद है कि उनके अनुकूल आचरण आप नहीं करते । आप जो कहते हैं, वह करते नहीं । अपने व्यवसायमें ईमानदारी नहीं बरतते । आप तनिक-सी बातपर दूसरोंसे झगड़ा करने लगते हैं । उत्तेजित होकर गंदी गालियाँ देने लगते हैं । पड़ोसको आपकी सहयोगवृत्तिसे कोई लाभ नहीं हो रहा है । आपका भौतिक विकास आपके लोभ, अहं, विलास और प्रवञ्चनाको बढ़ावा दे रहा है, जो विनाश और अशान्तिका कारण बन रहे हैं । फिर बताइये, आपके दिखावेके धर्मसे क्या लाभ ?

आप बिना नागा मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शनोंके लिये जाते हैं । वहाँ देवताकी मूर्तिपर बड़ी श्रद्धापूर्वक पुष्प और नैवेद्य चढ़ाते हैं, भजन और आरती गाते हुए भगवद्भक्तिमें गद्गद हो उठते हैं । आपके मस्तकपर लगा चन्दन आपकी धार्मिकताका प्रमाण है । बाहरसे देखनेमें सभी आपको परम भक्त मानते हैं ।

किंतु यह सब आपका अभिनयमात्र है । धर्म आपके मन, विचारों और भावनाओंमें प्रविष्ट नहीं हुआ । वह ऊपर ही रखा है । उसपर अमल किंचित् भी नहीं है । हमारा व्यवहार ठगी, बेईमानी, विलासिता, नशेबाजी, कामुकता, रक्तपात-जैसी राक्षसी प्रवृत्तियोंसे भरा हुआ है । ये ही दुष्ट प्रवृत्तियाँ रहीं तो धर्मपर संकट आयेगा ही ।

आपके घर अनेक धर्मग्रन्थ रखे हुए हैं, किंतु आप उनका अध्ययन नहीं करते, स्वतन्त्ररूपसे धर्मके व्यवहार-पक्षपर नहीं सोचते । कभी विद्वानोंका सत्सङ्ग नहीं करते । उच्च विचारोंको कार्यान्वित नहीं करते । फिर धर्मपर संकट आयेगा ही ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप दान देनेकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते हैं, चैरिटी फंड बनाते हैं, दान-पेटी दूकानपर लगी है; किंतु जो पैसा दानमें देते हैं, उससे जरूरतमंदको लाभ नहीं होता। घूम-फिरकर वह अमीरके पास ही पहुँच जाता है। फिर बताइये, धर्मपर संकट क्यों न आये ?

आप घरमें कथा कराते हैं, बड़े प्रेमसे उसमें वर्णित धर्मतत्त्वोंका माहात्म्य सुनते हैं, थोड़ी देरके लिये उन्हें पसंद करते हैं, भावावेशमें तन्मय हो जाते हैं, किंतु जब उन धर्मतत्त्वोंपर आचरण करनेका मौका आता है, तो स्वार्थ, दुराव, अवज्ञा, कृतघ्नता और असहयोगसे भर जाते हैं। मनमानीपर उतर आते हैं, जब धर्मके अनुसार आचरण नहीं है, तब धर्मपर संकट आयेगा ही।

आप जन्माष्टमी, रामनवमी, दुर्गापूजा, गणेशचतुर्थी, शिवरात्रि आदिपर झाँकियाँ सजाते हैं, पर जिन देवताओंको प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं, उन्हींके सिद्धान्तोंकी अवहेलना करते हैं। उनके आदर्शोंके अनुकूल आचरण नहीं करते। धर्मकी दूकान सजानेके अतिरिक्त आपका कोई सरोकार नहीं है। ऐसी दशामें धर्मपर संकट आना जरूरी है ही।

खेद है कि धार्मिकतापर गर्व करनेवाले भक्तके ही मनमें दूसरोंके प्रति वैर निकालनेके लिये प्रतिशोध वृत्ति और क्रोधकी भट्ठी जलती रहती है। उससे बदला लेनेके लिये आप शायद कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं। अपने व्यापारमें कम तौलने और मिलावट करनेके नित-नये तरीके सोचते रहते हैं। बाटोंको घिसकर रत्तीभर माल कम तौलनेकी युक्ति सोचते रहते हैं। अपने दफ्तरमें रिश्वत ले अनुचित तरीकोंसे रुपया हड़पनेकी एक-से-एक चतुर युक्ति आपने खोज निकाली है। मौका देखकर आप उसे काममें ले ही लेते हैं। पास-पड़ोसके लोगों तथा इष्ट-मित्रों तकसे रुपया ऐंठनेमें नहीं झिझकते। आपका अपना ऐसा गुट है, जो योजनाबद्ध तरीकोंसे रुपया उड़ाता है। फिर बताइये आपके धर्मसे किसीको या आपको ही क्या लाभ ?

आप मन्दिरके पुजारी हैं। असंख्य भावुक भक्त, युवतियाँ, बालिकाएँ, बच्चे ईश्वरकी मूर्तिके दर्शनोंके लिये मन्दिरमें एकत्रित होते हैं। उनकी भीड़ दर्शनोंके लिये आतुर रहती है। आप 'रामनाम'का अँगोछा ओढ़े, मस्तकपर चन्दनका त्रिपुण्ड् धारण किये, माला गलेमें डाले आरती करा रहे हैं। मन्दिरके घण्टे-घड़ियाल तीव्र गतिसे बज रहे हैं। सभी भक्तोंकी दृष्टियाँ आपपर टिकी हुई हैं; क्योंकि वे आपको धर्मका सेवक मानते हैं।

धार्मिक जगत्‌में प्रतिष्ठा बनानेके लिये आप एक नया गगन-चुम्बी भगवान्‌का मन्दिर बनवा रहे हैं। उसमें सब तीर्थोंका पवित्र जल एकत्रित किया गया है। दिन-रात आपकी ओरसे उस मन्दिरमें भजन, पूजन, कीर्तन, स्वाध्याय आदिकी सुव्यवस्था है। भिखारियों और विधवाओंको दान देने और भोजन करानेका भी प्रबन्ध है।

किंतु जितना आप अपने मन्दिरपर व्यय कर रहे हैं; उससे कुछ अधिक अर्जित करने, अनुचित लाभ उठाने, समाजकी आँखोंमें धूल झोंकनेकी कुटिल योजनाएँ आपके मनमें चल रही हैं। यह छल, यह कपट, यह प्रवञ्चना धर्म नहीं है। यह आडम्बर 'धर्म'-जैसे पवित्र भावको लाञ्छित और अपमानित करता है।

एक ओर आप दान देने, गरीबोंकी सहायता करने तथा दहेज, टीका, ठहराव इत्यादि कुरीतियों और अन्ध-विश्वासोंसे बचनेकी सलाह देते हैं, नैतिकतापर भाषण झाड़ते हैं, आदर्शवादका ढोल पीटते हैं; पर दूसरी ओर चुपचाप अपने पुत्रके विवाहपर कन्यापक्षसे अधिक-से-अधिक दहेज और सामान ऐंठ लेना चाहते हैं। फिर बताइये; आपका थोथा उपदेश किस कामका रहा ?

धर्मकी आड़में यदि नैतिकता संकटमें पड़े तो बड़ी अशोभनीय बात है। जिन बातोंसे जीवनमें शान्ति, सुव्यवस्था, सदाचार और इन्द्रिय-संयम नहीं आता, वे सब ढोंग हैं। दिखावेका धर्म हाथीके निकले हुए दाँतों या बकरीके गलेमें लटकते हुए निर्जीव थनोंकी तरह केवल प्रदर्शनमात्र है।

फिर सच्चा धर्म क्या है ?

जिस व्यक्तिमें धर्मका समावेश हो, उसके जीवनमें क्या-क्या विशेषताएँ होनी चाहिये ?

इसका उत्तर यह है कि सच्चा धार्मिक व्यक्ति वह है, जो व्यवहारकी दृष्टिसे निम्न गुण-चरित्रोंको कार्योंद्वारा प्रकट करता रहता है—

प्रशान्तचित्ताः सर्वेषां सौम्याः कामजितेन्द्रियाः।
कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहमनिच्छवः॥
दयार्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः।
गुणेषु परकीयेषु पक्षपातसमन्विताः॥
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः।
पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः॥
दीनानुकम्पिनो नित्यं भृशं परहितैषिणः।
× × ×
विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते।
वितन्वते हि तां प्रीतिं शतकोटिगुणां हरौ।

स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड

अर्थात् सच्चे धर्मके अनुयायी वे हैं, जिनका चित्त (संकट और विपत्ति, विघ्न-बाधाओंमें) शान्त रहता है। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके प्रति कोमल भाव रखते हैं (जिससे दूसरोंको सुधरनेका मौका मिलता है), अपनी इन्द्रियों (और वासनाओं) पर यथेष्ट विजय प्राप्त किये रहते हैं तथा मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी दूसरोंसे द्रोह करने (दूसरोंको हानि पहुँचाने या अनुचित लाभ अर्जित करने) की इच्छा नहीं रखते ।

सच्चे धार्मिक व्यक्तिका चित्त (दुःखी, पीड़ित, रोगी, निर्बल, शोषितके लिये) दयासे पिघला रहता है । वे हर प्रकारकी चोरी और हिंसासे सदा ही मुख मोड़े रहते हैं । उनका शत्रुके भी गुणोंमें पक्षपात रहता है ।

नित्यप्रतिके दैनिक जीवनमें सदाचारसे उनका जीवन सदा उज्ज्वल और दीप्त बना रहता है । वे दूसरोंके (सही दिशाओंमें) उछाहको अपना ही उछाह मानते हैं तथा सभी प्राणियोंके भीतर भगवान् वासुदेवको विराजमान देखकर कभी किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखते ।

दीन-निस्सहायोंपर दया करना (तथा उन्हें ऊँचा उठनेकी प्रेरणा देना) उनका सहज स्वभाव होता है और वे सदा परहितसाधनकी अधिक-से-अधिक इच्छा रखते हैं । अविवेकी व्यक्तियोंका विषयोंमें जैसा प्रेम होता है, उससे अरबगुनी अधिक प्रीति वे भगवान् श्रीहरिके प्रति (शुभ कर्मोंद्वारा) करते हैं ।

दूसरे शब्दोंमें वे सत्पुरुष अपने जीवनमें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्योंको आधार बनाते हुए विविध समाजोपयोगी कार्यक्रमों (जैसे यज्ञ, उपासना, योगसाधना, संस्कार, सत्सङ्ग, वैयक्तिक-पारिवारिक धर्मानुष्ठानों, पर्वों) को सही रूपोंमें मनाकर मानवताकी सेवामें लगे रहते हैं । अपने व्यक्तिगत जीवन, अपने संगी-साथियों, कुटुम्बियों, एवं समाजको समग्र हितके कार्योंमें संलग्न रखते हैं । स्वेच्छासे अपनी शक्तियोंका उपयोग समाजके हितके लिये करते रहते हैं। सही धर्मतन्त्रके प्रचार, प्रसार एवं अध्यात्मके पुनर्जागरणमें योगदान देते हैं ।

महात्मानोऽनुगृह्णन्ति हिंसमानान् रिपूनपि ।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः ॥
सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि ।
छिन्नोऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥
दैवं परं विनश्यति तनुरपि न श्रीर्निवेदिता सत्सु ।
अवशिष्यते हिमांशोः सैव कला शिरसि या शम्भोः ॥
ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता
ये साधुतामनुपकारिषु दर्शयन्ति ।
आत्मप्रयोजनवशात्कृतछिन्नदेह-
पूर्वोपकारिषु खलोऽपि हितानुरक्तः ॥
(पद्म०, उत्तर० ७ । २२—२५)

अर्थात् सच्चे धर्मका पालन करनेवाले वे हैं, जो (सुधारनेके लिये) हिंसा करनेवाले शत्रुओंपर भी कृपा ही करते हैं । पर्वतोंसे निकलकर बहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ अपनी सौतरूपी सहायक नदियोंको भी समुद्रमें मिला देती हैं ।

परोपकार-रत सच्चे धार्मिक पुरुष मरते समयतक भी अपने मृदु और उत्तम स्वभावका परित्याग नहीं करते अर्थात् मरते दमतक दूसरोंका हित ही करते रहते हैं । उदाहरणके लिये चन्दनके वृक्षको देखिये, चन्दन काटे जानेपर भी काटनेवाली कुल्हाड़ीकी धारको सुगन्धित कर देता है ।

प्रारब्धकर्मका चाहे बिना भोगे ही क्षय हो जाय, जो असम्भव है, परंतु जो सम्पत्ति सत्पुरुषोंको अर्पण कर दी जाती है, वह स्वल्प होनेपर भी अक्षय हो जाती है। चन्द्रमाकी जो कला भगवान् शंकरके मस्तकपर सुशोभित होती है, वह बच जाती है । उसका क्षय नहीं होता ।

वे ही सत्पुरुष त्रिभुवनमें श्रेष्ठ हैं, जो उपकार न करनेवालोंके साथ भी साधुताका ही आचरण करते हैं । अपने लिये अङ्गोंको काट देनेवाले पहलेके उपकारीके प्रति तो दुष्ट पुरुष भी हित और प्रेमका ही बर्ताव करते हैं ।

धर्म हमारे दैनिक जीवनमें व्यवहार और प्रयोगकी वस्तु है, अमल करनेकी जीवन-पद्धति है । हम सही अर्थोंमें धार्मिक हैं तो उससे हमें सदा शान्ति, संतुलन, विपत्तिमें धैर्य, संकटमें प्रेरणा और अन्धकारमें प्रकाश मिलना चाहिये।

ईश्वरकी प्रार्थनाद्वारा, धर्मके व्यवहार और संत-समागमद्वारा हे मनुष्यो ! अपने द्वेष और दुर्गुण दूर करो, ईमानदारीसे धन प्राप्त करो, सदाचरण करते रहो । इसीसे तुम्हें धार्मिक प्रकाश मिलेगा ।

भूल-सुधार

'श्रीविष्णु-अङ्क'के पृष्ठ ५३४ पर 'संकष्टनाशनस्तोत्र' छपा है । इस स्तोत्रके मानसिक पञ्चोपचार-पूजनकी विधिमें दीप-निवेदनका मन्त्र भूलसे छूट गया है । उसे धूप-सम्बन्धी मन्त्रके बाद जोड़ लेना चाहिये। दीप-निवेदनका मन्त्र यह है—

'ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि ।'

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'श्रीगणेश-अङ्क'

[सम्मान्य लेखक महानुभावोंसे सादर प्रार्थना]

'कल्याण', मार्च १९७३ के टाइटिलके अन्तिम पृष्ठपर प्रकाशित निवेदनसे सम्मान्य पाठक-पाठिकाओं, महात्माओं, विद्वानों एवं विचारकोंको यह ज्ञात हो ही गया होगा कि जनवरी १९७४ के विशेषाङ्कके रूपमें 'श्रीगणेश-अङ्क'के प्रकाशनका निश्चय हुआ है। सबसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे सदाकी भाँति अपना अमूल्य सहयोग हमें प्रदान करें, जिससे भगवान् श्रीगणेशकी यह अर्चना सर्वाङ्गपूर्ण बन सके।

विशेषाङ्कमें कौन-कौन-से विषय रहेंगे, इसका दिग्दर्शन करानेके लिये एक संक्षिप्त विषय-सूची नीचे दी जा रही है। सम्मान्य लेखक महानुभाव चाहें तो विषय-सूचीके अतिरिक्त श्रीगणेश-सम्बन्धी किसी अन्य विषयपर भी लेख भेज सकते हैं। लेख स्पष्ट, सुवाच्य, संक्षिप्त—लगभग ५ पृष्ठोंका एवं विषयसे सम्बद्ध होना चाहिये। लेख हिंदी, संस्कृत, बँगला, मराठी, गुजराती अथवा अंग्रेजी—किसी भी भाषामें लिखा हुआ हो सकता है।

सैकड़ों लेखोंको पढ़ने तथा उनमेंसे छापनेयोग्य सामग्रीको छाँटने, सजाने, चित्र तैयार कराने तथा डेढ़ लाखसे अधिक प्रतियाँ मुद्रित करनेमें लगभग ५-६ महीनेका समय अपेक्षित होता है। अतएव लेखक महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना है कि वे अपनी बहुमूल्य रचनाएँ अधिक-से-अधिक जुलाईके अन्ततक अवश्य भेज दें, जिससे अङ्क समयपर तैयार हो सके। विलम्बसे आनेवाली रचनाओंको उचित स्थानपर सजाने अथवा उन्हें स्वीकार करनेमें कठिनाई होगी। बड़ी ही विनम्रताके साथ यह निवेदन है कि लेख भेजनेका कष्ट वे ही महानुभाव करें, जिनका विषयपर अधिकार हो, जो लेखनकलासे परिचित हों तथा जो अपने भावोंको सुचारुरूपसे सुपाठ्यरूपमें व्यक्त कर सकें। आशा है, सम्मान्य लेखक महानुभाव सदाकी भाँति अपना उदार सहयोग हमें प्रदान करेंगे।

—चिम्मनलाल गोस्वामी

'श्रीगणेश-अङ्क'की प्रस्तावित संक्षिप्त विषय-सूची

१–श्रीगणेश-तत्त्व
२–सच्चिदानन्दरूप श्रीगणेश
३–मङ्गलमूर्ति श्रीगणेश
४–त्रिभुवन-मङ्गल-करण श्रीगणेश
५–श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्म
६–श्रीगणेश सगुणरूपमें
७–शिव-शक्ति-तत्त्वसे श्रीगणेश-तत्त्वका आविर्भाव
८–गणपति और महागणपति
९–तारक-तत्त्व और श्रीगणेश
१०–श्रीगणेश अनादिसिद्ध देवता
११–यज्ञरूप श्रीगणेश
१२–योगाधीश्वर श्रीगणेश
१३–भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीगणेश-रूपमें
१४–निधिपति श्रीगणेश
१५–श्रीगणेशकी अग्रपूजाका रहस्य
१६–ज्ञान-बुद्धिके प्रदाता श्रीगणेश-सरस्वती
१७–भगवान्के यशोगायकोंमें श्रीगणेशका स्थान
१८–श्रीगणेशका दिव्य सौन्दर्य
१९–श्रीगणेश गजवदन क्यों ?
२०–श्रीगणेशकी वक्रतुण्डताका रहस्य
२१–श्रीगणेश एकदन्त क्यों ?
२२–श्रीगणेश शूर्पकर्ण क्यों ?
२३–श्रीगणेशकी लम्बोदरताका रहस्य
२४–विविध गणपति—उच्छिष्ट-गणपति, संतान-गणपति, हरिद्रा-गणपति आदि
२५–विविध विनायक—साक्षिविनायक, सिद्ध-विनायक, ढुण्ढिविनायक आदि
२६–'गण' एवं 'गणेश' शब्दके वाचिक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षणात्मक, व्यञ्जनात्मक, अभिधात्मक सामान्य-विशेष अर्थ

२७-श्रीगणेशके प्रधान १२ नाम और उनके विस्तृत अर्थ

२८-श्रीगणेशके २१ नाम और उनके विस्तृत अर्थ

२९-श्रीगणेशके १०८ नाम और उनके विस्तृत अर्थ

३०-श्रीगणेशके विभिन्न सहस्रनाम

३१-श्रीगणेशका अद्भुत ऐश्वर्य एवं वैभव

३२-अगणित-गुण-गण-निलय श्रीगणेश

३३-१८ विद्याओं, १८ लिपियों एवं ६४ कलाओंके ज्ञाता एवं दाता श्रीगणेश

३४-धर्ममूर्ति और धर्मरक्षक श्रीगणेश

३५-मातृ-पितृ-भक्त श्रीगणेश

३६-मोदक प्रिय एवं मोदप्रद श्रीगणेश

३७-देवभक्त श्रीगणेश

३८-'सिद्धि-सदन' श्रीगणेश

३९-'कृपासिंधु सुंदर सब लायक' श्रीगणेश

४०-श्रीगणेश विघ्नेश्वर तथा विघ्नविनाशक

४१-श्रीगणेशके विभिन्न अवतार--यथा मयूरेश्वर गणेश, धूम्रकेतु गणेश, कश्यपपुत्र गणेश आदि

४२-श्रीगणेशकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ

४३-श्रीगणेश-चरित--बाललीलाएँ, विवाह, युद्ध आदि

४४-श्रीगणेशद्वारा महाभारत-लेखन-कार्य

४५-श्रीशिव-परिवारमें श्रीगणेश

४६-श्रीगणेशके पिता श्रीशंकर

४७-श्रीगणेशकी माता श्रीपार्वती

४८-श्रीगणेशके अनुज श्रीकार्तिकेय

४९-श्रीगणेशकी मोहिनी, ज्वालिनी, उग्रा, कामदा आदि विभिन्न शक्तियाँ

५०-श्रीगणेशकी पत्नियाँ—सिद्धि-बुद्धि

५१-श्रीगणेश-परिवार-परिचय

५२-श्रीगणेश-परिकर-परिच्छेद

५३-श्रीगणेशके गणोंका संघटन और कार्य

५४-श्रीगणेशजीके अलंकार, आभूषण, अङ्गराग आदि

५५-श्रीगणेशका नैवेद्य—मोदक

५६-श्रीगणेशके आयुध और उनका रहस्य

५७-श्रीगणेशका वाहन मूषक और उसका रहस्य

५८-वेदोंमें श्रीगणेश

५९-उपनिषदोंमें श्रीगणेश

६०-स्मृतियोंमें श्रीगणेश

६१-पुराणोंमें श्रीगणेश

६२-धर्मसूत्रोंमें श्रीगणेश

६३-श्रौत-स्मार्त-गृह्य-सूत्रोंमें श्रीगणेश

६४-योग-ग्रन्थोंमें श्रीगणेश

६५-मन्त्र-शास्त्रमें श्रीगणेश

६६-आगमोंमें श्रीगणेश

६७-ज्योतिषशास्त्रमें श्रीगणेश

६८-चित्रकलामें श्रीगणेश

६९-संगीत-शास्त्रमें श्रीगणेश

७०-नाट्य-काव्यमें श्रीगणेश

७१-इतिहासमें श्रीगणेश

७२-अर्वाचीन संस्कृत-साहित्यमें श्रीगणेश

७३-हिंदी-साहित्यमें श्रीगणेश

७४-गोस्वामी तुलसीदासजीद्वारा श्रीगणेश-स्मरण

७५-लोकगीतों एवं लोकाचारमें श्रीगणेश

७६-पाश्चात्योंद्वारा श्रीगणेश-स्मरण

७७-भारतके विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायोंमें श्रीगणेश

७८-गाणपत्य-सम्प्रदायकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

७९-गाणपत्य-सम्प्रदायकी मान्यताएँ एवं विशेषताएँ

८०-गाणपत्य-सम्प्रदायके प्रमुख आचार्यों, विद्वानों आदिका परिचय

८१-श्रीगणेश-लोकका स्थान एवं वर्णन

८२-विभिन्न श्रीगणेश-क्षेत्र

८३-भारतमें श्रीगणेश-सम्बन्धी तीर्थ, मन्दिर आदि

८४-भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें श्रीगणेश-उपासना

८५-विदेशोंमें श्रीगणेश-उपासना

८६-श्रीगणेश-विग्रह एवं प्रतिमाओंका विवेचन

८७-स्थापत्य एवं मूर्तिकलामें श्रीगणेश

८८-श्रीगणेशकी गोमय-प्रतिमाका रहस्य

८९-पञ्चदेवोपासनाका स्वरूप एवं उसमें श्रीगणेशका स्थान

९०-श्रीगणेशके विभिन्न रूपोंका ध्यान एवं प्रयोजन

९१-कर्मकाण्डमें श्रीगणेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९२–श्रीगणेशकी निष्काम उपासना
९३–विभिन्न कामनाओंकी सिद्धिके लिये श्रीगणेश-उपासना
९४–श्रीगणेशके विभिन्न मन्त्र तथा उनकी अनुष्ठान-विधि
९५–श्रीगणेश-पूजन-पञ्चाङ्ग
९६–श्रीगणेश-सम्बन्धी व्रत, पर्व, महोत्सव आदि
९७–श्रीगणेशकी जन्म-तिथि
९८–श्रीगणेश-सम्बन्धी सिद्ध स्तोत्र, मन्त्र, अनुष्ठान आदि
९९–श्रीगणेश-गायत्री
१००–श्रीगणेशकी वैदिक एवं तान्त्रिक उपासना
१०१–'कलौ चण्डीविनायकौ' का रहस्य
१०२–श्रीगणेशके पौराणिक, प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्त
१०३–भारतीय भाषाओंमें श्रीगणेशके यशोगायक
१०४–'श्रीगणेश-गीता'का संक्षिप्त विवेचन
१०५–'श्रीगणेशपुराण'का महत्त्व एवं परिचय
१०६–राष्ट्रीय भावनाके प्रसारमें श्रीगणेश-उपासनाका योगदान
१०७–श्रीगणेश-उपासनाके विस्तारमें श्रीलोकमान्य तिलकका योगदान
१०८–आधुनिक युगमें श्रीगणेश-उपासनाका महत्त्व

कर्मकी गहनता

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति । शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम् ॥
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति । करोति कुर्वतः कर्मच्छायेवानुविधीयते ॥
येन येन यथा यद् यत् पुरा कर्म समीहितम् । तत्तदेकतरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना ॥
स्वकर्मफलनिक्षेपं विधानपरिरक्षितम् । भूतग्राममिमं कालः समन्तात् परिकर्षति ॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च । स्वं कालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥
सम्मानश्चावमानश्च लाभालाभौ क्षयोदयौ । प्रवृत्ता विनिवर्तन्ते विधानान्ते पुनः पुनः ॥
आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम् । गर्भशय्यामुपादाय भुज्यते पौर्वदेहिकम् ॥
बालो युवा च वृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम् । तस्यां तस्यामवस्थायां तत् फलं प्रतिपद्यते ॥
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् । तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व १२१ । ८—१६)

जिस-जिस मनुष्यने जैसा कर्म किया है, उसका वह कर्म उसके पीछे लगा रहता है । यदि कर्ता पुरुष शीघ्रतापूर्वक दौड़ता है तो उसका कर्म भी उतनी ही तेजीके साथ उसके पीछे जाता है । जब वह सोता है तब उसका कर्मफल भी उसके साथ ही सो जाता है, जब वह खड़ा होता है तो वह भी पास ही खड़ा रहता है और जब मनुष्य चलता है, तब उसके पीछे-पीछे वह भी चलने लगता है । इतना ही नहीं, कोई कार्य करते समय भी कर्म-संस्कार उसका साथ नहीं छोड़ता, सदा छायाके समान पीछे लगा रहता है । जिस-जिस मनुष्यने अपने-अपने पूर्वजन्मोंमें जैसे-जैसे कर्म किये हैं, वह अपने ही किये हुए उन कर्मोंका फल सदा अकेला ही भोगता है । अपने-अपने कर्मका फल एक धरोहरके समान है, जो कर्मजनित अदृष्टके द्वारा सुरक्षित रहता है । उपयुक्त अवसर आनेपर यह काल इस कर्मफलको प्राणिसमुदायके पास खींच लाता है । जैसे फूल और फल किसीकी प्रेरणाके बिना ही अपने समयपर वृक्षोंमें लग जाते हैं, उसी प्रकार पहलेके किये हुए कर्म भी अपने फलभोगके समयका उल्लङ्घन नहीं करते । सम्मान-अपमान, लाभ-हानि तथा उन्नति-अवनति—ये पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार बार-बार प्राप्त होते हैं और प्रारब्धभोगके पश्चात् निवृत्त हो जाते हैं । दुःख अपने ही किये हुए कर्मोंका फल है और सुख भी अपने ही पूर्वकृत कर्मोंका परिणाम है । जीव माताकी गर्भशय्यामें आते ही पूर्वशरीरद्वारा उपार्जित सुख-दुःखका उपभोग करने लगता है । कोई बालक हो, तरुण हो या बूढ़ा हो, वह जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, दूसरे जन्ममें उसी-उसी अवस्थामें उस-उस कर्मका फल उसे प्राप्त होता है । जैसे बछड़ा हजारों गौओंमेंसे अपनी माँको पहचानकर उसे पा लेता है, वैसे ही पहलेका किया हुआ कर्म भी अपने कर्ताके पास पहुँच जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य 'रामचरित्रमानस', धन्य तुलसीदास !

(रचयिता—कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)

देखकर सहसा हमारी साधना म्रियमाण,
जिस कमण्डलुके अमृतने थे बचाये प्राण।
वह तुम्हारे हाथमें था, साधु तुलसीदास !
जी उठी फिर भावना, दृढ़ हो गया विश्वास ॥
जब तमोमय शून्यमें भय-दृश्य थे सब ओर,
जब निराशाकी घटाएँ कर रही थीं घोर।
तब तुम्हींने था किया 'मानस'-सरोज-विकास,
कवि कहें या रवि तुम्हें, हे अमर तुलसीदास !
हो गया अब आदिकविका मार्ग दुर्गमनीय,
सुगम तुमने ही किया, करके उसे कमनीय।
मुक्त जीवन-धन लिये हो जायँगे हम पार,
देखता रह जायगा संसार-पारावार !
रम्य रामचरित्र भी तुमसे हुआ कृतकार्य,
आर्द्र होते हैं जिसे सुन आर्य और अनार्य।
काव्यसे इतिहास हैं, इतिहाससे हैं तन्त्र,
तन्त्रसे फिर हैं तुम्हारे वाक्य दैनिक मन्त्र।
पैठ संस्कृत-सिन्धुमें पाये जहाँ जो रत्न,
ग्रथित करनेमें उन्हें करके अलौकिक यत्न।
हार जो तुमने दिये इस देशको उपहार–
कर सकेगा कौन उनके मूल्यका निर्धार ?
प्रस्फुटित करके हमारा पूर्ण पूर्णादर्श,
हृदयको तुमने दिया है अमृत-हस्तस्पर्श।
राम राजा ही नहीं, पूर्णावतार पवित्र,
पर न हमसे भिन्न है साकेतका गृहचित्र ॥
है हमारे अर्थ बस, आदर्श ही आराध्य,
और साधन भी उसीका है हमारा साध्य।
जो हमारे सामने कर दे उसे प्रतिभात,
है वही तुम-सा हमारा विश्वकवि विख्यात ॥
प्रकृति-पटपर धन्य यह अन्तर्जगत्का दृश्य,
धन्य वह संगीतमय सत्काव्य हृदय-स्पर्श।
धन्य भारतवर्षका प्रतिभा-प्रकाश-विलास,
धन्य 'रामचरित्रमानस', धन्य तुलसीदास !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस'से धर्म और अध्यात्मविद्याका विस्तार

[देशरत्न डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी]

तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचना करके संसारका बहुत बड़ा उपकार किया है। जो शास्त्र और दर्शनके ग्रन्थ संस्कृतमें लिखे गये थे, वे साधारण जनताके लिये संस्कृतका प्रचार कम हो जानेसे प्रायः लुप्त-से हो गये थे; उनके पठन-पाठनका काम बहुत थोड़े पण्डितोंके लिये ही रह गया था। जहाँ-तहाँ कथाके रूपमें उनको लोग सुना करते थे। पर केवल इस प्रकारसे कानसे सुना हुआ मौखिक ज्ञान ही साधारण जनताको उपलब्ध हो सकता था। ऐसे अवसरपर गुसाईंजीने सारे शास्त्रों और दर्शनोंको मन्थन करके जो नवनीत निकाला, उसे हिंदी भाषामें जनताके लिये उपस्थित कर दिया। जिस दिन मानसकी रचना हुई, उस दिनसे आजतक न मालूम कितने अनगिनत नर-नारियोंको इससे आध्यात्मिक लाभ पहुँचा है और आज भी पहुँच रहा है। इसलिये यदि यह कहा जाय कि पिछले तीन सौ वर्षोंमें सभी शास्त्रों और दर्शनोंका काम केवल मानसने उत्तरी भारतकी साधारण जनताके लिये किया है तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

उत्तर भारतमें रामायण-पाठकी परिपाटी है। सबेरे नित्यकर्मके बाद और रात्रिको लोग इसे अकेले अथवा जमात बाँधकर पढ़ा करते हैं; और लाखों ऐसे देहाती भी हैं, जो अक्षरज्ञान नहीं रखनेपर सुन-सुनकर और गोलमें गा-गाकर रामायणकी बहुत-सी चौपाइयाँ मुखस्थ करके रक्खे हुए हैं, जिनको वे समय-समयपर दुहराया करते हैं। तुलसीदासजीके शब्दोंमें वह शक्ति है, जो केवल भक्त और महात्माके शब्दमें ही हो सकती है। यही कारण है कि आज इतने दिनोंके बाद भी रामायणको लोग गाते हैं प्रेमसे, भक्तिसे और श्रद्धापूर्वक। यही कारण है, इस मानससे अनेकानेक स्त्री-पुरुष संसारका बेड़ा पार लगानेमें सहायता पाते आये हैं। तुलसीदासजीने मानसको एक भक्तके उद्गारके ही रूपमें लिखा था और सच्चे भक्तके उद्गार होनेके कारण ही इसके शब्दोंमें वह शक्ति है।

पर जो भक्त नहीं हैं, उनके लिये भी इसमें इतना काव्य है, इतनी मधुरता है, रसोंका इतना सुन्दर मिश्रण है और कलाका इतना विकास है कि संसारके बड़े-से-बड़े काव्योंसे यह टक्कर ले सकता है। जो केवल काव्य-रस लेना चाहें, वे भी इसे पढ़ सकते हैं और पढ़ते हैं और उस रसास्वादनसे कृतकृत्य होते हैं। मैं तो यह भी मानता हूँ कि काव्यकी दृष्टिसे इस उत्कृष्ट ग्रन्थके पढ़नेवाले भी अन्तमें कुछ-न-कुछ भक्तिरसमें पगे बिना नहीं रह सकते। जो इसका श्रद्धापूर्वक धार्मिक दृष्टिसे पठन करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है। अंग्रेजीके एक विद्वान् (Addison) ने अपने एक लेखमें लिखा है कि उनकी इच्छा थी कि दर्शनोंके उच्चातिउच्च सिद्धान्त साधारण लोगोंके लिये ये दार्शनिकोंके पुस्तकालयोंसे लाकर सड़कोंपर बिखेर दें। उनकी यह अभिलाषा उनके लेखोंद्वारा पूरी हुई या नहीं, इसका तो पता नहीं; पर इसमें संदेह नहीं है कि तुलसीदासजीने धर्म और अध्यात्मविद्याके उच्चातिउच्च सिद्धान्तोंको सुन्दर, सुललित और सहज भाषामें केवल सड़कोंपर ही नहीं, गाँव-गाँवमें, घर-घरमें बिखेर दिया है और वह भी इस प्रकारसे कि कोई अनजान भी उनसे बिना लाभ उठाये नहीं रह सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस'का संदेश

'जनम जनम रति राम पद'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके 'श्रीरामचरितमानस'का मानवमात्रके लिये संदेश यही है कि जन्म-जन्ममें भगवान् श्रीसीतारामजीके श्रीचरणोंकी प्रीति ही एकमात्र प्राप्तव्य वस्तु है। 'मानस'के अनेक श्रेष्ठ पात्र बार-बार श्रीपद-रतिकी ही याचना करते हैं एवं प्रेरणा देते हैं कि प्रत्येक मानवको इसके लिये ही कामना एवं प्रार्थना करनी चाहिये—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग। पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

(भगवान् शंकर)

मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरण-कमलोंकी अचल भक्ति और आपके भक्तोंका सत्सङ्ग सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मीपते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिये।

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा॥
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥ (ब्रह्मा)

आप दुष्टोंका खण्डन करनेवाले और पृथ्वीके रमणीय आभूषण हैं। आपके चरण-कमल श्रीशिव-पार्वती-द्वारा सेवित हैं। हे राजाओंके महाराज! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके चरण-कमलोंमें सदा मेरा कल्याण-दायक (अनन्य) प्रेम हो।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

(वेद-चतुष्टय)

ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभवसे ही जाना जाता है और मनसे परे है—जो (इस प्रकार कहकर उस) ब्रह्मका ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें; किंतु हे नाथ! हम तो नित्य आपके सगुण रूपका ही यश गाते हैं। हे करुणाके धाम प्रभो! हे सद्गुणोंकी खान! हे देव! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्मसे विकारोंको त्यागकर आपके चरणोंमें ही प्रेम करें।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

(मुनि भरद्वाज)

लाभकी सीमा और सुखकी सीमा (प्रभुके दर्शनको छोड़कर) दूसरी कुछ भी नहीं है। आपके दर्शनसे मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गयीं। अब कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरण-कमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥ (मुनि अत्रि)

हे अनुपम सुन्दर! हे पृथ्वीपति! हे जानकीनाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरण-कमलोंकी भक्ति दीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥ (मुनि वसिष्ठ)

हे नाथ ! हे श्रीरामजी ! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिये । प्रभु (आप)के चरण-कमलोंमें मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तरमें भी कभी न घटे ।

मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥
बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥ (जनकराज)

हे रघुनाथजी ! सुनिये, मेरे सौभाग्य और आपके गुणोंकी कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती । मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बलपर कि आप थोड़े प्रेमसे प्रसन्न हो जाते हैं । मैं बार-बार हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणोंको न छोड़े ।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥ (वाली)

हे नाथ ! अब करुणापूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर निहारिये और मैं जो वर माँगता हूँ, उसे दीजिये । मैं कर्मवश जिस योनिमें भी जन्म लूँ, वहीं श्रीरामजी (आप)के चरणोंमें प्रेम करूँ ।

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥ (सती अहल्या)

प्रभो ! मैं बुद्धिकी बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है—नाथ ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मनरूपी भौंरा आपके चरण-कमलकी रजके प्रेमरूपी रसका सदा पान करता रहे ।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं॥
× × × ×
जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥
(अवधवासीगण)

वे दिन-रात ब्रह्माजीको मनाते रहते हैं और [उनसे] श्रीरघुवीरके चरणोंमें प्रीति चाहते हैं । वे कहते हैं—'भगवान् हमें यही दें कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनिमें जन्में वहाँ-वहाँ (उस योनिमें) (भगवान् हमपर यही कृपा करें कि) हम तो सेवक हों और सीतापति श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी हों और यह नाता अन्ततक निभ जाय ।'

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥ (भरत)

मुझे न अर्थकी रुचि (इच्छा) है, न धर्मकी, न कामकी और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ । जन्म-जन्ममें मेरा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवता और रामचरितमानस

(लेखक—डा० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्० ए०, डी० लिट्०)

रामचरित भारतीय संस्कृतिका सर्वाधिक लोकप्रिय आख्यान रहा है। तुलसीकी लोकव्यापिनी दृष्टिने रामकथाकी सारी परम्पराओंको समेटते हुए आध्यात्मिकताका पुट देकर रामको आदर्श मानवके रूपमें प्रतिष्ठित किया। इसके फलस्वरूप एक व्यक्तिकी जीवनगाथा होते हुए भी उसने धर्मग्रन्थकी महत्ता प्राप्त कर ली। विश्व-साहित्यमें अन्य किसी मानव-रचित काव्यग्रन्थको यह गौरव प्राप्त हुआ हो, यह देखनेमें नहीं आता। तुलसीने उसके पठन, श्रवण और रसास्वादनको आत्मशोधन एवं भव-संतरणका सर्वसुगम साधन कहकर प्रकारान्तरसे निगमागम एवं पुराणोंकी भाँति ही उसकी पावनता प्रतिपादित की है और लोक-मानसने उनके इन वचनोंको ब्रह्मवाक्यके रूपमें ग्रहण किया है—

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥

× × ×

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥

× × ×

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

× × ×

सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥

× × ×

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

पूर्ववर्ती रामकथाश्रित प्रबन्धोंमें कहीं ऐतिहासिक, कहीं दार्शनिक, कहीं सांस्कृतिक और कहीं साहित्यिक दृष्टिकोणको प्रधानता दी गयी थी। तुलसीने एकाङ्गितासे बचकर रामचरितमें मानव-जीवनकी महत्त्वपूर्ण समस्याओंका आत्यन्तिक समाधान प्रस्तुत करनेवाले सूत्रोंको उजागर किया। पूर्ण सुख, शान्ति एवं समृद्धिसे सम्पन्न समाजका निर्माण अधूरे, विरूप तथा अभावग्रस्त मानवद्वारा सम्भव नहीं; इसलिये उन्होंने पथभ्रान्त मानवताके समक्ष पूर्ण मानवके आदर्श रामका चरित रखा—ऐसे महापुरुषकी जीवन-झाँकी प्रस्तुत की, जिसने राजपदके वैभव-विलाससे असम्पृक्त रहकर दानवतासे पराभूत और सभ्यताके प्रकाशसे वञ्चित मानवताके उत्थानके लिये दर-दरकी खाक छानी थी। विश्व-मानवके प्रति इस अगाध करुणा एवं मैत्री-भावनाके कारण देश-कालकी बदलती परिस्थितियोंमें समय-समयपर मानवताके जो भी उत्कृष्टतम प्रतिमान निर्धारित होंगे, 'मानस'के राम उससे सदा ही कुछ ऊपर और कुछ आगे दिखायी देंगे।

प्रेरणा एवं आधार

रामचरितको आदर्शके रूपमें अपनानेकी प्रेरणा तुलसीको समकालीन समाजके विभिन्न वर्गों एवं स्तरोंके गहरे अध्ययन तथा निजी अनुभवसे प्राप्त हुई थी। उनकी बाल्यावस्था घोर दरिद्रतामें कटी थी, वैराग्य धारण करनेके बाद उन्होंने तीर्थाटन करते हुए सारे देशका भ्रमण कर जन-जीवनका बहुत ही निकटसे निरीक्षण किया था। सत्सङ्गके क्रममें उन्हें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंके अनुयायियोंके आचार-विचारके पर्यवेक्षणका अवसर प्राप्त हुआ था। जीवनके परवर्ती वर्षोंमें, जब वे 'तुलसी'-से ऊपर उठकर 'गोसाईं' हुए, तब बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनका चरण-वन्दन कर कृतार्थ होते थे; इस माध्यमसे सामन्तीय वर्गसे भी उनका परिचय हुआ। इस प्रकार समकालीन समाजके विविध वर्गों और प्रवृत्तियोंके व्यक्तियोंकी जीवन-सरणि तथा विचार-पद्धतिका आन्तरिक परिचय प्राप्त कर लेनेपर उन्होंने अनुभव किया कि समाजका पूरा शरीर एक घातक सड़नका शिकार हो रहा है। धार्मिक भावनाके व्यापक ह्राससे उसके मूलाधार जप, योग तथा वैराग्य तिरोहित हो गये हैं; स्वाध्यायकी परम्परा समाप्त हो चुकी है; आये दिन नये-नये पंथों और सम्प्रदायोंकी स्थापना हो रही है; यज्ञ-दानादि कर्मोंका अनुष्ठान अर्थाभावके कारण बंद हो रहा है; पाखण्डी लोग धार्मिक आचार-विचारके नाशका कारण बन रहे हैं; वर्णाश्रम-धर्म लड़खड़ा रहा है और लोकमर्यादाके मस्तूल ढह रहे हैं; सारा धार्मिक समाज दुर्वासनाओंका शिकार हो रहा है; राजवर्ग बड़ा ही छली है; वह प्रजाकी रक्षा करनेके स्थानपर उसे निगल जानेपर उतारू है; नित्य नये करोंसे जनताकी रीढ़ टूट गयी है; आर्थिक शोषणसे निर्धनता बढ़ रही है; निरन्तर पड़नेवाले दुर्भिक्षोंसे मनुष्यका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ गया है; सभी वर्णोंके लोगोंमें चरित्रहीनता फैल गयी है; व्यक्तिगत तथा सामाजिक आचारके पतनसे चारों ओर अव्यवस्थाका ताण्डव आरम्भ हो गया है; समाजमें विषमता इतनी बढ़ गयी है कि एक ओर वैभव नालियोंमें बह रहा है तो दूसरी ओर लोग दाने-दानेको तरस रहे हैं। मर्यादा तथा निष्ठाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभावमें जन-जीवन विच्छिन्न हो गया है। मानवीय मूल्योंको समाप्त करनेवाली सम-सामयिक परिस्थितिका तुलसीने बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। विनाशकारी युग-प्रभावको उन्होंने 'कलि' के नामसे अभिहित किया है और इसका मूल कारण आसुरी वृत्तियोंका उत्तरोत्तर विकास बताया है।

इस दयनीय स्थितिसे समाजका उद्धार करनेके लिये उन्होंने शतियोंके विधर्मी शासनके परिणामस्वरूप जन-मानसमें प्रतिष्ठित हीन भावना, भय, निराशा, रूढिप्रियता, अविश्वास, संदेह आदिको दूर करना आवश्यक समझा। इसके बिना आतङ्कित एवं दलित जनतामें अत्याचार, अधर्म और अनैतिकताको प्रोत्साहित करनेवाली शक्तियोंसे लोहा लेनेकी शक्तिका संचार करना असम्भव था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस उद्देश्यकी सिद्धि मात्र तत्त्वज्ञानके उपदेशों और कीर्तन-भजनके आयोजनोंसे नहीं हो सकती थी। वेदोपनिषद्, स्मृतियाँ और पुराण तब भी पढ़े-सुने जाते थे; भागवतधर्म तथा निर्गुणिया संतों और सूफी फकीरोंके असंख्य अनुयायी उस युगमें भी धर्मग्रन्थोंके स्वाध्याय और साधनामें काल-यापन करते थे। रामभक्ति और कृष्णभक्तिके केन्द्रोंमें आराध्य युगलकी लीलाके गान और प्रदर्शनकी परम्परा भी अक्षुण्ण रूपसे चली आ रही थी। विभिन्न दार्शनिक मतवादोंके अनुयायी संन्यासी तथा गृहस्थ तत्त्वनिरूपण—शास्त्रार्थ आदिसे ज्ञानकी ज्योति प्रज्वलित रखनेमें यथाशक्ति अंशदान करते थे। फिर भी अन्धकार बढ़ता जा रहा था। विनय-पत्रिकामें एक स्थानपर इसका संकेत मिलता है—

वाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीपकी बातन तम निबृत्त नहिं होई॥

ऊँचे सिद्धान्त और विचार व्यवहार-भूमिमें उतरकर ही लोक-कल्याणके साधन बनते हैं। जन-मानसका विश्लेषण करनेपर उन्हें लगा कि इसका कारण नैतिकताके मूर्त आदर्शका अभाव है—सामान्य लोग अमूर्त सिद्धान्त और विचारोंसे, चाहे वे कितने भी उत्कृष्ट और उपादेय क्यों न हों, प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते। सूरदासकी निम्नाङ्कित पङ्क्तियोंमें समकालीन लोक-मानसकी किंकर्तव्यविमूढ़ावस्था-की छाया देखी जा सकती है—

अबिगत गति कछु कहत न आवै।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निरालंब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै॥

युगीन वातावरणका सम्यक् आकलन करनेके बाद तुलसीने अपने गम्भीर शास्त्रज्ञानके द्वारा यह अनुभव किया कि भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें कुछ इसी प्रकारका गतिरोध अति प्राचीन कालमें उपस्थित हुआ था, जब रावणके अत्याचारोंसे समस्त चराचर जगत् नारकीय यातना भोग रहा था। पृथ्वी माता उस समय गौके रूपमें जगन्नियन्ताके समक्ष उपस्थित हो त्राणकी भिक्षा माँगनेके लिये विवश हुई थी और परात्पर ब्रह्मने करुणार्द्र हो धर्मसंस्थापनाके लिये मानवावतार धारण करनेका वचन देकर उसे आश्वस्त किया था। त्रेतायुगका श्रीरामावतार इसीका परिणाम था। लोक-मर्यादाके संस्थापक श्रीरामका जीवनादर्श अपनानेसे ही विधर्मी शासनद्वारा निर्मित आसुरी वातावरणपर विजय प्राप्त की जा सकती है और परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें जकड़ी भारत-भूमिका उद्धार किया जा सकता है—यह उनका स्पष्ट मत था—

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥

× × ×

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥

× × ×

यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

× × ×

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

× × ×

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥

ऐसी अनेक उक्तियोंद्वारा तुलसीने सारी सामाजिक विसंगतियों और उनके प्रेरक मानसिक विकारोंको दूर करनेमें रामकथाके अद्भुत प्रभावका उल्लेख किया है। इससे हताश लोगोंमें यह विश्वास जगा कि दुःशासन एवं दुर्व्यवस्था, चाहे वह कितनी ही मूलबद्ध और शक्तिशाली क्यों न हो, अन्ततः समाप्त होकर ही रहेगी। इस भावनासे प्रजामें संघर्ष करनेकी ऊर्जा एवं अत्याचारी शासकको दण्डनीय घोषित करनेका साहस उत्पन्न हुआ—

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥'

रामचरितमानसने सर्वमानवीय मुक्तिके लिये अन्तः-शक्ति उद्बुद्ध कर दानवी वृत्तियोंपर विजय पानेका पथ प्रशस्त कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराट् लक्ष्य

शब्दशक्तिसे मानवताको प्रभावितकर अधःपतित समाजको ऊपर उठानेका ऐसा महान् लक्ष्य उसी सर्वोत्तमदर्शी कृतिकारका हो सकता है, जिसका मानस पीड़ित मानवताकी हृत्तन्त्रीसे सम्पृक्त हो चुका हो, जिसका 'स्व' विराट् 'अहं'में और 'विराट् अहं' जिसके 'स्व'में विलीन हो गया हो। उसीका 'स्वान्तःसुखाय' 'सर्वान्तःसुखाय' बननेका गौरव प्राप्त कर सकता है। यह 'अन्तःसुख', 'निज सुख', 'शान्ति' अथवा 'परम विश्राम' ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है, यही आत्मोपलब्धि है। तुलसीने इसका आस्वादन किया था—

जाकी कृपा लवलेस ते मति मंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

अवतार-निष्ठामें मानवतावादी दृष्टि

अवतारवाद मानवतावादका ही नामान्तर है, यह अवतार-धारण करनेके प्रयोजनकी मीमांसासे ही स्पष्ट हो जाता है—यहाँतक कि मानवेतर योनियों—मत्स्य, कच्छप, वराहमें भी भगवान् विष्णुके अवतार आततायियोंका संहार करके मानवधर्मकी संस्थापनाके लिये ही हुए थे।

मानवावतार—मानवताको गौरवदान

मानव विश्वकर्ताकी उत्कृष्टतम सृष्टि है। कर्मसम्पादनकी क्षमतासे मण्डित होनेके कारण मनुष्य-देह ही भवसंतरणका एकमात्र साधन माना गया है। धर्म-साधनासे इसे स्वर्गापवर्गकी प्राप्ति होती है और ज्ञान-विज्ञान प्राप्तकर यह मोक्षका अधिकारी हो जाता है। मानव-शरीरकी प्राप्ति बड़े भाग्यसे होती है। तुलसीने इसे देवदुर्लभ माना है; कारण कि भगवत्कृपाका प्रकाश मानवपर ही होता है, देवता इससे वञ्चित रहते हैं। इसीलिये परात्पर ब्रह्मके दोनों पूर्णावतार—राम और कृष्ण—मानवावतार ही हैं। अन्य अवतारोंसे इनके उत्कर्षका कारण अपेक्षाकृत अद्भुत तत्त्वका गोपन एवं सहजताका प्रकाश है। लोक-शिक्षा परमात्माके मर्त्यावतारका मुख्य लक्ष्य होता है। उसकी सिद्धि लोकवत् व्यवहारसे ही सम्भव है। रामकी अवतार-लीलाके वर्णनमें तुलसीने यथासम्भव अलौकिकताके प्राकट्यको बचाया है। यदि उसका प्रकाशन कहीं हुआ भी है तो व्यक्तिविशेषके लिये और स्थानविशेषमें—सबके समक्ष और सबके लिये नहीं। और वह भी इसलिये कि कहीं [illegible] रूपमें वर्णित प्राकृत मानवकी कहानी न समझ बैठें। यही कारण है कि आराध्यके नितान्त नरसुलभ व्यवहारों, उद्वेगों एवं आचरणोंका विवरण प्रस्तुत करते हुए वे निरन्तर उनके परात्पर ब्रह्मत्वका स्मरण दिलाते रहते हैं।

रामचरितमानसके मानव-सुलभ संवेग

रामचरितमानसमें अप्राकृत ब्रह्मकी प्राकृत लीलाका वृत्त प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थारम्भमें जिस लोकानुग्रह अथवा करुणाको निर्गुण ब्रह्मके सगुण रूप धारण करनेका मुख्य प्रेरक भाव बताया गया है, रामकथामें उसकी आद्योपान्त व्याप्ति दिखायी देती है। इसके अतिरिक्त अधैर्य, प्रलाप, विरहाकुलता, कठोरता, पक्षपात, ममता आदि मनोभावोंका भी उनके जीवनमें विशिष्ट अवसरोंपर उद्रेक दिखायी देता है। कहीं-कहीं तो वे इतने सहज ढंगसे अभिव्यक्त हुए हैं कि अवतारलीलासे उनका सम्बन्ध प्रतीत ही नहीं होता। श्रद्धालु पाठकोंतकको उन्हें परात्पर ब्रह्मकी नरलीला स्वीकार करनेमें कठिनाईका अनुभव होता है। जनसामान्य उनके पारमार्थिक रूपको भूलकर मात्र लौकिक चरित मानने लगें तो आश्चर्य ही क्या है। तुलसीने इस प्रकारकी सम्भावनाका अनुमान कर मानस-प्रेमियोंको सगुणलीलाकी रहस्यमयतासे सावधान रहनेकी चेतावनी देते हुए लिखा था—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

करुणा

श्रीरामकी शरणागत-वत्सलता और पतितपावनी प्रकृतिके व्यञ्जक जो वृत्तान्त रामचरितमानसमें संकलित हैं, प्रसङ्गकी समीक्षा करनेपर उन सबके मूलमें करुणाभावकी ही प्रधानता दिखायी देती है—गौतमके शापसे उनकी शिलाभूता पत्नी अहल्याका उद्धार, वालीके भयसे बन-खोहमें लुक-छिपकर जिंदगी काटनेवाले सुग्रीवकी रक्षा तथा उन्हें किष्किन्धाका राज्य देना, दण्डक-वनवासी मुनियोंको सर्वप्रकारेण संरक्षण प्रदान करनेका आश्वासन, नरभक्षी राक्षसोंद्वारा मारे गये ऋषियोंके अस्थिसमूहको देखकर पृथ्वीको राक्षसहीन करनेकी प्रतिज्ञा, शरणागत विभीषणको लङ्काके राज्यका दान आदि प्रसङ्गोंमें उस करुणा अथवा जीवोंके प्रति दया-भावकी अपूर्व छटा दिखायी देती है, जिससे रहित मनुष्यको पशु कहनेसे पशुता भी अपमानित होती है। श्रीरामकी इस करुणा-संवलित उदारताकी पराकाष्ठा दिखायी देती है राम-रावण-युद्धमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अवसरपर, जब वे राक्षसोंको वैरभावसे स्मरण करनेवाले अपने भक्त बताकर रणक्षेत्रमें प्राण त्यागनेपर उन्हें मुनिदुर्लभ परमपद प्रदान करते हैं।

कृतज्ञता

गृध्रराज जटायुने रावणद्वारा हरी जाती हुई सीताकी रक्षामें प्राण अर्पित किये थे—श्रीरामने उनका अन्तिम संस्कार अपने हाथों किया, पिता दशरथसे भी अधिक ममता उनके प्रति दिखायी और अन्तमें उन्हें मुक्ति प्रदान की। इसी प्रकार हनुमान्‌द्वारा किये गये अनन्त उपकारोंका बोझ आजीवन ढोनेमें वे गर्वका अनुभव करते रहे।

दुर्बलताएँ

इन्हींके साथ रामावतार-लीलाके उन विशिष्ट स्थलोंकी ओर भी इङ्गित कर देना आवश्यक है, जिनमें मानव-सुलभ कमजोरियाँ खुलकर सामने आयी हैं। ये हैं—

(१) सीताहरणके पश्चात् वियोगी श्रीरामकी लौकिक विरही नायकोंकी भाँति विह्वलता एवं कामासक्तिका वर्णन।

(२) लक्ष्मण-शक्ति-प्रसङ्गमें मर्यादा तथा औचित्यकी सीमा पार करनेवाला प्रलाप।

(३) सीताकी अग्निपरीक्षाके समय श्रीरामका दुर्वाद-कथन।

(४) अखिल-ब्रह्माण्डनायक होते हुए भी एक स्थान-विशेष—अयोध्याके प्रति उनकी अगाध आसक्ति और वैकुण्ठसे भी उसकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन।

मानसके अध्येताओं, कथावाचकों और सहृदय गायकोंने श्रीरामकी भगवत्तापर प्रश्नचिह्न लगानेवाले इन प्रसङ्गोंकी विविध प्रकारसे व्याख्या कर अवतार-चरितकी अलौकिकताको अक्षुण्ण रखनेका प्रयास किया है। मेरे विचारमें इनकी यथार्थताको स्वीकार करनेसे भी रामचरितकी गरिमापर कोई आँच नहीं आती। लोक-हृदय उनकी पुरुषोत्तमताका पूजक है—देवत्वका नहीं। ये तथाकथित कमजोरियाँ रामको मानवी विशिष्टताओंसे मण्डित करती हैं—उन्हें दिव्य साकेतसे उतारकर विधि-प्रपञ्चकी रङ्गस्थली, गुणावगुण-समन्वित, जड-चेतन-संकुल उस धरतीपर ला खड़ा करती है, जिसका भार उतारनेके लिये ही ब्रह्म रामने अव्यक्तसे व्यक्त, असीमसे ससीम और नारायणसे नर होना स्वीकार किया था। तुलसी इसका मर्म जानते थे। वे इस खतरेसे भी अवगत थे कि अवतार-लीलाको तर्ककी कसौटीपर कसनेसे श्रद्धालु पाठक भटक जायँगे। इसीलिये उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दोंमें निषेध किया था—

'चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥'

रामायणको 'मानस'का रूप देनेवाले शिवका भी यही अभिमत था—

'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥'

ऐसी बात नहीं कि वे अवतार-चरितकी असंगतियोंसे अपरिचित थे। एकाध स्थलोंपर उन्होंने स्वयं आराध्यके कृत्योंकी आलोचना की है—

जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥

मरणासन्न वालीके द्वारा भी इन्होंने रामके मर्यादा-पुरुषोत्तमत्व और समदर्शिताको चुनौती दिलायी है—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास रामके परात्पर ब्रह्मत्वके समर्थक होते हुए भी उनकी मानवावतार-लीलाको साधारण लोगोंके चरितकी ही भाँति आलोच्य मानते हैं—इसलिये नहीं कि वे रामचरितकी उपर्युक्त न्यूनताओंकी यथार्थतामें विश्वास करते हैं, बल्कि यह दिखानेके लिये कि शेषके फनपर स्थित धरतीपर आकर यहाँकी मार्यादानुसार पूर्ण ब्रह्म भी अपना स्वरूप-गोपन कर अपूर्ण मानवका-सा ही व्यवहार करता है। इसीसे उनका चरित जनसाधारणके अनुकरणयोग्य बनता है और अवतार-प्रयोजनकी सिद्धि होती है।

लोकानुप्रेरक जीवनदर्शनके मूलाधार

रामचरितमानसके लोकानुप्रेरक जीवन-दर्शनके मूल आधार हैं—राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान् आदि प्रमुख पात्रोंके चरितमें आद्योपान्त व्याप्त संयम, स्नेहशीलता, निश्छलता, सत्य-निष्ठा आदि मानवीय गुण। कथा-नायक होनेसे रामका चरित सर्वाधिक प्रशस्त है। व्यक्तिके रूपमें अक्षय आत्म-

१. पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥
(रामचरितमानस, उत्तर० १३० । २ श्लो०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास, स्थितप्रज्ञता, अनासक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वावलम्बन, संगठनशक्ति, शौर्य, पराक्रम आदि तत्त्वोंसे समन्वित उनका अखण्ड तेजोमय जीवन, कुटुम्बीके रूपमें बड़ोंके प्रति श्रद्धा, समादर, आज्ञाकारिता और सेवापूर्ण व्यवहार तथा छोटोंपर स्नेह-कृपा एवं क्षमाशीलताकी अजस्र वर्षा, मित्रके रूपमें सौहार्दका आजीवन निर्वाह, राजाके रूपमें प्रजावर्गकी सुख-सुविधाका निरन्तर ध्यान, समत्वपर आधारित समाज-व्यवस्थाका प्रवर्तन, लोकमतका समुचित सत्कार, ऊँच-नीचका भाव त्यागकर वन्य जातियोंसे घनिष्ठ सम्बन्धकी स्थापना, समाजके विभिन्न वर्गोंके साथ सभी परिस्थितियोंमें शीलपूर्ण व्यवहारका निर्वाह, प्रत्यक्ष सम्पर्कसे कोल-किरातादि वन्यजातियोंका हृदय-परिवर्तन, मानव-समाजसे ही नहीं, पशु-पक्षियों तथा जड प्रकृतितकसे आत्मीयताकी स्थापना, व्यक्तिगत सुख-सुविधाओंको त्यागकर स्वेच्छया दुःख एवं विपत्ति-संकुल जीवनका वरण, असत् तथा अन्यायकी शक्तियोंसे आजीवन संघर्ष करते हुए अन्ततः केवल धर्मनिष्ठता तथा चारित्रिक बलसे भौतिकतावादी शक्तियोंपर विजय-प्राप्ति—आदि व्यापारोंमें उनकी लोकवादी साधना साकार हो उठी है।

पुराणोंके विष्णुने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मानवावतार ग्रहणकर मानवताको गौरव दिया था। मानसके श्रीरामने अपनी लोकलीलामें मानवीय गुणोंके अद्भुत प्रकाशसे भगवत्ताकी प्रतिष्ठा बढ़ायी। उनका मर्यादा-पुरुषोत्तमत्व परात्पर ब्रह्मत्वका पर्याय बन गया। पहले भगवत्ता मानवतामें परिणत मात्र हुई थी। तुलसीके राममें वह पूर्णतया लीन हो गयी।

राम-भक्ति—मानवताकी अन्तिम शरणागति

रामकथाके व्यापक प्रचारद्वारा आध्यात्मिक वातावरणकी सृष्टि और उसका लोकमङ्गलमें विनियोग ही रामचरितमानसका मुख्य आग्रह है। तुलसीका यह दृढ़ विश्वास था कि इसके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मननसे लोगोंके हृदयमें राम-चरणोंमें प्रगाढ़ आसक्ति उत्पन्न होगी।

जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

मनोवैज्ञानिक पद्धति

इस धारणाकी पुष्टि बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धतिपर करते हुए वे कहते हैं—

'कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥

× × ×

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

परिचयसे विश्वास, विश्वाससे प्रीति, प्रीतिसे श्रद्धा और श्रद्धासे भक्ति—लौकिक प्रेम-भावनाकी भाँति ही आध्यात्मिक विकासकी भी यही प्रकृत प्रणाली है। 'मानस'में इन स्थितियोंका चित्रण ही नहीं हुआ है, हनुमान्, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, शबरी आदिके चरित्रमें इनके विकासका भी निरूपण किया गया है। इस क्रमसे प्रतिष्ठित रामभक्ति साधकका अन्तर्मल धो देती है, जिससे जन्म-जन्मान्तरसे जमी हुई कुसंस्कारोंकी काई छूट जाती है। तुलसीका यह दृढ़ मत है कि अन्य किसी भी साधना-पद्धतिसे इनका अत्यन्ताभाव सम्भव नहीं है—

'प्रेम भगति जल बिनु खगराई। अभिअंतर मल कबहु न जाई॥'

संस्कार-मार्जन

प्रारब्धसे प्राप्त कुसंस्कारोंकी भाँति ही मनुष्य-जीवनको यातनामय बनानेवाले मोह-लोभ-काम-क्रोधादि मनोविकारोंके नाशकी भी रामभक्ति ही एकमात्र औषध है। इसके श्रद्धापूर्वक सेवनसे मानव-समाज मानसिक स्वास्थ्य लाभ कर लौकिक उत्कर्ष और पारमार्थिक सिद्धिके पथपर अग्रसर हो सकता है।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

× × ×

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥

× × ×

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

× × ×

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू॥

ये पंक्तियाँ असंख्य मानस रोगोंसे ग्रस्त मानवताके प्रति तुलसीकी अपार सहानुभूति और उनके पंजेसे मानव-जीवनको मुक्त करनेके लिये उनके करुणार्द्र हृदयकी छटपटाहट व्यक्त करती हैं।

रामभक्तिके विलक्षण प्रभावका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि 'एक बार हृदयमें प्रतिष्ठित हो जानेपर फिर वह कभी जाती नहीं। उसका दिव्य प्रकाश अन्धकारमयी दुष्प्रवृत्तियोंका मूलोच्छेद कर देता है'—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥

× × ×

ब्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥

राम भगति मनि उर बस जाकें । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ॥

सुगम मार्ग

इसकी सबसे बड़ी विशेषता है सुगमता और सुलभता। कर्म-ज्ञानादि साधनोंकी भाँति न तो यह अर्थसाध्य है, न प्रयत्नसाध्य। इसकी प्राप्तिकी एक मात्र शर्त है सरलता, निष्कपटता और संतोषवृत्तिपूर्ण जीवनचर्या—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥

सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथालाभ संतोष सदाई ॥

इसके अधिकारी जीव मात्र हैं—

एहि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ॥

अखिल बिस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबरि दाया ॥

सर्वहाराका अवलम्ब

यों तो रामकी कृपादृष्टि सबपर सब समय और समान रूपसे रहती है, किंतु उसका विशिष्ट पात्र मानवताका वह वर्ग होता है, जो उपेक्षित है, अभावग्रस्त है और अधःपतित है। पतित-पावनके संस्पर्शसे वह निष्कलुष बन जाता है—

'सरन गएँ मो से अघरासी । होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी ॥'

लोकोन्मुखी अध्यात्म-साधना

ऐसे भक्तवत्सलकी सेवक-सेव्यभावसे आराधना करके मनुष्य अनेक जन्मोंकी साधनाके अनन्तर कठिनतासे प्राप्य मुक्तिको अनायास—मात्र सम्मुखता-सम्पादनसे प्राप्त कर सकता है—

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥

× × ×

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

इस प्रकार रामभक्तिके माध्यमसे तुलसीने समाजको अध्यात्मोन्मुख करनेके लिये जिस महान् अनुष्ठानका सूत्रपात किया, उसका आधार व्यक्तिका अन्तःपरिष्कार था और रामभक्तिका प्रचार वयक्तिक साधनाके रूपमें ही किया गया था। अधोमुखी समाजको ऊर्ध्वमुखी बनानेका यही मार्ग था। इसके माध्यमसे तुलसीने मानवताको एक नयी जीवन-दृष्टि दी, एक नया रास्ता दिखाया, जिसका अनुसरण करनेके लिये किसी प्रकारके भौतिक साधन या सम्बलकी आवश्यकता नहीं थी। एतदर्थ श्रद्धा, विश्वास या मानसिक परिष्कारकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि भी अनिवार्य नहीं थी; भाव, कुभाव, अनख अथवा आलस्य किसी भी प्रकार और शुचि-अशुचि—किसी भी स्थितिमें रामनाम-जपसे उसकी प्राप्ति हो सकती था। इसके लिये घर छोड़कर जंगलोंमें धूनी रमानेकी आवश्यकता नहीं थी; अपेक्षामात्र इतनी थी कि वह अतिनिवृत्ति और अतिप्रवृत्तिसे बचकर योग और भोगके बीचका रास्ता पकड़कर—नामस्मरणके द्वारा अपने और आराध्यके बीचका सम्पर्क-सूत्र सँभाले रहे। भगवान् बुद्धने सद्धर्मके प्रचारसे मानव-चरित्रको ऊपर उठानेका यही मार्ग विधेय ठहराया था। तुलसी भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे—

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाय ।

तुलसी घर बन बीचहीं राम प्रेम पुर छाय ॥

यह 'रामपुर' रामराज्यका केन्द्र है। ऐसा रामराज्य, जिसमें समत्व, शान्ति और सम्पन्नताका अखण्ड निवास है, जहाँके नागरिकोंमें परस्पर स्नेह-सद्भावना है, राग-द्वेषका नामोनिशान नहीं। दुःख-दारिद्र्य फटकने नहीं पाता, अधिकार-लिप्सासे विरत होकर जहाँ सभी अपने कर्तव्यपालनमें व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार तुलसीने रामभक्तिके माध्यमसे वैयक्तिक उन्नयनको चरम सीमापर पहुँचाकर लोकोत्थानका साधन बनाया और प्रत्येक व्यक्तिको विश्वनागरिकता प्राप्त करनेका अधिकारी माना। यही उनकी अध्यात्माश्रित लोकसाधना है।

लोकनायक तुलसीने इस प्रकार व्यष्टि-साधनाको समष्टि-साधनामें परिणतकर 'भक्तिपथ'का रूप दे दिया। मानवसुलभ दुर्बलताओंसे रक्षाके लिये उन्होंने अनासक्ति एवं विवेकको इसका अभिन्न अङ्ग ठहराया। इससे इसकी दिग्विजयका पथ प्रशस्त हो गया—

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि ।

जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ॥

लुप्तप्राय मानवीय आदर्शकी पुनःप्रतिष्ठाके लिये समाजको जिस प्रकारके सत्याग्रही, दृढ़ और अदम्य एवं भावप्रवण आध्यात्मिक पथनिर्देशनकी आवश्यकता थी, रामचरितमानसद्वारा उसकी प्रशंसनीय ढंगसे पूर्ति हुई।

मानसकी लोकोन्मुखी भाषा-शैली

रामकी भाँति उनके वाङ्मयविग्रह रामचरितमानसका भी प्राकट्य लोकमङ्गलके लिये हुआ था। अतः रचयिताकी दृष्टि उसे लोकग्राह्य बनानेकी ओर बराबर रही। तुलसीका काव्यादर्श इसी भावनासे प्रेरित था—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'

इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये यह आवश्यक था कि उसकी रचना लोकभाषामें की जाय; क्योंकि वही सबकी समझमें आ सकती थी। इस विषयमें एक अड़चन यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी कि परम्परासे समादृत धर्मग्रन्थोंकी भाषा उस समय भी संस्कृत ही थी और लोकप्रसिद्ध रामकथाओं—वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण आदिका निर्माण भी संस्कृतमें ही हुआ था। लोगोंके हृदयमें, चाहे वे साक्षर हों या निरक्षर, संस्कृत भाषाके प्रति विशेष समादरका भाव था। देव अथवा देवाधिदेवकी कथा, स्तुति और अर्चनाके लिये देववाणीकी उपयोगिता स्वतःसिद्ध थी। किंतु तुलसीके समसामयिक समाजमें उसके पढ़ने-समझनेवालोंकी संख्या नगण्य हो गयी थी। वह सिमटकर धार्मिक कृत्यों और धर्मग्रन्थोंमें जीवित रह गयी थी। लोकजीवनकी मुख्यधारासे उसका सम्पर्क टूट चुका था। तुलसी रामकथाको लोकशिक्षाका सशक्त माध्यम बनाना चाहते थे। इसलिये भी उसकी रचना देशभाषामें करना अनिवार्य था। उधर संस्कृतके प्रति लोकनिष्ठाको देखते हुए उसे भी उचित सम्मान देना था। उन्होंने मानसके प्रत्येक काण्डके मङ्गलाचरण और देवस्तुतियोंमें उसको स्थान देकर परम्परावादी प्रवृत्तियोंका सत्कार किया। प्रतीत होता है कि इसके बाद भी उनके मनमें आराध्यके पावन चरितको 'निगमागम'की भाषा त्यागकर ग्राम्यभाषामें लिखनेकी ग्लानि बनी रही। मेरे विचारमें इसका कारण लोकभाषामें किसी प्रकारकी न्यूनता अथवा अक्षमता न होकर तत्कालीन धर्माश्रयी विद्वद्वर्गका संस्कृतके प्रति आग्रह और लोकभाषाके प्रति हेयबुद्धि एवं विरोध-भावना थी।

राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥
'छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई॥'

उन्हें ग्राम्य-गीतोंमें प्राप्त रामचरितके सहज माधुर्य एवं काव्य-सौन्दर्यका प्रत्यक्ष अनुभव था। इसलिये प्रबन्ध-रचनाके लिये लोकभाषाकी क्षमतापर उन्हें संदेह नहीं रह गया था।

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥

कालान्तरमें भाषा-सम्बन्धी उनका यह अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो गया। सर्वमानवीय कल्याण-भावनाकी प्रेरणासे उन्होंने संस्कृतकी परवा छोड़कर लोकभाषाके पक्षमें निर्णय लिया।

का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करिअ कुमाच*॥

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसीने रामकथा-का ग्राम्य-भाषामें वर्णन करनेकी प्रेरणा सीधे लोकजीवनसे प्राप्त की थी—यह बात दूसरी है कि उसका स्वरूप-निर्माण उन्होंने संस्कृतके विशाल वाङ्मयका सहारा लेकर ही किया।

संयोगवश उनके आरम्भिक जीवनका अधिकांश अवध प्रदेशमें बीता था। अयोध्या रामोपासनाका सर्वप्रतिष्ठित केन्द्र था, उनके गुरुका उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। नरहरिदासकी साधना-भूमि 'सूकर खेत' अयोध्याके पास पड़ती थी, वहीं बाल्यावस्थामें इन्होंने गुरुमुखसे रामायणकी अनेक आवृत्तियाँ सुनी थीं, अतः मानसकी रचना वहींकी बोलीमें हुई। रामकी जन्मभूमिकी भाषा होनेसे तुलसीका उसके प्रति आकर्षण एवं आदरभाव स्वाभाविक था।

काव्यमें वर्णित तथ्यों एवं भावोंको जन-मानसमें उतारनेके लिये भाषाका सरल, सुबोध, सरस एवं प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है। सहज अभिव्यक्ति ही उसकी प्राणशक्ति है। अतः काव्यशास्त्रके मर्मज्ञ और अर्थ-अक्षरके सामर्थ्यसे अवगत होते हुए भी तुलसीने कहीं भी प्रतिभा-प्रदर्शनका प्रयास नहीं किया। यह बात दूसरी है कि उनकी परावाणीमें सारे काव्य-गुण स्वतः सिमट आये हों। उनकी दृष्टि काव्यके आत्मपक्षके सँवारनेपर थी, देहतत्त्वके सजानेपर नहीं। रामभक्तिके स्वारस्यको लोक-हृदयमें यथार्थ रूपमें प्रतिष्ठित कर देनेमें ही वे काव्य-प्रतिभाकी सार्थकता मानते थे और इसीमें कविकर्मकी इतिश्री समझते थे—

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

इसी भावनाने उन्हें प्राकृत जनोंके गुणगानसे विरत किया। किसी व्यक्तिकी प्रशंसा करनेमें, चाहे वह कितना ही प्रतिष्ठित और वैभव-सम्पन्न क्यों न हो, सरस्वतीका अपमान होता है—ऐसा उदात्त विचार सांसारिक प्रलोभनों एवं आकर्षणोंसे मुक्त मानवीय मूल्योंके पारखीका ही हो सकता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि राजाओं एवं दरबारी काव्यकी भर्त्सना करनेवाले तथा सामन्तों और सामन्तीय संस्कृतिके विषाक्त प्रभावसे समाजकी रक्षा करनेवाले इस जनवादी कविको वादाग्रही आलोचक आज सामन्तवादका पोषक बताने लगे हैं।

'गहि न जाय रसना काहू की, कहौ जाहि जो सूझै।'

इधर रामचरितमानसमें अभिव्यक्त रामके चरितकी मानवीय न्यूनताओंकी भाँति ही तुलसीके भी मानवता-विषयक दृष्टिकोणकी तीव्र आलोचना होने लगी है। कहीं-कहीं तो इसने उग्र स्थूल विरोधका रूप ले लिया है। उन्हें ब्राह्मणवादी, शूद्रविरोधी और नारी-निन्दक कहकर सामाजिक सद्भाव एवं एकताका विरोधी घोषित किया गया है। इन आक्षेपोंपर संस्कारमुक्त चित्तसे तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेशको दृष्टिपथमें रखकर विचार करनेकी

* रेशमी कपड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है । हमें यह न भूलना चाहिये कि तुलसी आजसे लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे, जब शताब्दियोंकी विधर्मी राज्य-व्यवस्थासे आक्रान्त जनता अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिये जूझ रही थी । वर्णव्यवस्था, जो कभी जन्मना और कर्मणा—दोनों प्रकारसे थी, उस समय-तक आते-आते पथराकर जन्मना ही रह गयी थी । जातीय मनीषा उसीके लौहावरणके भीतर अपने सांस्कृतिक दायको छिपाकर सँजोनेमें व्यस्त थी । बाहरी आघातोंसे वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवनादर्शोंमें दरारें पड़ गयी थीं और उन्हीं दरारोंके कारण मनुद्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्थाका गढ़ ढहनेकी स्थितिमें आ गया था । तुलसीको सांस्कृतिक प्रहरीके रूपमें इन सारे छिद्रोंको भरकर और दरारोंको पाटकर हताश तथा किंकर्तव्यविमूढ़ जन-जीवनको नयी दिशा देनी थी । प्राचीनताकी केंचुल एकदम उतार फेंकनेसे इसकी सिद्धि सम्भव नहीं थी—उन्हें जिस समाजको लेकर चलना था और जिसका परिष्कार करना था, वह पुरातनता-प्रिय था—क्रान्तिकारी परिवर्तनके झटकेसे भड़क जाता । इसलिये उन्होंने आध्यात्मिककी ही भाँति सामाजिक जीवनके क्षेत्रमें भी अतिवादिताका त्याग कर मध्यममार्गका अनुसरण किया । जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्थाके कट्टर समर्थकके रूपमें उन्होंने ब्राह्मण, शूद्र और नारीके सम्बन्धमें परम्पराप्राप्त विचारोंका समर्थन किया, वहीं दूसरी ओर वैष्णव-भक्ति-आन्दोलनद्वारा प्रवर्तित सुधारवादी दृष्टिकोणके प्रकाशमें देशकालकी बदली हुई परिस्थितिमें उन्होंने ब्राह्मणोंके गिरते हुए चारित्रिक आदर्शोंकी खुलकर आलोचना की, रामभक्तिके माध्यमसे वसिष्ठ ऐसे युगाराध्य ब्राह्मण और भरतऐसे लोकवन्द्य क्षत्रियको शूद्रोंसे गले मिलाया और उन्हें 'भुवनभूषण' बना दिया—

कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबही तें । भयउँ भुवन भूषन तबही तें ॥

इसी प्रकार स्त्री-पराधीनताको भी उन्होंने समाजका एक बहुत बड़ा अभिशाप स्वीकार किया—

'कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं । पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ॥'

उनकी यह संतुलित दृष्टि समाजके सभी वर्गोंपर पड़ी । धार्मिक मत-मतान्तरों, सामाजिक जीवनके आधारभूत सम्बन्धों और वैयक्तिक जीवनके नैतिक मूल्योंमें परिलक्षित मानवताके स्वस्थविकासके अवरोधक तत्त्वोंपर उन्होंने निर्मम प्रहार किये, विघटनकारी प्रवृत्तियोंको निर्मूल करके संगठन तथा सद्भावनाके विकासके लिये उन्होंने रूढ़िवादी शास्त्र-चिन्तनको, पण्डितों और पुरोहितोंके नेतृत्वको अपदस्थकर समाजके उद्धारका उत्तरदायित्व संतोंको सौंपा । उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति और लोकका समन्वय समदर्शी संतोंका निःस्पृह तथा पावन व्यक्तित्व ही कर सकता है—लोकमत और वेदमत दोनोंसे संतमतको वरीयता देनेका यही रहस्य था—

'संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥'

रामचरितमानसमें निरूपित उच्च मानवीय मूल्योंके द्वारा विश्व-कल्याणकी जो कल्पना तुलसीने की थी; कालान्तरमें वह साकार हुई । मध्यकालीन अन्धकारग्रस्त सामन्तवाद तथा रूढ़िजर्जर सामाजिक मान्यताओंके महल ढहकर रहे । ज्ञान-विज्ञानके आधुनिक युगमें भी, जिसे राजनीतिक चेतनाका अभूतपूर्व जाग्रतिकाल कह सकते हैं, युगपुरुष गांधीने तुलसीके 'रामराज्य'को ही सर्वोदय-भावापन्न आदर्श राज्यव्यवस्थाके रूपमें स्वीकार किया । इतना ही नहीं, उन्होंने मानस-प्रतिपादित नाम-महिमामें दृढ़ आस्था रखते हुए 'राम-नाम' को ही जीवन तथा जगत्की सारी समस्याओंकी महौषधि बताया और उसकी आजीवन साधना कर 'राम-नाम' का स्मरण करते हुए एक सच्चे रामभक्तकी भाँति अपनी ऐहिक लीला संवरण की ।

यह कहा जा चुका है कि तुलसीने आध्यात्मिक जीवनको ही सर्वोपरि माना था और राजनीतिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवनके उत्थानमें उसकी भूमिका अनिवार्य बतायी थी । भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलनका सूत्रपात ही धार्मिक राष्ट्रीयताके रूपमें हुआ । गांधी और विनोबाके नेतृत्वमें तो उसने पूर्णतया आध्यात्मिक रूप धारण कर लिया—तुलसीने 'धर्मरथ-प्रसङ्ग'में वैज्ञानिक उपलब्धियोंसे सुसज्जित विश्व-विजयी रावणपर भौतिक साधनोंके अभावमें भी वनवासी रामकी विजयका कारण उनका अदम्य उत्साह और उच्चकोटिकी नैतिकता बताया है । गांधीने रामके इस आत्मजयी व्यक्तित्वसे प्रेरणा प्राप्तकर अंग्रेजी साम्राज्यशाहीसे भारतभूमिका उद्धार किया । रामचरित भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राममें कितना प्रेरक रहा है, इसका पता असहयोग-आन्दोलनके समय निर्मित साहित्यसे लगता है ।

आज विज्ञानकी अनियन्त्रित प्रगति और भौतिकताके कुम्भकर्णी विकासने मानव-सभ्यताको रामायण-कालकी ही भाँति विनाशके कगारपर ला खड़ा किया है । आसुरी शक्तियोंका जाल जलमें, स्थलपर और अन्तरिक्षमें सर्वत्र फैल गया है । अपना देश राजनीतिक दृष्टिसे स्वतन्त्र हो गया है, किंतु स्वतन्त्रताके फल—सुख एवं शान्तिसे सर्वथा वञ्चित हैं । ऐसे घोर सांस्कृतिक संकटके समय मानवीय तत्त्वोंकी पुनःस्थापनाके लिये रामचरितमानसको नये सिरेसे पढ़ने-सुननेकी तथा समझने-बूझनेकी आवश्यकता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस'के प्रणेता श्रीतुलसीदास—महापुरुष, महाकवि !

(रे० एडविन् ग्रीव्ज महोदयके विचार)

हिंदीके कवियोंमें तुलसीदास और कबीरके जोड़का कवि पाना कठिन है। काशीको इस बातका गर्व है कि उसकी गोदमें ये दोनों ही कवि फूले और फले और इन दोनोंका ही निर्मल, निष्कलङ्क जीवन तथा सुन्दर कृतियाँ सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ होते हुए परस्पर कितनी सदृश, समरस और समस्वर हैं। और भी कई लेखक और कवि ऐसे हैं, जो अपनी असाधारण योग्यता तथा काव्यकुशलताद्वारा हमारा ध्यान बरबस अपनी ओर खींचते हैं; परंतु जब हम उनके जीवनपर दृष्टिपात करते हैं तो निराशा ही हाथ आती है। भाषाका ओज उनमें खूब है, शैलीमें भी अपूर्व मादकता है; विद्वत्ता भी ऐसी कि सिर झुक जाय। परंतु उनका मानवरूप और व्यक्तिगत जीवन हमारे हृदयमें उनके प्रति न विश्वास ही उत्पन्न कर सकता है और न श्रद्धा ही। गोस्वामीजी और कबीरके साथ ऐसी बात नहीं है। उनकी अमर कृतियोंके द्वारा तो हम उनकी ओर खिंचते ही हैं; परंतु इससे भी अधिक उनके जीवनकी सादगी और पवित्रता, उनका पावन व्यक्तित्व हमारे हृदयको, हमारे मनको हठात् मोह लेता है।

× ×

रामायणमें रामके चरित्रका वर्णन बारह हजारसे कुछ ऊपर पंक्तियोंमें हुआ है। उसमें आदिसे अन्ततक अखण्डतः रामकी ही कथा नहीं है, अपितु बीच-बीचमें रामके चरित्रसे सम्बन्धित अन्य उपकथाएँ भी आती गयी हैं, और कथा इठलाती हुई, पेच खाती हुई, राहमें विरमती हुई अपनी मस्तीमें, मौजमें आगे बढ़ती चली जा रही है। लेखक किसी प्रकारकी चञ्चलता या उतावलेपनमें नहीं है, उसे कोई जल्दी नहीं है, शीघ्र पहुँचनेकी घबराहट नहीं है। वह प्रायः मार्गमें विरम जाता है, ठहरकर एक बार अपनी चारों ओरकी शोभाको सतृष्ण दृष्टिसे निहार लेता है, पासके पौधों और लता-वल्लरियोंमेंसे फूल तोड़ लेता है, राहमें मिलनेवालोंसे दो-दो बातें भी कर लेता है।

गोस्वामीजीकी महान् योग्यताका कोई बखान क्या करे, और कैसे करे ? कथावस्तुका प्रयोग जिस निराले ढंगसे किया गया है, वह उनके-जैसे चूड़ान्त कलाकारका ही कार्य है। उनकी शैलीका अनिन्द्य गौरव जहाँ एक ओर हमें चमत्कृत कर देता है, वहीं उसकी सौम्य सुषमा हमारे चित्तको अनायास लुभा लेती है। प्रश्न यहाँ यह उपस्थित होता है कि क्या श्रीगोस्वामीजी केवल कुशल शब्द-शिल्पी और कहानीकार ही हैं या अन्तर्ज्ञानसम्पन्न प्रतिभाशाली महापुरुष हैं ? फिर यह भी तो जानना चाहिये कि प्रतिभाशालीका क्या अर्थ है, प्रतिभा और योग्यतामें क्या अन्तर है और इन दोनोंमें बीचकी रेखा कहाँ है। ऐसी रेखा खींचना, या प्रतिभाकी यथातथ्य व्याख्या करना प्रायः असम्भव-सा ही है। प्रतिभामें एक अद्भुत, अप्रतिहत क्षमता होती है, एक भाव होता है, एक प्रेरणा होती है, एक स्वतः-संवेद्य स्फूर्ति होती है। चेष्टा और प्रयाससे प्रतिभा नहीं आती, प्रतिभा सीखी नहीं जाती, वह श्रमसाध्य नहीं है। वह तो विनिर्मुक्त, बन्धनविहीन आत्माकी उड़ान है, जिसमें छन्दोंकी गति, लयका आरोह-अवरोह, स्वर-तालकी मूर्च्छना और गमककी कोई उपेक्षा नहीं होती; परंतु इन सबका उसमें ऐसा समाहार होता है, एक ऐसी सुस्वरता होती है, जो किसी भी सचेष्ट प्रयत्न या श्रमसाध्य कुशलतासे सर्वथा परेकी वस्तु है। संसारकी कोई भी सक्रिय चेष्टा या सामूहिक प्रयत्न प्रतिभा-को जन्म नहीं दे सकता। प्रतिभा स्वतन्त्रताके परोंपर उड़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, निर्बाधता ही उसकी पाँखें हैं । रामायणकी रचनाके पूर्व गोस्वामीजीने भले ही दीर्घकालतक छन्दःशास्त्रका एवं काव्यशास्त्रका अनुशीलन किया हो, परंतु उनकी कृति रामायणमें कहीं भी किसी प्रकारके श्रम अथवा चेष्टाका आभास भी नहीं मिलता । रामायणमें तो गोस्वामीजीने अपने हृदयको एक ऐसे प्रसङ्गको लेकर खोल दिया है, जो उनके जीवनका जीवन और प्राणोंका प्राण है, जो वस्तुतः उनके हृदयका सर्वस्व है ।

परंतु स्वतन्त्रताकी इस स्वच्छन्द, निर्बाध धारामें संयमका कहीं भी अभाव नहीं दीखता ।

छन्दोंमें विविधता एक नवीन रसका संचार करती हुई चलती है, उसके कारण कथाप्रवाहमें एक गति और स्फूर्ति आ जाती है ।........................

रामायणकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी सरल, सहज और प्रवाहमयी शैली है ।...................

कथाका विन्यास बड़ी कुशलतासे हुआ है, भाषा और छन्दोवृत्त भी प्रसङ्गके सर्वथा अनुकूल और अनुरूप व्यवहृत हुए हैं । जहाँ, जब, जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उसके स्वारस्यको गोस्वामीजी भलीभाँति हृदयंगम करते हैं और पूरी रुचि तथा रसास्वादकी लालसाको लेकर उसमें प्रवृत्त होते हैं—वह स्थिति चाहे जैसी ही हो, गोस्वामीजीका हृदय उसके मूल रसमें प्रवेश कर जाता है..................।

रामायणमें आये हुए हास्य और विनोदके स्थलोंको देखनेपर यह पता चलता है कि गोस्वामीजीकी प्रकृति हासके महत्त्वको पूर्णतः स्वीकार करती है और उसकी उपयोगितासे पूर्णतः अवगत है । धनुषभङ्गके बाद लक्ष्मण तथा परशुरामका मिलन और संवाद, परशुरामके क्रोधभरे वचन और उसे उसकाते हुए लक्ष्मणका चुहलभरा व्यंग्य ।....शूर्पणखा और लक्ष्मणका संवाद भी हास्यका उद्दीपक है ।....

लङ्कामें राम और रावणकी सेनाओंमें जहाँ घोर संग्राम छिड़ा हुआ है, उसके चित्रणमें कविने प्रचण्ड शक्ति और उग्र शौर्यसे काम लिया है और छन्दोंका संवेग ऐसा द्रुत और पौरुषसम्पन्न है कि वैसा पौरुष अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता । वाक्योंकी झनझनाहट, छन्दोंकी झमझमाहट युद्धकी विकरालताको प्रत्यक्ष सामने खड़ी कर देती है और कवि अपने हाथमें छन्द और भाषाको लेकर मनमाना खेल खेलता है और अपनी आवश्यकताके अनुसार उन्हें ऐसा बना लेता है कि उसकी निपुणता देखकर दाँतोंतले उँगली दबानी पड़ती है ।

करुणरसके चित्र भी रामायणमें जहाँ आये हैं, वहाँ बहुत ही सजीव हैं । दशरथका दुःख और मरण—दोनों ही पाठकोंको रुलानेवाले हैं, इनका चित्रण बड़ी बारीकीसे हुआ है ।

सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसपर एक बार विहंगम-दृष्टि डालनेपर इसका प्रचुर वैचित्र्य, इसके वर्णनकी सजीवता और अभिनयरूपता, शब्द और छन्दपर कविका एकान्त अधिकार आदिको देखकर यही कहा जा सकता है कि रामायण केवल श्रीगोस्वामीजीकी ही सर्वश्रेष्ठ कृति नहीं है, अपितु समस्त हिंदी-संसारका सर्वशिरोमणि ग्रन्थ है । हिंदी-काव्य-गगनमें गोस्वामीजी सूर्यके समान देदीप्यमान हैं और दूसरे सभी कवि नक्षत्रोंके समान हैं । गोस्वामीजीके सरल, सबल और निर्मल जीवनके साथ ही उनकी कविताकी अपूर्व मिठास तथा अद्भुत शक्ति उन्हें सर्वोत्कृष्ट स्थानका अधिकारी बना देती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अद्भुत धीरता

बात कुछ पुरानी है। कलकत्ताके ठाकुर विश्वनाथ अपने पाण्डित्यके लिये बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। दूर-दूरके ख्यातनामा पण्डित उनके समीप कुछ सीखने आते थे। ठाकुर विश्वनाथ विद्वान् होनेके साथ ही बड़े ही विनम्र एवं शान्त प्रकृतिके थे। अभिमान तो जैसे उन्हें छू तक नहीं गया था। आनेवाले पण्डितोंको वे बड़े ही सम्मानके साथ विद्याका दान करते थे।

विद्या, धन, वैभव, अधिकार, शक्ति, प्रभुत्व आदि जब आते हैं, तब वे मनुष्यको उन्मत्त बना देते हैं। एक अजीब नशा उनमें होता है। कोई विरला ही भगवान्‌की कृपासे उस नशेकी चपेटसे बच पाता है। सुदूर प्रान्तके एक पण्डित अपने अध्यवसायसे साहित्य, व्याकरण, न्याय आदिमें विशेष योग्यता प्राप्त कर चुके थे और वे अपनेको भारतका सर्वश्रेष्ठ विद्वान् मानने लगे थे। वे जिस विद्वान्‌की चर्चा सुनते, उसीके समीप पहुँचते और शास्त्रार्थके लिये उसका आह्वान करते। अनेकों पण्डितोंको उन्होंने शास्त्रार्थमें पराजित किया। इससे उनका अभिमान और भी बढ़ गया।

पण्डित महोदयने कलकत्तेके श्रीविश्वनाथ ठाकुरका नाम सुना। उनकी प्रसिद्धिसे वे चौंक उठे। वे उन्हें शास्त्रार्थमें पराजितकर अपनी विजय-पताका फहरानेकी इच्छा लेकर कलकत्ता पहुँचे। उन्होंने विश्वनाथ ठाकुरके घर पहुँचकर उनसे शास्त्रार्थ करनेका प्रस्ताव रखा। परंतु विश्वनाथ ठाकुर तो वास्तविक 'पण्डित' थे। उन्होंने पण्डित महोदयका प्रस्ताव बड़े ही विनम्र शब्दोंमें अस्वीकार कर दिया। पण्डित महोदयको इससे संतोष नहीं हुआ। वे कलकत्ता नगरके पण्डितोंकी हँसी उड़ाने लगे और उनके पाण्डित्यके सम्बन्धमें अनर्गल बातें कहने लगे। यह देख-सुनकर भी विश्वनाथ ठाकुर चुप रहे। किंतु उनके साथी विद्वानोंको पण्डित महाशयकी कटूक्तियोंसे बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने ठाकुर महाशयसे प्रार्थनाके एवं अनुरोध किया कि एक शास्त्रार्थ अवश्य हो जाय। ठाकुर महाशय साथी पण्डितोंका आग्रह टाल न सके।

शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पण्डितोंकी भीड़ लगी थी। बाहरसे पधारे हुए पण्डित महोदयने दर्शनके विषयका एक प्रश्न छेड़ा। ठाकुर महाशयने सहज भावसे उसका उत्तर दिया। फिर तो उत्तर-प्रत्युत्तर चल पड़ा। १०-१५ मिनट यह क्रम चला होगा कि ठाकुर महाशयने एक ऐसा प्रश्न उपस्थित कर दिया, जिसका उत्तर पण्डित महाशयको न सूझा। वे सकपका गये। उपस्थित पण्डित-समुदाय बड़ी आतुरताके साथ उनकी ओर देखने लगा। अपनी प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिलते देख पण्डित महाशय रोषमें भर गये और कोई शिष्ट उपाय न देखकर उन्होंने अभद्रताका आश्रय लिया। उन्होंने अपनी नाकपर उँगलियाँ रक्खीं और उसमेंसे सिनक निकालकर ठाकुर महाशयके मुँहपर दे मारा! पण्डित-समुदाय ठाकुर महाशयका यह अपमान देखकर आग-बबूला हो गया और वह पण्डित महाशयके निन्दनीय कार्यकी भर्त्सना करने लगा। परंतु ठाकुर महाशय अपनी सहज प्रसन्नता एवं शान्तिके साथ अविचल बने रहे। हाँ, वे उसी प्रसन्नताके साथ उठे और बाहर रखे हुए पानीसे अपना मुँह धोकर तुरंत लौट आये एवं शास्त्रार्थ करनेवाले पण्डित महोदयसे कहा—'महाशय! यह तो हुई विनोदकी बात; अब हम पुनः विषयपर आ जायँ।'

ठाकुरकी इस सहज धीरता, गम्भीरता एवं सौजन्यको देखकर पण्डित महाशयके मनमें अपने निन्दनीय कार्यके लिये परिताप जगा और उन्होंने तत्काल अपना मस्तक ठाकुर महाशयके चरणोंपर रख दिया तथा उनसे क्षमा-याचना की। पण्डित-समुदायका रोष शान्त हो गया और वे ठाकुर महाशयका जयघोष करने लगे।

(२)

लगन ऐसी होनी चाहिये

अठारहवीं शताब्दीका चतुर्थ चरण था। उन दिनों कलकत्ता भारतवर्षकी राजधानी थी। सर विलियम जोन्स हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश बनकर इंग्लैंडसे भारतवर्ष आये। अपने क्षेत्रकी जनताके विचार, जीवन, साहित्य, परम्परा आदिका परिचय रखना एक न्यायाधीशके लिये आवश्यक होता है। श्रीजोन्सने इस योग्यता-प्राप्तिका निश्चय किया। अपने साथियोंसे इस विषयमें विचार-विमर्श करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि 'भारतवर्षका सम्पूर्ण ज्ञान देवभाषा संस्कृतमें है, अतएव उन्हें संस्कृतका ज्ञान अर्जन करना चाहिये।' श्रीजोन्सने संकल्प किया कि वे संस्कृतका ज्ञान शीघ्र-से-शीघ्र प्राप्त करेंगे।

श्रीजोन्सने संस्कृत पढ़ानेवाले अध्यापककी खोज की, किंतु एक भी अध्यापक नहीं मिला। उस समय पण्डित लोग किसी भी विदेशीको संस्कृत भाषा पढ़ानेके लिये तैयार न थे। कृष्णनगरके महाराजा श्रीशिवचन्द्रजीसे श्रीजोन्सने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैत्री हो गयी थी। श्रीजोन्सने अध्यापककी व्यवस्था करनेके लिये उनसे कहा। महाराजा साहबने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वे भी अध्यापककी व्यवस्था करनेमें समर्थ न हो सके। अधिक शुल्क देनेका प्रलोभन दिया गया, पर इससे भी सफलता नहीं मिली। बहुत ही प्रयत्न करनेपर एक-दो पण्डित श्रीजोन्सको पढ़ानेके लिये आये; किंतु उनके समुदायके पण्डितोंने उनकी भर्त्सना करते हुए कहा—'कुछ चाँदीके टुकड़ोंके लिये अपनी भाषा देववाणीको म्लेच्छके हाथों बेचते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम्हारा आजसे हमारी बिरादरीसे बहिष्कार है। आजसे तुम्हारे साथ खान-पान, विवाह-शादीके सब सम्बन्ध समाप्त हैं।' अपने जाति-भाइयोंकी इस धमकीसे उन पण्डितोंने श्रीजोन्सको पढ़ाना छोड़ दिया।

इस घटनासे श्रीजोन्सको बड़ी निराशा हुई। उनके मनमें विचार उदय हुआ कि यह देश कैसा है, जहाँ शिक्षा-दानके लिये अध्यापक नहीं मिलते। परंतु श्रीजोन्स अपनी धुनके पक्के थे। अन्तमें उन्हें कोई ब्राह्मण अध्यापक तो नहीं मिल सका, परंतु संस्कृत भाषाके जानकार श्रीरामलोचन कविभूषण नामक ब्राह्मणेतर जातिके एक वैद्य मिले। वे पूरे फक्कड़ थे— परिवारमें न स्त्री न कोई बाल-बच्चा। हवड़ाके समीप उनका घर था। वे समाजके बहिष्कारसे भयभीत होनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने पारिश्रमिकके रूपमें सौ रुपये प्रतिमास तै किये और घरसे श्रीजोन्सकी कोठीतक आने-जानेके लिये पालकीकी व्यवस्थाकी माँग की। इतना ही नहीं, उन्होंने श्रीजोन्सके सामने कई शर्तें रखीं और कहा कि इनका अक्षरशः पालन होनेपर ही वे पढ़ाना आरम्भ कर सकते हैं, शर्तें ये थीं कि (१) अध्यापनका कार्य कोठीके निचले तल्लेके एक कमरेमें होगा। (२) उस कमरेका फर्श संगमरमरका बनाया जाय। (३) एक हिंदू नौकरकी नियुक्ति की जाय, जो प्रतिदिन गङ्गाजी (हुगली) से जल लाकर कमरेका फर्श एवं सब दीवालोंको धोयेगा। (४) कुर्सी-मेज आदि कमरेकी हर चीज गङ्गाजलसे धोयी जानी चाहिये। (५) अध्यापनके पूर्व श्रीजोन्स केवल चायके एक प्यालेके अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकेंगे। (६) उस समूची कोठीमें मांस बनाना-खाना निषिद्ध होगा। श्रीजोन्सने बड़ी प्रसन्नताके साथ इन शर्तोंको स्वीकार कर लिया और अध्यापनका कार्य प्रारम्भ हुआ। परंतु एक कठिनाई अनुभव होने लगी—कविभूषणजी अंग्रेजी नहीं जानते थे और श्रीजोन्सने संस्कृत पढ़ना आरम्भ ही किया था। दोनोंका निर्वाह कैसे हो? श्रीजोन्सने भारतवर्ष आनेके पश्चात् हिंदीके जो थोड़े-बहुत शब्द सीखे थे, उन्हींके सहारे पढ़ाई चालू हुई। भाषाकी अपेक्षा शब्दोंका अर्थ हाथ, पाँव और सिरके संकेतोंसे ही व्यक्त किया और समझा जाता था। श्रीजोन्स बड़े ही कुशाग्रबुद्धि, धैर्यशाली एवं अध्यवसायी थे। भारतवर्ष आनेके पूर्व उन्होंने पारसी और अरबीका ज्ञान प्राप्त किया था। योरपकी दस भाषाएँ उन्हें आती थीं। वे ग्रीक और लैटिन भाषाओंके भी पण्डित थे। अतएव उन्हें संस्कृतका ज्ञान प्राप्त करनेमें विशेष कठिनाई अनुभव नहीं हुई। एक वर्षके परिश्रमसे उन्होंने संस्कृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर तो क्या था, गाड़ी सपाटेसे चल पड़ी।

आरम्भमें कविभूषणने श्रीजोन्सको प्रतिदिन काममें आनेवाले संस्कृतके शब्दोंका ज्ञान कराया। एक दिन प्रसङ्ग-वश उन्होंने संस्कृत नाटकोंकी चर्चा की। इसी चर्चामें कालिदासके 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटककी भी चर्चा आयी। श्रीजोन्स उस नाटकके प्रति बड़े आकर्षित हुए और उन्होंने उसके अध्ययनकी इच्छा व्यक्त की। यद्यपि उनका ज्ञान इतना नहीं था कि वे उस नाटकको ठीकसे समझ सकते, फिर भी इन्होंने उसे पढ़ना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनोंमें वे नाटकके भावोंको ठीकसे ग्रहण करने लगे। पीछे उन्होंने उस नाटकका अंग्रेजी भाषामें रूपान्तर किया। इसके पश्चात् उन्होंने संस्कृतके कई अमूल्य ग्रन्थोंका भी अंग्रेजीमें अनुवाद किया तथा संस्कृतके प्रचार-प्रसारके लिये नानाविध प्रयत्न किये। संस्कृतके सेवकोंमें श्रीजोन्सका नाम विशेष आदरसे लिया जाता है। —एक संस्कृत प्रेमी

(३)

प्रार्थना आज भी सुनी जाती है

बात लगभग ५० वर्ष पूर्वकी है। कलकत्तेकी एक प्रसिद्ध मिलमें भवन-निर्माणका कुछ कार्य हो रहा था। बड़ी संख्यामें मजदूर कार्य करते थे। एक दिन एक बड़ा गाटर छतपर चढ़ाया जा रहा था। दैवयोगसे गाटर फिसल गया। परंतु एक मजदूरको छोड़कर सभी मजदूर आहत होनेसे बच गये। आहत मजदूर उड़ीसा प्रदेशका था।

मिलके मालिक बड़े सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने आहत मजदूरकी चिकित्सापर बड़ा ध्यान दिया, परंतु उसकी टाँगमें गहरी चोट थी। नाना प्रकारके उपचार करनेपर भी टाँग ठीक नहीं हुई, घाव बढ़ता ही गया। कलकत्ताके तत्कालीन बड़े-बड़े सर्जनोंको दिखाया गया। एक्स-रे (X-Ray) आदि करनेके पश्चात् सबने मिलकर निश्चय किया कि टाँगको आधी जाँघके समीपसे काट देनी चाहिये, अन्यथा जीवनको खतरा हो जायगा।' आपरेशनका दिन भी निश्चित कर दिया गया।

मजदूर धार्मिक प्रवृत्तिका था। प्रान्तकी परम्पराके अनुसार भगवान् श्रीजगन्नाथको ही वह सबसे बड़ा देवता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता था। ऑपरेशनद्वारा टाँग काट दी जानेकी बातसे उसके मन और प्राण व्याकुल हो उठे। वह मालिकों एवं डाक्टरोंके सामने बहुत रोया-गाया, परंतु उसकी बात किसीने भी नहीं सुनी। सुनता भी कौन ? सभीको टाँगकी अपेक्षा उसके जीवनकी अधिक परवा थी। जब वह मजदूर सब ओरसे निराश हो गया, तब उसने भगवान् श्रीजगन्नाथजीको पुकारना आरम्भ किया। व्यक्ति जब सब ओरसे निराश हो जाता है, तभी उसे भगवान्का स्मरण होता है—'हारेको हरि नाम' प्रसिद्ध ही है।

ऑपरेशनके दिनसे पहली रातमें उसकी घबराहट बहुत ही बढ़ गयी। उसे दिखायी देने लगा कि कुछ घंटों बाद उसकी टाँग काट दी जायगी। भोला-भाला मजदूर भगवान् श्रीजगन्नाथजीपर विश्वास करके उन्हें पुकारने लगा—'हे जगन्नाथ बाबा, हे जगन्नाथ बाबा! मेरी टाँग ठीक कर दीजिये।' आरम्भमें यह प्रार्थना मन्दस्वरमें प्रारम्भ हुई, किंतु थोड़ी ही देर बाद वह जोर-जोरसे पुकारने लगा—'हे जगन्नाथ बाबा, हे जगन्नाथ बाबा!' आस-पासके लोगोंने उसे चुप कराना चाहा; परंतु जिसके हृदयमें व्याकुलता एवं भयका सृजन हो चुका है, वह कैसे शान्त हो सकता है। मजदूर बराबर चिल्लाता रहा—'हे जगन्नाथ बाबा, हे जगन्नाथ बाबा!' रात बढ़ती गयी। लोग सो गये, पर मजदूर उन्मत्तकी तरह बराबर चिल्लाता रहा—'हे जगन्नाथ बाबा, हे जगन्नाथ बाबा!' उसकी वृत्तियाँ सब ओरसे सिमटकर एकमात्र भगवान् श्रीजगन्नाथजीपर केन्द्रित हो गयीं। भगवान् भावग्राही हैं; जहाँ हृदयके अन्तस्तलसे पुकार हुई कि वे प्रकट हो जाते हैं। मजदूरके मन और प्राणोंमें अब भगवान् श्रीजगन्नाथके अतिरिक्त कोई भी नहीं बचा था।

रात्रिका चौथा पहर ढल रहा था। अचानक मजदूरको अनुभव हुआ—भगवान् जगन्नाथ प्रकट हुए हैं और वे उसके आहत पैरको अपने कर-कमलोंसे छू रहे हैं। भगवान्के स्पर्शसे उसकी टाँग उसी क्षण पूर्ण स्वस्थ हो गयी है; उसमें न कहीं घाव है, न पीड़ा। वह बिल्कुल स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो गया है।' कुछ बाह्य चेतना होनेपर मजदूरने सोचा—'मैंने यह क्या देखा ? यह स्वप्न है या वास्तविकता ?' उसने अपना पैर टटोलकर देखा तो उसे उसमें कहीं भी घाव नहीं मिला। कुछ क्षण पहलेतक वह दर्दके मारे व्याकुल था, किंतु अब उसे उस पैरमें तनिक भी पीड़ा अनुभव नहीं हो रही थी। उसने पैरको नीचे-ऊपर, इधर-उधर हिलाकर देखा, परंतु उसमें तनिक भी अस्वाभाविकताका बोध नहीं हुआ। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि भगवान् जगन्नाथ स्वयं प्रकट हुए हैं और उन्होंने उसकी टाँग ठीक कर दी है। भगवान्की इस अद्भुत दयालुताका स्मरण कर मजदूर रोने लगा और भावावेशमें वह अपने बिस्तरपरसे नीचे उतरकर यह कहते हुए नाचने लगा—'धन्य है जगन्नाथ बाबाको! धन्य है जगन्नाथ बाबाको !! मेरा पैर ठीक हो गया, मेरी टाँग ठीक हो गयी!' मजदूरके इस प्रकार उछल-उछलकर चिल्लानेसे साथी लोग जग गये और उसे इस प्रकार नाचते देखकर आश्चर्यमें डूब गये। कोई भी समझ नहीं पा रहा था कि यह इस प्रकार कैसे करने लगा। मजदूर अपने भावकी मस्तीमें बड़ी देर तक चिल्लाता रहा, नाचता रहा; लोगोंने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल डाक्टरोंकी टीम ऑपरेशनके लिये तैयार होकर आयी। उधर कम्पाउंडर आदि उस मजदूरको ऑपरेशनके लिये तैयार करनेके लिये पहुँचे। परंतु उन्होंने देखा—'मजदूर पूर्ण स्वस्थ है, उसकी टाँगमें कहीं कोई घाव नहीं है।' उन्होंने जाकर डाक्टर महानुभावोंको इस बातकी सूचना दी। डाक्टर महानुभाव आश्चर्यचकित हो गये। वे इस सूचनापर विश्वास ही नहीं कर सके। उन्होंने स्वयं आकर मजदूरको देखा, किंतु उसकी टाँग बिल्कुल स्वाभाविक अवस्थामें थी; उसमें कहीं भी घाव नहीं था और न पीड़ा ही थी। डाक्टर महानुभावोंके विस्मयका कोई पार नहीं था। उन्होंने टाँगका एक्सरे आदि किया, परंतु उन्हें उसमें कोई भी अस्वाभाविकता नहीं मिली। मजदूर हर्ष—पुलकके साथ भगवान् जगन्नाथकी कृपाका बखान कर रहा था और उसके नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बह रहे थे। अस्पतालके सब डाक्टर, सर्जन और कर्मचारी भगवान्की इस अद्भुत लीलाको देखकर आश्चर्यचकित थे।

—एक प्रार्थनाका समर्थक

(४)

साधुताका आदर्श

बात पुरानी है। हमारे परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार किसी कार्यसे कलकत्ता गये हुए थे। कलकत्तेमें गीताप्रेसकी निजी दूकान है, गोविन्दभवन नामका एक विशाल सत्सङ्ग-भवन है, जहाँपर सत्सङ्गका कार्यक्रम प्रायः चलता रहता है। ठीक स्मरण नहीं है कि श्रीभाईजी 'गोविन्द-भवन' सत्सङ्ग कराने जा रहे थे कि वहाँसे लौट रहे थे। कई व्यक्ति उनके साथ चल रहे थे। इसी बीच एक युवक श्रीभाईजीके सामने आया और हाथ फैलाकर दीनभावसे बोला—'बाबूजी, मैं भूखा हूँ, कुछ पैसे दीजिये।' श्रीभाईजीने अपनी जेबमें हाथ डाली और उसमेंसे कुछ रुपये निकाले। कुछ नोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके हाथमें बाहर आये। उनमेंसे कुछ उन्होंने उस युवकको दिये और शेष रुपये अपनी पाकेटमें रख लिये। श्रीभाईजी आगे बढ़ रहे थे और वे परस्परके वार्तालापमें व्यस्त थे। अचानक उन्हें लगा कि कोई उनकी जेब छू रहा है। उन्होंने सँभालनेके उद्देश्यसे जेबकी ओर हाथ बढ़ाया। संयोगवश एक युवकका हाथ श्रीभाईजीके हाथमें आ गया। हाथको थामते हुए श्रीभाईजीने युवकके मुँहकी ओर देखा। उन्होंने पहचान लिया कि युवक वही बालक है, जो कुछ क्षण पहले उनसे भीख माँग रहा था। श्रीभाईजीके हाथमें अपना हाथ आ जानेके कारण युवक भयभीत था कि अब उसकी अच्छी तरह पूजा होगी।

श्रीभाईजीने युवककी ओर बड़े ही स्नेहसे देखा; फिर उन्होंने उसका हाथ छोड़ दिया और उसके कंधेपर प्रेमसे हाथ रखते हुए वे उसे एक किनारे ले गये। श्रीभाईजीने युवकसे कहा—'भैया! तुम रुपयेके लिये ही तो पाकेटमें हाथ डाल रहे थे, ये लो रुपये।' यों कहते हुए उन्होंने अपनी जेबमेंसे सब रुपये निकालकर उस युवकको दे दिये। युवक आश्चर्यचकित था। श्रीभाईजीने फिर कहा—'भैया! तुमसे मैं यदि कहूँ कि तुम चोरी मत करो या गिरहकटी मत करो तो यह बात तुम मानोगे नहीं। सबकी अपनी-अपनी आदत होती है। जो आदत पड़ जाती है, वह जल्दी छूटती नहीं। कम-से-कम मेरी इतनी सलाह तो तुम मान ही लो कि रुपयोंका पता लगानेके लिये 'मैं भूखा हूँ' यों कहकर भीख मत माँगा करो। भूखके नामपर रुपयोंका पता लगाना और गिरहकटी करना—यह ठीक नहीं। तुम्हारी इस प्रकारकी चेष्टाका परिणाम यह होगा कि जो वास्तवमें भूखा है, वह जब भीख माँगेगा, तब उसे भी लोग गिरहकट समझकर पुलिसमें दे देंगे, उसे भीख नहीं मिलेगी और निरपराध होनेपर भी दण्ड भोगना पड़ेगा। अतः कम-से-कम मेरी इतनी बात तो तुम अवश्य मान लेना!' यह सुनकर युवक विदा हो गया। श्रीभाईजी भी अपने स्वजनोंके साथ आगे बढ़ गये।

युवक रँगेहाथ पकड़े जानेके कारण अपनी दुर्गतिकी आशङ्कासे भयभीत था, किंतु बदलेमें उसे बड़ी ही आत्मीयताका व्यवहार प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं, उसे एक सच्चे संतके करका सुखद स्पर्श भी सुलभ हुआ। जीवनमें ऐसी दुर्लभ परिस्थितियाँ ही तो हृदय-परिवर्तनमें हेतु बनती हैं। युवक रुपये लेकर आगे बढ़ा, परंतु उसके हृदयमें अपने कुकृत्यके प्रति ग्लानि और पश्चात्तापका उदय हुआ।

दूसरे दिन 'गोविन्द-भवन'में श्रीभाईजीका प्रवचन हुआ। प्रवचनके पश्चात् वह युवक श्रीभाईजीसे मिला और उसने एकान्तमें श्रीभाईजीसे कुछ बातें करनी चाहीं। श्रीभाईजी तुरंत उठे और एकान्तमें जाकर उस युवकसे मिले। युवक बड़े ही करुण शब्दोंमें अपनी दीन-हीन अवस्थाका परिचय देने लगा। उसने कहा—''बाबूजी, मेरी एक बूढ़ी माँ है; अपने तथा अपनी माँके भरण-पोषणके लिये मेरे पास कोई साधन नहीं है। जो लोग यह जानते हैं कि 'मैं गिरहकट हूँ', वे न मुझे अपने पास खड़ा होने देते हैं और न कोई काम ही दिलाते हैं। जो लोग मुझे गिरहकटके रूपमें नहीं जानते, उनके पास जब मैं जाता हूँ, तब पुलिस जाकर उनको यह बता देती है कि यह युवक गिरहकट है, आप इसे अपने यहाँ कामपर न रखें। पुलिसकी डायरीमें मेरा नाम दर्ज है। पुलिसके कहनेपर वहाँसे मेरी छुट्टी हो जाती है। भूखा क्या नहीं करता, लाचार होकर मुझे गिरहकटी ही करनी पड़ती है'''।' यों कहते-कहते युवकने श्रीभाईजीके चरणोंके समीप वे रुपये रख दिये, जो उन्होंने उसे कल दिये थे। रुपये रखकर उसने फिर कहा—'बाबूजी, मुझे रुपयोंकी आवश्यकता नहीं है; आप अपने रुपये ले लीजिये। मुझे आप कोई काम दिला दीजिये, जिससे मैं अपना और अपनी माँका भरण-पोषण कर सकूँ।' भाईजीने बड़ी ही सहानुभूतिपूर्वक उस युवककी बात सुनी। उनके सामने ऐसे एक नहीं अनेक व्यक्तियोंकी समस्याएँ आ चुकी थीं, जहाँ मनुष्य विवशतावश चोरी, अन्याय, झूठका आश्रय लेता है। उन्होंने उस युवकसे कहा—'भैया! ये रुपये तो तुम अपने पास रखो; अभी तुम इनसे अपना काम चलाओ। मैं शीघ्र ही गोरखपुर जानेवाला हूँ। तुम मेरे साथ वहाँ चल सकते हो।'

दो-चार दिन पश्चात् श्रीभाईजी गोरखपुर लौटे। साथमें वह युवक भी गोरखपुर आ गया। श्रीभाईजी चाहते तो उसे कलकत्तेमें ही काम दिला सकते थे; किंतु वे समझ गये थे कि उसे वहाँ कोई काम करने नहीं देगा। गोरखपुर आकर श्रीभाईजीने उसे अपने पास ही रख लिया। उन्होंने किसीको भी उस युवकके बारेमें नहीं बताया। इस प्रकार वह युवक सम्मानपूर्वक श्रीभाईजीके कहनेपर कार्य करने लगा। 'स्वभावो दुरतिक्रमः'—स्वभावमें परिवर्तन होना बड़ा ही कठिन है—यह प्रसिद्ध है। श्रीभाईजीके पास रहकर युवक कार्य करने लगा, परंतु अवसर मिलनेपर एक दिन उसके बुरे संस्कार फिर जाग्रत् हो गये। युवकने मौका पाकर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ रहनेवाले व्यक्तियोंमेंसे एकके कुछ रुपये चुरा लिये। रुपये चोरी होनेकी बात सम्बन्धित व्यक्तिको ज्ञात हो गयी। वह बेचारा हैरान था कि अभी रुपये यहाँ पड़े थे, इतनी देरमें कहाँ चले गये। साथी लोग रुपयोंकी खोज करने लगे, पर रुपये मिले नहीं। किसीने सुझाव दिया कि वहाँ जितने भी व्यक्ति उपस्थित हैं, सबकी तलाशी ली जाय। प्रमुख व्यक्तियोंसे तलाशी लेना आरम्भ किया जाय, जिससे छोटे कर्मचारियोंके मनमें उसके लिये कोई विचार न हो।

श्रीभाईजीको किसी सूत्रसे यह बात ज्ञात हो गयी। वे तुरंत समझ गये कि 'यह कार्य उसी युवकका है, जो उनके साथ कलकत्तेसे आया है। तलाशी लेनेकी बात चल रही है। तलाशीमें उसी व्यक्तिके पास रुपये पकड़े जायँगे और वह सबकी दृष्टिमें चोर साबित हो जायगा।' उन्होंने तुरंत स्थितिको बचानेके लिये नाटक रचा। उन्होंने गीताप्रेसके मैनेजरके नाम एक छोटा-सा पत्र लिखा और उसे लेकर वे अपने कमरेके बाहर आये। वहाँ खड़े हुए एक व्यक्तिसे उन्होंने कहा—'उस युवकको बुलाओ।' व्यक्तिने पूछा—'बाबूजी, क्या काम है?' श्रीभाईजीने कहा—'चिट्ठी गीताप्रेस अभी भेजनी है। बहुत जरूरी है।' व्यक्तिने कहा—'बाबूजी, कार्यालयसे अभी-अभी कुछ रुपये गायब हो गये हैं; पता नहीं चल रहा है कि किसने लिये हैं। सबकी तलाशी होनेकी बात है। उस युवककी भी तलाशी ली जायगी। तलाशी ले लेनेके बाद ही उसको प्रेस भेजना चाहिये।'

इतना सुनना था कि श्रीभाईजी आवेशका नाट्य करते हुए बोले—'क्या वह चोर है? क्या उसने रुपये चुराये हैं? झूठा दोष लगाते हो उसपर तुम। सबकी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है।' उस व्यक्तिने विनम्रतापूर्वक कहा—'बाबूजी, किसी व्यक्ति-विशेषपर संदेह नहीं किया जा रहा है। अभी रुपये थे और अभी गायब हो गये।' वह व्यक्ति कुछ और कहना चाहता था कि इसी बीचमें श्रीभाईजी बोल उठे—'मैं कहता हूँ न, उस युवकने रुपये नहीं लिये। मैं गंगाजली उठाकर कह सकता हूँ कि उसने रुपये नहीं लिये, फिर क्यों उसकी तलाशी ली जाय? क्या तुम लोगोंकी तलाशीके लिये मैं अपने कामका हर्ज करूँ? बुलाओ उसको; मुझे अभी वह पत्र उसके हाथ प्रेस भिजवाना है।'

अब कौन कुछ बोल सकता था? वह युवक बुलाया गया, श्रीभाईजीने उसको पत्र दिया और वह साइकिलसे गीताप्रेसके लिये रवाना हो गया। युवक गीताप्रेसकी ओर चला जा रहा था, पर वह किसी दूसरी ही दुनियामें था। वह मन-ही-मन श्रीभाईजीकी साधुताका स्मरण कर अपने कुकृत्यपर पश्चात्ताप कर रहा था। वह सोच रहा था—'मुझे रँगे हाथ पकड़े जानेसे बचानेके लिये भाईजीने कैसा अभिनय किया, क्या-क्या शब्द कहे! ऐसा कौन उदार होगा, जो पापीको पापी जानकर अपना उन्मुक्त प्यार दे? वह अवसर मुझे कब मिलेगा, जब मैं श्रीभाईजी-के चरणोंसे लिपटकर रोऊँगा?'

युवक पत्र गीताप्रेस पहुँचाकर घर लौटा और मन-ही-मन उस एकान्त समयकी प्रतीक्षा करने लगा, जब वह श्रीभाईजीके चरणोंपर अपने कुकृत्यको अर्पित कर सके। रात्रिके दूसरे पहरमें एकान्त पाकर वह श्रीभाईजीके पास गया और उनके चरणोंसे लिपट गया। वह फूट-फूटकर रो रहा था और बड़ी ही दीनताभरे शब्दोंमें श्रीभाईजीसे क्षमायाचना कर रहा था। उसने कहा—'बाबूजी, मैंने ही रुपये चुराये थे। ये रुपये लीजिये, ये वे ही रुपये हैं। आपने मेरी रक्षा कर ली, नहीं तो आज न जाने क्या होता। आप ही मेरी नैयाको पार लगायेंगे।' युवकके नेत्रोंसे अजस्र जलधारा बह रही थी।

श्रीभाईजीका भी हृदय भर आया। अपने वरद हाथोंसे उस युवकका मस्तक सहलाते हुए वे बड़ी ही सान्त्वनापूर्ण वाणीमें बोले—'भैया, ये रुपये तुम अपने पास ही रखो। तुम्हारी कोई आवश्यकता थी, तभी तो तुमने रुपये चुराये। भैया! मनुष्य परिस्थितिका गुलाम है। तुम्हारा कोई अभाव था, इससे तुमने चोरी की; परंतु भैया! तुमको अपने अभावकी बात मुझसे कहनी चाहिये थी। मैं तुम्हारे कहनेपर रुपये नहीं देता, तब तुम चोरी करते। अच्छा, कोई बात नहीं; भविष्यमें फिर कभी ऐसी चेष्टा मत करना। तुम्हें इसके लिये कोई कुछ भी नहीं कहेगा। तुम पहलेकी भाँति प्रसन्नतासे रहो।'

युवक फफक-फफककर रोता रहा, उसकी हिचकियाँ बँध गयीं। उसके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकला, नेत्रोंके आँसू उसके हृदय-परिवर्त्तनका संकेत दे रहे थे। उस दिनके पश्चात् युवकमें सर्वथा परिवर्तन आ गया और वह एक पवित्र एवं सम्मानित जीवन व्यतीत करने लगा।

—एक संत-चरण-सेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

देशके कई प्रदेशोंमें भीषण अकाल

इस समय देशके कई प्रान्तों—जैसे विहार, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान आदिमें भीषण अकालकी स्थिति है। उन प्रान्तोंमें मनुष्यों एवं पशुओं—विशेषकर गौओंकी बड़ी शोचनीय दशा है। सरकार एवं समाज-सेवा-परायण संस्थाएँ अकाल-पीड़ित प्राणियोंको बचानेका प्रयत्न कर रही हैं। वास्तवमें बचानेवाले तो भगवान् ही हैं, तथापि यथासाध्य प्रयत्न करना मनुष्यका कर्तव्य है। अतएव जहाँ, जैसे सम्भव हो, उक्त प्रान्तोंके पीड़ित प्राणियोंकी शक्तिभर सेवा-सहायता करनी चाहिये। पीड़ित प्राणियोंकी सेवा भगवत्सेवा ही है।

गीताप्रेसकी ओरसे भी अपने सीमित साधनोंके अनुसार सेवा-कार्य करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। बीकानेर (राजस्थान) आदिमें 'गीताप्रेस, सेवादल'के सेवा-केन्द्रोंमें इस समय लगभग ३,५०० गोवंशकी सेवा हो रही है। वर्षा होनेतक इस सेवाकार्यको चालू रखनेकी आवश्यकता है।

तीन पुरानी पुस्तकें ! प्रकाशित हो गयीं !!

बृहदारण्यकोपनिषद्

सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, ६ रंगीन चित्र, पृष्ठ-संख्या १३८०, सजिल्द मूल्य ६.५०, डाकखर्च २.५०

[महर्षि वेदव्यासप्रणीत]

श्रीनरसिंहपुराण

(मूल संस्कृत हिंदी-अनुवादसहित)

आकार—डबल क्राउन आठपेजी, पृष्ठ-संख्या २७८, सचित्र, मूल्य ३.००, डाकखर्च १.७०, कुल ४.७०।

इस पुराणकी गणना यद्यपि उपपुराणोंमें है, तथापि यह एक परम प्राचीन ग्रन्थ है। यह पुराण सभी प्रकार पवित्र, आकर्षक, धर्म-सदाचारादिके उपदेशोंसे सुसज्जित, भगवद्भक्ति एवं ज्ञान-विज्ञानसे ओत-प्रोत है। भगवान् विष्णुके अवतारोंकी कथा इसमें विस्तारसे प्रतिपादित है। यह 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें निकल चुका है; परंतु पाठकोंके आग्रहवश अब इसे अलगसे प्रकाशित किया गया है। आशा है, श्रेयस्कामी भक्त एवं विद्वान् पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

श्रीरामचरितमानस (सुन्दरकाण्ड)

(मूल—मोटे अक्षरोंमें)

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य .१५, डाकखर्च .१०, कुल .२५।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

केवल ११.५० में एक विशेषाङ्क और २६ साधारण अङ्क

'कल्याण'का पुराना प्राप्य विशेषाङ्क

(पूरी फाइलसहित, पृष्ठ-संख्या १३६२, सुन्दर रंगीन चित्र ३०)

अग्निपुराण-गर्गसंहिता-नरसिंहपुराण-अङ्क

अग्निपुराण अध्याय २०१ से समाप्तितक	**गर्गसंहिता अश्वमधखण्ड एवं माहात्म्य**	**नरसिंहपुराण सम्पूर्ण**

उक्त विशेषाङ्क लेनेवालोंको फाइलके ११ अङ्कोंके अतिरिक्त 'कल्याण'के पुराने मासिक १५ अङ्क बिना मूल्य और दिये जायँगे। जिनमें भक्ति-ज्ञान-वैराग्यसे ओत-प्रोत उत्तम सामग्री है। पृष्ठ-संख्या ९००, सुन्दर रंगीन चित्र १५।

अतः केवल ११.५० मनीआर्डरसे भेजकर भारतीय संस्कृतिका अनुपम ग्रन्थ मँगानेकी कृपा करेंगे। डाकखर्च हमारा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौमाताकी रक्षाके लिये भगवान्से प्रार्थना कीजिये

भारतवर्ष अध्यात्मप्रधान देश है। अतएव प्रत्येक वस्तुके प्रति हमारे यहाँ आध्यात्मिक दृष्टिकोणको ही प्रमुखता दी गयी है। गाय पशु होते हुए भी हम भारतवासियोंके लिये वह 'माता' है, माताके समान पूजनीय है। यही हेतु है कि भगवान्के अवतरणमें ब्राह्मणों (संस्कृतिके रक्षकों), देवताओं एवं संतोंके साथ-साथ गौमाताकी रक्षाको भी प्रमुख हेतु माना गया है—'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।' इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं गोचारण करते हैं। और भी अनेकों राजा-महाराजाओं, ऋषि-मुनियों, विद्वानों आदिने गौकी सेवा एवं रक्षाके लिये अपने प्राणोंतककी बाजी लगायी है।

आजके युगमें भी गौमाताकी सेवा एवं रक्षाके लिये धर्माचार्य, नेतागण, सामान्य जनता आदि प्रायः सभी देशवासी प्रयत्नशील हैं; अनेकों विशाल आन्दोलन भी हुए हैं, जिनमें बड़ी संख्यामें नर-नारियोंने कठोर तपस्या की है। परंतु दुर्भाग्यवश अभीतक गौकी रक्षा नहीं हो पायी है। आज भी हजारोंकी संख्यामें गौमाताका प्रतिदिन वध किया जाता है। गौमातापर होनेवाले इस नृशंस अत्याचारका भीषण फल भी सामने है—चारों ओर अशान्ति, दुःख, क्लेश, रोगों आदिकी वृद्धि हो रही है। अतएव गौमाताकी रक्षाके लिये भौतिक साधनोंका यथावत् आश्रय ग्रहण करते हुए हमें चाहिये कि हम अपने विश्वास, मान्यता आदिके अनुसार प्रतिदिन भगवान्से कातर प्रार्थना करें। साथ ही इस महान् उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अपने-अपने इष्ट देवताके मन्त्रका जप, स्तोत्रका पाठ आदि करें। हमारा विश्वास है कि अन्तर्हृदयकी सचाईके साथ प्रार्थना होनेपर भगवान् ऐसा संयोग अवश्य बनायेंगे, जिससे गोरक्षाका मार्ग सुगम हो जायगा।

—चिम्मनलाल गोस्वामी

श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

(गीताप्रेसद्वारा संचालित सांस्कृतिक शिक्षा-संस्था)

इस संस्थाकी संस्थापना लगभग ५१ वर्ष पूर्व ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रयत्नसे हुई थी। तबसे अबतक इसका कार्य सुचारुरूपसे चल रहा है। इसमें प्रवेश आदिके नियम इस प्रकार हैं—

प्रवेश-आयु—(१) आठसे ग्यारह वर्षतकके द्विज—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ब्रह्मचारी लिये जाते हैं।
(२) सोलह वर्षकी अवस्थातक ब्रह्मचारीको आश्रममें रखा जाता है।

पढ़ाई—संस्कृत—वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयकी प्रथमा परीक्षातक, अंग्रेजी—मैट्रिक (राजस्थान माध्यमिक शिक्षा-परिषद्),

गीता—सम्पूर्ण (उत्तमा परीक्षातक),

वेद—रुद्री, दण्डक, कर्मकाण्ड आदि।

संध्या अनिवार्य—ब्रह्मचारियोंके लिये उपनयन-संस्कारयुक्त होकर त्रिकाल-संध्या, गायत्री-जप तथा अग्निहोत्र करना एवं नियमित व्यायाम करना अनिवार्य है।

शुल्क—(१) ब्राह्मण, क्षत्रिय ब्रह्मचारीसे ३३.०० और वैश्य ब्रह्मचारीसे ३५.०० मासिक। इसमें शिक्षा, वस्त्र, औषध, भोजन, दूध आदि सबका व्यय सम्मिलित है। कम-से-कम छः मासका शुल्क अग्रिम देना पड़ता है। (२) ब्रह्मचारीके प्रवेशकालमें अभिभावकको १००.०० (एक सौ रुपये) जमानतके रूपमें जमा कराने पड़ते हैं, जो पूरी शिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मचारीके आश्रमसे निकलनेपर लौटा दिये जाते हैं; किंतु ब्रह्मचारीको बीचमें निकाल [illegible] रुपये वापस नहीं किये जाते। छः मासतक ब्रह्मचारीको अस्थायी भर्तीमें रखा जाता है, तदनुसार योग्य सिद्ध होनेपर स्थायी भर्तीमें ले लिया जाता है। अपने सुयोग्य बालकको इस आश्रममें भर्ती करानेकी इच्छा रखनेवाले महानुभावोंको चाहिये कि वे निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें। ब्रह्मचारियोंकी भर्ती आषाढ़ कृष्ण ३० तदनुसार ३० जून, १९७३ तक की जायगी।

—मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

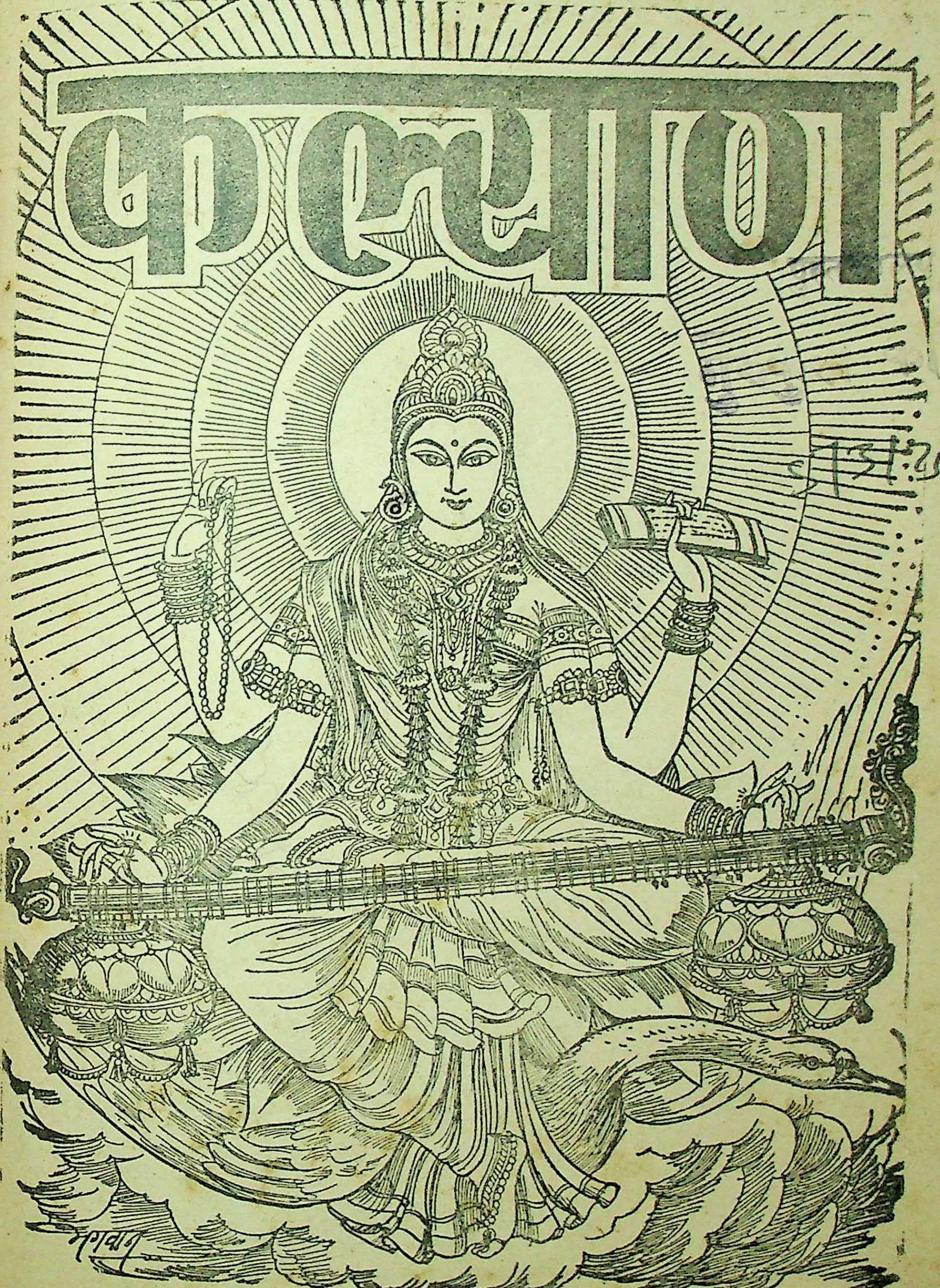

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,६२,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, दिसम्बर १९७४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–श्रीराम-भक्तकी अभिलाषा (श्रीरामकर्णामृत)	१०८९
२–कल्याण ('भाईजी')	१०९०
३–ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश	१०९१
४–एक महात्माका प्रसाद	१०९४
५–शील मिटा तो देश मिट जायगा (संत श्रीविनोबा भावे)	१०९६
६–शान्ति, प्रेम और परमेश्वर (श्रीनोरा कॉर्नवैलके विचार)	१०९८
७–कुब्जाकी प्रतीक्षा (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	१०९९
८–गीताका ज्ञानयोग—६ [श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें और चौदहवें अध्यायोंकी विस्तृत व्याख्या] (स्वामी रामसुखदास)	११०१
९–परमार्थकी पगडंडियाँ [नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के अमृत-वचन]	११०७
१०–दार्शनिक संत-कवि अखा (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी०)	११११
११–भगवान् महावीरका अमर संदेश	१११५
१२–श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	१११६
१३–भक्त पिशाच (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)	१११९
१४–स्मृतिका रहस्य ('साधुवेषमें एक पथिक')	११२३
१५–मौनका महत्त्व (श्री बी० डी० वेणुगोपाल)	११२६
१६–'वह ह्याँ पै दान लेय है' ('प्रेम-भिखारी')	११२८
१७–श्रद्धाञ्जलि [स्वामी श्रीशरणानन्दजीके प्रति]	११२९
१८–प्रत्येक इन्द्रियसे शुभका संग्रह करें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	११३०
१९–श्यामसे (श्रीदेवीलालजी सामर)	११३४
२०–पढ़ो, समझो और करो	११३५

चित्र-सूची

१–माँ वीणापाणि	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२–सरयूतटविहारी श्रीसीताराम	(तिरंगा)	११३५

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—स्वामी रामसुखदास, पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य
सह-सम्पादक—कृष्णचन्द्र अग्रवाल, एम्० ए०
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति ।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि ॥

वर्ष ४८ | गोरखपुर, सौर पौष, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, दिसम्बर १९७४ | संख्या १२ पूर्ण संख्या ५७७

श्रीराम-भक्तकी अभिलाषा

देवेन्द्रनीलनवमेघविनिर्जिताङ्गं
पूर्णेन्दुबिम्बवदनं शरचापहस्तम् ।
सीतासमेतमनिशं शरणं शरण्यं
चेतो मदीयमभिवाञ्छति रामचन्द्रम् ॥

(श्रीरामकर्णामृत २ । ५०)

जिनकी अङ्ग-कान्ति इन्द्रनीलमणि एवं नवीन मेघकी शोभाको भी तिरस्कृत करती है, जिनका मुख पूर्ण प्रकाशित चन्द्रबिम्बके समान आह्लादक है, जिनके हाथोंमें धनुष-बाण हैं, जिनके वामभागमें श्रीसीताजी सुशोभित हैं, मेरा चित्त रात-दिन उन रक्षक (शरण देनेयोग्य) भगवान् श्रीरामके शरणागत होनेकी अभिलाषा करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

भगवान्ने अर्जुनसे कहा है—'मैं सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद्—स्वार्थरहित प्रेमी हूँ'—

'सुहृदं सर्वभूतानाम्' (गीता ५ । २९)

सचमुच भगवान् अकारण प्रेमी हैं—वे नित्य-निरन्तर देते ही रहते हैं और देनेको प्रस्तुत रहते हैं अपने अतुल भण्डारकी कुञ्जी । हम उस कुञ्जीको लेकर उनकी अतुल सम्पत्तिके अधिकारी नहीं हो पाते हैं, इसमें विलम्ब हमारी ओरसे ही है; हम विषयोंके मोहको छोड़कर भगवान्पर निर्भर नहीं होते—अपनी कोई भी स्वतन्त्र रुचि या इच्छा न रखकर अपनेको सर्वथा उन्हींकी मर्जीपर नहीं छोड़ देते । अतएव करना यह है कि हम अपनेको सर्वभावसे भगवान्के चरणोंमें डाल दें, सब कुछ भगवान्को सौंपकर निश्चिन्त हो जायँ और प्रेमपूर्वक उनका स्मरण करें । जागतिक दृष्टिसे जो भी हो जाय, हमें उसकी कुछ भी चिन्ता न हो, जरा भी उद्वेग न हो; हम जरा भी न घबरायें, न विचलित हों । हाँ, उद्वेग-व्याकुलता भी तभी हों, जब आधे पलके लिये भी हम भगवान्को भूलें । भगवान्की तनिक-सी भी विस्मृति हमें सहन न हो; उस समय जलसे निकाली गयी मछलीसे भी अधिक तड़पन हमारे मनमें हो । विषय-सुखकी कामना हो ही नहीं; मनमें एक ही कामना रह जाय कि प्रियतम प्रभुका चिन्तन निरन्तर बना रहे । भगवान्से प्रार्थना भी यही हो—'नाथ ! आपके स्मरण-के बिना यह जीवन व्यर्थ न चला जाय, एक क्षण भी आपका विस्मरण हमें सहन न हो । आप कैसे भी रखें, कहीं भी रखें—यह शरीर कर्मवश कहीं भी जाय, बस, आपकी स्मृति सदा बनी रहे; आप अपना वरद हस्त स्मृतिके रूपमें सदा हमारे मस्तकपर रखे रहें ।' प्राणोंसे भी यही प्रार्थना झंकृत हो—

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम-पद, बढ़ौ अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल कर्म ले जाहिं मोहि जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाँडियो कमठ अंडकी नाँई ॥

हम मान-प्रतिष्ठा, कञ्चन-कामिनी आदिके मोहमें फँसे हैं तथा रात-दिन पाप-तापकी चिन्तासे जल रहे हैं । यह आग भगवान्के ऐश्वर्य, माधुर्य और सौहार्दमें विश्वास होनेसे तत्काल शान्त हो सकती है । वस्तुतः भोगोंमें सुख है ही नहीं; मात्र सुखकी भ्रान्ति है । भगवान्को छोड़कर भोग दुःखमय ही हैं । परंतु इस सत्यपर हमारी आस्था नहीं है । इसीसे हम दुःख-पर-दुःख अनुभव करते हुए भी बार-बार भोगोंकी ओर दौड़ते हैं । यदि हमें तनिक-सा भी विश्वास हो जाता कि भोग परिणाममें विष-स्वरूप है—**'परिणामे विषमिव'**—तो हम उनकी ओर ताकते ही नहीं । अफीम और संखिया जहर हैं—यह हमारा दृढ़ विश्वास है; अतएव उनसे संयुक्त बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट मिठाईको भी हम ताकतेतक नहीं । इसी प्रकार भोगोंका विषमय परिणाम निश्चय हो जानेपर मन उस ओर जायेगा ही नहीं । भोगोंमें विष-बुद्धि होनेके लिये यह आवश्यक है कि भगवान्में हमारा विश्वास दृढ़ हो—उनके चरणोंके प्रेमकी लालसा हमारे हृदयमें प्रबल, प्रबलतर, प्रबलतम हो जाय । जहाँ ऐसा हुआ कि भोगोंकी आसक्ति तथा तज्जनित पाप-ताप सदाके लिये शान्त हो जायँगे ।

हम कैसे भी हों, चिन्ता नहीं; भगवान्का द्वार सदा हमारे लिये खुला है । बस, हम भगवान्की इस वाणीपर विश्वास कर लें—**'सुहृदं सर्वभूतानाम्'**—भगवान् प्राणिमात्रके सुहृद् हैं'—अतएव हमारे भी सुहृद् हैं; और निर्भय एवं निश्चिन्त हो जायँ । 'भाईजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

भगवान्‌के दर्शनकी उत्कण्ठा जाग्रत् कीजिये

प्रायः लोग कहा करते हैं कि यथाशक्ति चेष्टा करनेपर भी भगवान् हमें दर्शन नहीं देते। वे लोग भगवान्‌को 'निष्ठुर', 'कठोर' आदि शब्दोंसे भी सम्बोधित कर देते हैं तथा ऐसा मान बैठते हैं कि उनका हृदय वज्रका-सा है और वे कभी पिघलते ही नहीं। उन्हें क्या पड़ी है कि वे हमारी सुध लें, हमें दर्शन दें और हमें अपनायें……ऐसी ही शिकायत बहुत-से लोगोंकी रहती है। परंतु बात है बिल्कुल उलटी। हमारे ऊपर प्रभुकी अपार दया है। प्रभु देखते रहते हैं कि जरा भी गुंजाइश हो तो मैं प्रकट होऊँ, थोड़ा भी मौका मिले तो भक्तको दर्शन दूँ। साधनाके पथमें वे पद-पदपर हमारी सहायता करते रहते हैं। लोकमें भी यह देखा जाता है कि जहाँ विशेष टान होती है, जिस पुरुषका हमारे प्रति विशेष आकर्षण होता है, उसके पास और सब काम छोड़कर भी हमें जाना पड़ता है। जहाँ नहीं जाना होता, वहाँ प्रायः यही मानना चाहिये कि प्रेमकी कमी है। जब हम साधारण मनुष्योंकी भी यह हालत है, तब भगवान्, जो प्रेम और दयाके अथाह सागर हैं, यदि थोड़ा प्रेम होनेपर भी हमें दर्शन देनेके लिये तैयार रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? भगवान्‌के प्रकट होनेमें जो विलम्ब हो रहा है, उसमें मुख्य कारण हमारी टानकी कमी ही है। प्रभु तो प्रेम और दयाकी मूर्ति ही हैं। फिर वे आनेमें विलम्ब क्यों करते हैं? कारण स्पष्ट है कि हम उनके दर्शनके योग्य नहीं हैं। हममें अभी श्रद्धा और प्रेमकी बहुत कमी है। यदि हम उसके योग्य होते तो भगवान् स्वयं आकर हमें दर्शन देते; क्योंकि भगवान् परमदयालु, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् और सर्वान्तर्यामी हैं। किंतु हमारे अंदर उनके प्रति श्रद्धा और प्रेमकी बहुत ही कमी है। अतएव श्रद्धा और प्रेमकी वृद्धिके लिये हमें उनके तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावको जाननेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेम हो जानेपर वे न मिलें, ऐसा कभी हो नहीं सकता। बाध्य होकर भगवान् अपने श्रद्धालु भक्तकी श्रद्धाको फलीभूत करते ही हैं। जबतक उनकी कृपापर पूरा विश्वास नहीं होता, तबतक प्रभुका प्रसाद हमें कैसे प्राप्त हो सकता है? यदि हमारा यह विश्वास हो जाय कि भगवान्‌के दर्शन होते हैं और अमुक व्यक्तिने भगवान्‌के दर्शन किये हैं तो उसके साथ हमारा व्यवहार कैसा होगा, इसका भी हमलोग अनुमान नहीं कर सकते। फिर स्वयं भगवान्‌के मिलनेसे जो दशा होती है, उसका तो अंदाजा लगाना ही असम्भव है।

रासलीलाके समय भगवान्‌के अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंकी कैसी दशा हुई? एक क्षणके लिये भी उन्हें भगवान्‌का वियोग असह्य हो गया; अतएव बाध्य होकर भगवान्‌को प्रकट होना पड़ा। दुर्वासाके दस हजार शिष्योंसहित भोजनके लिये असमयमें उपस्थित होनेपर उन्हें भोजन करानेका कोई उपाय न दीखनेपर, द्रौपदी व्याकुल होकर भगवान्‌का स्मरण करने लगी और उसके पुकारते ही भगवान् इस प्रकार प्रकट हो गये, मानो वहीं खड़े हों। विश्वास होनेसे प्रायः सभी भक्तोंकी यही अवस्था होती है। भक्त नरसी मेहताको दृढ़ विश्वास था कि उसकी लड़कीका भात भरनेके लिये हरि आयेंगे ही और वे मगन होकर गाने लगे—'बाई आसी-आसी-आसी, हरि घणै भरोसै आसी।' हरिके आनेमें उन्हें तनिक भी शङ्का न थी, अतएव भगवान्‌को समयपर आना ही पड़ा।

भगवान्‌के दर्शनमें जो विलम्ब हो रहा है, उसका एकमात्र कारण दृढ़ विश्वासका अभाव ही है। चाहे जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार निश्चय हो जाय, निश्चय हो जानेपर भगवान् न आयें, ऐसा हो नहीं सकता। वे अपने भक्तको निराश नहीं करते, यही उनकी बान है। यह दूसरी बात है कि बीच-बीचमें हमारे मार्गमें ऐसे विघ्न आ खड़े हों, जिनके कारण हमारा मन विचलित-सा हो जाय। परंतु यदि साधक उस समय सँभलकर प्रभुको दृढ़तापूर्वक पकड़े रहे और विघ्नोंसे प्रह्लादकी भाँति न घबराये तो उसका काम अवश्य ही बन जाता है। प्रभु तो हमारी श्रद्धाको पक्की करनेके लिये ही कभी निष्ठुर और कभी कोमल व्यवहार और व्यवस्था किया करते हैं।

वास्तविक श्रद्धा इतनी बलवती होती है कि भगवान्‌को बाध्य होकर उस श्रद्धाको फलीभूत करनेके लिये प्रकट होना पड़ता है। पारस यदि पारस है और लोहा यदि लोहा है तो स्पर्श होनेपर सोना होगा ही। उसी प्रकार श्रद्धावान्‌को भगवान्‌की प्राप्ति होती ही है। श्रद्धालु भक्तकी कमीकी पूर्ति करके भगवान् उसके कार्यको सिद्ध कर देते हैं। श्रद्धा होनेपर सारी कमीकी पूर्ति भगवान्‌की कृपासे अपने-आप हो जाती है। हमलोगोंमें श्रद्धा-प्रेमकी कमी मालूम होती है, इसलिये भगवान् प्रकट नहीं होते। अन्यथा उनके दयालु और प्रेमपूर्ण स्वभावको देखते हुए तो वे दर्शन दिये बिना रह सकें, ऐसा हो नहीं सकता। रावणके द्वारा सीताके हरे जानेपर उनके लिये श्रीराम ऐसे व्याकुल होते हैं, जैसे कोई कामी पुरुष अपनी प्रेयसीके लिये होता है। इसका कारण क्या था? कारण यही था कि सीता एक क्षणके लिये भी श्रीरामके बिना नहीं रह सकती थीं। भगवान् कहते हैं—'जो मुझको जैसे भजते हैं, उनको मैं भी वैसे ही भजता हूँ'—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

भगवान् तो प्रकट होनेके लिये तैयार हैं। वे मानो चाहते हैं कि लोग मुझसे प्रेम करें और मैं प्रकट होऊँ। सीताका जैसा उत्कट प्रेम भगवान् श्रीरामचन्द्रमें था, वैसा ही प्रेम यदि हमलोगोंका प्रभुमें हो जाय तो प्रभु हमारे लिये भी प्रकट होनेको तैयार हैं। जो हरिके लिये लालायित है, उसके लिये हरि भी वैसे ही लालायित रहते हैं।

प्रभुमें श्रद्धा-प्रेम बढ़े, उनका चिन्तन बना रहे—एक पलके लिये भी उनका विस्मरण न हो, ऐसा ही लक्ष्य हमारा सदा बना रहना चाहिये। हमें वे चाहे जैसे रखें और चाहे जहाँ रखें, उनकी स्मृति अटल बनी रहनी चाहिये। उनकी राजीमें ही अपनी राजी, उनके सुखमें ही अपना सुख मानना चाहिये। प्रभु यदि हमें नरकमें रखना चाहें तो हमें वैकुण्ठकी ओर भी नहीं ताकना चाहिये और नरकमें वास करनेमें ही परम आनन्द मानना चाहिये। सब प्रकारसे प्रभुकी शरण हो जानेपर फिर उनसे इच्छा या याचना करना नहीं बन सकता। जब प्रभु हमारे और हम प्रभुके हो गये, तब फिर बाकी क्या रहा? हम तो प्रभुके बालक हैं। माँ बालकके दोषोंपर ध्यान नहीं देती। उसके हृदयमें बालकके लिये अपार प्यार भरा रहता है। प्रभु यदि हमारे दोषोंकी ओर दृष्टि डालें तो हमारा कहीं पता ही न लगे। प्रभु तो इस बातके लिये सदा उत्सुक रहते हैं कि कोई रास्ता मिले तो मैं प्रकट होऊँ। किंतु हम लोग ही उनके प्रकट होनेमें बाधक हो रहे हैं। देखनेमें तो ऐसी बात नहीं मालूम होती, ऊपरसे हम उनके दर्शनके लिये लालायित-से दीखते हैं, परंतु भीतरसे उन्हें पानेकी लालसा कहाँ है? मुँहसे हम भले ही न कहें कि 'अभी ठहरें', परंतु हमारी क्रियासे यही सिद्ध होता है। प्रभुके प्रकट होनेमें विलम्ब सहन करना ही उन्हें ठहराना है। प्रभुसे हमारा बिछोह इसीलिये हो रहा है कि उनके वियोग (बिछोह)में हमें व्याकुलता नहीं होती। जब हम ही उनका वियोग सहनेके लिये तैयार हैं और कभी उनके वियोगमें हमारे मनमें व्याकुलता या दुःख नहीं होता तो प्रभुको ही हमारी परवा क्यों होने लगी? यदि हमारे भीतर तड़पन होती और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसपर भी वे न आते तो हमें कहनेके लिये गुंजाइश थी। खुशीसे हम उनके बिना जी रहे हैं। इस हालतमें वे यदि न आयें तो इसमें उनका क्या दोष? प्रकट होनेके लिये तो वे तैयार हैं, पर जबतक हमारे अंदर उत्सुकता नहीं होती, तबतक वे आयें भी कैसे? उनका दर्शन प्राप्त करनेके लिये आवश्यकता है—प्रबल चाहकी। वह चाह कैसी होनी चाहिये, इस बातको प्रभु ही पहचानते हैं। जिस चाहसे वे प्रकट हो जाते हैं, उसी चाहको असली चाह समझनी चाहिये। अतः जबतक वे न आयें, चाह बढ़ती ही रहे। घड़ा भर जानेपर पानी अपने-आप ऊपरसे बह चलेगा।

भगवत्प्रेमकी अवस्था ही अनोखी होती है। भगवान्का प्रसङ्ग चल रहा है, उनकी मधुर चर्चा चल रही है, उस समय यदि स्वयं भगवान् भी आ जायँ तो प्रसङ्ग चलाता रहे; उसे भङ्ग न होने दे। प्रियतमकी चर्चामें एक अद्भुत मिठास होती है, जिसकी चाट लग जानेपर और कुछ सुहाता ही नहीं। प्रीतिकी रीति अनोखी है। प्रभुकी प्रीतिका रस जिसने पा लिया, उसे और पाना ही क्या रहा! प्रभु तो केवल प्रेम देखते हैं। प्रभुका प्रेम स्वयं प्रभुसे बढ़कर है। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रभुके गुण, प्रभाव, तत्त्व तथा रहस्यसहित ध्यानमें तन्मय होकर प्रभुके प्रेमामृतका पान करना ही प्रभुकी प्रीतिका आस्वादन करना है—हरिके रसमें डूबना है।

दो प्रेमियोंमें यदि न बोलनेकी शर्त लग जाय तो अधिक प्रेमवाला ही हारेगा। पति-पत्नीमें यदि न बोलनेका हठ हो जाय तो वही हारेगा, जिसमें अधिक स्नेह होगा। इसी प्रकार जब भक्त और भगवान्में होड़ होती है तो भगवान्को ही हारना पड़ता है; क्योंकि प्रभुसे बढ़कर प्रेमी कोई नहीं है। उन्हें इतना व्याकुल कर देना चाहिये कि हमारे बिना वे एक क्षण भी न रह सकें। फिर उन्हें हार माननी ही पड़ेगी—आनेके लिये बाध्य होना ही पड़ेगा। हमें व्यवस्था ही ऐसी कर देनी चाहिये; प्रेमसे उन्हें मोहित कर देना चाहिये; फिर तो धक्का देनेपर भी वे नहीं हटेंगे।

प्रभुके साथ हमारा व्यवहार वैसा ही होना चाहिये, जैसा स्त्रीका अपने पतिके साथ। जैसे स्त्री अपने प्रेम और हाव-भावसे पतिको मोहित कर लेती है, वैसे ही हमें भगवान्को अपने प्रेम और आचरणसे मोहित कर लेना चाहिये। उन्हें अपनेमें आसक्त भी कर ले और खुशामद भी न करे। फिर तो वे एक पलके लिये भी हमारे द्वारपरसे हटनेको नहीं। वे प्रेमके भिखारी प्रेमके बंदी बने बैठे हैं, जायँगे कहाँ? पति पत्नीके प्यारको ठुकरा भी कैसे सकता है? इसी प्रकार प्रभु भी अपने भक्तके प्यारका तिरस्कार कैसे कर सकते हैं? ऐसा हो जानेपर उनसे हमारे बिना रहा ही कैसे जायगा? वे तो सदा प्रेमके अधीन रहते हैं। एक बार प्रभुको अपने प्रेम-पाशमें बाँध ले, फिर तो वे सदाके लिये बँध जाते हैं।

प्रभुको वशीभूत करनेका ढंग स्त्रीसे सीखना चाहिये। इसी प्रकारका सम्बन्ध उनसे जोड़ना चाहिये। यही माधुर्य-भाव है। बाहरका वेष न बदले, भीतर प्रेमकी प्रगाढ़तामें उन्हींका बन जाय। यही उन्हें प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय है।

प्रभु बड़े दयालु और उदारचित्त हैं, इसलिये थोड़े प्रेमसे भी वे प्राप्त हो सकते हैं; किंतु हमलोगोंको उपर्युक्त प्रेमको लक्ष्य बनाकर ही चलना चाहिये; क्योंकि उच्च लक्ष्य बनाकर चलनेसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। यदि लक्ष्यके अनुसार पूर्ण प्रेम हो जाय, तब तो अत्यन्त सौभाग्यकी बात है। ऐसे पुरुष तो आदर्श एवं दर्शनीय समझे जाते हैं। उनके कृपा-कटाक्षसे दूसरे भी कृतकृत्य हो जाते हैं, फिर उनकी तो बात ही क्या!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

सर्वदा विश्वकी सेवा तथा अनन्तकी प्रीति होकर रहो। विवेक-विरोधी कर्मका त्याग हो जानेपर कर्तव्य-परायणता स्वतः आ जाती है और फिर जो करना चाहिये, वह होने लगता है, जिसके होनेसे विद्यमान रागकी निवृत्ति हो जाती है। यदि किये हुएके फलमें आसक्ति न हो तो वही कर्तव्य-कर्म अपने प्रेमास्पदकी पूजा हो जाती है। इस दृष्टिसे कर्तव्यपरायणता सफलताकी कुञ्जी है, किंतु जबतक साधक विवेक-विरोधी कर्मका त्याग नहीं करता, तबतक स्वाभाविक-रूपसे कर्तव्यपरायणता नहीं आती। ऊपरसे भरी हुई भलाई अभिमानको जन्म देती है; अभिमानकी भूमिमें ही समस्त दोष उत्पन्न होते हैं। जानी हुई बुराईके त्यागसे भलाई स्वतः प्रकट होती है और फिर सभी दोष सदाके लिये मिट जाते हैं—भूतकालमें की हुई बुराइयोंकी स्मृति भी नष्ट हो जाती है; क्योंकि सर्वांशमें दोषोंका अन्त होनेपर निरभिमानता अपने-आप आती है, जिसके आते ही भूतकालकी घटनाओंका प्रभाव मिट जाता है। वर्तमान तो सभीका निर्दोष है; उस निर्दोषताको सुरक्षित रखनेके लिये की हुई भूलको न दुहराना ही साधन है।

किसी भी साधकको न तो विवेक-विरोधी कर्म ही करना है और न वह करना है, जिसके करनेकी उसमें सामर्थ्य नहीं है। आदर तथा प्यार सभीको देना है। आदर और प्यारकी भूख सभीमें रहती है। वस्तु तो व्यक्तिके भाग्यसे मिलती है। अतः आदर तथा प्यार देना ही सर्वोत्कृष्ट सेवा है। यह सेवा वे ही साधक कर पाते हैं, जो अनेक वेषोंमें उस एक प्रभुकाही दर्शन करते हैं। कर्मकी विधि भिन्न-भिन्न प्रकारकी होगी, किंतु कर्म-भेद होनेपर भी प्रीतिकी एकता ही रहेगी। यही सेवाकी सफलता है।

किसीमें ममता न हो; अपने प्रेमास्पदमें आत्मीयता हो। आत्मीयता प्रियताकी और प्रियता अनन्त रसकी प्रतीक है। अनन्त रसकी भूख ही अपनी भूख है। अतः प्रियतामें ही पूर्णता है। कोई भी वस्तु अपनी नहीं है; उन्हींकी है, जिनकी सारी सृष्टि है। उन्हींके नाते प्राप्त वस्तुका सदुपयोग करना है। प्राप्त वस्तुके सदुपयोगमें ही आवश्यक वस्तुकी प्राप्ति निहित है। अप्राप्त वस्तुकी कामनाने ही प्राणीको वस्तुओंकी दासतामें आबद्ध कर दिया है। वस्तुओंकी दासता रहते हुए न तो वस्तुओंका सदुपयोग ही हो पाता है और न दरिद्रताका नाश ही। इस रहस्यको जान लेनेपर सच्चा साधक प्राप्त वस्तुका सदुपयोग करते हुए अप्राप्त वस्तुकी कामनासे रहित हो जाता है। कामनाका नाश हो जानेपर प्रत्येक प्रवृत्तिके अन्तमें अपने-आप चिर-शान्तिका सम्पादन होने लगता है। शान्ति सामर्थ्य तथा स्वाधीनताकी प्रतीक है। स्वाधीनतामें ही दिव्य चिन्मय जीवन निहित है।

जब प्रत्येक कर्तव्य-कर्म अपने प्यारेकी पूजा है, तब यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता कि जो कार्य सामने है, नहीं होगा। वह अवश्य होगा; क्योंकि जिसकी पूजा करनी है, वह समर्थ है, अपना है तो फिर भय तथा चिन्ताके लिये स्थान ही कहाँ है! असावधानी साधनमें बाधक है। अतः विवेकपूर्वक प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करते रहो, बस, बेड़ा पार है।

* * *

जो नहीं कर सकते हो, उसके न करनेसे चिन्तित क्यों होते हो? जो करना चाहिये, उसके करनेसे निश्चिन्तता आती है; वही निश्चिन्तता जो नहीं कर सकते हो, उसके नहीं करनेपर भी आनी चाहिये। चिन्तित रहनेसे प्राप्त सामर्थ्यका ह्रास होता है और कोई लाभ नहीं होता तथा निश्चिन्त रहनेसे प्राप्त सामर्थ्यका सदुपयोग और आवश्यक सामर्थ्यकी अभिव्यक्ति होती है। इस दृष्टिसे निश्चिन्त रहना अनिवार्य है। प्रत्येक दशामें शान्त तथा प्रसन्न रहनेका स्वभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाओ । सब प्रकारसे सर्वसमर्थ प्यारे प्रभुके होकर रहो, यही सफलताकी कुञ्जी है ।

* * *

रोग प्राकृतिक तप है, और कुछ नहीं । रोगका वास्तविक मूल तो किसी-न-किसी प्रकारका राग ही है; क्योंकि रागरहित करनेके लिये ही रोगके स्वरूपमें अपने प्यारे प्रियतमका मिलन होता है । हम प्रमादवश उन्हें पहचान नहीं पाते और रोगसे भयभीत होकर उससे छुटकारा पानेके लिये आतुर तथा व्याकुल हो जाते हैं, जो वास्तवमें देहाभिमानका परिचय है, और कुछ नहीं ।

* * *

मानव-जीवन इतना सुन्दर जीवन है, इतना अलौकिक जीवन है कि प्रत्येक भाई-बहन अपने जाने हुए दोषका त्याग करके निर्दोष हो सकता है—अवश्य हो सकता है । परंतु हो तो तब, जब वह यह स्वीकार करे कि हमारे जीवनमें जो दोष घट रहा है, उसका दायित्व हमारे ऊपर है । जिसका दायित्व हम अपने ऊपर मान लेते हैं, उसको मिटानेके लिये एक साहस हममें पैदा हो जाता है, एक बल पैदा हो जाता है और उसके लिये हम तत्पर हो जाते हैं । परंतु अपनेद्वारा होनेवाले दोषोंका कारण हम दूसरेको मान लेते हैं । और कुछ लोग तो यहाँतक कहने लगते हैं कि 'हम करें क्या ? हमको क्रोध आता ही नहीं; परंतु उन्होंने इतनी बेसमझीकी बात की कि फिर क्रोध आना ही था; परिस्थितिने हमें मजबूर कर दिया ।' इतना ही नहीं, बड़े-बड़े समझदार भाई-बहन ऐसा सिद्धान्त बना बैठे हैं कि 'भाई ! करें क्या ? मानव जो है, कमजोरियोंसे बना है ।' परंतु विचार करें—मानव कमजोरियोंसे बना है या कमजोरियाँ मिटानेके लिये बना है ? जिस प्रकार हमारा यह सिद्धान्त—'मानव कमजोरियोंसे बना है—भ्रमात्मक है, उसी प्रकार यह मानना भी निराधार है कि 'क्या करें, परिस्थितिके अधीन हैं ।' परंतु परिस्थितिके सदुपयोगमें क्या पराधीनता है ? इस प्रकार अपने जाने हुए असत्यके त्यागके सम्बन्धमें जो हम अनेक प्रकारकी मनगढंत कल्पनाएँ बनाते रहते हैं, वे हमें निर्दोष होनेके लिये उत्साहित नहीं होने देतीं—तत्पर नहीं होने देतीं । इसलिये इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह किसी भी वर्ग या विचार-धाराका हो, यदि उसे सफलता प्राप्त करनी है, यदि उसे सत्यके साथ अभिन्न होना है तो उसके लिये यह अनिवार्य है कि प्रतिदिन सोनेसे पहले और जगनेके बाद सबसे पहले वह व्यक्तिगत सत्सङ्ग कर ले । किसी सत्पुरुषके पास जाना अथवा किसी सद्-ग्रन्थका अध्ययन भी सत्सङ्ग है । लेकिन सबसे मुख्य और सबसे उत्तम सत्संग तो यह है कि 'जो ज्ञान आपको मिला है, उसके प्रकाशमें आप अपने जाने हुए दोषका त्याग, अपने जाने हुए असत्यका त्याग करनेका प्रयत्न करें, दृढ संकल्प करें ।'

* * *

प्रत्येक कर्म आस्तिक दृष्टिसे पूजा है, भौतिक दृष्टिसे चिर-शान्ति तथा सुन्दर समाजके निर्माणमें हेतु है और आध्यात्मिक दृष्टिसे राग-शून्यता, अर्थात् वीत-रागता प्राप्त करनेका साधन है । राग-रहित होते ही चिर-शान्ति, स्वाधीनता, अमरत्व तथा परम प्रेमकी अभिव्यक्ति स्वतः होती है । अतः प्रत्येक कर्म साधनरूप है । अपने उद्देश्यपर दृष्टि रखते हुए प्रत्येक कर्म पवित्र भावसे, पूरी शक्ति लगाकर, ईमानदारीसे करना चाहिये । यही सफलताकी कुञ्जी है ।

* * *

निष्क्रिय दशामें यदि अनावश्यक कार्यका चिन्तन न हो तो साधकको बड़ी ही सुगमतापूर्वक वर्तमान कार्यको पवित्र भावसे विधिवत् करनेसे उसके अन्तमें स्वतः शान्तिका सम्पादन हो जाता है । किसी कार्यका चिन्तन नया कर्म नहीं है, अपितु किये हुए कार्यका परिचय है । उसका समर्थन अथवा विरोध न किया जाय तो वह चिन्तन स्वतः निर्जीव हो जाता है और वास्तविक स्मृति जाग्रत् होती है, जिसके होते ही इन्द्रिय-मन-बुद्धि आदि विलीन हो जाते हैं । स्मृति ही साधकका जीवन हो जाता है । स्मृति जिसकी है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे देश-कालकी दूरी नहीं होती । उसकी प्राप्ति वर्तमानमें ही हो सकती है । स्मृति प्रीति होकर प्रियतमसे अभिन्न हो जाती है और जिज्ञासा तत्त्वज्ञानसे । इस दृष्टिसे लक्ष्यकी प्राप्तिमें प्रत्येक साधक सर्वदा स्वाधीन तथा समर्थ है । साधकके जीवनमें असफलताके लिये कोई स्थान ही नहीं है । असफलताका मूल कारण साधककी एकमात्र अपनी भूल है । यह सर्वमान्य सत्य है कि प्रत्येक कार्यका आरम्भ तथा अन्त होता है । कार्यके अन्तमें साधक और साध्यमें दूरी, भेद तथा भिन्नता नहीं रहती, अर्थात् साधकको योग, बोध और प्रेमकी प्राप्ति होती है । यह मङ्गलमय विधान है, पर यह रहस्य तबतक स्पष्ट नहीं होता, जबतक साधकका प्रत्येक कार्य साधनमय और साध्यके लिये न हो । जब कर्ता एक है तो लक्ष्य भी एक है; परिस्थितिकी भिन्नताके कारण कार्योंमें भिन्नता है । भिन्न-भिन्न कार्य एक ही भावसे एक ही लक्ष्यके लिये करने चाहिये । प्रभु-विश्वासीका प्रत्येक कार्य पूजा है और अध्यात्मवादीका प्रत्येक कार्य साधना है तथा भौतिकवादीका प्रत्येक कार्य कर्तव्य है । पूजाका अन्त प्रेममें, साधनाका अन्त साध्यकी प्राप्तिमें और कर्तव्यका अन्त नित्ययोगमें स्वतः होता है । योगकी पूर्णता बोधमें और बोधकी पूर्णता प्रेममें स्वतः होती है । अतएव समस्त साधनोंकी परावधि साध्यकी अगाधप्रियतामें ही होती है, जो मानव-जीवनका परम लक्ष्य है ।

* * *

प्राप्त परिस्थितिके सदुपयोगमें मानवमात्र सर्वदा स्वाधीन है, परिस्थितियोंके परिवर्तनमें सभी पराधीन हैं । इस पराधीनतामें भी प्राणीका विकास ही निहित है; क्योंकि यह अनन्तका मङ्गलमय विधान है । विधानके आदरमें ही प्राणीका विकास है । इस दृष्टिसे जो कुछ स्वतः हो रहा है, उसमें प्रसन्न रहना ही हितकर है । पर इस रहस्यको वे ही साधक जान पाते हैं, जिन्होंने मानव-जीवनके महत्त्वको भलीभाँति जान लिया है । प्रत्येक परिस्थिति साधन-सामग्री है, जीवन नहीं । साधन-सामग्री चाहे जैसी हो, उसके सदुपयोग-से सफलता अवश्य होती है । जब मानव अपनी माँगको अपने ज्ञानसे जान लेता है, तब परिस्थितिके अनुसार जो उसपर दायित्व है, उसको वह अवश्य पूरा कर डालता है । दायित्वको पूरा करते ही माँग अपने-आप पूरी हो जाती है । इस दृष्टिसे अपनी माँगका ज्ञान और दायित्वको पूरा करना ही सफलताकी कुञ्जी है ।

अपने जाने हुए असत्‌का त्याग ही वास्तवमें सत्‌का सङ्ग है । सत्‌का सङ्ग होते ही असाधनका नाश और साधनकी अभिव्यक्ति स्वतः हो जाती है और फिर साधक, साधन और साध्यमें दूरी तथा भेद नहीं रहता, यह निर्विवाद सत्य है । विवेक-विरोधी कर्म, सम्बन्ध तथा विश्वासके त्यागमें ही कर्तव्यपरायणता, असङ्गता और शरणागति निहित है । कर्तव्यपरायणतासे जीवन जगत्‌के लिये, असङ्गतासे जीवन अपने लिये और शरणागतिसे जीवन प्रभुके लिये उपयोगी सिद्ध होता है, यह मानव-जीवनकी महिमा है ।

* * *

मानव-जीवन मन्दभागीको नहीं मिलता । कारण कि मानव-जीवन अनन्तकी अहैतुकी कृपासे निर्मित है । जब मानव अपने महत्त्वको भूल जाता है, तब वह वस्तु, अवस्था एवं परिस्थितियोंका दास बन जाता है और फिर अपनेमें अनेक प्रकारके अभावोंका आरोप कर पराधीनता तथा जडतामें आबद्ध हो जाता है । यह अपना ही बनाया हुआ दोष है । निज विवेकके आदरमें ही अविवेकका नाश है । अविवेकके अन्तमें ही असाधन-का अभाव है । असाधनके अभावमें ही साधनकी अभिव्यक्ति स्वतः होती है, जिसके होते ही अपने साध्यमें अगाध, अनन्त, नित-नव प्रियता जाग्रत् होती है, जो प्रेमास्पदको रस देनेमें समर्थ है । अतः विवेकवान् होकर जीवनकी पूर्णता प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील मिटा तो देश मिट जायगा

(संत श्रीविनोबा भावे)

भारतमें नारीका बहुत ऊँचा आदर है; उसे हमारे यहाँ 'महिला' कहते हैं। मुझे दुनियाकी २०-२५ भाषाओंका ज्ञान है, परंतु नारीके लिये इतना उन्नत शब्द उनमेंसे किसी भी भाषामें नहीं है। इस शब्दसे ही व्यक्त होता है कि नारीके बारेमें भारतके क्या विचार हैं और उससे क्या अपेक्षाएँ हैं। परंतु नारीका इतना गौरव होते हुए भी आज नारीकी तरफ लोग देखते हैं, कामिनीके तौरपर। वह काम-पूर्तिका साधन मानी जाती है। यह मातृशक्तिका सबसे ज्यादा अपमान है। इसलिये नारी-शक्तिको यदि बढ़ाना है तो काम-वासना-प्रेरक जो-जो चीजें हैं, उनपर प्रथम प्रहार करना होगा। इस समय भारतमें चरित्र-भ्रंशका भयंकर आयोजन हो रहा है। उसका विरोध और प्रतीकार यदि बहनें नहीं करेंगी तो फिर परमेश्वर ही भारतको बचाये, यही कहनेकी नौबत आयेगी। आज शहरोंकी दशा बड़ी खतरनाक है।

माताओंको समझना चाहिये कि अगर देशका आधार शीलपर नहीं रहा तो देश टिक नहीं सकता। शिवाजी महाराजकी सुप्रसिद्ध कहानी है कि उनके एक सरदारने लड़ाई जीती और वे एक यवन-स्त्रीको शिवाजी महाराजके पास ले आये। शिवाजी महाराजने उसकी तरफ देखकर कहा—'माँ! अगर मेरी माता तुझ-जैसी सुन्दर होती तो मैं भी सुन्दर बनता।'—ऐसा कहकर उन्होंने उसे आदरपूर्वक विदा किया। ऐसी संस्कृति जिस देशमें चली, उस देशमें इतना चारित्र्य-भ्रंश हो और सारे लोग उसे देखते रहें, यह कैसे हो सकता है।

मैंने इन्दौरमें दीवालोंपर इतने भद्दे, घृणित और बीभत्स चित्र देखे थे कि जिनके स्मरणसे आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। माता-पिता इन चित्रोंको कैसे सहन करते हैं? उन पोस्टरोंको देखकर मेरी आत्मामें गहरी ग्लानि हुई। ऐसे पोस्टरोंसे तो गृहस्थाश्रमकी बुनियाद ही उखाड़ी जा रही है। बच्चा अक्षर सीखता है तो एकाग्र होकर पढ़ता है और चित्र देखता है। ऐसे अपरिपक्व मनके बच्चेपर इन गंदे चित्रोंका क्या संस्कार होता होगा? पोस्टर यानी बच्चोंके लिये 'फ्री एंड कम्पलसरी एज्यूकेशन इन सेक्सयुऑलॉजी' (विषया-सक्तिकी मुफ्त और लाजिमी तालीम) है। ऐसे पोस्टर हटने चाहिये। यदि कानूनसे नहीं हट सकते हैं तो धर्मसे हटें। धर्म कानूनसे ऊँचा होता है, बढ़कर होता है। जो कानून धर्मका रक्षण नहीं कर सकता, उस कानूनको दुरुस्त करनेके लिये कानून-भङ्ग करनेकी जरूरत महसूस होती है।

ये पोस्टर रास्तेमें होते हैं और हरेककी आँखोंपर उनका आक्रमण होता है। शहरोंमें नागरिकों और बहनोंको शर्मिंदा होना पड़ता है नीची निगाहें करनी पड़ती हैं। आम रास्तेपर चलनेवाले नागरिकोंकी आँखोंपर हमला करनेका किसीको क्या हक है? अगर किसीको ऐसे पोस्टर लगाने हों तो अपने रंगमहलोंमें लगायें। हर एक नागरिकको अपने कर्तव्यके बारेमें जागरूक रहना चाहिये। ऐसी लाचारी बरदाश्त नहीं करनी चाहिये। इसके खिलाफ सत्याग्रह करना चाहिये। अशोभनीय पोस्टरोंको हटाना चाहिये।

इन्दौरमें जब बहनें सिनेमावालोंके पास गयीं तो उन्होंने बहनोंसे पूछा था कि "आपकी 'अशोभनीय'की व्याख्या क्या है?" तो बहनोंने अत्यन्त उचित जवाब दिया था कि "जिन पोस्टरोंको माता-पिता अपने बच्चोंके साथ नहीं देख सकते, वे 'अशोभनीय' माने जायँगे।" अपने-अपने शहरकी ऐसी एक समिति बने, जो पोस्टरों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बारेमें निर्णय दे। फिर थियेटरके मालिकोंको उन्हें वहाँसे हटानेके लिये समझाया जाय। उसपर भी वे न हटें तो सत्याग्रह करना होगा।

वैसे तो मैं इसको 'सत्याग्रह' नाम भी देना नहीं चाहता। कारण, यह 'सत्याग्रह' नहीं 'स्वच्छताग्रह' है। मेरे मकानके सामने मरा हुआ जानवर पड़ा हो और उसकी लाशसे बदबू आती हो तथा उस जानवरका मालिक उसे वहाँसे न हटाता हो और मैं उसे हटा दूँ तो क्या यह 'सत्याग्रह' कहा जायगा? 'अशोभनीय पोस्टर रखनेसे समाजका कल्याण होता है'—ऐसा कहनेवाला कोई पक्ष तो होगा नहीं। यदि ऐसा विचार रखा जाता हो कि इस प्रकारके शिक्षणसे बच्चे भावी जीवनके लिये तैयार होते हैं, इसलिये ऐसे पोस्टर जाहिरमें रखना जरूरी है, तब तो ऐसे समाजमें रहनेके बजाय मैं मरना या जंगलमें चला जाना ज्यादा पसंद करूँगा। इन पोस्टरोंमें बच्चोंपर आक्रमण है, यह अन्याय है; गृहस्थ-धर्मपर इनसे आक्रमण होता है; अतएव उन्हें हटाना हमारा कर्तव्य है।

अशोभनीय पोस्टर हटाकर बहनोंको शील-रक्षाका कार्य करना चाहिये। हम अश्लील पोस्टर तो कहीं भी बरदाश्त नहीं करेंगे, परंतु अशोभनीय पोस्टर भी नहीं सहन करेंगे। यह सम्भव है कि हमारे देशमें जो अशोभनीय होगा, वह लंदनमें शोभनीय माना जाता हो। परंतु हरेक देशकी अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न सभ्यता और संस्कृति होती है। उसके मुताबिक चलनेका हरेकका अधिकार होता है। इस तरह अशोभनीय पोस्टर या चित्रको हम बरदाश्त करें तो वह अनुचित है।

* * * *

शील और शान्ति तथा संस्कृति और सभ्यताकी रक्षाका कार्य बहनोंका है और इसके लिये उन्हें सारे भारतमें घूम-घूमकर लोगोंको समझाना चाहिये कि सिनेमाद्वारा गंदे पोस्टरोंके माध्यमसे कितना निर्लज्ज अत्याचार चल रहा है। आज मातृत्वपर खुले आम इतना प्रहार होता रहे और हम सब खुले आम उसे सहन करते रहें? मैं नहीं मानता कि इससे प्रगतिकी राह खुली होगी। केवल भौतिक उन्नतिसे देश ऊँचा नहीं उठता, जब शील ऊँचा उठता है, तभी देश उन्नति करता है। इसलिये मैं बहनोंसे कहता हूँ कि अब देशकी शील-रक्षा उनके हाथमें है।

शान्ति, प्रेम और परमेश्वर

(श्रीनोरा कॉर्नवैलकी रचना 'Way and the Way' का भावानुवाद)

मनुष्यने चिरकालतक शान्तिकी खोज की;
उसका अशान्त हृदय शान्तिका रूप समझनेमें असफल रहा;
समाधानके लिये उसने युद्धके तरीके अपनाये,
उनसे नयी-नयी उलझनें आती गयीं;
शान्तिकी प्राप्तिका कोई पथ ही नहीं है;
स्वयं शान्ति ही पथ है!
मनुष्यने चिरकालतक प्रेमकी खोज की;
उसका स्वार्थी हृदय अपने ही सगे-सम्बन्धियोंकी
मोह-ममतामें विमुग्ध होनेसे समाधान नहीं पा सका;
उसकी समझमें यह बात आ ही न सकी
कि सांसारिक सम्बन्ध प्रेमकी अनुभूतिमें बाधक हैं,
स्वयं प्रेम ही उसकी अनुभूतिका पथ है!
मनुष्यने चिरकालतक परमेश्वरकी खोज की;
उसका निराश—विरह-पीड़ित हृदय विश्राम न पाकर
समाधानके लिये भय, युद्ध और प्रभावकारी वचनोंका आश्रय लेता रहा;
वह नीरव-क्षीण स्वर—'मैं हूँ'को सुनने-समझनेके लिये कदापि न ठहर सका;
परमेश्वरमें संस्थितिका कोई साधन ही नहीं है,
स्वयं परमेश्वर ही साध्य एवं साधनका पथ है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुब्जाकी प्रतीक्षा

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

उस दिन राजपथपर उन नीलसुन्दरने कहा था—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा।' उन्होंने वचन दिया था। उनकी वह मुसकान, वह बंक-विलोकन, कमलनयनका वह त्रिभुवन-मोहन रूप और वह मधुर वाणी!

उनका उस दिनका वह चिबुक-स्पर्श—लगता है कि वे प्राणोंको आन्दोलित करती अँगुलियाँ अब भी चिबुकपर ही लगी हैं।

कंस मारा गया—उस मूर्तिमान् अहंकारको उन्हीं भुवन-सुन्दरने मार दिया। सैरन्ध्रीके लिये तो कंस तभी मर गया, जब हँसकर उन वनमालीने उससे अङ्गराग माँगा था। कंस—एक क्षुद्र घृणित कीट—उसकी स्मृति कुब्जाके मनमें तो फिर क्षणभरको भी नहीं आयी। वह दासी थी, दासी है—सदा-सदाकी दासी; किंतु उन मयूर-मुकुटीकी दासी। कंसकी दासी थी कभी—वह कोई भारी अशुभ था, जो कूबड़ बनकर उसकी कटिपर बैठा था। वह तो उनके स्पर्शसे ही अदृश्य हो गया। अब तो वह बिना मूल्य क्रीत उनकी—केवल उनकी दासी है—जन्म-जन्मके लिये दासी है।

'मैं तुम्हारे गृह आऊँगा।'—उन्होंने उस दिन वचन दिया था। कुब्जा कहाँ महारानी है कि उसे बुलानेको शिबिका भेजनी पड़ती! वह स्वयं चली जाती—एक नहीं, सहस्र-सहस्र बार पैरों चलकर उनके द्वारके चक्कर काटती। दासीका क्या मान और क्या अपमान। द्वारपाल बहुत करते, झिड़क देते। लोग परिहास ही तो करते—पहले क्या कम परिहास किया है लोगोंने उसका। इसमें नवीन क्या था उसके लिये। वह चाहे जब अपने हृदयहारी प्राणोंके स्वामीके चरण जाकर पकड़ लेती, अञ्चल फैलाकर गिड़गिड़ाती। वे घनश्याम उसे झिड़क ही तो देंगे—झिड़क लेंगे! वे तो उस दिन भी उसे झिड़क सकते थे; किंतु वे परमोदार—उन्होंने तो सम्मान दिया—वचन दिया—'तुम्हारे घर आऊँगा।'

वह नहीं जा पाती—वह तुच्छ दासी है, इसीलिये तो नहीं जा पाती। उसके जानेसे उन्हें संकुचित होना पड़ेगा। लोग उन्हें पता नहीं, क्या-क्या कहेंगे! उनका अयश हो—उन्हें संकोच हो, यह कैसे कर पायेगी वह। उन्होंने स्वयं आनेको कहा है—वे आयेंगे ही। वह प्रतीक्षा कर रही है। यहीं प्रतीक्षा करेगी वह।

'वे आते होंगे।' अद्भुत प्रतीक्षा है कुब्जाकी। प्रातः अँधेरेमें ही वह दासियोंपर खीझने लगती है कि उसे शीघ्र क्यों नहीं जगाया उन्होंने। अभी गृह परिमार्जित नहीं हुआ, कक्ष सज्जित करना है, शय्याके किसलय और कुसुम बदलने हैं, शृङ्गार करना है अपना। वह क्या उनके सम्मुख ऐसे ही चली जायगी? कितने कार्य पड़े हैं अभी करनेको और उन्होंने कोई अपने आनेका समय बतलाया है? दासी इतनी धृष्टता कैसे करेगी? वे ब्राह्म-मुहूर्तमें उठे होंगे। कालिन्दी-कूल जानेसे पूर्व इधर होते जा सकते हैं। उनके आनेका उपयुक्त समय है यह।

उनके आनेके लिये भी क्या कोई समय अनुपयुक्त हुआ करता है? वे कालिन्दी-तटसे नित्यकृत्य करके इधर होते निकल सकते हैं। कुब्जाको तो सब समय उनके आनेके उपयुक्त लगता है।

उन्हें मध्याह्नमें अवसर मिलता होगा और कुसुम तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्लान हो गये । उन्हें शीघ्र ही परिवर्तित कर दिया जाना चाहिये । स्वेदने अङ्गराग मलिन कर दिया । पुनः श्रृङ्गार करना चाहिये मुझे । वे अभी आ रहे होंगे ।

'मध्याह्नमें भोजन करके विश्राम किया होगा । अब इस तीसरे प्रहर आयेंगे । सायंकाल यमुना-तट जाते समय आयेंगे । यमुना-तटसे लौटते आयेंगे किंचित् अन्धकार होनेपर । छिः ! वे दिनमें कैसे आते ? गुरुजनोंका संकोच होता होगा; रात्रिमें—सबके सो जानेपर आयेंगे ।' कुब्जाको न दिनमें चैन है, न रात्रिमें ।

'वे भुवन-भूषण अब आ रहे होंगे—यही उनके आनेका उपयुक्त समय है ।' उसे प्रहर बीतनेसे पूर्व ही शय्याके सुमन और अपना श्रृङ्गार मलिन लगने लगते हैं । इन्हें तत्काल बदला जाना चाहिये ।

'कल नहीं आ सके । किसी कार्यमें व्यस्त रहे होंगे । आज अब आते होंगे । वे आयेंगे ही—उन्होंने स्वयं आनेको कहा है ।'—निराशा स्पर्श ही नहीं करती है कुब्जाके प्राणोंको । गृह, कक्ष, शय्या बार-बार सज्जित होती हैं । पूजाके उपकरण परिवर्तित होते हैं । वह पता नहीं, कितनी बार दर्पणके सम्मुख जाकर अपनेको देखती है और श्रृङ्गार सुधारती-सँवारती है ।

'वे आते होंगे—अब आ ही रहे होंगे ।' एक अद्भुत उन्माद हो गया है कुब्जाको । भोजन करना पड़ता है—न करे तो उसका रूप क्या उनको प्रसन्न करनेयोग्य रह सकेगा ? स्नान तो आवश्यक है नूतन श्रृङ्गार धारण करनेके लिये । भोजन या स्नानके लिये जानेसे पूर्व दासीको अनेक बार सावधान रहनेको कहकर द्वारपर नियुक्त करती है और फिर भी दो-चार ग्रास मुखमें डालकर बीचमें ही हाथ धो लेती है—'शीघ्रता करो ।' स्नान पूरा हुए बिना ही श्रृङ्गार कर देनेका आग्रह करने लगती है ।

कुसुम बहुत शीघ्र मुरझा जाते हैं । किसलय म्लान होते हैं । दिन आता है और चला जाता है । रात्रि-पर-रात्रि बीतती जा रही हैं; किंतु कुब्जाकी प्रतीक्षा थकती नहीं । सखियाँ खीझती हैं, दासियाँ दुःखी होती हैं; किंतु उसे कहाँ शरीरकी सुध है । उसे शरीरको उनके अर्पणके योग्य—सुसज्ज रखनेकी ही चिन्ता है । उसे प्रतिक्षण लगता है—'वे आ रहे होंगे ! अब आ ही रहे होंगे ।'

'श्रीकृष्णचन्द्रका उपनयन हो गया ! वे गुरु-गृह चले गये ।' दासीने समाचार देकर समझा था कि कुछ कालके लिये यह प्रतीक्षाका उन्माद शान्त हो जायगा ।

'उन्होंने इस दासीपर अनुग्रह करनेके लिये यह अच्छा बहाना बनाया । वे अब बिना किसीके जाने चाहे जब आ सकते हैं ।' कुब्जापर तो प्रत्येक स्थिति एक ही प्रभाव डालती है कि 'उनके आनेका यही उपयुक्त अवसर है । वे आ रहे होंगे ।'

किसीका रथ आवे, किसीकी पद-चाप सुनायी दे—सैरन्ध्री चौंकती है—उठ खड़ी होती है—दौड़ती है—'वे आ गये ।'

वह बार-बार दौड़कर द्वारपर जाती है । बार-बार छज्जेपर जाकर देखती है और फिर अपने कक्षमें आ जाती है—'वे आते होंगे, शय्याके सुमन म्लान तो नहीं हो गये ?'

'वे आयेंगे ! उन्होंने स्वयं आनेको कहा है ! वे अब आ ही रहे होंगे !' आकुल प्राणोंकी प्रतीक्षा चल रही है ।

'भगवान् वासुदेवकी जय !' इस तुमुल घोषसे मथुराका गगन गूँज उठा । नगरके नर-नारी राजपथ या राजपथके भवनोंपर एकत्र हो गये । श्रीराम-कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुलसे अध्ययन समाप्त करके लौटे । वह नगर-सज्जा, वह स्वागत-सम्भार, वह पथपर पुष्पोंके साथ लाजा-दूर्वाङ्कुर, पुष्प एवं केसर-चन्दनकी वर्षा, विप्रोंका स्वस्तिपाठ, शङ्ख एवं वाद्योंका तुमुल नाद—सब होता रहा; किंतु कुब्जा कहाँ जाय ? वह गृहसे निकले और वे यहाँ आ जायँ तो ? उसे किसी महोत्सवमें जानेका अवकाश कहाँ ! गृह-सज्जा, अर्चन-सामग्री, शृङ्गार—सब तो उसे प्रस्तुत रखनी है—'वे आते होंगे ।'

'वे गुरु-गृहसे लौटे हैं । माता-पिता हैं, बन्धु-बान्धव हैं, सचिव-सभासद् हैं; पता नहीं, कौन-कौन हैं उनसे मिलनेको आतुर । वे बड़े सरल, बड़े उदार हैं । किसीको निराश नहीं कर पाते । उन्हें अवकाश नहीं मिला होगा अबतक । अब आयेंगे । क्या हुआ, जो कुछ दिन नहीं आ सके—अब आयेंगे ही ।'

'उन्हें न आना होता तो आनेको कहते ही क्यों ? वे आयेंगे—अवश्य आयेंगे । ऐसा हो नहीं सकता कि कहकर न आवें ।' दिन बीतता है, रात्रि बीतती है; किंतु कुब्जाकी प्रतीक्षा थकती नहीं ।

"कितना सम्मान दिया उन्होंने इस तुच्छ दासीको ! अभी कलकी ही तो बात लगती है—कितने स्नेहसे अङ्गराग माँगा था उन्होंने ! कैसे भोलेपनसे सम्मुख आ खड़े हुए थे वे ! उनके भाल-कपोलोंपर वह अङ्गराग-लेपन ! कितनी त्वरासे उसके दोनों पैर दबा लिये चरणोंसे और चिबुकपर उनकी अँगुलियोंका स्पर्श—तनिक-सा झटका लगा और जन्मकी यह कुबड़ी सीधी हो गयी ।' सम्मुख खड़े सस्मित उन त्रैलोक्यसुन्दरने मुस्कुराकर कहा था—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा' ।"

वह प्रतीक्षा कर रही है—आतुर प्रतीक्षा । उस मयूर-मुकुटीकी प्रतीक्षा ही तो की जा सकती है । उस चिर-चपलको कोई कहाँ ढूँढ़े ! जीवका कोई भी साधन—कितना भी उत्कृष्ट, कितने भी दीर्घकालका साधन क्या उसे आनेको विवश करनेमें समर्थ है ? युग-युगकी तपस्या-साधनासे भी तो तपस्वी, योगीन्द्र, मुनीन्द्र उसे पानेमें समर्थ नहीं होते । वही कृपा करके आवे तो मिले ! उसकी—उसकी कृपाकी प्रतीक्षा ही तो करनी है । उस धन्य क्षणकी प्रतीक्षा—यह प्रतीक्षा ही तो समस्त साधनोंका परम रहस्य है ।

वह अनन्त करुणा-वरुणालय, वह अकारण-कृपा-सिन्धु, सर्वसुहृद्—वह कब कृपा-कृपण हुआ है । वह नहीं आया, इसका अर्थ ही है कि अभी उसको पानेकी पिपासा प्राणोंमें जागी नहीं । प्राणोंमें प्यास जागे और वह न आये, यह कभी सम्भव नहीं ।

'मैं आऊँगा ! मैं तुम्हारे घर—तुम्हारे समीप स्वयं आऊँगा ।' उसने अग्रजके, सखाओंके सम्मुख सैरन्ध्रीको वचन दिया है । किसे वचन नहीं दिया है उसने । श्रुतियाँ उसकी वाणी नहीं हैं ? जीवमात्रको ही तो उसका वचन प्राप्त है । लेकिन प्रतीक्षा—आकुल प्राणोंकी सतत जागरूक प्रतीक्षा कहाँ जगी ? प्रतीक्षा जागे और श्याम न आवे; वह दूर बना रहे, यह उससे हो नहीं सकता ।

कुब्जाके प्राणोंमें प्रतीक्षा जाग चुकी है । उत्कट, अहर्निश, अथक, निराशाको पद-दलित करके प्रबुद्ध प्रतीक्षा ! कबतक कृष्ण नहीं आयेंगे ? वे आयेंगे ही । उन्होंने वचन जो दिया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताका ज्ञानयोग--६

[श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें और चौदहवें अध्यायोंकी विस्तृत व्याख्या]

(स्वामी रामसुखदास)

[गताङ्क पृष्ठ १०५२से आगे]

[निर्गुण ब्रह्मकी उपासनामें देहाभिमान ही प्रधान बाधा है । इसे दूर करनेके लिये आवश्यक ज्ञानके बीस साधनोंका कथन करते हुए तेरहवें अध्यायके ७ वें श्लोकके प्रथम चरणमें भगवान्‌ने अमानित्व, अदम्भित्व और अहिंसा--इन तीन निषेधात्मक साधनोंका वर्णन किया है, जिनका विवेचन गताङ्कमें प्रकाशित हो चुका है । यहाँ भगवान्‌द्वारा उसी श्लोकमें निर्दिष्ट क्षान्ति, आर्जव आदि छः विधेयात्मक साधनोंका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।]

क्षान्तिः--क्षमाका भाव ।

केवल क्रोधके अभावका नाम ही क्षमा नहीं है, अपितु अपराध करनेवालेको अपनेमें सामर्थ्यके होते हुए भी कभी किसी प्रकार किंचिन्मात्र दण्ड न मिले—ऐसा भाव रखना तथा उससे बदला लेने अथवा किसी अन्यके द्वारा दण्ड दिलवानेकी भावनाका न होना, अर्थात् अपराधीको अपराधके बदले कहीं, कभी, किंचिन्मात्र भी अपनेद्वारा या अपने निमित्तसे किसी अन्य (व्यक्ति अथवा भगवान्)द्वारा भी दण्ड न मिले—ऐसा विचार ही 'क्षमा-भाव' है ।

उपाय--किसीके अपराधको वस्तुतः अपराध न मानना ही क्षमा करनेका उपाय है ।

किसी प्रतिकूल स्थिति, हानि या दण्डकी प्राप्तिपर साधकका यह दृढ निश्चय होना चाहिये कि 'पूर्वजन्मके किसी पाप-कर्मके कारण ही ऐसा हुआ है; इस स्थितिकी प्राप्तिमें हेतु बननेवाला व्यक्ति तो निमित्तमात्र है । उसने तो मेरे पापोंका नाश कर मुझे शुद्ध ही बनाया है, अतः मेरा महान् उपकार किया है । उसके मनमें यदि मेरे प्रति किये गये अपराधके कारण संकोच भरा हो तो मेरा कर्तव्य है कि मैं पहले उसे दूर करूँ ।' इस विचारसे स्वतः ही क्षमा-भाव पैदा हो सकता है ।

निर्गुण-उपासनामें साधक सर्वत्र एक आत्मसत्ताको ही परिपूर्ण देखता है; अतः वह अपराध करनेवालेको भी अपने स्वरूपसे भिन्न नहीं मानता । यथा—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥

(गीता १८ । २०)

'अर्जुन ! जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तू सात्त्विक जान ।'

यह नियम है कि अपनेसे भिन्नपर ही क्रोध आता है; अतः किसीको भी अपनेसे भिन्न न देखनेवाले निर्गुण उपासकका भाव स्वतः क्षमाका ही रहता है । जैसे अपने दाँतोंसे अपनी ही जीभ कट जानेपर कोई भी मनुष्य दाँतोंको नहीं तोड़ता, अर्थात् उन्हें दण्ड नहीं देता; क्योंकि वह दोनोंको अपना मानता है तथा दोनोंमें अपने-आपको (स्वरूपतः) अभिन्न देखता है; इसलिये दाँतोंको तोड़नेकी बात तो दूर, उन्हें तोड़नेकी भावना भी उसके मनमें नहीं आ सकती; इसी प्रकार सर्वत्र अपने स्वरूपको ही परिपूर्ण देखनेवाले साधकके मनमें अपने अपराधीको दण्ड देनेका भाव उदय ही कैसे होगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक जैसे अपने-आपको स्वरूपतः अकर्ता मानता है, उसी प्रकार वह सभीको समझता है; फिर वह कैसे किसीको अपराधी मानेगा ?

दृश्यमात्र क्षणभङ्गुर, परिवर्तनशील एवं नाशवान् है। अतः किसी दूसरेके द्वारा अपने शरीरादि (जो वस्तुतः अपने नहीं हैं) को कष्ट दिया जाना, निन्दा-चुगलीका होना, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे क्षति पहुँचना आदि हिंसात्मक कार्य होनेपर भी साधकका यह भाव रहता है कि वह व्यक्ति तो वही कार्य कर रहा है, जो प्रकृतिके द्वारा प्रतिक्षण सम्पादित हो रहा है। यदि वह नश्वर वस्तुका ही विनाश कर रहा है तो फिर उसका अपराध ही क्या ? ऐसे विचारके उदय होने मात्रसे ही साधकमें किसीको दण्ड देने या दिलवानेका भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकता। क्षमा करनेसे पृथक्ताका-भाव मिटता है और उसके विनाशसे स्वतः 'क्षमा' आ जाती है।

आर्जवम्—शरीर, मन और वाणीकी सरलता।

(क) शरीरकी सरलता—शरीरके विशेष शृङ्गार (सजावट)का भाव न होना, रहन-सहनमें सादगी तथा चाल-ढालमें स्वाभाविक सीधापन होना—ऐंठ-अकड़ न होना।

(ख) मनकी सरलता—छल, कपट, चालाकी, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, घमंड, अनिष्ट-चिन्तन आदि भावोंका सर्वथा अभाव तथा निष्कपटता, दया, सौम्यत्व, प्रेम, हितैषिता, संतोष आदिका होना।

(ग) वाणीकी सरलता—व्यङ्ग्य, कटाक्ष, निन्दा-चुगली आदि न करना, चुभनेवाले, उलाहनाभरे अथवा विकारपूर्ण वचन न कहना, मधुर, हितकर एवं सबके लिये सुखद वचन बोलना।

उपाय—(१) मुझमें दैवी गुणोंका उत्तरोत्तर विकास हो—ऐसा दृढ उद्देश्य बनाना।

(२) मेरेद्वारा सबको सुख कैसे पहुँचे—यह भाव प्रतिक्षण जाग्रत् रखना।

(३) व्यवहारमें नम्रता एवं सेवा-भाव रखना।

(४) अपनेसे बड़ोंका सदैव आदर-सत्कार करना।

(५) दैनिक सत्सङ्ग और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन करना।

यदि हम किसी व्यक्तिके प्रति कुटिलभाव रखें तो उसका अनिष्ट अथवा अपना स्वार्थ-साधन होना तो अनिश्चित है; किंतु उन दुष्ट संस्कारोंका अपने अन्तः-करणमें संचय होना निश्चित है, जो महान हानिकर है।

आचार्योपासनम्—पूज्यभावसे आचार्य (गुरु)को नमस्कार करना, उनकी विनयपूर्वक कपटरहित सेवा एवं आज्ञा-पालन।

विद्या और सदुपदेश देनेवाले गुरुका नाम भी आचार्य है एवं उनकी सेवासे भी लाभ होता है किंतु यहाँ यह पद अपरोक्ष भावसे परमात्माका अनुभव किये हुए महापुरुषका ही वाचक है। आचार्यको दण्डवत् प्रणाम करना, उनका आदर-सत्कार करना और उनके शरीरादिको सुख पहुँचानेकी शास्त्र-विहित चेष्टा करना भी उनकी उपासना है, किंतु वस्तुतः उनकी सच्ची उपासना तो उनके बताये हुए सिद्धान्त, भाव और संकेतको ग्रहणकर उनके आज्ञानुसार अपने जीवनको बनाना है; क्योंकि देहाभिमानीकी सेवा तो उसके देहकी सेवा करनेसे ही सम्पन्न हो जाती है, किंतु गुणातीत महापुरुषके केवल देहकी सेवा करना उनके स्वरूपके अनुरूप पूर्ण सेवाकी कोटिमें नहीं है।

भगवान्‌ने 'दैवी सम्पदा' (गीता १६ । १—३) अर्थात् भक्तिमार्गकी साधनामें 'आचार्योपासनम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद न देकर यहाँ ज्ञानमार्गके साधनोंमें उसे दिया है। इसमें एक विशेष रहस्य यह प्रतीत होता है कि भक्तिमार्गमें साधक भगवान्को सर्वोपरि मानकर उनपर ही निर्भर रहकर साधना करता है और विश्वास रखता है कि मुझसे यदि कहीं भूल होगी तो भगवान्के संकेतानुसार मुझे चेत भी हो जायगा। ऐसा लोक-व्यवहारमें भी देखनेमें आता है कि यदि कहीं भूल या कोई शङ्का हुई तो किसी धार्मिक ग्रन्थके पढ़नेसे या किसीकी वाणीसे या सत्सङ्गसे कोई ऐसा सूत्र अथवा विचार मिल जाता है, या अन्तःकरणमें स्वतः उदय हो जाता है, जिससे साधक सावधान हो जाता है। उसे परमात्माकी अनायास कृपा ही समझनी चाहिये। भक्तिमार्गकी यह एक विशेषता है; किंतु ज्ञानमार्गमें साधकके अपने विवेककी प्रधानतासे साधन चलता है। इसलिये उसमें कुछ सूक्ष्म अपूर्णताएँ रह सकती हैं, जैसे—

(१) शास्त्रों एवं संतोंके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके जब साधक शरीरको अपनी धारणासे अपनेसे पृथक् मानता है, तब उसे शान्ति मिलती है। ऐसी दशामें वह यह मान लेता है कि मुझे बोध हो गया। किंतु जहाँ मान-अपमानकी स्थिति आयी अथवा अपनी इच्छाके अनुकूल या प्रतिकूल घटना घटी, वहाँ अन्तःकरणमें हर्ष-शोक उत्पन्न हो जाते हैं।

(२) किसी व्यक्तिके द्वारा उच्चरित अपने नामकी ध्वनि अचानक सुनायी पड़नेपर यदि अन्तःकरणमें व्यक्तित्व अर्थात् 'इस नामवाला शरीर मैं हूँ', ऐसा भाव उत्पन्न होता हो तो यह समझना चाहिये कि साधककी शरीरमें ही स्थिति है।

(३) साधनाकी ऊँची स्थिति प्राप्त होनेपर जाग्रत्-अवस्थामें तो साधकको जड-चेतनका विवेक भलीभाँति बना रहता है, किंतु निद्रावस्थामें उसकी विस्मृति हो जाती है, क्योंकि निद्रावस्थामें साधारण मनुष्य, साधक और सिद्ध—सबकी सामान्यतः एक ही स्थिति रहती है। जगनेपर साधक तो उस विवेकको पकड़ता है परंतु सिद्ध पुरुषका स्वाभाविकरूपसे यही विवेक रहता है अर्थात् सिद्ध महात्मा-की सहजावस्था होती है। साधकमें स्वरूपकी विस्मृति और स्मृति होती रहती है।

(४) पूज्यजनोंसे भी मान-सम्मान आदि प्राप्त करनेकी इच्छा हो जाती है। जैसे—जब हम संतों या गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा आदि करते हैं अथवा सत्सङ्गादिमें प्रधानतासे भाग लेते हैं तो हमारे मनमें ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि वे अन्योंकी अपेक्षा हमें श्रेष्ठ मानें।

(५) सत्सङ्ग आदिमें वक्ताके द्वारा समझदार साधक-को आगे बैठनेका संकेत मिलनेपर यदि उसके मनमें 'मैं अन्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हूँ'—ऐसा भाव उदित होता है तो यह भी उसकी सूक्ष्म कमी ही है।

साधकको वास्तविक बोध हो जानेपर उसकी अखण्ड एकरस स्थिति रहती है, किंतु उसमें सूक्ष्म अपूर्णताओंके रहनेकी गुंजाइश है और इस बातकी भी अधिक सम्भावना है कि वह अपनी अधूरी जानकारीको भी पूर्ण मान ले। अतः ज्ञानमार्गमें भगवान् आचार्योपासनको बतलाकर मानो यह कह रहे हैं कि ज्ञानमार्गके साधकको उचित यही है कि वह आचार्यके पास रहकर उनकी देख-रेखमें ही साधन करे। अपनी स्थितिको उनके सामने रखता रहे और वे जो सुझाव दें, उसके अनुसार अपने संदेहोंको दूर करता रहे एवं उनके बताये हुए सिद्धान्तोंपर आदर-श्रद्धापूर्वक अटल रहनेका स्वभाव बनाये। इस प्रकार साधना करनेपर वे अनुभवी ज्ञानी आचार्य उसकी उन सूक्ष्म अपूर्णताओंका, जिन्हें वह स्वयं भी नहीं जानता, निराकरण कर सुगमता एवं निर्विघ्नता-पूर्वक उसे परमात्माकी प्राप्ति करा सकते हैं।

यह अनुभव-सिद्ध बात है कि जब प्रत्येक लौकिक कार्यमें भी गुरुकी आवश्यकता होती है, तब अध्यात्म-मार्गमें तो उनकी आवश्यकता अनिवार्य है ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिमार्गमें भी गुरुकी आवश्यकता तो है ही; परंतु यदि गुरु न मिलें तो भी केवल भगवत्परायण रहकर साधक भगवत्प्राप्ति कर सकता है; क्योंकि जगद्गुरु भगवान् उसके योग-क्षेमका दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं (गीता ९। २२)।

विशेष बात–गुरुकी आवश्यकताका अनुभव होते ही यह प्रश्न उठता है कि गुरु किसे बनायें ? इस सम्बन्धमें ये चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये—

१–अपनी दृष्टिमें जो आध्यात्मिक विषयके सर्वोत्कृष्ट ज्ञाता हों,

२–जो हमसे कोई अपेक्षा, अर्थात् किसी भी वस्तुकी किंचिन्मात्र भी आशा न रखते हों,

३–जिनके दर्शन, भाषण, सङ्ग, स्मृति आदिसे हमारे दुर्गुण-दुराचार दूर होते हों तथा सद्गुण-सदाचाररूप दैवी-सम्पदाके लक्षण विकसित होते हों एवं शास्त्र, परलोक और परमात्मामें श्रद्धा-विश्वास बढ़ते हों,

४–जिनसे प्रश्न पूछनेपर, अथवा बिना पूछे भी हमारी ऐसी शङ्काओंका, जिन्हें हम अपने शब्दोंद्वारा प्रकट नहीं कर सकते एवं जिनकी हमें जानकारी भी नहीं है, समाधान उनके प्रवचनों और वार्तालापद्वारा स्वतः हो जाता हो।

—ऐसे सिद्ध पुरुषको हृदयसे गुरु मानकर उनमें श्रद्धा रखनेमें कोई आपत्ति नहीं। किंतु वहाँ भी गुरु-शिष्यका व्यावहारिक सम्बन्ध, यदि वे महापुरुष न चाहते हों तो जोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसे गुरु न मिलें तो साधकको चाहिये कि वह केवल परमात्माके परायण होकर उनके ध्यान, चिन्तन, नामके जप आदिमें लग जाय और विश्वास रखे कि परमात्माकी कृपासे गुरु भी मिल सकते हैं। वास्तवमें तो परमात्मापर निर्भर हो जानेके बाद गुरुकी खोजकी इतनी आवश्यकता भी नहीं है; क्योंकि भगवान् ही गुरुका काम पूर्ण कर देते हैं।

शौचम्=शरीरकी शुद्धि।*

न्याय एवं सत्यतापूर्वक प्राप्त अन्नसे शरीरका निर्वाह करना एवं जल, मिट्टी आदिके द्वारा शरीरको स्वच्छ रखना आदि शरीरकी शुद्धिको ही यहाँ 'शौच' कहा गया है। शरीरकी शुद्धिके लिये आहारकी शुद्धि भी अपेक्षित है। सत्यतापूर्वक कमाये हुए धनसे जीवन-निर्वाह करनेमें ये भाव भी निहित हैं—(१) पैसा शुद्ध कमाईका हो, (२) पदार्थ भी शुद्ध हों, (३) भोजन बनानेवाला पवित्रताका पूरा ध्यान रखे, (४) बनी हुई सामग्री भगवान्‌को अर्पित कर पवित्र कर ली जाय और (५) भगवान्‌का चिन्तन करते हुए ही भोजन किया जाय।

शरीर बना ही ऐसे पदार्थोंसे है कि इसे चाहे कितना भी शुद्ध करते रहो, यह अशुद्ध ही रहता है। इससे बार-बार अशुद्धि ही निकलती रहती है। अतः इसे बार-बार शुद्ध करते-करते ही इसकी वास्तविक अशुद्धिका ज्ञान होता है। यही कारण है कि भगवान्‌ने शौचको ज्ञानके साधनोंमें सम्मिलित कर शरीरकी अशुद्धिकी ओर ध्यान आकृष्ट कराया है। ऐसा करनेका उद्देश्य यह है कि शरीरसे अरुचि (उपरामता) होकर साधकका देहाभिमान मिट जाय। 'पातञ्जलयोगदर्शन'में आया है—

'शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।' (२। ४०)

---

* स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः॥
(योगदर्शन २। ५ का व्यास-भाष्य)

'विद्वान्‌लोग शरीरको स्थान (माताके उदरमें स्थित), बीज (माता-पिताके रजोवीर्यसे उद्भूत), उपष्टम्भ (खाये-पीये हुए आहारके रससे परिपुष्ट), निःस्यन्द (थूक-लार-स्वेद आदि स्रावसे युक्त), निधन (मरणधर्मा) और आधेयशौच (जल-मृत्तिका आदिसे प्रक्षालित होनेयोग्य) होनेके कारण अपवित्र मानते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शौचके अभ्याससे साधककी अपने शरीरमें घृणा—अपवित्र-बुद्धि और दूसरोंसे संसर्ग न करनेकी इच्छा होती है।' शौच सिद्ध हो जानेपर शरीरके प्रति उदासीनता आ जाती है, अर्थात् उसे कैसे अच्छा रक्खें, कैसे वह सुन्दर दीखे—ऐसे भाव बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं।

स्थैर्यम्=साधनमें अखण्डरूपसे स्थिरता।

'तत्त्वज्ञानको ही प्राप्त करना है'—ऐसा दृढ़ निश्चय करना एवं विघ्न-बाधाओंके आनेपर भी उनसे विचलित न होकर अपने निश्चयके अनुसार साधनमें ही तत्परतापूर्वक लगे रहना—इस प्रकार ध्येयमें बुद्धिकी स्थिरताको ही **'स्थैर्यम्'** पदसे अभिव्यक्त किया गया है। प्रत्येक स्थितिमें अपने उद्देश्यके प्रति अविचल रहना ही 'स्थैर्य' है। इन्द्रिय-जन्य विकारोंसे मन-बुद्धिमें किसी प्रकारकी चञ्चलता न आने देना भी स्थिरता ही है।

उपाय—निषिद्ध कर्मों—जैसे पाप-कर्म, अन्याय, शास्त्र-प्रतिकूल आचरण एवं कामनाका सर्वथा त्याग करके सांसारिक संग्रह—सांसारिक पदार्थोंका भोग-बुद्धि, रस-बुद्धि अथवा सुख-बुद्धिसे सेवन न करनेसे परमात्माकी ओर अग्रसर होनेके लिये 'दृढ़ निश्चय करनेकी शक्ति' प्राप्त होती है। (गीता २। ४४) और 'दृढ़ निश्चय कर लेनेपर परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र ही सुगमतापूर्वक हो जाती है।'

आत्मविनिग्रहः=मन-इन्द्रियोंके सहित शरीरको वशमें करना।

इस पदका मुख्य अर्थ 'मनको अपने वशमें करना' ही है। मनके वशमें होनेकी कसौटी यह है कि इसे हम सुखपूर्वक जहाँ लगाना चाहें, वहाँ लगा सकें और जहाँ हटाना चाहें, वहाँसे हटा सकें। मनके अपने वशमें हो जानेपर इन्द्रियों और शरीरका संयम स्वतः हो जाता है। ज्ञानमार्गमें मन, इन्द्रियों और शरीरके संयमकी विशेष आवश्यकता है; क्योंकि इसमें भक्ति-मार्गकी भाँति भगवान्‌के आश्रित न रहकर अपने विवेककी ही प्रधानता रहती है।

उपाय—शरीर-निर्वाहके लिये आवश्यक शास्त्रविहित वस्तुओंके सिवा अन्य वस्तुओंका सेवन न करना ही इसका उपाय है।

वस्तुओंका सेवन भोग-बुद्धि, सुख-बुद्धि, निर्वाह-बुद्धि और साधन-बुद्धिसे किया जा सकता है। ज्ञान-मार्गमें पदार्थोंका सेवन साधन-बुद्धिसे होता है। यही इन्द्रिय-निग्रहका सरल उपाय है। भक्ति-मार्गमें केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये तथा योग-मार्गमें केवल दूसरोंके हितके लिये ही पदार्थोंका सेवन होता है। स्वाद-सुख अथवा भोग-बुद्धिसे पदार्थोंका सेवन अहितकर है, यह समझकर उसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है। यदि हम लक्ष्यपर दृष्टि रखते हुए साधन-बुद्धिसे क्रिया करेंगे तो स्वतः इन्द्रिय-निग्रह हो जायगा। अतः साधकको निरन्तर सावधान रहना चाहिये कि कहीं उसकी क्रियाएँ सुख-बुद्धि या भोग-बुद्धिसे तो नहीं हो रही हैं।

इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने इस श्लोकमें **अमानित्वम्, अदम्भित्वम्** और **अहिंसा**—इन तीन निषेधात्मक तथा **क्षान्तिः, आर्जवम्, आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्** और **आत्मविनिग्रहः**—इन छः विधेयात्मक साधनोंका वर्णन किया है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)के अमृत वचन]

भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण होना चाहिये

जीवनमें सबसे बड़े महत्त्वका कार्य है--भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण। जगत्‌की आशामें तो दुःख-ही-दुःख है। मोहके कारण मनुष्य भोगोंमें सुख मानता है, पर वास्तवमें तो उनमें दुःख-ही-दुःख है। हमारे जीवनमें जो अशान्ति, जलन, दुःख, उद्वेग आदि हैं, उनका एकमात्र कारण है--भोगोंमें सुखकी आस्था; नहीं तो यहाँके द्वन्द्वोंमें वस्तुतः क्या हानि-लाभ है? हमलोग व्यर्थ ही अनुकूल-प्रतिकूलकी कल्पनासे सुखी-दुःखी होते रहते हैं। किसीने यदि हमारी बड़ाई कर दी तो उन शब्दोंसे क्या मिल गया? इसी प्रकार निन्दाके शब्दोंसे क्या बिगड़ गया? पर हम मोहवश सुख-दुःख मानते हैं। अपनेको सर्वथा भगवान्‌का मान लेनेपर—उनके प्रति पूर्ण समर्पण हो जानेपर, इन बातोंका कोई भी असर नहीं रह जाता। फिर द्वन्द्वोंमें समता हो जाती है। भगवान्‌में—एकमात्र प्रियतम भगवान्‌में पूर्ण ममता—अनन्य ममता और जगत्‌के सभी स्वरूपोंमें समता—यही एक काम करना है। यदि यह काम हो गया तो फिर कहीं रहो, कैसे भी रहो, सर्वत्र सदा आनन्द-ही-आनन्द है।

अपनी ओर न देखकर भगवान्‌की ओर देखना चाहिये

भगवान् जो कुछ करते हैं, सब हमारे मङ्गलके लिये ही करते हैं। अतएव भौतिक पदार्थोंके हानि-लाभमें भगवद्विधानको ही प्रधान मानकर सदा परम संतुष्ट रहना चाहिये। अपनी इच्छाके अनुसार कहीं जाना-आना न हो सके तो उसको लेकर मनमें जरा भी क्षोभ न करके सदा भगवान्‌की मङ्गलमयी मधुर स्मृतिके आनन्दमें डूबे रहना चाहिये। भगवान् सर्वत्र हैं, सदा हैं, तुम सदा ही उनकी प्यारी गोदमें हो। न वे तुमसे कभी विलग होते हैं, न तुम उनसे अलग होते हो। तुम उन्हें अलग मानकर ही दुःखी हो जाते हो। वे किसी स्थान-विशेषमें आबद्ध नहीं हैं। जहाँ उनका प्रेम है, वहीं वे निरन्तर स्वयं उस प्रेमीके अंदर रहते हैं और उसको अपने अंदर रखते हैं—'मयि ते तेषु चाप्यहम्।' हमें अपनी ओर न देखकर भगवान्‌की ओर देखना चाहिये कि वे कितने अपने हैं, कितना अपनेको दिये हुए हैं, कितने महान् होकर हमारे-जैसे क्षुद्रके साथ मिले रहनेके लिये कितने क्षुद्र बने हुए हैं! वास्तवमें उनके-जैसे वे ही हैं—

कहाँ असीम अनन्त परम आनन्द-मधुर-रसके सागर।
अमित अपार महत्त्व दिव्य गुण-श्री-यशके अतुलित आगर॥
कहाँ ससीम नगण्य तुच्छ मैं, दीन-हीन सूखी गागर।
पर आश्चर्य! मिले ही रहते नित मुझसे वे नटनागर॥

सबकी अनुकूलता कभी सम्भव नहीं

होगा वही, जो श्रीभगवान्‌को स्वीकार होगा। तुम अपनी समझसे परिवारवालोंके साथ यथासाध्य अच्छा व्यवहार करनेकी बात सोचते हो—अच्छा बर्ताव करते हो, सो यह तो करना है। दूसरे अपनी भावनाके अनुसार बुरा मानें तो तुम्हारा क्या जोर है! तुम्हें भगवान्‌के सामने सच्चा रहना है—फिर कोई कुछ भी करे-कहे! सबकी अनुकूलता कभी सम्भव नहीं है। प्रत्येककी अलग-अलग रुचि, भावना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ और कामना है। जब हम अपने अच्छे-से-अच्छे व्यवहार-बर्तावसे दूसरोंको सब बातोंमें संतुष्ट नहीं कर सकते, तब हमें क्यों आशा करनी चाहिये कि दूसरे सब हमारे अनुकूल होकर सब कामोंमें हमें संतुष्ट करें ? उनके किसी बर्तावपर हमें क्यों असंतुष्ट होना चाहिये, फिर यहाँके मान-अपमान, अनुकूलता-प्रतिकूलताका वस्तुतः कोई अर्थ नहीं है। इनसे वास्तवमें कुछ भी लाभ-हानि नहीं होती; हमारी मिथ्या अहंता ही हमें दुःख पहुँचाती है।

शरीर कहीं भी रहे, अपनेको सदा भगवान्‌में रखो

संसार क्षणभङ्गुर है, यह अनित्य और दुःखालय है। यहाँ अनुकूलता तथा सुख है ही नहीं। हम इसमें भूलसे कभी-कभी सुखकी मिथ्या कल्पना कर लेते हैं; पर जब उसका स्वरूप सामने आता है—पर्दा हट जाता है, तब पता लगता है कि वह दुःख ही था, सुखका तो केवल नकाब पहने हुए था। संसारमें जहाँ भोग-जगत् है, वहाँ तो बस, दुःख-ही-दुःख है। जहाँ भोग-जगत् न होकर भगवान् हैं, वहाँ निरन्तर भगवान्‌की लीला है; उसमें आत्यन्तिक आनन्द-ही-आनन्द है, कहीं दुःखकी कल्पना भी नहीं है। तुम सदा भगवान्‌में रहो, शरीर कहीं भी रहे तथा अपनेको सदा भगवान्‌में रखो। फिर यह दुःख तुम्हारे सामने ही नहीं आयेगा; तुम आनन्दस्वरूप प्रियतमके महान् अगाध एवं मधुर आनन्दका ही नित्य-निरन्तर रसास्वादन करते रहोगे।

मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि तुम खूब प्रसन्न रहो; और प्रसन्न रहो केवल अपने भगवान्‌के आनन्दमें; जगत्‌में खेल-बुद्धि रहे—जगत्‌की कोई अनुकूलता-प्रतिकूलता मनमें न रहे।

मेरा अपना विचार तो ऐसा ही रहता है कि जहाँतक बने, बर्तावमें अपनी ओरसे मधुरता रखकर ही सब काम करने चाहिये, कटुतासे बचना ही चाहिये। हमारी मधुरता कभी-न-कभी कटुता करनेवालोंको उनकी भूल समझा देगी और हमारी कुटिल वृत्ति न होनेपर भी व्यवहारकी कटुता भी कटुता बढ़ानेवाली होगी। कड़वी औषधका प्रयोग तो तभी करना चाहिये, जब मीठी औषधसे रोग दूर न होता हो। मधुरताकी रक्षामें स्वयं तो कटुता सहनी पड़ती ही है।

घरमें प्रेम बना रहे, कलह न हो—यह सभी चाहेंगे। धैर्यके साथ सहन करना चाहिये—मेरी यही सलाह रहती है—सबके लिये, सदा ही। फिर यदि भगवान्‌के मङ्गल-विधानकी बुद्धिसे उसमें आनन्द मान सको, तब तो सर्वोत्तम ही है। फिर तो कहीं-कुछ भी हो—सब मङ्गल-ही-मङ्गल है—अशान्ति-क्लेशका नाम ही नहीं।

समर्पित जीवनपर तुम्हारा अधिकार क्या है ?

तुम अपने शरीरके सम्बन्धमें नाना प्रकारके अनर्गल कुविचार किया करते हो—यह उचित नहीं है। सच बात तो यह है कि तुम्हारे समर्पित जीवनपर तुम्हारा अधिकार ही क्या है ? भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर विश्वास करके तथा उनको सदा ही अपना स्वामी समझकर उनके हाथकी पराधीन कठपुतलीकी भाँति सदा नाचना और हर हालतमें प्रसन्न रहना चाहिये। स्वामीकी वस्तुपर दुष्ट भावना करना तो एक प्रकारसे उनके प्रति अपराध है। तुम कभी भूलकर भी ऐसी कल्पना मत किया करो। श्रीहरि तुमपर परम प्रसन्न हैं, तुम्हें उन्होंने अपना लिया है, अपनी निज वस्तुके रूपमें स्वीकार कर लिया है, तुम धन्य तथा सफल-जीवन हो चुके हो। ऐसा मङ्गल विश्वास करके संसारके मोहको हटा देना चाहिये। मोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ही कहाँ ? वह तो सूर्योदय होते ही अन्धकारके नाश हो जानेकी भाँति नष्ट हो चुका है। केवल स्मृति-मात्र है; उसीको तुम यथार्थ मानकर दुःखी हो जाते हो, जो सर्वथा भूल है। तुम सदा ही उनके हो। उनका परमानन्द-समुद्र सदा ही तुममें लहरा रहा है। तुम उनकी रसमयी, सुधामयी परम पावन सरिता हो, उनकी लीला-स्थली हो। तुम्हारा जीवन उन्हें पाकर गौरवमय हो चुका है। तुम अपने उस स्वरूपको देखो और आनन्दमय रहकर सर्वत्र आनन्दका वितरण करो। अपने शुद्ध प्रकाशसे सबको प्रकाशित कर दो, अपने विशुद्ध प्रेमसे सबके राग-द्वेषका नाश कर दो। तुम भगवान्‌के हो, भगवान् तुम्हारे हैं—तुम्हारे हैं। तुम उनमें हो, वे तुममें हैं—

तू है उनका, वे हैं तेरे, तू उनमें है, वे हैं तुझमें।
उनकी ही छाया है तू बस, उनका गौरव छाया तुझमें॥

श्रीराधा-माधव-प्रेमोदधिकी दो भाव-ऊर्मियाँ

श्रीराधा-माधव-प्रेमोदधि अनन्त एवं अपरिसीम है; उसमें नूतन सौन्दर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण भाव-ऊर्मियाँ नित्य-निरन्तर हिलोरें लेती रहती हैं। कभी श्रीकृष्ण श्रीराधाको अपनी प्रेमास्पदा मानकर उन्हें प्रेमकी स्वामिनी और अपनेको प्रेमका कंगाल स्वीकार करते हैं और कभी श्रीराधा अपनेको अत्यन्त दीना और श्रीकृष्णको प्रेमके धनी रूपमें स्वीकार करती हैं। इन दो पदोंमें दोनोंके पारस्परिक प्रेमोद्गार दर्शनीय हैं—

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

राधे ! हे प्रियतमे ! प्राण-प्रतिमे ! हे मेरी जीवन-मूल।
पलभर भी न कभी रह सकता, प्रिये ! मधुर मैं तुमको भूल॥

राधे ! हे प्रियतमे ! हे मेरे प्राणोंकी पुतली ! हे मेरी जीवन-मूल ! हे प्रिये ! मधुरातिमधुर तुमको विसराकर मैं किसी क्षण पलमात्र भी नहीं रह सकता हूँ।

श्वास-श्वासमें तेरी स्मृतिका नित्य पवित्र स्रोत बहता।
रोम-रोम अति पुलकित तेरा आलिङ्गन करता रहता॥

श्वास-श्वासमें तेरी यादका पवित्र झरना बहा करता है। मेरा रोम-रोम अत्यन्त पुलकित होकर नित्य-निरन्तर तेरा आलिङ्गन करता रहता है।

नेत्र देखते तुझे नित्य ही, सुनते शब्द मधुर यह कान।
नासा अङ्ग-सुगन्ध सूँघती, रसना अधर-सुधा-रस-पान॥

मेरे नेत्र नित्य तुझको ही निरखते रहते हैं और यह कान तेरा ही मधुर-मनोहर बोल सुनते रहते हैं। मेरी नासिका तेरे ही अङ्गोंसे निकलनेवाली परम मनोहर सुगन्धको सूँघती रहती है और रसना तेरे ही अधरोंके सुधामय रसका पान करती रहती है।

अङ्ग-अङ्ग शुचि पाते नित ही तेरा प्यारा अङ्ग-स्पर्श।
नित्य नवीन प्रेम-रस बढ़ता, नित्य-नवीन हृदयमें हर्ष॥

मेरा एक-एक अङ्ग—अवयव तेरे प्यारे अङ्गोंका स्पर्श पाकर नित्य पवित्र होता रहता है। तेरे प्रेमका रस नित्य नया बढ़ता रहता है और उसीके साथ-साथ मेरे हृदयमें हर्ष भी नित्य नया बढ़ता रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णके इस प्रेम-निवेदनको सुनकर श्रीराधा कहती हैं—

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म ।
तुम ही मेरे सकल सुख-सदन, प्रिय निजजन, प्राणोंके मर्म ॥

हे प्राणप्रियतम ! मेरा धन, परिवार तथा जीवन तुम्हीं हो, तुम्हीं मेरा शरीर और मन हो, तुम्हीं मेरे सम्पूर्ण धर्म हो । तुम्हीं मेरे समस्त सुखोंके सुन्दर आलय हो, तुम्हीं प्रिय निज-जन और तुम्हीं प्राणोंके मर्म—आधार हो ।

तुम्हीं एक, बस, आवश्यकता; तुम ही एकमात्र हो पूर्ति ।
तुम्हीं एक सब काल, सभी विधि, हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति ॥

अधिक क्या कहूँ, तुम्हीं मेरी एकमात्र आवश्यकता हो और तुम्हीं उसकी एकमात्र पूर्ति हो। तुम्हीं मेरे लिये सब समय और सब प्रकारसे उपासना करनेयोग्य पवित्र और मधुर-मनोहर मूर्ति हो ।

तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान ।
आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान* ॥

तुम्हीं मेरे समस्त कार्य और घर हो और तुम्हीं मेरे एकमात्र महान् लक्ष्य हो । आठों पहर तुम मेरे मनरूपी मन्दिरमें भगवान्—इष्टदेवके रूपमें बसे रहते हो ।

सभी इन्द्रियोंको तुम शुचितम करते नित्य स्पर्श-सुख-दान ।
बाह्याभ्यन्तर नित्य-निरन्तर तुम छेड़े रहते निज तान ॥

तुम मेरी समस्त इन्द्रियोंको नित्य पवित्रतम स्पर्श-सुखका दान करते रहते हो । मेरे भीतर और बाहर तुम सदा अविराम अपनी मधुर तान छेड़ा करते हो ।

कभी नहीं तुम ओझल होते, कभी नहीं तजते संयोग ।
घुले-मिले रहते करवाते-करते निर्मल रस-सम्भोग ॥

तुम कभी मेरे नेत्रोंसे अदृश्य नहीं होते, एक पलकभर भी संयोगका त्याग नहीं करते और सदा घुले-मिले रहकर पवित्र रसका सम्भोग करते एवं करवाते रहते हो ।

पर इसमें न कभी मतलब कुछ मेरा तुमसे रहता भिन्न ।
हुए सभी संकल्प भङ्ग मैं-मेरेके समूल तरु छिन्न ॥

परंतु इसमें मेरा तुमसे भिन्न कभी कुछ दूसरा अभिप्राय नहीं रहता । मेरे समस्त संकल्प भङ्ग हो चुके हैं और अहंकार तथा ममताके वृक्ष जड़से कट गये हैं ।

भोक्ता-भोग्य—सभी कुछ तुम हो, तुम ही स्वयं बने हो भोग ।
मेरा मन बन सभी तुम्हीं हो अनुभव करते योग-वियोग ॥

भोगनेवाले और भोगनेकी वस्तु—सब कुछ तुम्हीं हो और तुम्हीं स्वयं भोगकी क्रिया बने हो और मेरा मन बनकर तुम्हीं संयोग और वियोग—सभीका अनुभव किया करते हो । (अप्रकाशित पत्रोंसे)

* दूसरा पाठ——आठों [illegible] ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार्शनिक संत-कवि अखा

(लेखक—डा० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी० एस्-सी०)

महात्मा गाँधीके प्रिय भजन **'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे'**के गायक एवं गुजरातके महान् भक्त नरसी मेहताका नाम भारतका प्रत्येक आस्तिक न केवल जानता ही है, अपितु श्रद्धापूर्वक स्मरण कर निज-जीवनको कृतार्थ बनानेका प्रयास करता है। उसी गुजरातकी पावन भूमिमें सत्रहवीं शतीमें भक्त-कवि 'अखा' हुए हैं। जैसी उनकी साधना और काव्य-प्रतिभा थी, वैसी ख्याति उन्हें नहीं मिल सकी। संत अखा जातिके स्वर्णकार थे। ये कवि एवं दार्शनिक होनेके साथ-साथ स्पष्टवादिता तथा सुस्पष्ट विचारोंके लिये विशेष प्रख्यात थे।

गुजरातमें इन्हें 'वेदान्त-कवि-शिरोमणि'के रूपमें स्मरण किया जाता है। संत-कवि अखाने अतीव सामान्य भाषामें आदि शंकराचार्यके अद्वैतदर्शनको ललित-पदोंमें गूँथकर जन-साधारणको उसका आस्वादन कराया है। संत-कवि अखाके सम्बन्धमें बहुत कम जानकारी है। जो कुछ भी इनके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त होती है, वह या तो दन्तकथाओंद्वारा अथवा इनकी रचनाओंद्वारा ही। इनकी कविताओंमें इनके जीवनकी प्रमुख घटनाओंपर सूक्ष्म-सा प्रकाश पड़ता है। इस समय अखाके सात सौ छप्पय तथा लगभग साठ पद प्राप्त हैं और इन्हींके माध्यमसे वे इस नश्वर विश्वमें अनश्वर बनकर विद्यमान हैं।

गुजरातकी राजधानी अहमदाबादसे कुछ मीलके अन्तरपर 'जेतलपुर' नामक ग्राम है। इसी ग्राममें एक परम्परागत सुनार-परिवार रहा करता था। इसी परिवारमें सन् १५९१ ई० में अखाका जन्म हुआ था। परिवारकी आय अत्यन्त सीमित थी, अतः अखाके पिताको परिस्थितियोंसे विवश होकर व्यवसायकी खोजमें अहमदाबाद जाना पड़ा। उस समय अखाकी आयु सोलह वर्षकी थी।

अपनी माँ और बहनको जेतलपुरमें ही छोड़कर अखा अपने पिताके साथ अहमदाबाद चले आये और वहाँकी खड़िया बस्ती, जो आज भी विद्यमान है, उसके एक छोटे-से कक्षमें रहने लगे। इस कक्षके बाहरी भागको दूकानके रूपमें परिणत कर अखा और उनके पिता आभूषण बनानेके अपने पैतृक-व्यवसायमें लग गये। अखाके पिता एक वैष्णव तथा ईश्वरका भय माननेवाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपने पुत्रमें स्वर्णकारोंके व्यवसायमें सर्वथा दुर्लभ गुण—ईमानदारीको इस प्रकार कूट-कूटकर भर दिया था कि वह गुण अखाके माध्यमसे स्वयं एक आदर्श उदाहरण बनकर गुजरातके घर-घरमें गूँज उठा। धीरे-धीरे व्यवसायमें प्रगति हुई और अखाकी माँ तथा बहन उन्हींके पास आकर रहने लगीं।

पिताकी देख-रेखमें अखा शीघ्र ही अप परम्परागत व्यवसायमें निपुण हो गये। ग्राहकोंके साथ अपने सत्य और पवित्र व्यवहार तथा सौम्य स्वभावके कारण अखा शीघ्र ही सर्वप्रिय हो गये और कुशलतापूर्वक अपने व्यवसायका संचालन करने लगे। कुछ ही दिनोंमें उनका व्यवसाय चमक उठा और पारिवारिक आयमें वृद्धि होने लगी। विवाहके योग्य समझकर पिताजीने अखाका विवाह एक सुयोग्य कन्याके साथ कर दिया। अब पाँच सदस्योंका यह परिवार प्रसन्नतापूर्वक अहमदाबादमें रहने लगा।

कुछ समय पश्चात् अखाके पिताने अपने व्यवसायमें पर्याप्त आय देखकर पारिवारिक आयमें और वृद्धिके विचारसे पुत्रको अन्य स्वतन्त्र व्यवसाय अपनानेका परामर्श दिया और स्वयं वर्तमान दूकानका कार्यभार सँभाल लिया। अखाको सहज ही राजकीय टकसालमें एक महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त हो गया। यहाँ पूर्ण परिश्रम तथा लगनसे कार्य करते हुए अखा क्रमशः प्रगति करते हुए टकसालके अधीक्षकके पदतक जा पहुँचे। अपने अवकाशके क्षणोंमें वे अपनी दूकानके कार्यमें अपने पिताका भी यथासम्भव हाथ बँटाते रहते थे।

जीवन संतोष और शान्तिके साथ बीत रहा था। सहसा अखापर विधिका क्रूर प्रहार हुआ। सबसे पहले उनके माता-पिता इस लोकसे विदा हुए और अभी इनका शोक धूमिल भी न हो पाया था कि इनकी पत्नी और बहनने भी उन्हींका अनुगमन किया। एकके पश्चात् दूसरी शोकपूर्ण घटनाओंने अखाको पूर्णतः विचलित कर डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी प्रकार अपने-आपको सँभालकर वे पुनः अपने कार्य-पर टकसालमें पहुँचे, परंतु उनका मन काममें न लग सका। संसारकी नश्वरतापर विचार करनेसे उन्हें मर्मान्तक वेदना होती तथा अपना जीवन निरर्थक-सा प्रतीत होने लगता। इनके पास अब पर्याप्त धन था, अतः ये प्रायः आश्चर्यचकित होकर सोचते कि मैं टकसाल या दूकानमें व्यर्थ परिश्रम क्यों और किस लिये करूँ?

अब अखा खिन्न और एकाकीपनके झूलेमें झूलते हुए अपना जीवन बिता रहे थे। एक दिन अवसर पाकर इनके कुछ सम्बन्धियोंने अखाको पुनः विवाह करके पारिवारिक जीवन बितानेको विवश किया। उन्होंने पहले तो इस प्रसङ्गको टालना चाहा, परंतु अधिक दबाव पड़नेपर उनके प्रस्तावको स्वीकार कर उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा। इस विवाहसे उनमें पुनः कर्तव्यकी भावना उत्पन्न हुई और वे पूर्वकी भाँति टकसालमें मन लगाकर कार्य करने लगे। इसके साथ ही अपने पूर्व ग्राहकोंके विशेष आग्रहको देखकर उन्होंने टकसालके पश्चात् अपनी दूकानपर भी गहने बनाने-का परम्परागत कार्य आरम्भ कर दिया।

एक महिलाको अखा अपनी धर्म-बहन मानते थे तथा उसके तीन सौ रुपये इनके पास धरोहर रूपमें पड़े थे। उस बहनने सोचा कि ये रुपये वापस माँगना उचित न होगा। अतः उसने अखासे उस मूल्यका स्वर्णमय कण्ठहार बना देनेका आग्रह किया। उस बहनके प्रति प्रेमातिशयके कारण उन्होंने अपने पाससे सौ रुपये मूल्यका अधिक सोना मिलाकर उसके लिये खरे सोनेका कण्ठाभरण तैयार किया और यह कहकर उस बहनको दिया कि इसका मूल्य चार सौ रुपयेसे कहीं अधिक है। बहनको अखाके कथनपर विश्वास न आया। वह यह माननेमें असमर्थ थी कि कोई सुनार बिना मिलावट किये रह सकता है। अथवा बिना कारण कोई अपने पाससे प्राप्त-धनसे अधिक मूल्यका सोना किसीको दे सकता है? अपने संशयको मिटानेके लिये वह अन्य सुनारके पास गयी और उससे उस हारकी शुद्धताकी परीक्षा करनेके लिये तथा उसका सही मूल्य आँकनेके लिये कहा। सुनारने हारकी शुद्धताकी परीक्षाके लिये उसे एक स्थानसे काटा और परीक्षा करके बताया कि वास्तवमें ही हार शुद्ध सोनेका बना हुआ है और उसका मूल्य निश्चित रूपसे चार सौ रुपयेसे कहीं अधिक है। यह सुनकर उस बहनको अपने विचारोंकी अशुद्धतापर लज्जा आयी और उसने उससे हारको सुधारनेके लिये कहा। उत्तरमें उस सुनारने कहा कि इस हारको मूल आकार देनेमें केवल इसका निर्माता ही सफल हो सकता है; अन्य कोई नहीं।

विवश होकर वह बहन अखाके पास उस हारको लेकर लौटी और उनसे उसे सुधार देनेकी प्रार्थना की। हारको खण्डित देखकर अखाने उसके टूटनेका कारण पूछा। उस बहनने बिना विचारे तत्काल उत्तर दिया कि इसे एक चूहेने काट डाला। वे इस उत्तरको माननेके लिये तैयार न हुए। वे समझ गये कि यह उनके सामने झूठ बोल रही है। कुछ ठहरकर उन्होंने उससे विनम्र शब्दोंमें कहा कि वह उन्हें हारके खण्डित होनेकी सत्य घटना बताये, तभी वे उसका कार्य कर सकेंगे। यह सुनकर बहनने लज्जासे नतमुख होते हुए सारी घटना सत्य-सत्य कह सुनायी। घटना सुनकर अखाको उसकी संशयात्मक बुद्धि और कृतघ्नतापूर्ण विचारोंसे गहरा धक्का लगा। साधु स्वभावके अखाको ऐसा प्रतीत हुआ कि वे ऐसे विश्वमें रह रहे हैं, जो अविश्वास और संदेहसे परिपूर्ण है।

इसी समय टकसालके अधिकारियोंने एक घोटालेके संदेहमें अखाको भी अपराधी मानकर आवश्यक जाँचके लिये उन्हें कारागारमें भिजवा दिया, परंतु आरोप सिद्ध न हो पानेके कारण वे मुक्त कर दिये गये। इस घटनासे खिन्न होकर उन्होंने टकसालकी नौकरी छोड़ दी।

अब भाग्यने अखापर अपना अन्तिम प्रहार किया। उनकी दूसरी पत्नी भी बिना किसी बालकको जन्म दिये ही स्वर्ग सिधार गयी। इस घटनासे उनका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्हें यह संसार मृगतृष्णा-सा प्रतिभासित होने लगा। जीवनका मूल्य उनकी दृष्टिमें सर्वथा नगण्य-सा रह गया। अब उनके लिये दुःखों और कुटिलताओंसे परिपूर्ण जगत्में रहनेका कोई उद्देश्य न रहा। उन्होंने सत्य तथा ज्ञानकी खोजमें संसारका परित्याग करनेका विचार किया।

इस समय अखाकी सर्वाधिक अभिलषित वस्तु थी—'शान्ति'। इसकी प्राप्तिके लिये वे अधिकाधिक साधु-संतोंकी संगतिमें रहने लगे। उन्होंने अपने नगरमें एक आध्यात्मिक गुरुकी भी खोज की, जो उन्हें ज्ञान तथा आत्मिक शान्ति प्राप्त करा सके। परंतु अहमदाबाद-जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल नगरमें अखाकी इच्छा पूरी न हुई। अन्तमें उन्होंने अपना सम्पूर्ण धन साथ लेकर यात्रा आरम्भ की। वे पवित्र मन्दिरों और तीर्थोंके दर्शन इस आशासे करते हुए घूमने लगे कि कहीं-न-कहीं तो उन्हें सच्चे गुरुकी उपलब्धि होगी ही।

अपनी यात्राकी अवधिमें वे जयपुर पहुँचे और वहाँके एक वैष्णव-मन्दिरके गोस्वामीजीकी प्रशंसा सुनकर उनके पास गये। गोस्वामीजीने उनकी अच्छी आव-भगत की, परंतु ज्ञान-पिपासु अखाको इससे कहाँ संतोष होनेवाला था? उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र मथुराके लिये प्रस्थान कर दिया।

अपने यात्रा-मार्गमें अखाने अनेकानेक मन्दिरों और धार्मिक संस्थानोंके अवलोकनका सुयोग प्राप्त किया। वे यथावसर विभिन्न स्थानोंपर कुछ दिन ठहरकर वहाँके उत्सवादिमें भाग लेते। वे साधुपुरुषोंका सत्सङ्ग प्राप्त करते और उनके साथ धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर चर्चा करके अपनी प्यास बुझानेका प्रयास करते थे। वे मार्गके साथी साधुओंको मूल्यवान् उपहार देते। इन महात्माओंमें कुछ साधु होते थे, कुछ संन्यासी, कुछ गोस्वामी होते थे और कुछ महन्त। अखाको प्रायः सर्वत्र ढोंग और पाखण्डके ही दर्शन हुए। शान्तिकी कामनासे उन्होंने विभिन्न धार्मिक कृत्योंमें भाग लिया, परंतु उन्हें ऐसे किसी भी कार्यसे शान्ति प्राप्त नहीं हुई।

इधर-उधर भ्रमण करते हुए अखा गोकुल पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट वैष्णव सम्प्रदायके प्रमुख आचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराजसे हुई। आध्यात्मिक सहयोग एवं संरक्षणकी आशासे अखाने उनके प्रति गुरुभाव दृढ़ करनेका प्रयास किया; परंतु रुचि-विभिन्नताके कारण उनका मन वहाँ टिका नहीं। अब उन्होंने पुनः सत्यकी खोजमें इधर-उधर घूमना आरम्भ किया। वे अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें तबतक जुटे रहना चाहते थे, जबतक उन्हें योग्य गुरुकी प्राप्ति न हो जाय।

अन्ततोगत्वा अखा भारतके विभिन्न धर्मस्थलोंका दर्शन करते हुए काशी जा पहुँचे। वहाँ रहते हुए वे प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्तमें उठते, पावन गङ्गामें स्नान कर भगवान् विश्वनाथके मन्दिरमें दर्शनार्थ जाते और तब एक घाटसे दूसरे घाटपर सद्गुरुकी खोजमें भटकते। एक बार वे एक छोटे-से मठमें जा निकले। वहाँ उन्होंने एक स्वामीजीको देखा, जिनका प्रवचन उपस्थित व्यक्ति दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। स्वामीजीका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। प्रथम दर्शनमें ही वे अखाको वैदिक ऋषि-जैसे जान पड़े। अखाके मनमें एक तीव्र जिज्ञासा जाग्रत् हुई कि आध्यात्मिक उपदेश प्राप्त करनेके लिये स्वामीजीके निकट पहुँचा जाय। स्वामीजीके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेकी दृष्टिसे पूछ-ताछ करनेपर मठवासियोंसे अखाको विदित हुआ कि वे एक जीवन्मुक्त महात्मा हैं और उनका नाम स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी है।

वर्षोंके अनुभवोंने अखाको स्वामीजीकी परीक्षाके लिये उकसाया। गुरु परख करके ही करना चाहिये, अतः अखाने अनेक प्रकारसे स्वामीजीकी परीक्षा यह जाननेके लिये की कि उन्होंने वास्तवमें ही आध्यात्मिकताकी कुछ सीढ़ियाँ पार की हैं या सब कुछ केवल कोरा शाब्दिक ज्ञानमात्र ही है। परंतु वास्तविकता यह थी कि स्वामीजी अखाके गुरु बननेके सर्वथा उपयुक्त थे। अखा प्रायः उनके दर्शनार्थ जाते और बहुमूल्य उपहार उनके सामने भेंटके रूपमें रखते; परंतु स्वामीजी बार-बार आग्रह करनेपर भी उन्हें स्वीकार न करते। इस वीतरागिताने अखाके मनमें स्वामीजीके लिये विशेष स्थान बना दिया। अब वे उनके दर्शनहेतु अधिकाधिक जाने लगे और प्रत्येक दर्शनके अवसरपर उन्होंने स्वामीजीके सौम्य एवं साधु व्यक्तित्वमें एक दिव्य सौन्दर्य एवं आकर्षणका अनुभव किया।

एक बार रातके समय अखा किसी अज्ञात प्रेरणासे प्रेरित हो मठमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि स्वामीजी अपने चुने हुए शिष्योंको आध्यात्मिक उपदेश कर रहे हैं। अखाने दीवारके पीछे छिपकर स्वामीजीके उस वेदान्तपरक उच्चभावमय उपदेशको सुना। वे चाहते थे कि वेदान्तपरक प्रवचनोंके इस विशेष कार्यक्रममें मैं भी नियमित रूपसे भाग लूँ; परंतु इस सम्बन्धमें स्वामीजीसे कुछ कहते हुए झिझकते थे, विशेषतः इसलिये कि स्वामीजी उन्हें शिष्यरूपमें स्वीकार भी करेंगे या नहीं, यह प्रश्न उनके मनमें बना हुआ था। कई दिनोंतक यह प्रश्न उन्हें उलझनमें डाले रहा। अन्तमें उन्होंने पूर्वकी भाँति चुपचाप दीवारके पीछे छिपकर स्वामीजीके वेदान्तविषयक उपदेश सुननेका निश्चय किया। इस निश्चयके साथ अखाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वप्रथम अपने हृदयमें सद्गुरुके रूपमें स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजीको प्रतिष्ठित किया और चुपचाप रात्रिके अन्धकारमें छिपकर उनके वेदान्तपरक उपदेश सुनना आरम्भ किया। वे जो कुछ रातमें सुनते, दिनमें उसपर मनन तथा तद्वत् आचरण करनेका प्रयत्न करते। इस प्रकार प्रायः एक वर्ष-तक उन्होंने स्वामीजीके अपने अन्तरङ्ग शिष्योंको दिये गये उपदेशोंमें छिपकर भाग लिया।

एक रात स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजीका एक तरुण ब्रह्मचारी शिष्य उनके प्रवचनमें कुछ विलम्बसे आया। उस दिन स्वामीजी वेदान्तविषयक एक जटिल समस्याको समझा रहे थे; अतः उन्होंने विलम्बसे आये शिष्यसे उस समस्यासे सम्बन्धित एक प्रश्न पूछा। प्रथम तो प्रवचनमें विलम्बसे आना और द्वितीय आ करके ऊँघना; भला, ऊँघता हुआ शिष्य उस प्रश्नका उत्तर क्या देता ! अखाने यह देखकर विचार किया कि यदि स्वामीजीको अपने प्रश्नका समुचित उत्तर न मिला तो वे अपना प्रवचन बीचमें ही रोक देंगे, अतः दीवारके पीछे छिपे रहकर ही उन्होंने उक्त प्रश्नका समुचित उत्तर दिया।

स्वामीजी अपने सामने उपस्थित शिष्य-समुदायके अतिरिक्त अन्य व्यक्तिद्वारा दिये गये समुचित उत्तरको सुनकर आश्चर्य-चकित हो उठे और अपने नियमका अतिक्रमण कर वहाँसे उठकर बाहर आये। चारों ओर दृष्टिपात करनेपर उन्हें अखा दीवारके पीछे छिपे हुए दृष्टिगोचर हुए। रात्रिके इस प्रहरमें अखाको इस प्रकार खड़ा हुआ देखकर उन्हें आश्चर्य-मिश्रित जिज्ञासा हुई कि आखिर इस समय यह यहाँ कर क्या रहा है ? उन्हें शङ्का हुई कि सम्भवतः मेरे प्रश्नका उत्तर भी इसीने दिया है। यह संदेह होते ही उन्होंने अखाको, जिन्हें वे अबतक पूरी तरह पहचान चुके थे, आवाज देकर निकट बुलाया और भीतर आकर अपने पास बैठनेके लिये कहा। उनके वहाँ आकर बैठ जानेपर स्वामीजीने अपने संदेहकी निवृत्तिके लिये उनसे वेदान्त-विषयक कई गूढ़ सैद्धान्तिक प्रश्न पूछे। अखाने चकित कर देनेवाली स्पष्टता एवं गूढ़ताके साथ सभी प्रश्नोंके समुचित उत्तर देकर स्वामीजीको भाव-विभोर कर दिया। अखाके उत्तर स्वामीजीके आशयके अनुरूप तथा दैनन्दिनीय प्रवचनोंके संदर्भानुकूल थे। उन उत्तरोंसे स्वामीजी अत्यधिक प्रभावित हुए और पहचान गये कि अखा उनका एवं वेदान्तका सच्चा उपासक है और वेदान्तकी सारभूत शिक्षा प्राप्त करनेका सच्चा अधिकारी है।

स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजीने उसी समय अखाको अपने शिष्य-रूपमें स्वीकार कर लिया और उन्हें वेदान्तदर्शनके मूलभूत सिद्धान्त सिखाना आरम्भ कर दिया। आद्य शंकराचार्यजीके अद्वैतदर्शनसे अखाको वह संतोष प्राप्त हुआ जिसकी उन्हें चिरकालसे अभिलाषा थी। स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजीके रूपमें अखाको उन मनोभिलषित सद्गुरुके दर्शन हुए जिनके अनुसंधानमें वे कई वर्षोंतक दूर-दूर भटके थे।

अखाको अपने सद्गुरु स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजीका पूर्ण कृपा-प्रसाद प्राप्त हुआ। उन्होंने अखाको सत्य-ज्ञानका ऐसा दर्पण प्रदान किया, जो केवल अनुभवद्वारा अथवा महापुरुषोंकी सेवाद्वारा ही विरले व्यक्तियोंको प्राप्त होता है। अखाको अपने सद्गुरुके आशीर्वादसे शाश्वत ज्ञानके ईश्वरीय पीयूषकी एक बूँद चखनेका सौभाग्य बहुत शीघ्र ही प्राप्त हो गया। अब उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने जन्मस्थानपर लौटनेके पश्चात् अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जीवनका शेष भाग समर्पित कर देंगे।

अखाने आद्य शंकराचार्यजीके उन उपनिषत्परक दार्शनिक सिद्धान्तोंका, जिन्होंने आत्मज्ञानके जिज्ञासुओंको चिरन्तन कालसे अपनी ओर आकर्षित कर रखा है, गम्भीर अध्ययन करना आरम्भ किया और उन सिद्धान्तोंको अपनी कविताद्वारा अभिव्यक्त करनेमें अपना शेष जीवन लगा दिया। विश्वास किया जाता है कि अखापर कई धार्मिक विचारधाराओंका प्रभाव पड़ा था और उनसे उनकी वह काव्य-रचना, जिसकी रचना उन्होंने अपने काशीवासके समय की थी, पूर्णतः प्रभावित हुई है।

अपनी कविताके उद्रेकके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है—

दीर्घकालतक मम रोदन सुन, परम कारुणिक रमानिवास।
प्रकट हो गये मेरे आगे, अधरोंपर ले मधुमय हास॥
उन्हें देखकर भाव-निर्झरी, फूट चली झट बिना प्रयास।
और बह रही अब सरि बनकर, हर मनमें भरती मधु हास॥

इस प्राचीनतम ज्ञान-प्रवाहको जनहितमें प्रवाहित करते हुए और वेदान्तके दिव्य आलोकद्वारा प्राणिमात्रका पथ-प्रदर्शन करते हुए गुजरातके इस दार्शनिक संत-कवि अखाने लगभग सन् १५८६ में परम पद प्राप्त किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् महावीरका अमर संदेश

[पचीसवीं पावन निर्माण-शतीके संदर्भमें]

कुसग्गे जह ओसविन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए॥

'जैसे कुशकी नोकपर लटका हुआ ओस-बिन्दु कुछ ही समयके लिये टिकता है, वैसे ही मनुष्य-जीवन भी है। हे जीव! तू क्षणभरके लिये भी प्रमाद न कर।'

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।
से सोयबले य हायई, समयं गोयम मा पमायए॥

'दिन-प्रति-दिन तेरा शरीर जीर्ण होता जा रहा है, तेरे केश पककर श्वेत होते जा रहे हैं और तेरी इन्द्रियों (कान, आँख, नाक, जीभ और शरीर)का बल घटता जा रहा है। हे जीव! तू क्षणभरके लिये भी प्रमाद न कर।

वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्व सिणेहवज्जिए, समयं गोयम मा पमायए॥

'जैसे कमल शरद्-ऋतुके निर्मल जलसे भी निर्लिप्त रहता है, वैसे ही तू अपनी सारी आसक्तियोंको छोड़—सारे स्नेह-बन्धन छिटका दे। हे जीव! तू क्षणभरके लिये भी प्रमाद न कर।'

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥

'दुर्जय संग्राममें सहस्र-सहस्र शत्रुओंको जीतनेकी अपेक्षा एक अपनी आत्माको—मनको जीतना ही सर्वोत्कृष्ट जय है। जो अपनी आत्मा—मनको जीत लेता है, वही सच्चा संग्राम-विजयी है।'

न बाहिरं परिभवे, अत्ताणं न समुक्कसे।
सूयलाभे न मज्जेज्जा, जच्चा तवसि बुद्धिए॥

'विवेकी पुरुष दूसरेका तिरस्कार न करे, न अपनी बड़ाई करे। अपने शास्त्र-ज्ञान, जाति और तपका अभिमान न करे।'

निस्सन्ते सियामुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए॥

'सदा शान्त रहे; बिना विचारे न बोले, सदा गुरुजनोंके समीप रहकर अर्थयुक्त परमार्थ-साधक बातोंकी शिक्षा ग्रहण करे और निरर्थक बातोंको छोड़ दे।'

धम्मो मङ्गल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वित्तं नमंसन्ति जस्स धम्मेसया मणो॥

'धर्म सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है; धर्मका अर्थ है—अहिंसा, संयम और तप। जिसका मन धर्ममें सदा रमा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।'

जरां जाव न पीडेइ वाही जाव न वड्ढइ।
जा विंदिया न हायन्ति ताव धम्मे समायरे॥

'जबतक बुढ़ापा नहीं सताता; जबतक व्याधियाँ नहीं बढ़तीं; जबतक इन्द्रियाँ हीन—अशक्त नहीं होतीं, तबतक धर्मका आचरण कर लेना चाहिये।'

अद्धाणं जो महन्तं तु अप्पाहेओ पवज्जई।
गच्छन्तो सो दुहिहोइ छुहा तण्हाए पिड़िओ॥
एवं धम्मं अकाउंणं जो गच्छइ परं भवं।
गच्छन्तो सो दुही होइ वाही रोगेहिं पीड़िओ॥

'जो पथिक बिना पाथेय लिये ही लंबी यात्रापर चल पड़ता है, वह आगे जाता हुआ भूख तथा प्याससे पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य बिना धर्माचरण किये परलोक जाता है, वह भी वहाँ नाना प्रकारकी आधि-व्याधियोंसे पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होता है।'

जहा सागड़िओ जाणं सम्मं हिच्चा महापहं।
विसमं भग्गमोइण्णो अक्खे भग्गम्मि सोयई॥
एवं धम्मं विउक्कम्म अहमं पड़िवज्जिया।
बाले मच्चुमुहं पत्ते अक्खे भग्गेव सोयई॥

'जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जानता हुआ भी साफ मार्गको छोड़कर विषम मार्गपर जाता है और गाड़ीकी धुरी टूट जानेपर शोक करता है, उसी प्रकार अज्ञानी मानव भी, धर्मको छोड़कर और अधर्मको ग्रहण करके अन्तमें मृत्युके मुँहमें पड़कर जीवनकी धुरी टूटनेपर शोक करता है।'

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं।

'दानमें सर्वश्रेष्ठ अभयदान है।'

न हणे णो विघायए सव्वेसिं जीवियं पियं।

'न तो मारें और न घात करें; सभीको अपना जीवन प्यारा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

'कल्याण'के श्रीभगवन्नाम-प्रेमियोंद्वारा प्रतिवर्षकी भाँति जो भगवन्नाम-जप गत वर्ष, अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा सं० २०३०वि०से चैत्र पूर्णिमा सं०२०३१वि०तक हुआ था, उसकी सूचना सितम्बरके अङ्कमें प्रकाशित की गयी थी। जिन स्थानोंपर नाम-जप होनेकी सूचना हमारे यहाँ नोट हुई है, उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं। स्थानोंके नाम अङ्कित करनेमें पूरी सावधानी बरती गयी है, फिर भी रोमन लिपिमें नाम लिखे रहनेसे उन्हें देवनागरी लिपिमें लिखते समय उच्चारणमें भेद हो सकता है। बहुत-से ऐसे पत्र भी थे, जिनमें नाम ठीकसे पढ़नेमें नहीं आये। पूरी चेष्टा रखी गयी है कि नाम ठीकसे पढ़े जायँ, पर इसमें भूल होना सम्भव है। इस बार यह सावधानी विशेषरूपसे बरती गयी है कि एक भी पत्र बिना चढ़े न रहने पाये, फिर भी हो सकता है कि कुछ नाम बिना चढ़े रह गये हों। जिन स्थानोंके सम्बन्धमें ऐसी भूलें हुई हों, वहाँके जपकर्ता महानुभावोंसे हम क्षमा-याचना करते हैं। वे कृपया हमारी विवशताको ध्यानमें रखते हुए अपनी उदारतावश इसके लिये विचार नहीं करेंगे।

इस वर्ष पुनः नाम-जप करनेकी प्रार्थना की गयी है, जो सितम्बरके अङ्कमें पृष्ठ ९६९ से ९७१ पर छपी है। श्रीभगवन्नाम-प्रेमियोंसे आग्रहपूर्वक निवेदन है कि वे सदाकी भाँति इस वर्ष भी बड़े ही प्रेम एवं उल्लासके साथ स्वयं नाम-जप करें और स्वजनों-मित्रोंसे करवायें। श्रीभगवान्के नामका आश्रय अमोघ है; उसके जपसे जप-कर्त्ताका एवं विश्वका अशेष मङ्गल होता है।

स्थानोंकी सूची

अंकिरेड्डीपल्ली, अईनापुर, अएला, अक्कलकोठ, अकोला, अगौस, अचलपुर, अजबपुरा, अजमेर, अठेहा, अणूबासा, अतरदल्प, अनंगपुर, अनूपगढ़, अन्तपैठ, अबदुलपुर, अभयपुर, अभिलीघाट, अमझेरा, अमडापुर, अमनौर, अमरपुरा, अमलापुरम्, अमलाबाद, अमीननगर, अमृतसर, अमोढ़ा, अम्पोलू, अम्बलिया, अम्बाला, अम्बिकापुर, अयोध्या, अरई, अर्जुनपुर, अरड़का, अरनिया गौड़, अररिया, अरुआखास, अरुणनगर केटौन, अरोला, अलगोल, अलवर, अलीगढ़, अलीराजपुर, अल्मोड़ा, अशोकनगर, असनावर, असरीखेड़ा, असारी माधुरी, अस्तरगंज, अहमदाबाद, अहल्यापुर, अहेरीपुर, आकोट, आगरा, आनन्दपुर, आमी, आरा, आलमपुर, आवगिला-सायर, आवाँ, आसप्पुर, इचलकरंजी, इचाक, इछावर, इटकी अन्तरगाँव, इटारसी, इटावा, इटौजा, इन्दरगढ़, इन्द्रढ़, इन्दौर, इलाहाबाद, ईश्वरपुरमाई, उजानगंगोली, उज्जन, उडीपी, उत्तरकाशी, उदगीर, उदयपुर, उदवत-नगर, उदहिन, उदालगुड़ी, उधमपुर, उबोरा, उमरगाँव, उमरा, उमरानाला, उमरापुर, उमरी, उमरैठा, उमेदाबाद, उरई, उसरी, ऊदपुर, ऊना, एटा, एकडंगा, एकडेंगवा, एकलारा, एकेश्वर, एदलाबाद, ऐनापुर, ऐली, ओगना, ओबरा, औरैया, औरंगाबाद, कंजिया, ककठियाँ, कचमन, कचौरा, कछवा, कटक, कटनी, कटरा, कटिहार, कटंगी, कठौतिया, कडैल, कद[illegible], [illegible], [illegible],

कन्नौज, कन्नौद, कन्नानगंज, कपरौल सिरोमन, कपसौना, कपालपुर, कपूरथला, कबरई, कम्बोपुर, कमालपुर, करगीरोड, करजाइनबाजार, करनौली, करमपुर, करवाड़, करसौत, करंजी, कराईनारा, कराड़, करीमार, करीमपुर, करिलोयतुआ, करेरा, करौता, करौली, कर्णप्रयाग, कलई, कलकत्ता, कलानौली, कलिगाँव, कवठल, कवरई, कसरौर, कसौरा, काँटावाजी, काँधला, काटनेद, काटेमनिवली, कादरगंज पेढरा, कानपुर, कामदेवपुर, कालका, कालमुखी, कालागढ़, कालासीला, कालीम्पोंग, कालेसरा, कावतरा, कावहरा, काशीपुर, कासगंज, कासारसरसी, किछा, किठौली, किदवईनगर, किरगा, किराना, किशुनगंज, किशुनगंजबाजार, किसको, किसरौल, कुकुढ़ा, कुकुरघाटी, कुटरा, कुटासा, कुटेश्वर, कुनकुरी, कुरावर, कुसमरा, कूँडिया, कूँतणी, कूचबिहार, कृष्णनगर, केटावन, केलिया, केवई, केवटगामा, केसकाई, केसिंगा, कैथी, कैथोलिया, कोकलचक, कोकुलपल्ली, कोट, कोटद्वार, कोटपल्ली, कोटफतूही, कोटाकोण्डा, कोटेतरा, कोठियातुली, कोडाहरा, कोण्डापुरम्, कोमना, कोराम्दे, कोर्रा, कोरियादीक्षित, कोलर, कोलासी, कौड़ियागंज, कौड़ीहार, कौरीलहरी, क्योंटरा, क्लुपूरुपल्ली, खजूरी, खण्डवा, खण्डेलवालनगर, खनलवाड़ा, खमरिया, खमेरा, खरकड़ीकलाँ, खरगा, खराघोड़ा, खरियार, खरेली, [illegible], [illegible], खाचरियावास, खातौली, खामगाँव,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खालिसगुड़ा, खुरई, खुर्जा, खूँटी, खेड़ली, खेड़लीतँवरान, खेड़ा, खेतार, खेत्री, खेमरी-हरचंद, खैर, खैराचातर, खैराबाद, खोड़, खोराटा, खोरी, खौड़, खौराटी, गंगधार, गंगापुर, गंगावाड़ा, गंगोलीहाट, गंगोह, गंगौर, गंज, गंजाम, गजरामपुर, गड़हरा, गढ़पुरा, गढ़र, गढ़शंकर, गढ़ी, गढ़ीपुरा, गया, गरलघोरीमना, गरीफा, गरोठ, गवाँ, गवाखेड़ा, गाजियाबाद, गाजीपुर, गिंजोठाकुरगाँव, गिरवर, गिरिजापुरी, गिरिडीह, गीजगढ़, गुंगावटी, गुंद्वर, गुजरा, गुड़ारियाजोगा, गुना, गुमखानी, गुरसराय, गुराड़ियाजाका, गुरुण्डी, गैसाबाद, गोंडा, गोडाखेरा, गोनौन, गोमतीनगर, गोरुडुआ, गोलमूरी, गोलाकोट, गोलाघाट, गोलूवाला, गोवा, गोविन्दपुर, गोविन्दपुरदेवी, गोहद, गौतमपुरा, गौनेरी, गौरपार, गौरीपुर, गौसपुर, ग्वालपाड़ाबाजार, ग्वालियर, घरघोड़ा, घाघरा, घाटशिला, घाटोटाँड़, घुटकेला, घोड़ाडोंगरी, चंदेरी, चकराता, चकलाबाघ, चकेरी, चटकपुर, चण्डा, चन्दनपट्टी, चन्दनमाटी, चन्दरहिया, चन्द्रहटी, चपकी, चरखारी, चलदिगानहल्ली, चवाबेगमपुर, चाँदगल, चाँदसर, चाँदीकुठवा, चाँपा, चाँक, चानसेन, चावड़िया, चिखलुण, चिड़ावद, चितहरी, चितौरा, चित्रांकी, चिनहाट, चिपरुपल्ली, चीचली, चीलरगी, चुनार, चूरू, चेचर, चौखेज, छछून्द, छतरपुर, छतैनी, छपरा, छपोरा, छाता, छापर, छापड़ा, छितैनी, छिदारी, छिन्दवाड़ा, छिवरामऊ, छुरिया, छेवड़ा, जंगीपुर, जंडवाल, जगतपुर, जगतौली, जगदीशपुर, जगन्नाथपुर, जगाधरी, जटमलपुर, जनार्दनपुर, जपला, जबलपुर, जमलापुरध्यान, जमशेदपुर, जमालपुर, जमालीपुर, जमुआनीकलाँ, जम्मू, जयपुर, जयरामपुर, जयसिंहनगर, जलगाँव, जसरापुर, जह्वार, जाँगलू, जाट, जाफराबाद, जामरी, जालन्धर, जालौन, जिलुण्डा, जींद, जुखास, जुरहरा, जैथारी, जोधपुर, जोरावरडीह, जोल्हूपुर, जोशीमठ, जौनपुर, झाँसड़ी, झाँसी, झागर, झालावाड़, झालू, झींझक, झुँझनूँ, झुंझरी, झुनीर, झुमरीतिलैया, झुमानी, झुमियावाली, टिक्मानी, टिकारी, टिटिलागढ़, टिमरनी, टिहरी गढ़वाल, टीकमगढ़, टेमनी, टेल्हुआ, टोंक, टोडगढ़, ठाढ़ीभवानीपुर, ठिकहाँ, ठूठीबारी, ठेरा, डरौली, डाँडली, डालपाड़ा, डालमियानगर, डाल्टनगंज, डाला, डीडीहाट, डीहाबाजार, डुंगरिया, डुमराँव, डुमरियाखूर्द, डुमरी, डोम्हाटोला, ढढ़िया, ढाँगल, ढाणकी, ढिकवानी, ढींगावाली जाटाँ, ढुरौली, ढोढनडीह, तथाड़ा, तरीपल, तरंगा, तवानगर, तलवाड़ा, तिकोनिया, तिरोड़ा, तिलवाड़ा, तिलकपुर, तिलोकपुर, तिसिओता, तीखमपुर, तुमकुर, तुलसीपुर, तुसरा, तूमड़ा, तेउस, तेगळी, तेजपुर, तेजम, तेतरी, तेमथा, थाणा, दखोसी, दमोह, दरभंगा, दरेकसा, दलसनूर, दलाईपाड़ा, दाढ़ी हरिकुटी, दारी, दिग्विजयग्राम, दिदावली, दिवियापुर, दीघी, दीरचाँदपुर, दीवलाखेड़ा, दुबेपुर, दुमका, दुलईपुर, देरगाँव टाउन, देवगढ़, देवठी, देवबन्द, देवभिलाई, देवारी, देवल, देवहलिया, देवास, देहरादून, दोन, दौरवाड़ा, दौरिया, धनऊपुर, धनकुड़िया, धनगावाँ, धनतोला, धनबाद, धनोरा, धनौड़ाखुर्द, धमतरी, धरपसी, धाना, धानातिवारीपुर, धामणगाँव, धामपुर, धार, धारवाड़, धुरी, धुलिया, धोरीकित्ता, धौलपुर, नगपारा, नगरी, नगरोटा बगवाँ, नडियाद, नन्दुरवार, नन्दुरा, नयागाँव, नयानगर, नयीदिल्ली, नरइनियाँ, नरसिंहगढ़, नरियाँव, नवलपुर, नवादा, नवादावेन, नवाँशहर दवाबा, नाँदगाँवपेठ, नागपुर, नागौर, नाभा, नामरूप, नारदीगंज, नारनौल, नारहाठ, नासिकरोड, निगुलसारी, निगोही, निनोद, निपनियाँ, निपनियागढ़ी, निरसाचट्टी, नीमी, नुरम्बल, नूरपर, नेफामारी, नेवरा, नेवरी, नैका, नैढ़ी, नैनपुर, नैनी, नैनीताल, नैला, नोरवड़ा, नोहर, नौगढ़ा, नौतनवाँ, नौरंगपुर, नौरोजाबाद, पंचगछिया, पंचरीखूर्द, पंचासिया, पंजरी, पंडवी, पकरहट, पकरी, पचाढ़ा, पछाड़, पटना, पटियाला, पडरौना, पण्डुई, पताही, पथलगाढ़ा, पदमपुर, पनवाड़, पनारी, पन्ना, परतवाड़ा, परतेवा, परदवाँ, परमदरा, परमानन्दवीवा, परली-बैजनाथ, परसदा, पलानीमाल, पल्ली, पहरभा, पहाड़पुर, पांगरा, पांडुर्गा, पाटन, पाटलीपुरा, पाटोदा, पाठशाला, पाठल्या, पाण्डेगाँव, पातड़ामण्डी, पारोला, पालगंज, पालवी, पिछोर, पिंडवाड़ा, पिंडुरिया, पिथौरागढ़, पिपरौली, पिपलवाकलाँ, पिपलाज, पिपलानी, पियरौटा, पिलानी, पीनना, पीपरीगहरवार, पीपरतराई, पीपलरावा, पीपलवाडा, पीरगैर, पीलीभीत, पुठी-पुण्डीदीरी, पुनासा, पुनासी, पुरवा, पुरवालयान, पुरहिया, पुरी, पुलियूर, पुवायाँ, पुष्कर, पूनमचंद, पूना, पूरनपुर, पेटलाद, पैंची, पोखरैड़ा, पोड़ी, पोरबन्दर, पोरैयाहाट, प्रतापगढ़, प्रतापपुर, फगरपुर, फगवाड़ा, फतेहगढ़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलोदी, फागी, फागुनागाँव, फिरोजपुर, फिरोजाबाद, फिल्लौर, फुलआवंगी, फुलहर, फेरूसा, फैजपुर, फैजाबाद, बंगलोर, बंगिनोबादी, बंशीकल्याणुर, बक्सर, बगड़िया, बगासपुर, बटवाड़ी, बटाहार, बड़गाँव, बड़नगर, बड़वानी, बड़वाह, बड़हरी, बड़ीफलेवाल, बड़ौत, बड़ौदा, बढ़ोली, बण्डे, बतरा, बदनावर, बदरौली, बदरौलीबाजार, बदवाई, बदायूँ, बनखेड़ी, बन्दी दासपुर, बभनगामा, बम्बई, बम्हनी, बरगढ़, बरई, बरनगाँव, बरनमहगवाँ, बरपेटारोड, बराठालाँ, बरायठा, बरुअटा, बरूँधन, बरूवा, बरेली, बरौंधा, बलखड़, बलरामपुर, बलिया, बसेठ, बसौरा, बस्ती, बस्तीशेख, बहराइच, बहरोड, बहिरकेला, बहुआ, बाँकी, बाँगरा, बाँगरदा, बाँदनवाड़ा, बाँदा, बाँसगाँव, बाँसवाड़ा, बाँसवाड़िया, बागडोली, बागबहरा, बागीबिल, बाजोली, बाबरा, बाबूगंज, बारसी, बाराँ, बारीडीह, बालूघाट, बाली, बिछवाँ, बिरमित्रापुर, बिरलानगर, बिराल, बिलण्डा, बिलासपुर, बिसरा, बिसरापार, बिसवाँ, बिस्वाब्रिज, बुरता, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बूँदी, बूखरी, बेगूँ, बेतौना, बेमेतरा, बेरमो, बेलमण्डई, बेलसर, बेसाढ़, बैजनाथ गरुड़, बैतूल, बैरसिया, बोईसर, बोकठा, बोपारायकलाँ, बोमाकारी, बोराना, बोराडा, बौरी बेलदारी, ब्रह्मपुरी, ब्रह्मावली, ब्यापुर, भँवरीया चायल, भगवानपुर भच्छी, भटगामा, भटगाँव, भटवाड़ा, भटिण्डा, भड़वास, भण्डावर, भदरथी, भदरुक, भदवड़ा, भदोना, भदोरवरा, भदोही, भदौल राघवनगर, भद्रक, भद्रपुर, भमौलीराज, भरतपुर, भरथना, भकूंरा, भरूँच, भवदेवपुर, भवानी-पाली, भवानीपुर, भाऊगढ़, भागलपुर, भाटपार, भाड़ावास, भादरा, भादसों, भान, भाघूं, भावनगर, भिटावल, भिट्ठा, भिठौला, भिण्ड, भिलाई, भीठी, भीलवाड़ा, भुजुरा, भुडसा, भुरवा, भुसावल, भुसौला अदाई, भूपतपुर, भूरा, भूराही, भेडवन, भेड़वा, भेन्दरा, भेरेवाला, भेलवाँ, भैरुखेड़ा, भैस्कोट, भैसरौली, भोइन्दा, भोकरदन, भोजपुर, भोड़बहा, भोपाल, भोपालगढ़, मंगलवन्दी, मंगरूल नववरे, मंझारपुर, मऊगंज, मच्छरगाँवा बाजार, मझउआ, मझियाना, मड़खेरा, मड़वास, मण्डाला, मण्डावरी, मण्डीदीप, मणिगाँव, मथुरा, मदनपुरा, मदाद, मद्रास, मधुवन, मधुवनी, मनकापुर, मन्दसौर, [illegible]

मनसींघा, मनासा, मनीमाजरा, मनेन्द्रगढ़, मनोहरपुर, मनौना, मरूई, मलगाँव, मलणगाँव, मवड़ा, महमूदपुर, महाराजगंज, महुआ, महेवा, महेशपुर, महेशुआ, महोबा, महीली, महूँ, माँगरोल, माँगलिया, माँडला, माणिकपुर, मानपुर, मानपुर कौड़िया, मानपुर नगरिया, मानपुर हलद्वानी, मालौनी, मिर्जापुर, मिवड़ी, मीनासर, मीरगंज, मुंगावली, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुड़वाँ, मुण्डाहैडा, मुधोल, मुरादपुर, मुरादाबाद, मुरार, मुरारी, मुल्लापुर गरीबदास, मुस्तफाबाद, मुसीला अढ़ाई, मृगवास, मेंहदावल, मेउता, मेढ़ा, मेधौल, मेरठ, मेहसी, मेहाँ, मोकामा, मोचीपुरा, मोतीपुर, मोतीपुर डोंगर, मोदीनगर, मोरसंड, मोहनपुर, मोहम्मदाबाद, मोहारी, मौदहा, यवतमाल, यादगीर, येनखेड़ा, येवले, येळब, रकौची, रजीपुर झझरा, रजीफाबाद, रजौधा, रझौआकलाँ, रणायरा, रतनखेड़ी, रतलाम, रतवाल, रफीपुर, रमुना, रहावली उबारी, राँगामाटी, राँची, राँवल, राउरकेला, राजकोट, राजगढ़, राजग्राम, राजनाँदगाँव, राजा रेहुआ, रानीखेत, रामकण्डा, रामनगर, रामपायली, रामपुरा, रायगढ़, रायचुर, रायतुम, रायपुर, रायपुरिया जागीर, रायबरेली, रायबोगा, रायसिंहनगर, रावतगाँव, राहे, रिसौरा, रुरुगंज, रुसड़ा, रेगवस, रेणुकूट, रेरक, रेरकलाँ, रैंगणियाँ, रैनी सतवरिया, रोहिणी, लक्सेटीपेट, लक्ष्मीपुर, लखनऊ, लखीमपुरखीरी, लत्ता, ललितपुर, लश्कर, लसकरीपुर, लहरापार, लाखनमाजरा, लाठगाँव, लालकुआँ, लालगढ़, लालगाँव, लालगोला, लालडू, लालपुर, लावा, लिधौरा, लिलनीगाँव, लीलापट्टी-वनकटिया, लुधियाना, लुहरां, लोदना, लोसल, लोहई, लौजार, लौजी, वंशीकल्याणपुर, वगटा, वचौटरा, वजीपुर, वड़वाहा, वणी, वणीलोधी, वमराड़ी, वर्धा, वरनमहगवाँ, वरौना, वल्लभग्राम, ववुना, वसंत, वसई, वसौरा, वाजितपुरा, वादोद, वामोरकलाँ, वाराणसी, वासुकीनाथ धाम, विजयीपुर, विजापुर, विजोलियाँ, विलखी, विन्दकी ठठराही, विराटनगर, विष्णुपुरखुर्द, विसरापुर, विलवनीया, विसावड़ी, वीरथला, वैर, वैरहा, वैसाडीह, वैहामुड़ा, वोहना, वृन्दावन, शंकरगढ़, शंकरनगर रमना, शकरा, शक्करगढ़, शकूरबस्ती, शरफुद्दीन-पुर, शहरना, शाहजहाँपुर, शिंगली, शिमला, शिरपुर, [illegible] पुरी, शिवरीनारायण, शिवली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुजालपुर, शेरगढ़, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीपुरा, श्रीमाधोपुर, श्रीरामपुर, संगमनेर, संग्रामपुर, संसाई, सकेरा भण्डारन, सखतरदानी, सखटिपल्ली, सजनपुरा, सतारा, सनावड़ा, सनावद, सनेही, सबलीडीह, सम्मतखेड़ी, सम्बलबुर, सम्भल, समस्तीपुर, समसेर, समाना, सरगूजा, सरदारपुर, सरदारशहर, सरसी, सरायखालिस, सलखन, सलवाह, सल्लाधारी, सवैयामीर, सहरना, सहारनपुर, सहुरी, साईबाड़ा, सागौनी, सादामऊ, सातनेर, सामरा, सावरगाँव, सावा, साहपुरी, साहुखेड़ी, साहेबगंज, साहेबान, सिंगाही, सिंगीपुर, सिंघामऊ, सिंथौली, सिंहेश्वरस्थान, सिकन्दरपुर, सिकरौं, सितारगंज, सिद्धूरामपुर, सिधौली, सिरसा, सिरंचा, सिरौंज, सिलगाँव, सिवनी, सिहोरा, सींथल, सीकर, सीतापुर, सीतामऊ, सीरारी, सीहासनी, सीहोर, सुजवार, सुजानगढ़, सुठालिया, सुन्दरनगर, सुन्दरी, सुनगाँव, सुनाममण्डी, सुपौल, सुबलिया, सुरसण्ड, सुरेन्द्रनगर, सुरेमनपुर, सुरेशसुर, सुल्तानगंज, सुल्तानगढ़, सुल्तानपुर, सुलूपेंटा, सूँसेड़ा, सूलिया, सूरजगंज, सेऊ, सेगाँव, सेडम, सेमरा, सेमराबुजुर्ग, सेमरीहरचंद, सेमरौर, सेमली, सेमल्यानसर, सेवई, सैय्यदखानपुर, सोडलपुर, सोड़खूर्द, सोनपुरराज, सोनभद्र, सोनारी, सोनवारी, सोनीपत, सोनीरमखरिया, सोनोमँडरो, सोमना, सोरखण्डकलाँ, सोरामपुर, हजारीबाग, हमरावलुना, हमीरपुर, हरचंदपुर, हरजूनगला, हरद्वारीगढ़, हरीगढ़, हरीपुरा, हल्दौर, हलद्वानी, हल्दीबाड़ी, हसूपुरा, हाँफ, हाथरस, हापुड़, हावड़ा, हाबीभौआड़, हारतरा, हिपरा, हिरना, हींगनघाट, हीडवा, हुजूराबाद, हुमायूँपुर, हैदराबाद, हैबड़गाँव ।

—संयोजक, 'नाम-जप-विभाग', 'कल्याण'—सम्पादकीय विभाग, पो० गीतावाटिका (गोरखपुर)

भक्त पिशाच

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी, दुर्विज्ञेय गति भगवान् श्रीकृष्णके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। सर्वान्तर्यामी दयाधाम द्वारकाधीश अपने अग्रज बलराम एवं यादवोंको द्वारकाकी रक्षाका भार सौंपकर कैलास-यात्राके लिये प्रस्थित हुए थे। कमल-नयन रुक्मिणीपति जब बदरिकाश्रमके मध्यभागमें विनतानन्दनकी पीठसे उतरकर सुर-समुदायके साथ खड़े हुए, तब रात्रि हो चली थी। दीपक जला दिये गये थे। अस्थिचर्मावृत महान् तपस्वी एवं ऋषिगण अपने अग्निहोत्र आदि कर्म पूरे कर श्रीहरिके स्वागतार्थ द्रुतगतिसे चल पड़े।

'श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है। देवदेव! कृष्ण! केशव! प्रणवात्मन्! जगन्नाथ! हरे! हम आपके अक्षय सुख-शान्ति-निकेतन चरण-सरोरुहमें सादर प्रणाम करते हैं।' —अत्यन्त विनम्र होकर भक्तिभावसे मुनियों एवं ब्राह्मणोंने वनमालाधारी वासुदेवके त्रैलोक्य-पावन अभयद चरणोंमें प्रणाम कर अर्घ्यादिसे उनकी पूजा की।

'आपलोगोंका उत्तम तप उत्तरोत्तर बढ़ता रहे।' —प्रसन्न होकर यदुनाथने कहा। सर्वात्मा एवं सर्वसुहृद् देवकीनन्दनने प्रत्येक तपस्वी, मुनि एवं ब्राह्मणसे उनका कुशल-समाचार पूछा।

'आपकी कृपासे हमें सर्वत्र कुशल है।'—श्रीहरि-दर्शन-लोलुप मुनियोंने बद्धाञ्जलि उत्तर दिया और फल, मूल आदिके द्वारा देवताओंसहित भू-भार-हर्ता प्राणधन श्रीकृष्णका प्रेमपूर्वक आतिथ्य किया। उस परम पावन तपोवनमें राग-द्वेष-मुक्त संयतेन्द्रिय तपस्वी महात्माओंके दर्शन कर नन्द-नन्दन मुदित हो रहे थे।

वंशीविभूषित नवनीरदाभ श्रीकृष्ण पतितपावनी जाह्नवीके उस उत्तरी तटपर पहुँचे, जहाँ उन्होंने पूर्वकालमें तप किया था। उज्ज्वल जलधार लिये भुवनपावनी गङ्गा बह रही थीं। समीपस्थ लता-जाल-समावृत मनोरम वन-प्रदेश शान्त था। उस पुण्यमय एकान्त वनमें त्रैलोक्यवन्दित श्रीश्यामसुन्दर बैठ गये। वे त्रैलोक्यसुन्दर वहाँ अनिर्वचनीय तत्त्वका चिन्तन करते हुए समाधिस्थ हो गये।

'यहाँ असंख्य मृग सुलभ हैं। सबको घेरकर इधर ले आओ।'—अविचल भावसे समाधिस्थ धर्मप्राण श्रीकृष्णने भयानक शब्द सुना। साथ ही उन्हें ये शब्द भी सुनायी पड़े—'विष्णो! देवेश्वर! स्वामिन्! केशव! आपके मुनि-मन-भावन चरण-कमलोंमें बार-बार नमस्कार है!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनराज गरजने लगे। मृगोंके पीछे भयानक श्वान दौड़ रहे थे और भयभीत मृगगण प्राण-रक्षाके लिये पूरी शक्तिसे भागे जा रहे थे। रीछों, व्याघ्रों एवं चिग्घाड़ते हाथियोंके गर्जनसे सम्पूर्ण शान्त वन-प्रान्त कम्पित हो गया।

'यह वज्र-कर्कश कोलाहल, शान्त तपोवनमें भयभीत भागते मृग और मेरी स्तुति! आश्चर्य है।'—विश्वात्मा अर्जुन-सखाकी समाधि टूट गयी। 'क्रूरतम श्वान, भागते पशु-पक्षी, इन्हें आत्मसात् करनेकी प्रेरणा—ऋषियोंके आश्रमके समीप यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है!' विश्वात्मा श्रीकृष्ण सावधान होकर बैठे। उसी समय भागते हुए शत-शत मृग उन भुवनमोहनके समीप आ गये। उनके पीछे कराल काल-तुल्य रक्तपिपासु श्वान-समुदाय दौड़ता आ रहा था।

सहसा सहस्रों मशालें जल उठीं। गहन तमःपूरित वनमें सर्वत्र प्रकाश फैल गया।

सम्मुख वीभत्स एवं भयंकर भूत-प्रेत दीखने लगे। वे गरजते हुए विभिन्न प्रकारकी वाणी बोल रहे थे। उनकी मुखाकृति अत्यन्त क्रूर एवं भयावह थी।

उनके तीक्ष्णतम शरोंसे कितने ही मृग कराल कालके गालमें चले गये थे, कितने वाण-विद्ध होकर धरतीपर छटपटा रहे थे, कितने ही यत्र-तत्र भाग रहे थे। अपने प्राण बचानेकी कामनासे सहस्रों मृग भागते हुए वहाँ चले आये। उनकी दृष्टि भुवनमोहन घनश्यामपर पड़ी तो उन्हें घेरकर खड़े हो गये। कुछ ही देरमें पुत्रवती भयानक पिशाचिनियाँ भी वहाँ आ पहुँचीं। उनकी विकराल मूर्तिको देखकर रोएँ खड़े हो जाते और धैर्य छूट जाता था। उनकी बुभुक्षा अत्यन्त तीव्र थी। हिंस्र श्वान भी वहाँ पहुँचकर इधर-उधर घूमने लगे।

'अद्भुत दृश्य!' भगवान् श्रीकृष्ण चकित होकर सामान्य मनुष्यकी भाँति सोचने लगे—'अहिंसाको परम धर्म समझनेवाले ऋषियोंके पुण्यमय आश्रमोंके समीप यह हिंसा कैसी? यह पैशाचिकता कहाँसे आयी? और साथ ही मेरा स्तवन! सब कुछ सर्वथा आश्चर्यजनक है!'

सहसा भयानक अट्टहास हुआ। मुक्तिदाता लीलानायक मधुसूदनके सम्मुख दो भयानक पिशाच दीखे—दीर्घकाय, सुपुष्ट मांसपेशियाँ, पिङ्गल वर्ण, विशाल जिह्वा, नेत्रोंसे जैसे स्फुलिङ्ग झर रहे थे। उनके तीव्र आघातसे वृक्ष हिलने लगे। वे जबड़े चाटते तथा दाँत किटकिटाते हुए 'कृष्ण! कृष्ण! माधव!' नामका कीर्तन कर रहे थे।

'हमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी लक्ष्मीपति श्रीहरिके दर्शन कहाँ होंगे?' दोनों भयानक पिशाच कहते जा रहे थे—'उन परम प्रभुका निवास कहाँ है? इस अरण्यमें वे देवदेव कहाँ मिलेंगे? हमें उन करुणावतारके दर्शन किस प्रकार होंगे?'

'ओह! जन्म-जरा-मृत्युका क्लेश कितना दुस्सह होता है!'—वे कहते जाते। 'गर्भवास, सांसारिक यातना और मृत्युका आवर्तन होते ही रहता है। इनसे अशरण-शरण श्रीहरिका पद-पद्म-आश्रय ही त्राण दे सकता है, अन्य कोई मार्ग नहीं।'

'हमने निश्चय ही भयानक पाप किये हैं, जिनके फलस्वरूप क्रूरकर्मी पिशाच होकर निर्दयतापूर्वक प्राणियोंका वध करते हैं, पर निश्चय ही वे करुणाब्धि हमपर करुणाकी वृष्टि करेंगे। हम इस अधम योनि एवं अधम कर्मसे मुक्त हो जायँगे। अतएव हमलोग तन-मन-प्राणसे प्रयत्न कर उन करुणा-वारिधि मुक्तिवितरक मङ्गलमय प्रभुका मङ्गल-दर्शन करेंगे।'

पिशाचोंकी दृष्टि परम तेजस्वी सौन्दर्य-सुधा-सिन्धु अनाथनाथ द्वारकाधीशपर पड़ी। उन्होंने चकित होकर देवदेव श्रीकृष्णसे पूछा—'सुकोमल श्यामल अङ्ग-कान्ति, प्रफुल्ल कमल-दल-सदृश विशाल एवं सुन्दरतम नेत्र, अवर्णनीय अमित सौन्दर्य, परम तेजस्वी, सुकोमल-काय आप वन्य-प्राणियोंसे घिरे हुए भयानक अरण्यमें एकाकी कौन हैं? आप देवता, यक्ष, किंनर, इन्द्र, यम, कुबेर हैं या साक्षात् श्रीहरि ही तो आप नहीं हैं, जो इस गहन वनमें हमारा जीवन सफल करनेके लिये शिलातलपर ध्यानस्थ आसीन हैं?'

भयानक पिशाचद्वयने अत्यन्त विनम्र वाणीमें आगे कहा—'दूसरोंको मान प्रदान करनेवाले दिव्य पुरुष आप कौन हैं? कृपापूर्वक हमें अपना सुस्पष्ट परिचय दीजिये।'

'मैं यदुकुलोत्पन्न क्षत्रियोचित कर्म करनेवाला त्रैलोक्य-पालक एवं दुष्टोंका शासक हूँ।'—भक्तवत्सल नवघन गोपिका-प्राणके अधरोंसे जैसे सुधा-बिन्दु टपके। 'मैं इस समय कर्पूरगौर पार्वतीवल्लभके दर्शनार्थ कैलास जाना चाहता हूँ।'

'यह अनुपम तपःस्थल एवं पुण्यभूमि है।' वनमालीने आगे कहा—'यहाँ जितेन्द्रिय, तपस्वी एवं ब्राह्मण निवास करते हैं। इस सिद्ध-भूमिमें श्वान-समुदाय एवं पिशाच कभी नहीं दीखे। हिंसा यहाँ कभी हुई नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुद्र स्वभाववाले कृतघ्नोंको यहाँ प्रवेश नहीं करना चाहिये। मैं इस महिमामयी पावन स्थलीका रक्षक हूँ। तुमलोग कौन हो ? यह विशाल सैन्य किसका है ? तुमलोगोंकी उपस्थितिसे वीतराग ऋषियोंकी तपश्चर्यामें विघ्न पड़ सकता है। यदि ऐसा कुछ भी हुआ तो निश्चय ही मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। तुम शान्तिपूर्वक मधुर वाणीमें अपना परिचय दो।'

'मैं आदिदेव, अजन्मा, सर्वपापहारी, सच्चिदानन्दघन श्रीहरिका स्मरण कर मनकी स्पष्ट बात आपसे कहता हूँ।'—पद्मपत्राक्ष श्रीकृष्णके वचन सुन एक प्रलम्ब-भुज विकराल पिशाच उनसे सच-सच कहने लगा—"मैं देवदेव उमानाथके सखा कुबेरका अनुचर मांसभक्षी, विकृताङ्ग, काल-तुल्य निर्दय एवं प्राणिमात्रका हिंसक, प्रसिद्ध घण्टाकर्ण नामक पिशाच हूँ और यह कालका भी काल मेरा अनुज है। ये पिशाच-पिशाचिनियाँ, विशाल सैन्य एवं श्वान-समुदाय मेरे ही हैं। मैं पापकर्मी पिशाच भूतनाथके आवास कैलासपर्वतसे आ रहा हूँ। यह आयोजन भगवान् अधोक्षजकी पूजाके लिये किया गया है।

"पहले मैं श्रीहरिका घोर निन्दक था। उन मङ्गलमूर्तिके पावनतम नाम मेरे कर्ण-कुहरमें प्रविष्ट न हो जायँ, इसलिये मैंने अपने कानोंमें घण्टा बाँध लिया था।

"एक बारकी बात है। मैंने भूतभावन शिवके समीप पहुँचकर उनकी आराधना प्रारम्भ की। मैं प्रेमपूर्वक उनका स्तवन करता ही रहा। करुणामूर्ति गङ्गाधर प्रसन्न होकर प्रकट हो गये।

"अभीष्ट वर माँगो।' दयानिधान विश्वनाथने करुणामयी दृष्टि डालते हुए मुझसे कहा।

"मैं मुक्ति चाहता हूँ।' करुणासागर भोलेनाथकी मञ्जुल मूर्तिका दर्शन करते हुए मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे याचना की।

"चराचर जगत्के मुक्तिदाता एकमात्र लोकत्रयाश्रय विष्णु ही हैं।' देवाधिदेव महादेवने स्नेह-स्निग्ध स्वरमें कहा—'तुम बदरीतीर्थमें नर-नारायणके आश्रममें जाकर उन गरुडध्वजकी उपासना करो। वहाँ वे भक्तवत्सल पुण्डरीकाक्ष तुम्हें मुक्ति प्रदान करेंगे।' उन परमगति श्रीहरिकी महिमा समझकर मैं यहाँ उनके त्रैलोक्यदुर्लभ भुवन-पावन अनूप रूपका दर्शन कर अपना जीवन धन्य करने आया हूँ।"

"एक बात और है।' पिशाच कहता जा रहा था—'पश्चिमी समुद्रमें स्थित महान् द्वारकापुरीमें पुरुषोत्तम श्रीहरि निवास करते हैं। वे यहाँ पधारे हैं। मैं उन धर्म-संस्थापक तथा मन-वाणीसे अगोचर परमप्रभुके दर्शनार्थ ससैन्य यहाँ आया हूँ। आज हमें साक्षात् सर्वेश्वर श्रीविष्णुका दर्शन करना है।

"वे ही करुणामय श्रीहरि सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके कारण, पालक, कर्ता, हर्ता, जगदीश्वर, आदिपुरुष, सबके उद्गम-स्थान और बीज हैं। जो जगत्पालक, जगत्स्रष्टा, महामहिम प्रभु प्रलयकालमें सम्पूर्ण सृष्टिको आत्मसात् कर शिशुभावसे अक्षयवटके पत्रपर अपने कर-कमलो एवं पादाब्जोंको उछालते हुए क्रीड़ा करते हैं; हम उनके दर्शनके लिये उद्यत हैं।"

"अब अर्धरात्रि हो चली है।' कमलनयन श्रीकृष्ण पिशाचकी निश्छल एवं सरल वाणी ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। अन्तमें उसने कहा—'हमारे नित्य नियमका समय हो चला है। अतएव हम अन्यत्र चलते हैं। आप भी जहाँ चाहें, जा सकते हैं।"

पिशाच समतल भूमिपर आया। उसने कुत्तोंको दूर खदेड़कर जलसे आचमन किया और कुश बिछाकर शुद्धताके लिये उसपर जल छिड़का। फिर वह अपने समीप साधन-सामग्री रखकर उस कुशासनपर बैठा और जगत्प्रभुका ध्यान करने लगा।

उसके विशाल नेत्र मुँदे थे, पर उनसे अश्रु-धार बह रही थी। भयानक अधर हिल रहे थे। करुणाविगलित स्वरमें वह परमप्रभुसे प्रार्थना कर रहा था—

'उन चक्रधारी भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक एवं सर्वात्मा गदाधरके चरणोंमें बार-बार नमस्कार है। प्रभो ! आपके नाम-कीर्तनसे मेरे मनकी शुद्धि हो जाय। करुणा-वारिधि केशव ! अब पुनः मुझे ऐसा दुःखप्रद भयंकर जन्म न प्राप्त हो। आपके स्मरणसे मैं पवित्र हो जाऊँ। सर्वलोकमहेश्वर ! आपके चक्रके प्रहारसे मेरा यह अधम शरीर नष्ट हो जाय और फिर मैं भव-बन्धनमें न पड़ूँ। याचकोंके कल्पतरु ! मैं जहाँ-कहीं जन्म ग्रहण करूँ, आप सदा-सर्वदा मेरे हृद्देशमें विराजित रहें। मेरी स्तुति अविराम चलती रहे और आप मुझे अपना सेवक स्वीकार कर लें। दयानिधान ! दया करें। करुणामय ! आपकी मङ्गलकारिणी करुण दृष्टि मुझपर पड़ जाय। कृपा करें, करुणानिधान ! कृपा करें।'

इस प्रकार स्तुति करता हुआ पामर, जातिका भयंकर, पर हृदयसे भगवद्भक्त पवित्र पिशाच सर्वव्यापी श्रीहरिके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानमें तल्लीन हो गया । अपने हृत्कमलपर श्रीहरिको प्रतिष्ठित कर वह पवित्र पिशाच सुखपूर्वक बैठा हुआ निखिल-सृष्टिनियामक श्रीविष्णुका स्मरण करता रहा ।

भक्त-प्राणधन लक्ष्मीपति श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) पिशाचके अन्तर्मनकी स्थितिसे प्रभावित हुए । कुबेरके उपदेशसे पृथ्वीपर आजीवन उसके द्वारा 'वासुदेव, कृष्ण, माधव' आदि नामोंका कीर्तन होनेसे संतुष्ट होकर वे पीताम्बरधारी मङ्गलधाम प्रभु कच्चा मांस खाने एवं रक्त पीनेवाले पिशाचके हृदयमें प्रकट हो गये । श्यामलघन-वपु श्रीहरिके कर-कमलोंमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म एवं कण्ठमें वनमाला सुशोभित थी । मस्तकपर किरीट और वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणिकी आभा प्रसरित हो रही थी । परमप्रभु मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे ।

'मुझे परमप्रभुका दर्शन प्राप्त हो गया !' नेत्र बंद किये ही परम भाग्यवान् पवित्र पिशाच प्रसन्न होकर मन-ही-मन कहने लगा—'मेरा जन्म और जीवन सफल हो गया । अब मेरा अज्ञान ध्वंस हो गया । मेरी इन्द्रियाँ वशमें और मेरी एषणाएँ दूर हो गयीं । अब मेरा इन पिशाचोंसे भी सम्बन्ध समाप्त हो गया । मेरा विष्णुभक्त अनुज भी समयानुसार श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेगा ।'

'अरे, ! ये तो वही श्रीविष्णु हैं, जिनका दर्शन मैंने अपने हृत्क्षेत्रमें किया था ।' पिशाचके नेत्र खुले तो उसने बैठे हुए श्रीकृष्णका श्रीविष्णुके रूपमें दर्शन किया । उसके हर्षका पार नहीं था । वह उन्मत्तकी भाँति हँसता और नृत्य करता हुआ कह रहा था—'ये वही शार्ङ्ग-धनुषधारी श्रीविष्णु हैं । विष्णु, जिष्णु, जगन्नाथ, पुराणपुरुष, पुरुषोत्तम, विश्वात्मा, विश्वकर्ता और सनातन परमात्मा ये ही हैं । मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम आदि अवतार इन्हीं परमप्रभुने धारण किये थे । निश्चय ही मेरे असीम पुण्य थे, जो कमल-नयन श्रीहरिके दर्शनसे मेरा संसार-बन्धन छिन्न हो गया ।'

'मैं इन्हें क्या अर्पण करूँ !' प्रेमोन्मत्त पिशाच कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था । उसने भयानक गर्जना की और अट्टहास करते हुए वह नाचने लगा । उसे अपने तन-मनकी सुध नहीं थी । उसके नेत्रोंके सम्मुख ही नहीं तनमें, मनमें, प्राणोंमें—यहाँतक कि रोम-रोममें निखिलसृष्टि-नियामककी अतुलनीय अवर्णनीय सौन्दर्यराशि समा गयी थी । उस सौन्दर्य-सुधा-सिन्धुमें डूबकर, उन्मत्तकी भाँति नाचता हुआ वह चिल्ला रहा था, पुकारता जा रहा था—'यादवेश्वर ! केशव ! कृष्ण ! हरे ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।'

भक्तवत्सल गोविन्दने कहा—'मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ ।' जगदुद्धारक श्रीहरिने अपने त्रैलोक्यपावन कर-कमलोंसे पिशाचका स्पर्श किया ।

पिशाच—क्रूरकर्मा पिशाच, पापोंसे सर्वथा मुक्त, परम पवित्र, अनङ्ग-सदृश सुन्दर एवं कान्तिमान् हो गया । उसके घुँघराले केश, भुजाएँ, नेत्र एवं प्रत्येक अङ्ग मनोहर-नयन-रञ्जन हो गये । उसका देवताओं एवं मुनियोंके लिये भी स्पृहणीय, अद्भुत और अलौकिक श्याम-तामरस-कलेवर दिव्य वस्त्राभरणोंसे सुशोभित होने लगा ।

'वर्तमान सुरेन्द्रके रहनेतक तुम स्वर्ग-वास करोगे ।' भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु श्रीश्यामसुन्दरने पवित्र पिशाचकी कामना-पूर्ति की—'देवेन्द्रके बदल जानेपर तुम मेरा दुर्लभतम सायुज्य प्राप्त कर लोगे । तुम्हारा प्रिय अनुज भी शचीपतिके रहनेतक स्वर्गका उपभोग करेगा । तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँग लो ।'

कृतार्थ पवित्र पिशाचने सुर-नर-मुनि-वन्दित निखिल-सृष्टिनियामक परमप्रभुसे याचना की—'देव ! जनार्दन ! जो अपने मनको संयममें रखकर हम दोनोंके इस समागमके प्रसङ्गका स्मरण करे, उसकी आपके प्रति अविचल भक्ति हो । हरे ! उसके मनकी शुद्धि हो जाय; उसके मनका सारा कालुष्य मिट जाय, यह मेरा इच्छित वर है ।' *

'तथास्तु !' सत्यस्वरूप श्रीहरिने पिशाचकी कामना पूरी की और उससे कहा—'सुरेन्द्र तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । अब तुम उनके साथ स्वर्ग जाओ ।'

पिशाचने कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायक परमप्रभुके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और स्वर्गाधिप इन्द्रके साथ उनके अत्यन्त सुखद विमानमें बैठ गया ।

---

* यश्चेमं संगमं देव संस्मरेन्नियतात्मवान् । भक्तिस्तस्याचला देव त्वयि भूयाज्जनार्दन ॥
मनःशुद्धिर्भवेत् तस्य मा भूत् कलुषता हरे । कालुष्यं मनसस्तस्य मा भूदेष वरो मम ॥
(हरिवंशपु०, भविष्यपर्व ८३ । २७-२८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृतिका रहस्य

('साधुवेषमें एक पथिक')

स्मृतिकी अद्भुत महिमा कोई विवेकी ही जान सकता है । विवेकके जाग्रत् रहनेपर ही यह ज्ञात होता है कि स्मृतिसे ही अधोगति, दुर्गति, सुगति, सद्गति, परमगति मिलती है ।* कल्याणार्थी—पारमार्थिक साधकोंको क्षण-क्षण भीतर चलती हुई स्मृतिको सजग रहकर देखते रहना चाहिये । कर्मेन्द्रियों अथवा ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा जो कर्म होते हैं—जैसे उठना, बैठना, चलना, खाना, पीना, शौच-स्नान तथा पढ़ना, लिखना, सुनना आदि—उनके साथ-साथ अनायास ही जो स्मरण चलता रहता है, उसपर हम ध्यान नहीं देते । जन्म ग्रहण करनेके पश्चात् जो कुछ नेत्रोंसे देखते-सुनते और भोगते आ रहे हैं, वही हमारे चित्ताकाशमें अङ्कित हो गया है, उसीकी स्मृति हमें होती रहती है । स्मृतिसे ही हम साधक, विवेकी, उदार, विनम्र, निष्काम प्रेमसे युक्त, अथवा मोही, कामी, अभिमानी, लोभी आदि बने हुए हैं । अतएव संतोंका यही निर्देश है कि जागतिक सम्बन्धियोंके साथ रहते हुए अपने अधिकारकी नहीं, प्रत्युत कर्तव्यकी, देहको देखते हुए अपने स्वरूपकी और दृश्यमान जगत्को देखते हुए अपने नित्य-प्राप्त प्रभुकी स्मृति बनी रहे, तभी शान्ति-मुक्ति-भक्ति सुलभ हो सकती है । जगत्की स्मृतिमें जगदाश्रय परमात्माकी विस्मृति, देहकी स्मृतिमें स्वरूपकी विस्मृति और अधिकारकी स्मृतिमें कर्तव्यकी विस्मृति हो जाती है और उससे अकरणीय कार्य हो जाते हैं । बहुत ही कम धनी, पदाधिकारी या विद्वान् हैं, जो विवेक-चक्षु खोलकर जीवन-यात्रा करते हैं । धन, ऐश्वर्य, पद-अधिकारके मदमें मनकी मूढ़ता तथा बुद्धिकी जडतामें अपने स्वरूपकी तथा परमप्रभुकी विस्मृति एवं स्वाधिकार-मर्यादाकी स्मृति हो जाती है । साधकोंको स्मरण रखना चाहिये कि जीवात्मा जहाँ एक ओर देहसे मिला है, वहाँ दूसरी ओर परमात्मासे भी मिला है । साधक नेत्रोंसे दृश्यको देखता है और उसे ही स्मृतिमें भरता रहता है; लेकिन जब ध्यानसे अदृश्यको देखनेके लिये वह शान्त-मौन होता है, तब परमात्माका अनुभव करता है । दृश्यकी विस्मृति होते ही—विचार-विलीन होते ही आत्मामें स्थिति और दर्शनका आरम्भ होता है ।

मनुष्य रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्दको पाँच ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा ग्रहण करता है; मनद्वारा इन्हीं विषयोंका स्मरण

---

* स्मरणके सम्बन्धमें गीताके ये वचन विशेष ध्यान देनेयोग्य हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(८ । ६, ५, ७)

'हे अर्जुन ! मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है । जो पुरुष अन्तकालमें मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इसलिये अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर । इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। स्मृतिद्वारा ही मनुष्य विनाशी एवं अविनाशीसे सम्बन्धित होता है। विनाशी वस्तुओं तथा व्यक्तियोंकी स्मृति सुख-दुःखकी परिधिमें ले जाती है और अविनाशीकी स्मृति शान्ति-आनन्दके केन्द्रमें स्थिर करती है। सुखका कामी संसारका स्मरण करता है, किंतु शान्तिका अभिलाषी परमात्माके स्मरणमें तल्लीन रहता है। सांसारिक वस्तुओं और व्यक्तियोंके स्मरणसे जीव भोगी बनता है और आत्मा-परमात्माकी स्मृतिसे साधक परमात्माका योगी होता है। जो अपनेसे भिन्न वस्तु है, वह स्मरणमात्रसे प्राप्त नहीं होती; अतः उसकी प्राप्तिके लिये श्रमपूर्वक प्रयत्न—कर्म करना पड़ता है; किंतु जो अपनेसे अभिन्न है, उसका स्मरणमात्र ही प्राप्तिका अनुभव कराता है; वहाँ श्रम तथा कर्मकी अपेक्षा नहीं रहती। जगत्‌की समस्त वस्तुएँ श्रमसे प्राप्त होती हैं और पुनः छूट जाती हैं। परमात्मा स्मरणमात्रसे निरन्तर प्राप्त दीखते हैं तथा उनसे सम्बन्ध-विच्छेद होता ही नहीं। अज्ञानमें स्मृति-शक्तिका दुरुपयोग होता है और ज्ञानमें सदुपयोग। यह संतोंका निर्देश—आदेश है कि अज्ञानमें जो अनायास ही विनाशीके स्मरणका अभ्यास दृढ़ हो गया है, उसे अविनाशीके प्रति मोड़ देना चाहिये। जब कोई स्वादिष्ट-मधुर वस्तु खानेको देता है, तब उस वस्तुका और उसे देनेवाले व्यक्तिका स्मरण बार-बार आता है; उसी क्षण हमें स्वादिष्ट वस्तु एवं उसे देनेवालेके स्मरणके साथ उनका स्मरण करना चाहिये, जिनके विधानसे हमें रसना मिली है। यदि रसना न मिली होती तो रसास्वाद कैसे मिलता?

कुछ ऐसे स्मरण हैं, जो पुण्य-कर्मके लिये प्रेरित करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो पाप-कर्मके लिये विवश करते हैं। जिस स्मरणको बार-बार दुहराया जाता है, उसका अभ्यास हो जाता है। अशुभका अभ्यास शुभ-सुन्दर-हितकर अभ्याससे दब जाता है—मिट जाता है। अतएव जहाँ-कहीं सद्गुण दीखते हों, वहीं सर्वगुणनिधान परमेश्वरका स्मरण करना चाहिये। सबको आदर-प्यार देना, सभीको मानका दान करना, सभी नाम-रूपोंको प्रकाशित करनेवाले आत्माका ध्यान करना तथा परस्पर प्रेम-व्यवहार करना नहीं भूलना चाहिये। यह भी स्मरणीय है कि असावधानीवश अथवा ईर्ष्या-द्वेष-क्रोधवश बलके दुरुपयोगसे दुर्बलता आती है और निर्बलोंकी सेवाद्वारा बलका सदुपयोग होता है और सबलता प्राप्त होती है। यह भी स्मरणीय है कि धन, मान, अधिकार आदिका कामी सेवा नहीं कर पाता और देहका पुजारी आत्मदेवका पूजक नहीं हो पाता। जो दूसरोंको देनेयोग्य वस्तुको देनेका साहस नहीं करता, वह पानेका सुपात्र नहीं हो पाता। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सत्यस्वरूप परमात्मा मात्र शास्त्रोंमें खोजनेसे ही नहीं मिलते; उन्हें तो स्वयंमें पाना होता है। परमात्मा केवल विचार करते रहनेसे सुलभ नहीं होते, वे तो विचारके शान्त होनेपर नित्य विद्यमान अनुभूत होते हैं। वे कहीं खोजते रहनेसे नहीं मिलते, वे तो स्मृतिमात्रसे सुलभ होते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सत्यस्वरूप परमात्मा किसी मन्दिर-मूर्तिका आश्रय लेनेसे ही नहीं मिलते, वे तो प्रेमके द्वारा किसी भी मूर्तिमें तन्मय दीखते हैं। प्रेमकी पूर्णतामें ही परमात्माकी निरन्तर स्मृति सम्भव है; क्योंकि वे ही स्मृतिके जीवन हैं। यह भी स्मरणीय है कि परमात्मा मन एवं अहंकारको किसी माध्यमसे भूलते रहनेसे प्रत्यक्ष नहीं होते, वे तो मन तथा अहंकारको देखते रहनेसे सर्वाश्रयरूपमें अनुभूत होते हैं; क्योंकि जीवात्मा-परमात्माके मध्यमें यह अहंकार अथवा मन ही दुर्जय दीवाल है। इसे देखकर इससे उपरत रहना ही इसे तोड़नेका उपाय है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अहंकारसे मुक्ति किसी वस्तु या व्यक्तिके त्यागसे नहीं मिलती; अपितु वह किस प्रकारकी वासनाओं, कामनाओं, स्वीकृतियों आदिके द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्त हो रहा है—यह देखनेसे प्राप्त होती है ।

'मैं कौन हूँ'—यह स्मरण रहनेपर तथा 'अपनी सम्पदा क्या है'—यह जान लेनेपर देहासक्ति, धनासक्ति आदिसे मुक्ति मिल जाती है । यह भी स्मरणीय सत्य है कि घर, परिवार और वस्त्रोंको छोड़ देना ही मुक्तिका साधन नहीं है; बल्कि उसका उपाय तो स्वीकृतियों, मान्यताओं और विचारोंको देखते हुए उनसे स्वयंको असङ्ग देखना ही है । यह भी स्मरणीय है कि अनेक साधक अन्न-जलको छोड़नेको ही उपवास मानते हैं, परंतु वास्तवमें कामनाओं, संकल्पों एवं विचारोंका 'आहार' छोड़ देनेपर जीवात्मा परमात्माका उपासक होता है । कामनाएँ, संकल्प अथवा विचार परमात्माकी नित्य योगानुभूतिमें बाधक हैं । यह भी स्मरणीय है कि जिनका कभी, कहीं भी अभाव न हो, वे ही परमात्मा हैं; वे प्रत्येक क्षणके पीछे विद्यमान हैं । ऐसा कोई क्षण नहीं, जिसके पीछे शाश्वत आत्मा न हो, परंतु प्रत्येक क्षणके आगे रहनेवाले परिवर्तनशील दृश्यकी स्मृति होते रहनेके कारण उसकी विस्मृति हो गयी है । क्षण-क्षणके साथ नित्य-प्राप्त परमात्माका स्मरण अति सहज साधना है । वर्तमान क्षण ही अपने समक्ष है; उसी क्षणकी निरन्तर सत्ता है । वर्तमान नित्य-निरन्तर है, वर्तमानमें ही नित्य जीवन है, अभी है, यहीं है, सर्वदासे है; इसीका स्मरण जीवनके प्रति जागृति है ।

यह देखनेमें आता है कि साधक भी दुःखी होते हैं, परंतु दुःखोंके कारणभूत दोषोंको भूले रहते हैं; अशान्त होते हैं, परंतु अशान्तिके कारण—द्वेष-लोभादि विकारोंको भूले रहते हैं, और अपनेको पापी मानते हैं, परंतु पापको भूले रहते हैं । यह भी स्मरणीय है कि पापोंका आरम्भ अज्ञानसे होता है । अज्ञानरूपी निशामें ही पाप पोषित होते हैं । अपने-आपको नहीं देख पाना 'अज्ञान' है । अज्ञानको मिटानेका प्रयास है—ज्ञानमें जाग्रत् रहकर देखना मात्र । यह संतोंका निर्देश है कि प्रत्येक आरम्भके मूलमें अनादिका स्मरण करो, प्रत्येक अन्तको देखते हुए अनन्तका स्मरण करो । विनाशी दृश्यकी स्मृतिमें अविनाशी अदृश्य आत्माकी विस्मृति रहा करती है; सत्स्वरूप आत्माकी स्मृतिसे ही विनाशीकी विस्मृति हो जाती है । यह भी स्मरणीय है कि जीवनका विकास जडतासे चलकर नित्य चेतनस्वरूप आत्मामें, परतन्त्रतासे मुक्त होते-होते स्वतन्त्रतामें तथा सुख-दुःखकी सीमाको पार करते-करते आनन्दमें पूर्ण होता है । जीवन-विकासका आरम्भ मानवतामें है, उसका मध्य दिव्यतामें है और विकासकी पूर्णता परमात्मामें है ।

साधकोंको स्मरण रखना चाहिये कि हम केवल ज्ञान ही हैं । ज्ञानसे दृश्य पृथक् है, ज्ञान ही अपनी सत्ता है, अस्तित्व है । ज्ञान ही अपनी आत्मा है । वह सत्ताके रूपमें निरन्तर विद्यमान है । शुद्ध चैतन्यका अनुभव ही तो आत्मानुभव है । जहाँ संसार है, वहीं परमात्मा है; जहाँ अशान्ति है, वहीं शान्ति है; जहाँ हिंसा है, वहीं अहिंसा है; जहाँ दुःख है, वहीं आनन्द है; जहाँ जड देह है, वहीं चेतन आत्मा है । सब कुछ स्मृतिमें ही है । जीवनका सत्य निरन्तर सुलभ है, परंतु अनित्य—विनाशीकी स्मृतिमें खोया-सा प्रतीत होता है । 'मैं हूँ'—यह स्मृति ही आत्म-साक्षात्कार है । विनाशी वस्तुओंको अपनी स्मृतिमें भरकर हम मोही, लोभी, अभिमानी आदि बने हुए हैं । इस अपनत्वकी स्मृतिके आत्माके प्रति दृढ़ीभूत होनेपर हम मोह, लोभ आदिसे मुक्त रह सकते हैं । परमानन्द परमात्माको पानेके लिये केवल नित्य-प्राप्तकी स्मृतिकी ही आवश्यकता है; क्योंकि परमात्मा ही सबके आत्मा हैं, वे ही प्रियतम हैं तथा सबकी सत्ताके रूपमें नित्य-निरन्तर विद्यमान हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौनका महत्त्व

[आजकी संघर्षशील परिस्थितियोंके संदर्भमें]

(लेखक—श्री सी० टी० वेणुगोपाल)

आज विश्व जिन संघर्षशील परिस्थितियोंसे गुजर रहा है और स्वार्थोंकी अंध पूर्तिके लिये मानव-आदर्शोंकी जिस प्रकार बलि दी जा रही है, उसे देखकर प्रत्येक आत्मचेता और शान्तिके उपासकको इस बातका अनुभव हो रहा है कि वर्तमान भौतिक विश्वका मन और प्राण सत्यकी निष्ठासे दूर तथा महानाशकी ओर तीव्रतासे अग्रसर हो रहा है। सम्पूर्ण समाज, राष्ट्र और संसार लिप्सा तथा अधिकारके मदसे व्यग्र अन्धकारकी चादरमें आत्माके सत्यबोधको छिपाता चल रहा है। दूसरेपर हावी होना, बिना प्रयत्न अधिकारकी माँग करना और बराबर असंतोषकी अग्निमें जलते रहना—आजके मनुष्यका चारित्रिक गुण बन गया है। झूठे भौतिक ज्ञानकी चकाचौंधने मनुष्यको उसकी अन्तश्चेतनाके प्रति अंधा बना दिया है और कार्य-कारणके वैज्ञानिक अनुसंधानोंने उसे एकान्त अनुभवके प्रेरक स्वरोंसे विमुख कर दिया है। यही कारण है कि व्यक्ति अपने भीतर, अपने परिवारकी परिधिमें, अपने राष्ट्रकी इकाई और अन्तर्विश्वके साथ हर क्षण, हर पग अभाव और असंतोषका अनुभव तथा हर प्रकारका अनाचार तथा पाप बिना संकोच, बिना रोक केवल सांहारिक शक्तियोंके बलसे करता जा रहा है! विश्व इस रोगसे जितना आज पीड़ित है, सम्भवतः पुराने दिनोंमें उतने कभी न रहा होगा; क्योंकि प्राचीन स्वप्नद्रष्टा महर्षियोंने वस्तुसे अधिक विचारको और बाह्य संचरणसे अधिक अन्तःसंचरण तथा अन्तर्ध्वनिको स्थान दिया था।

समय-परिवर्तनकी ही देन है कि औद्योगिक क्रान्तिके साथ जमानेने करवट ली और बड़ी आशा तथा विश्वासके साथ साधन-सम्पन्न होते मनुष्यके नेत्र खुले—उसने सोचा, इसी भौतिक सुखकी प्राप्तिमें वह सम्पूर्ण सुखकी प्राप्ति कर लेगा; किंतु उसकी इस आस्थापर निरन्तर प्रहार होने लगा। महायुद्धोंकी भयंकर विभीषिकाओंने उसके सुख-स्वप्नकी स्वर्णाभाको महानाशका द्योतक बताया। कारण स्पष्ट है। इस अंधाधुंध सुख-सामग्रीके संग्रहके पीछे मनुष्य-समाजका केवल निम्नकोटिका स्वार्थ है और जहाँ प्रेरणा स्वार्थसे मिलती है, वहाँ भयावह नर-संहार भी अनिवार्य होता है, ऐसा इतिहास पुराने अनुभवोंसे सिद्ध है।

अब प्रश्न होता है—आखिर इस परिस्थितिमें मनुष्यके आत्म-गौरव, उसके शाश्वत सत्य तथा आदर्शोंकी रक्षा कैसे हो! युगीन आदर्शोंके प्रवर्तक भगवान् श्रीराम-कृष्ण तथा ईसा, मुहम्मद आदि महापुरुषोंकी वाणी कैसे साकार एवं सार्थक हो? आदर्शकी बात करना, धर्मकी चर्चा करना और आत्मान्वेषणका संकेत करना तो अब केवल अन्ध-विश्वास और ढोंगके नामपर परित्यक्त कर दिये जाते हैं। फिर क्या दवा है इस महानाशके बुनियादी रोगकी, जिसकी जड़ें मनुष्यकी धमनियोंका रस चूसकर दिनोंदिन दृढ़ तथा सशक्त होती जा रही हैं? कितना भला होता, यदि मनुष्य केवल वस्तुओं और प्राकृतिक शक्ति-सम्पन्न तन्तुओंके अन्वेषण और विश्लेषणमें ही खोया न रहता! महान् आवश्यकता इस बातकी है कि मनुष्य अपने मनका, अपनी भाव-सृष्टि और अगोचर स्वरोंका विश्लेषण कर सही मार्ग-दर्शन कर पाता। महात्माओंने हर युगमें अपने मनकी प्रयोगशालामें यह सत्य पाया है कि अपनी भावनाओंकी ईमानदारीसे की गयी समीक्षा सदा सही मार्ग प्रदर्शित करती है। उसे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर, असत्यसे सत्यकी ओर और मरणसे अमरताकी ओर ले चलती है। यह उसकी अमर उत्कण्ठा रही है, जिसके स्वरोंकी संवेदनाका अमर श्लोक यों है—

'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय'

यदि मनुष्य-समाज उन प्रयोगोंका आदर्श एक बार पुनः अपना पाता तो मुझे विश्वास है कि विश्वकी राक्षसी जिज्ञासाको शान्ति तथा सत्यका निर्देश मिलता। केवल कहनेके लिये बात कही जाय, इसलिये ही ऊँचे आदर्शकी बात करना मैं उचित नहीं मानता। मेरे सम्मुख आज भी इसी युगकी—कुछ वर्षों पूर्व घटनेवाली दो ऐसी घटनाएँ हैं, जिनके प्रकाशमें यदि मेरे उक्त कथनका विवेचन किया जाय तो शायद संदेह और भ्रमका भली प्रकार निवारण हो जाय।

पहली घटना एक ऐसी महिलासे सम्बन्धित है, जो बहुत बड़ी विज्ञानवेत्ता, विदुषी और अध्ययनशीला थी। हर वस्तुको, हर कारण तथा उसके परिणामको वह बराबर ज्ञानके पलड़ोंपर तौला करती थी। उसकी दृष्टिमें आत्मा नामकी कोई ऐसी शक्ति न थी, जिससे कभी प्रेरक वाणी या ध्वनि निकलती हो। उसकी विद्वत्ताने उसे नास्तिक बना दिया था और वह सोचने लगी थी कि प्रकृतिका संचालन प्रकृतिकी संघर्षशील द्वन्द्वात्मक शक्तियों मात्रसे हो रहा है; इसके पीछे कोई प्रेरणा या प्रकाश ऐसा नहीं है, जो मनुष्यकी पहुँचके बाहर हो। संयोगकी बात थी कि इस महिलाका पारिवारिक जीवन अतिशय कलहपूर्ण हो उठा था। कुछ कारणवश उसकी छोटी बहन तथा बहनके पति उससे बुरी तरह रुष्ट हो गये थे और जब भी उसने उन लोगोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया था, वह बराबर असफल रही। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारकी असफलतासे उसकी निराशा बढ़ती गयी और धीरे-धीरे उसको विश्वास हो गया था कि अब भावी जीवनमें कभी भी वह पारिवारिक कलह दूर न हो पायेगा। उस विदुषीको एक वृद्धाका सहवास मिला, जिसने उससे कहा—'तुम एक बार अपना अहं छोड़कर मौनमें विश्वास करो और नित्यप्रति केवल आध घंटेकी मौन-साधना आरम्भ करो और साधनाके इन क्षणोंमें अच्छी भावनाओंकी ओर उन्मुख रहो।' उस तर्कपूर्ण महिलाकी बुद्धिमें पहले यह बात घुसी ही नहीं और उसने इस कार्यको केवल उपहास और व्यङ्ग्यके साथ टाल दिया; किंतु जब उसका मन परिवारकी कलह-पीड़ासे अतिशय उत्पीड़ित हो उठा और वह उसके निवारणके निमित्त कुछ भी करनेको तत्पर हुई तो उसने वृद्धाके आग्रह और आदेशपर मौन-व्रत धारण किया। कुछ दिनोंतक उसने नित्य घंटेभर मौन रखा और फिर वृद्धाके पास जाकर कहा—'बूढ़ी माँ! मुझे इन दिनों केवल एक ही बात बार-बार परेशान करती रही कि मैं एक बार अपनी बहनको संतुष्ट करनेका और प्रयास करूँ; किंतु मुझे तो यह विश्वास है कि मेरा फिर बहनके पास जाना केवल निरर्थक ही नहीं, आत्म-सम्मानके विरुद्ध भी होगा।' वृद्धा स्त्रीने प्रेरणाके स्वरमें कहा—'यदि तुम्हारे मौनका यही आदेश है तो तुम फिर एक बार वहाँतक अवश्य जाओ—शायद तुम्हें महान् परिवर्तन दिखायी पड़े।' यह आदेश युवतीको ठीक नहीं जान पड़ा। उसने सोचा—'समय और अर्थ फिर क्यों व्यर्थ लगाये जायँ; कई बार तो जाकर देख चुकी हूँ कि कोई परिणाम नहीं निकलता।' वृद्धाके कहनेपर ही वह किसी प्रकार जानेको तैयार हुई और लंबी यात्राके बाद जब वह अपनी बहनके घर पहुँची, तब उसने देखा, नौकर मकानमें ताले लगा रहा था। नौकरने उसको बताया कि उसकी मालकिन अपने पतिके साथ बड़ी बहनके यहाँ जा रही है। इस उत्तरसे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उसका अपनी छोटी बहनसे साक्षात्कार हुआ तो बहन तथा उसके पतिने बहुत विनम्र होकर क्षमा-याचना करते हुए कहा—'हमसे बड़ा अपराध हुआ और सचमुच हमने आपके साथ यह बहुत बड़ा अन्याय किया, जो आपको बराबर दुःखी करते आये और इतने दिनोंतक आपसे सम्बन्ध-विच्छेद रखा।'

यह कहानी नहीं, एक सच्ची घटना है, जिसने मेरे विश्वासको बड़ा बल दिया है और मुझे उस बूढ़ी माँका यह कथन भूलता नहीं, जो उसने विज्ञानकी प्रकाण्ड पण्डिता युवतीसे कहा था—'बेटी! मौनने तुम्हारे मनकी एकाग्रताको जो बल दिया था और तुम्हारी उन क्षणोंकी शान्त सत्यनिष्ठाका जो प्रभाव था, उसने तुम्हारे क्रुद्ध सम्बन्धियों और बिछुड़े परिवारवालोंके विचारमें ऐसा महान् परिवर्तन उपस्थित किया।'

दूसरी घटना बर्माकी पहाड़ियोंमें बसी बुद्ध-धर्मावलम्बी नागरिकोंकी एक बस्तीसे सम्बन्धित है। उन दिनों वहाँ दिन-दहाड़े चोरियाँ होने लगी थीं और दिनोंदिन अनाचार बढ़ने लगा था। एक बार एक किसानका एक दुधारू पशु किसीने चुरा लिया। बहुत ढूँढ़नेपर भी उसका पता न लगा। दुःखी होकर उस किसानने बस्तीभरके लोगोंसे निवेदन किया और सबकी पंचायत जुटी। उस गाँवके धर्मगुरुने सभी एकत्रित लोगोंसे कहा—'कोई किसीको दोष न दे, इससे केवल कटुता बढ़ेगी; अपने दोषकी तहतक हम न पहुँच पायेंगे। और जहाँ कटुता होती है, वहाँ सत्यका दर्शन नहीं होता। इसलिये सबलोग मौन रखें और एक घंटेके सामूहिक मौनमें सभी यह सोचें कि हमारी बस्तीका कल्याण कैसे होगा।'

एक घंटेभरके मौनका परिणाम यह था कि उन्हीं किसानोंकी मण्डलीसे एक नौजवान स्वयं सिर नीचा किये खड़ा हो गया और उसने अपने अपराधकी स्वीकृति-के साथ कहा—'मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने उस पशुको चुराया है और उसका वध कर दिया है। अब मैं उसका मूल्य देनेको तैयार हूँ।' इस आत्मस्वीकृतिका पूरी बस्तीके वासियोंपर अलौकिक प्रभाव पड़ा। क्रमशः मौनके प्रयोगसे उस बस्तीका कालुष्य मिट गया और वहाँ जिस शान्ति तथा सुव्यवस्थाका दर्शन हुआ, उससे हमें आज भी महान् शिक्षा और मानवकी अन्तर्भूत आदर्श कल्पनाओंकी सही स्वीकृतिका सापेक्ष उदाहरण मिलता है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि अनाचारकी ओर बढ़ते हुए आजके जमानेका मनुष्य यदि अहं और ढोंग त्यागकर परस्पर मिल-जुलकर मौन-मनसे कष्टका वास्तविक कारण ढूँढ़े और उसके निवारणका सही रूपमें प्रयास करे तो सच्चे सुखकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। व्यक्तिके लिये मौनका इतना महान् महत्त्व है कि यदि वह नित्य नियमसे मौनका थोड़ा अभ्यास करे तो वह अपने भीतरी तत्त्वोंका अन्वेषण और विश्लेषण करनेमें पूरी तरह सफल हो सकता है। उसके लिये उसे न तो बहुत तर्क-वितर्क करना है और न हठयोगकी आवश्यकता है। केवल शान्तचित्त सुन्दर भावनाओंके संग्रहसे उसे ऐसा प्रकाश प्राप्त होगा, जिसकी ज्योतिसे उसका जीवन-पथ ज्योतिष्मान् हो उठेगा और अपने अभीष्टकी प्राप्तिमें उसे सफलता अवश्य दृष्टिगत होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह ह्याँ पै दान लेय है'

श्रीजीकी कृपा हुई और मुझे चौदह वर्षोंके बाद पुनः श्रीव्रज-दर्शनकी आज्ञा मिली । मैं वृन्दावन होता हुआ श्रीलाड़िलीजीके बरसाने पहुँचा । संध्या-समय साँकरी-खोर गया । सुन्दर लता-पताओंसे आच्छादित दो छोटी-छोटी पहाड़ियोंके बीच केवल एक ही मनुष्यके चलनेयोग्य—सँकरी गलीके पुण्य दर्शन हुए । यहींपर मनमोहन नटनागर व्रज-बालाओंको रोककर दहीका दान लेते और प्रेमका झगड़ा किया करते थे । एक वृक्षके नीचे पत्थरपर दही गिरनेके चिह्न देखकर मैं सोचने लगा कि यहाँपर दही कैसे गिरा ? इसी बातपर विचार करता हुआ गह्वर-वन होकर वापस आया । दूसरे दिन प्रातःकाल फिर वहीं गया । देखा कि एक वृद्धा ग्वालिनी-माई साधारण घाघरा-ओढ़नी पहने और माथेपर दो दहेड़ियाँ रखे चमोली गाँवकी ओरसे आयी । वृक्षके नीचे खड़ी होकर दहेड़ीसे एक कटोरी दही निकालकर पत्थरपर डाल दिया । मैंने उससे पूछा और जो कुछ उसने कहा उसको ज्यों-का-त्यों लिखनेका प्रयत्न करता हूँ—

मैं—'माई ! तूने वहाँ दही क्यों गिराया ?'

वृद्धा—'मैंने वाके लिये दही दै दीनो है । वह ह्याँ पै दान लेय है—दान !!'

मैं—'क्या वह दान लेकर तुम्हारा दही खाता है ?'

वृद्धा—"क्यों नायँ ! बराबर तो वाको दर्शन होय नायँ । याही गैल मैं दह्यो ले जायो करती हो । एक बार एक छोटो-सो छोरा—दसेक बरस कों—मोयँ याई ठाँ रोक्यो ! कह्यो कि 'तूँ मेरो दान दै के जा ।' मैंने कह्यो—'मैं तोयँ दान दूँगी । जब तूँने गूजरीन ते दान लीनों है तो मैं क्यों न दूँगी ! चल, परें तें चल, मैं दऊँ हूँ" ।'

"वाने कह्यो—'डोकरी ! तूँ भग जायगी !! मोयँ ना देयगी !!!'—ऐसो कह, वा पत्थरपर बैठ बंसी बजान लग्यो ! मैंने एक बेली दही निकारि कह्यो—'लै अपनो दान ।'

"वाने बंसी कूँ बगल में दाब लीनी—दोनों हाथन कूँ या तरियाँ सूँ जोरकें दोना बनायो—वामें दह्यो ले, चाटते-चाटते वा गैल सूँ ऊपर चल्यो गयो । जब सों मैं वाकूँ यहाँ दान दै जाय करूँ हूँ । या बाई कूँ दान दीनों हैं ! बाई कूँ !!"

इस सीधी-सादी वृद्धा ग्वालिनीकी बातें इतनी मधुर, स्वाभाविक और भावपूर्ण तथा सचाईसे ओत-प्रोत थीं कि मेरा हृदय प्रेम और आनन्दसे भर गया । जब उसने 'पत्थर' की ओर अपनी अँगुलीसे निर्देश किया तथा दोनों दहेड़ियोंको सिरपर रखे-रखे अपनी दोनों अँगुलियोंको जोड़कर दोनाका आकार बनाया और ऊपरकी ओर उसके दही चाटते-चाटते चले जानेका मार्ग दिखलाया तो मेरे हृदयका आनन्द रुक नहीं सका ! प्रेमाश्रुके रूपमें नेत्रोंसे बरस पड़ा । मैं उस प्रेममयी बड़भागिनके दोनों चरणोंको पकड़कर प्रेम-जलसे धोने लगा । उसकी आँखोंमें भी जल भर आया । उसकी चरण-धूलि लेकर मैंने अपनेको कृतकृत्य माना । श्रीजीकी कृपाका अनुभव हुआ । व्रजवासियोंका कथन सत्य ही है कि 'मेरो लाला, व्रज तें कहूँ बाहर नहीं गयो है ।' आज भी ये व्रजवासिनें धन्य हैं, जो उस नटनागरकी लीलाका प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं !

'प्रेमभिखारी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धाञ्जलि

संत भगवत्स्वरूप ही होते हैं। अतः संतकी उपस्थिति संसारका सहज ही हित-सम्पादन करती रहती है। जो प्राणी प्रत्यक्ष रूपमें उनके सम्पर्कमें आते हैं, उनको तो लाभ मिलता ही है, किंतु उन संतोंका अस्तित्व परोक्ष रूपसे भी सतत विश्व-कल्याण करता रहता है। उनके वचन, उनकी चेष्टाएँ, उनकी भावनाएँ—उनका सब-कुछ स्वाभाविक रूपसे जन-जनके जीवनमें आस्तिकता और सात्त्विकताकी प्रतिष्ठाके लिये ही होता है। हिमालयकी गोदसे निकलनेवाली भगवती गङ्गा अपनी सहज गतिसे सागरकी ओर प्रवाहित हो रही है; परंतु जो भी इच्छा-अनिच्छासे उसके तटपर आता है, उसके जलमें अवगाहन करता है, उसे शीतलता, शान्ति, शुचिता आदिकी उपलब्धि होती ही है; इसी प्रकार सच्चे संतकी ईश्वरोन्मुखी सहज जीवनधाराके द्वारा प्राणिमात्रको शुचिता, शान्ति, शीतलता आदिकी प्राप्ति होती है। ऐसे एक संत थे हमारे परमश्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज।

'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंको यह जानकर व्यथा होगी कि 'कल्याण'के माध्यमसे 'एक महात्माका प्रसाद'के रूपमें जिन भगवत्कृपाप्राप्त महापुरुषका उपदेशामृत हम वर्षोंसे पान करते आये हैं, हमारे वे परमश्रद्धेय प्रज्ञाचक्षु स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज गत मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (श्रीगीता-जयन्ती), तदनुसार २९ दिसम्बरको भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि श्रीवृन्दावनमें प्रभुके चरणोंमें लीन हो गये। परमपूज्य महाराजजी विश्वकी एक विलक्षण आध्यात्मिक विभूति थे; भगवद्विश्वास और भगवत्प्रेमकी साकार प्रतिमा थे। वे नित्य अपने स्वरूपमें ही स्थित थे और अब भी हैं ही; पर उनके प्रत्यक्ष वचनामृतसे, पावन सङ्गसे जो परम लाभ जगत्को हो रहा था, उससे वह वञ्चित हो गया; और यह एक महान् क्षति है।

श्रद्धेय श्रीस्वामीजीके सम्पर्कमें केवल साधारण स्तरके ही व्यक्ति नहीं आये, प्रत्युत प्रबुद्धवर्गने उनका अधिक सांनिध्य प्राप्त किया। अध्यापक, प्राध्यापक, डाक्टर, वकील, इंजीनियर, न्यायाधीश, रिसर्च-स्कॉलर, उच्च प्रशासनाधिकारी—इस प्रकारके प्रबुद्ध समुदायने श्रीस्वामीजीके सत्सङ्गका अधिक लाभ उठाया है। तर्ककी सूक्ष्मता, विषय-प्रतिपादनकी क्षमता, विचारोंकी स्पष्टता, भावोंकी कोमलता, व्यवहारकी मधुरता, दुःखियोंके साथ समवेदना आदि गुण उनमें इतने स्वाभाविक रूपमें थे कि उनके सम्पर्कमें आनेवाला व्यक्ति सहज ही उनकी ओर आकृष्ट हो जाता था।

आस्तिकता तो उनके तन-मनके, अणु-अणुमें व्याप्त थी। एक बार श्रीस्वामीजी महाराज अपने भक्त-समुदायके साथ वृन्दावन-धामके प्रसिद्ध भगवद्विग्रह श्रीविहारीजीका दर्शन कर रहे थे। उनके एक प्रेमीने सहज भावसे प्रश्न किया—'स्वामीजी! आप तो नेत्रहीन हैं; आप क्या दर्शन करते हैं?' पूज्य स्वामीजीने तुरंत बड़ा ही मार्मिक उत्तर दिया—'मैं नेत्रहीन हूँ तो क्या, ठाकुर तो नेत्रहीन नहीं हैं! मैं नहीं देखता हूँ, पर वे तो देखते हैं कि कौन आया है!'

परम पूजनीय महाराजजी मानवतावादी संत थे। उन्होंने श्रीवृन्दावनमें 'मानव-सेवा-संघ'की स्थापना कर मानवके लिये आध्यात्मिक सेवाका मार्ग प्रशस्त किया है; और वह अनुपम है।

गीताप्रेस और 'कल्याण' तथा हमलोगोंके प्रति पूज्य महाराजजीकी चिरकालसे बड़ी ही आत्मीयता और अहैतुकी कृपा थी। वे प्रायः प्रत्येक वर्ष गीता-भवन, स्वर्गाश्रम पधारते थे और कई सप्ताह वहाँ ठहरकर अपने उपदेशामृतसे सहस्रों नर-नारियोंकी अध्यात्मविषयक पिपासा शान्त करते थे। गतवर्ष शरीरके रुग्ण रहनेपर भी आपने वहाँ पधारनेका अनुग्रह किया था।

हम अपने उन परम श्रद्धास्पद गुरुजनके प्रति अन्तर्हृदयके श्रद्धा-सुमन अर्पण करते हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक इन्द्रियसे शुभका संग्रह करें

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'नाद रीझि तनु देत मृग !'

कानोंसे मरा भी जा सकता है, तरा भी।

कानोंके चलते भी हम अनेक बार अपवित्र विचारोंके चक्करमें पड़ जाते हैं।

गंदे गीतों, ठुमरी-ठप्पोंने तथा गंदे प्रसङ्गों, विवरणों, गंदी कहानियों और अश्लील चर्चाओंने भी न जाने कितने व्यक्तियोंको पतनके गर्तमें डाल दिया।

गणिकाओंकी गंदी संगीत-लहरीने न जाने कितने लोगोंको भव-सागरमें डुबा दिया। आजकल सिनेमाकी संगीत-लहरीने तो चारों ओर सर्वनाशकी आग लगा रखी है। अश्लील वार्ता प्रारम्भ हुई कि पतनका पथ प्रशस्त हुआ।

कानोंका विषय है—शब्द। शब्द हम उत्तम ही ग्रहण करें; बस, समस्या हल है। कानोंमें सीसा पिघलाकर डालने और बहरे बननेकी जरूरत नहीं। जरूरत है—कानोंका सदुपयोग करनेकी।

कानोंसे हम अच्छे शब्द ग्रहण करें, गंदे नहीं; पवित्र बातें सुनें, अपवित्र नहीं; ज्ञानवर्धक प्रसङ्ग सुनें, अश्लील नहीं; कल्याणकारी बातें सुनें, अहितकर नहीं; कामकी बातें सुनें, बेकामकी नहीं।

कानसे तरनेके लिये तुलसीकी कसौटी है—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

(मानस २। १२७। २-३)

* * *

और नाक ! नाक भी कभी-कभी अपवित्र विचारोंको उकसाती है।

इत्र-फुलेलकी फुरहरियों एवं गुलाब-केवड़ेकी खुशबूसे सुवासित प्राणी-पदार्थोंके सम्पर्कमें आनेपर सहज ही कामोद्दीपन हो जाता है।

सेंट और स्नो, क्रीम और पाउडरकी मादक गन्ध अपवित्र विचारोंको उकसाया करती है।

तभी तो मनु बाबाने आदेश दे रखा है—

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥

(मनुस्मृति २। १७७)

'ब्रह्मचारीके लिये मधु, मांस, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थ, पुष्पोंकी मालाएँ, रस, स्त्रियाँ, सभी प्रकारके सिरके और प्राणियोंकी हिंसा वर्जित है।'

स्निग्ध पदार्थोंकी गन्ध हमें ललचाती है। विकृत और कृत्रिम, भुने और तले पदार्थोंका सोंधापन हमें अपनी ओर आकृष्ट करता है। इनके आकर्षणमें फँसे कि अपवित्र विचारधारा पनपी।

लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं ही है कि हम नाकसे कोई काम ही न लें, अथवा उसमें रूईका फाहा ठूँसे रहें। जी नहीं ! नाकका हम सदुपयोग करें।

उससे हम प्राकृतिक पदार्थोंकी गन्ध लें, सोंधी मिट्टीकी गन्ध लें, धूप, दीप, नैवेद्य एवं हवन-सामग्रीकी पवित्र गन्ध लें। शुद्ध, सात्त्विक पदार्थोंकी, फल-दूधकी, शाक-सब्जी और अङ्कुरित अन्नकी एवं अविकृत पदार्थोंकी गन्ध लें।

कितना धन्य है वह—

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥

(मानस २। १२८। १)

* * * *

और निगोड़ी जीभ ?
इसकी शैतानियोंका कहीं पार है ?
क्या नहीं चाहिये इसे ?
इसकी रसकी पिपासा लाजवाब है।

तभी तो जिसने जीभको वशमें कर लिया, रसनाको सचमुच 'रस+ना' बना लिया, उसने आधा जग जीत लिया।

कबीरने कहा है—

'कबिरा' छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कै, भजन करो निःसंक॥

परंतु शरीर-रक्षाके लिये जितना चाहिये, केवल उतने भोजनसे कहीं हमारी तृप्ति हो पाती है ? जीभके चटोरपनके चलते हम दुनियाभरका पाप तो बटोरते ही हैं, दूसरोंको भूखों मारते हैं, असंख्य रोगोंको न्यौता देते हैं और डाक्टरोंका बिल बढ़ाते हैं ऊपरसे।

भोजन स्वास्थ्यवर्धक है कि नहीं, उससे आरोग्य सुधरेगा कि नहीं—यह हम नहीं देखते। हम देखते हैं—वह स्वादिष्ट तो है, चटपटा तो है ? खट्टा और सलोना तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ! हमें षड्रस व्यञ्जन चाहिये; स्वास्थ्य जहन्नुममें जाय तो जाय !

यही कारण है कि हमने जीभकी तुष्टिके लिये असंख्य वस्तुएँ तैयार कर रखी हैं—पूड़ी और कचौड़ी, हलुआ और मोहनभोग, रसगुल्ला और गुलाबजामुन, लड्डू और पेड़ा, अचार और मुरब्बा और न जाने क्या-क्या ! एक-दो चीजें हैं, जो गिनायी जायँ ? महिलाओंकी इतनी भारी जमात, हलवाइयों और होटलवालोंका इतना भारी मेला हमने इसी 'महत्त्वपूर्ण' कामके लिये लगा रखा है कि वे हमारे चटोरपनको शान्त करनेके लिये भाँति-भाँतिके पदार्थ तैयार करते रहें । सुबह-शाम, दिन-रात, आठ पहर, चौंसठ घड़ी ।

नमक-मिर्च, चीनी, मसाला, तेल, डालडा, घी आदिके सहारे हम पदार्थोंको स्वादिष्ट बनाते हैं । फिर भी जी नहीं भरता तो हम प्राकृतिक पदार्थोंको कई-कई दिनोंतक—कभी-कभी महीनोंतक—सड़ाते हैं । विकृति जब अधिक हो जाती है, तब हम उसे चखकर खुश होते हैं—'वाह, कैसी लजीज है यह चीज !'

क्या कहने हैं हमारे स्वादके !

* * *

प्राकृतिक जीवन बितानेवालोंका दावा है और वह दावा सोलह आने सही है कि शरीरके पोषणके लिये हमें बहुत थोड़े भोजनकी आवश्यकता है । स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये हम ये सप्त-सूत्र याद रखें तो हमारा काम बन जाय—

(१) खानेको आधा करो, पानीको दूना ।
कसरतको तिगुना और हँसना चौगुना ॥

(२) अन्न और साग, फल और हरी तरकारी कच्चे रूपमें, अङ्कुरित करके प्राकृतिक रूपमें ग्रहण करो । आगसे कम-से-कम काम लो । मिर्च, मसाला, तेल, खटाई, मिठाई-को चौकेसे निकाल दो । घी, तेल—चिकनाईमें तली-भुनी चीजें बिल्कुल मत खाओ ।

(३) खटास पैदा करनेवाली चीजें—कार्बोज, प्रोटीन और चिकनाई—कम-से-कम खाओ ।

(४) रोगसे बचानेवाली चीजें—फल और तरकारियाँ खूब खाओ । खटाई पैदा करनेवाली चीजोंसे कम-से-कम तिगुनी ।

(५) प्रत्येक कौरको इतना चबाओ कि वह लारके साथ मिलकर एक हो जाय ।

(६) केवल इतना खाना खाओ कि पेट न तो खाते समय भारी लगे और न खानेके बाद ।

(७) मादक पदार्थोंके पास भी मत फटको । शराब, ताड़ी, गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट ही नहीं, चाय भी मत पियो ।

* * *

हमारे शास्त्रोंमें भोजनकी पवित्रतापर, उसकी सात्त्विकता-पर जो इतना जोर दिया गया है, वह किसलिये ? केवल इसीलिये कि उससे सात्त्विक विचार उत्पन्न होंगे, पवित्र विचार बनेंगे, जीवन पवित्र बनेगा, बुद्धि शुद्ध होगी, रज और तमसे छुटकारा मिलेगा और सत्त्वगुणकी वृद्धि होगी—

'जैसा खावे अन्न, तैसी उपजै बुद्धि ।'

द्रव्य-संस्कारका, भोजनके पदार्थोंका चित्तपर पूरा संस्कार पड़ता है । शान्त और बुद्धिमान् व्यक्तिको भी कड़ी शराब पिला दी जाय तो वह भी ऊटपटाँग बकने लगेगा । इसीलिये यह जरूरी है कि न तो असात्त्विक पदार्थ खाये-पिये जायँ और न ऐसे लोगोंका सङ्ग ही किया जाय, जिनके विचार गंदे हैं, मलिन हैं, अपवित्र हैं ।

अर्थात् जीभके रास्ते हम सात्त्विक और पवित्र पदार्थ ही पेटमें जाने दें ।

साथ ही यह भी ध्यान रखें कि वे आवश्यक मात्रासे अधिक न हों ।

हमारे भोजनमें खड़ी-मलाई, पूड़ी-कचौड़ी, हलवा, मोहनभोग तो रहें ही नहीं, रोटी-दाल, शाक-सब्जी, फल और दूध भी मात्रासे अधिक न रहें ।

भोजन पौष्टिक तो हो, संतुलित भी हो ।

और यह तभी सम्भव है, जब हम भोजनसे स्वादको निकाल बाहर करें ।

परंतु अस्वाद-व्रतका पालन सरल नहीं है ।

मैंने महीनों नमक छोड़कर देखा है, चीनी छोड़कर देखा है, मिर्च-मसाला, खटाई-अचार छोड़कर देखा है, फिर भी रसासक्तिसे छुटकारा कहाँ मिल पाया है !

परंतु जानता हूँ कि रसासक्ति छूटनेका रास्ता यही है ।

* * *

अस्वादके लिये बापूने सुन्दर कसौटी बतायी है—

'स्वादकी दृष्टिसे किसी भी चीजको चखना व्रतका भङ्ग है ।......'जो अनेक चीजें हम खाते हैं, वे शरीर-रक्षाके लिये जरूरी न होनेसे त्याज्य ठहरती हैं और यों जो सहज ही असंख्य चीजोंको छोड़ देता है, उसके समस्त विकारोंका शमन हो जाता है ।......इसके लिये......सावधानीकी, जागृतिकी बहुत ज्यादा जरूरत है । ऐसा करनेसे कुछ ही समयमें हमें मालूम होने लगेगा कि हम कब और कहाँ **स्वाद करते हैं ! मालूम होनेपर हमें चाहिये कि हम अपनी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वादवृत्तिको दृढ़ताके साथ कम करें। इस दृष्टिसे संयुक्तपाक—यदि वह अस्वाद-वृत्तिसे किया जाय—बहुत मददगार है। जो कुछ बना है और जो हमारे लिये त्याज्य नहीं है, उसे ईश्वरकी कृपा समझकर, मनमें भी उसकी टीका न करते हुए, संतोषपूर्वक शरीरके लिये जितना आवश्यक हो, उतना ही खाकर हम उठ जायँ। वस्तुतः तो आदर्श स्थिति वह है, जिसमें अग्निका खर्च कम-से-कम या बिल्कुल न हो।'

* * *

भोजन सात्त्विक हो, पौष्टिक और संतुलित हो, अस्वादकी दृष्टिसे बना हो, प्रसन्नतापूर्वक शुद्धतासे बनाया गया हो और उसे हम प्रभुकी प्रसादी समझकर प्रसन्न-मनसे ग्रहण करें। किंतु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है; वह ईमानदारीकी कमाईका भी होना चाहिये।

पवित्र विचारोंके लिये अर्थ-शुद्धि भी जरूरी है।

* * *

कहते हैं कि एक महात्मा जंगलसे होकर कहीं जा रहे थे। रास्तेमें प्यास लगी और सामने ही दीख पड़ा एक कुआँ। रस्सी और बाल्टी भी वहाँ मौजूद थी।

महात्माजीने कुएँसे पानी निकालकर पिया और उसे पीते ही वे सोचने लगे कि 'क्यों न मैं इस रस्सी-बाल्टीको अपने साथ रख लूँ। जहाँ प्यास लगेगी, पानी निकालकर पी लिया करूँगा।'

रस्सी-बाल्टी लेकर चलनेको उद्यत हुए कि विवेकका उदय हुआ—'छिः छिः, मैं यह चोरी कर रहा हूँ!' बड़ी ग्लानि हुई। हृदयमें ऐसा मलिन भाव आया तो क्यों? कारणका पता लगाने वे जा पहुँचे राजाके दरबारमें, और राजासे सवाल कर दिया—'महाराज! उस जंगलमें जो कुआँ बना है, उसमें किसका पैसा लगा है?'

राजाने पता लगवाया तो मालूम हुआ कि एक लावारिस व्यापारीका धन जब्त कर लिया गया था, उसीके पैसेसे वह कुआँ बनवाया गया था।

महात्मा बोले—'अवश्य ही उस व्यापारीने चोरी कर-करके धन जोड़ा होगा, तभी तो उसके पैसेसे बने कुएँका पानी पीते ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और मैं रस्सी-बाल्टी चुराकर चल पड़ा।'

* * *

एक गृहस्थने एक बार बड़ी श्रद्धासे साधुओंकी एक टोलीको भोजन कराया। सुबह उठे तो सब साधु हैरान! रात्रिमें सबको स्वप्नदोष हो गया। गृहस्थको बुलाकर उन्होंने पूछा—'बता तो तूने हमें किसलिये भोजन कराया था?'

गिड़गिड़ाकर उसने कहा—'महाराज! मेरे कोई पुत्र नहीं है। बड़ी इच्छा है कि मेरे पुत्र हो। इसी आशासे आपलोगोंको मैंने भोजन कराया था।'

* * *

स्पर्शसे अपवित्र विचार अपनी पराकाष्ठापर जा पहुँचते हैं। छुआ कि गिरे! युवक और युवतीने, पुरुष और स्त्रीने जहाँ विकारग्रस्त होकर किसीको छूआ कि वासना भड़की और पतन हुआ।

बड़े-बड़े साधु, संन्यासी, योगी, यति, विद्वान्, पण्डित, दार्शनिक, विचारक भी स्पर्शकी वासनासे आक्रान्त हो जाते हैं और फिर उन्हें नरकमें भी मुश्किलसे ठिकाना मिलता है। स्पर्शसे विकार पलोंमें पनपता है, सेकेंडोंमें बढ़ता है और मिनटोंमें गिरा देता है।

* * *

शास्त्रोंमें माँ-बहनके साथ भी एकान्तमें बैठनेकी मनाही की गयी है। पता नहीं, इन्द्रियाँ कब धोखा दे बैठें।

कौन जानता है कि किस क्षण विकार जाग्रत् हो जायगा, स्पर्शकी आकुलता बढ़ जायगी और मानव पतनके गड्ढेमें गिर जायगा।

इसलिये स्पर्शसे बचनेकी पूरी सतर्कता रखनी है।

दूसरोंके ही नहीं, अपने ही विभिन्न अङ्गोंको बार-बार छूनेसे बचना है।

कोमल शय्या, चिकने और रेशमी वस्त्र, स्निग्ध पदार्थ, सुगन्धित साबुन, क्रीम आदि शृङ्गार-सज्जाके प्रसाधन भी विकारोंको भड़काते हैं। उनसे भी दूर रहनेकी जरूरत है।

* * *

एक बालब्रह्मचारी अपने भक्तोंके बालक-बालिकाओंको गोदमें बैठाकर जब-तब प्यार करते हुए उनके कपोल आदिका स्पर्श कर लिया करते थे—सर्वथा निर्दोष भावसे। कोई मना करता तो वे उसका मजाक उड़ाते। उन्हें अपनी निर्विकारताका बड़ा अभिमान था। स्पर्शद्वारा प्यारकी यह प्रक्रिया जारी रही।

और पंद्रह साल बाद जब भक्तोंकी वे बालिकाएँ सयानी हुईं, तब उनके स्पर्शसे इस बुढ़ऊ ब्रह्मचारीके मनमें विकार आने लगा और तब उन्होंने अस्पर्श-व्रतकी महत्ता स्वीकार की एवं प्रतिज्ञा कर ली—'ना बाबा, अब ऐसा नहीं करूँगा।'

आजके सिनेमा-संसारमें अस्पर्श-व्रतके विरुद्ध जो अनाचार चल रहा है और भले-भले तरुण-तरुणी इस नरकाग्निमें अपनेको झोंक रहे हैं, इसका क्या परिणाम होगा!

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः अस्पर्श-योगकी साधना हमें दीर्घकालतक चलानी होगी। धीरे-धीरे मनको निर्विकार बनाते चलना होगा। यह कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं।

बापूने ब्रह्मचर्यकी कसौटी यह बतायी है—

'ब्रह्मचर्यका अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्रीको स्पर्श न करूँ; पर ब्रह्मचारी बननेका अर्थ है कि किसी स्त्रीका स्पर्श करनेसे भी मुझमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न न हो; जिस तरह एक कागजको स्पर्श करनेपर नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे झिझकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ीके कामका नहीं। जिस निर्विकार दशाका अनुभव हम मृत-शरीरको स्पर्श करके कर सकते हैं, उसीका अनुभव जब हम किसी सुन्दरी-से-सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सकें, तभी हम सच्चे ब्रह्मचारी हैं।'

* * *

बापू ऐसा कहकर ही नहीं रह गये, जीवनके अन्तिम क्षणतक उन्होंने अपनेको इस कसौटीपर कसा भी।

यह 'असिधारा-व्रत'—ब्रह्मचर्यकी यह अलौकिक साधना, स्थितप्रज्ञताकी यह कठिन चढ़ाई सबके वशकी बात नहीं। इसलिये सबको ऐसा दुस्साहस करना भी नहीं चाहिये। अपनी शक्ति और सामर्थ्यको देखकर ही इस आगमें हाथ डालना चाहिये। क्षण-क्षणपर, पल-पलपर जहाँ गिरनेका खतरा है, वहाँ बहुत सोच-समझकर आगे बढ़नेकी जरूरत है।

* * *

ज्ञानेन्द्रियोंके सदुपयोगके साथ-साथ हमें कर्मेन्द्रियोंका भी सदुपयोग करना है। किसी भी इन्द्रियको स्वेच्छाचारकी छूट नहीं मिलनी चाहिये।

हाथ सत्कर्म ही करें। पैर सत्पथपर ही चलें। वाणी जो मुखसे निकले, वह दूसरोंका हित करनेवाली हो, मीठी हो, सत्य हो; उससे किसीको उद्वेग न हो—

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
(मानस २।१२८।२-३)

* * *

हमारा अङ्ग-अङ्ग संयममें जकड़ा हो, उसकी मर्यादाएँ बँधी हों, कैसा भी प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर हम विचलित न हों। फिर तो अपवित्र विचार आयेंगे ही कहाँसे !

अङ्ग-अङ्ग हम प्रभुको अर्पित कर दें। हाथ हो, पैर हो, नाक हो, कान हो, वाणी हो, जो भी हो—सब प्रभुकी सेवामें लगा दें। 'जो कछु करूँ, सो पूजा !'

प्रभु-प्रेममें हम विभोर हो जायँ। सर्वस्व उन्हें ही अर्पण कर दें। धन्य हो उठे हमारा जीवन !

आतिशे इश्कमें जलनेका मजा तब आये।
दिल जले खाक बने, खाकसे पैमाना बने॥

* * *

प्रभुसे हम कह दें—

Take my life, and let it be
Consecrated, Lord ! to Thee;
Take my hands, and let them move
At the impulse of Thy love.
Take my moments and my days,
Let them flow in ceaseless praise.
Take my feet and, let them be
Swift and beautiful for Thee.
Take my Voice, and let me sing
Always, only for my King,
Take my lips, and let them be
Filled with messages from Thee.
Take my silver and my gold;
Not a mite would I withhold.
Take my intellect, and use
Every power as Thou Shalt choose.
Take my will, and make it Thine;
It shall be no longer mine.
Take my heart, it is Thine own,
It shall be Thy Royal Throne.
Take my love; my Lord ! I pour
At Thy feet its Treasure-store.
Take myself and I will be
Ever, only, all for Thee.

लो, नाथ ! मेरा यह जीवन तुम्हारे चरणोंमें अर्पित है। लो, मेरे ये हाथ, तुम्हारे प्रेमका संदेश ही ये वहन करें।

लो मेरे जीवनके सारे क्षण ! इनमें मैं तुम्हारी स्तुतिका ही गान करता रहूँ।

लो मेरे ये पैर ! तुम्हारा आदेश पालन करनेके लिये ही ये सदैव चलते रहें।

लो मेरी यह वाणी ! इससे मैं सदैव तुम्हारे ही गीत गाया करूँ।

लो मेरे ये होंठ ! हर समय इनसे तुम्हारे ही संदेश निकला करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लो मेरा सारा सोना-चाँदी ! सारी दौलत तुम्हारे चरणोंपर न्योछावर है। मुझे इसमेंसे कानी कौड़ी भी नहीं चाहिये।

लो मेरी बुद्धि ! जैसा चाहो, इसका उपयोग करो।

लो मेरी सारी कामना ! मेरी अपनी इच्छा नामकी कोई चीज न रहेगी अब। इसे तुम अपनी बना लो।

लो मेरा यह हृदय ! यह तो तुम्हारा ही है। बना लो इसे अपना सिंहासन।

लो मेरा प्रेम ! इसका खजाना मैं तुम्हारे चरणोंपर ही लुटा रहा हूँ।

अन्तमें तुम मुझे ही ले लो।

'मैं तेरा हूँ, सदा तेरा रहूँगा बावफा खादिम !'

* * *

मतलब, अपवित्र विचारोंके शिकंजेसे मुक्त होनेके लिये हमें सर्वेन्द्रिय-संयमका अभ्यास करना होगा—आठ पहर चौंसठ घड़ी। हम सदैव पवित्र विचारोंका चिन्तन करें। विचारोंको हम कभी खाली न रहने दें। 'आलसी दिमाग शैतानका घर।'

हम जो पढ़ें-लिखें, वह पवित्र हो।

जो देखें-सुनें, वह पवित्र हो।

जो छुएँ, जो सूँघें, वह पवित्र हो।

जो कुछ करें, वह पवित्र हो।

* * *

संत विनोबाने ठीक ही कहा है—'हम जीवनरूपी व्यापार करके संस्काररूपी सम्पत्ति जोड़ते हैं। हमें आजसे ही इस बातपर विचार करते रहना चाहिये कि मनपर ऊँचे-से-ऊँचे एवं सुन्दर-से-सुन्दर संस्कार कैसे पड़ें। परंतु अच्छे संस्कारोंके अभ्यासकी गरज पड़ी किसे है ? इससे उल्टा, बुरी बातोंका अभ्यास अलबत्ते दिन-रात होता रहता है। जीभ, आँख और कानको हम चटोरपन सिखा रहे हैं। अच्छी बातोंकी ओर चित्त लगाना चाहिये। उनमें उसे रँग जाना चाहिये।

'ऐसी चिन्ता रखनेका प्रयत्न करो कि हमेशा अच्छे ही संस्कार संगृहीत हों। खराब बात कही तो पड़ गया उसी क्षण बुरा संस्कार।

'कितने ही बुरे संस्कार गफलतमें पड़ जाते हैं। नहीं कह सकते, वे कब जग पड़ेंगे। सर्वदा ऐसा ही उद्योग करो, जिससे आँखें पवित्र रहें, कान निन्दा न सुनें, जीभ अच्छी वाणी बोले। संस्कारोंकी दिव्य धारा सारे जीवनमें सतत बहती रहनी चाहिये।'

* * *

हम रात-दिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल शुभ संस्कारोंके लिये सचेष्ट रहें; सर्वेन्द्रिय-संयममें जी-जानसे जुटे रहें। परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है—अपवित्र विचारोंसे छुटकारा पानेके लिये। उसके लिये हमें प्रभु-कृपाकी भी सदैव याचना करते रहना होगा।

बापूके शब्दोंमें 'राम-नामका इकतारा चौबीसों घंटे—सोते हुए भी श्वासकी तरह स्वाभाविक रीतिसे चलते रहना चाहिये।'—और यह तो है ही—

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

(मानस १। १२५। ४)

श्यामसे !

मेरे श्याम ! तुमने यह कैसी मुरली बजायी !

मैंने अपना श्रृङ्गार छोड़ा, वैभव छोड़ा और अपनी सुध-बुध भूलकर इस झिलमिल तारोंकी धुँधली रातमें मैं तुम्हें ढूँढने निकल पड़ी हूँ !

तुम किस झुरमुटमें छिपकर यह मनोमोहिनी तान बजा रहे हो, मेरे श्याम !

मुझे गर्व था, मैं अपनी मधुर तान सुनाकर तुम्हें इस ओर आकर्षित कर लूँगी और रजनीके इस निर्जन पथपर आँसुओंके मोती बिछाकर तुम्हारा आह्वान करूँगी।

पर मेरे मोहन ! तुमने यह कैसी मुरली बजायी !

मेरे होंठतक नहीं खुलते। मैं अपनी राग ही भूल गयी। मुझे एक स्वर भी साधना न आया। मैंने जितना अबतक गाया, वह सब भूल गयी। मेरे अन्तस्तलके स्निग्ध, तप्त उद्गार आज अकर्मण्य बने खड़े हैं। मेरा श्रृङ्गार बिखरा हुआ है। मेरे शरीरपर कोई सजावट नहीं है। मेरे यौवनका यह शुद्ध सूनापन, श्याम !! अपनी बाँसुरीकी सुरीली तानसे भर दो; मैं सदाके लिये अपनी तान भूल जाऊँ, मेरे वैभवके सब श्रृङ्गार एक ओर पड़े रहें और तुम अपना यही स्वर मेरे जीवनकी रिक्त प्यालीमें भरते रहो !

—देवीलाल शामर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ज्ञान-प्राप्तिका प्रथम सोपान

राजद्वारपर आगत ऋषियों एवं ऋषि-पुत्रोंका बृहत् समुदाय देखकर महाराज अश्वपति अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दौड़कर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उन्हें अत्यन्त आदरपूर्वक पवित्र एवं सुन्दर आसन बैठनेके लिये दिया। तदनन्तर महाराजने पाद्य, अर्घ्य, चन्दन, पुष्प-माला आदिसे उन सबका पूजन किया। स्वर्ण-थालमें विविध प्रकारके सुन्दर, सुस्वादु, सात्त्विक व्यञ्जनोंके साथ दक्षिणाके लिये विपुल स्वर्ण-राशि उनके सम्मुख उपस्थित कर दी। किंतु ऋषियों एवं ऋषि-पुत्रोंने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अर्पित नरेशके व्यञ्जनोंको स्पर्श भी नहीं किया।

'परमपूज्य मुनियो !' महाराजको तनिक भी आश्चर्य न हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर ऋषियों एवं ऋषि-पुत्रोंसे अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—'निश्चय ही नरपति मद्यपों, तस्करों, दस्युओं एवं पातकियोंसे भी दण्डके रूपमें अर्थ प्राप्त करता है। इस कारण शास्त्रोंमें राजाके अन्नको निषिद्ध माना गया है। उसे दूषित बताया गया है; किंतु आपलोगोंके अनुग्रहसे मेरे राज्यकी सीमामें इन कुकर्मियोंका सर्वथा अभाव है। स्त्रियाँ सभी सदाचारिणी एवं पतिपरायणा हैं। अतएव मेरा यह अन्न और धन निर्दोष तथा आप सबके ग्रहण करनेयोग्य है। कृपया इसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।'

'धर्ममूर्ति महाराज !' ऋषियोंने उत्तर दिया—'आपके अन्न और धन निश्चय ही निर्दोष हैं, किंतु मनुष्योंका स्वागत उनके प्रयोजनकी सिद्धिसे ही हो जाता है। हम सब ऋषि तो आपके समीप वैश्वानर आत्माका ज्ञान प्राप्त करने आये हैं। हमारी यथार्थ अभ्यर्थना इसीमें निहित है।'

'अभी तो आपलोग कृपापूर्वक भोजन ग्रहण करके विश्राम करें।' महाराज अश्वपतिने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'इस प्रश्नपर कल विचार किया जा सकता है।'

'महाराज अश्वपतिने हमारे प्रश्नकी ओर ध्यान नहीं दिया।' ऋषि परस्पर विचार करने लगे। ऋषि और ऋषि-पुत्रोंका समुदाय एक स्थानपर एकत्र होकर आत्मा तथा ब्रह्मके सम्बन्धमें विचार कर रहा था। किसी निश्चयपर पहुँच न सकनेके कारण वे लोग महर्षि उद्दालकके समीप पहुँचे। उनकी जिज्ञासा जानकर महर्षिने उत्तर दिया—'महाराज अश्वपति यथार्थ आत्मज्ञानी हैं। अतएव हमलोग वहीं चलें।' किंतु महाराजका निश्चित उत्तर न पाकर भोजनोपरान्त अग्निशालामें बैठे ऋषियोंने चिन्तित होकर कहा—'और कल भी वे उत्तर दे ही देंगे, इसका ढंग नहीं दीखता।'

'आत्मज्ञान-जैसे प्रश्नका उत्तर विधिपूर्वक पूछे जानेकी अपेक्षा करता है, किंतु हमलोगोंने विधिकी उपेक्षा की है।' महर्षि उद्दालकने ऋषियोंसे कहा—'हम प्रश्न करने आये आत्मज्ञानका और जिज्ञासु होकर भी सम्मानित आसनोंपर बैठकर अपनी पूजा कराने लगे। विद्या भी जलके समान अधः-प्रवाहिनी है। ज्ञानकी प्राप्ति इस प्रकार सम्भव नहीं; उसके लिये आवश्यक है कि विनम्रतापूर्वक नीचे बैठा जाय। ज्ञान-प्राप्तिका यह प्रथम सोपान है।'

ऋषि एवं ऋषि-पुत्र अपनी त्रुटिसे अवगत हो गये। दूसरे दिन वे महाराज अश्वपतिके समीप पहुँचे तो उनके हाथमें समिधा थी और वे अत्यधिक विनम्र थे।

महाराज अश्वपतिने ऋषियों और ऋषि-पुत्रोंको यथार्थ जिज्ञासुके रूपमें देखा तो उन्हें आत्मज्ञानका उपदेश प्रदान किया।

—श्रीमती मीनाक्षीदेवी मिश्र

(२)

हिंदू-संस्कृति आज भी जीवित है

कुछ वर्षों पूर्व मैं 'गीताप्रेस-सेवा-दल' की ओरसे उत्तरी मुँगेरके बाढ़-पीड़ित गाँवोंमें अपने सहयोगियोंके साथ घूम रहा था। बाढ़की भयंकर विनाश-लीला और अपने सीमित साधनोंको देखकर मन खिन्न हो उठता था। वीरान बने गाँवोंमें सहायता-प्राप्तिके लिये सर्वाधिक उपयुक्त पात्रोंको खोजकर सबसे पहले उनकी सहायता करनेकी इच्छासे हमलोग पूरे गाँवका चक्कर लगाया करते थे। यथाशक्ति कार्य हो रहा था।

एक दिनका प्रसङ्ग है—एक गाँवमें प्रवेश करते ही एक वृद्धापर दृष्टि गयी, जो अपने सिरपर कीचड़से सने हाथोंके सहारे एक कीचड़भरी टूटी हुई बाल्टीको लिये हुए नदीकी ओरसे अपनी झोपड़ीकी तरफ जा रही थी। बुढ़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माई बाढ़की चपेटसे गिरी हुई अपनी झोपड़ीकी मरम्मतमें लगी थी। वस्त्रके नामपर उसके शरीरपर कुछ रंग-बिरंगे चिथड़ोंका 'सम्मेलन'-मात्र था। हमने उसे सहायता देनेका उपयुक्त पात्र समझा और उसको रोककर एक साड़ी लेनेका आग्रह किया। परंतु बुढ़िया माईने हाथ जोड़कर बड़ी ही विनम्रताकी मुद्रामें कहा—'बाबूजी ! मेरा लड़का मुझे जितना जो-कुछ दे पाता है, उसीमें मुझे संतोष है। इस गाँवमें ऐसे भी बहुत-से लोग हैं, जिनका कोई सहारा नहीं है, आप अपनी सहायता उनको दीजिये। मुझे नहीं चाहिये आपका दान······।'

—यों कहते-कहते बुढ़िया आगे बढ़ गयी। हमलोग आश्चर्यचकित थे; मुँहसे एक शब्द नहीं निकल पा रहा था; हमारी आँखें हिंदू-संस्कृतिकी उस जीवित प्रतिमाके चरणोंको निहार रही थीं !

—रामगोपाल पालड़ीवाल

(३)

विश्वासका निर्वाह

घटना पचास वर्ष पहलेकी है। राजस्थानके लाडनूँ नामक कस्बेके एक ओसवाल वैश्यने अपनी पुत्रीको ससुराल भेजनेके लिये ऊँट किरायेपर किया। ऊँटका मालिक बन्ने खाँ जातिका कयामखानी (मुसलमान) था। लड़की युवती थी, ससुराल जा रही थी, इसलिये सोने और मोतियोंके गहने तथा कीमती कपड़े पहने हुए थी; फिर भी उसे बन्ने खाँके साथ अकेली भेजनेमें घरवालोंको किसी प्रकारका भी संकोच न था। उस समय राजस्थानके गाँवोंमें गाँवकी बहन-बेटीको सब जातियों एवं धर्मोंके व्यक्ति अपनी बहन-बेटी ही मानते थे। बन्ने खाँ बहुत ही ईमानदार एवं सच्चरित्र व्यक्ति था। उसके पास ऊँट भी अच्छा था। वह हमेशा तलवार-कटारसे लैश रहता और बहादुर भी था। डाकू उससे शङ्का मानते थे, इसलिये लोग उसके साथ अपनी बहन-बेटीको भेजनेमें डरते नहीं थे। विदाईके समय लड़कीकी माँने उसकी सँभाल देते हुए बन्ने खाँसे कहा—'काकाजी ! लड़कीकी ससुरालमें जरूरी काम हो गया है, इसलिये इसे अकेली भेजना पड़ रहा है। समय खराब है, परंतु आपके साथके कारण जीमें तसल्ली है। फिर आप भी इसे बेटी ही मानते रहे हैं। आपके रहते हमलोगोंको क्या डर है ? आप पूरी सावधानी रखियेगा !'

हँसते हुए बन्ने खाँने कहा—'बहूजी ! बन्नेके रहते आप चिन्ता न करें—बालाजी (राजस्थानमें हनुमानजीको बालाजी भी कहते हैं; बहुतसे कयामखानी मुसलमान होते हुए भी हिंदू देवताओंको मानते हैं।) सहाय करेंगे।'

संयोगसे जोधपुर-बीकानेरकी सीमापर ही दो ऊँटोंपर चार डाकुओंने उन्हें घेर लिया। वे बन्ने खाँके बारेमें जानते थे, इसलिये जब उन्होंने उसको देखा तो कुछ सावधान हो गये। वे बोले—'खाँजी ! आप बहादुर हैं, हमारी बिरादरीके भी हैं; हम आपकी इज्जत करते हैं। इसलिये आपसे अरदास है कि इस बनियेकी लड़कीके लिये व्यर्थमें जान न गँवायें। गहना-कपड़ा सौंपकर आपलोग अपने मुकामपर चले जायँ।' लड़की तो डाकुओंको देखते ही भयसे रोने लगी। उसने बन्ने खाँसे कहा—'बाबूजी ! ये चार हैं, आप अकेले। उनकी बात मान लेनेमें ही भला है।'—ऐसा कहकर वह अपने गहने उतारने लगी।

बन्ने खाँने भी स्थिति समझ ली थी; डाकुओंकी बात माननेके सिवा कोई चारा नहीं था; परंतु इतनेमें ही एक जवान डाकूने लड़कीके प्रति भद्दा मजाक कर दिया। फिर तो बन्ने खाँ क्रोधके मारे आपे-से बाहर हो गया। वह तलवार लेकर उसपर झपट पड़ा और उसका सर धड़से जुदा कर दिया। इतनेमें शेष तीन डाकू एक साथ उसपर टूट पड़े। अकेला आदमी, भला तीन-तीन सशस्त्र जवानोंसे कैसे पार पाता ? थोड़ी देरतक तो वह जख्मी होकर भी जूझता रहा और डाकुओंको भी उसने लहू-लुहान कर दिया, परंतु अंतमें धराशायी हो गया।

संयोगसे तबतक सुजानगढ़की ओरसे आते हुए दो ऊँट दिखायी दिये। दोनों डाकू जख्मी साथीको लेकर भाग गये। लाडनूँ खबर पहुँची; लड़कीके घरवाले आये। बन्ने खाँकी बीबी और बच्चे भी रोते-बिलखते आये। खाँजीकी पत्नी उनकी लहू-लुहान लाशको गोदमें लेकर बिलख-बिलखकर रोने लगी। लड़कीके घरवाले भी रो रहे थे। लड़कीने बिलखते हुए पूरी घटनाका विवरण सुनाया कि किस प्रकार उसके सतीत्वकी एवं प्राणोंकी रक्षाके लिये बन्ने खाँ व्यग्र था और किस प्रकार वह डाकुओंसे जूझा। सबके मुँहपर यही शब्द थे—'उसने उसे सौंपे गये उत्तरदायित्व एवं विश्वासका निर्वाह किया है। वह धन्य है; भगवान् उसकी आत्माको अवश्य शान्ति प्रदान करेंगे !'

—रामेश्वर टाँटिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

समुद्री जीवोंमें भी सहृदयता होती है

दक्षिणी फिलीपाइनके समुद्रमें एक जहाजके डूब जानेपर उसपर यात्रा करनेवाली एक बावनवर्षीय महिलाकी एक समुद्री कछुआ दो दिनोंतक जीवन-रक्षा करता रहा। मनीलाके एक पत्रने उसका विवरण इस प्रकार दिया है—

उस महिलाका नाम श्रीमती केनडेलरिया विलनैवा था। वह फिलीपाइन अन्तर्द्वीपीय अलोहा नामक जहाजपर यात्रा कर रही थी। जम्बोवंगा प्रान्तके समुद्री क्षेत्रमें प्रवेश करते-करते जहाजमें आग लग गयी। वह जलकर नष्ट हो गया और पानीमें निमग्न हो गया। श्रीमती केनडेलरिया ४८ घंटोंतक समुद्री लहरोंपर झूलती रही कि अचानक एक जहाजी बेड़ेके यात्रियोंकी दृष्टि उसपर पड़ी। लोगोंने देखा कि वह एक समुद्री कछुएकी पीठपर दीन-हीन अवस्थामें विक्षिप्त-सी बैठी है।

एक नौसेना-अधिकारी और उसकी पत्नीको तो ऐसा लगा कि उपर्युक्त स्त्री तेलके एक बड़े पीपेके सहारे तैर रही है। जब नाविकोंने जहाजकी दिशा मोड़कर उसे पकड़ना चाहा, तभी उन्हें भी पता चला कि वह एक समुद्री कछुए-की पीठपर बैठी है। नाविकोंद्वारा उस महिलाको खींचकर जहाजपर बैठा लेनेके बाद भी उस कछुएने यह देखनेके लिये कि वह स्त्री सुरक्षित और सकुशल है, जहाजके निकट दो बार चक्कर लगाया। जब उसे विश्वास हो गया कि जिन्होंने उस महिलाको लिया है, वे उसकी सँभाल कर रहे हैं, मार नहीं रहे हैं, तब वह दूर चला गया।

—हिंदुस्तान टाइम्ससे साभार

(५)

पूज्य गुरुजनके आदेशका पालन

बात पुरानी है। एक प्रसिद्ध विद्वान्ने दर्शन-विषयपर हिंदीमें एक अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित कराया था। उन्होंने उसकी एक प्रति परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको भेंटस्वरूप भेजते हुए पत्रमें लिखा—'इस ग्रन्थकी अच्छी-सी समालोचना आप 'कल्याण'में अवश्य प्रकाशित कर दें।' श्रीभाईजी उन दिनों 'कल्याण'के विशेषाङ्कके कार्यमें व्यस्त थे एवं उनका स्वास्थ्य भी कुछ शिथिल था। अतएव उस पत्रका उत्तर सामान्यरूपमें सम्पादकीय विभागके एक सदस्यने लिख दिया था—"कल्याण'में आपके ग्रन्थकी समालोचना प्रकाशित नहीं हो पायेगी; कृपया विवशताके लिये क्षमा करें।" इस उत्तरको प्राप्त कर विद्वान्को बड़ा असंतोष हुआ, पर उन्होंने अपना असंतोष मनमें ही रखा, पत्ररूपमें उसे व्यक्त नहीं किया।

एक-दो मास बाद किसी कामसे वे (पण्डितजी महाराज) गोरखपुर पधारे और श्रीभाईजीसे मिले। श्रीभाईजीने उनका बहुत ही आदरके साथ स्वागत किया, चरण छूकर प्रणाम किया और अपने सहज स्वभावसे पूछा—'महाराजजी! कोई सेवा हो तो बताइये!' श्रीभाईजीके मुखसे ये शब्द सुनते ही विद्वान् महोदय मुखर हुए। ग्रन्थकी समालोचना प्रकाशित न होनेके कारण जो असंतोष उनके हृदयमें था, उसे व्यक्त करनेका उन्हें अच्छा अवसर मिल गया। **'कामात् क्रोधोऽभिजायते—** कामना प्रतिहत होकर क्रोध बनती है।' विद्वान् महोदयने कहा—"भाईजी! आप पूछ रहे हैं कि 'कोई सेवा हो तो बताइये।' दो मास पूर्व एक सेवा बतायी थी—दर्शन-विषयपर लिखा गया अपना ग्रन्थ आपको भेजा था और आग्रहपूर्वक लिखा था कि उसकी अच्छी समालोचना 'कल्याण'में प्रकाशित कर दीजियेगा; परंतु आपने उस सेवाकी ओर तो ध्यान ही नहीं दिया और मिलनेपर सेवा बतानेकी बात कह रहे हैं। क्या 'कल्याण'-जैसे आध्यात्मिक पत्रके सम्पादकका यही स्वरूप होना चाहिये!"

श्रीभाईजीने विद्वान् महोदयके रोषभरे शब्द शान्त-भावसे सुने और दोनों हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हुए वे बोले—"महाराजजी! आपका कहना सत्य है; किंतु क्या करूँ, आपका ग्रन्थ मिला, उन दिनों मैं विशेषाङ्कके कार्यमें अत्यधिक व्यस्त था; साथ ही शरीर भी रुग्ण था। अतएव उसका उत्तर मैं स्वयं नहीं लिख पाया। पता नहीं, मेरे साथियोंने आपको क्या उत्तर लिखा। किंतु महाराजजी! 'कल्याण'के आरम्भसे ही हमलोगोंकी यह दृढ़ नीति रही है कि किसी भी ग्रन्थकी समालोचना उसमें प्रकाशित नहीं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय । इस नीतिके निर्धारणकी भी एक महत्त्वपूर्ण घटना है । "राष्ट्रपिता महात्मा गांधीसे मेरा प्रथम परिचय सन् १९१५में हुआ । महात्माजी सन् १९१५में जब दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेपर रंगून होकर कलकत्ता पधारे, तब वहाँकी 'हिंदू-सभा'-संस्थाकी ओरसे मन्त्रीके रूपमें मैंने उनका स्वागत किया था तथा अल्फ्रेड थियेटरमें उन्हें 'अभिनन्दन-पत्र' भेंट किया था । पीछे क्रान्तिकारी गति-विधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण जब मैं बंगालसे निष्कासित कर-दिया गया, तब सन् १९१८ से १९२७ ई०तक बम्बईमें रहा । उस अवधिमें महात्माजीके साथ अत्यन्त घनिष्ठता हो गयी । वे जब बम्बई पधारते, तब स्वर्गीय भाई श्रीजमनालालजी बजाजके साथ व्यावसायिक कार्य करनेके कारण उनकी ओरसे महात्माजीके सारे आतिथ्यका भार मेरे ही जिम्मे रहता था । महात्माजी बम्बईमें मेरे घरपर भी कई बार पधारे थे । उनका मेरे साथ सम्बन्ध प्रायः वैसा ही कौटुम्बिक था, जैसा उनका अपने पुत्र भाई देवदासके साथ था । अतएव 'कल्याण'के प्रकाशनके साथ उसके लिये महात्माजीका आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु श्रीजमनालालजी बजाजको साथ लेकर मैं उनके पास गया था । 'कल्याण'के सम्बन्धमें निर्धारित नीतियोंको सुनकर महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'दो नियमोंका पालन दृढतासे करना—बाहरी कोई विज्ञापन नहीं देना तथा पुस्तकोंकी समालोचना मत छापना ।' विज्ञापन न छापनेके सम्बन्धमें उन्होंने हेतु बताया कि 'तुम अपनी जानमें पहले-पहले यह देखकर विज्ञापन लोगे कि वह किसी ऐसी चीजका न हो, जो भद्दी हो और जिसमें जनताको धोखा देकर ठगनेकी बात हो । पर जब तुम्हारे विरोध करनेपर भी साथी लोग कहेंगे—'देखिये, इतना पैसा आता है, क्यों न यह विज्ञापन स्वीकार कर लिया जाय ?' बस, पैसेका प्रलोभन आया कि जनताके लाभ-हानिकी बात एक ओर रह जायगी । अतएव आरम्भसे ही यह नियम बना लो कि 'बाहरी विज्ञापन स्वीकार करना ही नहीं है ।' समालोचनाके सम्बन्धमें यह बात है—'जो लोग समालोचनाके लिये तुम्हारे पास अपनी पुस्तकें भेजेंगे, उनमेंसे अधिकांश इसलिये भेजेंगे कि तुम्हारे पत्रमें उनके ग्रन्थकी प्रशंसा निकले । यथार्थ समालोचना करानेके लिये अपनी पुस्तक भेजनेवाले विरले ही होते हैं । ऐसी स्थितिमें पुस्तकें चाहे जैसी हों, या तो उनकी झूठी प्रशंसा करनी होगी, या उन साहित्यकारों, लेखकोंसे झगड़ा मोल लेना पड़ेगा । इसलिये समालोचना मत छापना ।' मैंने कहा—'बापू ! आपका आशीर्वाद चाहिये; भगवान् शक्ति देंगे । इन दोनों नियमोंका दृढताके साथ पालन होगा ।' बापूने 'कल्याण'की सफलताके लिये हृदयसे आशीर्वाद दिया । तबसे आजतक 'कल्याण'की वही नीति चली आ रही है । गांधीजीने जो आशङ्का व्यक्त की थी, आगे चलकर वह सामने आ गयी । ज्यों-ज्यों 'कल्याण'का प्रचार बढ़ने लगा, त्यों-त्यों विज्ञापनवालोंके आग्रह आने लगे । जब इसके एक लाख ग्राहक हो गये, तब तो लोग खूब अधिक पैसा देकर विज्ञापन छपवानेको तैयार हो गये । समालोचनाके लिये भी बहुत-सी पुस्तकें आयीं, बहुत तरहसे दबाव डाले गये, पर भगवान् रक्षा करते चले आ रहे हैं ।

"महाराजजी ! आपकी सेवा न करनेका अपराध मेरे द्वारा अवश्य हुआ है, पर किन परिस्थितियोंमें, यह आपके सामने स्पष्ट है । आप गुरुजन अपराधके लिये जो दण्ड देंगे, वह शिरोधार्य है । बस, मुझे इतना ही संतोष है कि आजतक 'कल्याण'की रीति-नीतिका निर्वाह मेरेद्वारा भली-भाँति हो रहा है, इससे मेरे मनमें प्रसन्नता भी है । गुरुजनों द्वारा प्रदत्त आदेशका पालन करनेके लिये मैं सदा सचेष्ट रहा हूँ और होश रहते उसमें किसी प्रकारकी शिथिलता आने देनेका विचार भी नहीं है ।"

'कल्याण'की रीति-नीतियोंका परिचय प्राप्तकर विद्वान् महोदयका रोष शान्त हो गया । वे श्रीभाईजीको आशीर्वाद देते हुए बोले—'भाईजी ! आपने पत्रकारिता-जगत्के सामने एक आदर्श उपस्थित किया है । मुझे यह जानकर आन्तरिक प्रसन्नता हुई कि आप गुरुजनोंके आदेशका इतनी दृढताके साथ पालन करते हैं ।'

विद्वान् महोदयके चरणोंमें अपना मस्तक रखते हुए श्रीभाईजीने कहा—'आप-जैसे गुरुजनोंके श्रीचरणोंके आशीर्वादका ही यह फल है । बस, जीवनपर्यन्त आशीर्वाद बना रहे !'

विद्वान् महोदय भाव-विभोर थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र]

वर्ष ४८

[साधारण अङ्क-संख्या २ से १२ तककी विषय-सूची । विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसीके आरम्भमें देखनी चाहिये । वह इसमें सम्मिलित नहीं है ।]

सं० २०३०-३१ वि०

सन् १९७४ ई०

की

निबन्ध, कविता और संकलित-सामग्री

तथा

चित्र-सूची

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक— { स्वामी रामसुखदास
पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य

सह-सम्पादक—कृष्णचन्द्र अग्रवाल, एम्० ए०

प्रकाशक—मोतीलाल जालान

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य भारतमें रु० १२.००
विदेशके लिये रु० २०.४० (११० पेंस) } साधारण अङ्क—बिना मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–अनन्य शरणागति—सर्वस्व-समर्पण (स्वामी श्रीसनातनदेवजी)	९३०
२–अपनी धर्मबुद्धि विकसित करते रहिये ! (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	८०१
३–अहंकारका परित्याग (पं० श्रीगोपालचन्द्रजी, वेदान्तशास्त्री)	७९५
४–आचार्यका उपदेश (अनन्तश्रीविभूषित काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीचन्द्रशेखरजी महाराजका प्रसाद)	६४८
५–'आनन्दवृन्दावनचम्पू'में दिव्य वृन्दावनका स्वरूप	१०१३
६–आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ ...	६७५
७–ऋणहर्ता गणेश-मन्त्रका विधान ...	५४५
८–एक महात्माका प्रसाद ...	६५१, ७०७, ७५८, ८७०, ९८३, १०९४
९–एक संतके उपदेश	८१५
१०–एकाक्षर गणपति-मन्त्रके जपका विधान ...	५४२
११–कल कभी नहीं आता (श्रीमारित्ज आर० इरहर्ड) ...	९१०
१२–कल्याण ('भाईजी')	६४२, ७००, ७५४, ८१०, ८६६, ९२२, ९७८, १०३४, १०९०
१३–'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'श्रीहनुमान-अङ्क' (प्रस्तावित विषय-सूची) ...	६९०
१४–कुब्जाकी प्रतीक्षा (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	१०९९
१५–गजमुख-भक्त वरेण्य (श्रीमती सावित्रीदेवी त्रिपाठी, बी० ए०, बी० एड्०) ...	५८८
१६–(श्री)गणपतिकी उपासनामें दार्शनिक दृष्टि (विद्यावाचस्पति पं० श्रीकण्ठजी शर्मा, 'चक्रपाणि' शास्त्री)	५३७
१७–(श्री) गणपतिके बीजमन्त्रद्वारा संकेतित गूढ़ अर्थ (श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, एम्०ए०, एम्० ओ० एल्०, शास्त्री) ...	५३४
१८–गणपतिके विविध मन्त्र, ध्यान और न्यास आदिका सम्बन्ध एवं रहस्य (श्री एन्० एच्० चन्द्रशेखर स्वामी, एम्० ए०) ...	५३९
१९–गणेशगीताका संदेश (डॉ० जी० बी० टागरे, एम्० ए०, बी० टी०, पी-एच्० डी०)	६३६
२०–(श्री) गणेशपुराण—एक परिचय (शि० दु०)	६२४
२१–गणेश-भक्त दक्ष और भीम (शि० दु०)	५९४
२२–(श्री) गणेश-साहित्यमें हास्य और व्यङ्ग्य (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०)	६३१
२३–(श्री) गणेश-स्तवनका प्रत्यक्ष फल (श्री १०८ स्वामी नारायणदास प्रेमदासजी उदासीन)	६०७
२४–गणेशोपासना और ज्यौतिष शास्त्र	
(१) पं० श्रीभोजराज सोहनलाल शास्त्री	५८१
(२) श्रीभीमाशङ्करजी भटोरे ...	५८२
२५–गायत्री-मन्त्र (डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्० ए०, पी-एच्० डी० (द्वय), डी० लिट्०)	९५५
२६–गीताका ज्ञानयोग [श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें और चौदहवें अध्यायोंकी विस्तृत व्याख्या] (स्वामी रामसुखदास) ...	८२३, ८८९, ९३७, १०१७, १०४८, ११०२
२७–गीता सर्वाङ्गसुन्दर ग्रन्थ है (संत श्री-विनोबा भावे)	७८५
२८–गोस्वामी तुलसीदासजीकी भक्ति-भावना (डॉ० श्रीपरमलालजी गुप्त, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	९६७
२९–गोस्वामी श्रीद्वारकेशलालजी (श्रीगोकुलानन्द-जी तैलङ्ग, बी० ए०, साहित्यरत्न) ...	१०७८
३०–चित्रकूटके घाटपर (डॉ० श्रीशिवबहादुरसिंहजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	७४०
३१–'जतन बिन मिरगन खेत उजारे !' (डॉ० श्रीगयाप्रसादजी उपाध्याय, शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	१०६६
३२–'जसोदा हरि पालनै झुलावै !' (श्रीब्रह्मेशजी भटनागर, एम्० ए०)	८५४
३३–जीवनके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग कीजिये ! (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा) ...	८३९
३४–ज्ञान एवं भक्तिके प्रतीक—मनु और शतरूपा (पद्मभूषण डॉ० श्रीरामकुमारजी वर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यवाचस्पति)	७७५
३५–'ताहि बोउ तू फूल' (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	१०१०
३६–दानका आनन्द (श्रीलॉवेल फिल्मोर)	१०२४
३७–दार्शनिक संत-कवि अखा (डॉ० श्रीवेद-	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी०) ... १११२

३८–दूसरोंके नहीं, अपने ही दोषोंको देखो-सुनो ! (श्रीश्री माँ आनन्दमयी) ... ९९३

३९–दृष्टि और मानक (श्रीहरिकृष्णदास गुप्त 'हरि') १०८१

४०–देवनदी गङ्गाका आधिदैविक एवं आध्यात्मिक रूप (श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०) ७२७

४१–द्रौपदी—भीष्म-शिविरमें (श्रीसुदर्शनसिंह-जी 'चक्र') ... १०००

४२–नाम-साधना (पं०श्रीजयकान्तजी झा) ... ९०५

४३–पढ़ो, समझो और करो ... ६९३, ७४९, ८०४, ८६०, ९१६, ९७२, १०२७, १०८४, ११३५

४४–परब्रह्मोपलब्धि और योगमार्ग (डॉ० श्रीसर्वानन्द-जी पाठक, एम्० ए०, पी-एच्० डी० (द्वय), डी० लिट्०, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य) ७७९, ८२९

४५–परमार्थका सबसे बड़ा विघातक—परदोष-दर्शन (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ... ९०२

४६–परमार्थकी पगडंडियाँ [नित्यलीलालीन परम-श्रद्धेय (श्रीभाईजी) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत-वचन] ... ६५३, ७१०, ७६०, ९३२, ९९४, १०४२, ११०७

४७–परिवार-नियोजन और भारतीय संस्कृति (संत श्रीविनोबा भावे) ६७३

४८–प्रत्येक इन्द्रियसे शुभका संग्रह करें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ... ११३०

४९–प्रभु-कृपा (अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) १०३९

५०–प्रार्थना ... ६८३, ७३४, ७८३, ८५२, ८९७, ९५८, १०२२

५१–बंदी-मुक्ति (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') ... ९५०

५२–ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश ६४३, ७०१, ७५५, ८११, ८६७, ९२४, ९७९, १०३५, १०९१

५३–भक्तका भगवान्से सम्बन्ध (स्वामी रामसुखदास) १०८२

५४–भक्त गणपतिभट्ट और श्रीजगन्नाथ महाप्रभु (पद्मश्री पं०श्रीसदाशिवरथजी शर्मा) ... ६०३

५५–भक्त पिशाच (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ११११

५६–भक्त श्रीगणेश योगीन्द्र (पं० श्रीदामोदर प्रह्लाद पाठक, शास्त्री; पूर्वोत्तरमीमांसक; व्युत्पत्तिचूड़ामणि; शिक्षाशास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद) ६०४

५७–भक्तिके अन्तराय (डॉ० श्रीशम्भुशरणजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ७१९

५८–भगवत्पूजनका स्वरूप (पं०श्रीजयकान्तजी झा) ७२३

५९–भगवद्भक्तोंकी अलौकिक महिमा (परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ६२३

६०–(श्री) भगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ... ९४७, १११६

६१–(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना (नाम-जप-विभाग) ... १६९

६२–भगवान् महावीर और उनका अमर संदेश १०७०; १११५

६३–भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गलमय स्मरण [नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपर दिया गया प्रवचन] ... ८१८

६४–भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य जन्म-कर्म (पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य) ९१२

६५–भगवान् श्रीगणेशके कुछ प्रसिद्ध भक्त (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ... ६०८-६२३
- (१) भक्त श्रीमोरया गोसावी ... ६०८
- (२) भक्त गोसावीनन्दन ... ६१०
- (३) भक्त श्रीगोपालाश्रम ... ६११
- (४) भक्त निरञ्जनस्वामी कर्‌हाड़कर ... ६११
- (५) भक्त निरञ्जनदास बल्लाल ... ६१२
- (६) भक्त यदु माणिक ... ६१२
- (७) भक्त अङ्कुशधारी महाराज ... ६१२
- (८) भक्त साम्बशिव शास्त्री ... ६१५
- (९) भक्त लम्बोदरानन्द स्वामी ... ६१५
- (१०) भक्त राघवचैतन्य ... ६१६
- (११) भक्त गणेश दैवज्ञ ... ६१६
- (१२) हरभट बाबा पटवर्धन ... ६१७
- (१३) गणपति बुवा सावेरकर ... ६१७
- (१४) श्रीनागेश्वर बाबा ... ६१९
- (१५) गणेशोपासक गोपालराव मैराल ६२०
- (१६) रघुनाथ महाराज गोडबोले ... ६२०
- (१७) नागेश पण्डित शेष ... ६२०
- (१८) गजानन दैवज्ञ ... ६२१
- (१९) रामकृष्ण बापू सोमयाजी ... ६२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२०) दामोदरानन्दस्वामी ... ६२२
(२१) मोरेश्वरशास्त्री जोशी ... ६२२
(२२) श्रीमत् शंकराचार्य शिरोलकर स्वामी (मठ संकेश्वर) ... ६२२
(२३) भक्तराम मल्हारि ... ६२३
(२४) इस्लामपुरकर ... ६२३
६६–(श्रीमद्) भागवतके सम्बन्धमें दो महापुरुषोंके अनुभव (महामना मदनमोहन मालवीय एवं महात्मा गांधी) ... ६६६
६७–भागवत-धर्म (अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज) ... ८७८
६८–(श्री) भागवतामृत [प्रभुपाद श्रीराधाविनोद गोस्वामीद्वारा उद्भावित श्रीभागवत दशमस्कन्धके प्रथम अध्यायकी 'श्रीभागवतामृतवर्षिणी' बंगला टीकाका भावानुवाद (अनु०—पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी) ६५७, ७१५, ७६५, ८३३, ९८८
६९–'मधु वाता ऋतायते' (अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज) ... ६६७
७०–मनका इकतारा (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ८५०
७१–मनकी महिमा (प्रो० श्रीशिवानन्दजी) ८९८
७२–महागणपतिसहस्रनामस्तोत्रम् [अर्थसहित] (अनु०—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ५४७
७३–महात्मा पूनतानम् (श्रीरामलाल) ... ९४४
७४–महात्मा वेङ्कटनाथ (श्रीरामलाल) ... ८८३
७५–महात्मा सुन्दरमूर्ति (श्रीरामलाल) ... १००४
७६–'मातृदेवो भव' (संत श्रीविनोबा भावे) ९८५
७७–मानव-जीवनका सर्वोत्तम पुरुषार्थ (पं० श्रीजयकान्तजी झा) १०७५
७८–मुद्गल ऋषि (शि० दु०) ... ५९३
७९–मुद्गलपुराणका परिचयात्मक अध्ययन (श्रीरामलाल) ६३०
८०–मौनका महत्त्व (श्री सी० टी० वेणुगोपाल) ११२६
८१–यजन—एक प्रतीकात्मक विवेचन (आचार्य पं० श्रीमुंशीरामजी शर्मा) ... ९६२
८२–युगधर्म—भगवान्‌की भक्ति एवं नामकीर्तन (डॉ० श्रीरवीन्द्रप्रताप राव, एम्० एस्-सी०, पी-एच्० डी०, पी-एच्० डी० (एडेलेड) ८४६
८३–योगिराज शिवका स्वरूप (श्रीभगवानशरणजी भारद्वाज 'प्रदीप') ... ६८४
८४–राजा पुरुयशाको सायुज्यकी प्राप्ति (श्रीशिवनाथजी दुबे) ... ९६०
८५–(श्री)राधाके दिव्य समर्पणमय प्रेमका पुण्यस्मरण (नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा श्रीराधा-जन्माष्टमी महोत्सवपर दिये गये प्रवचनका कुछ अंश) ८७३
८६–(श्री) रामभक्त श्रीरामदास (डॉ० श्रीके० रामनाथन्, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ७८८
८७–'वह ह्याँ पै दान लेय है' ('प्रेमभिखारी') ११२८
८८–विद्ययामृतमश्नुते (आचार्य श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय) ७४२
८९–(श्री) विनायक-भक्त बल्लाल (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ५८१
९०–विश्वासी भक्त (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ८५८
९१–शिक्षाका वास्तविक उद्देश्य (गोलोकवासी डॉ० श्रीगोविन्ददासजी) ... ९४८
९२–शील मिटा तो देश मिट जायगा (संत श्रीविनोबा भावे) १०९७
९३–श्यामसे ! (श्रीदेवीलालजी सामर) ... ११३४
९४–श्रद्धाञ्जलि [हमारे श्रद्धेय सम्पादक महोदय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी महाराजके प्रति] (पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्त) ... ६९७
९५–श्रद्धाञ्जलि [श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजीके प्रति] ११२९
९६–संत कनकदास (श्रीरामलाल) ... ७३६
९७–संतका स्वरूप ('एक साधु') ... ७२६
९८–संत-प्रकृतिका निरूपण तथा सत्सङ्गकी महिमा (आचार्य पं० श्रीगङ्गाधरजी मिश्र) ८४२
९९–संत-साहित्यमें नामकी साधना (डॉ० श्रीरेणुकादेवी, एम्० ए० (द्वय), बी० एड्०, पी-एच्० डी०) ... ७४४
१००–सकाम दैवी अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें नम्र निवेदन (नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... ५३१
१०१–सखा सुदामा (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') १०५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०२–सच्चे भजनकी उत्कण्ठा कैसे जाग्रत् हो ('एक साधु') ७७८
१०३–सबसे सगे भगवान् (अनन्तश्रीविभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज) ... ९२८
१०४–समर्थ रामदास (श्रीरामलाल) ... ६७६
१०५–समस्त प्राणियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो ! (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ... ७४७
१०६–साधक रामप्रसाद (श्रीरामलाल) ... १०५८
१०७–स्मृतिका रहस्य ('साधुवेषमें एक पथिक') ११२३
१०८–स्वतःसिद्ध शान्ति सहज ही प्राप्त हो सकती है (स्वामी रामसुखदास) ... ९९८
१०९–स्वप्नविषयक विचार (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ७९२
११०–हम दूसरोंका भी ध्यान रखें (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ... १०७३
१११–हमारे अर्चा-विग्रह धातु या पाषाण नहीं हैं [गो० डॉ० (सेठ) श्रीगोविन्ददासजी] ७८६
११२–(श्री) हरिद्रा-गणेश-सम्बन्धी मन्त्र एवं यन्त्र ५७५
११३–हे परमेश्वर ! इन्हें क्षमा कर (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ९०८

पद्य-सूची

१–अनुनय (स्वामी श्रीसनातनदेवजी) ९८७
२–(श्री) गणनाथसे प्रार्थना — (श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ... ५८०
३–गोपी (स्वामी श्रीसनातनदेवजी) ... ९०१
४–चित्रकूटमें श्रीराम, सीता एवं लक्ष्मण ('राम') ७५३
५–जय गणेश (पं० श्रीजगन्नारायणजी शास्त्री, आचार्यत्रय, साहित्यरत्न, मानसशिरोमणि) ५४४
६–ज्योति दयामयि ! (श्रीमाधवशरणजी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ... ६७२
७–दिव्य दम्पतिसे प्रार्थना ... ९७७
८–नृत्यपरायण गणेश ('राम') ... ५८५
९–मनका मूक-रुदन ! (श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी 'पत्रकार') ८५१
१०–मनको आश्वासन (श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी 'पत्रकार') ६४७
११–(श्री) रघुनाथके चरण (श्रीप्रयागनारायणजी त्रिवेदी) ६९२
१२–रसानुभूति (स्वामी श्रीसनातनदेवजी) ७७४
१३–वन्दन ! ('राम') ५२९
१४–श्रीसूक्त (अनु०—श्रीमाधवशरणजी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ... १०४६

संकलित पद्य-सूची

१–अभिलाषा (श्रीललितकिशोरीजी) ... ९२३
२–(श्री) कृष्णभक्तकी अनन्यता (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) ६५६
३–(श्री) गणेशके पाद-पद्मोंमें प्रणति (श्री 'वीर' कवि) ६०७
४–(श्री) गणेशसे याचना (श्रीतुलसीदास, विनयपत्रिका) ८६५
५–तू मेरे हृदयमें पूर्णरूपसे समा गया है [गद्य-काव्य] (विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोरके 'आछो आमार हृदय आयो भरे' गीतका श्रीसत्यकामजी विद्यालंकारद्वारा किया हुआ भावानुवाद) ... ८७२
६–परब्रह्मकी प्रेमाधीनता (भक्त रसखान) ८३२
७–मनको प्रबोध ७७७
८–'मानस' एवं मानसकारका अभिनन्दन ... ६८७
९–मेरे प्राणोंमें आ, प्रियतम (विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोरके 'तुमि नव नव रूपे ऐशो प्राणे' गीतका श्रीसत्यकामजी विद्यालंकारद्वारा किया हुआ भावानुवाद) ९५९
१०–मैं सदा साथ रहता हूँ [श्रीजेम्स डिलेट फ्रीमैनके विचारोंका भावानुवाद] (अनु०-श्रीरामलाल) ७९८
११–(श्री) राधा-प्राकट्यपर आनन्दोत्सव ... ८७७
१२–(श्री) रामका सेतुके द्वारा सिन्धु-लङ्घन (श्रीरामचरितमानस) ८०९
१३–(श्री) रामसे प्रार्थना (श्रीतुलसीदासजी) ६५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४–(श्री) व्रजराज-दुलारेसे प्रार्थना (श्रीनारायणस्वामी) ७०६
१५–शान्ति, प्रेम और परमेश्वर [गद्य-काव्य] (श्रीनोरा कार्नवैलकी रचना 'Way and the Way'का भावानुवाद) १०९८
१६–(श्री) शिवका शिवाके प्रति 'मानस'-माहात्म्यकथन (श्रीरामचरितमानस) ... ६४१
१७–'सब तजि भजिऐ नंदकुमार' (श्रीसूरदासजी) ८१७
१८–'सुधि राखो वा दिन की।' (श्रीचरणदासजी) ९६६

संकलित सामग्री-सूची

१–अनुभव (संत उड़िया बाबा) ... ९८४
२–अपने पापोंकी आलोचना करें, दूसरोंकी नहीं (श्रीरामकृष्ण परमहंस) ... ९३६
३–कुन्तीकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना (श्रीमद्भागवत) ७८४
४–(श्री) गङ्गाजीकी महिमा (पद्मपुराण) ... ७३३
५–गणपतिसे मङ्गल-कामना ... ५४६
६–(श्री) गणेशके विविध मन्त्र ... ५४०
७–(श्री) गणेशसे क्षमा-प्रार्थना (मुद्गल-पुराणसे) ६४०
८–गीताके समान कोई ग्रन्थ नहीं (लोकमान्य तिलक) ८६९
९–गीताध्ययनकी सार्थकता (श्रीरामकृष्ण परमहंस) ८०३
१०–चित्तको प्रबोध (प्रबोधसुधाकर) ... ८४५
११–परदोष-दर्शन पतनकारक है (स्वामी विवेकानन्द) ... ७३९
१२–प्रार्थना आत्माकी पुकार है (महात्मा गांधी) ८५३
१३–'प्रार्थनाके विना मैं पागल हो जाऊँगा' (महात्मा गाँधी) ८९७
१४–भगवती सरस्वतीकी वन्दना ... ९२१
१५–भगवान् शंकरको प्रणाम (रामचरितमानस) १०३३
१६–भागवतधर्म (श्रीमद्भा० ११ । २९ । ८-२०) ७वें अङ्कका चौथा आवरण-पृष्ठ
१७–माँ दुर्गासे प्रार्थना (श्रीदुर्गासप्तशती) १०६५
१८–माँ, भारतमाता और जगन्माता (श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर) (परमपूजनीय गुरुजी) १०२३
१९–यमराजद्वारा श्रीगणेश-भक्तके माहात्म्यका कथन (श्रीगणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्) ५८६
२०–(श्री) राधा-भक्तकी अभिलाषा [श्रीराधासुधानिधि] आठवें अङ्कका चौथा आवरण-पृष्ठ
२१–(श्री) राम-भक्तकी अभिलाषा (श्रीरामकर्णामृत) १०८१
२२–(श्री)रामसे प्रार्थना [श्रीरामकर्णामृत] ... ६९९
२३–विश्वहितके लिये प्रार्थना करें ... ११वें अङ्कका चौथा आवरण-पृष्ठ
२४–शिव-नामका माहात्म्य (शिवपुराण) ... ७४६
२५–सिद्धिविनायकस्तोत्रम् ५८४
२६–स्त्रीधर्म—सेवा और नम्रता (महात्मा गांधी) ७०१
२७–स्वामिकार्तिकेयद्वारा श्रीगणेशका स्तवन (भक्तमनोरथसिद्धिप्रदस्तोत्र) ... ५३०

चित्र-सूची

रंगीन

१–(श्री) गणेश नृत्यकी मुद्रामें ५८५
२–(श्री)गणेश-पञ्चायतन ५२१
३–दिव्य दम्पति ९७७
४–परम शरण्य श्रीराम ६९९
५–भगवती सरस्वती ९२१
६–भगवान् आशुतोष १०३३
७–'मानस'के वक्ता और श्रोता श्रीशिव-पार्वती ६४१
८–(श्री) रामका सीताको चित्रकूटकी शोभा दिखाना ७५३
९–(श्री) राम-लक्ष्मण आदिका सेतुके द्वारा सिन्धु पार करना ८०१
१०–सरयूतटविहारी श्रीसीताराम ... १०८९
११–सिद्धि-बुद्धिसहित श्रीगणेश ८६५

रेखाचित्र

१–अभयदाता श्रीगणेश ...३रे अङ्कका मुखपृष्ठ
२–कन्हैया माँकी गोदमें ...१०वें अङ्कका मुखपृष्ठ
३–बाल श्रीकृष्ण ...७वें अङ्कका मुखपृष्ठ
४–भक्त ध्रुवपर श्रीनारायणकी कृपा ...६ठे अङ्कका मुखपृष्ठ
५–भगवती सिंहवाहिनी ...८वें अङ्कका मुखपृष्ठ
६–भगवान् सदाशिव ...५वें अङ्कका मुखपृष्ठ
७–माता-पिताके लाडले गजानन ...२रे अङ्कका मुखपृष्ठ
८–माँ लक्ष्मी ...११वें अङ्कका मुखपृष्ठ
९–माँ वीणापाणि ...१२ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
१०–(श्री)वसुदेव-देवकीके समक्ष भगवान्‌का प्राकट्य ...९वें अङ्कका मुखपृष्ठ
११–वीणापाणि मा शारदा ...४थे अङ्कका मुखपृष्ठ
१२–हरिद्रा गणेशयन्त्रम् ५७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपालु ग्राहकों, पाठकों एवं सम्मान्य लेखक महानुभावोंसे नम्र निवेदन

१. यह इस वर्षका बारहवाँ अङ्क है। इस अङ्कके साथ 'कल्याण' अपनी ४८ वर्षकी यात्रा पूरी कर रहा है। इस अवधिमें देशके प्रायः सभी सम्प्रदायोंके पूज्य आचार्यों, महात्माओं, विद्वानों आदिने अपने आशीर्वाद, परामर्श एवं रचनाओं-द्वारा इसके विकासमें यथासम्भव सहयोग प्रदान किया है। इतना ही नहीं, हर क्षेत्रके मनीषियों, जन-नेताओं, विचारकोंने 'कल्याण'को अपना समझा, इसके विकाससे प्रसन्नताका अनुभव किया और इसे अपनाया है। हम उन सभी श्रद्धेय गुरुजनों, सम्मान्य बन्धुओंके ज्ञात-अज्ञात उपकारोंके प्रति हृदयसे आभारी हैं और आशा करते हैं कि भविष्यमें भी उनका आशीर्वाद, सद्भाव एवं सहयोग हमें यथावत् प्राप्त होता रहेगा।

२. आगामी ४९वें वर्षका विशेषाङ्क श्रीरामभक्त महावीर श्रीहनुमानजीकी अर्चनाके रूपमें 'श्रीहनुमान-अङ्क'-के नामसे प्रकाशित हो रहा है। इस विशेषाङ्कमें श्रीहनुमान-सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक विषयोंपर प्रामाणिक सामग्री रहेगी और तत्त्व एवं साधनाकी दृष्टिसे यह अङ्क बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होगा। प्रकाशन-सम्बन्धी सामग्रियों एवं साधनोंके भीषण अभावकी स्थितिमें भी 'श्रीहनुमान-अङ्क'का मुद्रण हो रहा है, यह भगवान्‌की विशेष कृपा ही है। अङ्क मार्चके अन्ततक प्रकाशित होनेकी सम्भावना है। इस प्रकार विशेषाङ्क बहुत विलम्बसे पाठकोंके हाथोंमें पहुँच पायेगा। यह अवाञ्छनीय त्रुटि है और हम इसके लिये हृदयसे क्षमाप्रार्थी हैं। इस विलम्बकी पूर्तिके लिये हम इस चेष्टामें हैं कि फरवरी और मार्चके अङ्क भी विशेषाङ्कके साथ तैयार हो जायँ और तीनों अङ्क एक साथ भेजे जायँ। हमें विश्वास है कि कृपालु ग्राहक एवं पाठक महोदय अपने शील-सौजन्यवश सदाकी भाँति धैर्यपूर्वक हमारा साथ देते रहेंगे। भगवान्‌ने चाहा तो आगेके अङ्क समयसे प्रकाशित होते रहेंगे।

३. विशेषाङ्क सीमित संख्यामें ही मुद्रित हो रहा है। अतएव प्रेमी ग्राहकों एवं पाठकोंको चाहिये कि वे अपना वार्षिक शुल्क बारह (१२.००) रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भेजकर अङ्क सुरक्षित करवा लें। गत कई वर्षोंसे कई हजार नये और पुराने ग्राहकोंको विशेषाङ्क प्राप्त करनेमें निराश होना पड़ा है। भक्तराज श्रीहनुमानकी उपासना घर-घर होती है। अतएव 'श्रीहनुमान-अङ्क' की माँग अबतकके अङ्कोंसे बहुत अधिक होगी, ऐसी सम्भावना है। ऐसी स्थितिमें जिनका वार्षिक शुल्क मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो जायगा, उन्हें अङ्क भेजनेके पश्चात् वी० पी० द्वारा भेजनेके लिये अङ्क बचनेकी सम्भावना बहुत कम है। अतएव रुपये अग्रिम भेजकर पहलेसे ही प्रति सुरक्षित करा लेना चाहिये।

४. अग्रिम शुल्क भेजनेवाले सदस्योंको अङ्क भेजनेके पश्चात् यदि अङ्क बचेंगे तो परम्परानुसार वी० पी० द्वारा भेजनेका विचार है। उस स्थितिमें सदस्योंको वी० पी० छुड़ानेमें विशेष ध्यान रखना चाहिये। एक वी० पी० पर लगभग दो रुपये खर्च पड़ता है; वी० पी० के लौटानेमें प्रति अङ्क दो रुपयेकी हानि 'कल्याण'को सहन करनी पड़ती है। अतएव जिन सदस्योंका किन्हीं कारणोंसे इस वर्ष सदस्य रहनेका विचार न हो, उन्हें चाहिये कि अपना यह मन्तव्य शीघ्र पत्रद्वारा सूचित कर दें, जिससे वी० पी० भेजनेकी परेशानी एवं खर्चसे 'कल्याण' बच जाय।

५. यदि किसी विशेष परिस्थितिवश वी० पी० पहुँचनेपर कोई महानुभाव उसे छुड़ा न सकें तो उस स्थितिमें उन्हें चाहिये कि वे अपने किन्हीं स्वजन—साथीको प्रेरित करके उनके नामसे वी० पी० छुड़ा लें और इस प्रकार 'कल्याण'के प्रचारमें और वी० पी० लौटनेसे होनेवाली व्यर्थकी हानिसे 'कल्याण'को बचानेमें निमित्त बनें।

६. इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनाई है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। वी० पी० द्वारा सजिल्द विशेषाङ्क भेजना तो बिल्कुल ही सम्भव नहीं दीख रहा है। यों सजिल्द अङ्कका वार्षिक मूल्य चौदह (१४.००) रुपये है।

७. वार्षिक शुल्क एवं अङ्क-सम्बन्धी पत्र इस पतेसे भेजने चाहिये—व्यवस्थापक 'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

'कल्याण'का जनवरी १९७६ का विशेषाङ्क

'श्रीभगवत्कृपा-अङ्क'

'कल्याण'पर प्रीति एवं कृपा रखनेवाले महानुभावोंके निरन्तर पत्र आ रहे हैं कि जनवरी १९७६ का विशेषाङ्क कौन-सा होगा ? कुछ आदरणीय महानुभावोंने अपनी-अपनी रुचिके महत्त्वपूर्ण विषयोंका सुझाव भी दिया है । हम उनकी आत्मीयता एवं कृपाके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं और बड़ी प्रसन्नताके साथ यह सूचित करते हैं कि भगवान्की स्वरूपभूता, सर्वसमर्था, अमोघा कृपाशक्तिके स्वरूप, रहस्य, तत्त्व, सामर्थ्य आदिका विश्लेषण करते हुए उस कृपाका आश्रय ग्रहण करनेके विभिन्न साधनोंका परिचय प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे जनवरी १९७६ का विशेषाङ्क 'श्रीभगवत्कृपा-अङ्क'के नामसे प्रकाशित करनेका निश्चय किया गया है । आशा है, हमारे सम्मान्य पाठक एवं सदस्यगण इस निर्णयका हृदयसे स्वागत करेंगे ।

गत दीपावलीके बाद गीताप्रेसकी पुनर्मुद्रित पुस्तकें

	मूल्य	संस्करण
१—श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा	.३०	५०,०००
२—श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक	.२०	२५५०००
३—श्रीमद्भगवद्गीता—तावीजी	.२०	५०,०००
४—श्रीहरिवंशपुराण—	१४.००	५,०००
५—श्रीरामचरितमानस—	२.००	५०,०००
६—श्रीरामचरितमानस—मूल, गुटका,	१.००	१.५०,०००
७—श्रीरामचरितमानस—अर०का०	.३०	१०,०००
8-Śrīmad Vālmīki-Rāmāyaṇa (With Sanskrit text and English Translation) Part I	12.00	3000
९—मानस-पीयूष (खण्ड ६)—	१४,००	५,०००
१०—पातञ्जलयोगप्रदीप—	७.५०	५,०००
११—तत्त्व-चिन्तामणि बड़ा (भाग २, ३, ४ एवं ५)—	.८७, .७०, .८१, .८१	४,०००
१२—विदुर-नीति—	.७०	१०,०००
१३—भक्त-बालक—	.४०	१५,०००
१४—भक्त नारी—	.४०	१०,०००
१५—भक्त-कुसुम—	.४०	५,०००
१६—भक्तराज हनुमान्—	.३५	२५,०००
१७—प्रेमी भक्त उद्धव—	.२५	५,०००
१८—बाल-चित्रमय बुद्ध...— चित्रोंमें,	.४०	३०,०००
१९—बाल-चित्रमय चैतन्यलीला— चित्रोंमें,	.४०	[illegible]
२० हिंदी-बाल-पोथी—शिशु-पाठ (भाग १)	.२०	३,००,०००
२१ वीर बालक—२० वीर बालकोंके जीवन-चरित्र,	.३०	२५,०००
२२—आदर्श भ्रातृ-प्रेम—पृष्ठ १०४, सचित्र,	.२०	५,०००
२३—भजन-संग्रह (भाग ५)—	.१५	२५,०००
२४—हनुमान-चालीसा—पृष्ठ ३२	.१०	३,००,०००
२५—श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा— पृष्ठ ४०	.८	१५,०००
२६ दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य— पृष्ठ २८	.०८	५,०००
२७ प्रश्नोत्तरी—पृष्ठ ३२	.०४	२५,०००
२८ रामरक्षास्तोत्रम्—पृष्ठ १६	.०४	१,००,०००
२९ गीतोक्त सांख्ययोग और निष्कामकर्मयोग—पृष्ठ ४८	.०३	१०,०००
३०—श्रीहरि-संकीर्तन धुन—पृष्ठ ८	.०३	२५,०००
३१—भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—पृष्ठ ४०	.०३	१०,०००
३२ त्यागसे भगवत्प्राप्ति—पृष्ठ२०	.०२	१५,०००
३३—संकटनाशनगणेशस्तोत्रम्— पृष्ठ ४	.०१	२५,०००

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण १,६२,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, मई १९७४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—श्रद्धाञ्जलि! [हमारे श्रद्धेय सम्पादक महोदय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी महाराजके प्रति] (पाण्डेय रामनारायणदत्त) ...	६९७
२—श्रीरामसे प्रार्थना [संकलित—श्रीराम-कर्णामृत] ...	६९९
३—कल्याण ('भाईजी') ...	७००
४—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश ...	७०१
५—श्रीव्रजराज-दुलारेसे प्रार्थना [कविता] (श्रीनारायण स्वामी) ...	७०६
६—एक महात्माका प्रसाद ...	७०७
७—स्त्री-धर्म—सेवा और नम्रता (महात्मा गाँधी) ...	७०९
८—परमार्थकी पगडंडियाँ [नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत वचन] ...	७१०
९—श्रीभागवतामृत—२ [प्रभुपाद श्रीराधा-विनोद गोस्वामीद्वारा उद्भावित श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके प्रथम अध्यायकी 'भागवतामृतवर्षिणी' बंगला टीकाका भावानुवाद] (अनु०—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी) ...	७१५
१०—भगवत्पूजनका स्वरूप (श्रीजयकान्तजी झा)	७२३
११—संतका स्वरूप ('एक साधु') ...	७२६
१२—देवनदी गङ्गाका आधिदैविक एवं आध्यात्मिक रूप (श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)	७२७
१३—श्रीगङ्गाजीकी महिमा (पद्मपुराण) ...	७३३
१४—प्रार्थना [जीवन—सहचरसे] ...	७३४
१५—संत कनकदास (श्रीरामलाल) ...	७३६
१६—पर-दोष-दर्शन पतनकारक है (स्वामी विवेकानन्द)	७३९
१७—चित्रकूटके घाटपर (डॉ० श्रीशिवबहादुर-सिंहजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	७४०
१८—विद्ययामृतमश्नुते (आचार्य श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय)	७४२
१९—संत-साहित्यमें नामकी साधना (डॉ० श्रीरेणुकादेवी, एम्० ए० (द्वय), बी० एड्०, पी-एच्० डी०) ...	७४४
२०—'शिव' नामका माहात्म्य (शिवपुराण) ...	७४६
२१—समस्त प्राणियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो? (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ...	७४७
२२—पढ़ो, समझो और करो ...	७४९

चित्र-सूची

१—भगवान् सदाशिव	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२—परमशरण्य श्रीराम	(तिरंगा) ...	६९९

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री; सह-सम्पादक—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धाञ्जलि !

[हमारे श्रद्धेय सम्पादक महोदय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी महाराजके प्रति]

'कल्याण'के प्रेमी पाठक-पाठिकाओंको यह सूचित करते हुए हमारा हृदय भरा आ रहा है कि हमारे श्रद्धास्पद एवं प्रीतिभाजन, 'कल्याण'रूपी नैयाके खेवनहार श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी महाराज गत वैशाख शु० १४, रविवार तदनुसार ५ मई सन् १९७४ को प्रातः ९ बजकर २२ मिनटपर गोलोकधामवासी हो गये। जिनको निमित्त बनाकर भगवान्‌की मङ्गल प्रेरणा, अहैतुकी कृपा एवं अमोघ शक्तिसे 'कल्याण'का प्रवर्तन हुआ, इसका विकास हुआ और आज यह इस गौरवशाली पदपर प्रतिष्ठित है, वे हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तीन वर्ष पूर्व ही चैत्र कृष्ण १० संवत् २०२७ तदनुसार २२ मार्च, १९७१ को अपनी ऐहिकलीला संवरण कर भगवान्‌की नित्यलीलामें लीन हुए थे ! इस प्रकार 'कल्याण'-परिवारको तीन वर्षोंकी अल्पावधिमें दो भीषण प्रहार झेलने पड़े, यह विधिकी विचित्र विडम्बना है !

परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके साथ पूज्य श्रीगोस्वामीजीका काया-छाया-जैसा अटूट सम्बन्ध था, अतएव अपने श्रद्धेयके वियोगमें इनके मन-प्राण एवं भौतिक कलेवर—सभी जर्जरित हो गये थे। किसी प्रकार अपने श्रद्धेयके प्रति कर्तव्यबुद्धिकी प्रेरणासे 'कल्याण'के गुरुतम भारको इन्होंने तीन वर्षोंतक बड़ी ही सफलतापूर्वक वहन किया, पर आखिर ढाँचा बिखर ही गया !

पूज्य श्रीगोस्वामीजीका आविर्भाव आचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभकी शिष्य-परम्पराके एक सुसंस्कृत एवं उच्च परिवारमें बीकानेरमें हुआ था। इस सम्प्रदायकी यह विशेषता रही है कि शिष्यगण अपने आचार्योंको भगवद्रूपमें ही मानते रहे हैं। यही हेतु है कि इस सम्प्रदायके ऊँचे-से-ऊँचे भक्तोंकी निष्ठा इस रूपमें व्यक्त हुई है—

भरोसो दृढ़ इन चरननि केरो।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो॥

—पूज्य श्रीगोस्वामीजीमें भी यह निष्ठा नैसर्गिक थी और इसी हेतुसे जब परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके साथ इनका सम्पर्क हुआ, तब 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'—भगवान् और उनके भक्तमें कोई अन्तर नहीं रह जाता—पर दृढ़ आस्थावान् श्रीगोस्वामीजी महाराजने परमश्रद्धेय श्रीभाईजीको ही अपने जीवनकी बागडोर सौंप दी—अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया। इनका समर्पण उस उच्च भूमिकातक पहुँचा कि उसके समकक्ष कोई उदाहरण आजके अनास्थापूर्ण एवं तर्कप्रधान भौतिक युगमें खोजनेपर भी नहीं मिलेगा ! परम श्रद्धेय श्रीभाईजीके साथ इनका सम्पर्क सन् १९२८ ई० में हुआ था और प्रथम मिलनमें ही श्रीभाईजी इनके मन-प्राणोंपर आसीन हो गये थे, किंतु साथ रहनेकी स्वीकृति प्राप्त हुई सन् १९३४ ई० में और तब ये बीकानेर राज्यके उच्च पदको त्यागकर श्रीभाईजीकी संनिधिमें आ गये एवं 'कल्याण' तथा गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित धार्मिक ग्रन्थोंके सम्पादनमें श्रीभाईजीका हाथ बँटाने लगे। इस भौतिकता-प्रधान युगमें विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र 'कल्याण'को भारतके सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रके रूपमें प्रतिष्ठित करनेमें परमश्रद्धेय श्रीभाईजीको मनसा-वाचा-कर्मणा जो सहयोग श्रीगोस्वामीजीने प्रदान किया, उसका मूल्याङ्कन होना सम्भव नहीं है।

'कल्याण'का संदेश अंग्रेजी भाषा-भाषी जनसमुदायतक पहुँचानेके लिये श्रीभाईजीने सन् १९३४में 'कल्याण-कल्पतरु' अंग्रेजी मासिकपत्र निकालना आरम्भ किया और श्रीगोस्वामीजी महाराज उसका सम्पादन करने लगे। 'कल्पतरु' के सम्पादनकालमें इन्होंने गीताप्रेसके संस्थापक परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका-द्वारा उद्भावित गीताकी परम सुन्दर विस्तृत टीका—'गीता-तत्त्वविवेचनी, श्रीगोस्वामी तुलसीदासके रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत महापुराण एवं वाल्मीकीय रामायणके अत्यन्त सुबोध, सुस्पष्ट, प्रामाणिक एवं आदर्श अनुवाद अंग्रेजी-भाषामें प्रस्तुत किये, जिनका देश-विदेशके विद्वानोंने आदरपूरित हृदयसे स्वागत किया है। श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजी एवं श्रीभाईजीके सैकड़ों हिंदी लेखोंका अंग्रेजीभाषामें रूपान्तर भी श्रीगोस्वामीजी महाराजके परिश्रमका ही फल है। पूज्य श्रीगोस्वामीजी संस्कृत, हिंदी एवं अंग्रेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे; तीनों भाषाओंपर इनका समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार था। 'विद्या ददाति विनयम्'—के ये ज्वलन्त उदाहरण थे। सीधा-सादा वेष, बाल-सुलभ सरलता, आचारनिष्ठा, निरभिमानता, विनयशीलता, यश-लिप्सासे सर्वथा दूर रहना, किसी भी रूपमें परचर्चासे उदासीनता, न जगत्का विशेष परिचय प्राप्त करना और न जगत्को अपना परिचय देना—ये गुण इनमें स्वाभाविक थे। इनका कण्ठ बड़ा ही मधुर था तथा राग-रागिनियोंका इन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। विभिन्न उत्सवोंके समय इनके द्वारा गाये गये पद सुनकर समस्त श्रोतागण भावविभोर हो जाते थे। आजके युगमें इन सब विशेषताओंसे विभूषित उदाहरण विरले हैं। श्रीभाईजीके विदा होनेपर 'कल्याण'के सम्पादनका पूर्ण भार सँभालते हुए इन्होंने जो निवेदन लिखा था, उससे इनके हृदयका एक अत्यन्त उज्ज्वल रूप हमारे सामने प्रकट होता है—

''परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण'के सम्पादनका भार मेरे दुर्बल कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण'का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अंदर न तो साधनका बल है न आध्यात्मिक अनुभव, न त्याग है न तप है, न दैवी सम्पदा है न प्रौढ़ विचार है, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है, न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण'—जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अंदर सर्वथा अभाव देखता हूँ।''

इतना ही नहीं, वे अपने इस मनोभावको बराबर विभिन्न रूपोंमें व्यक्त करते रहे—

''कल्याण'की सेवाका मैं अपनेको सर्वथा अनधिकारी मानता हूँ।··· 'कल्याण'के कार्यको मैं श्रीभाईजीद्वारा ही हुआ अनुभव करता हूँ; पद-पदपर वे अपने चिन्मय रूपसे इसकी सँभाल करते हैं, अन्यथा मुझ-जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन, तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान् कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य हो जाता है! उनकी पद-पदपर प्राप्त सँभालको देखते हुए मनको यह विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण'से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है, वे 'कल्याण'के हैं, या यों कहें वे 'कल्याण-स्वरूप' ही हो गये हैं। पर फिर भी चर्मचक्षुओंद्वारा उनका दर्शन न होनेसे मन-प्राण व्यथित हो जाते हैं। विधिकी यह विडम्बना है!''

इस प्रकार संतके प्रति समर्पणका जैसा आदर्श श्रीगोस्वामीजी महाराजने उपस्थित किया है, वह सर्वथा अनुपम है, अनूठा है! श्रद्धेय श्रीभाईजीके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए श्रीगोस्वामीजीने लिखा था—'श्रीभाईजीके वियोगको हृदय सहन कर गया, यह मेरी प्रेमशून्यताका प्रमाण है! बस, शेष जीवन श्रीभाईजी और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जाय, यही अभिलाषा है!' अपनी इस अभिलाषाको लम्बी बीमारीकी अवधिमें इन्होंने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया। ये बराबर अपने इष्टदेव श्रीराधामाधव और उनके विशेष कृपापात्र श्रीभाईजीकी ही कृपाका उल्लेख करते और भीषण कष्टको भी प्रसन्न-चित्तसे ही सहन करते रहे। ऐसे निष्ठावान् भक्तकी भावनाका भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु श्रीराधा-माधवने अवश्य आदर किया है—अपने श्रीचरणोंमें इन्हें स्थान दिया है—यह हमारा विश्वास है।

श्रद्धेय श्रीगोस्वामीजीके महाप्रयाणसे न केवल गीताप्रेस, 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' अपितु आध्यात्मिक जगत्की अपूरणीय क्षति हुई है। अपनी मङ्गलमयी उपस्थितिसे इन्होंने ७४ वर्षतक इस धराधामको पवित्र किया। श्रीगोस्वामीजी महाराजका भाव-परिवार बहुत विस्तृत है, परंतु लौकिक दृष्टिसे वे अपने पीछे एकमात्र अपनी वृद्धा परमसती धर्मपत्नी छोड़ गये हैं। परम पूजनीया मांजी हमारे लिये पूज्य महाराजजीके ही सदृश पूज्य हैं। भगवान्से प्रार्थना है कि वे उन्हें इस महान् दुःखको सहन करनेकी क्षमता और हमें पूज्य श्रीमहाराजजीके आदर्शोंपर चलनेकी शक्ति प्रदान करें।

इन शब्दोंद्वारा हम गीताप्रेस तथा 'कल्याण'-परिवारकी ओरसे अपने श्रद्धेय बन्धुके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं!

उनका ही अपना—

पाण्डेय रामनारायणदत्त

सह-सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति ।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि ॥

वर्ष ४८ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, मई, १९७४ { संख्या ५ पूर्ण संख्या ५७०

श्रीरामसे प्रार्थना

हे राम ! भद्राश्रय ! हे कृपालो !
हे भक्तलोकैकशरण्यमूर्ते !
पुनीहि मां त्वच्चरणारविन्दं
जगत्पवित्रं शरणं ममास्तु ॥
(श्रीरामकर्णामृत, ४ । ८२)

हे श्रीराम ! हे कल्याणधाम ! हे कृपालो ! हे भक्तजनोंके एकमात्र शरणदाता ! मुझे पवित्र कीजिये । जगत्को पवित्र करनेवाला आपका चरणारविन्द ही मुझे शरण देनेवाला हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

हमारी भारतीय संस्कृतिके अनुसार आधिभौतिक जीवनके सभी व्यवहार-व्यापार आध्यात्मिक भित्तिपर चलने चाहिये। भारतीय धर्म किसी स्थान, समय, वर्ग और क्रिया-विशेषमें आबद्ध या सीमित नहीं है। हमारा प्रत्येक स्थल 'धर्मस्थान' है और प्रत्येक कर्म 'धर्म' है। हमारे धर्मका स्वरूप है—**'यतोऽभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'**—जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी सिद्धि हो, वह 'धर्म' है। यहाँ 'अभ्युदय'का अभिप्राय बड़ा व्यापक है। हमारे यहाँके महापुरुषोंद्वारा निर्णीत और अनुभूत यह सिद्धान्त है कि केवल चेतन ही नहीं, जड-चेतनात्मक समस्त भूतजगत् एक ही आत्मा या भगवान्‌का स्वरूप है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमदनन्यः॥
(श्रीमद्भागवत, ११ । २ । ४१)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
(गीता, ६ । २९)

—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी-समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं; ऐसा समझकर सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करें। समस्त प्राणियोंमें आत्मा है और समस्त प्राणी आत्मामें हैं—योगयुक्तात्मा समदर्शी योगी इस प्रकार देखता है।

अतएव जिसमें सबका हित हो, सबका मङ्गल—कल्याण हो तथा सभी प्राणी अपने-अपने क्षेत्रोंमें सब प्रकारसे यथायोग्य, अभावरहित, निर्दोष मनोरथको प्राप्त हों—ऐसा सर्वोदय, विश्वोदय या आत्मोदय ही वास्तविक 'अभ्युदय' है। इस धर्मका दूसरा अवश्यम्भावी परिणाम है—निःश्रेयस, अर्थात् परमकल्याणकी प्राप्ति। अतएव इस धर्ममें दीक्षित प्रत्येक मानवका कर्तव्य है—अपने-अपने क्षेत्रोंमें अपने-अपने कर्मोंके द्वारा एक ही विश्वरूप तथा विश्वातीत भगवान्‌की पूजा करके जीवनकी परम सिद्धि—पूर्ण सफलताको प्राप्त करना। श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(गीता, १८ । ४६)

जिससे जीव सकल निकले हैं, जो सबमें रहता है व्याप्त।
मनुज पूज उसको स्वकर्मसे, होता परम सिद्धिको प्राप्त॥

—इस दृष्टिसे साधारण झाड़ू लगानेसे लेकर अत्यन्त दायित्वपूर्ण शासन-सत्ताके संचालनतक, मामूली मजदूरीसे लेकर बड़े भारी स्वामित्वके कर्तव्यपालनतक, प्रारम्भिक शिक्षासे लेकर निगूढ़तम परमोच्च वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक शिक्षातक, एक चींटीको भी दुःख न पहुँचानेकी वृत्तिसे लेकर प्रत्यक्षमें दीखनेवाले घोर हिंसासे समन्वित धर्मयुद्धतक—सभी (निपुण अभिनेताके द्वारा अभिनीत अभिनयकी भाँति) भगवान्‌की सेवाके लिये होनेवाले कर्म 'धर्म' हो जाते हैं। उन सबके मूलमें रहती है—भगवत्-सेवाकी महती प्रेरणा और उनका लक्ष्य होता है—भगवत्-प्रीति-सम्पादन। हमारे यहाँ भगवत्सेवाकी भावनासे अपने अध्यात्मस्वरूपकी रक्षा करते हुए विश्वासघाती, पथभ्रष्ट आततायीके साथ धर्मयुद्धमें प्रवृत्त होना और उसे पापवृत्तिसे मुक्त करके निर्दोष बनानेके लिये उसपर विजय प्राप्त करना भी उसकी सेवा ही करना है।

यह हमारा चिरन्तन आदर्श है। हमारे भारतीय संतोंकी यही अपने जीवनके द्वारा प्रदर्शित सत्-शिक्षा है कि प्रगति करो, पर व्यक्तिगत स्वार्थ न रखो; कर्म भलीभाँति करो (**कर्म समाचार**), परंतु करो तदर्थ—यज्ञार्थ—सेवाके लिये और करो मुक्तसङ्ग—आसक्तिसे रहित होकर; तथा भोग करो, परंतु करो त्यागपूर्वक। त्याग हमारे जीवनका आदर्श था। वस्तुतः त्यागके बिना प्रेम नहीं हो सकता और प्रेमके बिना सुख नहीं मिल सकता। आजके विश्वमें त्यागका अभाव बढ़ता जा रहा है, इसीसे सर्वत्र प्रेमका अभाव होकर क्षुद्र स्वार्थकी गंदी सीमासे मनुष्य अपनेको आबद्ध कर रहा है। इसीका परिणाम है—सर्वत्र कलह, द्वेष, द्रोह, संघर्ष, युद्ध और विनाश तथा अशान्तिमय जीवन!

हम अपनी संस्कृति एवं धर्मके मूल तत्त्वोंको हृदयङ्गम करें और सेवा तथा त्यागको जीवनमें अपनावें। 'भाईजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

कर्म-मीमांसा

मनुष्य अपने कर्मोंका ही फल भोगता है और उसकी बुद्धिकी वृत्ति भी प्राय: कर्मानुसार होती है। कर्मोंके अनुसार बने हुए स्वभावके अनुकूल ईश्वरीय सत्तासे ही मनुष्य किसी भी क्रियाके करनेमें समर्थ होता है। ईश्वरीय सत्ता, शक्ति, चेतना, स्फूर्ति और प्रेरणाके अभावमें क्रिया असम्भव है। इस न्यायसे सब कुछ ईश्वर ही करता है—यह भी युक्तियुक्त सिद्धान्त है कि ईश्वर **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'** समर्थ होनेपर भी कर्मोंके फलको न्यूनाधिक नहीं करता। इतना सब होते हुए भी ईश्वरके भजनकी बड़ी आवश्यकता है। इस विषयका विवेचन करनेसे पहले 'कर्म क्या है ?', 'उसका भोग किस तरह होता है ?', 'कर्मफलभोगमें मनुष्य स्वतन्त्र है या परतन्त्र ?' आदि विषयोंपर कुछ विचार करना आवश्यक है।

शास्त्रकारोंने कर्म तीन प्रकारके बतलाये हैं—(१) संचित, (२) प्रारब्ध और (३) क्रियमाण। अब इनपर अलग-अलग विचार कीजिये—

संचित कर्म

संचित कहते हैं अनेक जन्मोंसे लेकर अबतकके संगृहीत कर्मोंको। मन, वाणी, शरीरसे मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, वह जबतक क्रियारूपमें रहता है, तबतक क्रियमाण है और पूरा होते ही तत्काल संचित बन जाता है। जैसे एक किसान चिरकालसे खेती करता है। खेतीमें जो अनाज उत्पन्न होता है, उसे वह एक कोठेमें जमा करता रहता है। इस प्रकार बहुत-से वर्षोंका विविध प्रकारका अनाज उसके कोठेमें भरा है। खेती पकते ही नया अनाज उस कोठेमें फिर आ जाता है। इसमें खेती करना कर्म है और अनाजसे भरा हुआ कोठा उसका संचित है। ऐसे ही कर्म करना क्रियमाण और उसके पूरा होते ही हृदयरूप बृहत् भण्डारमें जमा हो जाना संचित है। मनुष्यकी इस अपार संचित कर्मराशिमेंसे, पुण्य-पापके बड़े ढेरमेंसे कुछ-कुछ अंश लेकर जो शरीर बनता है, उसमें भोगनेपर ही नाश होनेवाले कर्मोंके अंशका नाम प्रारब्ध होता है। इसी प्रकार जबतक संचित अवशेष रहता है, तबतक प्रारब्ध बनता रहता है। जबतक इस अनेकजन्मार्जित कर्मसंचयका सर्वथा नाश नहीं होता, तबतक जीवकी मुक्ति नहीं हो सकती। संचितसे स्फुरणा, स्फुरणासे क्रियमाण, क्रियमाणसे पुनः संचित और संचितके अंशसे प्रारब्ध। इस प्रकार कर्मप्रवाहमें जीव निरन्तर बहता ही रहता है। संचितके अनुसार ही बुद्धिकी वृत्तियाँ होती हैं। यानी संचितके ही कारण उसीके अनुकूल हृदयमें कर्मोंके लिये प्रेरणा होती है। सात्त्विक, राजस या तामस, समस्त स्फुरणाओं या कर्मप्रेरणाओंका प्रधान कारण 'संचित' ही है। यह अवश्य जान रखनेकी बात है कि संचित केवल प्रेरणा करता है, तदनुसार कर्म करनेके लिये मनुष्यको बाध्य नहीं कर सकता। कर्म करनेमें वर्तमान समयके कर्म ही, जिन्हें 'पुरुषार्थ' कहते हैं, प्रधान कारण हैं। यदि पुरुषार्थ संचितके अनुकूल होता है तो वह संचितद्वारा उत्पन्न हुई कर्मप्रेरणामें सहायक होकर वैसा ही कर्म करा देता है; प्रतिकूल होता है तो उस प्रेरणाको रोक देता है। जैसे किसीके मनमें बुरे संचितसे चोरी करनेकी स्फुरणा हुई, दूसरेके धनपर मन चला, परंतु अच्छे सत्सङ्ग, विचार और शुभ वातावरणके प्रभावसे वह स्फुरणा वहीं दबकर नष्ट हो गयी। इसी प्रकार शुभ संचितसे दानकी इच्छा हुई, परंतु वह भी वर्तमानके कुसङ्गियोंकी बुरी सलाहसे दबकर नष्ट हो गयी। अभिप्राय यह कि कर्म होनेमें वर्तमान पुरुषार्थ ही प्रधान कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस समयके शुभ सङ्ग और शुभ विचारजनित कर्मोंके नवीन शुभ संचित बनकर पुराने संचितको दबा देते हैं, जिससे पुराने संचितके अनुसार स्फुरणा बहुत कम होने लगती है।

किसानके कोठेमें वर्षोंका अनाज भरा है; अबकी बार किसानने नयी खेतीका अनाज उसमें और भर दिया; अब यदि उसे अनाज निकालना होगा तो सबसे पहले वही निकलेगा जो नया होगा; क्योंकि वही सबसे आगे है। इसी प्रकार संचितके विशाल ढेरमेंसे सबसे पहले उसीके अनुसार मनमें स्फुरणा होगी जो संचित नये-से-नये कर्मका होगा। मनमें मनुष्यके बहुत विचार भरे हैं, परंतु उसे अधिक स्मृति उन्हीं विचारोंकी होती है, जिनमें वह अपना समय वर्तमानमें विशेष लगा रहा है। एक आदमी साधुसेवी है, परंतु कुसङ्गवश वह नाटक देखने लगा, इससे उसे नाटकोंके दृश्य ही याद आने लगे। जिस तरहकी स्फुरणा मनुष्यके मनमें होती है, यदि पुरुषार्थ उसके प्रतिकूल नहीं होता, तो प्रायः उसीके अनुसार वह कर्म करता है, कर्मका वैसा ही नया संचित होता है, उससे फिर वैसी ही स्फुरणा होती है। पुनः वैसे ही कर्म बनते हैं। नाटक देखनेसे उसीकी स्मृति हुई, फिर देखनेकी स्फुरणा हुई, सङ्ग अनुकूल था, अतः पुनः देखने गया, पुनः उसीकी स्मृति और स्फुरणा हुई, पुनः नाटक देखने लगा। यों होते-होते तो मनुष्य साधुसेवारूपी सत्कर्मको छोड़ बैठा और धीरे-धीरे उसकी बात भी वह प्रायः भूल गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि सत्सङ्ग, सदुपदेश, सद्विचार आदिसे उत्पन्न वर्तमान कर्मोंसे पूर्वसंचितकी स्फुरणाएँ दब जाती हैं। इसीसे यह कहा जाता है कि मनुष्य संचितके संग्रह, परिवर्तन और उसकी क्षय-वृद्धिमें प्रायः स्वतन्त्र है।

अन्तःकरणमें कुछ स्फुरणाएँ प्रारब्धसे भी होती हैं। यद्यपि यह निर्णय करना बहुत कठिन है कि कौन-सी स्फुरणा संचितकी है और कौन-सी प्रारब्धकी परंतु साधारणतः यों समझना चाहिये कि जो स्फुरणाएँ या वासनाएँ नवीन पाप-पुण्यके करनेमें हेतुरूप होती हैं, उनका कारण संचित है और जो केवल सुख-दुःख भुगतानेवाली होती हैं, वे प्रारब्धसे होती हैं। प्रारब्धसे होनेवाली वासनासे सुख-दुःखोंका भोग मानसिक रूपसे सूक्ष्म शरीरको भी हो सकता है और स्थूल शरीरके द्वारा क्रिया होकर भी हो सकता है; परंतु इस प्रारब्धसे उत्पन्न वासनाके परिवर्तनकी स्वतन्त्रता मनुष्यको नहीं है।

प्रारब्धकर्म

यह ऊपर कहा जा चुका है कि पाप-पुण्यरूप संचितके कुछ अंशसे एक जन्मके लिये भोग भुगतानेके उद्देश्यसे प्रारब्ध बनता है। यह भोग दो प्रकारसे भोगा जाता है—मानसिक वासनासे और स्थूल शरीरकी क्रियाओंसे। स्वप्नादिमें या अन्य समय जो तरह-तरहकी वृत्ति-तरंगें चित्तमें उठती हैं, उनसे जो सुख-दुःखका भोग होता है, वह मानसिक है। एक व्यापारीने अनाज खरीदा। मनमें आया कि अबकी बार इस अनाजमें इतना नफा हो गया तो जमीन खरीदकर मकान बनवाऊँगा। नफेके कई कारगोंकी कल्पना भी हो गयी। मन आनन्दसे भर गया। दूसरे ही क्षण मनमें आया कि यदि कहीं भाव मंदा हो गया, घाटा लगा तो महाजनकी रकम भरनेके लिये घर-द्वार बेचनेकी नौबत आ जायगी। मनमें चिन्ता हुई, चेहरा उतर गया। चित्तमें इस तरहकी सुख-दुःख उत्पन्न करनेवाली विविध तरंगें क्षण-क्षणमें उठा करती हैं। ऊपरका सारा साज-सामान ठीक है, दुःखका कोई कारण नजर नहीं आता, परंतु मानसिक चिन्तासे मनुष्य बहुधा दुःखी देखे जाते हैं। लोगोंको उनके चेहरे उतरे हुए देखकर आश्चर्य होता है। इसी प्रकार सब प्रकारके बाह्य अभावोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखके अनेक कारण उपस्थित होनेपर भी मानसिक प्रसन्नतासे समय-समयपर मनुष्य सुखी होते हैं। पुत्रकी मृत्युपर रोते हुए मनुष्यके मुखपर भी चित्त-वृत्तिके बदल जानेसे क्षणभरके लिये हँसीकी रेखा देखी जाती है। यह भी प्रारब्धका मानसिक भोग है।

प्रारब्ध भोगका दूसरा प्रकार सुख-दुःखरूप इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंका प्राप्त होना है। सुख-दुःखरूप प्रारब्ध-का भोग तीन प्रकारसे होता है, जिनको अनिच्छा, परेच्छा और स्वेच्छा प्रारब्ध कहते हैं।

अनिच्छा-प्रारब्ध—राह चलते हुए मनुष्यपर किसी मकानकी दीवारका टूटकर गिर पड़ना, बिजलीका गिर जाना, वृक्षका टूट पड़ना, घरमें बैठे हुए मनुष्यपर छतका टूट पड़ना, हाथसे अकस्मात् बंदूक छूटकर गोलीका लग जाना आदि दुःखरूप और राह चलते हुएको रत्न मिल जाना, खेत जोतनेवालेको जमीनसे धन मिलना आदि सुखरूप भोग, जिनके प्राप्त करनेकी न मनमें इच्छा की थी और न किसी दूसरेकी ही ऐसी इच्छा थी—इस प्रकारसे अनायास दैवयोगसे आप-से-आप सुख-दुःखादिरूप भोगोंका प्राप्त होना 'अनिच्छा-प्रारब्ध' है।

परेच्छा-प्रारब्ध—सोये हुए मनुष्यपर चोर-डाकुओंका आक्रमण होना, जान-बूझकर किसीके द्वारा दुःख दिया जाना आदि दुःखरूप और कुमार्गमें जाते हुएको सत्पुरुषका रोककर बचा देना, कुपथ्य करते हुए रोगीके हाथ पकड़कर वैद्य या मित्रद्वारा उसका रोका जाना, बिना ही इच्छाके दूसरेके द्वारा धन मिल जाना आदि सुखरूप भोग, जो दूसरोंकी इच्छासे प्राप्त होते हैं, उनका नाम 'परेच्छा-प्रारब्ध' है। इसमें एक बात बहुत समझनेकी है। एक मनुष्यको किसीने चोट पहुँचायी या किसी मनुष्यने किसीके घरमें चोरी की; इसमें उस मनुष्यको चोट लगना या उसके घरमें चोरी होना तो उसके प्रारब्धका भोग है, परंतु जिसने आघात पहुँचाया और चोरी की, उसने अवश्य ही नवीन कर्म किया है, जिसका फल उसे आगे भोगना पड़ेगा; क्योंकि किसी भी कर्मके भोगका हेतु पहलेसे निश्चित नहीं होता। यदि हेतु निश्चित हो जाय और वह विधान कर दिया जाय कि अमुक पुरुष अमुकके घरमें चोरी करेगा, अमुकको चोट पहुँचायेगा तो फिर ऐसे लोग निर्दोष ठहरते हैं; क्योंकि वे तो ईश्वरी विधानके वश होकर चोरी-डकैती आदि करते हैं। यदि यही बात है तो फिर ऐसे लोगोंके लिये शास्त्रोंमें दण्डविधान और इन कर्मोंके फल-भोगकी व्यवस्था क्यों है?

इसलिये यह मानना चाहिये कि फलभोगके सभी हेतु पहलेसे निश्चित नहीं रहते। जिस क्रियामें कोई अन्याय या स्वार्थ रहता है, जो आसक्तिसे की जाती है, वह क्रिया अवश्य नवीन कर्म है। हाँ, यदि ईश्वर किसी व्यक्तिविशेषको ही किसीके मारनेमें हेतु बनाना चाहे, तो वे फाँसीका दण्ड पाये हुए व्यक्तिको फाँसीपर चढ़ानेवाले न्यायकर्ममें नियुक्त जल्लादकी भाँति किसीको हेतु बना सकते हैं। हो सकता है, उस फाँसी चढ़ानेवालेको चढ़नेवाला पूर्वके किसी जन्ममें मार चुका हो या यह भी हो सकता है कि उससे उसका कोई सम्बन्ध ही न हो और वह केवल न्याययुक्त कर्म ही करता हो।

स्वेच्छा-प्रारब्ध—ऋतुकालमें भार्यागमनादिद्वारा सुख प्राप्त होना, उससे पुत्र होना, न होना या होकर मर जाना, न्याययुक्त व्यापारमें कष्ट स्वीकार करना उससे लाभ होना, न होना या होकर नष्ट हो जाना आदि 'स्वेच्छा-प्रारब्ध' है। इन कर्मोंके करनेके लिये जो प्रेरणात्मक वासना होती है, उसका कारण प्रारब्ध है। तदनन्तर क्रिया होती है। क्रियाका सिद्ध होना न होना; सुकृत-दुष्कृतका फल है।

स्वेच्छा—प्रारब्धके भोगोंके कारणको समझ लेना बड़ा ही कठिन विषय है। बड़े सूक्ष्म विचार और भाँति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिके तर्कोंका आश्रय लेनेपर भी निश्चितरूपसे यह कहना नितान्त कठिन है कि अमुक फलभोग हमारे पूर्वजन्मकृत अमुक कर्मोंका फल है, जो उनकी प्रेरणासे मिला है, या इसी जन्मका कोई कर्म हाथों-हाथ संचितसे प्रारब्ध बनकर इसमें कारण हुआ है।

एक मनुष्यने पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि या धनलाभके लिये किसी यज्ञका अनुष्ठान किया। तदनन्तर उसे पुत्र या धनकी प्राप्ति हुई। इस पुत्र या धनकी प्राप्तिमें यज्ञ कारण है या पूर्वजन्मकृत कर्म कारण है—इसका यथार्थ निर्णय करना कठिन है। सम्भव है कि उसे पुत्र, धन पूर्वजन्मकृत कर्मके फलरूपमें मिला हो और वर्तमानके यज्ञका फल आगे मिले अथवा क्रियावैगुण्यसे उसका फल नष्ट हो गया हो। एक आदमी रोगनिवृत्तिके लिये औषध-सेवन करता है। उसकी बीमारी मिट जाती है। इसमें यह समझना कठिन है कि यह उस औषधका फल है या भोग समाप्त होनेपर स्वतः ही 'काकतालीय' न्यायवत् ऐसा हो गया है।* तथापि यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि जो कुछ भी हो, है सब स्वेच्छाकृत कर्मोंके प्रारब्धका फल। कर्मोंका फल अभी हो या आगे हो, यह कोई नियत बात नहीं है। सर्वथा ईश्वराधीन है, इसमें जीवकी पूर्ण परतन्त्रता है। इस जीवनमें पाप करनेवाले लोग धन-पुत्र-मानादिसे सुखी देखे जाते हैं (यद्यपि उनमें कितनोंको मानसिक दुःख बहुत भारी हो सकता है, जिसका हमें पता नहीं) और पुण्य करनेवाले मनुष्य सांसारिक पदार्थोंके अभावसे दुःखी देखे जाते हैं (उनमें भी कितने ही मानसिक सुखी होते हैं), जिससे पाप-पुण्यके फलमें लोगोंको संदेह होता है, वहाँ यह समझ रखना चाहिये कि उनके वर्तमान बुरे-भले कर्मोंका फल आगे मिलनेवाला है। अभी पूर्वजन्मकृत कर्मोंका अच्छा-बुरा फल प्राप्त हो रहा है।

कहा जाता है कि जो कर्म अधिक बलवान् होता है उसका फल तुरंत होता है और जो साधारण है, उसका विलम्बसे होता है; परंतु यह नियम भी सब जगह लागू पड़ता नहीं देखा जाता; अतएव यहाँ यही कहना पड़ता है कि त्रिकालदर्शी जगन्नियन्ता परमात्माके सिवा तर्क-युक्तियोंके बलपर मनुष्य स्वेच्छा-प्रारब्धका निर्णय नहीं कर सकता। कर्म और फलका संयमन करनेवाले ईश्वरकृपासे लोग अपनी योगशक्तिके द्वारा कुछ जान सकते हैं।

क्रियमाण कर्म

अपनी इच्छासे जो बुरे-भले नवीन कर्म किये जाते हैं, उन्हें 'क्रियमाण' कहते हैं। क्रियमाण कर्मोंमें प्रधान हेतु संचित है। कहीं-कहीं अपना या पराया प्रारब्ध भी हेतु बन जाता है। क्रियमाण कर्ममें मनुष्य ईश्वरके नियमोंसे बँधा होनेपर भी क्रिया सम्पन्न करनेमें प्रायः स्वतन्त्र है। नियमोंका पालन करना, न करना उसके अधिकारमें है। इसीसे उसे फलभोगके लिये भी बाध्य होना पड़ता है।

यदि कोई यह कहे कि हमारे द्वारा जो अच्छे-बुरे कर्म हो रहे हैं, सो सब ईश्वरेच्छा या प्रारब्धसे होते हैं तो उसका ऐसा कहना भ्रमात्मक है। पुण्य-पाप करानेमें ईश्वर या प्रारब्धको हेतु माननेसे प्रधानतः चार दोष आते हैं, जो निर्विकार, निरपेक्ष, समदर्शी, दयालु, न्यायकारी और उदासीन ईश्वरके लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं।

* बीमारी पूर्वकृत पापके फलस्वरूप भी होती है और इस समयके कुपथ्य-सेवनादिसे भी। कुपथ्यादिसे होनेवाली बीमारी प्रायः औषधसे नष्ट हो जाती है, पर कर्मजन्य रोग भोग समाप्त होनेतक दूर नहीं होता; परंतु इस बातका निर्णय होना कठिन है कि कौन-सी बीमारी कर्मजन्य है और कौन-सी कुपथ्यजन्य। इसलिये औषध-सेवन सभी बीमारियोंमें करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) जब ईश्वर या प्रारब्ध ही बुरे-भले कर्म कराते हैं, तब विधि-निषेध बतलानेवाले शास्त्रोंकी क्या आवश्यकता है ? **'सत्यं वद', 'धर्मं चर'** (तै० उ० १ । ११ । १) **'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव ।'** (तै० उ० १ । ११ । २) और **'सुरां न पिबेत्, परदारान्नाभिगच्छेत्'** आदि विधि-निषेधमय वाक्योंका उल्लङ्घन कर मनमाना यथेच्छाचार करनेवाले पाप-परायण व्यक्ति यह अनायास कह सकते हैं कि हम तो प्रारब्धके नियन्ता ईश्वरकी प्रेरणासे ही ऐसा कर रहे हैं । अतएव ईश्वरपर शास्त्र-हननका दोष आता है ।

(२) जब ईश्वर ही सब प्रकारके कर्म करवाता है, तब उन कर्मोंका फल सुख-दुःख हमें क्यों होना चाहिये ? जो ईश्वर कर्म करवाता है, उसे ही फलभोगका दायित्व भी स्वीकार करना चाहिये । ऐसा न करके वह ईश्वर अपना दोष दूसरोंपर डालनेके लिये दोषी ठहरता है ।

(३) ईश्वरके न्यायकारी और दयालु होनेमें दोष आता है; क्योंकि कोई भी न्यायकर्ता पापके दण्डविधानमें पुनः पाप करनेकी व्यवस्था नहीं दे सकता । यदि पाप करनेकी व्यवस्था कर दी तो फिर पापियोंके लिये दण्ड-की व्यवस्था करना अन्याय सिद्ध होता है । एवं यदि ईश्वर ही पाप करवाता है—पापमें हेतु बनता है और फिर दण्ड देता है, तब तो अन्यायी होनेके साथ ही निर्दयी भी बनता है ।

(४) ईश्वर ही जब पापीके लिये पुनः पाप करनेका विधान करता है, तब जीवके कभी पापोंसे मुक्त होनेका तो कोई उपाय ही नहीं रह जाता । पापका फल पाप, उसका फल पुनः पाप—इस तरह जीव पापमें ही प्रवृत्त रहनेके लिये बाध्य होता है, जिससे एक तो अनवस्थाका दोष और दूसरे ईश्वर जीवोंको पाप-बन्धनमें रखना चाहता है, यह दोष आता है । अतः यह मानना उचित नहीं कि ईश्वर पाप-पुण्य करवाते हैं । पाप-कर्मके लिये तो ईश्वरकी कभी प्रेरणा ही नहीं होती, पुण्यके लिये—सत्कर्मोंके लिये ईश्वरका आदेश है; परंतु उसका पालन करना न करना या विपरीत करना हमारे अधिकारमें है । सरकारी अफसर कानूनके अनुसार चलता हुआ प्रजारक्षणका अधिकारी है, परंतु अधिकारारूढ़ होकर उसका सदुपयोग या दुरुपयोग करना उसके अधिकारमें है, यद्यपि वह कानून-से बँधा है तथा कानून तोड़नेपर दण्डका पात्र ही होता है, वही हालत कर्म करनेमें मनुष्यके अधिकारकी है ।*

ईश्वर सामान्यरूपसे सन्मार्गका नित्य प्रेरक होनेके कारण जीवके कल्याणमें सहायक होता है । पापकर्मोंके होनेमें प्रधान हेतु निरन्तर विषयचिन्तन है । इसीसे रजोगुण-समुद्भूत कामकी उत्पत्ति होती है, उस कामसे ही क्रोध आदि दोष उत्पन्न होकर जीवकी अधोगतिमें कारण होते हैं । भगवान्ने कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥
(गीता २ । ६२-६३)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है । कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो

---

* इस विषयका विशेषविवेचन तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ के 'मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है या परतन्त्र ?' शीर्षक लेखमें किया गया है । वहाँ देखना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है ।'

इससे यह सिद्ध होता है कि पापकर्मोंके होनेमें विषयचिन्तनजनित राग—आसक्ति प्रधान कारण है, ईश्वर या प्रारब्ध नहीं । चिन्तन या स्फुरण क्रियमाणके —नवीन कर्मके नवीन संचितके अनुसार पहले होता है । अतः पापोंसे बचनेके लिये नवीन शुभ कर्म करनेकी आवश्यकता है । नवीन शुभ कर्मोंसे शुभ संचित होकर शुभका चिन्तन होगा, जिससे शुभ कर्मोंके होने और अशुभके रुकनेमें सहायता मिलेगी । इसीलिये अर्जुनके प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान्ने पुरुषार्थद्वारा पापकर्मके कारण रागरूप रजोगुणसे उत्पन्न कामका नाश करनेकी आज्ञा दी है । अर्जुनने भगवान्से पूछा—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥
(गीता ३ । ३६)

'हे कृष्ण ! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है ?'

इसके उत्तरमें भगवान् बोले कि—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
(गीता ३ । ३७)

'हे अर्जुन ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला, अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है; इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान ।'

आगे चलकर भगवान्ने धुएँसे अग्नि, मलसे दर्पण और जेरसे गर्भकी भाँति ज्ञानको ढकनेवाले इस दुष्पूरणीय अग्निसदृश कामके निवासस्थान मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको बतलाकर इन्द्रियोंको वशीभूत करके ज्ञान-विज्ञान-नाशक पापी कामको मारनेकी आज्ञा दी । यदि कामको जय करनेमें जीव समर्थ न होता तो उसके लिये भगवान्की ओरसे इस प्रकारकी आज्ञाका दिया जाना नहीं बन सकता । अतएव भगवान्के आज्ञानुसार शुभ कर्म, शुभ सङ्गति करनेसे क्रियमाण शुद्ध हो जाते हैं । ये क्रियमाण ही संचित और प्रारब्धके हेतुभूत हैं । इसलिये मनुष्यको क्रियमाण शुभ करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि इन्हींके करनेमें यह स्वतन्त्र है ।

श्रीव्रजराज-दुलारेसे प्रार्थना

टेर सुनों ब्रजराज-दुलारे ।
दीन मलीन हीन सब गुनते, आय पर्‌यो हौं द्वार तिहारे ॥ टेर ॥
काम क्रोध अरु कपट मोह मद, सो जाने निज प्रीतम प्यारे ।
भ्रमत रह्यो सँग इन बिषयन के, तुव पदकमल न मैं उर धारे ॥ १ ॥
कौन कुकर्म किये नहिं मैंने, जो गये भूल सो लिये उधारे ।
ऐसी खेप भरी रचि पचिकैं चकित भये लखिकै बनिजारे ॥ २ ॥
अब तौ एक बार कहौ हँसिके—'आजहिते तुम भये हमारे' ।
याहि कृपाते नारायन की बेगि लगैगी नाव किनारे ॥ ३ ॥

—श्रीनारायण स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

सर्वसमर्थ प्यारे प्रभुकी महिमा स्वीकार करनेपर शरणागति सिद्ध होती है और फिर शरणागतको कुछ भी करना शेष नहीं रहता। श्रम-साध्य उपाय देहाभिमानको पोषित करता है। देहाभिमानके रहते हुए न तो वास्तविक स्वाधीनता ही प्राप्त होती है और न अविनाशी जीवनसे अभिन्नता; और उसके बिना प्रेमके साम्राज्यमें प्रवेश नहीं होता। इस कारण आस्तिक साधक प्रभुकी महिमाको स्वीकार कर अपनेको उनके प्रति समर्पित कर सदाके लिये निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाते हैं। तुम सर्वसमर्थकी गोदमें हो, चिन्ता मत करो, अभय हो जाओ। तन-मन आदि सभीपर उनकी मुहर (सील) लगा दो और सहज भावसे उनके प्यारकी भूख बढ़ने दो। ज्यों-ज्यों प्यारकी भूख बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों जो करना चाहिये वह अपने-आप होता जायगा और फिर प्रेमी प्रेम होकर प्रेमास्पदको रस-प्रदान करनेमें समर्थ होगा। यह उन्हींकी महिमा है, जिन्होंने मानवका निर्माण किया है। तुम्हारे रचयिता तुम्हें सदैव देख रहे हैं; तुम तो उन्हें अपना मानते हो, पर वे यह जानते हैं कि तुम उन्हींके हो। तुम उन्हें अत्यन्त प्रिय हो—इसमें लेशमात्र भी संदेह मत करो। प्रत्येक दशामें उनके प्यारकी भूख बढ़ती रहे, यही सफलताकी कुंजी है।

* * *

जिस प्रकार नदीका शुद्ध जल किसी गड्ढेमें आवद्ध होकर अनेक विकार उत्पन्न करता है, उसी प्रकार स्नेह किसी शरीर, वस्तु या अवस्थामें आवद्ध होकर मोहयुक्त अनेक विकार उत्पन्न करता है। स्नेह प्राणीकी परम आवश्यकता है, पर उसे किसीमें आवद्ध नहीं करना चाहिये। हृदयमें स्नेहकी गङ्गा लहराती रहे, पर उसके सामने कोई दीवार नहीं होनी चाहिये, जिससे वह टकरा जाय। साधकका आधार उसकी साधना और लक्ष्य है। प्राणीका लक्ष्य कामका अन्त कर रामसे अभिन्न होना है। उसकी साधना भोगेच्छाओंको रामकी अभिलाषामें, स्वार्थको सेवामें एवं असंयमको संयममें परिवर्तित कर देना है।

* * *

साधनयुक्त जीवन ही मानव-जीवन है। अतः मानवको मानव होनेके लिये प्रत्येक कार्य साधन-बुद्धिसे करना अनिवार्य है। जो अपनी निर्बलताओंको देखकर उनके मिटानेमें प्रयत्नशील है, वही मानव है। अपने कर्तव्योंसे दूसरोंके अधिकारोंको सुरक्षित रखना ही धर्म है; क्योंकि अपने-अपने अधिकार सभीको स्वाभाविक प्रिय हैं। इस दृष्टिसे प्रत्येक मानवको अपने लिये धार्मिक जीवनकी आवश्यकता है। अतः धर्म मानवमात्रको स्वाभाविक प्रिय है। हाँ, यह अवश्य है कि प्राणी मोहवश जो अपने लिये प्रिय है, उसे दूसरोंके प्रति नहीं करता। यह उसकी असावधानी है, और कुछ नहीं। जब सभी अपने लिये धर्मात्माकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, तब सभीको धर्मात्मा होना चाहिये; तभी सबकी पूर्ति हो सकती है।

* * *

भावनाओंके अनुकूल क्रिया करनेपर कर्ताका वही स्वरूप बन जाता है, जिस प्रकारकी वह भावनाएँ करता है; क्योंकि भावनाओंके समुदाय जिसमें हैं, उसका वास्तवमें स्वरूप भावनाओंसे भिन्न कुछ नहीं है। इसलिये जिस प्रकारकी भावनाएँ होती हैं, वही कर्ताका स्वरूप हो जाता है। जो कुछ प्रतीत होता है—अर्थात् जगत्‌के न रहनेपर जो रहता है, उसके अनुभव करनेका भाव जब कर्ता निश्चित करता है, तब जिन भावनाओंमें उसने अपनेको कैद कर लिया था, उन सबको भगवान्‌के लिये समर्पित कर—भावनाओंसे अतीत हो अपने प्रिय लक्ष्य—भगवान्‌को प्राप्त करता है—इसमें कुछ भी संदेह नहीं; क्योंकि जो है, वह सर्वदा अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्दघन, शुद्ध बोध-स्वरूप है। उसमें देश तथा कालकी दूरी नहीं है, बल्कि ज्ञानकी कमीसे वह दूर प्रतीत होता है। ज्ञानकी कमी इन्द्रियोंके ज्ञानमें सद्भावसे तथा अपने देहात्मभाव, अर्थात् 'मैं शरीर हूँ'—इससे प्रतीत होती है। यदि विचारपूर्वक अपनेको शरीरसे ऊपर उठा लिया जाय तो मनुष्य सब प्रकारकी भावनाओंसे छूट जाता है। फिर जो है, उसका स्वयं अनुभव कर नित्यानन्द प्राप्त करता है। इसके लिये किसी बाहरी सहायताकी आवश्यकता नहीं है।

जबतक अपवित्र भावनाएँ (अर्थात् विषयासक्ति तथा स्वार्थपरायणता) बनी रहती हैं, तबतक विचारकी उत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। इसलिये विचारकी उत्पत्ति होनेके लिये हृदय को पवित्र भावनाओं (विश्व-प्रेम तथा सेवा-भाव) से भर दो और यथाशक्ति उसके अनुकूल क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो। ऐसा करते हुए लक्ष्यपर दृष्टि रखो, अर्थात् अपने प्रेम-पात्रकी प्राप्तिके लिये सदा ध्यान रखो। संसार एक जीवनयात्राका मुकाम है, रहनेका स्थान नहीं। सच्चा यात्री यात्रा करते हुए अपने लक्ष्यको कभी नहीं भूलता। यह दशा प्रतिक्षण अनुभव करनेकी है।

प्रत्येक कार्य करनेपर अपनेको कार्यमें कैद न होने दो, बल्कि उससे अपनेको ऊपर उठाओ। ऐसा करनेसे जीवन-यात्राका स्वरूप और कार्य-मार्ग प्रतीत होंगे। दृष्टि सदैव उसमें ही रहेगी, जिसका अनुभव करना है। जबतक अनुभव नहीं होता, तबतक उसका स्थायी भावसे निरन्तर स्मरण तथा ध्यान स्वाभाविक है, अर्थात् बिना प्रयत्न किये वह आप ही आप होता है; क्योंकि जो क्रिया जिसके लिये की जाती है, उसके बिना कर्ताको वह प्रिय नहीं होती, और जो प्रिय नहीं होती, उसमें कर्ता कभी नहीं ठहरता, यह अखण्ड नियम है।

कोई भी बन्धन बाहरसे नहीं होता। जिसको बन्धन प्रतीत होता है, वह उसकी ही भूल होती है; क्योंकि जब हम शरीर आदि किसी वस्तुमें अपनेको कैद कर देते हैं, तब वह हमको बन्धनका हेतु प्रतीत होता है। अतः अपने आपपर पूरा विश्वासकर सच्ची स्वतन्त्रताका अनुभव करो।

* * *

पराधीनता, नीरसता एवं अभावमें आबद्ध प्राणी सदैव सुखकी दासता एवं दुःखके भयमें आबद्ध रहता है और ऊँची-नीची योनियोंमें भटकता रहता है। इस समस्याका समाधान तभी हो सकता है, जब साधक वेदवाणी, गुरुवाणी, भक्तवाणी आदिके द्वारा अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप प्यारे प्रभुके अस्तित्वको स्वीकार करे। प्रभुके अस्तित्वको स्वीकार करनेपर फिर किसी औरके अस्तित्वकी अपनेको, अपने लिये अपेक्षा नहीं रहती। उसका परिणाम यह होता है कि चित्त सब ओरसे स्वतः विमुख होकर अपनेमें, जो अपने प्रेमास्पद हैं, उनमें लग जाता है। जीवन-विज्ञानसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि जबतक चित्त प्रभुसे भिन्न किसी औरमें लगता है, तबतक उसका अस्तित्व बना रहता है और वह स्वभावसे स्थिर नहीं होता, अर्थात् मनमें स्थिरता, चित्तमें प्रसन्नता और हृदयमें निर्भयताकी अभिव्यक्ति नहीं होती और उसके बिना साधक शान्ति—मुक्ति और भक्तिका अधिकारी नहीं हो पाता। इस दृष्टिसे चित्तका सब ओरसे विमुख होकर, अपनेमें, जो अपना जीवन है, उसमें अभिन्न होना अनिवार्य है। इसी पवित्रतम उद्देश्यकी पूर्तिके लिये आस्थावान् साधकोंने सर्वसमर्थ प्रभुके अस्तित्व, महत्त्व और अपनत्वको स्वीकार किया। मानव जिसके अस्तित्वको स्वीकार करता है, उसका चिन्तन उसमें स्वतः होने लगता है। अतएव जिसके चिन्तनसे अपनेको मुक्त होना है, उसके अस्तित्वको ही स्वीकार मत करो। केवल प्रतीति एवं प्रवृत्तिके आधारपर अस्तित्वको स्वीकार करना भारी भूल है। जिसकी प्राप्ति सम्भव है, भले ही उसकी प्रतीति न हो, उसके अस्तित्वको स्वीकार करना अनिवार्य है।

प्राप्ति उसीकी होती है, जो सदैव अपनेमें है; और वह अपना है। उसीमें सहज-भावसे प्रियता होती है। जो अपनेमें है, साधक अपनी भूलसे ही उससे विमुख होता है और फिर प्रवृत्तिद्वारा अपनेको शक्तिहीन ही बनाता है। श्रमसे शक्तिका ह्रास होता है—यह जीवनका विज्ञान है।

श्रमका आरम्भ ही तब होता है, जब मानव अपनेमें अपने जीवन तथा जीवन-धनको स्वीकार ही नहीं करता। अब यदि कोई यह कहे कि जो सदैव अपनेमें है, उसे स्वीकार करनेकी क्या बात? तो यह देखना चाहिये कि जो अपना नहीं है, अपनेमें नहीं है, सदैव नहीं है, केवल प्रतीतिमात्र है, उसके अस्तित्वको अस्वीकार करनेके लिये अपनेमें अपने प्यारे प्रभुको स्वीकार करना अनिवार्य होता है। इसपर भी यदि कोई प्रभुको स्वीकार किये बिना, जिसकी प्राप्ति सम्भव ही नहीं है, उसे स्वीकार न करे तो भी साधक अपनेमें अपने साध्यको पा जाता है। संसारकी निवृत्तिसे परमात्माकी प्राप्ति और परमात्माकी प्राप्तिसे संसारकी निवृत्ति अपने-आप होती है। जिस अनन्तसे समस्त स्वीकृतियाँ सिद्ध होती हैं, वह वास्तवमें सभीका अपना है, अपनेमें है, अभी है।

इस वास्तविकतामें अविचल आस्था, श्रद्धा, विश्वास अत्यन्त आवश्यक है। **प्रभु-विश्वास प्रभु-प्राप्तिका अचूक उपाय है।** अन्य विश्वासने ही साधकको अन्य चिन्तनमें आबद्ध कर अपने प्यारे प्रभुसे विमुख कर दिया है। अन्य विश्वासके त्यागसे प्रभु-विश्वास सजीव होता है, जिसके होते ही आत्मीयताकी अभिव्यक्ति होती है, जो अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियताकी जननी है।

अभावमें आबद्ध रहना किसीको अभीष्ट नहीं है। अपनेमें अपने प्रेमास्पदको स्वीकार करनेमात्रसे स्वतः अभावका अभाव हो जाता है, जिसके होते ही किसी प्रकारकी पराधीनता, जडता एवं नीरसता शेष नहीं रहती—अर्थात् अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय जीवनसे अभिन्नता हो जाती है। यह शरणागत साधकोंका अनुभव है कि जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनेमें है, अपने हैं, अभी हैं, वे ही वास्तवमें हैं । अपनेमें अपने प्रेमास्पद मौजूद हैं; उन्हींको अपना मानना अनिवार्य है । जिसका सदैव कोई अपना है, उसीमें प्रियताकी अभिव्यक्ति स्वतः होती है । प्रियतासे ही प्रियतमको रस मिलता है । अतः सोयी हुई प्रियताको जगानेके लिये, बिना देखे, भक्तवाणीके आधारपर प्रभुमें आत्मीय-सम्बन्ध स्वीकार करना अनिवार्य है ।

आत्मीय सम्बन्धसे ही नित नव प्रियताकी अभिव्यक्ति होगी । प्रियता प्रियतमके समान ही अविनाशी, अनन्त, चिन्मय तत्त्व है; कारण कि प्रीति और प्रियतममें जातीय भिन्नता नहीं है । इतना ही नहीं, प्रेम और प्रेमास्पदका नित्य विहार ही भक्तितत्त्व है, जिसकी प्राप्तिके लिये जो जीवनका सत्य है, अर्थात् अपने प्रेमास्पद सदैव अपनेमें मौजूद हैं, उसे स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक है । अपनेसे भिन्न जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह कभी भी अपना नहीं है, अपने लिये नहीं है—इसको अपनाकर, जो अपनेमें अपना है, उसीके लिये अपनेको समर्पित कर सदाके लिये उन्हींका हो जाना अपना जीवन है । जो अपना जीवन है, वह अनन्तका स्वभाव है । पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब प्रभुविश्वासी साधक अचाह एवं अप्रयत्न होकर सदाके लिये शरणागत हो जाय । शरणागति कोई अभ्यास नहीं है, अपितु विश्वास है । निज ज्ञानसे असङ्गता और आस्था, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक आत्मीयता स्वीकार करना रसरूप जीवनकी प्राप्तिका अचूक उपाय है । अपना प्रिय यदि अपनेको प्रिय नहीं हो सकता तो प्रियता-प्राप्तिका और कोई उपाय हो ही नहीं सकता । जिस प्रकार निर्ममताके बिना निर्विकारता एवं निष्कामताके बिना चिर-शान्ति तथा असङ्गताके बिना जीवन्मुक्ति सम्भव नहीं है, उसी प्रकार आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक आत्मीयताके बिना अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियता सम्भव नहीं है । इस दृष्टिसे जो साधक शीघ्रातिशीघ्र वर्तमानमें ही पराधीनता, नीरसता एवं अभावका अन्त करना चाहते हैं, वे आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक अपनेमें अपने प्रेमास्पदको स्वीकार कर निश्चिन्त तथा निर्भय हो जायँ । सफलता अवश्यम्भावी है ।

स्त्री-धर्म—सेवा और नम्रता

सेवा और नम्रता स्त्रियोंके सहज-प्राप्त अधिकार हैं । भारतमें ये दोनों आदर्श स्त्रियोंके जीवनको उन्नत कर रहे हैं, जबकि पश्चिममें, खासतौरपर शिक्षित वर्गमें, इन आदर्शोंको तिलाञ्जलि दे दी गयी है और स्वतन्त्रता तथा समानता आदर्श बन गयी हैं । यह किसलिये ? सच्ची सेवा गुलामी नहीं, परंतु स्वतन्त्रता ही है । सच्ची नम्रतामें असमानता नहीं, परंतु समानता ही होती है ।

हाँ, कई बार सेवा गुलामी बन जाती है और नम्रता दीनता बन जाती है । परंतु इससे अपनी संस्कृतिके उदात्त आदर्श छोड़कर पाश्चात्त्य आदर्श ग्रहण करनेकी कोई जरूरत नहीं । उल्टे हम अपने आदर्शोंके योग्य बननेका प्रयत्न करें और जितनी मात्रामें हमारा यह प्रयत्न होगा, उतनी ही मात्रामें हमारा जीवन पवित्र और स्वार्थत्यागी बनेगा । पश्चिममें स्वतन्त्रता अक्सर स्वच्छन्दता और स्वार्थपरायणतामें बदली हुई पायी जाती है और समानता भयंकर प्रतिस्पर्धामें बदली हुई देखी जाती है । पश्चिममें जो असंतोष और अशान्ति आज जहाँ-तहाँ नजर आती है, उसका कारण यह मालूम होता है कि स्त्री-पुरुष अपने-अपने धर्मको भूलकर प्रतिस्पर्धामें उतर आये हैं । स्त्री स्वधर्म छोड़कर पुरुषका धर्म अपनाकर आत्मदर्शन प्राप्त नहीं कर सकती; केवल सेवा और नम्रताका सहज-प्राप्त अधिकार अपनाकरके ही कर सकती है ।

आजकल स्त्रियोंको पुरुषों-जैसी-ही शिक्षा दी जाती है । यह मुझे तो मूलमें ही भूलभरी प्रतीत होती है और उसमें विचित्र अशास्त्रीयता लगती है । उसे उसके स्वभाव और स्वधर्मके अनुकूल ही शिक्षा दीजिये । उसे पुरुषका प्रतिस्पर्धी बनायेंगे तो समाजकी जड़ें उखड़ जायेंगी, जैसा पश्चिममें हो रहा है । —महात्मा गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)के अमृत-वचन]

एकमात्र भगवच्चरणोंमें ही रम जाइये

संसार वस्तुतः ही दुःखमय तथा अनित्य है। यहाँ जो सुखकी खोज है, वही दुःखोंकी प्राप्तिमें प्रधान कारण है; क्योंकि यह खोज सदा-सर्वदा निराशा तथा असफलता ही प्रदान करती है। जैसे बालूमें केवल भ्रमसे जलकी लहरें दीखती हैं, वहाँ जलकी बूँद भी नहीं होती, वैसे ही संसारमें भ्रमसे सुखकी आशा होती है, असलमें यहाँ सुख-लेश भी नहीं है। तथापि हम बारंबार संसारमें ही सुख खोजते हैं; इसीमें जीवन बिता देते हैं। रात-दिन इसीके लिये चिन्ता-चेष्टा करते हैं—यही हमारा प्रमाद-मोह है।

समस्त सुख-शान्तिके स्रोत तो श्रीभगवान्‌के चरणारविन्द-युगल हैं। उनमें मन रमनेपर ही सुखके दर्शन होते हैं; अन्यथा कहीं नहीं होते। अतएव हमारा प्रधान कर्त्तव्य एकमात्र यही है कि हम सब कुछ छोड़कर किसी भी पदार्थसे सुखकी आशा न रखकर, एकमात्र भगवच्चरणोंमें ही रम जायँ। सारी ममता उन्हींमें हो जाय। ममता-आसक्तिके विषय एकमात्र वे ही बन जायँ।

'लपक पकड़ ले प्रभुका हाथ'

भगवान्‌की माया बड़ी ही प्रबल है, उससे पार पानेका एकमात्र उपाय है—प्रभुका हाथ पकड़ लेना। प्रभु हाथ फैलाकर जीवमात्रको मायासे उबारनेके लिये पुकार रहे हैं। हम उनकी पुकार सुनें। जहाँ हमने प्रभुकी पुकार सुनी और उनका हाथ पकड़ा कि जीवनमें पवित्र भगवदीय सुख, शान्ति, प्रसन्नता छा जायगी।

मायाके प्रवाहमें पड़कर, बहा जा रहा खोकर ज्ञान।
इधर-उधर गोते खाता चलता, होता नाहक हैरान॥
निकल तुरत प्रवाहसे, मत डर, लपक पकड़ ले प्रभुका हाथ।
रहे पुकार हाथ फैलाये, तुझे बचाने, चलते साथ॥
एक बार तू देख इधर, प्रभुका रक्षक कर वरद, विशाल।
कैसे तुझे निकाल उठानेको हैं तत्पर, बस, तत्काल॥
ताका जहाँ, उठा, आ बैठेगा तू दिव्य सुखद प्रभु-गोद।
छा जायेगा जीवनमें अनुपम शुचि भगवदीय आमोद॥

नित्य-निरन्तर अपने भगवान्‌के अधीन ही रहो

घरमें किसीका भी दोष न देखकर उनके द्वारा जो उपकार, सद्व्यवहार, सौजन्य, स्नेह आदि प्राप्त हुआ है, उसीको कृतज्ञताभरे हृदयसे याद रखना चाहिये; इसीमें लाभ है। मनमें ग्लानि, पराधीनताका दुःख आदि नहीं मानना चाहिये। अपनेको तो नित्य-निरन्तर अपने भगवान्‌के अधीन ही रहना है। वे जैसे, जहाँ रखें, उसीमें ठीक है। हम अपनी स्वतन्त्रता क्यों चाहें; क्यों अपने मनकी कोई बात, जो उनके मनके प्रतिकूल हो, सफल हो। सच्ची बात तो यह है कि भगवान् ही अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमीके अधीन हो जाते हैं—तभी तो लोभीके धनकी तरह वे उस प्रेमीको सर्वदा अपने हृदयमें बसाये रहते हैं। प्रेमी कितना ही दूर क्यों न हो, वह उनके हृदयमें रहता है—

'अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥'

हमारे ममतास्पद एकमात्र प्यारे भगवान् ही रहें

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि शरीरको लेकर संसारके सारे सम्बन्ध मिथ्या, दुःख-परिणामी तथा बन्धनकारक हैं। संसारका सम्बन्ध रहे ही नहीं। व्यवहारमें यथायोग्य बर्ताव नाटकके अभिनेताकी तरह कर लिया जाय, पर मनका--आत्माका सम्बन्ध तो केवल परम प्रियतम भगवान्से ही रहे। अन्य किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिके साथ कुछ भी आत्म-सम्बन्ध न रहे। संसारसे जो व्यवहारका सम्बन्ध रहे, वह भी एकमात्र परम प्रेमास्पद प्राणाराम श्रीभगवान्के सम्बन्धको लेकर ही--

'नाते नेह राम सौं मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।'

'या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति-प्रतीति-सगाई।
सो सब तुलसिदास प्रभु ही सौं होइ सिमिटि इक ठाँई।'

निरन्तर सावधान रहना चाहिये--हमारे 'ममतास्पद' एकमात्र प्यारे भगवान् ही रहें। भगवान्में जो अनन्य ममता रहे, वह भी केवल प्रेम-स्वरूप ही; स्वसुखकी वाञ्छा कहीं रहे ही नहीं। लोक-परलोक, नरक-स्वर्ग कुछ भी बाधक न हो इस नित्य सम्बन्धमें। प्रभुसे सहज एकत्व रहे; कभी भिन्नता हो ही नहीं। यह निश्चय हो, यही अनुभव हो। यही अनुभव रहे—इस शरीरमें रहते भी और शरीरके वियोग होनेपर भी।

यही सोचना—यही निश्चय करना चाहिये—

कौन काम, कब, कैसे करिबो, कहाँ, कौनके संग।
सब कछु करैं-करावें वे ही, रचें अनोखे ढंग॥
कठपुतली उनके कर की हौं, निज मन मोहि नचावै।
खेल खिलावैं, जो कछु उन मेरे प्रिय के मन आवै॥

फिर मनमें प्रफुल्लता रहेगी। सदा-सर्वदा उनका सङ्ग बना रहेगा और उनका प्रिय कार्य ही सदा होगा। अपने लिये कोई चिन्ता होगी ही नहीं।

भगवान् प्रेमीकी कृपा चाहते हैं

तुमने यह ठीक लिखा है—'जिसपर भगवान्की कृपा बरस रही हो, वह अपनेको दीन-हीन-पतित समझकर उस कृपाका दुरुपयोग क्यों करे? उसे तो निरन्तर कृपा-सिन्धु-रस-सागरमें डूबे रहकर सदा ही गौरवका अनुभव करना चाहिये।' पर भगवान् तो प्रेमीके प्रति कृपा नहीं करते; वे तो स्वयं प्रेमीकी कृपा चाहते हैं, जिससे उनको रस प्राप्त होता रहे। भगवान् सदा ही प्रेमके भूखे हैं। वे प्रेमीके हृदयका अमृतरस पान करनेके लिये सदा लालायित रहते हैं और प्रेमरस मिल जानेपर अपनेको उसका नित्य ऋणी मानते हैं। यह उनका स्वभाव है। आनन्दमयको भी आनन्द देनेवाला प्रेम ही होता है। पर यह भाषामें नहीं आता—'जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥' भगवान् श्रीरामका यह संदेश प्रेमका आदर्श है ।

श्रीराधा-कृष्णका स्वरूप एवं दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका आनन्दस्वरूप या ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधाके रूपमें प्रकट हैं । श्रीराधाजी स्वरूपतः भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्धतम प्रेमकी ही अद्वितीय घनीभूत नित्य स्थिति हैं । ह्लादिनीका सार प्रेम है, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधाजी मूर्तिमती मादनाख्य महाभावरूपा हैं । वे प्रत्यक्ष साक्षात् ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम नित्य वर्द्धनशील प्रेमकी आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं । कामगन्धहीन, स्वसुखवाञ्छा-वासना-कल्पना-गन्धसे सर्वथा रहित, श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी, श्रीकृष्णसुखजीवना श्रीराधाका एकमात्र कार्य है—त्यागमयी पवित्रतम नित्य सेवाके द्वारा श्रीकृष्णका आनन्दविधान । श्रीराधा पूर्णतमा शक्ति हैं, श्रीकृष्ण परिपूर्णतम शक्तिमान् हैं । शक्ति और शक्तिमान्में भेद तथा अभेद दोनों ही नित्य वर्तमान हैं । अभेदरूपमें तत्त्वतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त, नित्य एक हैं और प्रेमानन्दमयी दिव्य लीलाके रसास्वादनार्थ अनादिकालसे ही नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं ।

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ ॥

श्रीराधामाधव दोनों एक दूसरेके लिये चकोर भी हैं और चन्द्रमा भी, भ्रमर भी हैं और कमल भी, पपीहा भी हैं और मेघ भी एवं मछली भी हैं और जल भी ।

आस्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ ॥

प्रिया-प्रियतम एक दूसरेके प्रेमी भी हैं और प्रेमास्पद भी । प्रेमीको कहते हैं—'आश्रयालम्बन' और प्रेमास्पदको 'विषयालम्बन' । कहीं श्यामसुन्दर प्रेमी बनते हैं तो राधाकिशोरी प्रेमास्पद हो जाती हैं और जहाँ राधाकिशोरी प्रेमिकाका बाना धारण करती हैं, वहाँ श्यामसुन्दर प्रेमास्पद हो जाते हैं। प्रेमका स्वरूप ही है, प्रेमास्पदके सुखमें सुख मानना । इसीसे प्रेमीको 'तत्सुख-सुखिया' कहते हैं । श्रीराधाकिशोरी और उनके प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण दोनों ही तत्सुख-सुखी हैं । श्रीराधाको सुखी देखकर श्यामसुन्दरको सुख होता है और श्यामसुन्दरको सुखी देखकर श्रीराधा सुखी होती हैं ।

लीला-आस्वादन-निरत महाभाव-रसराज ।
बितरत रस दोउ दुहन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज ॥

प्रेमकी अन्तिम परिणतिका नाम है--'महाभाव' । महाभावका मूर्तिमान् विग्रह हैं--श्रीराधा । इसी प्रकार रसोंमें सर्वश्रेष्ठ रस है—उज्ज्वल अथवा शृङ्गाररस । इसके मूर्तिमान् स्वरूप हैं श्रीकृष्ण । इस प्रकार श्रीराधा और श्रीकृष्णके रूपमें साक्षात् महाभाव-रसराज ही परस्पर लीलारसका आस्वादन करते रहते हैं और नाना प्रकारके नित्य नूतन साज—वेष सजकर एक दूसरेको रसका वितरण किया करते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित विरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत ।
बचनातीत अचिंत्य अति, सुषमामय श्रीमंत ॥

प्रिया-प्रियतम दोनों ही एक ही कालमें परस्पर विरोधी, अनन्त, नित्य, मन-वाणीके अगोचर (वाणीसे जिनका वर्णन नहीं हो सकता और चित्तसे जिनका चिन्तन नहीं हो सकता), अत्यन्त शोभामय एवं दिव्य ऐश्वर्ययुक्त गुणोंसे विभूषित रहते हैं ।

श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार ।
एक तत्त्व दो तनु धरैं, नित-रस-पारावार ॥

ये तत्त्वतः--स्वरूपतः एक होते हुए दो भिन्न स्वरूपोंको धारण किये हुए हैं । नित्य रसके समुद्र उन श्रीराधा-माधवके चरणोंकी मैं बारंबार वन्दना करता हूँ ।

विश्वास करो

विश्वास करो--श्रीकृष्ण तुम्हारे अपने हैं और निश्चय ही हैं; वे तुम्हारे ही रहेंगे, तुम उनके रहोगे । वे नित्य सच्चिदानन्दघन हैं । तुम्हारे अन्तरकी प्रत्येक पीड़ाको वे जानते हैं, अनुभव करते हैं । पाञ्चभौतिक शरीर तो नष्ट होनेवाला ही है । तुम शरीरकी चिन्ता न करके अपने दिव्य भगवद्भावमय देहको देखो; उसमें--उस दिव्य राज्यमें भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं; उनसे कभी विछोह सम्भव ही नहीं है ।

भगवान्‌की बड़ी कृपा है अनन्त, असीम कृपा है हम सभीपर । तुमपर भी श्रीकृष्ण बहुत ही प्रसन्न हैं । तुम समय-समयपर जो निराश, उदास तथा विषादग्रस्त हो जाते हो, यह ठीक नहीं है । श्रीकृष्णकी कृपा तथा परम प्रीतिकी ओर देखकर, उसपर विश्वास करके तुमको नित्य परम प्रसन्न रहना चाहिये । पद-पदपर और पल-पलमें उनकी परम प्रीतिका तथा उनकी नित्य मुसकानभरी झाँकीका अनुभव करते रहना चाहिये ।

मन अपने इष्टदेवके चिन्तनमें ही लगा रहे

वास्तवमें ऐसी दृढ़ इच्छा होनी ही चाहिये कि शरीरसे संसारमें यथायोग्य निर्दोष कर्म होते रहें, परंतु उनके साथ मनका कभी संसारमें प्रवेश न हो । मन तो सदा अपने इष्टदेवके चिन्तनमें ही लगा रहे । कभी भूलकर भी, स्वप्नमें भी दूसरी ओर न जाय । शरीरके द्वारा होनेवाला संसारका, घरका, परिवारका काम भी उन्हींकी सेवाके रूपमें हो; कहीं कोई ममता, आसक्ति और अहंकारकी कालिमा न रहे ।

भगवान्‌की लीलाओंका अपने मनसे (चाहे जैसा ही--जैसा मनमें आवे, वैसा ही) चिन्तन किया करो । चिन्तन करते-करते अनुभूति तथा पीछे दर्शन हो जायँगे; क्योंकि भगवान् सत्य हैं तथा सर्वत्र हैं । उनकी लीला भी नित्य है ।

सेवा

तुम अपनेयोग्य सेवा पूछते हो, सो तुम्हारे योग्य सेवा यही है कि तुम मनसे संसारको सर्वथा सब प्रकारसे निकालकर निरन्तर भगवान्‌को बिना किसी शर्तके हृदयमें बसा लो और उनकी सेवाको ही सर्वस्व मानकर सदा-सर्वदा अनवरत उस विशुद्ध सेवामें ही संलग्न रहो--आनन्दपूर्वक निश्चिन्त होकर उसका सम्पादन करो । उस सेवाका फल भी सेवा ही हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रफुल्ल चित्तसे कर्त्तव्यका सम्पादन करना चाहिये

वैराग्यकी भावनाओंको दबानेकी आवश्यकता नहीं है, किंतु वैराग्यका अर्थ समझ लेना चाहिये। 'वैराग्य' कहते हैं--विषयोंमें अनासक्तिको, न कि कर्त्तव्य-त्यागको। कर्त्तव्यको प्रबल नहीं मानना चाहिये, भगवत्-सेवा मानकर भगवान्‌की पूजाकी भावनासे प्रसन्नतापूर्वक प्रफुल्ल चित्तसे कर्त्तव्यका सम्पादन करना चाहिये। माता-पिता तथा परिवारकी सेवाको ही भगवत्पूजा मानकर कर्त्तव्यका निर्वाह करना चाहिये। रामायणमें भरतजीके सम्बन्धमें आपने यह चौपाई पढ़ी होगी--

'तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥'

(मानस २। ३२३। ३½)

अर्थात् भरतजी राज्यके सारे काम भगवान्‌के लिये करते थे; किसी भी काममें उनकी आसक्ति नहीं थी। गीताके अठारहवें अध्यायका ४६वाँ श्लोक भी हमलोगोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिये—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

भगवान् सब जगह हैं और सब कुछ भगवन्मय है। अतः हम कहीं भी रहकर अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा कर सकते हैं और उसके द्वारा सिद्धि भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेमी भक्तका लक्षण

हम भगवान्‌के हैं, भगवान्‌की हमपर बड़ी प्रीति है; हमारे अयोग्य होनेपर भी भगवान्‌का हमपर अपार एवं अतुल स्नेह है--यह विश्वास और यह अभिमान तो होना ही चाहिये। यह भी एक गुण है। यही तो प्रेमी भक्तका लक्षण है। वह गुण भगवान्‌में देखता है और दोष सब अपनेमें--

'गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥'

भगवान् दैन्यपर बहुत रीझते हैं

तुम स्वच्छ और पवित्र ही हो। तुम्हें अपनेमें जो दोष दिखायी देते हैं, यह तो तुम्हारा गुण है। भगवान् इस गुणपर—दैन्यपर बहुत रीझते हैं।

यही मेरी सबसे बड़ी सेवा है

दूसरेका थोड़ा-सा दुःख भी न सहा जाय और उसे मिटानेकी स्वाभाविक चेष्टा हो, यह तो बहुत ही उत्तम है। पर उसमें ममता-अहंकार नहीं होने चाहिये; मनपर सुख-दुःखका असर नहीं होना चाहिये। मनके सदा परमानन्दमें नित्य निमग्न रहते हुए ही लीलाकी भाँति स्वाँगके अनुसार प्रभुके प्रीत्यर्थ ही सारे काम यथायोग्य होते रहें, यही नित्य भगवत्पूजन है तथा सदा वाञ्छनीय है। जो कुछ भी किया जाय, सो भगवत्पूजा है और वह भी उन भगवान्‌के इच्छानुसार उनके द्वारा ही करायी जाती है—ऐसा भाव रखना चाहिये। तुम, बस, इसी स्थितिमें सदा रहो, इससे भी ऊँचे उठ जाओ—यही मेरी सबसे बड़ी सेवा तथा मुझे सुख--परम सुख पहुँचानेकी चीज है। तुम मुझे सदा यही देते रहो—बस, यही देते रहो।

(अप्रकाशित पत्रोंसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभागवतामृत—२

[प्रभुपाद श्रीराधाविनोद गोस्वामीद्वारा उद्भावित श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धके प्रथम अध्यायकी 'भागवतामृतवर्षिणी' बंगला टीकाका भावानुवाद]

(अनुवादक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी)

गताङ्कमें भागवत दशम स्कन्धके प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्लोकोंकी व्याख्या दी जा चुकी है । उन श्लोकोंमें श्रीकृष्ण-प्रेमरूप सम्पत्तिसे युक्त महाराज परीक्षित्ने यदुवंशमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र सुनानेके लिये श्रीशुकदेवजीसे प्रार्थना की है; अब चौथे श्लोकमें वे यह निवेदन कर रहे हैं कि आप यह न सोचें कि जैसे भूखे मनुष्यको भोजन प्राप्त हो जानेपर उसकी भोजनविषयक रुचि समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार कुछ कथा सुन लेनेपर इसकी (परीक्षित्की) कथा-श्रवण-विषयक उत्सुकता समाप्त हो जायगी; क्योंकि भगवान्की कथामें इतना रस है कि उससे कोई कभी ऊब नहीं सकता । पशुघातीके सिवा दूसरा कोई भी पुरुष भगवद्गुणानुवाद सुननेसे कभी विरक्त नहीं हो सकता—

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥

(१० । १ । ४)

अन्वय—निवृत्ततर्षैः (विगतविषयभोगवासनैः नारदाद्यैरपि), उपगीयमानात् (सर्वसाधनोपरितनत्वेन, 'हरेर्नामैव केवलम् ।' इत्यादिना पुराणादिषु प्रचारितात् स्वयमपि निरन्तरं कीर्तितात्), भवौषधात् (संसाररोगनिवर्तकत्वेन मुमुक्षूणामेकमात्रशरणात्), श्रोत्रमनोभिरामात् (शब्दमात्रेण श्रोत्राणि अर्थज्ञानेन मनांसि चाभितो रमयतीति मुक्तानां मुमुक्षूणां वा किमु वक्तव्यं विषयिणामपि श्रवणमनोहरात्), उत्तमश्लोकगुणानुवादात् (उद्गतानि निवृत्तानि तमांसि येषां ते उत्तमसः ब्रह्मादयः तैरपि श्लोक्यते गीयते स्तूयते चेति उत्तमःश्लोकः श्रीभगवान्, तस्य गुणानां कारुण्य-भक्तवात्सल्यादीनाम् अनु निरन्तरं वादः कथनं तस्मात् तत्कीर्तनात् तच्छ्रवणाच्च श्रीगोविन्दगुणकीर्तन-श्रवण-मनन-सेवनानुमोदनादिभ्यः इत्यर्थः), (उत्तमश्लोक इति निर्विसर्गपाठे तु उत्तमः सर्वश्रेष्ठः श्लोकः भक्तवात्सल्यादियशो यस्य स इति व्याख्या), पशुघ्नात् विना (पशुहननस्वभावात् व्याधात् विना, यद्वा पशुहननादिसाध्ययोगानुष्ठानलिप्तकर्मिभ्यो विना, यद्वा अपशुघ्नादिति पाठः तस्य च अपगता शुक् शोको यस्मात् स अपशुक् आत्मा तं हन्तीति आत्मघातिनो विना), कः पुमान् (को जनः), विरज्येत (विरतो भवेत्) ।

मूलानुवाद—सांसारिक वासनासे विहीन नारदादि मुक्तगण जिसे सर्वसाधनोंका सार कहकर उपदेश देते हैं तथा स्वयं निरन्तर जिसका अनुष्ठान करते हैं; मुमुक्षुगण संसाररूपी रोगके निवारणका एकमात्र उपाय कहकर जिसका आश्रय लेते हैं, जिसके शब्द-श्रवणसे विषयासक्त पुरुषका भी कर्ण-कुहर शीतल हो जाता है तथा जिसका अर्थ-ज्ञान होनेपर मनमें आनन्दका संचार होता है, तमोगुणसे रहित, ब्रह्मादि देवगणके द्वारा परिसेवित श्रीगोविन्दकी उस नाम-रूप-गुण तथा लीला-कथाके श्रवण-कीर्तनसे आत्मघाती, आत्म-क्लेशी अथवा पशुघाती व्याधकी प्रकृतिवाले जीवके सिवा दूसरा कौन है, जो विरत हो सकता है ?

श्रीभागवतामृतवर्षिणी—श्रीकृष्ण-लीला-श्रवण करनेकी उत्कट लालसासे महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे प्रकट-लीला-विषयक प्रश्न किया । किंतु श्रीभगवान्की लीला अनन्त है; श्रीशुकदेवजी कितना बोलेंगे और महाराज परीक्षित् कितना सुनेंगे ? विशेषतः यदि श्रीशुकदेवजी विस्तृत-रूपसे लीला-वर्णन करना प्रारम्भ करें तो कुछ देरके बाद महाराज परीक्षित्को विरति उत्पन्न होना असम्भव नहीं है । भूखसे व्याकुल मनुष्य उत्कट भोजनकी लालसासे बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक खानेके लिये माँगता है, परंतु पेट भर जानेपर भोजनके बचे हुए पदार्थकी और अधिक खानेकी उसकी इच्छा नहीं होती; उसकी भोजनसे विरक्ति हो जाती है। महाराज परीक्षित्ने उत्कट लालसासे विस्तारपूर्वक श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन करनेकी प्रार्थना की; परंतु कुछ श्रवण करनेके बाद उनकी लालसा निवृत्त हो जानेपर अन्तमें लीला-कथा-श्रवण करनेमें उनको विरक्ति पैदा न होगी, यह कौन कह सकता है ?—यह बात मनमें रखकर वहीं श्रीशुकदेवजी श्रीकृष्णलीलाकी कथा कहनेमें आनाकानी न करें, इसी हेतु महाराज परीक्षित्ने 'निवृत्ततर्षैः' आदि श्लोकमें युक्ति-तर्कद्वारा समर्थन किया है कि श्रीकृष्णलीला-कथामें किसीको विरक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती।

मुक्त, मुमुक्षु तथा विषयी—साधारणतः जीवोंके ये तीन विभाग किये जा सकते हैं। श्रीकृष्णलीलाकथा-श्रवण करनेमें इन तीन प्रकारके जीवोंमें किसीको भी विरक्ति नहीं पैदा हो सकती, अथवा कोई श्रीकृष्णलीलाकथाके श्रवणसे विरत नहीं हो सकता। मूल श्लोकमें हेतुनिर्देशपूर्वक यही तत्त्व समालोचित हुआ है।

'निवृत्ता विगता तर्षा विषयभोगवासना येषाम्'—जिनकी विषयभोगवासना निवृत्त हो गयी है', इस व्युत्पत्तिके अनुसार श्लोकस्थ 'निर्वृत्ततर्ष' शब्दका अर्थ होता है—विषय-भोगवासनारहित, अर्थात् मुक्त। जीव अनादिकालसे विषय-वासनाके वशवर्ती होकर नाना प्रकारके दुःख और दैन्यके घात-प्रतिघातको सहता हुआ नाना प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करता रहता है। किसी अनिर्वचनीय भाग्यके बलसे यदि कोई श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका आश्रय ले सके तो साधनानुष्ठान करते-करते धीरे-धीरे उसकी यह वासना निवृत्त हो जाती है। वासना-मुक्त जीवके फिर जन्म-मरण आदि सांसारिक क्लेश नहीं रह जाते; वे परमानन्दपूर्वक श्रीगोविन्द-कथा-प्रसङ्गमें समय व्यतीत करते हैं। जो भक्तिके अतिरिक्त ज्ञान अथवा योगसाधन करके भव-बन्धनसे मुक्त होते हैं, वे परब्रह्मसे सायुज्य प्राप्त करते हैं। जो ज्ञान अथवा योगके अतिरिक्त भक्ति या शुद्धा भक्तिकी साधना करते हैं, वे संसारसे मुक्त होकर पार्षद-देह प्राप्त करते हैं। जिनकी साधना करते-करते सांसारिक वासना मिट जाती है, किंतु साधक-देह रहता है, इस प्रकारके मुक्त पुरुषको 'जीवन्मुक्त' कहते हैं। जिनके साधक-देहके अवसान होनेपर पार्षद-देहकी प्राप्ति होती है, वे 'मुक्त' हैं। श्लोकस्थ 'निवृत्ततर्ष' शब्दसे मुक्त और जीवन्मुक्त, दोनों प्रकारके अर्थ लिये जा सकते हैं। श्रीसनातनगोस्वामिपादने वैष्णवतोषणी टीकामें आलोचना की है कि 'ज्ञानिवर भक्त' और 'स्वभाव-भक्त' भेदसे मुक्त दो प्रकारके होते हैं और उसके जीवन्मुक्त तथा सालोक्यादिप्राप्त ये दो भेद होते हैं। अतएव श्लोकस्थ 'निवृत्ततर्ष' शब्दसे इन चारों प्रकारके मुक्त पुरुषोंका बोध होता है। शुद्ध भक्ति तथा योग-ज्ञानादि-मिश्रित भक्तिरूप द्विविध साधन-भेदको लेकर मुक्ति-भेद करते हुए श्रीवैष्णव-तोषणी टीकामें यह भेद किया गया है। अतएव पूर्वोक्त वाक्यके साथ विरोध नहीं है।

श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध (३।२९।१३)में श्रीकपिलदेवके वचनोंमें देखा जाता है कि—

> सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
> दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

'मेरे भक्तगण सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व (कैवल्य)—ये पाँच प्रकारकी मुक्ति दिये जानेपर भी मेरी सेवासे सम्बन्धरहित होनेके कारण इनको ग्रहण नहीं करते।'

श्रीकपिलदेवके वचनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और कैवल्य-भेदसे मुक्ति पाँच प्रकारकी होती है। इनमेंसे जो कैवल्य मुक्ति प्राप्त करते हैं, वे परब्रह्मकी चित्सत्तामें लीन हो जाते हैं। जिनमें भजन-वासना रहती है, वे कैवल्यको ग्रहण नहीं करते और पार्षद-देह प्राप्त कर यथायोग्य प्रभु-सेवामें रत रहते हैं, जो लोग भवबन्धनसे मुक्त होनेकी लालसासे भक्तिकी सहायतासे ज्ञान अथवा योगका साधन करते हैं, भक्तिदेवी उनको संसार-सागरसे पार उतारकर अन्तर्हित हो जाती है; अतएव भजन-वासना न रहनेके कारण वे चित्सत्तामें लीन हो जाते हैं। जो ज्ञान और योगमिश्रित भक्ति-साधना करते हैं, उनकी भक्तिके फलस्वरूप भजन-वासना अथवा ज्ञान या योगके फलके रूपमें चिदैश्वर्यकी प्राप्ति होती है और वे सालोक्य, सार्ष्टि आदि मुक्ति प्राप्त करके पार्षद-देहसे श्रीभगवान्की ऐश्वर्यमयी सेवा प्राप्त करते हैं। जो लोग पहलेसे ही शुद्ध भक्तिकी साधना करते हैं, उनमें भजन-वासनाके सिवा और कुछ नहीं रहता और वे अपनी वासनाके अनुकूल भजनयोग्य शरीर पाकर श्रीगोविन्दकी चरण-सेवामें रत होकर कृतार्थ हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान अथवा योगमिश्रित भक्ति-साधनामें अथवा शुद्ध भक्ति-साधनामें जो संसारसे मुक्त होते हैं, वे संसारसे मुक्त हो जानेपर भी श्रीगोविन्द-गुणगान नहीं छोड़ सकते । जो लोग भक्तिमिश्रित योग अथवा ज्ञानकी साधनाके द्वारा संसारसे मुक्त हो जाते हैं, उनकी संसारसे मुक्ति हो जानेके बाद श्रीगोविन्द-भजनके योग्य शरीर न रहनेके कारण वे चित्-सिन्धुमें मग्न होकर अपनी पृथक्ताको छोड़कर एकाकार रूपमें अवस्थान करते हैं । भव-बन्धनसे मुक्त जन सर्वदा श्रीगोविन्दके गुणानुवादका श्रवण और कीर्तनादि करके घोषणा करते हैं कि 'ऐसा आनन्द और किसी वस्तुमें नहीं है; यही परम फल है और यही सब साधनोंका सार है । यही सर्वोपरि वस्तु है ।' मुक्तश्रेष्ठ नारदादि मुनि तथा मुक्त जीवोंके द्वारा परिसेवित ब्रह्मा, शिव, अनन्त भगवान् आदि रात-दिन श्रीगोविन्दके गुणानुवादमें ही मत्त रहते हैं । अतएव देखनेमें आता है कि भव-सिन्धु तर जानेपर भी श्रीगोविन्द-गुण-कथारूपी समुद्रको पार नहीं किया जा सकता ।

रोगग्रस्त मनुष्य जब रोगकी यन्त्रणासे अचेत हो जाता है, तब उसे रोगके प्रतीकारकी वासना नहीं रहती । विकारावस्थामें वह अनेकों बातें करता है, अनेकों कार्य करता है, परंतु उसका कुछ फल नहीं होता । भव-रोगग्रस्त मनुष्योंकी भी यही अवस्था होती है । वे भी रोगके प्रभावसे चेतनाशून्य होकर विकारग्रस्त दशामें अनेकों कार्य करते हैं, परंतु इससे रोगका कुछ भी शमन नहीं होता । किसी प्रकार चेतनता आ जानेपर रोगी जब अपनी अवस्थाको समझ पाता है, तब वह रोगके प्रतीकारके लिये सचेष्ट होता है । भव-रोगग्रस्त व्यक्ति भी जब महापुरुषकी कृपासे कुछ सचेत होकर अपनी अवस्थाको समझता है, तब वह उसके प्रतीकारके लिये नाना प्रकारके उपायोंका सहारा लेता है । उक्त भव-रोगग्रस्त मनुष्य जब अपनी अवस्थाको जानकर रोगसे मुक्ति पानेके लिये कमर कसकर तैयार हो जाता है तो उसको शास्त्रकार 'मुमुक्षु' कहते हैं । मुमुक्षु लोग भवरोगके प्रतीकारके लिये हरिकथा-मृतरूप महौषधिका सेवन करते हैं । इस रोगकी दूसरी कोई ओषधि नहीं है । अतएव श्रीगोविन्दगुणानुवाद मुक्त और मुमुक्षु—दोनों प्रकारके जीवोंके लिये परम उपादेय है ।

चक्षु-कर्ण आदि इन्द्रियोंके द्वारा रूप-रस आदि विषयोंका ग्रहण करना ही जिनके जीवनका प्रधान लक्ष्य है, वे 'विषयी' हैं । श्रीकृष्णलीला-कथा सुननेमें कानोंके लिये रसायन है तथा अर्थज्ञानसे मनको तृप्ति प्रदान करती है; अतएव विषयी लोग भी इसका परम आदरपूर्वक सेवन करते हैं । विवेचना करके देखनेपर सब लोग समझ सकते हैं कि श्रीकृष्णका रूप, उनके उच्छिष्टका रस, उनकी कथाके शब्द, उनके भक्तोंके अङ्गका स्पर्श तथा उनके चरण-निर्माल्यकी गन्धके समान परमोत्कृष्ट विषय और क्या हो सकते हैं ? जो लोग इस विषयका परित्याग कर प्राकृत विषयमें रत होते हैं, वे 'कुविषयी' (अर्थात् कुत्सित विषयोंका सेवन करनेवाले) हैं ।

यहाँतक आलोचना करनेपर यह ज्ञात हो गया कि मुक्त, मुमुक्षु अथवा विषयी, कोई भी श्रीगोविन्द-गुणानुवादके श्रवण-कीर्तनसे विरत नहीं हो सकता । श्रीगोविन्दके गुणानुवादमें ऐसी अचिन्त्य शक्ति है कि उससे सबको आकृष्ट होना पड़ता है । महाराज परीक्षित्का अभिप्राय यह है कि मैं मुक्त अथवा मुमुक्षु न होकर केवल विषयी हूँ । अतएव श्रवण तथा मननके लिये रसायनस्वरूप श्रीगोविन्दके गुणानुवादमें आकृष्ट होऊँगा, इसमें संदेह नहीं है । अतएव हे गुरो ! मैं विरत या विरक्त हो जाऊँगा, ऐसा समझकर आप श्रीगोविन्दके गुणोंके वर्णनमें संकोच न करेंगे । श्रीगोविन्द-गुणानुवादमें विरत या विरक्त होना किसीके लिये सम्भव नहीं है ।

मुक्त, मुमुक्षु और विषयी—ये त्रिविध जीव श्रीगोविन्दके गुणानुवादका श्रवण-कीर्तन करते हैं; किंतु विवेचना करके देखनेपर ज्ञात होता है कि इन त्रिविध जीवोंमें भी आस्वादनमें कुछ तारतम्य है ।

लेशमात्र विषय-वासनासे शून्य मुक्त पुरुषके निर्मल चित्तमें श्रीकृष्ण-ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा कोटि-कोटि गुना अधिक रूपमें श्रीगोविन्द-लीलानन्दके अजस्र कोटि-कोटि स्रोत निस्सृत होकर, उनके अन्तस्तलको निमग्न करके गानरूपसे मुखके द्वारा निर्गत होकर विश्वको प्लावित करते हैं । उनको श्रीगोविन्द-गुण-गानके लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ती । उनके मुखसे स्वयं श्रीगोविन्द-गुण-गान होता रहता है । श्लोकस्थ 'उपगीयमान' शब्दकी आलोचना करनेसे इस अर्थकी ही प्रतीति होती है । 'गीयमान' शब्द कर्मवाच्यमें प्रयुक्त होता है । कर्मवाच्यमें कर्म प्रधान होता है और कर्ता गौण । मुक्त पुरुषोंके श्रीगोविन्द-गुण-गानरूपी कर्म स्वप्रधान होते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे कर्त्ता होकर भी गौण होते हैं; क्योंकि उनको गानके लिये चेष्टा या यत्न नहीं करना पड़ता। 'गीयमान' शब्द वर्तमानकालमें प्रयुक्त होनेसे जान पड़ता है कि उनका गान सदा ही वर्तमान रहता है; कभी वे गान करते थे या करेंगे—इस प्रकारसे अतीत या भविष्यत् नहीं होता। 'उप' शब्द-का अर्थ 'अधिक' है। 'गीयमान' शब्दके साथ इस उपसर्गके योगसे अर्थमें और भी चमत्कार आ जाता है। मुक्तगण अधिक रूपमें, अर्थात् सब साधनों या साध्योंके श्रेष्ठरूपमें इस गानका अवलम्बन करते हैं।

मुमुक्षु पुरुषका चित्त विषय-वासनासे शून्य न होनेपर भी वे समझते रहते हैं कि विषय-वासना चित्तका मल है; इसको शीघ्र ही दूर करना होगा। रोगी जैसे रोग दूर करनेके लिये औषध-सेवन करता है, मुमुक्षुलोग भी उसी प्रकार भवरोग दूर करनेके लिये श्रीगोविन्दकथारूप महौषधका सेवन करते हैं। रोगी जिस प्रकार यत्न और चेष्टा करके औषधको उदरस्थ करते हैं, मुमुक्षुगण भी उसी प्रकार यत्न और चेष्टा करके श्रीगोविन्दकथारूप महौषधको कर्णद्वारा चित्तस्थ करते हैं। वे लोग श्रीगोविन्दकी कथाको भवरोगकी महौषधके रूपमें ग्रहण करते हैं, तथापि वस्तु-स्वभावके कारण उनका श्रवण मनके लिये रसायन बन जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। रोगीको यदि मीठी ओषधि प्राप्त हो जाय तो क्या वह दूसरी कटु ओषधिका सेवन करना पसंद करेगा? इसी कारण मुमुक्षु लोग कदापि श्रीगोविन्द-कथा-श्रवणसे विरत नहीं होते। विषयी लोगोंका चित्त नाना प्रकारकी विषय-वासनासे मलिन होता है, अतएव वे श्रीगोविन्द-कथाके माधुर्यका आस्वादन नहीं कर पाते। वे लोग भव-रोगमें सदा बेहोश रहते हैं, अतएव ओषधिके रूपमें भी श्रीगोविन्द-कथाको ग्रहण नहीं कर पाते; वे श्रवणसुखद होनेके कारण विषय-भोगके समान ही श्रीगोविन्दकथाका आस्वादन करते हैं।

मूल श्लोकमें **'निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्'**, **'भवौषधात्'** तथा **'श्रोत्रमनोऽभिरामात्'**—इन तीन विशेषणोंके द्वारा श्रीगोविन्द-कथाके मुक्त, मुमुक्षु और विषयी—इन त्रिविध अधिकारी पुरुषोंका संकेत किया गया है। किंतु वैष्णव-तोषणी टीकामें देखा जा सकता है कि **'एवं चतुर्थोऽप्यधिकारी कल्प्यः'**। अभिप्राय यह है कि जिन्होंने भक्तिमिश्रित योग-ज्ञान, अथवा शुद्ध भक्तिकी साधना करके भव-बन्धनको छिन्न-भिन्न कर दिया है, वे 'मुक्त' हैं, जो लोग भव-बन्धनको दूर करनेके लिये कृतसंकल्प होकर साधनमें रत हैं, वे 'मुमुक्षु' हैं तथा जो लोग विषय-भोगके लिये पुरुषार्थ करते हैं, वे 'विषयी' हैं। इन तीन प्रकारके जीवोंके सिवा भी एक प्रकारके अधिकारी और हैं, जिनका भव-बन्धन दूर नहीं होता, अथवा इसके लिये वे चेष्टा नहीं करते तथा विषय-भोगको भी वे पुरुषार्थरूपमें नहीं लेते। वे सर्वदा प्रार्थना करते हैं—'हे भगवान्! कब हमारा यह शुभ दिन आयेगा, जब हम सब प्रकारकी वासनाको तिलाञ्जलि देकर तुम्हारा आश्रय लेकर जीवन-यापन करेंगे।' वे लोग श्रीगोविन्द-कथाके श्रवण-कीर्तन आदिके अवसरको कदापि हाथसे नहीं जाने देते। श्रीगोविन्द-कथा ही उनके जीवनका सार-सर्वस्व होती है। विवेचना करके देखनेपर समझा जा सकता है कि वे मुक्त, मुमुक्षु या विषयी नहीं हैं। वैष्णवतोषणीकारके मतसे ये ही चतुर्थ अधिकारी हैं; वे 'भक्तीच्छु' (भक्तिके अभिलाषी) हैं। उनका अधिकार नारदादि मुक्त पुरुषोंसे निम्न होनेपर भी मुमुक्षु या विषयीकी अपेक्षा निम्न नहीं है। वैष्णव-तोषणीकारने "श्रीभगवत्कथा-श्रवण करनेके चतुर्थ अधिकारी 'भक्तीच्छु' (भक्तिके अभिलाषी) होते हैं"—यह बात युक्ति-पूर्वक इशारेसे समझाकर इस सम्बन्धमें एक और बात कही है—**'एवं साध्यत्वं साधनत्वं च, अतः सर्वसेव्यत्वमुक्तम्'**। श्रीभगवत्कथाके मुक्त, मुमुक्षु, विषयी और भक्तीच्छु (भक्तिके अभिलाषी)—ये चार प्रकारके अधिकारी होते हैं। अतः विवेचना करके देखनेपर ज्ञात होता है कि श्रीभगवत्कथा साध्य भी है और साधन भी तथा यह साधकसे लेकर सिद्ध-पर्यन्त सबके द्वारा सेव्य है।

कर्म, ज्ञान और योग-साधनसे भक्ति, मुक्ति और सिद्धि प्राप्त होती है। अतएव कर्म, ज्ञान और योग साधन हैं तथा भक्ति, मुक्ति और सिद्धि साध्य हैं। श्रीभगवत्कथाके श्रवण-कीर्तन आदि करनेका अभ्यास करनेपर क्रमशः श्रवण-कीर्तन आदिका आग्रह बढ़ जाता है; अन्तमें प्रेमोन्मत्त होकर रात-दिन श्रवण-कीर्तन करते रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। अतएव श्रीभगवत्कथा साधकावस्थामें साधन तथा सिद्धावस्थामें साध्य है।

मुक्त जीवोंको साधनकी अपेक्षा नहीं होती, तथापि वे सर्वदा श्रीभगवत्कथाके प्रसङ्गमें काल-यापन करते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह उनकी पूर्व साधनाकी सिद्धि है। मुमुक्षु तथा भक्तिके इच्छुक साधकगण मुक्ति और भक्तिकी प्राप्तिके साधनके रूपमें श्रीभगवत्कथाका ही आश्रय लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग विषय-भोगके लिये पुरुषार्थ करते हैं, उनके विषयासक्तिसे पूर्ण अन्तःकरणमें योग-ज्ञान आदि कोई साधन नहीं टिक पाते। परंतु श्रीभगवत्कथाका क्या ही अचिन्त्य प्रभाव है कि यह विषयासक्त मनुष्यके भी कानोंमें अमृतकी धारा डालकर उसके कामहत अन्तःकरणको प्लावित करती है तथा सारी विषय-कालिमाको दूर करके उसे श्रीगोविन्दस्मृतिका लीलाक्षेत्र बना डालती है। कामना और वासनाके क्रीतदास विषयी पुरुषसे लेकर मुक्त पुरुषतक सभी लोग श्रीभगवत्कथा-श्रवणका अधिकार पा सकते हैं, अतएव यह सर्वसेव्य है। महाराज परीक्षित्ने भी श्रीशुकदेवजीके सामने श्रीभगवत्कथाकी सर्वजनीनता दिखलाकर यह संकेत किया है कि 'हे गुरो ! मैं मुक्त, भक्तीच्छु (भक्तिका अभिलाषी) या मुमुक्षु नहीं हूँ; अतएव आनन्दका स्रोत, अथवा भव-रोगकी ओषधिस्वरूप श्रीभगवत्कथाको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है; परंतु आपकी कृपा होनेपर, विषयी स्वभावसे श्रवणद्वारा मनको हरनेवाली श्रीभगवत्कथाका आस्वादन करके कृतार्थ हो सकता हूँ।'

महाराज परीक्षित्ने **'निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्'** आदि तीन विशेषणोंसे श्रीभगवत्कथाको सर्वसेव्य प्रतिपादित करके अन्तमें कहा कि **'क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।'** श्रीभगवान्‌के 'श्लोक' अर्थात् भक्तवात्सल्यादिजनित यश उत्तम हैं, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं। दीनोंके प्रति इतनी कृपा, दीनके उद्धारकी ऐसी चेष्टा, अयाचित भावमें सब जीवोंका इस प्रकार हित-साधन—श्रीगोविन्दके सिवा और कोई नहीं करता। इसी कारण उनको 'उत्तमश्लोक' कहते हैं। अथवा जो 'तमस्' अर्थात् अज्ञानान्धकारके बाहर अवस्थित हैं, वे 'उत्तमस्' हैं। ब्रह्मा, शिव, अनन्त प्रभु आदिको शास्त्रकार 'उत्तमस्' कहते हैं। 'उत्तमस्' लोग भी श्रीगोविन्दका गुण-कीर्तन करते हैं, अतएव उनका नाम **'उत्तमश्लोक'** है। हस्तलिखित ग्रन्थमें **'उत्तमःश्लोक'** तथा **'उत्तमश्लोक'**—ये दोनों पाठ मिलते हैं। टीकाकारोंमें कोई एकको लेकर तथा कोई दूसरे पाठको लेकर श्लोककी व्याख्या करते हैं। इसमें वस्तुगत या तत्त्वगत कोई विरोध नहीं होता। श्रीभगवान् सत्त्व, रज और तम—इन तीनों प्राकृत गुणोंसे परे होनेके कारण 'निर्गुण' हैं, परंतु यह नहीं कह सकते कि उनमें भक्तवात्सल्य आदि गुण नहीं हैं। इसी सिद्धान्तका अवलम्बन करके महाराज परीक्षित् कहते हैं कि 'हे प्रभो ! ब्रह्मा-शिव आदिके द्वारा गीयमान ऐसी मधुर श्रीगोविन्दगुणावलीका श्रवण-कीर्तन करनेसे आत्मघाती या पशुघाती जीवके सिवा दूसरा कौन है, जो विरत होगा ?' 'कौन विरत होगा'—इस बातको महाराज परीक्षित् **'कः पुमान् विरज्येत'**—इस भाषामें बोलते हैं। उनके मनका भाव यह है कि 'जो मनुष्य रमणीके समान पराधीन है, अथवा नपुंसकके समान विकलेन्द्रिय है, वह अपनी असमर्थताके कारण जान-बूझकर श्रीगोविन्द-कथासे विरत हो सकता है; परंतु जिनकी रसना, कर्ण आदि इन्द्रियाँ हैं, अथवा जो रमणीके समान किसीकी अधीनतामें आबद्ध नहीं हैं, वे क्यों इसप्रकारकी मधुर कथासे विरत होंगे ?' महाराज परीक्षित्‌की इस बातसे यह समझमें आता है कि उन्होंने श्रीगोविन्दकथाविमुख जनको संसाररूपी पतिके अधीन रहनेवाली रमणी तथा 'मूक-बधिर' आदि विकलेन्द्रिय कहकर गाली दी है। वैष्णवतोषणी टीकामें 'पुमान्' शब्दकी एक और व्याख्या की गयी है—**'पुमान् जीवः तेन अधिकार्यपेक्षा निरस्ता'** श्लोकस्थ 'पुमान्' पद जीववाचक है, इससे यह अर्थ हुआ कि ऐसी मधुर श्रीगोविन्दकथाके श्रवण-कीर्तनमें कौन जीव विरत हो सकता है ? अर्थात् इससे किसी जीवका विरत होना ठीक नहीं है। योग, ज्ञान, कर्म आदि अनेक साधन हैं; इनमें किसीके भी सब जीव अधिकारी नहीं हो सकते; केवल मानव इसके अधिकारी हैं। मानवोंमें भी सबको अधिकार प्राप्त नहीं होता। अर्थात् शान्त-गुण-सम्पन्न व्यक्ति ही अधिकारी होता है। परंतु श्रीकृष्ण-भजनके सभी अधिकारी हैं—'चाहे वह ब्राह्मण हो या शूद्र, पुरुष हो या नारी।'

श्रीगोविन्द-कथा-श्रवण करनेमें सारे जीव अधिकारी हैं तथा मुक्त, भक्तिके इच्छुक, मुमुक्षु और विषयी आदि सभी परम आदरपूर्वक इसका सेवन करते हैं। परंतु **'विना पशुघ्नात्'**—अर्थात् पशुघातीके विना कोई भी इससे विरत नहीं हो सकता। श्रीधरस्वामिपाद कहते हैं कि 'पशुघ्न अथवा अपशुघ्नके सिवा कोई भी इससे विरत नहीं हो सकता।' उनके मतसे 'पशुघ्न'का अर्थ है—पशुघाती अर्थात् व्याध, और 'अपशुघ्न' शब्दका अर्थ है—आत्मघाती। जिसमें कुछ भी 'शुक्' 'अर्थात् शोक-दुःख आदि **नहीं है,** उसका नाम है—'अपशुक्' अर्थात् आत्मा। आत्माका पुनः-पुनः संसारमें पतन ही उसका विनाश है। श्रीगोविन्दका सम्बन्ध छोड़कर विषयासक्त होकर जो पुरुष **पुनः-पुनः** आत्माको संसार-बन्धनमें डालता है, वह **आत्मघाती है।'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपाद कहते हैं कि 'पशुघ्न' शब्दका अर्थ है—सकाम कर्मनिष्ठ। सकाम कर्मनिष्ठ मनुष्य स्वर्गकी कामनासे यज्ञानुष्ठान करते हैं और उसमें पशुवध किया करते हैं, अतएव उनको भी 'पशुघ्न' कह सकते हैं। वे कर्मफलमें आसक्त होनेके कारण श्रीकृष्णकथाके श्रवणसे विरत होते हैं। व्याध, आत्मघाती अथवा स्वर्गकामी कर्मनिष्ठ लोग श्रीगोविन्दकी कथासे विरत हो सकते हैं। वे मायाके पाशमें बँधे होते हैं, अतएव 'मुक्त' नहीं हैं। मुक्ति या भक्तिके लिये भी वे सचेष्ट नहीं होते; अतएव 'मुमुक्षु' या 'भक्तीच्छु' भी नहीं हैं। वे विषयी हैं या नहीं—इसमें भी संदेह है। विषयभोग जिनका पुरुषार्थ होता है तथा जो सर्वदा विषयभोगमें रत रहते हैं, उनको ही 'विषयी' कहते हैं। आत्मघाती मनुष्य आपाततः मधुर, कुविषयोंमें आसक्तिसे अपनेको (आत्माको) अधःपतनमें डालते हैं; अतएव उनको प्रकृत विषयी नहीं कह सकते। सकाम कर्मनिष्ठ लोग पारलौकिक भोगकी वासनासे यज्ञादि अनुष्ठानोंको करते हुए नाना प्रकारके क्लेशोंको उठानेमें नहीं हिचकते। वे लोग ऐहिक विषयभोगसे वञ्चित रहते हैं, इस कारण उनको प्रकृत विषयी नहीं कह सकते। व्याध अथवा व्याध-प्रकृतिके मनुष्य सब प्रकारके विषयभोगोंको तिलाञ्जलि देकर केवल जीवहिंसासे ऐहिक जीवनको व्यतीत करके परलोकमें अनन्त नरक-यन्त्रणाको भोगते हैं; अतएव उनको भी विषयी नहीं कह सकते। वैष्णवतोषणीकारने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत करके इस विषयको सुस्पष्टरूपसे समझाया है—

> राजपुत्र चिरं जीव मा जीव ऋषिपुत्रक।
> जीव वा मर वा साधो व्याध मा जीव मा मर॥

'राजपुत्र जबतक जीवित रहेगा, तबतक नाना प्रकारके सुख-ऐश्वर्य-भोगका अधिकारी बना रहेगा। मरनेके बाद उसको फिर तनिक भी सुखभोगकी आशा नहीं है; क्योंकि जीवनमें उसने कोई ऐसा सदनुष्ठान नहीं किया, जिससे परलोकमें फिर सुखभोगका अधिकारी बने। अतएव उसको इहलोकमें ही सुख है। ऋषिपुत्र नाना प्रकारकी तपस्यामें रत रहकर इहलोकके सुखभोगको तिलाञ्जलि दे देता है, परंतु परलोकमें उसके लिये अक्षय स्वर्गसुख तैयार है; अतएव उसको मरनेमें लाभ है; जीवनमें तपस्याके क्लेशको छोड़कर विषयभोग प्राप्त करनेकी सम्भावना नहीं है। साधु अर्थात् श्रीमद्भगवद्भजनमें रत मनुष्य इहलोकमें श्रवण-कीर्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका अनुष्ठान करते हुए परम आनन्द-पूर्वक जीवन-यापन करते हैं और परलोकमें पार्षद शरीर प्राप्त करके श्रीगोविन्दके चरणारविन्दकी सेवाके सुखमें समय व्यतीत करेंगे; अतएव उनके लिये जीवन और मरण, दोनों ही सुखमय हैं। व्याध अथवा व्याधकी प्रकृति-वाले प्राणी इहलोकमें सर्वदा परहिंसामें दुःखमय जीवन-यापन करते हैं और परलोकमें भी उनके लिये अनन्त नरक-यन्त्रणा है; अतएव उनके लिये जीवन या मरण किसीमें भी सुख नहीं है। किंवदन्ती है कि महाराज विक्रमादित्यसे वेतालने यह रहस्यपूर्ण प्रश्न किया था कि 'यहाँ है, वहाँ नहीं है, वहाँ है, यहाँ नहीं—यहाँ है, वहाँ भी है—यहाँ नहीं है, वहाँ भी नहीं है।' महाराज विक्रमादित्यने 'राजपुत्र चिरं जीव'—आदि श्लोकके भावार्थके द्वारा उस रहस्यपूर्ण प्रश्नका उत्तर दिया था। पूर्वजन्मके पुण्यके बलसे जो इहलोकमें सुखका अधिकारी होकर, उसमें उन्मत्त होकर श्रीगोविन्दके भजनसे विमुख हो रहे हैं, उनके लिये 'यहाँ है, परंतु वहाँ नहीं है।' जो लोग घने वनमें, नदीतटपर, पर्वतकी गुफामें, निर्जन स्थानमें रहकर दुष्कर तपस्यामें लगे हैं, उनके लिये 'यहाँ तो कुछ नहीं है, परंतु वहाँ यथेष्ट है।' श्रीगोविन्दके चरणारविन्दमें रत मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है; उसके लिये 'यहाँ भी है और वहाँ भी है।' श्रीगोविन्दकी लीलाकथाके श्रवण-कीर्तन, महाप्रसादके भोजन, श्रीमन्दिरके मार्जन, श्रीविग्रहकी सेवा, श्रीगोविन्दभक्तके सत्सङ्गके सुधापान तथा पर्व-यात्रा आदिके अनुष्ठान आदिमें परम आनन्दपूर्वक इस जीवनको व्यतीत करके परलोकमें भी इसी सुखसे वह काल-यापन करते हैं। जो लोग केवल परहिंसा, परोत्पीडन, जीवनभर परिश्रमसे धनार्जन आदिके द्वारा क्लेशपूर्वक जीवन-यापन करते हैं, इसके सिवा कोई भी शुभ कर्म नहीं करते, तप करनेका भी अवसर नहीं पाते, श्रीगोविन्दका भजन करनेका भी अवसर नहीं पाते, उनके समान अज्ञानी विश्वमें कोई नहीं है; उनके लिये 'इहलोकमें भी नहीं है और परलोकमें भी नहीं है।' श्रीगोविन्दके भजनसे विमुख लोग प्रायः इसी श्रेणीके होते हैं। उनके लिये न इहलोकमें सुख है न परलोकमें। सुखकी आशासे नाना प्रकारके कुकर्म करके धनसंचय करते-करते सारा नश्वर जीवन बीत जाता है; तत्पश्चात् परलोकमें जानेपर भी उनको अँधेरा ही दीख पड़ता है। वैष्णवतोषणीकार कहते हैं—

[illegible] वा विरक्तस्य स लोकद्वयेऽप्यात्मक्लेशितवेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्विरागात् परेष्वपि शल्यवद्दर्पणेन व्याध एवेति गालिप्रदाने तात्पर्यम् ।' श्रीभगवान् और विषय, दोनोंमें आसक्ति बाँधी जाती है । जिसकी भगवान्‌में आसक्ति होती है, उसकी विषयोंमें आसक्ति नहीं होती और जिसकी विषयोंमें आसक्ति होती है, उसकी श्रीभगवान्‌में आसक्ति नहीं होती, यह स्वतः सिद्ध है ।

'विषयाविष्टचित्तानां कृष्णावेशः सुदूरतः ।'

'जिसकी श्रीभगवान्‌में आसक्ति है, वह सारे गुणोंकी खान है तथा जिसकी विषयोंमें आसक्ति है, वह सब दोषोंकी खान है ।' अतएव श्रीभगवत्प्रसङ्गसे विरत विषयानुरागी मनुष्यका चित्त सदा ही विषयके तरंगोंमें आन्दोलित होता रहता है; उसमें सुखका लेश भी प्राप्त नहीं होता । वे सर्वदा परहिंसामें रत रहते हैं, अतएव व्याध छोड़कर उनको और क्या कहा जा सकता है ? महाराज परीक्षित्‌ने 'विना पशुघ्नात्' इस पदके द्वारा श्रीभगवत्कथाके प्रति आदर न रखनेवाले व्यक्तिको 'व्याध' कहकर गाली दी है ।'

इस प्रकार युक्तिपूर्ण वाक्यसे महाराज परीक्षित्‌ने श्रीगोविन्दकथाको सर्वसेवनीय तथा श्रीगोविन्दकथा-विमुख व्यक्तिको सारहीन प्रतिपादित करके श्रीशुकदेवजीसे प्रार्थना की—'हे गुरो ! आपकी कृपासे मैं परम मधुर श्रीगोविन्द-लीला-कथाके श्रवणसे विरत न होऊँगा; अतः आप परमानन्दपूर्वक लीला-कीर्तन करके मुझे कृतार्थ करें' ॥ ४ ॥

पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥
द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं संतानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥

(श्रीमद्भा० १० । १ । ५-६)

अन्वयः—मे (मम), पितामहाः (अर्जुनादयः), यत्प्लवाः (यस्य श्रीकृष्णस्य श्रीचरणतरणीं समाश्रिताः सन्तः), समरे (युद्धे) अमरंजयैः (देवजयसमर्थैः), तिमिंगिलैः (तिमिंगिलनामकमहाकायजलजन्तुसदृशैः), देवव्रताद्यातिरथैः (देवव्रतो भीष्मः तदाद्यैः रथिश्रेष्ठैः), [व्याप्तम् अत एव] दुरत्ययम् (दुष्पारम्), कौरवसैन्यसागरम् (दुर्योधनादीनां सैन्यरूपं जलनिधिम्), वत्सपदं कृत्वा (गोवत्सपदवत्तुच्छीकृत्य), अतरन् स्म (पारं गताः), यः (श्रीकृष्णः), द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टम् (अश्वत्थाम्नो ब्रह्मास्त्रेण दग्धप्रायम्), कुरुपाण्डवानां संतानबीजम् (कौरवाणां पाण्डवानां च वंशरक्षानिदानम्), इदम् (भवत्समीपागतम्), मदङ्गम् (मत्कलेवरम्), शरणं गतायाः (शरणापन्नायाः), मे मातुः (उत्तरायाः), कुक्षिं गतः (गर्भे प्रविष्टः), आत्तचक्रः (धृतसुदर्शनचक्रः), सन् जुगोप (ब्रह्मास्त्रनिवारणेन रक्षितवान्) ॥ ५-६ ॥

मूलानुवाद—जिन श्रीकृष्णकी चरण-नौकाका आश्रय लेकर मेरे पितामह आदि युद्धमें अमरजयी; श्रेष्ठ महारथी भीष्म आदिक तिमिंगिलोंसे व्याप्त तथा भयानक कौरव-सैन्यरूपी समुद्रको गोवत्सके पदके समान आसानीसे पार हो गये थे । मेरी माताके शरणापन्न होनेपर जिन्होंने गर्भमें प्रवेश करके सुदर्शनचक्र लेकर अश्वत्थामाके अस्त्रतापसे दग्धप्राय कुरु-पाण्डवोंके वंश-बीजस्वरूप मेरे इस शरीरकी रक्षा की थी ॥ ५-६ ॥

श्रीभागवतामृतवर्षिणी—श्रीगोविन्द-गुणानुवादसे कोई विरत नहीं हो सकता, किसीका भी विरत होना ठीक नहीं—यह पूर्व श्लोकमें प्रतिपादित करके महाराज परीक्षित् बोले—'हे गुरो ! किसी भी जीवका श्रीकृष्णकथासे विरत होना ठीक नहीं है; विशेषतः मेरे लिये तो विरत होना कदापि उचित नहीं है; क्योंकि श्रीकृष्ण हमारे कुलके देवता हैं; उनकी कृपासे ही हमारे कुलका बेड़ा पार लगा है; नहीं तो अपार सिन्धुमें वह डूब जाता । भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, जयद्रथ आदि कौरवोंके सेनापतियोंमेंसे कोई भी शौर्य, वीर्य, रणकौशल आदिमें नगण्य न थे । उनके अमर न होनेपर भी उनके साथ युद्ध करनेमें कोई भी अमर—देवता बिना पराजय स्वीकार किये देववैभवके गौरवको प्रदर्शित नहीं कर सकता था । भीष्मकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन थी; द्रोणकी कण्ठ-तालु भेद करके ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करती हुई मृत्यु हुई; कृपाचार्य अमर हैं; पृथिवी यदि रथचक्रको ग्रस्त नहीं करती तो कर्णकी मृत्युकी सम्भावना न थी;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयद्रथका सिर जो भूतलपर गिराता, उसका सिर भी कटकर जयद्रथके सिरके साथ ही गिरता—अतएव इनमेंसे किसीकी भी मृत्यु साधारण मनुष्यके वशकी बात न थी। इस कारण ये प्रत्येक रणमें दुर्जय थे। इनके रण-पाण्डित्यका और क्या वर्णन किया जाय। महाभारतमें देखा जाता है—

> एकादशसहस्राणि योधयेद् यस्तु धन्विनाम्।
> अस्त्रशस्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः॥
> अमितान् योधयेद् यस्तु सम्प्रोक्तोऽतिरथस्तु सः॥

"जो ग्यारह हजार धनुर्धरोंका अधिनायक होकर अपने कौशलसे उनको युद्धभूमिमें संचालित करता है, या उनके साथ अकेला युद्ध करता है तथा स्वयं अस्त्र-शस्त्र-विद्यामें प्रवीण है, वह 'महारथी' कहलाता है और जो इस प्रकारके असंख्य धनुर्धरोंका चालक होकर उनके साथ युद्ध करता है, वह 'अतिरथ' कहलाता है।" भीष्म-द्रोण आदि प्रायः सभी अतिरथ थे। अपार कौरव-सैन्य-सिन्धुमें ये लोग तिमिंगिलके समान निश्शङ्क विचरण करते थे—

> अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तृतः।
> तिमिंगिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः॥

"शत-योजन-विस्तृत मत्स्यविशेषका नाम 'तिमि' है; उसको भी ग्रस लेनेमें समर्थ जलजन्तु विशेष 'तिमिंगिल' कहलाता है। तिमिंगिलको भी निगल जानेवाला महामत्स्य 'तिमिंगिलगिल' है और उसको भी उदरस्थ कर लेनेवाले महामत्स्यका नाम 'राघव' है।" भुजाओंसे तैर करके पार करना तो दूरकी बात है, ऐसा कोई जलयान नहीं है, जिसपर चढ़कर तिमिंगिलोंसे भरे इस महासिन्धुको पार करनेमें कोई समर्थ हो सके। श्रीकृष्ण-चरणरूपी नौकाके द्वारा, शरणागति-रूपी पतवारके सहारे तथा उनकी करुणारूपी अनुकूल वायुकी सहायतासे हमारे पितामहोंने इस अपार समुद्रको पार किया था।

साधारणतः नौकापर चढ़कर बहुत परिश्रमसे किसी समुद्रको पार कर सकते हैं, यही देखने और सुननेमें आता है। किंतु श्रीकृष्णके चरणोंके आश्रयसे हमारे पितामह लोगोंको उस प्रकार कौरव-सैन्य-सागरको पार नहीं करना पड़ा। श्रीकृष्णके चरणोंके आश्रयकी ऐसी अपूर्व महिमा है कि उससे सागर सूखकर गोवत्सके पदके तुल्य हो जाता है; जो लोग पार होते हैं, उनको कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। श्रीकृष्णके चरणोंके आश्रयसे सागर अति तुच्छ हो जाता है। नौकाके द्वारा समुद्र पार हो सकते हैं, यह ठीक है; परंतु वैसी नौका सुलभ नहीं; वह एक बहुमूल्य वस्तु है। सब उसे प्राप्त नहीं कर सकते। श्रीकृष्णचरणरूपी नौका आश्रितके लिये अति सुलभ है। यह 'प्लव' अर्थात् 'डोंगी' है। उसे सभी प्राप्त कर सकते हैं। महाराज परीक्षित्के इस श्लोककी आलोचना करनेसे जान पड़ता है कि भव-सागरमें पड़ा हुआ मनुष्य यदि इस नौकाका आश्रय ले तो वह भी गोवत्सके पदके समान अनायास ही भवसागर पार कर सकता है; क्योंकि श्रीकृष्ण-चरणके आश्रयसे भीषण भव-सागर सूखकर गोवत्सके पदके तुल्य अनायास लाँघ जाने-योग्य हो जाता है।

महाराज परीक्षित्ने इस श्लोकमें श्रीकृष्ण हमारे कुलदेवता, हमारे कुलकी गति हैं, अतएव उनकी कथामें रति होना हमारे लिये परम कर्तव्य है—यह प्रतिपादन करके अन्तमें कहा है कि 'हे गुरो! वे केवल हमारे कुलकी ही गति नहीं हैं, मेरे भी जीवनदाता हैं। यद्यपि श्रीभगवान् सबके ही जीवनदाता हैं, तथापि जिस प्रकार उन्होंने मेरी रक्षा की है, उस प्रकार किसीकी भी कहीं रक्षा की हो, यह सुननेमें नहीं आता। द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भूतलको पाण्डवोंसे शून्य करनेके लिये जब अमोघ ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था तथा उसके तापसे मातृगर्भमें मैं दग्धप्राय हो गया था, उस समय करुणामय श्रीगोविन्दने चक्र, गदा आदि धारणकर, मातृकुक्षिमें प्रवेशकर मेरे इस शरीरकी रक्षा की थी। मेरे शरीरकी रक्षा नहीं करनेसे उनके परम प्रिय पाण्डवकुलकी पिण्डोदक-क्रिया लुप्त हो जाती। इसीलिये भक्तवत्सल श्रीगोविन्दने अपने परम भक्त पाण्डवोंके ऊपर कृपा करके मेरे इस देहकी रक्षा की है। नहीं तो मुझमें ऐसा कोई गुण नहीं है, जिससे उनकी मेरे ऊपर ऐसी कृपा संचारित हो सकती। आज उनकी कृपासे ही मैं इस परम पवित्र गङ्गातटपर बैठकर आपके पास उनकी गुणगाथा सुननेके लिये समर्थ हो रहा हूँ। श्रीगोविन्द-कथा सुननेमें चाहे किसीकी विरक्ति हो, परंतु जो हमारे कुलके देवता हैं, हमारे जीवनदाता हैं, उनकी कथासे क्या मुझको विरक्त होना उचित है? अतएव हे गुरो! यह सोचकर कि मैं विरत हो जाऊँगा, आप मुझे वञ्चित न करें और परम मधुर श्रीगोविन्दकथा सुनाकर मुझे कृतार्थ करें॥ ५-६॥

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्पूजनका स्वरूप

(लेखक—श्रीजयकान्तजी झा)

संत एकनाथ हृदयमें प्रभुकी झाँकी करते हुए गङ्गोत्तरीके पवित्र जलको काँवरमें भरकर अपने साथियोंके साथ काशी होते हुए रामेश्वरकी ओर जा रहे थे । वहाँ पहुँचकर वे उस जलसे प्रभुकी पूजा करना चाहते थे । ग्रीष्म ऋतु थी । एक दिन दोपहरकी जलती धूपमें संतने किसी रेतीले मैदानमें एक गधेको प्याससे छटपटाते देखा । अविलम्ब काँवर उतारकर गङ्गोत्तरीका वह पावन जल गधेके मुखमें डालकर एकनाथजीने उस मरणासन्न प्राणीकी जान बचायी । एकनाथजीके अन्य साथियोंको इस बातका दुःख हो रहा था कि इतने परिश्रमसे लाया हुआ गङ्गोत्तरीका दुर्लभ जल व्यर्थ चला गया । उनकी ऐसी भावना देखकर एकनाथजीने उन्हें समझाया—'एकमात्र प्रभु ही सर्वत्र परिपूर्ण हैं । मेरी पूजा तो प्रभुने यहींसे स्वीकार कर ली ।'

यदि हम विश्वरूप भगवान्‌की पूजाको अपनी दिनचर्यामें सम्मिलित कर लेते तो हमारा जीवन पूजामय बन जाता । हमारी पूजा सर्वाङ्गीण हो जाती । भगवान्‌की पूजा समाप्त करनेके पश्चात् हम स्वयं प्रसाद ग्रहण करते हैं । शीतका अनुभव होनेपर हम अपने अङ्गोंको आवश्यक वस्त्रोंसे ढकते हैं । शरीरके रोग-निवारणार्थ ओषधियोंका सेवन भी करते हैं । पर हममेंसे अधिकांश इस बातकी ओर ध्यान नहीं देते कि अभी-अभी हम जिन प्रभुकी पूजा मन्दिरमें करके आये हैं, वे ही पुनः हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये विविध रूपोंमें हमारे सम्मुख उपस्थित हैं । वे प्रभु ही भक्तके रूपमें प्रसाद पानेकी शान्तिसे बाट देख रहे हैं । वे ही कंगाल बनकर भिक्षा प्राप्त करनेके लिये करुण पुकार कर रहे हैं । वे ही एक रूपमें सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित भद्र पुरुषके वेषमें दीनोंके शीत-निवारणार्थ कम्बल बाँटनेके सम्बन्धमें हमसे परामर्श करने आये हैं और दूसरे रूपमें हमारे द्वारके सामने जाड़ेसे ठिठुरते हुए टाटके टुकड़ोंके लिये गुहार कर रहे हैं । ऐसे अवसरोंपर हम भूल जाते हैं कि प्रभु ही इन सभी रूपोंमें हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये आये हैं । इसीलिये हम प्रायः उनके प्रति दुर्व्यवहार कर बैठते हैं । प्रभुकी सर्वव्यापकताका ज्ञान न होनेसे हमारी भगवत्पूजा प्रायः अधूरी ही रह जाती है ।

शास्त्र बतलाते हैं—

येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः ।
संतोषं जनयेत् प्राज्ञस्तदेवेश्वरपूजनम् ॥

अर्थात्—किसी भी साधनसे किसी भी देहधारीको सुख पहुँचाना 'भगवत्पूजन' है । सभी देहोंमें जीवरूपसे एक ही प्रभु विराज रहे हैं । अतः किसी भी जीवको सुख पहुँचाना प्रभुको ही सुख पहुँचाना कहलायेगा और प्रभुको प्रसन्न करनेवाली प्रत्येक क्रियाका नाम ही 'भगवत्पूजन' है । चींटियोंको अन्न खिलाना भी भगवत्पूजन है; क्योंकि उससे अगणित जीवोंकी तृप्ति होती है । इसी प्रकार भूखेको भोजन देना, नंगेको वस्त्र देना, चिन्ताग्रस्तको मीठे शब्दोंमें आश्वासन देना आदि भी भगवत्पूजन ही है । अशिक्षितोंको शिक्षा देकर, मुअक्किलोंको वकीलके रूपमें उचित सलाह देकर, डाक्टरके रूपमें बीमारको मीठी वाणीसे धैर्य देकर तथा उपचारका निर्देश देकर हम सच्चे अर्थोंमें भगवान्‌की पूजा कर सकते हैं । इस प्रकारके पूजनका भगवान्‌के यहाँ बहुत आदर होता है । सारांश यह कि अपने नित्यके व्यवहारमें किसी भी देहधारीकी किसी प्रकारकी सेवा अथवा सहायता करना भगवत्पूजन ही है । भगवत्पूजनका यह प्रकार इतना सरल है कि किसी भी स्थितिका मनुष्य इसे कर सकता है । सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना कार्य करते हुए अपने व्यवहारकी शुद्धतासे अपने सम्पूर्ण जीवनको भगवत्पूजनरूप बना सकता है । इस मार्गका अवलम्बन बालक-वृद्ध, गरीब-अमीर, विद्वान्-मूर्ख, बलवान्-निर्बल, पुरुष-स्त्री आदि सभी कर सकते हैं ।

कभी-कभी हमारी ऐसी भावना होती है कि विश्वरूप भगवान्‌की पूजाके योग्य साधन हमारे पास नहीं हैं । पर यह हमारे मनका भ्रम ही है । वास्तवमें तो हमारे अंदर पूजाकी सच्ची चाह होनी चाहिये । चाह होनेपर तो हम अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे प्रभुकी पूजा कर सकते हैं । यदि हम दूकानदार हैं तो अपने ग्राहकोंको प्रभुरूपमें देखकर सम्मानपूर्वक उचित मूल्य लेकर उनकी सेवाकी दृष्टिसे उन्हें ईमानदारीके साथ अच्छी वस्तु दें तो इस प्रकारके क्रय-विक्रयसे ही विश्वरूप भगवान्‌की सच्ची पूजा हो जायगी । यदि हम चिकित्सक हैं तो प्रत्येक रोगीमें प्रभुकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाँकी करके, यदि हम शिक्षक हैं तो प्रत्येक छात्रमें प्रभुको विराजित देखकर और यदि वकील हैं तो प्रत्येक वादी-प्रतिवादी, न्यायाधीश एवं साक्षी इत्यादिमें अपने इष्टदेवको ही अभिव्यक्त देखकर यथायोग्य अपने विशुद्ध व्यवहारसे उनकी पूजा कर सकते हैं। हम जहाँ जिस क्षेत्रमें हैं, जिस परिस्थितिमें जो भी काम करते हैं, वहीं, उसी क्षेत्रमें, उसी परिस्थितिमें अपने कामको विशुद्ध बना सकते हैं और अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें प्रभुको देखकर उन्हें अपनी विशुद्ध पूजा समर्पित कर सकते हैं। यदि अपने जीवनको पूजामय बनानेके लिये हम कटिबद्ध हैं, तो सर्वशक्तिमान् प्रभुकी शक्ति अपने-आप हमें ऊपर उठाने लगेगी और हमें स्पष्ट दीखेगा कि जिस वेषमें प्रभु पूजा ग्रहण करने आये हैं, उसके अनुरूप पूजाकी सामग्री उन्होंने पहलेसे ही हमारे पास भेज रखी है। उन सामग्रियोंका खुले हाथों उपयोग करनेसे हमारा जीवन पूजामय बन जायगा। इस प्रकार सर्वत्र प्रभुको विराजित—सबको प्रभुका ही रूप देखकर यदि हम उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा कर सकें तो हमारा काम बन जायगा और हमारी पूजा सर्वाङ्गीण हो जायगी। हमारा एवं प्रभुका मिलन तुरंत ही हो जायगा और प्रभुकी सच्ची पूजा करके हम सदाके लिये कृतकृत्य हो जायँगे।

प्रभुके साथ हमारा जो सम्बन्ध है, वह तो अनादि है, सदा स्थिर, एकरस रहनेवाला है। उनके साथ सम्बन्धमें कोई हेतु नहीं। वह सम्बन्ध अत्यन्त निर्मल, अपरिसीम एवं प्रेमसे परिपूर्ण है। इसीसे वे हमारे लिये अपना सर्वस्व दान भी करते हैं। उनके प्रेमकी शक्ति-सामर्थ्यकी भी सीमा नहीं; वह तो अनन्त, असीम है। वे सर्वसमर्थ हैं, असम्भवको सम्भव कर सकते हैं। साथ ही वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं। अतीत, वर्तमान, भविष्यका अणु-अणु उन्हें ज्ञात है। अगणित विश्व-ब्रह्माण्डमें कहाँ, किस समय, क्या हुआ, क्या हो रहा है और क्या होगा, इसको वे पूरा-पूरा जानते हैं। इसीलिये उनसे कभी तनिक-सी भी भूल नहीं होती। ऐसे प्रभुको, प्रभुके साथ अपने नित्य सम्बन्धको यदि हम जान लें, उनके सम्बन्धका ही एकमात्र भरोसा करके हम अपने कार्यक्षेत्रमें उतरें, तभी सफलता, आनन्द और संतोष आगे-से-आगे हमें वरण करनेके लिये तैयार खड़े मिलेंगे और हमारे द्वारा भगवान्‌की सच्ची पूजा हो सकेगी।

यह बात विचारणीय है कि जब हमारा नित्य सम्बन्ध महामहिम प्रेममय प्रभुसे है, वे सदैव हमारे साथ रहते हैं, तब हम उन्हींपर निर्भर क्यों नहीं रहते? इसका कारण केवल यही है कि हमारी इन्द्रियाँ स्वभावसे ही बहिर्मुख हैं। इसीलिये अपने अन्तरालमें विराजित प्रभुको हम जान नहीं पाते। जबतक इन्द्रियोंका प्रवाह बाहरकी ओरसे मुड़कर अन्तर्मुख न बन जाय, प्रभुकी ओर न हो जाय, तबतक हमारी इन्द्रियाँ प्रगाढ़ तमोगुणकी ओर दौड़ती रहेंगी। हमारे हृदय तमोमय आसुर भावोंसे भरे रहेंगे और हमें कभी भी इस बातका ज्ञान न होगा कि किन कर्मोंसे इस जीवनमें एवं जीवनके पश्चात् परलोकमें यथार्थ कल्याण होना सम्भव है। अतः हमें प्रभुमें दृढ़ आस्था रखकर गम्भीरतासे विचार करना पड़ेगा और जब हृदयमें भगवान्‌की ज्योति जग उठेगी, तब हमें दीखेगा कि समस्त विश्व प्रभुमें ही स्थित है एवं विश्वके कण-कणमें प्रभु अवस्थित हैं। ऐसी स्थितिमें अपने-परायेका भेदभाव जाता रहेगा, शत्रु-मित्रकी भावना नष्ट हो जायगी; सर्वत्र एक अखण्ड सत्ता—आत्मसत्ता, भगवत्सत्ताकी ही अनुभूति होगी। उस स्थितिमें प्रत्येक वस्तु हमारे नेत्रोंके सामने भगवान्‌की परम सुन्दर आनन्दमयी लीला बनकर उपस्थित होगी—हमें सदा-सर्वदा भगवान्‌का मङ्गलमय स्पर्श प्राप्त होने लगेगा और अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे हम भगवान्‌की सच्ची पूजा करनेमें रत हो जायँगे।

भगवत्पूजनके अन्य प्रकार भी हैं, परंतु वे सर्वजन-सुलभ नहीं हैं; प्रत्युत जो दृढ़निश्चयी तथा सूक्ष्म बुद्धिवाले हैं, उन्हींसे इस प्रकारके पूजन हो सकते हैं। यथा—

> रागाद्यदुष्टं हृदयं वागदुष्टानृतादिना।
> हिंसादिरहितः कायः केशवाराधनत्रयम्॥

भगवान्‌की आराधनाके तीन साधन हैं। पहला साधन है—रागाद्यदुष्टं हृदयम्—हृदयको रागादि क्लेशोंसे कलुषित न होने दें; क्योंकि जब ये क्लेश अन्तःकरणमें जमकर बैठ जाते हैं, तब वह तमोगुणसे आवृत हो जाता है और फलतः वह ईश्वरके सम्मुख नहीं हो सकता। अतः भगवत्पूजनके लिये अन्तःकरणका निर्मल होना परमावश्यक है। जबतक रागादि पाँचों क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश) अन्तःकरणसे नहीं निकल जाते, तबतक वह निर्मल नहीं हो पाता और हमारा भगवत्पूजन अधूरा ही रह जाता है।

दूसरा साधन है—वागदुष्टानृतादिना—अर्थात् वाणीको असत्यभाषण आदि दोषसे दूषित अथवा अपवित्र न होने देना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे शब्दोंमें वाणीको सदैव सत्यसे पवित्र रखना। सत्यका आचरण कैसे किया जाय, यह निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् 'सत्य अवश्य बोले, परंतु मधुर वाणीमें बोले, क्रोधावेश या कड़े शब्दोंमें नहीं; क्योंकि क्रोधमें या कड़े शब्दोंमें बोलनेसे सुननेवालेका दिल दुखता है और इससे सत्य-भाषणका तप नष्ट हो जाता है, अतः अप्रिय सत्य कदापि न बोले। प्रिय लगनेवाली बात हो, पर असत्य हो तो उसे भी न बोले। (बहुधा किसीकी खुशामद करनेके लिये ऐसी वाणी बोली जाती है, जो सर्वथा अनुचित है।) सत्य बोलनेके सम्बन्धमें यही सनातनधर्म है।' इसका अनुसरण करना ही सच्चे अर्थोंमें भगवान्‌की पूजा है।

तीसरा साधन है—हिंसादिरहितः कायः—अर्थात् शरीरको हिंसा आदि दुष्कर्मोंसे सर्वथा मुक्त रखना। हिंसा तीन प्रकारकी है—कायिक, वाचिक और मानसिक।

(अ) शरीरसे या शरीरके द्वारा किसी अस्त्र-शस्त्रसे दूसरे मनुष्यके शरीरपर आघात करना 'कायिक हिंसा' कहलाती है।

(ब) कठोर वाणीके प्रयोगसे किसीके हृदयपर आघात पहुँचाना 'वाचिक हिंसा' है।

(स) मनसे किसीका बुरा चाहना, किसीके अशुभ होनेमें आनन्द मानना अथवा किसीकी हानि देखकर उसका मनसे अनुमोदन करना, यह 'मानसिक हिंसा' है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी हिंसाओंसे मुक्त होनेके लिये भगवान् वेदव्यासजी कहते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात् "सारे धर्मोंका सार मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। फिर उसे एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल न दो, बल्कि हृदयमें धारण करो और उसका निरन्तर मनन करके उसे अपने जीवनमें उतारो। 'आत्मनः प्रतिकूलानि'—जो व्यवहार तुमको प्रतिकूल लगे, वैसा व्यवहार 'परेषां न समाचरेत्'—दूसरोंके प्रति कभी न करो।"

यही बात भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भी बतलायी है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥
(६। ३२)

'हे अर्जुन! जो योगी सब प्राणियोंमें अपने ही समान सुख-दुःखको देखता है, उसे मैं योगियोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ।'

इस प्रकार त्रिविध हिंसाओंसे अपनेको मुक्त रखना ही सच्ची भगवत्पूजा है।

इससे भी अधिक उत्कृष्ट प्रकारका भगवत्पूजन है, जो बहुत कालतक साधन करनेके बाद अपने-आप होता रहता है। उस अवस्थामें उच्च कोटिका भक्त भगवान्‌की स्तुति करते हुए उनसे तदाकार होकर कहता है—'हे प्रभु! मेरे शरीररूपी मन्दिरमें तुम्हीं आत्मारूपसे विराजमान शिव हो, बुद्धि ही गिरिराजनन्दिनी उमा है। मेरे प्राण तुम्हारे सहचर हैं। इस शरीरमें रहनेवाली इन्द्रियाँ जो विषय-भोग भोगती हैं, उनके द्वारा तुम्हारा पूजन हुआ करता है। निद्रा ही समाधि है। चरणोंद्वारा जो संचरण होता है, वही तुम्हारी परिक्रमा है। हमारी वाणीसे जो-जो शब्द उच्चरित होते हैं, उनसे तुम्हारी स्तुति होती रहती है। इस प्रकार मेरे द्वारा जो-जो कायिक-वाचिक अथवा मानसिक क्रियाएँ हो रही हैं, उन सभीसे तुम्हारा पूजन हो रहा है।'

ऐसी अवस्थामें भक्तका देहाध्यास सर्वथा छूट जाता है और सर्वात्मभाव पूर्णरूपेण परिपुष्ट हो जाता है। ऐसी स्थितिको ही ज्ञानीकी सहज समाधि-दशा कहते हैं। इसमें साधकका देहाभिमान, जिससे विशुद्ध परमात्म-स्वरूप आत्माका जीवभाव दृढ़ हो गया है, तत्त्वज्ञानके द्वारा निर्मूल हो जाता है तथा 'परमात्मा स्वयं ही चराचर भूतमात्रमें आत्मरूपसे विराज रहा है'—यह भाव दृढ़ हो जाता है एवं समस्त इन्द्रियोंकी क्रियाएँ भगवत्पूजन-स्वरूप हो जाती हैं।

उपर्युक्त प्रकारके भगवत्पूजनमेंसे अपनी-अपनी रुचि एवं योग्यताके अनुसार किसी भी प्रकारका पूजन करनेसे सब प्रकारके पूजन अपने-आप हो जाते हैं। ईश्वर हमें शक्ति दें, जिससे हम विषयोंसे विमुख होकर अपना सारा जीवन भगवत्पूजन-मय बना लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतका स्वरूप

'एक साधु'*

संत महाभावकी एक लहर होता है। जैसे समुद्रकी लहर यह नहीं देखती कि तटपर खड़ा रहनेवाला मलसे सना हुआ है अथवा सर्वथा निर्मलताकी मूर्ति ही है वह, ठीक इसी प्रकार संत स्वभावसे अदोषदर्शी होते हैं।

जिस प्रकार लहरोंके द्वारा आनेवालेको अपने पीछे घसीटनेका प्रयास होता है और यह प्रयास अविराम गतिसे निरन्तर चलता ही रहता है, उसका विराम कभी होता ही नहीं—तटपर आया हुआ निराश तो लौटता ही नहीं, लहरें सदा-सर्वदा आतुर रहती हैं आनेवालेको अपने हृदयमें आत्मसात् करनेके लिये, किंतु आगे कदम बढ़ानेका प्रयास करना होता है तटपर खड़े रहनेवालेको ही; ठीक इसी प्रकार संत प्राणोंसे प्रतीक्षा करते रहते हैं कि कोई उनके साथ प्रभुके चरणप्रान्तमें चलनेको प्रस्तुत हो।

लहरें आवाज देती रहती हैं आनेवालोंको बढ़ आनेके लिये अपनी ओर; किंतु लहरोंकी गर्जनासे उनके इस संकेतको ग्रहण न करनेवाले पीछेकी ओर ही भागते हैं, ठीक इसी प्रकार संत अपने जीवनसे, वाणीसे सबका आह्वान करते हैं, परंतु कोई बिरला भाग्यवान् ही संतके इस आह्वानको सुनता है और उनके साथ चलनेको कदम बढ़ाता है।

* * *

संतकी कोई पहचान नहीं होती, परंतु फिर भी जिनके दर्शन-स्पर्श-भाषण आदिसे ये चार बातें हों, उन्हें संत मान ही लेना चाहिये—

१—भगवान्के प्रति विश्वास अपने-आप उत्थित हो;

२—पापके प्रति सहज घृणा हो;

३—अपने-आप शुभ प्रवृत्तिकी प्रेरणा मिले; और

४—सम्पर्कमें आनेपर अद्भुत-अनिर्वचनीय शान्तिकी अनुभूति हो।

—यदि ये चारों बातें न हों तो समझ लेना चाहिये कि अपने लिये वे संत नहीं हैं; उन्हें छोड़ ही देना चाहिये, फिर चाहे वे बड़े-से-बड़े संत ही क्यों न हों।

सारांश यह है, दैवी सम्पदाके गुण जिनमें अधिक विकसित हों तथा जिनके सम्पर्कमें आनेवालेके अंदर भी दैवी सम्पदा विकसित हो, उन्हें संत माननेमें तनिक भी आपत्ति नहीं है।

'महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।'

(गीता ९। १३)

भगवान्ने महात्माओंको दैवी प्रकृतिके आश्रित कहा है।

* 'आस्तिकताकी आधारशिलाएँ' शीर्षकसे आपके विचार गत कई वर्षोंसे 'कल्याण'में प्रकाशित होते रहे हैं। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनदी गङ्गाका आधिदैविक एवं आध्यात्मिक रूप

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मरूपात्मक है। विश्वका प्रत्येक पदार्थ अनन्त ब्रह्मके किसी-न-किसी रूप, गुण या शक्तिको अभिव्यक्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायमें एवं विश्वरूप-दर्शन-प्रसङ्गमें यह सिद्धान्त भलीभाँति स्पष्ट हुआ है। इस सिद्धान्तके अनुसार ही सुरसरिता गङ्गा भी भगवान्‌की विशिष्ट प्रधान विभूति अथच ब्रह्मरूपिणी या अव्यक्त ब्रह्मकी सगुणरूपाभिव्यक्ति हैं।[1]

अभिव्यक्तावस्थापन्न प्रत्येक पदार्थके तीन रूप होते हैं—स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतम (कारण), अथवा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। जैसे हमारे शरीर-की तीन सत्ताएँ हैं—स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर। स्थूल शरीरका आधार सूक्ष्म शरीर है एवं सूक्ष्म शरीरकी अभिव्यक्ति ही भौतिक स्थूल शरीरके रूपमें हुई है। स्थूल शरीरकी सत्ता, संचालन एवं नियमनका केन्द्र सूक्ष्म शरीर है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीरकी सत्ताका आधार परम सूक्ष्म कारण शरीर है। इन तीनों शरीरोंका संचालक, प्रेरक एवं नियन्ता जीवात्मा है। जीवात्मा एवं इन तीनों शरीरोंका नियन्त्रण विश्वात्मा ब्रह्म एवं उसकी क्रियाशक्ति दैवी प्रकृति या योगमायाके हाथमें है। यही स्थिति सृष्टिके प्रत्येक पदार्थकी है। प्रत्येक वस्तुका दृश्यमान अभिव्यक्त रूप उसका स्थूल शरीर है। पर प्रत्येक स्थूल रूपके पीछे तत्-तत् रूपकी सूक्ष्म एवं कारण शरीर तथा तत्-तत् तीनों शरीरोंका संचालक आत्मा भी है, जो विश्वात्मा एवं परा प्रकृतिके विश्वनियम, ऋतके अनुसार कार्य करता है। इस प्रकार प्रत्येक दृश्यमान वस्तुमें उसका सूक्ष्म एवं कारणरूप अथच उस रूप या शरीर-की नियन्त्री अधिष्ठातृचेतना (आत्मा) की सत्ता होती है एवं उन दोनों—रूप (शरीर) एवं अधिष्ठातृ-चैतन्यके अंदर और बाहर सर्वव्यापक अन्तर्यामी ब्रह्मकी सत्ता विद्यमान रहती है। पर हमारी स्थूल दृष्टि एवं बुद्धि पदार्थोंके स्थूल रूपको ही देख एवं जान पाती है; उनमें निहित सूक्ष्म शरीरोंकी सत्ता अधिष्ठातृ-चैतन्य एवं ब्रह्मको प्रत्यक्ष नहीं कर पाती। जब योगसाधनके द्वारा बुद्धि एवं दृष्टिमें सूक्ष्मदर्शनका सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है, तब वे प्रत्येक वस्तुमें निहित उसके सूक्ष्म रूपको, उसकी चैतन्य सत्ता-को एवं सर्वव्यापक ब्रह्मको भी देखने एवं अनुभव करनेमें समर्थ हो जाती हैं। भगवत्सखा अर्जुन भी श्रीकृष्णकी कृपासे दिव्य दृष्टि लाभ करनेके बाद ही उनके विश्वरूपको देखने एवं उनके वास्तविक स्वरूप-को जाननेमें समर्थ हुआ था[2]। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि पदार्थोंकी इस त्रिविध सत्ता, उनमें अन्तर्निहित चैतन्य, उनकी अधिष्ठातृ-देवता एवं सर्वव्यापी ब्रह्म-सत्ताके रहस्यसे परिचित थे, इसीलिये शास्त्रोंमें जहाँ-तहाँ पदार्थों एवं देवाख्यानोंके त्रिविध रूपका वर्णन कहीं संकेतरूपमें एवं कहीं स्पष्टरूपमें मिलता है। इसी सत्ता-वैविध्यके ज्ञानके आधारपर देवनदी गङ्गाके त्रिविध रूपका एवं गङ्गावतरण-कथाके त्रिविध रहस्यार्थका संकेत इतिहास एवं पुराणोंमें उपलब्ध होता है।

देवनदी गङ्गाके ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या स्वर्गसे अवतरित होकर भगवान् शंकरके जटा-जूटमें प्रविष्ट होने और पुनः उनकी एक धाराके शंकर-जटासे मुक्त होकर भगीरथके दिव्यरथका अनुगमन करते हुए ऋषि कपिलके शापसे भस्मीभूत सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार करके पूर्वी समुद्रमें मिल जानेकी पावन कथा रामायण, महाभारत एवं पुराणोंके अनेक स्थलोंमें मिलती है। कथामें ही त्रिपथगा गङ्गाके आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म रूपकी झलक मिल जाती है। पुराण-ग्रन्थोंमें इन सूक्ष्म रूपोंके स्पष्ट उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं।

१. अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ (१० । ८)
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ (१० । २०)
यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ (१० । ३०)
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ (१० । ५)
स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ (१० । ३१)
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ (९ । १९)
(श्रीमद्भगवद्गीता)

२. न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
(वही ११ । ८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्दपुराणके अनुसार गङ्गा अनेक ब्रह्माण्डोंका आधार है तथा शिवकी सूक्ष्मतमा (परा) जलात्मिका मूर्ति है[3]। लिङ्गपुराणके अनुसार शिवकी इस अम्बुमयी मूर्तिका नाम अम्बिका है। यह अम्बिकामूर्ति समस्त भूतोंको संजीवन देनेवाली एवं पवित्र करनेवाली है। वह प्राणमें संस्थित है[4]। प्राण हैं शिव, आग्नेयतत्त्व। गङ्गा शिवके मूर्धापर अवस्थित हैं। जहाँ आग्नेयतत्त्व है, वहाँ सोम (जल) तत्त्व है। इस प्रकार शिव और गङ्गाका सम्मिलित रूप अग्नीषोमात्मक जगत्का स्थूल रूप है। ऋग्वेदके अनुसार अप् (जल) में दो तत्त्वकी सत्ता है—सोम और अग्निकी[5]। सोम उत्पादक तत्त्व है, शक्तिका घनात्मक रूप है। अग्नि शोषक तत्त्व है, शक्तिका ऋणात्मक रूप है। इन दोनों—अग्नि और सोम—के परस्पर सहयोग तथा घात-प्रतिघातसे जगत्की सृष्टि होती है। सृष्टिचक्र निरन्तर गतिशील रहता है। सोमके साहचर्यसे अग्नि शोषक न रहकर पोषक बन जाता है। इसीलिये लिङ्गपुराणने गङ्गाको समस्त भूतोंकी संजीवनी कहा है।

हरिवंशने गङ्गाको 'सोम' बताते हुए धारासलिलविग्रह (सोम, शिव)से सोम (गङ्गा)की उत्पत्तिका वर्णन करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि इस सोम (गङ्गा)को धारण करनेसे ही महेश्वर सब प्राणियोंके प्राणदाता होनेके कारण सर्वभूताधिपति पदपर अभिषिक्त हुए[6]। शिवद्वारा गङ्गाका धारण प्रकारान्तरसे अग्नितत्त्वपर सोमतत्त्वकी प्रतिष्ठा, प्राणतत्त्वपर रसतत्त्वकी अवस्थिति एवं जगत्स्रष्टाकी सृष्टिकी पालिका-पोषिका-धारिका शक्तिसे सदा युक्त रहनेका संकेतक है। स्कन्दपुराणद्वारा शिवकी जलमूर्ति (गङ्गा)को अनेक ब्रह्माण्डोंका आधार कहनेके पीछे यही तात्पर्य है। पिण्ड या ब्रह्माण्डके निर्माणमें रसतत्त्वके अभावमें भूतत्त्वके उपादानका संयोजन एवं संघटन नहीं हो सकता।

सोमतत्त्वकी विवेचना करते हुए महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्मा चतुर्वेदी कहते हैं कि अप्तत्त्वकी सूक्ष्म दशा सोम है। सोमकी भी तीन अवस्थाएँ हैं—सूक्ष्म दशामें 'सोम', किंचित् घन होनेपर 'वायु' और अधिक घन होनेपर उसे ही 'अप्' कहते हैं। इसलिये सूर्यसे ऊपरका परमेष्ठिमण्डल (महः और जनःलोक) अप्लोक, वायुलोक या सोमलोक कहलाता है।"....सोमकी तीनों कलाओंमेंसे सोम चन्द्रमारूपसे, अप् गङ्गारूपसे और वायु जटारूपसे शंकरके मस्तकमें (अग्नि आदिसे ऊपर) विराजमान है। यह स्मरण रहे कि परमेष्ठिमण्डलका 'अप्' ही गङ्गारूपमें परिणत होता है[7]।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालके मतमें 'परमेष्ठिमण्डलका सोम ही सोमसमुद्र (या चन्द्रह्रद) है, जहाँसे गङ्गाका जन्म होता है।[8] गङ्गा (मर्त्यलोकमें) सोमकी प्रतिनिधि है। एक अन्य ग्रन्थमें डॉ० अग्रवालने लिखा है कि 'परमेष्ठिलोक (क्रन्दसी लोक) ऋत या सोमसे भरा हुआ है। इसीलिये उसे वरुण, समुद्र, आपः या सलिल भी कहते हैं। उसी सोम या सर्वव्यापक भौतिक द्रव्यसे आगेकी पिण्ड सृष्टिका निर्माण होता है। मूलसृष्टिका, परमेष्ठिलोकका सोम निरन्तर सूर्यमें आ रहा है। पारमेष्ठ्य सोमका प्रतीक गङ्गा है। उस सोम समुद्रसे वह शक्ति अपनेको युक्त करती है, भले ही (वह) पृथ्वीमें उत्पन्न हो।[10] इसी ग्रन्थमें अन्यत्र उन्होंने

३. ममैव सा परा मूर्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका।
ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा॥
(स्कन्दपु०, काशीखण्ड २७। ७)

४. संजीवनी समस्तानां भूतानामेव पावनी।
अम्बिका प्राणसंस्था या मूर्तिरम्बुमयी परा॥
(लिङ्गपुराण २। १२। ३२)

५. अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः॥
(ऋग्वेद १। २३। २०)

और भी देखिये—ऋग्० १०। ९१। ६, ७। ४९। ४

६. सोमात् सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात्।
यथाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः॥
(हरिवंश०, भविष्य० १७। २३)

७. गिरिधरशर्मा चतुर्वेदीः 'शिवमहिमा' कल्याण (संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क), जनवरी १९६२, पृ० ५८७ तथा ५९२।

८. वासुदेवशरण अग्रवालः 'वामनपुराण—ए स्टडी' (Vāmana-Purāṇa—A Study) पृ० १०७।

९. महाभारत, भीष्मपर्व ६। २८-३१ में विश्वरूपा गङ्गाका मेरुपृष्ठसे निकलकर चन्द्रह्रदमें गिरने एवं पुनः वहाँसे शंकरकी जटामें आनेका वर्णन है।

१०. वासुदेवशरण अग्रवालः 'मार्कण्डेयपुराण—एक सांस्कृतिक अध्ययन' पृ० १८५, १८९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है कि 'सौरी शक्ति या सूर्यमण्डलमें शिवतत्त्व अभिव्यक्त होता है।",

अप्-तत्त्व एवं गङ्गोपाख्यानके आधिदैविक रूपकी और भी अधिक स्पष्ट व्याख्या महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्मा चतुर्वेदीने अपने ग्रन्थ 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' (पृ० ११०–११२) में इस प्रकार की है—"जलकी तो चार अवस्थाएँ स्पष्टरूपमें वेदोंमें वर्णित हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (१।१।१)में बताया गया है कि 'आत्मा'रूप मूल-तत्त्वने जिस जल (अप्-तत्त्व)को उत्पन्न किया, वह चार अवस्थाओंमें, चार नामोंसे, चार लोकोंमें व्याप्त है। उनके नाम हैं—अम्भः, मरीचि, मर और अप्। 'अम्भः' इनमें वह जल है, जो सूर्यमण्डल (द्युलोक)से भी ऊर्ध्व लोकोंमें, महः जनः आदि लोकोंमें व्याप्त है। अन्तरिक्षमें जो जल व्याप्त है, वह 'मरीचि' रूप है एवं पृथिवीके उत्पादनमें जो जल अग्रसर होता है, वह 'मर' है और पृथिवीपर प्रवाहित होनेवाला या पृथिवीको खोदनेपर निकलनेवाला जल 'आपः' नामसे ही प्रसिद्ध है[१२]। इनमें सर्वप्रथम जो 'अम्भः' नामक जल कहा गया है, वह मौलिक जलतत्त्व है, वही पञ्चीकृत होकर अन्य तत्त्वोंके सम्मिश्रणसे स्थूल अवस्थामें आकर जलरूपमें परिणत हुआ है।

ब्राह्मण, उपनिषद्, मनुस्मृति,[१३] पुराणादिमें सर्वत्र सृष्टिके आरम्भमें 'अप्' की उत्पत्ति कही गयी है। वहाँ स्थूल जलसे तात्पर्य नहीं, रस-रूप द्रव पदार्थ वहाँ 'अप्' या 'अम्भः' शब्दका अर्थ है। वही दिव्य जल है, उसीके स्थूलीभूत होनेपर जल बनता है।

वह (अप्-तत्त्व) सर्वत्र ब्रह्माण्डमें व्यापक है—**'सर्वमापोमयं जगत्।'** वेदमन्त्रोंमें कहा गया है कि चन्द्रमा अप्के भीतर दौड़ता है। सूर्यके समीप और सूर्यके साथ अप् वर्तमान है—**'चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।'** (ऋग्० १।२३।१७) इत्यादि। भगवान् सूर्य जब उदयाचलपर आते हैं, तब उनकी किरणोंके संघर्षसे वह अप् अपना स्थान छोड़कर दूर हटता जाता है। रसरूप होनेके कारण तेजके साथ इस 'अप्'का स्वाभाविक विरोध है। अतएव जहाँतक सूर्यकी किरणें प्रखरतासे फैलती जाती हैं, वहाँसे उतने प्रदेशके अप्को दूर हटाती जाती हैं। ध्रुव-प्रदेशमें जहाँ सूर्यकिरण अति मन्द हो जाती है, वहाँ वह अप् एकत्र हो जाता है। बहुत इकट्ठा हो जानेके कारण वहाँ घनीभूत होकर स्थूल जलके रूपमें आ जाता है और गुरुत्वके कारण वायुमें नहीं ठहर सकता। अतः सुमेरुके शिखरपर गिर पड़ता है। उसे ही 'गङ्गा' कहते हैं।

पुराणेतिहासोंमें सदैव ध्रुवके ऊपरसे सुमेरुपर गङ्गाके जलका गिरना वर्णित है[१४]। ध्रुवस्थान ही हमारे इस ब्रह्माण्डकी परिधि है। 'ब्रह्माण्ड' एक पारिभाषिक शब्द है। आकाश अनन्त है। उसका जितना भाग एक सूर्यसे प्रकाशित हो, उसे 'ब्रह्माण्ड' कहेंगे। अनन्त आकाशमें संख्यातीत सूर्य और उतने ही ब्रह्माण्ड हैं। पूर्वोक्त अप्-तत्त्व फैला हुआ है। हमारे ब्रह्माण्डकी परिधिसे दूसरे ब्रह्माण्डकी परिधि भी मिल जाती है। अर्थात् ऐसा भी आकाशका प्रदेश है, जहाँ एक सूर्यका प्रकाश समाप्त होकर दूसरे सूर्यका प्रकाश प्रारम्भ होता है। यही कारण है कि दूसरे ब्रह्माण्डोंका अप्-तत्त्व भी, जो कि दूसरे सूर्योंकी किरणोंके संघर्षसे परिधितक घनीभूत हो गया है, हमारे ब्रह्माण्डके अप्के साथ मिलकर वह गङ्गा रूपमें आ जाता है। अतएव पुराणोंमें गङ्गा नदीको अपर ब्रह्माण्डकी जलधारा भी कहते हैं।

यह भी पुराणोंमें उपवर्णित है कि वामनावतारमें चरण-प्रहार होनेपर नखाग्रसे ब्रह्माण्डका जो ऊपरी गोलक टूटा, वहाँसे जलधारा भीतर प्रविष्ट होती है। उस घटनाका अभिप्राय

११. वही, पृ. १८२, १८८-१८९।

१२. स इमाँल्लोकनसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात् ता आपः॥ (ऐ. उ. १. २)

१३. अप एव ससर्जादौ। (मनु० १।८)

१४. (अ) विष्णुपुराणमें विष्णुका तृतीय पद 'ध्रुवलोक' बताया गया है, जो लोकोंका आधारभूत है और वृष्टिका कारण है। वहींसे गङ्गा प्रवाहित होती है।

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम्।
विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः॥
(विष्णुपु० २।८।१९)

(आ) 'वामनदेवस्य बलेः सकाशात् त्रिलोकहरणकाले ब्रह्माण्डोपरिगतवामपादाङ्गुष्ठनखजनितविवरेण ब्रह्माण्डोर्ध्वस्थिता या जलधारा तच्चरणस्पर्शेन समधिकपूता सती ध्रुवलोके पपात। ततो देवमार्गेण ब्रह्मसदने पतित्वा सीता-अलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति चतुर्धा भूत्वा चतुर्दिशमाश्रित्य लवणसमुद्रे प्रविष्टा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट रूपमें यह है कि "आधिदैविक भावमें प्रातःकालका सूर्य ही 'वामन' कहा जाता है। उनके नख अर्थात् किरणोंके अग्रभागने जहाँ विवर बनाया है, वहींसे वह जलधारा गिरती है। सप्तर्षि-प्रदेशको ही 'विष्णुपदी' भी कहा जाता है, अतः उस प्रदेशस्थित गङ्गाको 'विष्णुपदी' कहते हैं। और अष्टमूर्ति भगवान् शंकरका केशकलाप यह आकाश है, जिससे शंकरका 'व्योमकेश' नाम प्रसिद्ध है। उस आकाशमें व्यापक रहनेके कारण गङ्गा 'हर-जटा-जूट-वासिनी' कहलाती है। वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि तत्त्वोंका परिवर्तन एक दिनमें नहीं हुआ करता। सैकड़ों, हजारों वर्षोंमें प्रकृतिका एक तत्त्व प्रकृतिके नियमानुसार दूसरे रूपमें जाता है। अतएव अप् भी अपनी सूक्ष्म अवस्थामें हजारों वर्ष रहकर जलरूपमें आया करता है। अतः पुराणोंमें हजारों वर्षोंतक इसका विष्णुपद, शिवजटामें रहना लिखा है। इन सब अर्थोंके पोषक पुराण-वचन निम्नलिखित हैं—विष्णुपुराण (२ । ८ । १०९-११०), महाभारत (भीष्मपर्व, अ० ६) श्रीभागवत पुराण (स्कन्ध ५, अ० १७)।"

श्रीअभिनवगुप्ताचार्यका मत है कि "अग्निरूप प्रजापतिके मूर्धासे उत्पन्न वायुमय एवं व्योमकेश शिवकी वायुमयी (विभिन्न प्राणमयी) जटाओंमें विद्यमान जलोंकी सूचिका 'गङ्गा' है। जटाएँ सप्त रसोंकी परिचायिका हैं। जटास्थित गङ्गा (सप्त रसों) द्वारा गङ्गाधर रुद्र क्षीण ओषधियोंका पुनः-पुनः प्रतिसंधान करते रहते हैं, जिससे ओषधियों, वनस्पतियों और तृणादिकोंके मूल नष्ट नहीं होते। यह प्रभाव रुद्र-जटास्थित गङ्गाजलका ही है।"[१५]

तान्त्रिक परम्परामें 'गङ्गाधर'का अर्थ सूर्यद्वारा वृष्टिजलका धारण करना है।[१६] महाभारत और नीलमतपुराण जब गङ्गाको 'सूर्यपुत्री' कहते हैं,[१७] तब उनका यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि सूर्यकिरणें अन्तरिक्षमें स्थित घनीभूत अप्-तत्त्वको जलरूपमें पृथ्वीपर बरसा देती हैं। स्कन्दपुराण एवं मार्कण्डेयपुराणमें सोमको अमृतकी योनि एवं जलका आधार बताया गया है। इन पुराणोंके अनुसार गङ्गा सोममण्डलसे होकर सूर्य-किरणोंकी संगतिसे पावन होकर मेरुपृष्ठपर आती है।[१८]

उपरिलिखित विवेचना एवं उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि आधिदैविक रूपमें गङ्गा' शब्द स्थूल जलके मूल सूक्ष्म अप्-तत्त्व, सोम या रसतत्त्वका बोधक है, जो विश्वरूप है एवं सर्वत्र व्यापक है। पुराणकार गङ्गाके इस सूक्ष्म रूपसे परिचित हैं। इसीलिये ब्रह्मपुराण गङ्गाको जलोंके सारसे निर्मित बताता है एवं महेश्वर-जटा-स्थित जलको जलदेवियाँ (आपो देव्यः) कहता है।[१९] इसी अर्थमें स्कन्द-पुराणमें वर्णित गङ्गाका शिवकी तोयात्मिका मूर्ति होना भी उपयुक्त जँचता है।[२०] इस प्रकार आधिदैविक रूपमें गङ्गाके अप्-रूप या सोमरूप होनेपर शंकर अपने आधिदैविक रूपमें प्राणतत्त्वके आधार अग्नि, सूर्य एवं आकाश प्रतीत होते हैं।

सम्भवतः ऐसा ही विचार कर प्रो० लुईस रेनोने यह विचार व्यक्त किया है कि "गङ्गावतरण' सृष्टिनिर्माणसम्बन्धी पुराणकथा है, जो सृष्टिनिर्माणके बादके स्तरका वर्णन करती है।[२१]"

डा० वासुदेवशरण अग्रवालने अपने ग्रन्थ 'शिव-महादेव'में गङ्गावतरणकथाकी सृष्टिपरक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके मतमें "रुद्र शाश्वत प्राणशक्तिके दिव्य केन्द्र हैं, गङ्गा प्राणशक्ति या जीवनकी धारा है, रुद्रकी जटाएँ पञ्चभूतोंका अनन्त विस्तार हैं या जगत्के जटिल विविध प्रपञ्चका रूप हैं, भगीरथ सूर्य है, भगीरथका रथ-चक्र सूर्यकी चक्राकार गति है, जिसका अनुगमन गङ्गाकी जीवन-धारा करती है।" श्रीअग्रवाल लिखते हैं—"गङ्गा अमर्त्य स्वर्गसे मर्त्य पृथ्वीलोकपर प्रवाहित होती हुई जीवनकी नदी है। शिवकी जटाएँ विश्व या सृष्टिकी अनन्त विविधरूपताका प्रतीक है। शिवकी जटाएँ संसारके प्रपञ्चकी भाँति ही विशाल और जटिल हैं। जीवनकी धारा सृष्टिकी रचनाके

१५. श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वेंकटाचार्य, 'रुद्रदेवता-तत्त्व'(नामक लेखमें उद्धृत), कल्याण, जनवरी १९६२, पृ० ५७०.

१६. स्वामी शंकरानन्द, ऋग्वैदिक कल्चर ऑफ प्रीहिस्टरिक इण्डिया' (Rigvedic Culture of Pre-Historic India), भाग २, पृ० ५३.

१७. (अ) तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥
महाभारत, वनपर्व, ८५ । ७४

(आ) तपनस्य सुता या च या च गङ्गा सरिद्वरा ॥
नीलमतपुराण, श्लोक ३९३.

१८. मार्कण्डेयपुराण ५६ । १ । १०; स्कन्दपुराण, अवन्ती-खण्ड ४२ । १ । १०

१९. ब्रह्म पु० ७२ । २५-२७; ७४ । २

२०. स्कन्दपु०, काशीख० २७ । ७

२१. लुईस रेनो: 'रिलिजन्स ऑफ एन्सेण्ट इण्डिया (Religions of Ancient India). पृ० ६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक अङ्गको सब ओरसे आप्लावित एवं रस-सिक्त करती है। प्राण-शक्तिका यह प्रवाह तबतक गुप्त रहता है, जबतक मानवोंकी भक्ति एवं तपके द्वारा प्रसन्न हुए भगवान् शिव इसे उन्मुक्त नहीं कर देते । नदीका नाम 'गङ्गा' उसके गमनात्मक गुणके कारण पड़ा है।[२२] आदिकालसे लेकर अनन्तकालतक जीवनकी यह शक्तिमयी धारा अबाध प्रवाहित होती रहती है तथा अपने जलसे सभी शरीरों या पदार्थ-रूपोंको पवित्र बनाती है। गङ्गा स्वर्ग और पृथ्वी, अमर्त्य और मर्त्यके मध्य प्रवाहित होनेवाली जीवनकी लयात्मक गतिशील धारा है । वस्तुतः यह जीवनकी महानदी है, जिसकी अनिवार्य प्रकृति है—गति, सतत गमन।

गङ्गा वैदिक सरस्वती है । सरस्वती प्राणशक्तिके शाश्वत स्पन्दन एवं मन तथा आत्माके सभी प्रेरणात्मक सूत्रोंकी प्रतीक है । गङ्गामें भी सरस्वतीकी यह प्रकृति समाहित है । गङ्गा भी सरस्वतीकी भाँति अति पवित्र पावन करनेवाली एवं मुक्तिदात्री है ।

भगीरथ सूर्यका प्रतीक है, जिसका भग—दिव्य तेज उसके देवरथको घुमा, चला रहा है। काल-चक्र एवं सौर जगत्में बढ़नेवाले सभी वनस्पतियों एवं प्राणियोंका स्रोत यह सौर-केन्द्रका नियामक सूर्य है । गङ्गा इसी सूर्यके रथचक्रका अनुसरण करती है । गङ्गाका स्पर्श भस्म (प्राणरहित) को जीवित सृष्टिके रूपमें बदल देता है, जो पुनर्जीवन पाकर पुनः गङ्गा (प्राणशक्ति) के केन्द्र स्वर्गको चला जाता है।

सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करती हुई पृथ्वीकी गतिद्वारा उत्पन्न तीस दिन और तीस रातका प्रतीक 'साठ' संख्या, कालके परिभ्रमात्मक एवं गत्यात्मक रूपका प्रतीक है। 'सहस्र'[२३] संख्या अनन्तताका वाचक है । सूर्यकी अनन्त किरणें अथवा उसका अनन्त गतितत्त्व ही उसके रथ-चक्रको चलाता रहता है।[२४]

यह तो हुई गङ्गाके आधिदैविक सूक्ष्म रूपकी सृष्टि-परक व्याख्या। अब इसके सूक्ष्मतम आध्यात्मिक रूपपर भी विचार कर लिया जाय । महाभारतके अनुशासनपर्व (२६ । ८४-९५)की गङ्गास्तुतिमें गङ्गाके लिये निम्न-लिखित विशेषण प्रयुक्त हुए हैं—मधुमती (कर्मफल या ब्रह्मानन्दको देनेवाली), पृश्नि (अदिति), बृहती (वाक्), भगिनी (ऐश्वर्यवाली), विभावरी (प्रकाशिका), मधुस्रवा (धर्म या ब्रह्मानन्दरूपी मधुका स्रवण करनेवाली), घृतधारा (तेजोधारा), घृतार्चिः (दितिमती, वर्चस्विनी), वरिष्ठायोनि (परम कारण), विरजा (रजोगुणरहित, निर्मल, निष्पाप), वितन्वी (अतिशय सूक्ष्म), ऋषि-स्तुता, विष्णुपदी, पुराणा, उस्रा (अमृतदुग्धा धेनु), मिषती (पश्यन्ती, सर्वज्ञा), अमृता, ब्रह्मकान्ता (ब्रह्मपद-प्राप्तिकी कामनावाले जितेन्द्रिय जनोंद्वारा उपास्या)।

गङ्गाके ये नाम और विशेषण उसके गुह्य आध्यात्मिक परमरूपकी ओर संकेत करते हैं । वराहपुराण, पद्मपुराण, हरिवंश, आचार्य नीलकण्ठ और आचार्य सदानन्द इस अध्यात्म रूपकी व्याख्या करते हैं । वराहपुराणके गङ्गास्तवमें गङ्गाको धर्मका तरलरूप बताया गया है—

धर्मस्तु द्रवरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।
तद्वै गङ्गेति विख्याता शृणु स्तोत्रं वसुंधरे ॥

पद्मपुराण (स्वर्गखण्ड ६१ । ६८१-७०) के अनुसार—

'विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी।'
'केशवो द्रवरूपेण पापात् तारयते महीम् ॥'

---

२२. सङ्गमाद् गमनाद् गङ्गा लोके देवी विभाव्यते ॥ देवीपुराण, अ० ४५.

२३. गङ्गावतरण-कथाके अनुसार ऋषि कपिलके शापसे दग्ध अपने पूर्वज सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धारके लिये भगीरथने तपस्या की थी एवं श्रीगङ्गा तथा शंकरको प्रसन्नकर इस भूमिपर वे गङ्गाको लाये थे। शंकरने पहले अपनी जटामें स्वर्गसे प्रचण्ड वेगसे उतरती हुई गङ्गाको धारण किया था एवं पुनः भगीरथकी प्रार्थनापर गङ्गाकी एक धाराको भूमिपर छोड़ा था । तब गङ्गा भगीरथके रथका अनुसरण करती तथा सगर-पुत्रोंका उद्धार करती हुई पूर्वसागरसे जा मिली थी । श्रीअग्रवालने यहाँ 'साठ' एवं 'हजार' दोनों संख्याओंको अलग-अलग लेकर व्याख्या की है।

श्रीअग्रवालजीकी इस व्याख्यामें सगरके साठ हजार पुत्रोंको सूर्यके रथचक्रकी प्रेरकशक्तिके रूपमें तथा भगीरथको सूर्यके प्रतीकके रूपमें कल्पित करना चिन्त्य है; क्योंकि मूल कथामें साठ हजार संख्या सगरके पुत्रोंकी है, भगीरथके पुत्रोंकी नहीं । भगीरथको सूर्य मान लें तो इस व्याख्यामें शिवद्वारा गङ्गा-धारणका कथांश अव्याख्यात रह जाता है । इससे अच्छा तो भगीरथको मानव तपका 'प्रतीक' मान लेना अधिक उचित जँचता है, जैसा कि श्रीअग्रवालने अपनी व्याख्याके प्रारम्भमें संकेत दिया है ।

२४. वासुदेवशरण अग्रवालः शिव-महादेव, पृ० ३६.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गङ्गा विष्णुरूपिणी है एवं लोकोंका उद्धार करनेवाली है। स्वयं विष्णु ही गङ्गाद्रवके रूपमें प्रवाहित होकर पृथ्वीको पापसे तारते हैं।'

डॉ० जनार्दन मिश्र द्रवरूपिणी धर्मगङ्गाके स्वरूपकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि 'गङ्गा चिदानन्दके आनन्दकी अमृतधारा है, ब्रह्मानन्दामृतका प्रवाह है। प्रभु (शिव)-की जटाओंसे आनन्दामृतकी गङ्गा बहकर जगत्‌की रक्षाके लिये इसे प्लावित कर रही है। अन्यथा, अपने पापादिके हलाहलसे यह जलकर भस्म हो जाय। इसकी उत्पत्ति 'अभीद्ध तप' अर्थात् बृहत्सत्य हिमालयसे होती है। इसका ज्ञान (या प्राप्ति) हिमालय-जैसी महती तपश्चर्या और घोर साधनासे होता है। उसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्मसे है, यही गङ्गा और शिवका विवाह है।[२५]'

आचार्य नीलकण्ठने गङ्गाके विश्वरूपा[२६] नामकी व्याख्या करते हुए अपनी महाभारत-टीकामें लिखा है—

विश्वो विष्णुस्तद्रूपा। तथा च स्मरन्ति—

योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी निरंजनः।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः॥

(नारदपु० उत्तर० ३८। २३)

"सर्वव्यापक निर्गुण चिदात्मकतत्त्व विष्णु है, उसीका द्रवरूप गङ्गाजल है, इसलिये उसे 'विश्वरूपा' कहते हैं।"

नीलकण्ठीके अनुसार हरिवंशके भविष्यपर्वमें गङ्गोत्पत्तिका[२७] सम्पूर्ण वर्णन योगपरक एवं अध्यात्मपरक है तथा यहाँ गङ्गाको ब्रह्मवादिनी सरस्वतीके रूपमें परिणत होती हुई वर्णित किया गया है।[२८] आचार्य नीलकण्ठने इन श्लोकोंकी अपनी व्याख्यामें मन्त्रशास्त्रके प्रमाणके आधारपर भ्रूमध्यमें मेरुशिखरकी स्थिति एवं इसके आस-पास सप्त-समुद्रों एवं सप्त-पर्वतोंकी स्थिति मानी है। भ्रूघ्राणमध्यस्थ कारण ब्रह्म ही मेरुपृष्ठ है। जहाँ सभी इन्द्रियरूपी देवता निवास करते हैं। मन्दरपर्वत स्थूल प्रपञ्चात्मक जगत्‌का प्रतीक है। गङ्गाका सुमेरु पर्वतसे मन्दर पर्वतपर आना एवं वहाँसे सप्त धाराओंमें विभक्त होनेका अर्थ है—अव्यक्त ब्रह्मज्ञानका वैखरीभावको प्राप्त हो सप्तस्वरोंमें विभक्त होकर स्थूल प्रपञ्चात्मक ज्ञानमें परिणत होना।

हरिवंशके 'सोमसे सोम उत्पन्न हुआ।'[२९] इस वाक्यके तात्पर्यको स्पष्ट करते हुए सदानन्दने लिखा है कि "उमारूपिणी ब्रह्मविद्यासे युक्त ब्रह्मानन्दमूर्ति महेश्वर 'सोम' हैं। अद्वैत ज्ञानका सुख सलिल है, जो उनकी ज्ञानमूर्ति है। उस अद्वैतज्ञान सुखकी उत्पत्ति एवं उसकी सतत प्रवहमान धारासे अभिषिक्त होकर तत्त्वज्ञ अपने आत्मानन्दके साम्राज्यमें प्रतिष्ठित होता है। उस ब्रह्मज्ञानानन्दमूर्ति गुरु सोमसे अन्य पुरुष भी उपदेश पाकर ब्रह्मात्मविद्याको जानकर सोम (ब्रह्मज्ञानी) बन जाता है। यही सोमसे सोमकी उत्पत्ति है। ब्रह्मानन्दमयी गङ्गा प्रादुर्भूत होनेपर तत्त्वज्ञानीकी बुद्धि, चित्तेन्द्रियादि वर्गोंमें भी फैलकर उन्हें भी अपनी धारासे आप्लावित कर देती है। तब बुद्धि आदि भी ब्रह्मज्ञानयुक्त एवं ब्रह्मसुखप्रवण हो जाते हैं। यही गङ्गा सभी वर्णों एवं आश्रमोंद्वारा सेवनीय तथा साध्य है। इसी तात्पर्यमें गुरुवाक्य एवं वेदान्तवाक्योंकी सफलता निहित है।[३०]"

सदानन्दके उपर्युक्त तात्पर्य-विवेचनसे यह प्रतीत होता है कि ब्रह्मज्ञानी गुरु शिवस्थानीय सोम है। ब्रह्मका अद्वैतज्ञान (**अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म**) गङ्गाकी धारा है। योग्य अधिकारी शिष्यकी प्राप्तितक गुरुद्वारा गुह्यब्रह्मज्ञानको अपनी बुद्धि (मस्तिष्क)की गुहामें गुप्त रखना गङ्गाको जटामें छिपाना है। शास्त्रीय ज्ञान एवं विवेकके प्रकाशसे युक्त बुद्धिके नियन्त्रणद्वारा अपनी इन्द्रियोंको संयमित रखनेवाला (**भं ज्योतिष्कमण्डलं गीर्वाङ्मयं तत्र रथ इन्द्रियाणि रथ इवास्य सः भगीरथः**[३१]) तपस्वी, जिज्ञासु,

२५. जनार्दन मिश्र (भारतीय प्रतीक विद्या, पृ० ४२८।४३३)

२६. महाभारत, भीष्मपर्व ६। २८।

२७. हरिवंश, भविष्यपर्व २८। ५१–६१

२८. सैषा गङ्गा फलं लेभे पुष्करेण समाहिता।
सुतपा चन्द्रविहिता लोकानां धारणे रता॥
सरस्वती स्वरैर्व्यक्तैरधीते ब्रह्मवादिनी।
पृष्ठात् प्रयाता शैलेन्द्रे मन्दरे मन्दगामिनी॥
(हरि०, भविष्य० २८। ५१–६१)

२९. सोमात् सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात्।
(हरि०, भविष्य० १७। २३)

३०. सदानन्दकृत 'महाभारततात्पर्यप्रकाश' (हरिवंशतात्पर्यप्रकाश पृ० २७०)

३१. शब्दकल्पद्रुम, तृतीय भाग पृ० ४७३ (देखिये—'भगीरथ' शब्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगीरथ सुयोग्य शिष्य है। भलीभाँति सुपरीक्षित अधिकारी शिष्यको ब्रह्मज्ञान देना, शिवका भगीरथके लिये स्वजटावासिनी गङ्गाकी धाराको प्रवाहित करना है।

इस प्रकार गङ्गा अपने भौतिक रूपमें भगवान्‌की दिव्य विभूति है।[32] आधिदैविक रूपमें सृष्टिमें सर्वत्र व्यापक जलके सूक्ष्मरूप सोम या अप्‌तत्त्व एवं रसतत्त्वका वाचक होनेसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आधार एवं सर्वभूतोंको जीवन देनेवाली है एवं अपने सूक्ष्मतम आध्यात्मिक रूपमें धर्मद्रव ब्रह्मानन्द एवं ब्रह्मज्ञानकी धारा है। यदि गङ्गाके इन तीनों रूपोंको हम एक साथ हृदयंगम कर सकें तथा इस पुण्यसलिलाका सतत स्मरण एवं नित्य सेवन कर सकें तो अवश्य ही यह हमें त्रितापसे मुक्त कर ब्रह्मानन्दमें मग्न कर देगी। गङ्गा अपने धातुमूलक अर्थसे ही भगवत्पदकी ज्ञापिका, प्रापिका एवं इसीलिये मोक्षार्थियोंद्वारा उपास्य है।[33]

महाभारतमें गङ्गा सर्वलोकनमस्कृता वरदा दिव्य महानदीके रूपमें चित्रित हुई हैं। महाभारतमें गङ्गाका लक्ष्यालक्ष्यरूप प्रकट हुआ है। गङ्गा भगीरथकी उपासनासे प्रकट होकर स्वयं उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन तथा वर देती हैं।[34] महाभारतके अनुशासनपर्व (अ० २६) में गङ्गाको परमपावनी एवं मनुष्योंके लिये अमृततुल्या बताया गया है। जो गङ्गाभक्त तद्भावभावित, तद्गतमना, तन्निष्ठ और तत्परायण होता है, वह अपनी एकनिष्ठ भक्तिके कारण गङ्गाको प्रिय होता है। गङ्गा भक्तवत्सला है, वह अपने भक्तोंको सभी सुखोंसे युक्त करती है तथा मृत्युके बाद उन्हें मोक्ष प्रदान करती है। महाभारतकारका विश्वास है कि 'गङ्गां गता ये त्रिदिवं गतास्ते (अनु० २६। ८६। ९४)—जो गङ्गाको प्राप्त करते हैं, वे स्वर्ग पहुँच जाते हैं।' गङ्गाभक्त शीलवृत्तिको गङ्गाकी विधिवत् उपासनासे दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं। अनुशासनपर्वमें देवनदी गङ्गा ऐसी नारी देवताके रूपमें चित्रित हुई हैं, जो सभी तीर्थोंसे युक्त, नदियोंमें श्रेष्ठ, पापभयहारिणी सर्वधर्मविशारदा एवं बुद्धि तथा विनयसम्पन्ना हैं।[35] इस प्रकार शास्त्रोंमें उनका देवरूप भी भलीभाँति प्रकाशित है। अन्तमें प्रार्थना है—

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु विष्णुरूपिण्यै गङ्गायै ते नमो नमः॥
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमो नमः॥

(नारद० उत्तर० ४३। ६९। ८४)

श्रीगङ्गाजीकी महिमा

पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥

भगवान् शंकरके मस्तकसे होकर निकली हुई गङ्गा सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी हैं। वे पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाली और मङ्गलमय पदार्थोंके लिये भी मङ्गलकारिणी हैं।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा, गङ्गा' ऐसे कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा। महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥

गङ्गाजीमें स्नान, जलका पान और उससे पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है।

तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा। पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेव्य तां लभेत्॥

तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गङ्गाजीका सेवन करनेसे मनुष्य उसी गतिको पा लेता है।

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति। अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

गङ्गाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती हैं, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती हैं तथा स्नान करने और जल पीनेपर सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देती हैं। (पद्मपुराण)

३२. 'स्रोतसामस्मि जाह्नवी' (भगवद्गीता १०। ३१)

३३. गमयति प्रापयति ज्ञापयति या भगवत्पदं सा शक्तिः-यद्वा गम्यते प्राप्यते ज्ञाप्यते मोक्षार्थिभिर्या। गम गतौ+गन् उणादि सू० १। १२८॥ शब्दकल्पद्रुम।

३४. महाभारत, वनपर्व अ० १०८

३५. वही—अनु० पर्व, अ० १४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

[जीवन-सहचरसे]

सबपर कृपा करो

भगवती श्रुति कहती है--'एक पीपलपर सुन्दर पंखवाले दो पक्षी सदा साथ-साथ रहते हैं, दोनों एक दूसरेके सखा हैं। उनके नाम भी प्रायः एक-से हैं। पीपलपर बड़े स्वादिष्ट फल लगे हैं। एक पक्षी वृक्षके उन सुस्वादु फलोंका रस लेता है, किंतु दूसरा केवल देखता है, कुछ खाता-पीता नहीं है।' श्रुतिने रूपक या प्रहेलिकाकी भाषामें जिस अनादि सत्यकी ओर संकेत किया है, उसे इस प्रकार जाना जा सकता है। शरीर ही वह अश्वत्थ वृक्ष है और कर्म-फल-भोग ही सुस्वादु फलोंका रसास्वादन है तथा वे दोनों पक्षी हैं--जीवात्मा एवं परमात्मा--मैं और तुम। वृक्ष और फलभोक्ता पक्षी तो असंख्य हैं, किंतु दूसरा पक्षी तुम एक ही हो। तुम्हीं हर वृक्षपर हर घोंसलेमें प्रत्येक पक्षीके साथ बैठे दृष्टिगोचर होते हो। जीवात्मस्वरूप वे असंख्य पक्षी जातितः एक हैं और मैं अकेला ही उन सबका प्रतिनिधित्व करता हूँ, सबकी ओरसे बोलता हूँ, जिज्ञासा करता हूँ। कहनेका मतलब यह कि आजकी इस वार्ता या गोष्ठीमें दो ही पक्षी हैं—मैं और तुम।

हम दोनोंका यह सनातन सख्य-सम्बन्ध कबसे, कितने युगोंसे चला आ रहा है, कौन कह सकता है? मेरे अनन्त जन्मोंमें अनन्त वृक्षोंपर अनन्त घोंसले बनते आये हैं और तुम सदा एक ही, जैसे-के-तैसे रहते आये हो। जन्म और मृत्यु तुम्हारी छायातकको छू नहीं सकी। मेरे प्रत्येक नीड़में तुम पहलेसे ही सक्रीड बने बैठे रहे हो। मैं फलोंका उपभोग करके भी कभी तृप्त न हो सका और तुम विना कुछ खाये-पीये ही नित्य निरन्तर परितृप्त बने रहे। एक मैं हूँ कि दुःख मेरा पीछा नहीं छोड़ता और एक तुम हो कि दुःख तुम्हारे पासतक कभी फटकने नहीं पाता! तुम सदा सुख या आनन्दके ही अपार पारावारमें गोता लगाते रहते हो। नहीं, नहीं, वह अनन्त निस्सीम सुख ही तुम्हारा स्वरूप है।

तुम हर वृक्षके प्रत्येक नीड़में मेरी रक्षाके लिये, मेरे हित-साधनके लिये ही मेरे पास स्थित रहे, किंतु मैं कभी तुम्हारी ओर उन्मुख न हो सका। भोगासक्तिके कारण इस अनित्य तथा असुख लोकमें ही सुख मानता और ढूँढता रहा। सच कहता हूँ, सदा निराशा ही हाथ लगी। अनन्त वृक्षों और असंख्य घोंसलोंमें भटकते रहनेका ही दुःखमय दण्ड भोगता रहा। फिर भी मेरी आँखें न खुलीं, मैं चेत न सका।

ऐसा क्यों हो रहा है, मेरे नित्य सहचर! मैं कबतक इस तरह भवचक्रमें भटकता और पिसता रहूँगा। विज्ञजन कहते हैं--'तुम अज्ञान और मोहसे आच्छन्न हो। तुम्हारे हृदय-स्थलमें भगवद्भक्तिकी भागीरथी प्रवहमान नहीं है; अतः तुम्हें भव-चक्रसे छुटकारा नहीं मिल सकता, भगवदीय आनन्दकी उपलब्धि नहीं हो सकेगी। तुम्हें कठोर साधना करनी होगी।'

क्या यह सच है? क्या मुझे कठोर साधना किये विना अपार संसार-सागरसे निस्तार नहीं मिल सकेगा? साधनाका तो नाम ही सुनकर मेरे प्राण सूख जाते हैं। सुना है, 'जो अनेक जन्मोंतक साधना करके संसिद्ध होता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।' परंतु मुझमें इतना धैर्य और साहस कहाँ कि अनेक जन्मोंतक साधना चला सकूँ। मैं तो सब कुछ इसी जन्ममें और तत्काल पाना चाहता हूँ। क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा होना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है ? तुम्हारी गीता कहती है कि 'जो तुम्हें सम्पूर्ण भूतोंका सुहृद् जान लेता है।' वह शान्ति पा जाता है, किंतु मुझे तो तब शान्ति मिलेगी, जब तुम मिल जाओ। तुम्हारी ही घोषणाके अनुसार मैंने जान लिया और विश्वास कर लिया कि 'तुम सर्वलोकमहेश्वर हो, यज्ञ-तपके भोक्ता हो, साथ ही सम्पूर्ण भूतोंके सुहृद् हो।' क्या उन सम्पूर्ण भूतोंमें मेरी भी गणना नहीं हो सकती ? तुम्हारी ही वाणीने यह सिद्ध कर दिया है कि 'तुम मेरे भी सुहृद् हो', तब मुझे शान्ति देनेके लिये क्या तुम मुझे मिल नहीं सकते ? मेरी आँखोंसे मायाका पर्दा हटाकर मुझे अपने त्रिभुवन-मोहन दिव्य रूपका दर्शन नहीं करा सकते ? मैं तो निर्बल हूँ, असहाय हूँ, साधनहीन और वासनाओंके पराधीन हूँ। मन और इन्द्रियोंको भी वशमें नहीं कर पाता हूँ। काम आदि शत्रु मुझे पराजित करके नाना प्रकारके नाच नचाते हैं। परंतु तुम ? तुम तो सर्वशक्तिमान् हो, स्वतन्त्र हो, यदि अपने इस दयनीय दीन सुहृद्को कृपापूर्वक अपनानेके लिये स्वयं ही आगे बढ़ो तो तुम्हें कौन रोक सकता है ? मैं एक ही बात जानता हूँ, कोई कठोर-से-कठोर साधना करके भी उसके द्वारा तुम्हें खरीद नहीं सकता। तुम प्रेमीके हाथ बिना मोल बिक जाते हो, यह नितान्त सत्य है; किंतु मुझमें वैसा प्रेम कहाँ है ? मुझे एक ही भरोसा है—'प्रभु मूरति कृपामयी है' तुम स्वयं कृपा करके जिसको जो चाहो, दे सकते हो। यह ठीक है कि मैं तुम्हारी कृपा पानेके योग्य पात्र नहीं हूँ, परंतु तुम चाहो तो क्या मैं योग्य पात्र नहीं बन सकता ? तुम्हारे संकल्पमात्रसे मेरी जन्म-जन्मकी दुर्बलताएँ क्या क्षणभरमें ही दूर नहीं हो सकतीं ? फिर पात्र बननेमें कितनी देर लगेगी ?

तुम्हारा माना हुआ सुहृद् वासनाओंके नरक-जालमें आबद्ध हो अनन्त कालतक दुस्सह यातनाएँ भोगता रहे और तुम उसके उद्धारके लिये कुछ कर न सको या करना न चाहो, क्या यह तुम्हारे लिये कोई शोभा या गौरवकी बात है ? क्या माता-पिता कीचड़ या मलमें सने हुए अपने स्नेहभाजन शिशुसे यह आशा रखते हैं कि वह नहा-धोकर पहले शुद्ध हो ले, तब हमारी गोदमें आवे ? वे तो अपनी सहज वत्सलताके कारण ही स्वयं दौड़कर बालककी धूल झाड़ते हैं, उसके तनपर लिपटी कीचड़को धोते-पोंछते हैं और स्वयं साफ-सुथरा करके उसे सस्नेह अङ्कमें भर लेते हैं। क्या एक सर्वसमर्थ सुहृद् अपने दयनीय सखाके उद्धारके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तिका एक क्षुद्रतम अंश भी नहीं लगा सकता ? क्या वह तटस्थ रहकर उससे अनेक जन्मोंतक साधना करवायेगा ? अपनी कृपादृष्टिसे ही उसे तत्काल कृतकृत्य नहीं कर देगा ?

जब यही सत्य है कि 'करी गोपाल की सब होय।' तब तुम दूर खड़े होकर सबको अपनी शरणमें क्यों बुलाते हो ? क्या तुम्हारे संकल्पमात्रसे ही सब तुम्हारी शरणमें नहीं आ सकते ? कोई कहीं भी क्यों न हो, सब तुम्हारी शरणमें ही हैं। तुम्हारी शरणसे बाहर कुछ भी है ही नहीं। अतः तुम सबको शरणागत ही मानकर क्यों नहीं पाप-तापसे मुक्त कर देते हो ? हे जीवमात्रके नित्य सहचर ! परम सहायक गोपाल ! जिसके ऊपर जिस भावसे रीझ सको, उसमें वही भाव स्वयं जगा दो और उस-उस भावसे आकृष्ट हो एक साथ ही सबको गले लगा लो। बताओ, मेरे जीवनसंगी ! क्या तुम ऐसी कृपा कभी कर सकोगे ?

—तुम्हारा अपना ही एक अकिंचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत कनकदास

(लेखक—श्रीरामलाल)

संतके परम पवित्र चरितामृतका रसास्वादन उन प्राणियोंके लिये परम सौभाग्यका विषय है, जिनकी जीवन-विधि—रहनी भगवद्भक्तिकी मधुरिमासे सम्पूर्णतः सम्प्लावित रहती है, जिनकी रसमयी वाणीमें सत्यके प्रति प्रीति या अनुरक्तिकी मन्दाकिनी प्रवाहित रहती है, जिनके प्राणोंमें, चित्तवृत्तियोंके तार-तारमें अध्यात्म-माधुर्यका दिव्य संगीत झंकृत होता रहता है।

संत भगवद्भक्ति और भगवद्रूप-माधुर्यके वितरणसे लोक-जीवनको कृतार्थ किया करते हैं; ऐसे ही संत थे कर्णाटक प्रदेशको अपनी पवित्र उपस्थितिसे गौरवान्वित करनेवाले पुरन्दरदास, कनकदास, विठ्ठलदास, वेङ्कटदास, विजयदास तथा कृष्णदास आदि। इन संतोंने कन्नड़-साहित्यको वैष्णव धर्मके रससे आप्लावित किया। पण्ढरपुरके विठ्ठलकी, तिरुपतिके भगवान् वेङ्कटेशकी और उडुपिके कृष्णकी भक्ति-मन्दाकिनी प्रवाहित कर हरिदास-पन्थ अथवा दासकूटकी स्थापना की। दासकूटके कारण ही कर्णाटकका वैष्णव साहित्य अक्षुण्ण है। संत कनकदासने कर्णाटकमें निर्मल हरिभक्तिका प्रचार किया। उन्हें महाभारत-का विदुर कहा जाता है। सोलहवीं शताब्दीके महान् वैष्णव संतोंमें उनकी गणना होती है। विजयनगर साम्राज्यके कुलगुरु लब्धप्रतिष्ठ संत और अध्यात्ममर्मज्ञ महामति व्यास-रायसे गुरुदीक्षा प्राप्तकर संत पुरन्दरदास और कनकदासने तत्कालीन वैष्णव-जीवनका जो निर्मल-निष्पक्ष आदर्श प्रस्तुत किया, उससे कन्नड़ ही नहीं, समस्त भारतीय वैष्णव-साहित्य अथवा भक्ति-साहित्यकी समृद्धि-वृद्धिमें उनका विशिष्ट योगदान स्वीकार किया जा सकता है। गुरु व्यासराय उच्चकोटिके विद्वान् और महान् दार्शनिक थे। उन्होंने कन्नड़भाषामें अनेक सरस पदोंकी रचना की। गुरुके चरणचिह्नोंका अनुसरण कर संत पुरन्दरदासने कर्णाटक संगीतकी श्रीवृद्धि की तथा कनकदासने अपने भक्तिपूर्ण आचरण, दार्शनिक सिद्धान्त और सरस वाणीसे कन्नड़ साहित्य-में नवजागरणका प्रभात प्रस्तुत किया। संत कनकदासके गुरु माध्वमतके आचार्य थे, इसलिये कनकदासका जीवन माध्व-सम्प्रदायकी भक्ति-पद्धति—दास्यभक्तिसे सर्वथा सम्पन्न था। हरिदास-पन्थपर चलनेवाले कनकदासके जीवनसे यह सिद्ध होता है कि समस्त प्राणी भगवद्भक्तिके अधिकारी हैं। बाह्याडम्बर और बाह्याचार—दोनोंसे उदासीन अथवा तटस्थ रहकर अन्तःकरणकी पवित्रता और भगवान्‌की भक्ति-के अर्जनपर ही विशेष बल देनेसे मानव-जीवन कृतार्थ होता है। हरिदास-पन्थका प्राण सदाचार है।

कर्णाटक प्रदेशके भक्ति-आन्दोलनकी प्रगतिमें महामति व्यासतीर्थ अथवा व्यासराय और उनके प्रमुख शिष्य संत कनकदास और पुरन्दरदासने अप्रतिम योगदान देकर श्रीमध्वाचार्यद्वारा प्रवर्तित द्वैतसिद्धान्तपरक वैष्णव धर्मका बड़ी तत्परतासे संरक्षण किया। संत कनकदासके वैष्णव धर्माचरणमें आचार्य रामानुजके प्रति भी उनकी निष्ठाका पता चलता है। उन्होंने आचार्य रामानुजकी भी स्तुति की है। वे संत पुरन्दरदासके भी महान् प्रशंसक थे। यद्यपि हरिदास-पन्थ और दास-साहित्यके समुन्नयनमें संत कनकदास और पुरन्दरदासका असाधारण सहयोग माना गया है, तथापि उनसे ६०० साल पहले प्रायः नवीं शताब्दीमें ही श्रीअचला-नन्ददासने दास-साहित्यकी सृष्टि की थी और तत्पश्चात् श्रीनरहरितीर्थ तथा पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें श्रीपादराय एवं व्यासराय आदिने दास-साहित्यका विशेषरूपसे पोषण किया। संत कनकदास और पुरन्दरदास आदि हरिदासोंने कलियुगमें श्रीभगवन्नाम-स्मरणको अत्यधिक महत्त्व दिया। संत कनकदासकी रचनाओंमें भगवन्नामानुराग, भगवद्भक्ति और वैराग्यके उत्कर्षका बड़ा सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। निस्संदेह वे कन्नड़-भक्ति-साहित्यकी अप्रतिम विभूति थे।

संत कनकदासका समय १५०८ ई०से १६०६ ई० तक निश्चित किया गया है। उन्होंने १५०८ ई०के अक्टूबर मासमें एक महार—गड़ेरियेके घरमें कर्णाटक प्रदेशके धारवाड़ जनपदके बाँकपुर मण्डलके बाड़ गाँवमें जन्म लिया था। उनके पिता वीरनायक और माता बाच्छम्मा तिरुपतिके भगवान् श्रीनिवासकी भक्तिमें दत्तचित्त थे। दम्पतिकी हार्दिक प्रार्थनाके फलस्वरूप भगवान् श्रीनिवासकी प्रसन्नता और कृपाके सजीव प्रतीक संत कनकदासने कलियुगके कोटि-कोटि प्राणियोंके उद्धारके लिये पृथ्वीपर जन्म लिया। दम्पतिने नवजातका नाम थिमप्पा रखा। थिमप्पाका मन पढ़ने-लिखनेकी अपेक्षा साहस तथा वीरताके कामोंमें अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता था। वे बचपनमें भी अपने-आपको एक दिव्य भागवती शक्तिसे अनुप्राणित अनुभव करते थे। बीस साल-की अवस्थामें उनका विवाह कर दिया गया। थोड़े ही समयमें उनके माता-पिता तथा स्त्रीने परलोककी यात्रा की। थिमप्पाके जीवनमें वैराग्यकी शक्ति और भगवान्‌की निर्मल-निष्काम भक्ति बढ़ने लगी; उन्हें संसारकी असारताका पता चल गया था। मन भगवच्चरणोंमें आत्म-समर्पणके लिये पूर्ण समुत्सुक हो उठा। उन्होंने अपने ही गाँव—बाड़में प्रतिष्ठित भगवान् आदिकेशवके प्रति बड़ी भक्ति की। उनके मनको श्रीआदिकेशवने अपने अनुरागमें पूर्णरूपसे रँग दिया। इसके बाद धारवाड़ जनपदमें स्थित कागिनेल गाँवमें श्रीआदिकेशवके मन्दिरके पवित्र वातावरणमें संत कनकदासने अपना समय सार्थक किया। उन्हें कागिनेलमें ही श्रीआदिकेशवने दर्शन देकर कृतार्थ किया। वे भगवदनुग्रहसे सम्पन्न हो उठे। उन्होंने भगवान् आदिकेशवके चरणदेशमें आत्मसमर्पण कर दिया; उनके प्रति पूर्ण प्रपत्तिके माध्यमसे संत कनकदासने लोगोंको संसार-सागरसे पार उतरने तथा मुक्ति प्राप्त करनेका सन्मार्ग बताया। कागिनेलमें ही भगवान् आदिकेशवने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि मध्वाचार्यकी परम्पराके ही महान् विद्वान् और संत श्रीव्यासरायसे हाम्पी जाकर गुरु-मन्त्रकी दीक्षा लेनी चाहिये। वे भगवान्‌के आदेशसे हाम्पीके लिये चल पड़े। श्रीव्यासरायने थिमप्पाको देखते ही कहा कि तुम्हें भैंसेके मन्त्रके सिवा दूसरे मन्त्रकी क्या आवश्यकता है। उन्होंने गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर भैंसेके मन्त्रकी प्रार्थना की। तत्काल ही एक अलौकिक भैंसा प्रकट हो गया। श्रीव्यासरायने कहा कि 'एक पुराने पाषाणखण्डके कारण सिंचाईकी नालीसे पानी ठीक तरहसे नहीं निकल पाता है; पत्थर जलके प्रवाहको रोक लेता है। लोगोंने इसे हटाने तथा तोड़नेका अथक प्रयास किया, पर वे निष्फल रहे।' भैंसेने तत्काल ही पाषाणखण्ड तोड़कर चूर-चूर कर दिया और वह देखते-ही-देखते क्षणमात्रमें अदृश्य हो गया। श्रीव्यासरायकी परीक्षामें थिमप्पाने आगमें सोनेकी तरह शुद्ध होनेकी सफलता पायी। श्रीव्यासरायने थिमप्पाको अपना शिष्य बना लिया; गुरुमन्त्र प्रदान कर कनकदास नाम रखा। कनकदास नामका आशय यह था कि वे आगमें तपाये गये सोनेकी तरह शुद्ध दास—शिष्य थे। उन्होंने गुरुके आदेशसे वेलुर, तिरुपति तथा उडुपि आदि पवित्र तीर्थस्थानोंकी यात्रा की।

भगवान्‌द्वारा भक्तके यशको बढ़ानेका ढंग विचित्र तथा अमित रहस्यपूर्ण होता है। तिरुपतिके आराध्य देवताने स्वप्नमें मन्दिरके महन्तको बताया कि 'कनकदास नामके एक महात्मा दर्शनके लिये पधार रहे हैं, उनके स्वागत-सत्कारमें किसी भी प्रकारकी कमी न रखी जाय।' बड़ी श्रद्धा और तत्परतासे भगवान्‌के आदेशका पालन किया गया। संत कनकदास किसी स्थानविशेषमें अधिक देरतक नहीं ठहरते थे; वे तो तीर्थयात्रीमात्र थे। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर घूम-घूमकर भगवद्दर्शनका आनन्द प्राप्त किया करते थे। वे तिरुपति-मन्दिरमें भगवान्‌का दर्शन करने एक अपरिचित साधारण व्यक्तिकी तरह आये और चले गये। उनके आने-जानेपर किसीने भी ध्यान नहीं दिया। वे यात्राके श्रमसे बहुत थके थे; शरीरमें बड़ी शिथिलता थी। मन्दिरके ही एक पुजारीने उन्हें भगवान्‌का प्रसाद दिया। प्रसाद ग्रहण करनेके बाद वे सड़कके बगलमें एक स्थानपर सो गये। प्रातःकाल मन्दिरका पट खुलनेपर देखा गया कि भगवान्‌के श्रीविग्रहपर शोभित रत्नजटित अलंकार-परिधान नहीं है। लोग इस असाधारण घटनासे आश्चर्यमें पड़ गये। परिधानके चोरकी खोज होने लगी। सड़कपर कनकदास निद्राभिभूत पड़े थे। उनका शरीर प्रभुके अलंकार-परिधानसे शोभित था। उन्हें सोतेसे जगाया गया। वे महन्तके सामने उपस्थित किये गये। उन्हें डाकू समझा गया। उनकी पीठपर कोड़ेकी मार पड़ने लगी। उन्होंने आहतक नहीं की, नयनोंमें एक अश्रुकण भी न आ सका। प्रभुके विधानके अनुसार जो कुछ भी हो रहा था, उससे उन्होंने मनमें तनिक भी विरोधका भाव नहीं आने दिया। उन्होंने मार सह ली। लीलामयकी लीलाका पता साधारण जीवको नहीं लगने पाता। यद्यपि तिरुपतिके भगवान् भक्तकी यशो-वृद्धिकी लीला कर रहे थे, तथापि भक्तकी पीठपर कोड़े बरसते देखकर उनकी लीलामें क्षोभ उत्पन्न हो उठा। कोड़ेकी प्रत्येक मारका चिह्न भगवद्विग्रहपर अङ्कित देखा गया। प्रभुने कोड़ेकी मार अपनी पीठपर झेल ली। महन्तको अपनी उद्दण्ड भूलपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने भक्त और भगवान्‌से क्षमा-याचना की। कितनी कृपा थी तिरुपतिके आराध्य प्रभुकी कनकदासपर!

हरिदास अथवा दासकूट-संतकी परम्परामें 'कनकन-किन्डी' अथवा 'कनकदासकी खिड़की'की असाधारण घटना चिरस्मरणीय है। वे गुरुकी आज्ञासे अपनी साम्प्रदायिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्ठाकी संतुष्टिके लिये उडूपि गये। उडूपि मध्व-सम्प्रदायका गढ़ स्वीकार किया गया है। उडूपिके मन्दिरमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिष्ठित प्रतिमाका दर्शन तत्कालीन दृष्टिकोणके अन्तर्गत सामनेके प्रमुख द्वारमें प्रवेश कर प्राप्त करना महार होनेके नाते उनके लिये निषिद्ध था। संत और भगवद्भक्तका सबसे बड़ा सद्गुण यह होता है कि वे राग-द्वेषसे नितान्त परे होकर अपने सत्स्वरूपके परिशीलन और भगवान्के भजनमें तत्पर रहते हैं। संत कनकदास तो अपने परमाराध्यका दर्शन करना चाहते थे। वे मन्दिरके पीछे जाकर बड़ी तन्मयतासे भगवान्का भजन करने लगे। वे प्रभु-दर्शनके लिये विकल हो उठे। इधर भगवान् भी भक्तकी कामना-पूर्तिके लिये ही नहीं, (संत कनकदासके) दर्शनके लिये भी आकुल हो उठे। दोनों ओरसे एक-दूसरेको देखनेकी व्याकुलता असह्य हो उठी। संसारका कृत्रिम आवरण शिथिल पड़ गया। पीछे मन्दिरकी दीवारमें दरार फूट पड़ी। उस दरारसे प्रभुका कनकदासने प्रत्यक्ष दर्शन किया; इतना ही नहीं, भक्तको कृतार्थ करनेके लिये पूर्व-अभिमुख प्रभु श्रीकृष्णके श्रीविग्रहका मुख पश्चिमकी ओर हो गया। मन्दिरके प्रमुख यति तथा असंख्य भक्तों और संत-महात्माओंने महात्मा कनकदासका दर्शन कर महान् आनन्द प्राप्त किया। उपर्युक्त दरार—सुराख श्रीभगवदनुग्रहके रूपमें अब भी सुरक्षित है। उडूपिमें पधारनेवाले सैकड़ों तीर्थयात्री इस 'कनकन-किन्दी'के दर्शनसे अपना जीवन धन्य करते रहते हैं।

मध्व-मतमें परमात्माको ही एकमात्र प्रभु स्वीकार किया गया है। वे सम्पूर्ण प्रभु स्वाधीन अथवा स्वामी हैं; जीवात्मा उनका सहज स्वाभाविक दास है। संत कनकदासने उपर्युक्त मध्व विचारदर्शनके अनुरूप अपने जीवनको भगवद्भक्तिसे सम्पन्न कर असंख्य लोगोंको सर्वव्यापक परमात्माके भजनमें लगाया। उनका परमात्म-सम्बन्धी दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। उनकी साधनाके क्षेत्रमें परमात्मा सगुण-निर्गुण तत्त्वके अभिन्न स्वरूप थे। मध्व-मत संत कनकदास और पुरन्दरदासके लिये जलके समान था; वे दोनों उसके मीन थे। संत कनकदासकी वाणीमें मध्व-मतके सिद्धान्तके प्रति प्रगाढ़ निष्ठाका भावाङ्कन मिलता है। कनकदासकी वाणीके मर्मके अनुशीलनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'सम्पूर्ण विश्वमें ईश्वरत्व और दासत्व—ये ही दो भाव प्रमुख हैं। भगवान् जगदीश्वर हैं और उनसे शेष—सब कुछ उनका दास है। जो प्राणी भगवान्को अपना प्रभु और अपने-आपको उनका दास मानकर उनकी महिमाका गान करते हुए उनके आज्ञानुसार जीवनका निर्वाह करता है; वही श्रेष्ठ है तथा वही कृतार्थ भक्त है और उसका ही जीवन सार्थक है।' संत कनकदास निश्शेष भगवच्छरणागतिमें अटल आस्था रखते थे और भगवान्की अहैतुकी कृपाको अपना अखण्ड प्राणधन स्वीकार करते थे। इस तरह उनका सम्पूर्ण जीवन निर्भय, सुख-शान्तिमय तथा निश्चिन्त था। एक स्थलपर भगवत्कृपा-प्रकाशके विवेचनमें उनकी वाणी कहती है—

'मेरे मन! शान्तिमें स्थित रहो; अशान्त मत बनो। इस बातमें रंचमात्र भी संदेह मत करो कि परमात्मा समभावसे सबकी सँभाल करते रहते हैं। देखो! पहाड़की चोटीपर अङ्कुरित होनेवाले पादपोंको किसने पानी देकर सींचा और किस मालीने पानीको संचित करनेके लिये उनकी क्यारियाँ बनायीं? परमात्माने ही हमारा सृजन किया है तथा वे ही हमारे भरण-पोषणके उत्तरदायित्वका निर्वाह करते हैं। इस तथ्यमें संदेह मत करो; निस्संदेह वे ही हमारी देख-भाल करेंगे। ठीक समयपर जंगलके अनेक जानवरों तथा आकाश और हवामें उड़नेवाले असंख्य पक्षियोंको भोजन कौन देता है? जो अपने बच्चोंका पालन करती है, उस माँकी तरह भगवान् हमारे पोषणका उत्तरदायित्व वहन करते हैं। तनिक भी संदेह मत करो; पूर्ण विश्वास रखो, परमात्मा हमारी रक्षा करेंगे। छोटे-छोटे पाषाण-खण्डोंके भीतर स्थित कुर्र-कुर्र करनेवाले मेढकको भोजन कौन प्रदान करता है? श्रीकेशव हमारी आवश्यकताएँ जानते हैं और हमारी देख-भाल तथा रक्षा करते हैं, इस बातमें तनिक भी अविश्वास मत करो।'

संत कनकदासकी आध्यात्मिक शिक्षा यह थी कि जीवात्माको प्रभुके चरणदेशमें दासानुदासकी तरह पवित्र अन्तःकरणसे आत्मसमर्पण कर देना चाहिये। उनकी शिक्षाका महत्तम सारतत्त्व यह है कि कर्ता एकमात्र परमात्मा हैं। 'मैं कर्ता नहीं हूँ' इसका सदा स्मरण रखना चाहिये। उनका विचार था कि सब कुछ परमात्मामें समाविष्ट है इसलिये मनुष्यके प्रति की गयी (निष्काम) सेवा परमात्माकी ही निष्काम भक्ति अथवा सेवा है। संत कनकदासने कहा—'आत्मशान्ति—नित्यसुख ही साधनामय जीवनमें सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।' उन्होंने आचारकी पवित्रतापर बड़ा बल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने जीवनके अन्तिम दिनोंका अधिकांश वेलुरमें बिताया । वेलुरके प्रसिद्ध संत वैकुण्ठदासकी उन्होंने बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे सेवा की । संत कनकदासके दास्यभाव और विनम्रतापूर्ण जीवनसे महात्मा वैकुण्ठदास अमित प्रभावित थे । वेलुर-निवासकालमें उनकी परमात्माके प्रति बड़ी विनयपूर्ण विज्ञप्ति है—'हे देव ! यह शरीर आपका ही है, यह अस्तित्व आपका ही है । सुख-दुःख आपके ही प्रसाद हैं । जिन परिस्थितियोंमें वेद-शास्त्रका श्रवण किया जाता है, वे आपकी ही देन हैं । चन्दन और कस्तूरीकी सुगन्धमें आप ही समाविष्ट हैं । स्वादिष्ट भोजनके रसास्वादकी उपलब्धि करानेवाली जिह्वामें आपकी ही शक्ति है । मायाजालमें आबद्ध करनेवाली पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आपकी ही विभूति हैं । हे आदिकेशव ! बिना आपके मनुष्यकी कोई सत्ता नहीं है ।'

संत कनकदासने लगभग ९८ सालतक इस धराधामपर रहकर भगवद्भक्तिका प्रचार किया । कहा जाता है कि वे १६०६ ई० तक अपनी जीवनलीलामें स्थित थे । उन्होंने प्रचुर भक्तिपूर्ण पदों तथा संकीर्तनोंकी रचना की । उनकी अनुपम कृति—'हरिभक्तिसार'में उनके भगवद्भक्तिपूर्ण सिद्धान्तों, विचार-धाराओं और शरणागति-सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोणका परिचय मिलता है । उन्होंने मोहनतरंगिणी (कृष्ण-चरित); रामध्यानचरित्र, नृसिंहस्तव आदि रचनाओंके द्वारा महती कीर्ति और आत्मतृप्तिके पुण्यका अर्जन किया ।

मध्यकालके प्रायः सभी संतों तथा महात्माओंने लोगोंको सार्वभौम भागवत-दृष्टि अपनानेकी ही सीख दी । उनके वचनोंसे पता चलता है कि भगवान्का भजन करनेवाले संत जाति आदिके संकुचित सीमा-बन्धनसे ऊपर उठकर एकमात्र प्रभुकी भक्तिको ही जीवनकी परम निधि स्वीकार करते हैं । इस तरहके दृष्टिकोणसे जातिगत मान्यताओंका खण्डन नहीं, उनसे ऊपर उठकर सर्वव्यापक हरिकी भक्तिकी श्रेयस्करताका मण्डन उपलब्ध होता है । संतकी वाणी मधुमयी अमृतसंजीवनी होती है । वह लोक-जीवनमें सत्कर्मका सृजन करती है । संत कनकदासकी एक स्थलपर बड़ी पवित्र तथा मार्मिक उक्ति है—'उच्च या साधारण कुलमें जन्म ग्रहण करनामात्र उच्चता अथवा लघुताका मापदण्ड नहीं है । कमल पङ्कमें उत्पन्न होता है, पर इसे हम पूजामें भगवान्को समर्पित करते हैं । दूध गायके मांसल स्तनमें रहता है, पर बड़े-बड़े उच्च कुलोंमें जन्म लेनेवाले सम्मानित व्यक्ति उसको पीते हैं । कस्तूरी मृगकी नाभिका मैल है, पर उच्च कुलाभिमानी इसका अङ्गरागके रूपमें अपने शरीरपर लेप करते हैं । मुझे समझाइये श्रीनारायण और शंकरकी क्या जाति है; आत्मा, जीवन, प्रेम और पाँचों इन्द्रियोंकी क्या जाति है ? भगवान् आदिकेशवसे चिर आत्म-सम्बन्ध स्थिर हो जानेपर जाति भगवत्सम्बन्धमें प्रतिष्ठित हो जाती है ।'

संत कनकदासने अपने कीर्तनीय पदों और भक्तिपूर्ण उद्गारोंसे कर्णाटक प्रदेशके लोकजीवनको ही नहीं, पवित्र भारतभूमिके सर्वसाधारणको भगवान् केशवकी भक्तिसे सर्वथा सम्पन्न कर दिया । दासकूट-संत-परम्परामें उन्हें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है । हरिदासोंके इतिहासमें संत कनकदासका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है । वे भागवत धर्म—भक्तिमार्गके पोषक थे ।

पर-दोष-दर्शन पतनकारक है

साधकको चाहिये कि वह पर-दोष-दर्शनको सर्वथा त्याग दे; क्योंकि दोष करनेकी अपेक्षा पर-दोषोंका चिन्तन अधिक पतन करनेवाला है । दोषको क्रियारूपमें लानेमें तो बहुत कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, परंतु दोषके चिन्तनमें किसी प्रकारकी कठिनाई प्रतीत नहीं होती । इसी कारण दोषोंके चिन्तनमें रस लेनेकी आदत स्वाभाविक ही हो जाती है । इस व्यसनका त्याग करनेके लिये साधकको अपने दोष देखनेकी आदत डालनी चाहिये ।

—स्वामी विवेकानन्द

* * * *

तेरे भावैं जो करौ, भलौ बुरौ संसार ।
'नारायन' तू बैठकै, अपनो भवन बुहार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकूटके घाटपर

(लेखक—डॉ० श्रीशिवबहादुरसिंहजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

मन्दाकिनीकी उज्ज्वल धारा, निर्मल अनन्त जलराशि, निरन्तर उठती नवीन लहरें और सुन्दर घाट—एक मनोरम दृश्य उपस्थित करते हैं। समीप ही एक छोटा-सा ग्राम है, जिसमें अरण्यवासी परिश्रमसे अर्जित कन्द-मूल-फलादिके द्वारा जीवन-यापन करते हैं। अरण्यमें मोर, पिक, चातक, चक्रवाक तथा अन्य नाना प्रकारके पक्षी विहार करते हैं। कहीं-कहीं ऋषि-मण्डली वेद-मन्त्रोंके उच्च घोषके साथ यज्ञ-सम्बन्धी आहुति देनेमें संलग्न है, कहीं भीलोंके बालक नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें तल्लीन हैं, कहीं नर-नारी गृहस्थीके विभिन्न जंजालोंमें दिन-रात व्यस्त हैं, कहीं पुरोहितगण यजमानके हित-चिन्तनमें तत्पर हैं, कहीं सरोवरोंमें कमल विकसित हो रहे हैं और मछलियाँ कल्लोल कर रही हैं।

* * *

एक दिवसकी बात है, अरण्यवासियोंको पता चला कि 'अयोध्याके ज्येष्ठ राजकुमार पत्नी तथा अनुजके साथ चित्रकूट-वासके लिये आ रहे हैं। किसी कारणवश उनके पिताने उन्हें अरण्य-निवासके लिये आदेश दिया है।' यह समाचार मिलनेपर वनवासियोंके यहाँ उनके शुभागमनकी प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठाके साथ आरम्भ हुई। प्रातःकाल ही प्रायः समस्त नर-नारी मन्दाकिनीमें स्नान करके आतुर मनसे उन राजकुमारोंकी बाट जोहने लगे। बालकगण उनके विभिन्न प्रकारकी क्रीड़ाओंमें कुशल रूपोंकी कल्पना करने लगे। ऋषिगण अत्यन्त आनन्दित हो उन विभु राजकुमारोंका स्तवन एवं ध्यान करने लगे। मध्यदिवसकी वेलामें उछलते-कूदते बालकोंने उनके समीपतक आ जानेकी खबर गाँववालोंको दी। ग्रामीण जनता आगे बढ़कर उनकी अगुआनीके लिये खड़ी हो गयी और तभी नयनाभिराम राम सीता तथा लक्ष्मणके साथ उत्तर दिशासे आते दिखायी दिये। लोगोंमें हर्षका पारावार उमड़ पड़ा। सबके नेत्र उसी ओर स्थिर हो गये। सब एकचित्त होकर उस रूप-निकेतनकी ओर ही देखने लगे। अप्रतिम सौन्दर्य, अद्भुत कान्ति, सुन्दर मुख, मनोरम भौंहें, उत्फुल्ल कमलको विलज्जित करनेवाले लोचन, शुक-तुल्य नासिका, विशाल स्कन्ध, जटा-मुकुट-मण्डित मस्तक, सिंहकी-सी कटि, कोमल चरणारविन्द, धनुष-बाणसे सनाथ हाथ; नखसे-शिखातक अनुपम शोभाजनित आनन्दके अतिरेकसे सभी चित्रलिखित-से हो गये। उस सौन्दर्य-सुधामें अवगाहनसे उल्लसित हुए लोगोंको अपनी सुध न रही। इतनेमें ही वे तीनों समीप आ गये। लोगोंकी संज्ञा लौटी। एक ग्राम-वधूटीने उत्साहित हो सीतासे पूछ लिया—'सुमुखि! ये राजकुमार तुम्हारे कौन हैं?' गुरुजनोंके समीप लज्जासे अवगुण्ठित होनेपर भी उत्तर न देनेसे इन सबकी अवमानना होगी—ऐसा सोचकर सीताजीने मधुर वाणीमें बताया—'ये गोरे रंगके सिंह-केसरी मेरे देवर हैं' और पुनः आँचलको सँभालती हुई लज्जाशीला जनककिशोरीने रामकी ओर तिरछी चितवनसे देखकर सूचित किया कि 'ये साँवले-सलोने पुरुषसिंह मेरे पति हैं।' ग्राम-वधूटियाँ परिचय पाकर दुर्लभ दर्शनसे निहाल हो गयीं और वे बटोही आगे बढ़ते हुए कामदगिरिके समीप जा पहुँचे।

* * *

कामदगिरि एक उत्तुङ्ग पर्वत है, जिसपर नाना प्रकारके वृक्ष लहलहा रहे हैं। मौलसिरी, जम्बू, रसाल, तमाल तथा वटके अतिरिक्त अन्य जातिके भी असंख्य वृक्ष कामदगिरिकी शोभा बढ़ाते हैं। ग्रामवासियोंने उस रमणीय पर्वतके एक सुन्दर स्थलपर दो पर्णकुटीर बनाये—एक लघु, दूसरा विशाल, जिनके मध्यभागमें एक विशाल वट-वृक्ष अवस्थित है। उसके चारों ओर अधिष्ठान निर्मित किये गये। श्रीराम-लक्ष्मण तथा सीता वहीं वास करने लगे। स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर वे सत्सङ्गमें भाग लेने लगे; ऋषि-मण्डली ज्ञानार्जन-हेतु प्रातः तथा सायंकाल वहाँ बैठने लगी। योग, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, ब्रह्म, जीव तथा माया आदि विचित्र विषयोंपर चर्चा होने लगी। सामान्य-जन उनके दर्शन-हेतु एकत्रित होते थे, बालकगण उनके साथ मनोरञ्जनके लिये आ जाते थे तथा वृद्धजन ज्ञान-लाभके उद्देश्यसे वहाँ पहुँचते थे। नारियाँ सीताजीके साथ वार्तालाप-विनोदका सुख लूटनेके लिये इकट्ठी होती थीं। उनका दिन व्यस्तताके साथ बीतता था और रात्रि योग-निद्रामें। ऐसी दिनचर्या थी श्रीराम आदिकी।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र, पुष्प, फल, फूल तथा कन्द-मूल यही उनके लिये नित्यका भोजन था । बालकगण सवेरे ही उठकर सभी वस्तुएँ पहुँचाते थे । पूजाके लिये सुन्दर पत्र-पुष्प, पीनेके लिये मन्दाकिनीका स्वच्छ जल और भोजनके लिये सुन्दर फल प्रस्तुत करते थे और इनके बदलेमें उन्हें प्रभुका प्यार-दुलार प्राप्त होता था ।

* * *

एक दिन राम, लक्ष्मण तथा सीता वनमें विचरण कर रहे थे । मार्गमें एक स्थानपर अस्थियोंका ढेर दृष्टिगोचर हुआ । ऋषियोंसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि ये वनवासी मुनियोंकी अस्थियाँ हैं, जिन्हें राक्षसोंने मारकर अपना आहार बना लिया । प्रभुकी आँखें भर आयीं; उन्होंने भुजा उठाकर प्रण किया—'मैं भूतलको इन राक्षसोंसे शून्य कर दूँगा ।'

* * *

कुछ दिन और बीते; मध्यदिवसमें पर्णकुटीपर सत्सङ्ग होता था; ध्यान-धारणा आदिकी बातें चल रही थीं, तबतक कुछ बालक दौड़े आये । उन्होंने सूचना दी कि 'भरतजी विशाल सेना साथ लिये इधर ही आ रहे हैं ।' प्रभुको सोच हो आया । वे थोड़े समयके लिये विचारमग्न हो गये । उन्हें चिन्तित देख लक्ष्मणजीका क्रोध उभर आया । उन्हें भरतकी नीयतपर संदेह हो गया । वे रौद्र-भावसे कहने लगे—'आज भरतको उनके पिछले कर्मोंका फल भुगतना पड़ेगा; उनकी कूटनीतिका दण्ड उन्हें मिलेगा ।' वे और भी बहुत कुछ कहते, परंतु रामके मना करनेपर मौन हो गये और पुनः सत्सङ्गमें ज्ञान-चर्चा होने लगी ।

* * *

श्रीराम किसी ऋषिका प्रवचन सुन रहे थे । लक्ष्मण उनकी सेवामें संलग्न थे । इधर भरतजी पर्णकुटीपर पहुँचकर दण्ड-प्रणाम करने लगे । लक्ष्मणने सेवाका भार छोड़कर धीरेसे बताया कि 'भरतजी प्रणाम कर रहे हैं ।' श्रीराम भावोद्रेकसे पूर्ण हो शीघ्रतासे उठे । उनका उत्तरीय पट कहीं छूट गया, धनुष कहीं गिर गया, निषङ्ग तथा बाण कहीं रह गये । उन्होंने भावविह्वल हो भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया, आँखोंसे अश्रु-धारा बह चली । ऋषिमण्डली मुग्धभावसे यह मिलन-दृश्य देखती रही । भरतको अपने साथ लाकर रामने आसनपर बिठाया । भरत भाव-विभोर थे; माताके कृत्यसे संकुचित होनेपर भी प्रभुकी उदारतासे निर्भीक थे । फिर केवटके यह सूचित करनेपर कि 'माताएँ भी आयी हैं ।' शत्रुघ्नको सीताके पास छोड़कर श्रीराम शीघ्रतासे माताओंके पास पहुँचे । कैकेयीसे विशेष स्नेहके साथ मिले और प्रजाको भी उन्होंने स्नेह एवं आदर दिया । वहीं उन्हें पिता दशरथके परलोकवासी होनेका समाचार मिला । इससे राम विशेष दुःखी हुए और उन्होंने शास्त्र तथा लोकाचारके अनुसार श्राद्धकर्म किया ।

चित्रकूटमें कई दिनोंतक वह राजमण्डली विचार-विमर्श करती रही । विचारका विषय था—श्रीराम वनमें न रहकर अयोध्या चलें । भरतको संतोष नहीं हो रहा था । वे चाहते थे कि श्रीराम अयोध्या लौटकर शासन सँभालें; परंतु पिताके वचनका पालन करनेवाले दृढ़-प्रतिज्ञ राम चौदह वर्षका समय वनवासमें ही बिताना चाहते थे । अन्तमें भारी हृदयसे भरत इस बातपर राजी हुए कि श्रीराम पिताके सत्यकी रक्षाके लिये नियत समयतक वनमें रहें । वे अपने मनके प्रबोधके लिये श्रीरामपादुका लेकर अयोध्या वापस आये, उसे सिंहासनपर रखा और स्वयं वीतराग योगीकी भाँति विरक्त रहकर राज्य-भार सँभाला ।

एक बार जब श्रीराम चित्रकूटसे आगे जा रहे थे, वे सीताकी इच्छाके अनुसार उनको साथ ले अत्रि-अनसूयाके आश्रममें गये । सीताने अत्यधिक श्रद्धा-भक्तिसे अनसूयाके चरणोंका स्पर्श किया । अनसूयाने उन्हें पति-भक्तिके मर्म समझाये, अत्रिने रामको ज्ञानकी बातें सुनायीं । बहुत देरतक उनमें ज्ञानालाप होता रहा ।

कहा जाता है कि रामने कामदगिरिपर बारह वर्ष बिताये । इस कालमें वे कभी-कभी स्फटिकशिलापर बैठते थे, जहाँ उनके चरणचिह्न अङ्कित हैं, कभी किसी प्रस्तरखण्डपर विश्राम किया करते थे, जहाँ शयन-चिह्न सुशोभित हैं । चित्रकूटकी प्रत्येक वनस्थली, झुरमुटोंके समूह, वृक्षोंकी पङ्क्तियाँ, लताओंके गुल्म, पुष्पोंके पराग, पौधोंके किसलय, पर्वतोंकी शिलाएँ, मन्दाकिनी तथा पयस्विनीकी निर्मल धाराएँ, सरोवरोंकी जलराशि, मलय वायु तथा वहाँकी पृथ्वीका प्रत्येक रजःकण प्रभुके चरण-स्पर्शसे पवित्र हैं । चित्रकूटका कौन-सा स्थल है, जहाँ श्रीराघवेन्द्रके चरण न पड़े हों; कौन-सा कोना है, जहाँ प्रभुने पदार्पण न किया हो; कौन-सा स्थान है, जहाँ रघुनाथके चारु चरणोंका संचरण न हुआ हो । वस्तुतः वहाँका प्रत्येक स्थल आज भी पवित्रता, निर्मलता तथा सौन्दर्यसे परिपूर्ण है; वहाँ जानेसे आज भी असीम शान्ति प्राप्त होती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्ययामृतमश्नुते

(लेखक—आचार्य श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय)

यह संसार दुःखरूप है,[1] सब सुविधाओंसे सम्पन्न व्यक्तिको भी संतुष्ट नहीं कहा जा सकता। ऐसा अनुभव होता है कि मनुष्यको कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। वह अशान्तिके कसैले धुएँमें घुटकर ही मर जायगा।

मनुष्यने इस अशान्तिसे मुक्ति पानेकी चेष्टा भी कम नहीं की है, यथाशक्ति उसने यहाँ-वहाँ भाग-दौड़ की है। लेकिन अशान्तिसे मुक्ति पानेके चक्करमें वह एकके बाद एक उन ओझों-सयानोंके जालमें फँसता रहा है, जो रोगको दबानेकी अपेक्षा उसे और अधिक उभाड़ते रहे हैं। 'मर्ज बढ़ता गया' ज्यों-ज्यों दवा की—मनुष्यने जितने ही ओझों-सयानोंके पास चक्कर काटे, शान्ति उससे उतनी ही दूर खिसकती गयी।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें न्यूटन, केपलर, कॉपरनिकस, बेकन, और गैलिलियों प्रभृति वैज्ञानिकोंके नेतृत्वमें प्रारम्भ वैज्ञानिक-आन्दोलनके द्वारा संसारको इन ओझों-सयानोंसे कुछ राहत मिली तो मनुष्य नीम हकीमके सुदृढ़ जालमें फँस गया; क्योंकि वैज्ञानिकोंके कुछ आश्चर्यजनक करतबोंकी चकाचौंधसे उनकी ओर आकृष्ट होकर मनुष्यने उनसे जो बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधी थीं, उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि आशा विज्ञानके द्वारा 'सर्वव्यापी अशान्तिकी पूर्णरूपेण परिसमाप्ति' थी।

एक बार ऐसा लगा अवश्य कि संसार अब स्थायी सुख-शान्तिसे पूर्ण एक रहनेके योग्य घर बन जायगा और विश्व-ब्रह्माण्ड अपने सम्पूर्ण रहस्य मनुष्यके समक्ष प्रकट कर देगा। लेकिन मनुष्यकी आँखें तब खुलीं, जब विज्ञान राजनीतिज्ञोंके हाथोंमें खेलनेका खिलौना बनकर विपत्तियोंके पहाड़के रूपमें उसके सिरपर टूट पड़ा और संसार कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक मनुष्योंको मृत्युकी घोर निद्रामें निमग्न करनेवाले शस्त्रास्त्रोंके परीक्षणके लिये युद्धस्थलके रूपमें परिणत हो गया।

स्थिति आज भी कुछ भिन्न नहीं है। हर एक राष्ट्र-राज्य युद्ध-शिविर बन चुका है और राष्ट्र-राज्योंकी बागडोर सँभालनेवाले राजनीतिज्ञ अपने-अपने शिविरोंमें विज्ञानकी सहायतासे आणविक शस्त्रास्त्रोंका ढेर अधिक ऊँचा करनेकी तैयारीमें दिन-रात एक करते हुए अशान्तिको ही बढ़ावा दे रहे हैं।

अतः सुनिश्चित रूपसे ओझों-सयानों और नीम हकीमोंके चंगुलमें फँसकर शान्ति कभी नहीं मिल सकती। मनुष्यको उनके सुदृढ़ घेरेको तोड़कर बाहर निकलना ही होगा। इस चक्रव्यूहको तोड़ते ही नब्ज पकड़कर रोग पहचान लेनेवाली और अचूक औषध देनेवाली भूमण्डल-पर 'परा' ज्ञानकी अध्यापिका भारतीय मनीषियोंकी प्रतिभा उसके सामने खड़ी मिलेगी। इस भारतीय मनीषियोंकी प्रतिभाके अनुसार—'अशान्ति मनुष्यको तब ग्रसती है, जब उसका अपने मूल उद्गम भूत, वर्तमान और भविष्य रूप तथा इन अवस्थाओंसे भी अतीत ओंकारपदबोध्य परब्रह्म परमात्मासे सम्पर्क टूट जाता है'। इसीलिये केनोपनिषद्के शान्तिपाठमें ऋषि प्रार्थना करते हैं—'माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्। अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु॥'—मैं परब्रह्म परमात्माका निराकरण न करूँ, परब्रह्म परमात्मा मेरा निराकरण न करे; मेरा उसके साथ अटूट सम्बन्ध हो, सम्बन्ध-विच्छेद कभी न हो।'

लेकिन परब्रह्म परमात्मासे सम्पर्क बनाये रखनेके लिये आस्तिक बन इस दृश्यमान, अनुभवगम्य और व्यक्त जगत्से परे विद्यमान अतीन्द्रिय तत्त्वके ज्ञानकी प्राप्ति अनिवार्य है,[2] जब कि इन्द्रियोंके स्वभावके कारण हम नास्तिक बन दृश्यमान, अनुभवगम्य और व्यक्त जगत्को ही सब कुछ मान बैठकर अज्ञानको अपने मनोमस्तिष्कपर सरलतासे अधिकार कर लेने देते हैं। परिणाम यह निकलता है कि परमसत्तासे सम्पर्क बनाये रखनेकी एकमात्र माध्यम, उसकी ही अंशरूप, सब प्राणियोंकी हृदयरूपी गुहामें स्थित अमर ज्योति जीवात्मातक मनुष्यकी पहुँचके सब द्वार बंद हो जानेसे

१. तुलनाके लिये रामदासजीके शब्द तत्काल मुँहसे निकल पड़ते हैं 'मूर्खामाजी परम मूर्ख, जो संसारीं मानी सुख'—मूर्खोंमें परम मूर्ख वह है, जो संसारको सुखमय समझता है।

२. तुलनीयः 'ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत्'—बस एक ज्ञान ही सत्य है और सब मिथ्या है। —विष्णुपुराण २। १२। ४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलोच्छेदक प्राणियोंमें परस्पर शत्रुभाव बढ़ जाता है। हर एक अपनेको ही सुखी देखना चाहता है, दूसरोंको नहीं। भ्रष्टाचारपूर्ण आपाधापीकी मनोवृत्ति सबमें आसन जमाकर बैठ जाती है। बेईमानीके लिये 'टैकटिक्स' शब्द व्यवहृत होने लगता है। स्थापित कानून और व्यवस्थाके उल्लङ्घन तथा हिंसाके ताण्डवको साहसके प्रदर्शनकी संज्ञा दे दी जाती है। रक्षक भक्षकका रौद्ररूप धर लेते हैं। मनुष्य रहन-सहनका स्तर ऊँचा करनेके चक्करमें विस्फोटक वासनाओं-लालसाओंके चंगुलमें फँस जाता है। दूसरोंको धकेलकर अपना मार्ग बनाना चतुरता समझी जाती है। वातावरण स्थायी अशान्तिका डेरा बन जाता है।

इस प्रकार हम समवेत स्वरसे यह भी मान सकते हैं कि दारुण दुःखोंसे पूर्ण अशान्तिका कारण अन्य कुछ नहीं, अविद्या (अज्ञान) ही है और इस अशान्तिसे मुक्ति हमें विद्या (ज्ञान) से मिलेगी। इसीलिये गीताके शब्दोंमें—'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'[3] (गीता ४। ३८) इस पृथ्वीपर ज्ञानके सदृश पवित्र वस्तु और कुछ नहीं है"। परंतु 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्' ज्ञान अज्ञानसे आवृत है। हम अपनी समझ-बूझ खो बैठे हैं; बात-बातमें हमारी किंकर्तव्य-विमूढावस्था इस बातका प्रमाण है कि अन्तरतमकी गहराइयोंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके आलोकको हमतक पहुँचानेवाले संचार-साधनोंमें कहीं भारी गड़बड़ है। इस गड़बड़ीको दूर करनेके लिये हमें उन तत्त्वदर्शी महान् विचारकोंकी शरणमें जाना चाहिये, जो अन्तरतमकी गहराइयोंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित होकर परमसत्यको अनुभव कर चुके हैं। आत्मामें ही रत, आत्मामें ही तृप्त और आत्मामें ही संतुष्ट तथा किसी भी प्राणीपर अपने किसी स्वार्थके लिये निर्भर न रहनेवाले महापुरुष ही विनयपूर्वक आदरभावसे, सेवाद्वारा परिप्रश्न (तर्क-वितर्क, प्रश्नोत्तर) के लिये उपयुक्त अधिकारी हैं।

इन उपयुक्त अधिकारियोंके निर्देशनमें, उनके अभ्युदयनिःश्रेयसप्रद वचनोंको श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा मनोमस्तिष्कमें कूट-कूटकर भरते हुए, सुनिश्चितरूपसे समय आनेपर हम स्वयमेव अपने अंदर इस ज्ञानको अधिगत कर लेंगे। परंतु हमें भूलना नहीं चाहिये कि 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः' (गीता ४। ३९) श्रद्धावान्, निरन्तर तत्पर और संयतेन्द्रिय व्यक्ति ही ज्ञानको प्राप्त करता है। इनमेंसे एकका भी अभाव हमारी सफलताको संदिग्ध बना सकता है।

अतः हेनरी एडम्स (Henry Adams) का यह विचार झुठलानेके योग्य नहीं है—"After all, man knows mighty little, and may some day learn enough of his own ignorance to fall down and pray." अन्ततोगत्वा, मनुष्य बहुत ही कम जानता है और शायद किसी दिन वह अपने अज्ञानके विषयमें इतना काफी कुछ जान पाये कि वह विनीत हो जाय और प्रार्थना करने लगे। ऐसे इस अज्ञानके कारण जिन घातक परिस्थितियोंसे हम गुजर रहे हैं, उन घातक परिस्थितियोंकी परिसमाप्तिके लिये हमें ज्ञानकी प्राप्तिके लिये कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिये; क्योंकि भगवती गीताका यह वचन श्रुति, स्मृति और इतिहाससे संसिद्ध तथ्य है कि, 'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति' (गीता ४। ३९) मनुष्य ज्ञानको प्राप्त करके सत्वर परमशान्ति प्राप्त कर लेता है। जबतक हम ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे, अपने आपको पहचानकर अपने मूल उद्गमसे पुनः सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकेंगे। परिणामस्वरूप सब प्राणियोंमें निरपवादरूपसे एक ही आत्माके विद्यमान होनेके तथ्यकी विशेषता विस्मरणमें निहित मान ली जानेसे अन्ताराष्ट्रिय और अन्तर्देशीय शान्तिके संस्थापनार्थ विहित योजनाएँ सदैव विफल होती रहेंगी और अव्यवस्थित अशान्ति मनुष्यको इसी प्रकार और अधिक कसकर पकड़ती हुई भूमण्डलपर जीवनको अभिशाप सिद्ध करती रहेगी।

३. तुलनाके योग्य लोकप्रसिद्ध ईसाई जनश्रुतिको उद्धृत करना अनुचित न होगा—"The fear of Lord is the beginning of wisdom."—ईश्वरका भय प्रज्ञाका आरम्भ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत-साहित्यमें नामकी साधना

(लेखिका—डॉ० श्रीरेणुका देवी एम्० ए० (द्वय), बी० एड०, पी-एच्० डी०)

संत-साहित्यमें नाम-साधना एक ऐसा सेतु है, जिसके माध्यमसे भक्त ब्रह्मके साथ तादात्म्य स्थापित करता है। ब्रह्मका कोई रूप नहीं है। अतः उस अरूपकी साधनाके लिये एक विशिष्ट संयोजक तत्त्वकी आवश्यकता है, जो उसे रूपान्वित भी कर सके और उसकी अरूपताको भी व्यक्त कर सके। इसी धारणाको दृष्टिमें रखकर भारतीय धर्म-साधना-में नाम-माहात्म्यकी प्रधानता प्रतिपादित की गयी है। वस्तुतः 'नाम' शब्दके आते ही किसी विशिष्ट सत्ताकी रूपमयी अभिव्यक्तिका बोध होता है। जहाँतक सगुण संत-भक्त-कवियोंका प्रश्न है, उनके साथ उक्त कथन अपने अभिधेयार्थमें ही ग्राह्य है। परंतु निर्गुण भक्त कवियोंकी निर्गुणोपासनामें पाठकका मन नाम शब्दसे सहसा विस्मित हो जाता है। इसका कारण यह है कि अरूपका नामकरण कैसे किया जा सकता है? क्योंकि नाम सीमाका बोधक है, जब कि ब्रह्म सीमा-विहीन है। इस निखिल सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुमें पाँच तत्त्व हैं—सत्, चित्, आनन्द, नाम और रूप। इनमेंसे प्रथम तीन निर्गुण ब्रह्मके गुणधर्म हैं और अन्तिम दो तत्त्व—नाम और रूप सगुण ब्रह्मके द्योतक हैं।

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

(मानस, बालकाण्ड)

तुलसीकी उपर्युक्त चौपाईमें 'ईस' शब्द विचारणीय है। यहाँ नाम और रूप दोनों ईश्वरकी ही उपाधि हैं। अतः नाम और रूप दोनों ही तत्त्व सगुण ब्रह्मकी उपाधियाँ हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रह्म असीम है, पर मूलतः ससीम और असीममें कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही मूल सत्ताके विविध रूप हैं। सीमाका असीममें पर्यवसान, बूँदका समुद्रमें विलयन और ब्रह्मका ईश्वरके रूपमें प्रतिफलित होना एक ही तात्त्विक बोधको व्यक्त करते हैं। अब नाम और रूपके सापेक्षिक महत्त्वपर विचार करना आवश्यक है।

प्रश्न है—नाम और रूप दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है? तुलसी तो **'को बड़ छोट कहत अपराधू'** कहकर असमंजसमें डालते हुए भी **'देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥'** से संशयका समाधान भी स्पष्ट कर देते हैं। रूप भी नामके ही अधीन है। बात कुछ ऐसी है भी। जब हम किसी व्यक्तिविशेषका नाम लेते हैं तो उस विशेष व्यक्तिका ही बोध होता है, न कि उसके समान रूपवाले अन्य व्यक्तियोंका; यही कारण है कि नाम रूपसे विशिष्ट है। इसीलिये तुलसीने जहाँ नाम और रूपको ही ईश्वरकी संज्ञासे अभिहित किया है, वहीं क्रमकी दृष्टिसे 'नाम'को 'रूप'से पहले स्थान दिया है। नाम रामसे भी अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि **'राम एक तापस तिय तारी।[1] नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥'** इस पंक्तिमें 'एक' और 'कोटि' शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं दो शब्दोंका प्रयोग कर तुलसीने 'राम' और 'नाम'के वैभिन्न्यको प्रतिपादित करते हुए नामकी श्रेष्ठता स्थापित की है। जहाँ रामने केवल एक तपस्वीकी पत्नीको मोक्ष दिया, वहीं नामने सहस्र कोटि दुष्टोंके स्वभावका परिष्कार किया। यद्यपि व्यापक रूपसे 'तारक' और 'सुधारक' दोनोंका महत्त्व है, पर महत्त्व-की दृष्टिसे सुधारक अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि उसने हजारोंकी संख्यामें दुष्टोंका सुधार किया है—**'कहेउ नामु बड़ ब्रह्म राम तें'** से तुलसीका ध्यान दो बातोंपर स्वतः गया। इस पङ्क्तिमें जहाँ वे नामकी महिमा प्रतिपादित करते हैं वहाँ 'ब्रह्म' शब्दका 'राम'के साथ प्रयोगकर यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि 'राम भी उसी विराट्रूप निर्गुण ब्रह्मकी सगुण अभिव्यक्ति है, जिसे निर्गुनियाँ संतोंने अपनी अटपटी बानियोंके माध्यमसे व्यक्त किया है।'

व्यावहारिक दृष्टिसे भी किसी वस्तुका ज्ञान उसके नामके माध्यमसे ही होता है। उदाहरणके लिये हम मानवको ही ले सकते हैं। मूलतः मानव महान् और अमर है; परंतु वह अपने भिन्न-भिन्न गुण और धर्मके कारण नाना रूपोंमें ज्ञात है। वस्तुतः समष्टिगत मानवसमूहके वैयक्तिक बोधके लिये नामका होना आवश्यक है। यदि कोई जुड़वाँ भाई या बहन हैं तो रूपकी एकता होते हुए भी नाम ही दोनोंकी पृथक्ताका बोधक

१. कहनेका अर्थ यह नहीं कि रामने केवल एक (अहल्या)को ही तारा है, पर इस चौपाईविशेषके प्रसङ्गमें यह उचित हो जाता है कि 'एक' शब्दपर विशेष बल दिया जाय। अतः अध्येताको भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये कि रामने केवल एक ही भक्तको तारा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। नामकी महत्ता इतनी है कि विशिष्ट नामके प्रचारसे ही लोग आकर्षित होने लगते हैं। आशय यह है कि नामके माध्यमसे ही व्यापक परिधिके भीतर एक ज्वलन्त विन्दुकी परिकल्पना की जाती है। यही कारण है कि रूपकी अपेक्षा नाम अधिक श्रेष्ठ है।

आध्यात्मिक धरातलपर भी इसी प्रकार विराट् ब्रह्मकी उपासनामें उसकी विशिष्टताके ऊपर मनको केन्द्रीभूत करनेके उद्देश्यसे ही निर्गुण और सगुण संतोंने नाम-साधनाको अपनाया है। नामकी विशिष्टता निरूपित करते हुए महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजका कथन है—'राम' श्रीभगवान्का एक विशिष्ट नाम है। इसकी महिमा अनन्त है। शास्त्रोंने इसे ही तारक ब्रह्मके नामसे अभिहित किया है। तारक शब्द 'तृ' धातु+ण्वुल् प्रत्ययके योगसे निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है संसारके क्लेशादिसे तारनेवाला वह किस लय और गतिसे दुखी व्यक्तिको अपने साथ लेकर भवसागरसे पार उतार देता है, यही तारनेवालेकी विशिष्टता है।

भक्तिके जिस आन्दोलनका सूत्रपात दक्षिणसे हुआ, उसीने उत्तर भारतमें परिस्थितिके अनुरूप सामान्य भक्ति-मार्गका प्रदर्शन किया। इस सामान्य भक्तिका प्रवर्तन महाराष्ट्रके संत नामदेवने किया। वेदों, पुराणों, भक्तिसूत्रोंसे चली आती हुई परम्परागत नाम-साधनाको प्रश्रय मिला। परिणामस्वरूप निर्गुणी एवं सगुण संतोंके साहित्यमें भी नाम-साधनाका महत्त्व अधिक बढ़ गया। भागवतादि भक्ति-ग्रन्थोंमें नवधा भक्तिके विभिन्न प्रकारोंमें स्मरण-भक्ति भी एक अन्यतम रूपमें वर्णित है। सगुण भक्तोंके लिये नाम, रूप, लीला, धामके अनुशीलनका अधिक महत्त्व है।

सगुण संतोंके संदर्भमें तो नामका स्वारस्य स्पष्ट ही है, परंतु निर्गुणियोंकी नाम-साधनाको स्पष्ट करना आवश्यक है। निर्गुण सम्प्रदायके संतोंने ब्रह्मके लिये अनेक शब्दों—जैसे शून्य, निरञ्जन, लौ, सुरति—शब्द-योग इत्यादिका प्रयोग पर्यायरूपमें किया है। ब्रह्म जो अरूप है, उसको 'शून्य'-से अभिहित करके ध्यान केन्द्रित करनेकी जो परिपाटी निर्गुणियोंके यहाँ पायी जाती है, वह सगुणोपासकोंके नामके अनुरूप ही है। स्पष्ट ही है कि अरूप ब्रह्मको इस प्रकारके रहस्यात्मक नामोंसे अभिहित करके साधना करनेका जो विधान निर्गुण-साहित्यमें पाया जाता है, वह नाम-साधनाकी महत्ताका ही प्रतिपादक है।

संत सत्यके सम्यग् द्रष्टा होते हैं। अतः इस दृष्टिसे निर्गुण संत भक्त कवि और सगुण संत भक्त कवि एक ही परिधिमें आ जाते हैं। यही कारण है कि निर्गुण एवं सगुण दोनों ही कवियोंकी साधनामें अन्तर होते हुए भी उनकी साधना-पद्धतिमें नाम-महिमाको प्रमुख स्थान दिया गया है। सर्वप्रथम निर्गुण संतोंके साहित्यमें प्रयुक्त नाम-साधनापर विचार किया जायगा, तत्पश्चात् सगुण-साहित्यका अनुशीलन अपेक्षित है।

निर्गुण संतोंके प्रादुर्भावके पूर्व सामान्य जनताकी जिस धार्मिक दृष्टिका झुकाव बहुदेववादकी ओर हो गया था, वह अब एकनिष्ठ होकर विराट्रूप सत्य परम ब्रह्मकी ओर आकर्षित हो गया। यद्यपि सत्य नाम, रूप, गुणविहीन होता है, तथापि यह समस्त ब्रह्माण्डका निर्माण-हेतु है। अतः इसीको वैदिक साहित्यमें 'ऋत'नामसे अभिहित किया गया है। इसी ब्रह्मके नाम-जपका उपदेश जनतामें इन संतोंने प्रचारित किया। निर्गुणी संतोंके समक्ष ईश्वरका न केवल एक नाम-रूपधारी रूप था, वरन् उनके सामने सृष्टि-कर्ता ब्रह्मका विराट् रूप था, जिसके नामजपका उपदेश उन्होंने अपनी साखियों, सवाइयों, पदों एवं बानियोंके माध्यमसे जनतामें सम्प्रेषित किया। यही कारण है कि निर्गुण सम्प्रदायके संतोंने अव्यक्त, अगोचर परब्रह्मका निराकार, निरञ्जन रूपमें वर्णन करके अपनी आस्थाको नाम-साधनापर बल देते हुए संवर्धित किया। निर्गुणधाराके प्रारम्भिक संत कवि नामदेवसे लेकर अन्य सभी संतोंने नाम-माहात्म्यपर विशेष बल दिया है। कबीरदासने तो राम-नामको ही 'ततसार' स्वीकार किया है—

कबीर कहैं मैं कथि गया कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाम ततसार है सब काहू उपदेस॥

(कबीर-ग्रन्थावली, पद—२)

कबीरकी भाँति ही संत चरनदास, सहजोबाई, सुन्दरदास, गरीबदास, मलूकदास आदि संतोंने नामको 'सिरोमनि' परमात्माका 'प्रतीक' 'अमूल्य' तथा 'महौषधि' आदि विशेषणोंद्वारा विभूषित करके नामकी महत्ता स्थापित की है। निर्गुणी संतोंने अपने साहित्यमें 'पारस', 'जहाज' आदि संज्ञाएँ नामके लिये ही प्रयुक्त की हैं, जिनसे 'नाम'के तारक गुणका बोध होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि नाम पारस अहै मन है मैलो लोह।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह॥

(संतबानी-संग्रह—भाग १)

निर्गुण संतोंकी भाँति सगुण संतोंने भी नाम-जपकी महिमा वर्णित की है। वेदान्तके जिस बुद्धिप्रधान ब्रह्मकी भावनात्मक अभिव्यक्ति निर्गुण संत भक्त कवियोंने की उस भावनात्मक ब्रह्मकी रूपात्मक अभिव्यञ्जना ही सगुण संत-भक्त-कवियोंको अभिप्रेत था। अरूप ब्रह्मके जिस विराट् रूपकी भक्ति निर्गुण संतोंने अपनी गलदश्रु भावुकतासे की, उसीकी मदनमोहन अभिव्यक्ति सगुणोंके यहाँ हुई। परिणाम-स्वरूप निर्गुणियोंका अरूप ब्रह्म सगुणियोंका रूपवान् ईश्वर हो गया और वह नाम-विशेषसे सम्बद्ध हो भक्तोंके समान मानव-भूमिपर आ खड़ा हुआ। इस सरूप ईश्वरकी नाम-जप-साधनाका उपदेश देनेमें संत तुलसी अग्रणी हैं। तुलसीका मानस तो नाम-माहात्म्य-वर्णनसे ओत-प्रोत है। कबीरका 'नाम' 'ततसार' था तो तुलसीका राम-नाम 'मणिदीप' होकर भक्तोंकी जिह्वापर शोभायमान होने लगा—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(मानस, बालकाण्ड दोहा २१)

तुलसीने तो यहाँतक चेतावनी दी है कि यदि **"भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ"** भी रामका नाम निकल आये तो उसे **"मंगल दिसि दसहू"** ही समझना चाहिये।

सगुण-संत-भक्त कवियोंके यहाँ आराध्यका नाम और रूप—दो ही तत्त्व भक्तिके लिये पर्याप्त स्वीकार किये गये हैं। यही कारण है कि तुलसीकी भाँति सूर भी अपने मुरली-मोहनके नामकी 'ओट' (सहारा) लेना नहीं भूलते।

बड़ी है राम नाम की ओट।

(सूरसागर)

सूरदासकी गोपियाँ सदैव कृष्णका नाम-जप करती दृष्टिगोचर होती हैं। नाम-जपकी सहज अभिव्यक्ति सूरदासने गोपियोंके माध्यमसे 'सूरसागर' में की है। गोपियोंके लिये न तो मालाकी आवश्यकता है और न नाम-जप ही संख्याकी परिधिमें घिरा हुआ है। इसी स्वाभाविकताकी अभिव्यञ्जना तो निर्गुण संत कवियोंकी नाम-जप-साधनामें हुई है। सूरकी गोपियाँ तो बड़े ही सहज ढंगसे चलते-फिरते, दही मथते, गृहकार्य करते सदैव कृष्णका नाम लेती रहती हैं। यही तो उनकी नाम-साधनाका स्वाभाविक स्वरूप है। मीराके काव्यमें भी नाम-जपकी ऐसी ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। उनका **'गिरिधर गोपाल'** ही सब कुछ है।

उपर्युक्त अनुशीलनके उपरान्त यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि समग्र संत-साहित्य नाम-जप-साधनाकी पीठिका-पर ही आधृत है। भक्तोंके लिये उनके आराध्यका नाम ही संबल है, जो इस भवसागरसे उनका उद्धार कर सकता है। सच्चे हृदयसे लिया गया 'नाम' ही वह प्रेम-साधना है जो कभी निष्फल नहीं जाती। प्रियतमका नाम ही भक्त एवं उदात्त प्रेमीकी प्राण-रक्षाका कारण सिद्ध होता है। यही नामकी महत्ता है। साधक एवं एकनिष्ठ प्रेमीकी महत्ता भी इसीमें है कि उसके आराध्यका नाम उसके श्वास-प्रश्वासके साथ सदैव चलता रहे। इसीको निर्गुणी संतोंने अन्तःसाधनाका नाम दिया है।

'शिव' नामका माहात्म्य

पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामतः। भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरैर्मुने॥
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते। संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने। शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः। पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि॥
शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः। संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन॥
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्। तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा॥

(शिवपुराण वि० २३। २७, २९—३३)

भगवान् शिवके नामसे जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर कर नहीं सकते। जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ हो संसाररूपी समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसारके मूलभूत पातकरूपी पादपोंका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिव-नामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले लोगोंको शिव-नामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टिजनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते। जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, **ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त प्राणियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो ?

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

पुराण-साहित्यका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्रात्मक श्लोक है, जो हमें जगत्के प्राणियोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसके लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्देश देता है। उस सूत्रको धर्मका सर्वस्व बतलाया गया है और वास्तवमें वह है भी वैसा ही। अतः प्रत्येक व्यक्ति उस श्लोकको अपने जीवनका आदर्श मानते हुए सदा व्यवहारमें उसे स्थान दे; इससे उसका और दूसरोंका भी कल्याण होगा। वह श्लोक या सूत्र इस प्रकार है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
(विष्णुधर्म० ३। २५३। ४४)

अर्थात् धर्मका सर्वस्व क्या है, ध्यानसे सुनो और केवल सुनकर ही न रह जाओ, उसे जीवनमें धारण करो—अपनाओ; वह धर्म-सर्वस्व अर्थात् सारभूत वाक्य है—'अपनी आत्माको जो व्यवहार अच्छे नहीं लगते हों, उन्हें दूसरोंके प्रति भी न करे।'

तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो सब जीव एक समान हैं। सब जीवन चाहते हैं, कोई भी मरना या दुःख भोगना नहीं चाहता। सबमें समानरूपसे ही आत्मानुभूति होनी चाहिये, यह समत्वभाव ही अहिंसाका मूलतत्त्व है। इसलिये जब तुम अपने लिये मरण और दुःख नहीं चाहते, तब दूसरोंके लिये भी इन्हें न चाहो। सब आत्माओंको अपने ही समान—अपने ही बन्धु समझकर सबसे मैत्रीभाव रखो, किसीसे वैर-विरोध न करो। किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट न दो। यही सम-भाव और मैत्री-भाव है, यही अहिंसाका मूल है। जीवन-संघर्षमें बहुत बार अन्य प्राणियोंके साथ टकराव हो जाता है, आवेशमें मनुष्य न करनेयोग्य काम कर बैठता है; पर वह अन्तर्निरीक्षण या आत्मालोचन करते हुए अकृत्यों, अकार्योंसे अपनेको पीछे हटा ले; पापोंका परिशोध करते रहनेकी यह बहुत सुन्दर प्रक्रिया है।

स्वरूपतः सब जीवात्मा समान होते हुए भी अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्मोंके कारण विभिन्न प्रकारके हो गये हैं। अतः सबके साथ एक-सा व्यवहार कैसे किया जाय, यह एक समस्या है। इसका समाधान करते हुए भारतीय मनीषियोंने चार प्रकारकी सुन्दर भावनाओंका विवेचन हमारे सामने रखा है, जिससे हम विभिन्न आत्माओंसे कैसा व्यवहार रखते हुए अपनेको सँभाले रहें, इसकी महत्त्वपूर्ण सूचना मिल जाती है। महापुरुषोंने गम्भीर चिन्तन करते हुए जगत्के सब प्राणियोंको चार भागोंमें विभक्त कर दिया है—(१) अपने समान योग्यता, रुचि तथा स्थितिवाले, (२) अपनेसे अधिक उन्नत स्थितिवाले, (३) अपनेसे नीची अर्थात् कमजोर स्थितिवाले और (४) इन तीनों स्थितियोंसे भिन्न अधिक नीची स्थितिवाले।

इन चार विभागोंमें समस्त प्राणियोंका विभाजन करते हुए महापुरुषोंने, किन व्यक्तियोंके साथ कैसा व्यवहार करे, इसपर प्रकाश डाला है और चार प्रकारकी भावनाओंकी व्याख्या की है—(१) मैत्री-भावना, (२) प्रमोद-भावना, (३) करुणा-भावना तथा (४) मध्यस्थ-भावना। मैत्रीका व्यवहार उन प्राणियोंके साथ ही किया जा सकता है, जो अपने समान योग्यता या रुचिवाले हों। जीवन-व्यवहारमें हम सदा यही अनुभव करते हैं कि मित्रता उन्हींके साथ होती एवं निभती है, जो समान स्थितिके हों। बालक बालकोंके साथ और युवक युवकोंके साथ ही मित्रता करते हैं; क्योंकि बहुत-सी बातोंमें उनमें समानता पायी जाती है। उनकी उम्र बराबरकी होनेसे रुचि और योग्यतामें भी बहुत अधिक समानता मिलती है। अतः वे एक-दूसरेसे सहज ही घुल-मिल जाते हैं। जिनकी प्रकृति अपने समान नहीं होती, उनसे प्रथमतः तो मैत्री होती ही नहीं, और यदि वे उसे कर भी लेते हैं तो वह निभती नहीं है। इसलिये मैत्रीका सूत्र है—**'समेयु मैत्री'**—जगत्में जितने भी प्राणी अपने समान स्थितिवाले हैं, उनके साथ मैत्रीका व्यवहार किया जाय। मित्र जिस तरह एक-दूसरेको प्रेम और सहयोग देते हैं, उसी तरह अपने समान योग्यता, रुचि और स्थितिवाले प्राणियोंसे हम प्रेम और सहयोगका व्यवहार करें; एक-दूसरेको ऊँचा उठानेमें हम सदा तत्पर रहें; एक-दूसरेके दुःख-सुखके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथी बनें। मैत्री भावनाका यही मङ्गल-संदेश है।

जो प्राणी या व्यक्ति अपनेसे ऊँची स्थितिके हों, अधिक गुणी हों, उनके लिये हम प्रमोद-भावना विकसित करें। हमारे मनमें उन्हें देखकर प्रसन्नता हो, ईर्ष्या नहीं हो। उन्हें नीचे गिरानेकी भावना न होकर अपनेको उनके समान ऊँचे उठानेकी भावना हो। गुणी व्यक्तियोंको देखकर हमारा मन-मयूर नाच उठे, रोम-रोममें प्रफुल्लता हो। हम प्रसन्नतापूर्वक उन्हें नमन करें, उनके गुणोंकी प्रशंसा करें; अपनेको कृतकृत्य मानें कि आज ऐसे गुणी व्यक्तिका दर्शन और समागम हुआ। मैं भी इनके आश्रयसे अपनेमें गुणोंका विकास करूँ, अपनेको इनके समान बनानेका प्रयत्न करूँ। 'मेरी भावना' में बहुत ही सुन्दर पद्य मिलता है, जिसका उच्चारण सात्त्विक भावनाको बहुत बड़ा बल देता है, यथा—

गुणी जनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे॥

जो प्राणी अपनेसे नीचे स्तरके हैं, उनके प्रति हमारी करुणा-भावना हो। अज्ञान और कर्मजन्य परिस्थितिवश वे जीव अपने स्वरूप और कर्तव्योंको भूलकर कुत्सित पाप-कार्य कर रहे हैं, वे हमारी दयाके पात्र हैं, घृणाके नहीं। हम उन जीवोंको सन्मार्ग दिखाने और ऊँचा उठानेका भरसक प्रयत्न करें। उनकी अधम स्थिति और दुःखोंको देखकर हमारा मन द्रवित हो जाय, करुणासे भर जाय और हम अपनेसे जितना भी सम्भव हो उनको ऊँचा उठानेका पूर्ण प्रयत्न करें। अभावग्रस्त व्यक्तियोंके अभावकी पूर्ति करें; उन्हें अपने समान सुखी और गुणी बनानेमें कमी न रखें। उनकी सेवा करके और सहयोग देकर अपने करुणाभावको हम क्रियात्मक रूप दें।

जिनकी आदतें बहुत बुरी पड़ गयी हैं, जिनका स्वभाव बहुत क्रूर है, जो अधिकाधिक पापोंमें लिप्त रहते हैं, जन-परिभाषामें उन्हें 'दुष्ट' और 'पापिष्ठ' कहा जाता है। ऐसे प्राणियोंसे हमारा मध्यस्थ-भाव रहे। जो समझानेपर भी समझते नहीं, सदुपदेशोंको मानते नहीं, अपने अनुचित कार्योंको छोड़ते नहीं, उनके प्रति हम मध्यस्थ—उदासीन रहें, उनपर आक्रोश न करें, घृणा न करें। हमारे हृदयमें तो उनके प्रति प्रेम ही प्रवाहित होता रहे, हिंसा, क्रोध, वैर-विरोधकी भावना न उठे। हमारा प्रयत्न रहे कि वे सुधर जायँ, अच्छे बन जायँ। यदि वे ऐसा नहीं बनते हैं तो भी हम तो उनके प्रति उदासीन भाव ही रखें। अपने प्रयत्नमें सफल न होनेपर भी हम उनके प्रति दुर्भाव न लायें। जगत् एवं कर्मोंकी विचित्रताका ही चिन्तन करते रहें कि इन जीवोंके कुसंस्कार इतने दृढीभूत हो गये हैं कि अपनेमें परिवर्तन लाना, इन बेचारोंके वशकी बात नहीं रही। इसमें इनका दोष नहीं, इसमें इनके कर्मों तथा बुरे संस्कारोंका ही दोष है। हम इनके प्रति बुरे भाव लाकर अपनेको तो बुरा न बनावें, अपनेको सँभाले रहें।

'मेरी भावना'में बहुत ही सुन्दर कहा गया है—

मैत्री-भाव जगत्में मेरा, सब जीवोंसे मिला रहे।
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहे॥
दुर्जन, क्रूर, कुमार्गरतोंपर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे॥

इस तरहकी चार भावनाओंको बौद्धधर्ममें 'ब्रह्म-विहार' की संज्ञा देते हुए बहुत ही महत्त्व दिया गया है। जैनाचार्योंने भी प्राचीन मान्य अन्य बारह भावनाओंके साथ इन चार भावनाओंको भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। साधक और धर्म-आराधक प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन इन भावनाओंको मनमें लावे और इनपर गम्भीर चिन्तन करे तो हम दूसरोंके निमित्तसे जो अशुभ कर्मोंका बाँध बाँधते रहते हैं और अपने-आपको गिराते हैं, उससे अनायास और अवश्य ही बच जायँगे। इतना ही नहीं, प्रमोद-भावनाको सही रूपमें अपनावें तो हम अपने सद्गुणोंका बहुत अधिक विकास कर लेंगे; क्योंकि गुणी बननेका सबसे सरल उपाय यही है कि हम गुणवान् व्यक्तिका आश्रय लें, उन महा-पुरुषोंके चरणोंमें समर्पित हो जायँ और उनके सत्सङ्गका लाभ उठावें। उनके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए हम अपनेमें उन गुणोंको प्रकट करनेके लिये प्रबल भावना और पुरुषार्थ जाग्रत् करें; गुणानुरागी बनें, दूसरोंके अवगुणोंकी ओर ध्यान न दें। जिस-किसीमें जो भी अच्छा और ऊँचा गुण है, उसीको अपनाकर हमें गुणवान् बनना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

'यह तो मेरे लिये लज्जाकी बात है'

बात पुरानी है । महात्मा गाँधी अपने कई साथियोंके साथ रेलसे यात्रा कर रहे थे । वर्षाके दिन थे । संयोगसे वे जिस डिब्बेमें बैठे थे, उसकी छत कुछ टूटी हुई थी । वर्षा आरम्भ हुई और छतसे पानी डिब्बेमें टपकने लगा । बापूका सामान तथा कागज सँभालकर एक ओर कर दिये गये । अगला स्टेशन आनेपर बापूके साथियोंमेंसे एक व्यक्ति गार्ड-महोदयके पास पहुँचा और उनको उस डिब्बेकी हालत बतायी । गार्डमहोदय बापूको हर तरहकी सहूलियत देनेके लिये तैयार ही थे । वे तत्काल डिब्बेमें आये और उन्होंने बापूसे प्रार्थना की—'बापू ! मैंने एक डिब्बा खाली करनेका आदेश दिया है । आप कृपया उसमें चले जाइयेगा । आपको कष्ट होगा, किंतु लाचारी है ।'

गाँधीजीने प्रश्न किया—'लेकिन इस डिब्बेका आप क्या करेंगे ?'

'जो डिब्बा मैं आपके लिये खाली करवा रहा हूँ, उसके मुसाफिर इसमें बैठा दिये जायँगे'—गार्डने सहज भावसे उत्तर दिया ।

'आप दूसरा डिब्बा क्यों नहीं लगा देते ?'—बापूने प्रश्न किया ।

'दूसरा डिब्बा हमारे पास है नहीं; इसीलिये तो आपके लिये डिब्बा खाली करवाया जा रहा है ।'

व्यथाभरे शब्दोंमें बापूने उत्तर दिया—'मैं सुखसे बैठूँ और मेरे कारण सुखसे बैठे हुए दूसरे यात्री परेशान हों, यह तो मेरे लिये लज्जाकी बात है । पहले वे सुखसे बैठेंगे, तब मैं । मैं उनके डिब्बेमें जाऊँ, यह कभी नहीं हो सकता ।'

गार्डमहोदय बापूके दृढ़ निश्चयको समझ गये । उन्होंने बापूसे क्षमा माँगी । फिर वे बोले—'बापू ! मेरे लायक कोई और सेवा हो तो बताइये ।'

गाँधीजीने कहा—'आपके लायक सेवा तो है ही । आप मुसाफिरोंको परेशान न करें और उनसे रिश्वत न लें । यदि आप इतना करेंगे तो यह मेरी सेवा करनेके ही बराबर होगा ।'

(२)

हृदय-परिवर्त्तन

प्रसिद्ध देशभक्त श्रीजमनालालजी बजाज अपनी सरलता, साधुता, बुद्धिमत्ता, उदारता, कार्यकुशलता आदिके कारण चारों ओर सम्मान पाने लगे । दूसरेकी प्रतिष्ठा देखकर व्यथित होनेवाले लोग समाजमें कम नहीं होते । एक महाशय उनके कटु आलोचक बन गये । श्रीबजाजजीको इस बातका परिचय मिल गया । उन्होंने प्रयत्न किया कि उनकी कटुता कुछ कम हो, पर आलोचक महोदय अपने स्वभावसे लाचार थे । वे साधुताका प्रतिदान और अधिक कटुताके रूपमें देने लगे । संयोगकी बात, आलोचक महोदय सख्त बीमार हो गये । श्रीजमनालालजी बजाजको इसकी खबर मिली । वे उनका कुशल-क्षेम जाननेके लिये उनके पास पहुँचे । उस समय उनकी अवस्था कुछ ठीक थी, पर वे बड़े ही उदास एवं दुखी थे । उन्हें इस प्रकार देखकर श्रीबजाजजीने पूछा—'क्यों भाई ! इतने उदास और दुखी क्यों हो ?'

आलोचक महोदय बोले—'मैं तुमसे नाराज हूँ ।'

'तो भाई ! यह नाराजगी कैसे दूर हो सकती है ?'—श्रीबजाजजीने तुरंत प्रश्न किया ।

'मैंने तुम्हारे खिलाफ एक पुस्तक लिखी है । मैं उसे छपवाना चाहता हूँ, पर मेरे पास पैसे नहीं हैं । यदि वह पुस्तक छप जाय तो मेरे हृदयको कुछ शान्ति मिले ।' आलोचकने अपने मनकी बात कह डाली ।

'उसे छपवानेमें कुल कितना खर्च लगेगा ?'—श्रीबजाजजीने पूछा ।

'करीब पाँच सौ रुपये'—आलोचकने उत्तर दिया ।

'ठीक है, भैया ! प्रसन्न रहना, बीमारीसे घबराना मत; भगवान्‌का स्मरण करना'—यह कहते हुए श्रीबजाजजीने विदा ली ।

घर पहुँचकर श्रीबजाजजीने एक लिफाफेमें पाँच सौ रुपये रखे, उसे गोंदसे चिपकाया और अपने पुत्रको बुलाकर कहा—'अमुक अस्पतालमें अमुक बेडपर ये सज्जन हैं । उन्हें जाकर यह लिफाफा दे आओ ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्रने पिताकी आज्ञाका पालन किया। आलोचकने लिफाफा खोला। पाँच सौ रुपये देखते ही वे सन्न रह गये। उनका हृदय भर आया और वर्षोंकी कटुता नेत्रोंसे टपक पड़ी।

(३)

ईमानदारी आज भी कायम है

गत नवम्बर मासकी बात है। कूचविहार जिलेके निवासी श्रीगोपीनाथ मैत्रकी भूमि सरकारने अधिगृहीत कर ली। भूमिके एवजमें एक हजार रुपये उन्हें देनेका आदेश हुआ। रुपये लेनेके लिये श्रीमैत्र जलपाईगुड़ीके जिलाधिकारी महोदयके कार्यालयमें उपस्थित हुए। कैशियरने आदेश देखकर श्रीमैत्रको रुपयोंका भुगतान कर दिया; किंतु संयोगकी बात—दस रुपयेके सौ नोटोंका बण्डल देनेके स्थानपर कैशियरने भूलसे सौ रुपयेके सौ नोटवाला बण्डल श्रीमैत्रको दे दिया। इसपर मजेकी बात यह कि बण्डल देते हुए उन्होंने श्रीमैत्रसे कहा—'ठीकसे गिनकर ले जाना।' श्रीमैत्रने वहीं बैठकर नोट गिने—पूरे १०० नोट थे। कैशियर एवं श्रीमैत्र—दोनोंको मतिभ्रम हो गया; दोनोंको ही भूल समझमें नहीं आयी।

रुपये लेकर श्रीमैत्र घर आये। अपने लड़कोंके सामने जब उन्होंने रुपये गिने, तब उन्हें होश आया कि ये तो सौ रुपयेके १०० नोट हैं और इस प्रकार एक हजारके बदले वे दस हजार रुपये ले आये हैं। अब तो श्रीमैत्र बेचैन हो गये। वे पछताने लगे—'एक हजारके बदले मैंने दूसरेके दस हजार रुपये कैसे स्वीकार कर लिये!'

पिताकी व्यथाको देखकर बच्चोंने उन्हें समझाया—'नौ हजार रुपये आप वापस कर आइये।' बच्चोंकी बातसे पिताको संतोष हुआ। बड़े लड़केने टेलीफोन दफ्तरमें जाकर जलपाईगुड़ीके उपायुक्तको फोनपर यह घटना बतायी। श्रीउपायुक्त महोदयने विभागीय कर्मचारीको हल्दीवाड़ी भेजा। वहाँके थानेके अधिकारियोंके सामने श्रीमैत्रने विभागीय व्यक्तिको नौ हजार रुपये लौटा दिये।

थानेके अधिकारी तथा उपस्थित सभी व्यक्तियोंने एक स्वरमें कहा—'ईमानदारी आज भी कायम है!'

(४)

'मैं नींवका पत्थर बना रहना चाहता हूँ'

श्रीलालबहादुर शास्त्री सामाजिक जीवनमें प्रवेश करनेके कुछ दिन पश्चात् इलाहाबादके 'लोक-सेवा-मण्डल'के सदस्य बने। सादी वेश-भूषा, पैरोंमें देशी जूते, स्वल्प भाषण, हँसमुख स्वभाव, अद्भुत कार्यकुशलता, निःस्वार्थ सेवा-भावना—इनके ये गुण सभीको प्रभावित करने लगे। पर ज्यों-ज्यों ख्याति बढ़ने लगी, त्यों-त्यों श्रीशास्त्रीजी संकोचका अनुभव करने लगे। वे बराबर यह प्रयत्न करने लगे कि समाचार-पत्रोंमें उनकी सेवाओंका विवरण तथा नाम न छपे।

एक दिन मित्रोंने श्रीशास्त्रीजीको घेर लिया और बड़े ही आग्रहसे पूछा—'शास्त्रीजी! आपको अखबारोंमें नाम छपनेसे इतना परहेज क्यों है?'

श्रीशास्त्रीजीके सामने धर्मसंकट उपस्थित हो गया। कुछ देर सोच-विचारकर बड़ी ही विनम्रताके साथ वे बोले—"लाला लाजपतरायजीने 'लोक-सेवा-मण्डल'के कार्यके लिये दीक्षा देते हुए यह कहा था—'लालबहादुर! ताजमहलमें दो प्रकारके पत्थर लगे हैं—एक बढ़िया संगमरमर। उन्हीं पत्थरोंके मेहराब और गुम्बज बने हैं। उनमें ही बड़ी सुन्दर जालियाँ काटी गयी हैं; मीनाकारी और पच्चीकारी की गयी है। उन्हींसे रंग-बिरंगे बेल-बूटे बनाये गये हैं। दुनिया उनको देखती है और मुग्ध हो जाती है तथा प्रशंसा करती है। दूसरे पत्थर हैं—टेढ़े-मेढ़े-बेढंगे; वे सब बुनियादमें दबे पड़े हैं। उनकी किस्मतमें केवल अन्धकार और बुनियादकी घुटन है। उनकी कोई प्रशंसा नहीं करता, लेकिन उन्हीं नींवके पत्थरोंपर ताजमहलकी विश्वविख्यात इमारत खड़ी है। मैं चाहता हूँ—'लोक-सेवा-मण्डल' सदस्य नींवके पत्थर बनें। वे सस्ते आत्म-विज्ञापनसे अपनेको बचाये रखें और ठोस-कार्यकी ओर अधिक ध्यान दें।' पूज्य लालाजीके वे शब्द मेरे हृदयमें पैठे हुए हैं और आज भी रह-रहकर मुझे अपने कर्तव्यका ज्ञान कराते हैं। मुझे क्षमा करें, मैं नींवका पत्थर बना रहना चाहता हूँ!"

(५)

सहृदयता

"नमस्ते महाशयजी!—एक अपरिचित व्यक्तिके मुखसे बड़ी अदबके साथ ये शब्द सुनकर 'बेदिल' साहब कुछ चौंके और उन्होंने उन सज्जनसे पूछा—"कहिये जनाब, मैंने आपको पहचाना नहीं?" 'बेदिल' साहब बीकानेरनिवासी अवकाश-प्राप्त जज एवं प्रसिद्ध शायर थे। काफी वृद्ध हो गये थे; यात्रा करना उनके लिये कठिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया था; परंतु कतिपय मित्रोंके आग्रहके कारण एक मुशायरेमें उन्हें भाग लेनेके लिये जयपुर जाना पड़ा था और बीकानेर लौटनेके लिये प्लेटफार्मपर वे गाड़ीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

'बेदिल' साहबके प्रश्नको सुनकर आगन्तुक सज्जनको अपना मन्तव्य प्रकट करनेमें सरलता हुई। उन्होंने निःसंकोच अपनी बात कह दी—"मैं पुलिसविभागका एक कर्मचारी हूँ तथा बड़ा ही निर्धन हूँ। मुझपर झूठा आरोप लगा है और मेरी नौकरी जानेवाली है। कल मुशायरेमें पता चला कि स्थानीय डी० आई० जी० पुलिससे आपकी मैत्री है। आप कृपा करके उन्हें मेरे लिये दो शब्द कह दें तो मेरी नौकरी बच जायगी; अन्यथा बेकार होनेपर मेरे बच्चे भूखों मर जायँगे।"

'बेदिल' साहबने उन्हें समझाया—"मेरी आपके प्रति पूरी सहानुभूति है, पर भाई! मैं बूढ़ा व्यक्ति हूँ। गाड़ीमें मेरी सीट भी बुक हो गयी है। आजकल यात्राकी परेशानी आप जानते ही होंगे। वैसे भी मेरे लिये आना-जाना बहुत कठिन है, और·····।"

अपना काम न बनता देखकर आगन्तुक सज्जन गिड़गिड़ाने लगे। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये; उन्होंने पुनः प्रार्थना की—"महाशयजी! मैं आपका नाम सुनकर आया हूँ। सभी कहते हैं कि आप बड़े सहृदय और दयालु हैं; भलाई करना ही आपका स्वभाव है। यदि आपने रहम न की तो मेरा तथा मेरे बच्चोंका जीवन रहना कठिन हो जायगा।"

'बेदिल' साहबका शायर-दिल पसीज गया। उन्होंने कुलीको अपना सामान प्लेटफार्मसे बाहर करनेका आदेश दिया और टिकट वापस कर दी।

वे डी० आई० जी० पुलिसके पास गये और सारी बात बताकर बोले—"अमुक व्यक्ति बहुत गरीब है। यदि यह बेगुनाह हो तो उसे माफ कर दीजियेगा। आप स्वयं उसके केसकी जाँच करवाइयेगा।"

केसकी अच्छी तरह जाँच हुई; वह निर्दोष साबित हुआ।

(६)

'उपाधि'—'व्याधि'

बात सन् १९६५ की है। हमारे परम श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार श्रीकृष्ण-जन्मभूमिपर बन रहे विशाल 'भागवत-भवन' का शिलान्यास करनेके लिये मथुरा गये हुए थे। वृन्दावनकी नगरपालिकाके अध्यक्षके आग्रहपर वे २१ फरवरीको सायंकाल ६ बजे नगरपालिकाके सभामण्डप (मीटिंग हाल) में प्रवचन करनेके लिये पधारे। किंतु वहाँ जाकर देखते क्या हैं कि उनके अभिनन्दनकी तैयारी है। पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज आयोजनके अध्यक्षके रूपमें विराजमान हैं।

श्रीभाईजी बड़े ही संकोचमें पड़ गये। उन्होंने सबसे हाथ जोड़कर अनुनय-विनय की—"आप कृपा करके यह आयोजन न करें। मैंने आजतक कभी ऐसे आयोजनोंमें भाग नहीं लिया। मैं तो सर्वथा अयोग्य हूँ; जीवन त्रुटियोंसे ही भरा हुआ है, पर जीवनके आरम्भसे ही लोकमान्यता पीछे लग गयी। भगवत्कृपासे मन सदा उससे डरता रहा; उसने कभी उसे स्वीकार नहीं किया। किंतु ज्यों-ज्यों मैंने उससे दूर भागनेका प्रयत्न किया, वह और भी अधिक आकर्षक रूपोंमें पीछा करती रही। गोरखपुर आनेपर तो उसने अपना प्रभाव और भी तीव्र कर दिया। उसका आरम्भ हुआ **'रायसाहबी'** की पदवीसे। इस पदवीके प्रस्तावक थे—गोरखपुरके तत्कालीन कलेक्टर—पेडले साहब और बाबू श्रीआद्याप्रसादजी—नगरपालिकाके अध्यक्ष। मैंने उनसे हाथ जोड़कर क्षमा माँग ली—"मैं इसके लायक नहीं हूँ।" दोनोंसे ही बड़ा स्नेहका सम्बन्ध था। वे मेरे मनोभावको समझ गये और इस प्रकार इस प्रलोभनसे छुट्टी मिल गयी। इसके बाद वहाँके अंग्रेज कमिश्नर होबर्ट साहबने **'रायबहादुर'** बनानेकी इच्छा प्रकट की। अनुरोध करनेपर वे भी मान गये। फिर संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) के गवर्नर सर हैरी हेग ने **'सर'** (Knight Hood) का जाल फेंका; पर भगवान्‌ने रक्षा कर ली। गवर्नर साहबने इसपर प्रसन्नता व्यक्त की। मेरी सर हैरी हेगसे मैत्री थी। मैं उनसे मिला। उनसे बड़ा खुला सम्बन्ध था। मैंने बिना किसी प्रकारकी झिझकके उनसे पूछा—'आप यह उपाधि देकर क्या समझते हैं?' गवर्नर साहबने हँसते हुए जवाब दिया—'कुत्तेके गलेमें पट्टा डालते हैं···।' वे अपना कथन पूरा कर ही न पाये थे कि मैं बीचमें ही बोल उठा—'फिर आप मेरे गलेमें पट्टा डाल रहे थे!' गवर्नर साहब हँसकर बोले—'आपने अस्वीकार कर दिया तब हम यह कहते हैं, नहीं तो हम आपका सम्मान करते, आपको धन्यवाद देते कि आपने इसे स्वीकार कर लिया।'

'इसके बाद सबसे बड़ा प्रलोभन **'भारतरत्न'** की उपाधिका आया। सम्मान्य पण्डित श्रीगोविन्दवल्लभजी पंतसे मेरा बहुत ही प्यारभरा पुराना परिचय था। शरीर छोड़नेके कुछ पहलेकी बात है—वे गोरखपुर पधारे। उन दिनों वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतके गृह-मन्त्री थे । मैं उनसे मिलनेके लिये गया । बड़ी ही आत्मीयतापूर्ण बातें हुईं । इसी बीच श्रीपंतजीने एक कागज निकालकर मेरे सामने रखा और कहा—'हम इसे भारत-सरकारके पास भेज रहे हैं; आपकी स्वीकृति लेने आया हूँ । कागजमें **'भारतरत्न'** की उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव था । मैं काँप गया । भगवान्‌ने रक्षा की । मैंने बड़े ही विनम्र शब्दोंमें श्रीपंतजीको इसके कारण विस्तारसे समझाये । मेरे अन्तर्हृदयकी व्यथाको देखकर श्रीपंतजी मान गये और बोले—'ठीक है, हम आपकी भावनाओंका आदर करेंगे ।' इसके पश्चात् उन्होंने दिल्ली जाकर मुझे एक लंबा पत्र लिखा । उसकी बातें बतानेमें मुझे संकोच है ।

"इसी प्रकार धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्रोंसे भी बड़े ही लुभावने प्रलोभन आये, पर भगवत्कृपाने 'उपाधि' की 'व्याधि' से सदा मेरी रक्षा की । सचमुच यह शरीर तो व्याधियोंका ही घर है; फिर स्वेच्छासे नयी 'व्याधि' क्यों स्वीकार की जाय ?"

श्रीभाईजीके इस दैन्यभरे निवेदनको सुनकर अभिनन्दनका वह रूप नहीं रखा गया । फिर भी श्रीभाईजीके प्रवचनके पूर्व नगरपालिकाके अध्यक्षने उनके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कहीं और अन्तमें बोले—'विनयकी तो मानो श्रीभाईजी मूर्ति हैं !'

अध्यक्षके भाषणके पश्चात् श्रीभाईजीका प्रवचन आरम्भ हुआ । श्रीभाईजीने वन्दनाका श्लोक बोलकर कहा—"यहाँ उपस्थित आप सब व्रजवासी महानुभाव, जिनकी चरण-रजका लाभ लेनेका भी मैं अधिकारी नहीं, नीचे बैठे हैं और मैं यहाँ स्टेजपर बैठ गया हूँ—वर्तमान प्रथा ही ऐसी है ।

"मैं यहाँ व्रजमें किसी भावको लेकर आता हूँ । मेरे लिये वृन्दावनका प्रत्येक परमाणु आदरणीय-वन्दनीय है ।

"मैंने 'अभिनन्दन-पत्र' प्रदान करने तथा स्वीकार करनेका विरोध किया है । सम्भव है, मेरी यह चेष्टा अधिक मान पानेका प्रयास हो । मनुष्यके अंदर एक छिपी कामना होती है—मान और बड़ाई पानेकी । बहुत बड़े-बड़े त्यागी-महात्मा, जो जगत्‌के समस्त पदार्थोंका त्याग कर चुकते हैं, उनमें भी न कहनेपर, न चाहनेपर, अपितु मना करनेपर भी मान-बड़ाईकी अभिलाषा छिपे रूपमें रहती है । श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके शब्द हैं—**'सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधाम् ।'** मैंने अभिनन्दन-पत्रके लिये विरोध किया, इसके बदलेमें मानके और शब्द सुननेको मिले ! इनसे चित्तमें प्रसन्नता नहीं हुई होगी, यह अन्तर्यामी प्रभु ही जानता है । आप सब आशीर्वाद दें—यह मान चाहनेका, बड़ाई चाहनेका मनोरथ आप सबके आशीर्वादसे दूर हो जाय तथा जैसे पुष्पोंकी माला पहननेमें सुख-प्रसन्नता होती है, वैसे ही जूतोंकी माला पहननेमें भी सुख-प्रसन्नताकी अनुभूति हो !

"महाभारतकी कथा है, जिसका सार यह है—'बड़ोंकी हत्या तलवारसे नहीं होती; बड़ोंके मुँहपर उनकी निन्दा कर देना उनकी हत्या है तथा अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना या अपने कानोंसे अपनी प्रशंसा सुनना आत्महत्या है ।'

"यदि मान-बड़ाईकी चर्चा सुनना मीठा न लगता तो पूजनीय श्रीब्रह्मचारीजी महाराज आज्ञा ही नहीं देते कि 'मैं चुपचाप सब स्वीकार करता रहूँ ।' वास्तवमें मेरी निर्बलता ही इसमें हेतु है ।

"आपलोगोंने जो कुछ कहा, मैं उसे अपनी भावनाके अनुसार अपने लिये आशीर्वाद मानता हूँ । आप श्रीकृष्णके हैं ।"

उपस्थित सभी श्रोता—जिनमें संत-महात्मा, विद्वान् भी थे, श्रीभाईजीके अन्तर्हृदयका परिचय प्राप्तकर मुग्ध हो गये।

प्रवचनके पश्चात् श्रीभाईजी सभा-मण्डपके बाहर आ रहे थे कि एक वृद्ध महात्मा सामने उपस्थित हुए। श्रीभाईजीने दोनों हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया। वृद्ध महात्मा बड़े भावभरे शब्दोंमें बोले—"महाशयजी ! मैं वर्षोंसे 'कल्याण' पढ़ता हूँ और उसका मेरे जीवनमें बड़ा ही अद्भुत प्रभाव हुआ है । आपके दर्शन मैं आज प्रथम बार कर रहा हूँ । मेरे मनमें बराबर यह प्रश्न उठता था कि अन्य मासिक पत्रोंकी भाँति 'कल्याण' भी एक पत्र है; किंतु उसका इतना चमत्कारिक प्रभाव क्यों है ? वह बरबस जीवनमें कैसे परिवर्तन लाता है और हृदयको भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम आदिसे भर देता है ? आज आपका प्रवचन सुनकर—आपका जीवन-व्यवहार देखकर मेरा समाधान हो गया कि उसके सम्पादक—कर्णधार नाम-रूपके मोहसे कितने दूर हैं; मान-बड़ाई-प्रतिष्ठासे उदासीन ही नहीं, किस प्रकार दूर भागते हैं; उनके व्यवहारमें, क्रियामें सत्य कितने विलक्षण रूपमें ओत-प्रोत है, उनकी कथनी-करनी-रहनीमें कैसी अनूठी एकरूपता है, वे कितने विनयशील हैं …… ।"

—वृद्ध महात्मा भावमें भरे अपने मनोभाव प्रकट कर रहे थे कि श्रीभाईजीका हृदय ग्लानिसे भर आया, नेत्र गीले हो गये और उन्होंने अपना मस्तक वृद्ध महात्माके चरणोंपर रख दिया !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' का अप्राप्य विशेषाङ्क

'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' पुनः प्राप्य

'कल्याण' वर्ष ४३वेंके विशेषाङ्क 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क'की, जो पहले कई वर्षोंसे अप्राप्य था तथा जिसकी अत्यधिक माँग थी, अब थोड़ी-सी प्रतियाँ और तैयार हुई हैं। इस अङ्कमें परलोक एवं पुनर्जन्मसम्बन्धी विविध समस्याओं और पहलुओंपर प्रकाश डालनेवाले तथा परलोक और पुनर्जन्मको सफलतापूर्वक सिद्ध करनेवाले विद्वत्तापूर्ण, शास्त्र-सम्मत लेखों एवं पुनर्जन्मसम्बन्धी रोचक घटनाओंका सुन्दर संकलन है। मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) मात्र है।

जो इस अङ्कको लेनेके इच्छुक हों, उन सज्जनोंको मनीआर्डरद्वारा शीघ्र मूल्य भेजकर यह अङ्क प्राप्त कर लेना चाहिये; अन्यथा इसकी परिमित संख्यामें बची शेष प्रतियोंके भी समाप्त हो जानेपर 'कल्याण' के अन्य विशेषाङ्कोंकी भाँति इस परम उपादेय अङ्कसे भी प्रेमी पाठकोंको वञ्चित होना पड़ सकता है।

—'कल्याण'-विभाग
गीताप्रेस, गोरखपुर

महाभारत [प्रथम खण्ड]

(आदिपर्व और सभापर्व)

सरल हिंदी-अनुवादसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या ९६०, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य १३.२५, डाकखर्च ३.१५।

महाभारतका यह खण्ड समाप्त हो गया था, अब पुनः छप गया है। ग्राहकोंको इसे मँगवानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

श्रीमन्महाभारतम्

[मूलमात्रम्, तस्य प्रथमो भागः]

इस खण्डमें आदिपर्व, सभापर्व और वनपर्व सम्मिलित हैं, केवल संस्कृत, सचित्र, पृष्ठ-संख्या ८०४, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ७.००, डाकखर्च २.७०।

यह भाग भी समाप्त हो गया था, अब पुनः छप गया है; अतः जिन्हें आवश्यकता हो, वे शीघ्रता करें।

गीता-परिचय

(लेखक—स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

साइज २०×३०=१६ पेजी, सचित्र, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य .५०, डाकखर्च १.५०

तृतीय संस्करणतक यह पुस्तक 'गीता-ज्ञान-प्रवेशिका' के नामसे प्रकाशित होती रही है। इस चतुर्थ संस्करणमें कुछ आवश्यक संशोधन करके इसे 'गीता-परिचय' नामसे प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तकमें सरल सुबोध भाषामें इन विषयोंका समावेश हुआ है, यथा—गीताके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें, संस्कृत भाषाका शुद्ध उच्चारण करनेकी विधि, गीताके प्रधान और संक्षिप्त विषय, गीताप्रतिपादित कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोगका स्वरूप, गीतामें उवाच, गीता-श्रवणके समय अर्जुनके द्वारा किये गये अट्ठाईस प्रश्नोंके स्थल, गीताभ्यासकी विधि, गीता कण्ठस्थ रहनेके लिये तालिका, श्रीभगवान्‌के गीतोक्त चालीस सम्बोधनात्मक नाम और उनके अर्थ, अर्जुनके गीतोक्त बाईस सम्बोधनात्मक नाम और उनके अर्थ, पाठके लिये विश्रामस्थल, गीतामें प्रसङ्गानुसार बार-बार आये हुए श्लोकांश, गीताके फलसहित भगवत्प्राप्तिके उपाय-विषयक लगभग एक तिहाई श्लोकोंकी संख्या, गीतामें ध्यानविषयक श्लोकोंकी संख्या, गीतामें विभिन्न वक्ताओंद्वारा कथित श्लोकोंकी संख्या, गीताके छन्दोंका विवरण, गीतामें आर्ष प्रयोग, मूलगीता तथा गीताकी अकारादिवर्णानुक्रम-सूची। इस प्रकार गीता-शिक्षार्थियोंको गीता समझनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा कृपालु पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थना

विशेष परिस्थितिवश इस वर्षका विशेषाङ्क लगभग दो मासकी देरीसे २७ फरवरी १९७४को प्रकाशित हुआ। यह समझते हुए कि डेढ़ लाखसे अधिक ग्राहकोंको केवल विशेषाङ्क ही भेजनेमें लगभग डेढ़-पौने दो माहका समय लग जायगा, जिससे 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंको कष्ट होगा; अतः इस वर्ष जनवरी ७४के विशेषाङ्कके साथ ही फरवरी तथा मार्चके साधारण अङ्क भी भेज दिये गये। आशा थी कि अप्रैलका अङ्क भी यथासम्भव शीघ्र—मईके मध्यतक सभी ग्राहकोंकी सेवामें भेज दिया जायगा; परंतु यह सम्भव न हो सका। यद्यपि अप्रैलका अङ्क पहले ही तैयार हो गया था; किंतु पौने दो लाखके लगभग ग्राहकोंको भेजी गयी रजिस्ट्री एवं वी० पी०के रुपये रजिस्टरोंमें चढ़ाने तथा अन्य व्यवस्था-सम्बन्धी कार्योंके कारण विलम्ब होता गया। फिर रेलवे हड़तालसे प्रभावित डाकबंदीके कारण भी अङ्क भेजनेकी तिथि टलती गयी। फलस्वरूप अप्रैलका अङ्क पर्याप्त विलम्बसे—जूनके द्वितीय सप्ताहमें भेजा जा सका। इस प्रकार मईके अङ्कके प्रेषणमें हमारे न चाहनेपर भी स्वाभाविक ही एक मासका विलम्ब हो गया। 'कल्याण'के सभी प्रेमी पाठकों और ग्राहक महानुभावोंसे इस अपरिहार्य एवं अप्रत्याशित विलम्बके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

यद्यपि अप्रैल एवं मई महीनोंके अङ्क भेजनेमें यथासम्भव सावधानी बरती गयी है; फिर भी किसी हेतुसे किन्हीं सज्जनको दोनों अङ्कोंमेंसे कोई अङ्क न मिला हो तो वे पत्र लिखकर मँगा लेनेकी कृपा करेंगे।

'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनानेके सम्बन्धमें नम्र-निवेदन

गत मासके अङ्कमें यह निवेदन किया गया था कि 'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनानेकी योजना पुनः चालू की जा रही है; किंतु इस समय देशकी ही नहीं, विश्वकी स्थिति बड़ी ही जटिल हो रही है और नित्य नयी समस्याएँ उभरती जा रही हैं। वातावरणके इस भीषण प्रभावसे 'कल्याण' भी अछूता नहीं है। परिणामतः इस समय ऐसे अनिवार्य कारण उपस्थित हैं कि आजीवन ग्राहक बनानेकी योजनाको एक बार स्थगित करना पड़ रहा है। यह सूचना अपने कृपालु पाठक-पाठिकाओंको देते हुए हमें बड़े संकोचका अनुभव हो रहा है, पर हमारी विवशता है। प्रेमी पाठक-पाठिकाओंसे प्रार्थना है कि वे इसके लिये अन्यथा विचार न करें।

—व्यवस्थापक

'कल्याण'-कार्यालय

पो० गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ४८] * * * [अङ्क ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संस्करण १६३,२००

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, अप्रैल, १९७४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–श्रीशिवका शिवाके प्रति 'मानस'-माहात्म्य-कथन [श्रीरामचरितमानस] ...	६४१
२–कल्याण ('भाईजी') ...	६४२
३–ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश ...	६४३
४–मनको आश्वासन [कविता] (श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी 'पत्रकार') ...	६४७
५–आचार्यका उपदेश [अनन्तश्रीविभूषित काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीचन्द्रशेखरजी महाराजका प्रसाद]	६४८
६–श्रीरामसे प्रार्थना [कविता] (श्रीतुलसीदासजी) ...	६५०
७–एक महात्माका प्रसाद ...	६५१
८–परमार्थकी पगडंडियाँ [नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत-वचन] ...	६५३
९–श्रीकृष्ण-भक्तकी अनन्यता [कविता] (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) ...	६५६
१०–श्रीभागवतामृत—[श्रीभागवत दशम स्कन्धके प्रथम अध्यायकी 'श्रीभागवतामृत-वर्षिणी' बंगला टीकाका भावानुवाद] ...	६५७
११–श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें दो महापुरुषोंके अनुभव (महामना मदनमोहन मालवीय एवं महात्मा गांधी) ...	६६६
१२–'मधु वाता ऋतायते' (अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज) ...	६६७
१३–ज्योति दयामयि ! [कविता] (श्रीमाधवशरणजी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ...	६७२
१४–परिवार-नियोजन और भारतीय संस्कृति (संत विनोबा भावे) ...	६७३
१५–आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ ...	६७५
१६–समर्थ रामदास (श्रीरामलालजी) ...	६७६
१७–प्रार्थना ['जीवन-सहचर'से] ...	६८३
१८–योगिराज शिवका स्वरूप (श्रीभगवानशरणजी भारद्वाज 'प्रदीप') ...	६८४
१९–'मानस' एवं मानसकारका अभिनन्दन (संकलित पद्य) ...	६८७
२०–'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'श्रीहनुमान-अङ्क' [प्रस्तावित विषय-सूची] ...	६९०
२१–श्रीरघुनाथजीके चरण [कविता] (श्रीप्रयागनारायणजी त्रिवेदी) ...	६९२
२२–पढ़ो, समझो और करो ...	६९३

चित्र-सूची

१–वीणापाणि मा शारदा	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२–'मानस'के वक्ता और श्रोता–श्रीशिव-पार्वती	(तिरंगा) ...	६४१

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री; सह-सम्पादक—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

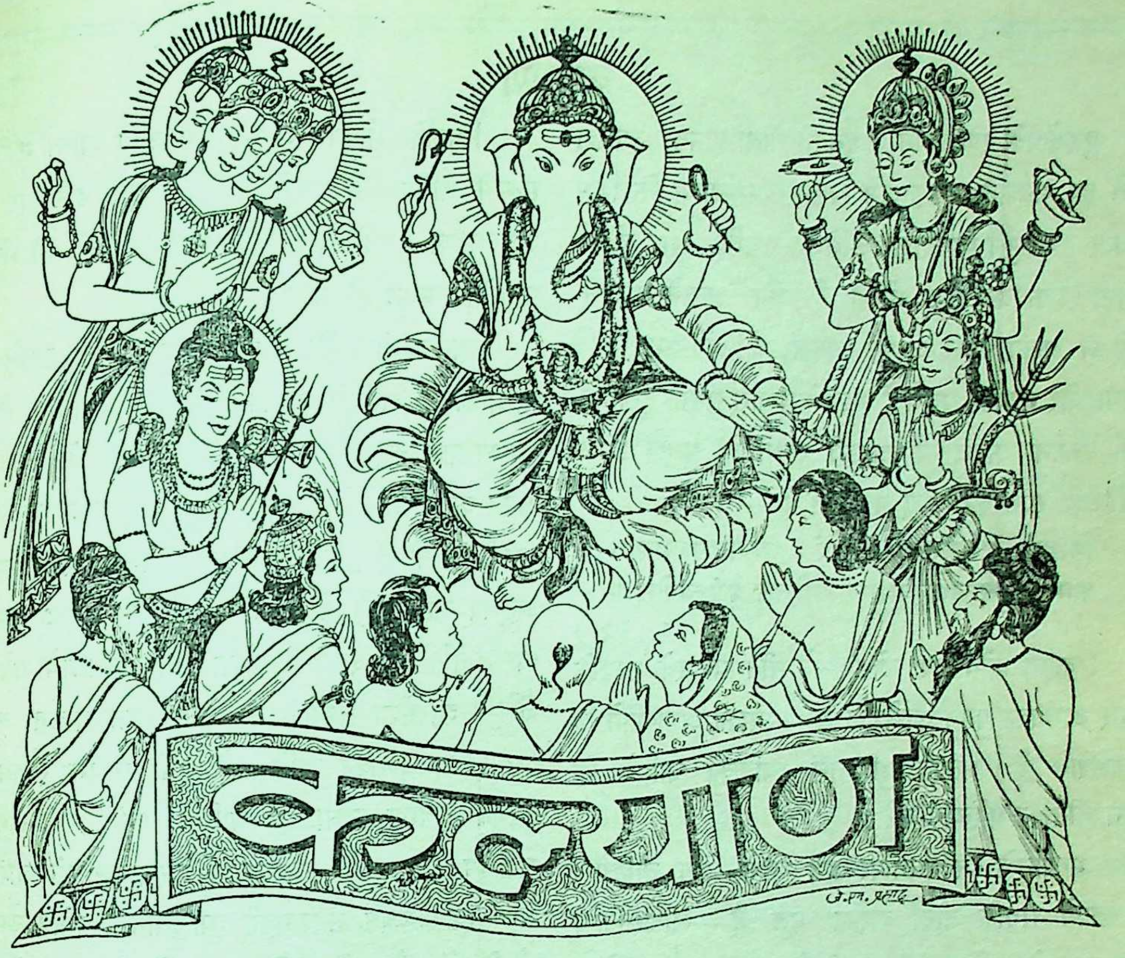

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति ।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि ॥

वर्ष ४८ } गोरखपुर, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, अप्रैल, १९७४ { संख्या ४ पूर्ण संख्या ५६९

श्रीशिवका शिवाके प्रति 'मानस'-माहात्म्य-कथन

रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि ।
सत समाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥
रामकथा सुंदर कर तारी । संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥
राम नाम गुन चरित सुहाए । जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
जथा अनंत राम भगवाना । तथा कथा कीरति गुन नाना ॥
तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी । कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई । सुखद संतसंमत मोहि भाई ॥

(मानस, बालकाण्ड ११३ । १–३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

कुरुक्षेत्रके रणाङ्गणमें अर्जुनको गीता-ज्ञानका उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्णने विस्तारसे समझाया कि किस प्रकार आसुरी-सम्पदासे अभिभूत व्यक्ति इस लोकमें नाना प्रकारके कष्ट भोगते हैं और अन्तमें भगवान्‌को न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते तथा घोर नरकोंमें पड़ते हैं। इसके पश्चात् समस्त दुर्गतियोंके प्रधान कारणरूप आसुरी सम्पत्तिके प्रमुख त्रिविध दोषोंको स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

(१६ । २१)

'काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका पतन करनेवाले हैं—उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि इन तीनोंका परित्याग करे।'

भगवान्‌के इन वचनोंपर हमें ध्यान देना चाहिये। वास्तवमें नरकके तीनों द्वारोंका मूल है—भोगासक्ति। जबतक भोगासक्ति बनी रहती है, तबतक इन तीनोंका विनाश होता नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। भोगासक्तिके विनाशके सम्बन्धमें चक्रवर्ती सम्राट् ययातिका अनुभव हमारे लिये सही मार्गदर्शक बन सकता है। ययाति एक हजार वर्षतक अपनी उच्छृङ्खल इन्द्रियोंके साथ मनको जोड़कर उसके प्रिय विषयोंको भोगते रहे; परंतु इतना करनेपर भी उनकी भोगोंसे तृप्ति न हो सकी—भोगासक्तिका शमन नहीं हुआ; प्रत्युत वह निरन्तर पुष्ट होती गयी। भगवान्‌की कृपासे एक दिन उन्हें अपने अधःपतनका बोध हुआ और वे हठात् चौंक पड़े। उनमें वैराग्यका उदय हो आया। पत्नीसे अपने जीवनका कटु अनुभव बताते हुए वे बोले—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

(श्रीमद्भा० ९ । १९ । १४)

'विषयोंके भोगनेसे भोग-वासना कभी शान्त नहीं हो सकती; बल्कि जैसे आगमें घीकी आहुति डालनेपर वह और भड़क उठती है, वैसे ही भोग-वासनाएँ भी भोगोंके उपभोगसे प्रबल हो जाती हैं।'

सचमुच भोगासक्ति इतनी प्रबल है कि उससे पार पाना अपनी शक्तिसे सम्भव नहीं है। अपनी शक्तिका आश्रय पकड़कर जैसे-जैसे व्यक्ति भोगासक्तिके विनाशका प्रयत्न करता है, वैसे-वैसे वह और भी विकराल रूप धारण करती चलती है। हम भी अपने जीवनमें बराबर इसका अनुभव कर सकते हैं। भोगासक्तिरूपी प्रबल घाटीसे पार होनेके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बतलाये गये हैं, जैसे—शास्त्रोंका श्रवण-पठन, सदाचारका पालन, त्याग, वैराग्य, सत्सङ्ग-सेवन आदि। ये सभी साधन उत्तम हैं; इनका आचरण करना ही चाहिये, परंतु मेरी समझसे सर्वोत्तम उपाय है—भगवान्‌के शरणापन्न हो जाना। भगवान्‌के स्वरूपमें, भगवान्‌की दयालुतामें, उनके कारुण्यमें, सौशील्यमें, औदार्यमें, पतितपावनतामें विश्वास करके हम भगवान्‌की शरण ग्रहण कर लें। हम निरुपाय हैं, साधनहीन हैं, दीन हैं, मलिन हैं, पापकर्मा हैं—इससे घबराना नहीं चाहिये। अपना सम्पूर्ण दैन्य लेकर, अपनी सम्पूर्ण मलिनताको लेकर हम उन दीनबन्धु—पतितपावनको पुकारें—अन्तर्हृदयसे पुकारें; बस, हमारा काम बन जायगा। भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा है—'जो मुझपर विश्वास करके, शरण्यताका भाग किसी दूसरेको न देकर—एकमात्र मुझे ही शरण्य मानकर पुकार उठता है—**'भजते मामनन्यभाक्'**—उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, वह बहुत शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।'

(गीता ९ । ३१)

'भाईजी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

अनन्त महिमामय श्रीभगवन्नामका आश्रय ग्रहण करें

श्रीभगवान्‌के नामकी महिमा अनन्त है और वह बड़ी ही रहस्यमयी है । शेष, महेश, गणेशकी तो बात ही क्या, स्वयं भगवान् भी अपने नामकी महिमा नहीं गा सकते—'रामु न सकहिं नाम गुन गाईं'।

भगवन्नामकी महिमा सभी युगोंमें सदा ही सब साधनोंसे अधिक है, परंतु कलियुगमें तो नामकी महिमा सर्वोपरि है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

(विष्णुपु० ६ । २ । १७)

'सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ तथा द्वापरमें पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केवल श्रीकेशवके कीर्तनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।'

श्रीनारदपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

(१ । ४१ । ११५)

'कलियुगमें केवल श्रीहरिका नाम ही—हरिका नाम ही—हरिका नाम ही परम कल्याण करनेवाला है; इसको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं ही है ।'

इसका यही अभिप्राय है कि कर्म, योग, ज्ञान आदि साधनोंका साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न होना इस युगमें अत्यन्त ही कठिन है । फिर भगवन्नाम बड़ा ही सुगम साधन है । इसके सभी अधिकारी हैं, सभी इसको समझ सकते हैं । यह सबको सुलभ है । मूर्ख-से-मूर्ख मनुष्य भी नामका जप-कीर्तन कर सकते हैं । इसमें न कोई खर्च है न परिश्रम । किसी प्रकारकी बाधा भी नहीं है । इतनी सुगमता होनेके साथ ही सबसे बड़ी बात यह है कि इसके उच्चारणमें किसी प्रकारकी शर्त भी नहीं है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥

(श्रीमद्भा० ६ । २ । १४-१५)

"पुत्रादिके संकेतसे हो, हँसीसे हो, स्तोभसे (गीतका आलाप पूर्ण करनेके लिये) हो अथवा अवहेलना या अवज्ञासे हो, वैकुण्ठभगवान्‌का नामोच्चारण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है, ऐसा संत-जन जानते-मानते हैं । जो मनुष्य ऊँचे स्थानसे गिरते समय, मार्गमें पैर फिसल जानेपर, अङ्ग-भङ्ग हो जानेपर, सर्पादिद्वारा डसे जानेपर, ज्वरादिसे तप्त होनेपर अथवा युद्धादिमें घायल होनेपर विवश होकर भी 'हरि' (इतना ही) कहता है, वह नरकादि किसी भी यातनाको नहीं प्राप्त होता ।"

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥

(विष्णुपु० ६ । ८ । १०)

'विवश होकर भी जिस हरिके नामका कीर्तन करनेपर मनुष्यको सम्पूर्ण पातक उसी तरह छोड़ देते हैं, जैसे सिंहसे डरे हुए भेड़िये अपने शिकारको छोड़कर भाग जाते हैं ।'

गोस्वामीजी महाराजने 'रामचरितमानस'में कहा है—

'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥'

प्रश्न—यदि ऐसी ही बात है कि किसी प्रकारसे भी नाम लेनेपर पापोंका नाश होकर भगवत्प्राप्ति हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तब श्रद्धा, प्रेम और निष्कामभाव आदिकी शर्तें क्यों लगायी जाती हैं ?

उत्तर—श्रद्धा आदिकी शर्तें शीघ्र प्राप्तिके लिये हैं। प्राप्ति तो नाम लेनेवाले सभीको होगी, परंतु जो श्रद्धा, प्रेम तथा निष्कामभावसे नाम जपेगा, उसको बहुत शीघ्र प्राप्ति होगी। मनुमहाराजने कहा है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥
(मनुस्मृति २। ८५)

'दर्श-पौर्णमासादि विधियज्ञोंसे साधारण (जोर-जोरसे किया जानेवाला) जपयज्ञ दसगुना श्रेष्ठ है, उपांशु सौगुना श्रेष्ठ है और मानस-जप हजारगुना श्रेष्ठ है।' और जो जप केवल भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे प्रेम और श्रद्धापूर्वक किया जाता है, उसका फल तो अनन्तगुना श्रेष्ठ है। उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। यहाँतक कि यदि मनुष्य भगवान्‌के अनन्य प्रेममें विह्वल होकर एक बार भी भगवान्‌का नामोच्चारण कर लेता है तो श्रीभगवान् तुरंत ही वहाँ प्रकट होकर उसे दर्शन दे सकते हैं।

प्र०—अपनी समझसे तो लोग प्रेमपूर्वक ही भगवान्‌के नामका जप करते हैं, फिर भी भगवान्‌के दर्शन नहीं होते; इसमें क्या कारण है ? यदि प्रेमकी कमी ही इसका कारण माना जाय तो फिर उस कमीकी पूर्ति कैसे होगी ?

उ०—प्रेम-भावनासे जप करते-करते ही उस प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, जिसमें विह्वल होकर एक बार भी नामोच्चारण करनेसे भगवान् दर्शन दे सकते हैं।

प्र०—ऐसे सकाम प्रेमसे भगवान् प्रकट हो सकते हैं या निष्कामसे ?

उ०—प्रेमका बाहुल्य हो तो सकामसे भी भगवान् प्रकट हो सकते हैं; परंतु वह सकाम प्रेम भी द्रौपदी या गजेन्द्रका-सा अनन्य होना चाहिये। जब सकाम प्रेमसे भगवान् प्रकट हो सकते हैं, तब निष्कामके लिये तो कहना ही क्या है ?

प्र०—नामके सम्बन्धमें ऐसा श्लोक मिलता है—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

'श्रीहरिके नाममें पापनाश करनेकी जितनी शक्ति है, उतने पाप पापीलोग कर ही नहीं सकते।' और इसमें मानस नाम-जपकी या प्रेमपूर्वक जपकी कोई शर्त भी नहीं है। फिर पापोंका नाश होता क्यों नहीं दीखता।

उ०—नाम-महिमामें विश्वास नहीं है और नामापराधयुक्त नाम-जप होता है। नामके दस अपराध हैं। उन अपराधोंसे युक्त जप होनेसे जपका बहुत-सा अंश उन अपराधोंके नाशमें ही लग जाता है। तथापि यदि मनुष्य विश्वासपूर्वक नाम-जप करता रहे तो जप करते-करते नामापराधोंका भी नाश हो सकता है और सारे पाप नष्ट होकर भगवत्प्राप्ति भी हो सकती है।

प्र०—एक मनुष्य मृत्युकालमें भगवान्‌के नामका उच्चारण तो करता है, परंतु भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान नहीं करता। ऐसी अवस्थामें उसे दूसरे जन्ममें नामकी प्राप्ति होगी—स्वरूपकी तो होगी नहीं। फिर अन्तकालके नामोच्चारणसे मुक्तिका होना कैसे माना जाता है ?

उ०—भगवान् नामके अधीन हैं। नाममें यह शक्ति है कि वह नामी—भगवान्‌का साक्षात्कार करा देता है। इसलिये मुक्ति प्राप्त होनेमें कोई भी अड़चन नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥
(शिक्षाष्टक २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे भगवन् ! आपने अपने अनेकों नाम प्रकाशित किये और उनमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति अर्पित कर दी। नाम-स्मरणमें काल (अवस्था और अधिकार आदि) का भी कोई नियम नहीं रखा। आपकी तो ऐसी असीम कृपा और मेरा ऐसा दुर्भाग्य कि नाममें मेरा अनुराग ही नहीं हुआ।'

प्र०—शास्त्र तो कहते हैं कि **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—** ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती।' फिर नाम-जपसे मुक्तिका होना कैसे माना जाय ?

उ०—नामी—भगवान्‌को यथार्थ तत्त्वसे जान लेना, अर्थात् भगवान् जैसे हैं, वैसे ही उनको जान लेना 'ज्ञान' है और नामीको यथार्थ तत्त्वसे जना देनेकी नाममें शक्ति है। फिर मुक्ति होनेमें क्या संदेह रहा ?

प्र०—स्नानादि करके अच्छी तरह पवित्र होकर विधिपूर्वक नाम-जप करना चाहिये या विधि-अविधिकी कुछ भी परवा न करके ? इसी प्रकार नाम-जप नियत संख्यामें करना चाहिये या जितना मन हो उतना ही ?

उ०—भगवान्‌के नामकी यह महिमा है कि उसे कोई किसी प्रकार भी क्यों न ले, उसका फल होता ही है। तैयार खेतमें चाहे जैसे भी बीज डाल दिये जायँ, वे उगते ही हैं। परंतु विधिपूर्वक जप करनेका विशेष महत्त्व है। यही बात संख्याके सम्बन्धमें जाननी चाहिये। विधिपूर्वक और संख्यायुक्त जप करनेसे जपका यथार्थ आदर-सत्कार होता है और सत्कारपूर्वक किया हुआ साधन विशेष फलदायक होता ही है। विधि और संख्याका नियम होनेसे ठीक समयपर उतना जप हो ही जाता है। जो विधि या संख्याका बन्धन नहीं मानते, वे भूलसे जप छोड़ भी देते हैं। अवश्य ही स्वाभाविक ही जिनके द्वारा आठों पहर नाम-जप होता है, उनके लिये कोई विधि नहीं है।

प्र०—महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः । तज्जपस्तदर्थभावनम् । ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥

(योगसूत्र १ । २७—२९)

'उस परमात्माका वाचक (नाम) ओंकार है। उसके नामका जप और उसके अर्थकी भावना यानी स्वरूपका चिन्तन करना। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी होती है।'

परंतु जब केवल नाम-जपसे ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है, तब अर्थसहित जपकी क्या आवश्यकता है ?

उ०—जप अर्थसहित करनेसे बहुत शीघ्र लाभ होता है। जैसे किसी हौजमें दो नलोंसे जल आ सकता है। परंतु उनमें एक खुला है, दूसरा बंद है। एक नलसे आनेवाले जलसे हौज दो घंटेमें भरता है, पर यदि दूसरा नल खोल दिया जाय तो वह दो घंटेके बदले एक ही घंटेमें भर सकता है, इसी प्रकार अर्थसहित जप करनेसे शीघ्र लाभ हो जाता है।

प्र०—वेद, उपनिषद् और गीतामें प्रणव (ॐ) की महिमा बहुत मिलती है। क्या भगवान्‌के अन्य नामोंकी भी ऐसी ही महिमा है ?

उ०—भगवान्‌के सभी नाम परम कल्याणकारक हैं। राम, कृष्ण, हरि, नारायण, दामोदर, शिव, शंकर आदि नामोंकी तो बात ही क्या है, अन्यधर्मीय लोगोंके अल्लाह, खुदा आदि नामोंकी भी बड़ी महिमा है। भगवान्‌को कोई किसी भी नामसे पुकारे, वे सबकी भाषा समझते हैं। पुकारनेवालेके ध्यानमें यह बात होनी चाहिये कि वह भगवान्‌को पुकार रहा है; फिर नाम चाहे कोई भी हो। अप्, जल, पानी, नीर, वाटर आदि किसी भी नामसे पुकारे, उसे जल ही मिलता है। इसी प्रकार भगवान्‌के नामोंको समझना चाहिये। इतना होनेपर भी जप करनेवाले साधककी जिस नाममें विशेष रुचि, प्रेम और विश्वास होता है, उसके लिये वही विशेष लाभप्रद होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। राम और कृष्ण नाममें कोई अन्तर नहीं; परंतु तुलसीदासजीको 'राम' नाम प्यारा था और सूरदासजीको 'कृष्ण' नाम। श्रद्धा और प्रेमके तारतम्यके अनुसार ही नामका फल भी न्यूनाधिक होता है।

नामकी महिमा सभी शास्त्रोंमें गायी गयी है। जिसको जिस नाममें प्रेम हो, वह उसी नामका जप-कीर्तन कर सकता है। न जपनेवालेकी अपेक्षा तो वह भी बहुत श्रेष्ठ है, जो दुःखनाश, भोगोंकी प्राप्ति और मान-बड़ाई आदिके लिये नाम-जप करता है। परंतु नामके बदलेमें जो उपर्युक्त लौकिक फल चाहता है, वह है बड़ी ही भूलमें। वास्तवमें वह ठगा ही जाता है। भगवान्‌के जिस एक नामके सामने तीनों लोकोंका सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी कुछ नहीं, उस नामको तुच्छ विषयोंके बदले गवाँ देना बुद्धिमानी नहीं है। तीनों लोकोंका राज्य अनित्य है, भगवान्‌के नामका फल नित्य है। नाम-जपका फल तो भगवत्प्राप्ति ही है। कुछ प्रेमी महात्मा तो ऐसे होते हैं, जो नाम-जप केवल नाम-जपके लिये ही करते हैं। वे भगवत्प्राप्तिरूप फल भी नहीं चाहते। अतएव भगवान्‌के किसी भी नामका जप किया जाय, सभी नाम मङ्गलमय हैं; पर निष्काम तथा प्रेमभावसे जपनेका विशेष महत्त्व है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें सब यज्ञोंसे ज्ञानयज्ञको श्रेष्ठ बतलाया है—

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

(४। ३३)

'हे अर्जुन! सांसारिक वस्तुओंसे सिद्ध होनेवाले द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानरूप यज्ञ सब प्रकारसे श्रेष्ठ है; क्योंकि हे पार्थ! सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्म ज्ञानमें ही शेष होते हैं, अर्थात् ज्ञान ही उनकी पराकाष्ठा है।'

इस प्रकार ज्ञानयज्ञको सबसे श्रेष्ठ बतलाया, परंतु उसे अपना स्वरूप नहीं बतलाया। किंतु जपयज्ञको तो **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** (गीता १०। २५) कहकर यही कह दिया है कि 'यज्ञोंमें जपयज्ञ तो मैं ही हूँ।'

अत भगवान्‌के किसी भी नामका जप, किसी भी कालमें, किसी भी निमित्तसे, किसीके भी द्वारा, कैसे भी किया जाय, वह परम कल्याण करनेवाला ही है। फिर जो श्रद्धा-प्रेमपूर्वक अर्थसहित निष्कामभावसे और गुप्तरूपसे नाम-जप किया जाता है, वह तो उसी क्षण परम कल्याणरूप फल देनेवाला होता है। भगवत्प्राप्ति तो किसी प्रकार भी नाम-जप करनेसे हो जाती है, परंतु वह कालान्तरमें होती है। हाँ, अन्त समयके लिये कोई शर्त नहीं है। भगवान् परम दयालु हैं; उन्होंने दया करके ही जीवको यह मोक्षोपयोगी मनुष्य-शरीर दिया है और उन्हीं दयामयने यह विधान भी कर दिया है कि 'अन्तकालमें किसी प्रकार भी जो मेरा नाम-स्मरण कर लेगा, उसे मेरी प्राप्ति हो जायगी।' किसीको फाँसीकी आज्ञा होनेपर जब साधारण राजनियमके अनुसार भी मृत्युसे पहले उस मनुष्यकी इच्छा पूर्ण करनेका सुभीता कर दिया जाता है, तब परम दयालु, परम सुहृद्, सर्व-समर्थ प्रभु मनुष्य-जीवनके अन्तकालमें जीवके साथ दयाका ऐसा बर्ताव करें, यह उचित ही है।

ऐसे परम कारुणिक, परम प्रेमी, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी परमात्माको विसारकर एक क्षणके लिये भी दूसरी वस्तुका भजन या सेवन करना महान् मूर्खताके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। भगवान्‌ने स्वयं चेतावनी देते हुए कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'

(गीता ९। ३३)

'सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर तू निरन्तर मेरा ही भजन कर।'

इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है कि यह शरीर बहुत ही दुर्लभ है; परंतु है नाशवान् और सुखरहित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्लभता इसीलिये है कि इसी शरीरसे परम कल्याण हो सकता है । ऐसे शरीरको पाकर तो सब समय भगवान्‌का भजन ही करना चाहिये । भजन नहीं किया जायगा और अज्ञानसे सुखरूप भासनेवाले विषयभोगोंमें मन फँस जायगा तो सुख तो मिलेगा ही नहीं (क्योंकि भगवान्‌को छोड़कर जगत्‌में कहीं सुख है ही नहीं, यह तो सुख-रहित ही है) और शीघ्र ही शरीरका नाश हो जानेसे मनुष्य-शरीरमें मुक्तिका अधिकाररूप हाथमें आया हुआ सुअवसर निकल जायगा ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि संसारमें भगवान्‌के भजनके समान और कोई वस्तु है ही नहीं । इस तत्त्व-को जो जान लेते हैं, वे तो एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूल सकते । भगवान्‌ने कहा है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥

(गीता १५ । १९)

“हे भारत ! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे ‘पुरुषोत्तम’ जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझको ही भजता है” क्योंकि अनन्त ब्रह्माण्डोंके समस्त ऐश्वर्य-सुखको एक ओर रखा जाय और भगवान्‌का क्षणकालका जप या स्मरण एक ओर तो भी वह उस जप-कीर्तनकी बराबरी नहीं कर सकता । असंख्य ब्रह्माण्ड तो भगवान्‌के एक अंशमें ही स्थित हैं । भगवान्‌के समान तो भगवान् ही हैं और भगवान्‌का नाम भगवान्‌से अभिन्न है । इसलिये नाम-जपके साथ किसीकी तुलना नहीं हो सकती । अतएव हम सब लोगोंको निष्काम प्रेमभावसे नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नामका ही जप-कीर्तन और स्मरण करना चाहिये ।

मनको आश्वासन

(रचयिता—श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी ‘पत्रकार’)

जनमसे ही जीनेकी आदत पड़ी है,
इसीसे तो अबतक जिये जा रहा हूँ ।
नहीं जानता, क्या है करना, न करना,
जो अच्छा समझता, किये जा रहा हूँ ॥
थकी देह, क्या जानें, कब गिर पड़े, यह
है गुदड़ी पुरानी सिये जा रहा हूँ ।
नहीं सोचता हानि या लाभ कुछ भी,
समझकर सुधा विष पिये जा रहा हूँ ॥
न आता कभी ध्यान प्रभुका हृदयमें,
मगर नाम तब भी लिये जा रहा हूँ ।
‘दयामय द्रवेंगे कभी दीन पर भी’—
यही दिलको ढाढस दिये जा रहा हूँ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यका उपदेश

[अनन्तश्रीविभूषित काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीचन्द्रशेखरजी महाराजका प्रसाद]

हमको विचार करना चाहिये कि हमारा हृदय किसका स्थान है। हृदय भगवान्‌के लिये निर्मित आसन है। उस स्थानको हमने कंकड़ और कचरेसे भर दिया है। उसे साफ करके उसपर गोबरका आलेप करें और वहाँ भगवान्‌को आसीन करें। इसके लिये उपाय क्या है? भगवान्‌के चरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए नित्य प्रति कम-से-कम पाँच क्षणतक हम ध्यानमें तत्पर रहें।

* * *

पाप क्या है और पुण्य क्या है? हमारा मन जिसे करने नहीं देना चाहता, जिसमें प्रवृत्त होनेसे रोकता है, वह अनुचित, शास्त्रनिषिद्ध कर्म 'पाप' है। हमारा स्वच्छ मन जिसे सादर स्वीकार कर लेता है, वह शास्त्रविहित कर्म पुण्य-कार्य है।

इच्छा और स्वार्थ-भावनासे दूर रहकर जो भी काम किया जायगा, वह पाप नहीं माना जायगा। स्वार्थ-साधनकी इच्छासे आसक्तिपूर्वक जो कार्य किया जायगा, वह पाप माना जायगा। पाप करते-करते उसकी आदत पड़ जानेसे सदा पाप-कार्यमें ही प्रवृत्ति होती रहती है।

हमें सोचना चाहिये कि हमसे किस-किस प्रकार पाप बनते हैं। मनमें बुरे विचार लेकर हम राग-द्वेषमूलक कर्म करके पाप-कार्य करते हैं। वाणीसे अंट-शंट बातें बनाकर पापाचार करते हैं। शरीरके द्वारा अशास्त्रीय तथा अशोभन कार्य करके हम पापाचारको बढ़ावा देते हैं। धन-सम्पत्तिके द्वारा भी हमसे अनेक प्रकारके पाप-कार्य बनते हैं। यद्यपि मनमें पापकर्म-विरोधी विचार भी उठते हैं तो भी बुरी आदत होनेसे हमसे पाप-कार्य किये बिना रहा नहीं जाता।

हमने पाप-पङ्क लपेट रखा है। बहुत दिनोंसे पाप करते आ रहे हैं, यही कारण है कि वह आदत सहसा नहीं छूटती। उससे हम किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं, इसपर ध्यान देना चाहिये। हमने जिस प्रकार इस पापमयी रस्सीको लपेट लिया है, उसी भाँति हमें उसको छुड़ाना भी होगा। जिस जिह्वासे हमने वाणीद्वारा पापकार्यका अभ्यास डाल लिया था, उसीके द्वारा हमें पुण्यकार्य करनेका अभ्यास डालना होगा।

* * *

पाप और पुण्यके होनेका कारण क्या है—यह विचारणीय है। किसी वृक्षको हम हरित पल्लवोंसे शून्य कर देना चाहें तो उसको जड़-मूलसे ही काट डालना होगा। इसी प्रकार पापके मूल कारणको जानकर उसका त्याग करना पड़ेगा।

प्रतिदिन तन, धन और वाणीके द्वारा लोक-कल्याण-का कार्य करते रहना चाहिये। हमको जो धन मिलता है, उसमेंसे प्रतिदिन थोड़ा-सा ही सही, धर्म-कार्यके लिये जमा करना चाहिये। उस धनराशिका परिवारके लिये उपयोग न करके उसे धर्म-कार्यमें लगाना चाहिये। स्मरण रहे कि जिसे मोहवश हम अपना कहते हैं, वह सारा धन वास्तवमें हमारा नहीं है। जब शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद होगा, तब धन भी हमसे अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेगा। यदि हम उस धनको अपना बनाना चाहें तो उसे कागजके नोट बना लें, जिससे हम जहाँ कहीं भी जायँ, उसे साथ ले जा सकें। धनको धर्मरूपी नोटमें परिवर्तित कर लें। यहाँका धन स्वर्गके संसारमें सर्वथा महत्त्वहीन है। यदि उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मरूपी धनमें बदल लें तो वह वहाँ भी चल सकेगा। अतः आबाल-वृद्ध सभी नर-नारियोंका काम होना चाहिये कि वे प्रतिदिन अपने धनका कुछ भाग धर्म-कार्यमें लगावें।

हमलोग धर्मको भूल गये हैं; पर वास्तवमें वही परलोकमें काम आनेवाला धन है। बच्चोंके लिये अलग धर्म-हुंडी रखें। क्या उनके लिये बीमा नहीं करवाते? परंतु उस धनका जीवनके पश्चात् क्या उपयोग है? धर्म-हुंडीका संग्रह तो जीवनके पश्चात् भी उपयोगी रहेगा। अतः कहना पड़ेगा कि यही मानव-जीवनके पश्चात्‌की क्षेमनिधि है।

* * *

हमारे मनमें असंख्य इच्छाएँ उदित होती और पलती रहती हैं। परंतु एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि हम अपनी परमप्रिय वस्तुओंसे भी बिछुड़ जायँगे। उस समय या तो हमें उनको छोड़ना पड़ेगा या वे ही हमारा साथ छोड़ देंगी।

यदि हम मृत्युके द्वारा उनसे बिछुड़ते हैं तो दुःखी होते हैं; यदि स्वयं ही उन वाञ्छित वस्तुओंका परित्याग कर दें तो हम शान्ति-सुखका समास्वादन करते हुए सानन्द रह सकते हैं। हमारे मनमें जितनी अभिलाषाएँ हैं, उतनी ही खूँटियाँ गाड़कर हम अपनेको दृढ़ बन्धनमें बाँधते जा रहे हैं। हम ज्यों-ज्यों इच्छाओंको कम करते जायँगे, त्यों-त्यों दुःखकी मात्रा भी कम होती जायगी। इस जीवनकी समाप्तिसे पूर्व अपनी सारी इच्छाएँ यदि हम त्याग देंगे तो पुनर्जन्मका भय भी जाता रहेगा तथा परमात्मामें लीन होकर हम आनन्द-सिन्धुमें सदा अवगाहन करते रहेंगे।

हमें गर्व है कि मनुष्य पशुओंसे ऊँचा है; परंतु प्रश्न यह है कि उसने पशुओंसे अधिक कौन-से प्रशंसनीय कार्य कर लिये। श्वान, रक्त-पिपासु सियार तथा तिलचट्टा भी तो जन्म लेते हैं, अपनी वंश-वृद्धि करते हैं और जीवनका अन्त पाते हैं। साधारणतया मनुष्य भी इससे अधिक क्या कर लेता है? ऐसी दशामें मनुष्यको अपनी मनुष्यतापर गर्व क्यों करना चाहिये? सबसे अधिक ज्ञानका—निरन्तर आनन्दका मार्ग खोजना ही मनुष्यका पुरुषार्थ है। हमें विचार करना चाहिये कि मनुष्य उपर्युक्त आनन्दको प्राप्त कर सकता है अथवा नहीं? यह ज्ञान तथा 'अहं'—दोनों अभिन्न हैं। जब हमें यह ज्ञान होगा कि हम कौन हैं, तब हमें यह ज्ञात हो जायगा कि हम स्वयं ही ज्ञानानन्दस्वरूप ब्रह्म हैं।

* * *

समुद्र एक ही है, परंतु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उसका भिन्न-भिन्न नाम है। उसी तरह भगवान् एक ही हैं, किंतु उनके नाम और रूप अनेक हैं। इस एकताको हम समझें और उन महात्माओंके चरणोंमें नमन करें, जिन्होंने इस तत्त्व-ज्ञानको हमारे सामने रखा था। उनके द्वारा रचे गये प्रेमसे भरे भजन हम गायें। उनके द्वारा दिये गये सदुपदेश गहरे, परंतु पर्वतकी तरह भारी हैं, उनका हम मनन करें। तभी हमको सच्चे आनन्दकी उपलब्धि हो सकेगी।

* * *

जल ऊँचे प्रदेशसे अथवा पर्वतोंसे गिरकर प्रवाहित होता है; पत्थरोंके छिद्रोंसे होकर बहता है और निर्झर या प्रपात बनता है। वह गम्भीरताके साथ पर्वतोंकी तराईमें गिरता है। अब वह समतल भूमिमें बहने लगता है। बड़ी शान्तिके साथ बड़ी नदीका रूप धारण करता है, खेतोंकी सिंचाईके उपयोगमें आता है और अन्तमें अनल्प जलके साथ अपना चहल-पहल खोकर समुद्रमें मिल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही दशा मनुष्यकी भी है। वह शिशुके रूपमें जन्म लेता है; युवावस्थामें आशाओं और अहंकारसे गर्जता है। सांसारिकतामें प्रवेश पाकर पूर्व-जन्मके कर्मके अनुसार अनेक कार्य करता है, सुख-दुःख भोगता है। वृद्धावस्थामें विश्राम पाता है और अहंकार दूर करता है। ईश्वरके चरणोंमें अपने मनको अर्पित करता है; उनके स्वरूपमें लीन होता है, अपनी दशाको, अपनेपनको खोकर भगवान्‌के साथ एकाकार हो जाता है।

* * *

यदि कोई ग्रामवासी मनुष्य नगरके लोगोंके अपराधोंकी आलोचना कर रहा हो, जैसे—'वह अयोग्य है।' 'वह उधर खड़ा क्यों था?' 'उसने यह कार्य क्यों किया था?' और वह इस तरहकी शिकायतें करता फिरता है तो उसकी सारी बातें वाक् तथा मनोगत होनेपर भी सत्य-संगत नहीं कही जा सकतीं।

जो प्राणियोंके लिये हितकर और प्रिय हो, वही सत्य है—**'सत्यं भूतहितं प्रियम्'** है। मनोगत विचार वाणीमें प्रकट हों—यह साधारण नियम है। हम विचार करें कि क्यों मनोगत विचारोंको ही वाणीद्वारा व्यक्त करें? सारे कार्य प्राणिमात्रकी कल्याण-कामनासे ही किये जाते हैं। सत्य भी ऐसा हो, जिससे कल्याणमय परिणाम प्रकट हो। जो सबके लिये कल्याणकारी हो, वही सत्य है। जिससे किसीका अमङ्गल हो, वह सत्य सुसंगत नहीं होगा।

सत्य ऐसा होना चाहिये, जो जीवमात्रके लिये कल्याणकारक सिद्ध हो। काम तथा क्रोधसे प्रेरित सत्य सत्य नहीं होगा; उसमें किसीके अहितकी प्रतीक्षा छिपी रहती है।

सत्य-भाषण ऐसा हो, जिससे किसीका मन खिन्न न हो। जिससे हमारा अथवा अन्य किसी जीवका मङ्गल हो—वैसा ही भाषण करना उचित है। ऐसे सत्यको प्रस्तुत करते समय भी मनमें शान्त-भाव बनाये रखें, जिससे सुननेवालोंका चित्त विचलित न हो। यही वाणीद्वारा प्रकट किया जानेवाला सत्य है।

श्रीरामसे प्रार्थना

तुम सम दीनबंधु, न दीन कोउ मो सम, सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि! न हरन कुटिलाई॥
हौं मन-बचन-कर्म पातक-रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई।
हौं अनाथ, प्रभु! तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम-पुराननि गाई।
हौं सभीत, तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई॥
तुम सुखधाम, राम श्रम-भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध श्रम पाई।
यह जिय जानि दास 'तुलसी' कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई॥

(विनयपत्रिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

जिसने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक शरणागत होकर प्यारे प्रभुको अपना लिया, अथवा जो एकमात्र सब प्रकारसे प्यारे प्रभुका ही होकर रहता है, वह बड़ी ही सुगमतापूर्वक सुखकी दासता तथा दुःखके भयसे रहित होकर मिलन-रसका अधिकारी हो जाता है—यह प्यारे प्रभुका मङ्गलमय विधान है। जिस-किसीने उनको पाया, अपनेको देकर पाया। जो साधक अपनेमें अपना कुछ नहीं पाता, अपितु सब ओरसे विमुख होकर प्रभुके शरणागत हो जाता है, उसे फिर कुछ भी करना शेष नहीं रहता। सर्वसमर्थ प्रभुकी कृपा उसे स्वयं उपयोगी बना लेती है। मानवसे सबसे बड़ी भूल यही होती है कि वह दाताको अपना न मानकर मिली हुई वस्तु आदिको अपना मान लेता है। यह सब कुछ उन्हींका था, उन्हींका है तथा उन्हींका रहेगा; और वे सदैव शरणागतके हैं और रहेंगे। उसमें लेशमात्र भी संदेह करना अपने ही द्वारा अपना विनाश करना है। प्रत्येक घटनामें उन्हींकी अनुपम लीलाको देखो और उन्हींकी अहैतुकी कृपाका आश्रय पाकर सदाके लिये निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाओ।

* * *

प्रत्येक दशामें मानसिक शान्ति सुरक्षित रखो और सब प्रकारसे सर्वसमर्थ प्यारे प्रभुके होकर रहो; यही सफलताकी कुंजी है।

प्रत्येक घटनामें प्यारे प्रभुकी अनुपम लीलाका दर्शन करते हुए सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहें, सब प्रकारसे उन्हींके होकर रहें। आप सदैव उनके और वे आपके हैं, यह निर्विवाद सत्य है। उन्हें आप और आपको वे सदैव प्रिय हैं। आपके और उनके बीच केवल प्रेमका आदान-प्रदान है। उनकी दी हुई प्रीतिको ही उन्हें देते रहें और प्रीति पाते रहें—इसीमें इस जीवनकी पूर्णता है।

अपने पास अपना मन मत रखें; जहाँ प्यारे रखें, वहीं रहें। आपके प्यारे सदैव आपके साथ हैं। आप उनके प्राण-प्यारे और वे आपके प्राण-प्यारे हैं।

* * *

ज्ञान-शक्ति, भाव-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति मानवमात्रको प्राप्त है। ज्ञानके अनुकूल भाव और भावके अनुकूल क्रिया होती है। सत्य-ज्ञानसे पवित्र भाव तथा शुद्ध क्रिया होती है। मिथ्या ज्ञानसे अपवित्र भाव तथा अशुद्ध क्रिया होती है। विषयोंके रागसे गलत ज्ञान और राग-रहित होनेसे सत्य ज्ञान उत्पन्न होता है। शरीरको अपना स्वरूप समझनेपर गलत ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। यह नियम है कि जिससे हम अपनेको मिला देते हैं, उसमें प्रियता होने लगती है; इसीलिये शरीर प्रिय मालूम होता है। विषयोंका समूह ही 'शरीर' है। अतएव 'मैं शरीर हूँ'—इस विचारमें विषयोंसे राग तथा आसक्ति हो जाती है, जो महान् दुःखका मूल है। अपनेको शरीर कभी मत समझो। ऐसा अनुभव करनेपर सत्य ज्ञान अवश्य उत्पन्न होगा, जो आनन्दका मूल है। ज्ञान-शक्तिसे भगवत्स्वरूपका अनुभव करो और भाव-शक्तिसे भगवत्-अनुराग (प्रेम) तथा क्रिया-शक्तिसे भगवत्-सेवा करनी चाहिये। क्रिया-शक्तिको भाव-शक्तिमें और भाव-शक्तिको ज्ञान-शक्तिमें लीन कर अनन्त आनन्दका अनुभव करो।

* * *

शुद्ध क्रिया होनेपर उस क्रियाका प्रभाव (फल) भगवत्-अनुराग ही होता है; क्योंकि क्रिया जिस भावसे की जाती है, उसका फल उसी भावमें दृढ़ता कर देता है; क्रिया अपनी कुछ भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखती। बल्कि जैसा कर्ताका भाव होता है, वही उसका सच्चा स्वरूप है। इसलिये सेवा-भावकी क्रियासे भगवत्-अनुराग उत्पन्न हो जाता है और भगवत्-अनुराग उत्पन्न होनेपर बुद्धि (ज्ञान-शक्ति) स्वरूपमें स्थित हो जाती है। ऐसा हो जानेपर परम शान्ति अवश्य प्राप्त होती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। बुद्धि जिस भावको लेकर स्थिर होती है, अनन्त ज्ञानके भंडारसे उसको वही ज्ञान प्राप्त होता है। अतएव ज्ञानके लिये किसी बाहरी वस्तुकी खोज मत करो; क्योंकि अनन्त ज्ञानका भंडार आपकी अन्तरात्मा है।

* * *

प्रत्येक कर्मका जन्म कर्तामेंसे ही होता है, अर्थात् जैसा कर्ता, वैसा कर्म। कर्मसे कर्ता नहीं बनता, अपितु कर्तामेंसे ही कर्म निकलता है। यदि कर्मसे कर्ता बन सकता तो आज वैज्ञानिक लोग ऐसी फैक्ट्री बना देते, जिनके द्वारा भले आदमी बन जाते और फिर सभीको अच्छे-से-अच्छे साथी जितने चाहिये, मिल जाते; पर आज मानव-समाज ऐसा नहीं कर सका। इस दृष्टिसे यह निर्विवाद सत्य है कि जब कर्ता भला होगा तो कर्म भला होगा; और भले कार्योंसे विश्व-शान्ति होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार, समाज और संसार स्वरूपसे एक हैं। जिस परिवारमें हम रहते हैं, वह भी विश्वका एक रूप है। हमारे साथी हमारे साथ क्या करते हैं, इसपर तो हम ध्यान देते हैं, पर क्यों करते हैं, इसपर हम विचार नहीं करते। उसका परिणाम यह होता है कि हम दूसरोंको अपराधी मानकर क्षोभ तथा क्रोधसे भर जाते हैं, जिससे अपनी बड़ी ही क्षति होती है; और उसे, जिसने हमारे साथ बुराई की, सर्वांशमें बुरा मान लेते हैं। इसका भयंकर परिणाम यह होता है कि वह बेचारा हमारे संकल्पसे ही विवश होकर पुनः बुराई करने लगता है। जैसे-जैसे हम उसे बुरा मानते जाते हैं, वैसे-वैसे वह बुराई करता जाता है और हम उसे पुनः बुरा मानते जाते हैं। हमारे बुरा माननेसे उसे जितनी क्षति होती है, उतनी क्षति उसके बुराई करनेसे नहीं होती। इतना ही नहीं, यदि अपने प्रति होनेवाली बुराईको हम हर्षपूर्वक सहन कर लेते और उसे अबोध बालककी भाँति विवश मानकर क्षमा कर देते और हृदयमें उसके प्रति करुणाकी धारा उदय होती तो वह सदाके लिये बुरा न रहता और उसके बुरा न रहनेसे बुराईकी उत्पत्ति ही नहीं होती। इससे सुन्दर बुराईका और कोई प्रतीकार नहीं है। यह जीवनका विज्ञान है।

जब कोई अकारण हमारे साथ बुराई करता है तो हमको अच्छा तो नहीं लगता, परंतु क्षुभित होनेसे तो अपनी शान्ति भङ्ग होती है, जिससे जीवनमें शक्तिहीनता आती है और फिर हम अपने कर्तव्यका ठीक पालन ही नहीं कर पाते। यह परिणाम हमारे क्षुभित होनेका है, किसीकी बुराई करनेका नहीं। दूसरेकी की हुई बुराई हमें अल्पकालके लिये दुःखी कर सकती है, पर कर्तव्यसे विमुख नहीं कर सकती। दुःखी होनेपर यदि हम निज ज्ञानके आधारपर विचार करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायगा कि बुराई करनेवाला किसी-न-किसी नाते अपना ही है। अपने दाँतसे अपनी जीभ कट जाती है तो क्या जीभ दाँतोंपर क्रोध करती है, दाँतोंको तोड़नेके लिये आज्ञा देती है? क्या हम स्वयं दाँतोंको तोड़कर फेंक देना चाहते हैं? कदापि नहीं। हम जानते हैं कि दोनों अपने ही हैं। अपनेको सावधान करते हैं, दाँत और जीभको कुछ नहीं कहते। सावधानीका परिणाम यह होता है कि दोनों व्यक्तित्व एक हो जाते हैं और व्यक्तित्व-भेदके मोहसे रहित होकर वे अपनेमें अपने प्रेमास्पदको पा जाते हैं। यह क्षमाशीलताका फल है और कुछ नहीं। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब साधक अपने दुःखका कारण किसी औरको नहीं मानता; न किसीसे सुखकी आशा ही करता है। बुराईका मूल निज ज्ञानका अनादर है। सर्वांशमें कभी कोई मानव ज्ञानका अनादर नहीं करता, तो फिर वह सर्वांशमें बुरा कैसे हो सकता है? बुरा कोई होता नहीं, बुराई उत्पन्न होती है; न दुहरायी जाय तो वह स्वतः मिट जाती है। बुराई न रहे, इसके लिये सर्वोत्कृष्ट उपाय यही होगा कि स्वयं की हुई बुराईको हम दुहरायें नहीं और अपने प्रति होनेवाली बुराईका प्रतीकार न करें; अर्थात् बुराई करनेवालेको बुरा न समझें। यदि सम्भव हो तो बदलेमें उसकी भलाई करें; अन्यथा उसके आक्रमणसे क्षुभित न हों और उसके लिये सद्भाव रखें, उससे मूक प्यार करें। इससे अपनेको परम उदार, परम स्वतन्त्र, परम प्रेमसे भरपूर प्रेमास्पदकी प्राप्ति हो जायगी। यह प्रभु-विश्वासी साधकोंका अनुभव है।

अब विचार यह करना है कि दूसरोंकी भूल अपनेको क्षुभित न करे, इसके लिये उपाय क्या हो सकता है? इस सम्बन्धमें प्रथम यह विचार करना है कि क्षुभित होनेसे सबसे बड़ी क्षति क्या होती है—विस्मृति। विस्मृतिके समान और कोई क्षति हो ही नहीं सकती; कारण कि समस्त विकार—पराधीनता, जडता, नीरसता, भेद-भिन्नता आदि सब विस्मृतिके ही परिणाम हैं। स्मृतिमें जीवन है। जीवनमें नीरसताकी गन्ध भी नहीं है, न किसी प्रकारका अभाव है। अभावरहित, रसरूप, अविनाशी जीवन स्मृतिमें ही है। इस दृष्टिसे सजग साधकको विस्मृतिका अन्त करना अनिवार्य है। वह तभी सम्भव होगा, जब साधक परिस्थिति-वश आनेवाले सुख-दुःखके आक्रमणसे अपनेको बचाये। अपमानका दुःख एक बड़ा भयंकर दुःख है। उसी प्रकार सम्मानकी पूर्ति सुखके रूपमें बड़ी जडता है। अपमानका दुःख और सम्मानकी जडताका मूल है—अपनी वास्तविक माँगकी विस्मृति। यदि साधक अपनी वास्तविक माँगको कभी न भूले तो वह बड़ी सुगमतापूर्वक आये हुए आक्रमण-से बच सकता है और फिर माँगकी पूर्तिसे जीवनकी सभी समस्याएँ स्वतः हल हो जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत-वचन]

श्रीकृष्ण विना किसी शर्तका प्रेम चाहते हैं

शुभ्र और निर्मल ज्योत्स्नासे प्लावित शारदीय पूर्णिमाकी निःस्तब्ध रजनीमें भगवत्प्रिया कालिन्दीके विमल तटपर एकान्त पवित्र स्थानमें बैठकर आनन्द-प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण नेत्रोंद्वारा सर्वत्र श्रीश्यामसुन्दरको निहारते हुए श्रीकृष्णके सुधा-माधुर्य-सार पवित्र नामकी आर्त्त पुकार करनेकी आपकी कामना अत्यन्त ही कमनीय, सराहनीय और अभिनन्दनीय है। ऐसा शुभ समय कब होगा, इसका बतलानेवाला है कौन ? जिस चतुर-चोर-चूड़ामणिने 'आपके चित्तको चुराया है', उसीसे 'उसके विरहमें रोनेका आनन्द-सिन्धु कब उमड़ेगा'—यह भी पूछना चाहिये। मेरी समझसे तो वह लीलामय जब चाहेगा, तभी यह सुयोग उपस्थित कर देगा। हाँ, उसके दिलमें ऐसी चाह उत्पन्न करनेके लिये अपनी सब चाहोंको उसकी अज्ञात चाहमें मिलाकर उसकी चित्तचाही चाहकी चाहपूर्वक प्रतीक्षा करते रहना चाहिये। फिर जब उसकी मुरली बजेगी—बजती तो वह सर्वदा है ही, हम उसे सुन नहीं पाते—तभी वह शुभ समय समीप आ जायेगा। आर्त्त और कल्याणभावसे उसे पुकारते रहिये। क्यों पुकारते हैं, क्या चाह है, कबतक पुकारना है, पुकारनेवाले हम कौन हैं, इन बातोंको भुला दीजिये। बस, केवल पुकार—पुकारके लिये पुकार, पुकारके स्वभावसे ही पुकार। इतना ध्यान रहे कि पुकार केवल वह ही सुने। पुकार ऐसी नीरव, ऐसी गुप्त और ऐसे हृदयके अन्तस्तलसे हो कि दुनियाको उसका पता ही न लगे। नहीं तो दुनियामें भक्त कहलानेसे मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा और कहीं-कहीं निन्दा-अपमान प्रारम्भ हो जायँगे, जो सच्ची पुकारके लिये बड़े बाधक होंगे। ऐसी पुकार हुई कि फिर वह स्थिर नहीं रह सकेगा; अपनी योगमायाका पर्दा हटा लेगा और अपने अनावृत सौन्दर्य-माधुर्यके अनन्त महासागरमें हमें डुबो देगा। वह बिना किसी शर्तका प्रेम चाहता है—स्मरण रखिये।

श्रीकिशोरीजी और श्रीश्यामसुन्दर एक ही हैं

श्रीकिशोरीजी और श्रीश्यामसुन्दर एक ही हैं। श्यामसुन्दर शक्तिमान् हैं और श्रीकिशोरीजी उनकी शक्ति हैं। वे पृथक् और अपृथक्--दोनों रूपोंमें रहते हैं। जब साधक श्रीश्यामसुन्दरको ही अपना ध्येय समझता है, तब श्रीकिशोरीजी उनसे अपृथक्भावसे उनके साथ रहती हैं। साधक इस बातको जानता हो तो ठीक है, न जानता हो तो भी कोई हर्ज नहीं है। इसलिये केवल श्रीश्यामसुन्दरको ध्येय माननेमें भी कोई आपत्ति नहीं है। जो लोग श्रीकिशोरीजीको श्रीश्यामसुन्दरसे पृथक् मानते हैं, उनकी उपासना भगवत्-लीला-प्रधान है। लीलामें श्रीकिशोरीजी पृथक्रूपसे ही रहती हैं। परंतु जिनकी उपासनामें भगवत्स्मरणकी प्रधानता हो, उनके लिये श्रीकिशोरीजीको श्रीश्यामसुन्दरसे पृथक् मानना आवश्यक नहीं है।

अभिलाषाकी पूर्तिके लिये भजन अमोघ साधन है

'खंजननैन-रूप-रस माते'-जैसे प्रेमभरे पदोंका गायन करते-करते शान्तिमय श्रीयमुनाजीके तटपर पावन व्रज-भूमिकी धूलिमें शरीरके विलीन हो जानेकी अभिलाषा बहुत ही उत्तम है। ऐसी शुद्ध और उत्तम अभिलाषा भगवत्कृपासे ही होती है। आपके हृदयमें ऐसी अभिलाषा जाग्रत् होती है और भगवत्प्रेमकी झाँकी होती है—इससे मालूम होता है, अखिल-आनन्दरस-सिन्धु, आनन्दकन्द श्री-श्यामसुन्दरकी आपपर कृपा है। आप धन्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्पर निर्भर होकर भगवान्की आज्ञा और इच्छाके अनुकूल यथासाध्य आसक्ति, ममता और अहंकार त्यागकर दैवी सम्पदाके दिव्य गुणोंके द्वारा अनन्य और निष्काम भावसे भगवद्भजन ही वह अमोघ उपाय है, जिससे भगवत्प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहे और अन्तमें प्रेमवश श्रीभगवान् जहाँ आप रहें, वहीं दिव्य यमुना और व्रजभूमिसहित स्वयं प्रकट होकर आपके जीवनको कृतार्थ कर दें; आपकी अभिलाषा सचमुच सफल कर दें। मेरा यह निवेदन है कि आप इसी भावसे साधना करते रहें।

भगवान्का शील-स्वभाव

भगवान्का शील-स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। वे न अवगुण देखते हैं न दोष। वे देखते हैं—केवल वर्तमानकी चाह तथा आसक्ति। जिसके मनमें उनकी चाह तथा उनमें आसक्ति होती है, वे उसे सर्वथा विशुद्ध करके अपना बना लेते हैं और स्वयं उसके बन जाते हैं। भूलना तो वे जानते ही नहीं। सारी स्मृतियोंके प्राण—आत्मा वे ही हैं। अतः हम सदा उनके रसमें अपनेको सराबोर रखें।

प्रेमीके लिये भोग तथा भोग-जगत् रहते ही नहीं

संसारमें संसारकी दृष्टिसे तो कहीं सुख है ही नहीं, हो सकता ही नहीं। भोग दुःखयोनि हैं और भोग-जगत् दुःखालय है; परंतु भगवान्में प्रेम रखनेवालेके लिये तो भोग तथा भोग-जगत् रहते ही नहीं। वहाँ तो सदा-सर्वदा-सर्वत्र केवल और केवल एकमात्र प्रियतम भगवान् ही होते हैं। इसलिये भगवान् तथा भगवान्की लीलामें सर्वत्र आनन्दका सागर ही लहराता है। अतएव उसीमें डूबे रहना चाहिये।

निर्भरताके मार्गपर ही चित्तकी धारा चला दीजिये

आपको अपना कल्याण होनेमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं है, यह परम संतोषका विषय है। यह विश्वास वास्तवमें दृढ़ हो तो चिन्ता है भी नहीं। इसको आप सर्वोत्तम साधन समझिये। यह हो जानेपर कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। फिर तो जिनपर आप निर्भर करते हैं, जिनके भरोसे उत्ताल प्रचण्ड तरंगोंसे आन्दोलित महासमुद्रमें अपने आपको आपने डाल दिया है, वे भगवान् स्वयं केवट बनकर, सुदृढ़ सुखमयी नौकापर सवार कराकर निर्विघ्न आपको अपने धाममें ले जायँगे। अतएव 'साधन-सापेक्षता' न रखकर अनन्य निर्भरताके मार्गपर ही द्रुत गतिसे चित्तकी धारा चला दीजिये।

आपने पूछा है—'चरम ध्येय क्या होना चाहिये—भगवान्में एकत्व प्राप्त करना या (२) उनके दर्शन करना या (३) उनके चरण-कमलोंमें अनन्य प्रेम होना या (४) उनकी लीलामें सम्मिलित होना।' वस्तुतः इन सबका तात्पर्यार्थ या लक्ष्यार्थ एक-सा ही है। फिर निर्भरतामें तो निर्भरता ही चरम ध्येय होती है। क्या होगा, क्या होना चाहिये, कब होगा, क्यों होगा?—इत्यादि प्रश्नोंके लिये तो निर्भरतामें गुंजाइश ही नहीं रहती। बस, निर्भर रहना ही परम और चरम ध्येय है। होगा वही, जो हमारे लिये परम कल्याणकारक होगा, यह निश्चय रखना चाहिये; क्योंकि जिन दयार्णव परम आत्मीय परमात्मा प्रभुके ऊपर हम निर्भर करते हैं, उनकी प्रत्येक चेष्टा कल्याणमयी होती है। उसमें अकल्याणकी या मन्द-कल्याणकी कल्पना ही नहीं हो सकती। हम क्यों सोच-विचार करें; क्यों दूसरी चिन्तामें मन लगावें?

भगवान्के स्वभावकी ओर देखकर सदा प्रफुल्लित रहें

भगवान् सदा अपनी ही ओर देखते हैं—उन्हें प्रेमीके दोष दिखायी देते ही नहीं। वरं वे सचमुच यही समझते हैं कि उसकी मुझमें जितनी अधिक अनन्य प्रीति है, वैसी मुझमें उसके प्रति नहीं है और वे उसके ऋणी बन जाते हैं सदाके लिये। वह ऋण वे अपने ऊपर चढ़ाते ही चले जाते हैं—यह है उनका स्वभाव। उस स्वभावकी ओर देखकर सदा ही प्रफुल्लित रहना चाहिये। हमारी नीचतामें शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कहाँ है, जो भगवान्‌की स्वाभाविक प्रीतिके पावन प्रवाहको रोक सके। उनकी प्रीतिका प्रवाह तो निरन्तर हमें अपने अंदर आत्मसात् करता हुआ वह रहा है—बहता ही रहेगा।

निश्चिन्त रहकर भगवच्चरणोंमें सदा संलग्न रहें

नित्यकर्म प्रेमकी शोभा है; उसे अवश्य करना चाहिये। मनमें उत्तरोत्तर प्रभु-पदमें परम अनुराग बढ़ता रहे; फिर जगत्‌का राग अपने-आप ही नष्ट हो जायगा। सूर्यके सामने अन्धकार रह ही नहीं सकता; इसी प्रकार भगवान्‌के अनुरागके सामने भोगासक्ति रहती ही नहीं। अतएव तुम्हें मनमें सर्वथा निश्चिन्त रहकर भगवच्चरणोंमें सदा संलग्न रहना चाहिये। भगवान् आप ही सब चिन्ता करेंगे, उन्हींपर सारा भार है। पर उनको भार लगता ही नहीं, यही उनकी सहज प्रीतिका स्वरूप है। वरं वे अपनेको उलटे प्रेमीका ऋणी मानते हैं।

भगवान् पास ही रहते हैं, दूर जाते ही नहीं

बहुत प्रसन्न रहना चाहिये। प्रभु नित्य-निरन्तर तुम्हारे पास रहते हैं, इसपर दृढ़ विश्वास रखना। माना, नित्य समीप रहनेपर भी कभी-कभी मनमें अदर्शन हो जाता है, कभी शरीरका संयोग अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन मिले—ऐसी आकाङ्क्षा जगनेपर मनमें बड़ा कष्ट होता है; पर उस समय भी भगवान् पास ही रहते हैं; वे दूर जाते ही नहीं।

भगवान्‌के मङ्गल-विधानमें प्रसन्न रहना चाहिये

भगवान्‌के मङ्गल-विधानमें सदा प्रसन्न तथा संतुष्ट रहना चाहिये। यह निश्चय मानना चाहिये कि हमारे परम कल्याणके लिये ही भगवान्‌का विधान हुआ करता है। अतएव सब परिस्थितियोंमें प्रसन्न रहना चाहिये।

भगवान् सदा तुम्हारे साथ निश्चय ही रहते हैं। तुम चाहे चर्म-चक्षुओंसे उन्हें न देख सको, वे सब देखते हैं एवं सदा अनवरत रूपसे तुमपर स्नेह-सुधा उँडेलते रहते हैं। धैर्य रखो और मनमें परम प्रसन्न रहो।

'करी गोपाल' की सब होय !

होगा वही, जो श्रीभगवान्‌के मङ्गल-विधानके अनुसार होना है। एक पलका भी भरोसा नहीं है। मनुष्य सोचता कुछ और है, हो जाता है कुछ और ही—

> करी गोपाल की सब होय।
> जो अपनो पुरुषारथ मानत, अति झूठो है सोय॥
>
> * * *
>
> 'जो-कुछ रच राखी नँदनंदन मेटि सकै ना कोय॥'
>
> * * *

संसारमें संयोग-वियोग सब प्रारब्धाधीन हैं। मनुष्यका सोचा हुआ कुछ नहीं होता। इसलिये भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर विश्वास करके सदा संतुष्ट रहना चाहिये।

मेरा साग्रह अनुरोध

मेरा तुमसे साग्रह अनुरोध है—तुम दिन-रात भगवान्‌के पवित्र चिन्तनमें ही अपने जीवनको लगा दो। सबको भूल जाओ। सारी ममता—सारी आसक्ति आकर टिक जाय एकमात्र भगवान्‌के श्रीचरणोंमें ही; संसारके प्राणी-पदार्थोंसे सदा विरक्ति और उपरति बनी रहे। (अप्रकाशित पुराने पत्रोंसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण-भक्तकी अनन्यता

मकल की मूलमयी, बेदन की भेदमयी,
ग्रंथन की तत्वमयी, बादन के जाल की।
मन-बुद्धि-सीमामयी, सृष्टिहु की आदिमयी,
देवन की पूजामयी, जीवमयी काल की।
ध्यानमयी, ज्ञानमयी सोभामयी, सुखमयी,
गोपी-गोप-गाय-ब्रज-भागमयी भाल की।
भक्त-अनुरागमयी, राधिका-सुहागमयी,
प्राणमयी, प्रेममयी मूरति गोपाल की॥

* * *

भजौं तो गुपाल ही कों, सेवौं तो गुपालै एक,
मेरो मन लाग्यो सब भाँति नंदलाल सों।
मेरे देव-देवी-गुरु, माता-पिता-बंधु-इष्ट,
मित्र-सखा, हरि, नातो एक गोप-बाल सों॥
'हरीचंद' और सों न मेरो संबंध कछु,
आसरो सदैव एक लोचन-बिसाल सों।
माँगौं तो गुपाल सों, न माँगौं तो गुपाल ही सों,
रीझौं तो गुपाल पै औ खीझौं तो गुपाल सों॥

* * *

नैनन के तारे, दुलारे, प्रान-प्यारे मेरे,
दुख के दरन, सुख-करन बिसाल हैं।
मेरो ध्यान, मेरो ज्ञान, मेरे बेद औ पुरान,
बिबिध प्रमान मेरे एक नंदलाल हैं।
'हरीचंद' और सों न काम सपनेहूँ मोहि,
मेरे सरबस धन जसुदा के बाल हैं।
मेरी रति, मेरी मति, मेरे पति, मेरे प्रान,
मेरे जग माहिं सबैं केवल गुपाल हैं॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभागवतामृत

['श्रीमद्भागवत-महापुराण' निगमकल्पतरुका अमृतमय फल है। वेदों और उपनिषदोंके सारतत्त्वसे भागवत-कथाका प्रादुर्भाव हुआ है—**'वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।'** यही हेतु है कि यह अखिल भारतीय वाङ्मयमें भक्तिशास्त्रकी मुकुटमणिके रूपमें समादृत है। वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। जितने भी वैष्णव सम्प्रदाय हैं, उन सबमें श्रीमद्भागवतका वेदोंसे भी बढ़कर आदर है। कई आचार्योंने तो प्रस्थानत्रयीके अन्तर्गत उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके साथ श्रीमद्भागवतको ही तीसरा प्रस्थान माना है। यही कारण है कि संस्कृत भाषामें इस महापुराणपर अनेकों विशद भावमयी टीकाएँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीविजयध्वजतीर्थ, श्रीसुदर्शनसूरि, श्रीशुकदेव, श्रीवीरराघवाचार्य, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, तथा श्रीगङ्गासहायजी विद्यावाचस्पति आदिकी व्याख्याएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भागवत स्वयं ही वेद, वेदान्त और भक्तिशास्त्रोंके सिद्धान्तको विशद-भावसे प्रकाशित करनेवाला महान् भाष्यरूप है। यद्यपि विद्वानोंके लिये यह परीक्षाभूमि है, तथापि भक्तोंके लिये भागवत-शास्त्र इतना सरल, इतना सुगम और इतना सुबोध है कि इसका एक-एक पद पढ़कर वे भाव-विभोर होते रहते हैं। कहा भी है—**'भक्त्या भागवतं ग्राह्यम्'** अर्थात् भक्तिसे ही श्रीमद्भागवतका भाव बोधगम्य होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति भक्तिभावसे अध्ययन करके अपने अधिकार एवं भावके अनुसार श्रीमद्भागवतका अर्थ ग्रहण कर सकता है, यही श्रीमद्भागवतका अनन्यसाधारण महत्त्व है।

पद्मपुराणमें वर्णित श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें स्वयं सनकादि परमर्षियोंने प्रणव, गायत्री-मन्त्र, वेदत्रयी, श्रीमद्भागवत और पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण—इनका तत्त्वतः अभेद बतलाया है। इस प्रकार श्रीमद्भागवतको भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् वाङ्मयस्वरूप माना है।[1] भगवान्‌के कलावतार श्रीवेदव्यासजी-जैसे अद्वितीय महापुरुषको जिसके प्रणयनसे ही शान्ति मिली, उस श्रीमद्भागवतकी कितनी महान् महिमा है, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसमें श्रीकृष्ण-प्रेम, भक्ति, ज्ञान-विज्ञान और वैराग्य आदि विषय कूट-कूटकर भरे हैं। इसका एक-एक श्लोक मन्त्रवत् माना जाता है। इसीसे इसका धर्मप्राण जनतामें अत्यन्त आदर है। श्रीमद्भागवत-का दशम स्कन्ध इसका हृदय-स्थानीय है। उसमें श्रीमद्भागवतके परम प्रतिपाद्य परात्पर श्रीकृष्णकी—जिनका उल्लेख इसी ग्रन्थमें **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** कहकर हुआ है—मधुरातिमधुर लीलाओंका परम मनोहर रूपमें वर्णन हुआ है। कहते हैं—महान् योगी परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवमुनि, जो इस भागवत-ग्रन्थके वक्ता हैं, जो जन्मसे ही भगवान्‌के निर्गुण-स्वरूपमें परिनिष्ठित थे एवं प्रपञ्चसे सर्वथा पृथक् रहकर वनमें विचरण करते थे, इसी दशम स्कन्धके कतिपय श्लोकोंको सुनकर श्रीमद्भागवतकी ओर आकर्षित हुए थे और तत्पश्चात् उन्होंने अपने पिता श्रीवेदव्यासजीसे इस सम्पूर्ण ग्रन्थका अध्ययन किया था। सचमुच भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र ऐसे ही हैं कि बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंका भी मन बरबस उनकी ओर खिंच जाता है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम है—**'आत्मारामगणाकर्षी'**।

ऐसे महिमामय दशम स्कन्धमें प्रवाहित रसका पान करने-करानेके उद्देश्यसे 'श्रीभागवतामृत' शीर्षकसे उसके

१. तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः। प्रत्यक्षा वर्तते हरेः। (भाग० माहा० ३। ६२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्यायके प्रथम तीन श्लोकोंकी व्याख्या यहाँ दी जा रही है । यह व्याख्या श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके अनुयायी भक्तिभावितचित्त विद्वद्वरेण्य प्रभुपाद श्रीराधाविनोदजी गोस्वामीद्वारा उद्भावित 'श्रीभागवतामृतवर्षिणी' बंगला टीकाका भावानुवाद है । हमारे परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार श्रीमद्भागवतके अनन्य प्रेमी थे और 'श्रीभागवतामृतवर्षिणी' टीका उन्हें बहुत प्रिय थी । वे प्रायः इसका अनुशीलन करते रहते थे । अपने प्रवचनोंमें भी वे समय-समयपर इस टीकाके आधारपर श्रीकृष्ण-चरितकी चर्चा करते थे और श्रीकृष्णचरितानुरागी श्रोतागण उससे परम आह्लादित होते थे । भक्तोंके आग्रहसे श्रीभाईजीने अपने जीवनके अन्तिम कालमें इस टीकाका हिंदीमें भावानुवाद अपने पुराने सहयोगी विद्वान् पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदीसे करवाना आरम्भ किया था कि इसी बीच वे भगवान्‌की नित्यलीलामें लीन हो गये ।

श्रीमद्भागवतका उपसंहार करते समय परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवमुनिने अपने अनुभवका सार बतलाते हुए कहा है—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ (१२ । ४ । ४०)

'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं, अथवा जो लोग अनेकों प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन—नौका नहीं है । वे केवल लीला-कथा-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं ।'

सचमुच भगवान्‌की लीला-कथा भवसागरसे पार होनेके लिये सुदृढ़ नौकारूप है । अतएव 'श्रीभागवतामृतवर्षिणी' टीकाका भावानुवाद क्रमशः 'कल्याण'में देनेका विचार किया गया है । हमारा विश्वास है कि हमारे भावुक पाठक-पाठिकागण इसके अनुशीलनसे विशेष परितोष एवं भाव ग्रहण करेंगे । —सम्पादक]

❀ ❀ ❀ ❀

श्रीराजोवाच—

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः । राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

अन्वय—श्रीराजा (श्रीकृष्णप्रेमसम्पत्तियुक्तः परीक्षित्), उवाच (श्रीशुकदेवं प्रति कथयामास) । भवता (परमहंसचूडामणिना), सोमसूर्ययोः (चन्द्रस्य सूर्यस्य च), वंशविस्तारः (पुत्रपौत्रादिक्रमेण वंशवर्णनम्), कथितः (नवमस्कन्धादौ प्रबन्धेनोक्तः), उभयवंश्यानाम् (चन्द्रवंशजातानां सूर्यवंशजातानां च), राज्ञाम् (पुरूरवःककुत्स्थादीनाम्), परमाद्भुतम् (अलौकिकं परमविस्मयावहम्), चरितम् (उर्वशीपरिग्रहादिकम् इन्द्रारोहणादिकं च कथितमिति शेषः) ॥ १ ॥

मूलानुवाद—श्रीकृष्ण-प्रेमरूप सम्पत्तिसे युक्त राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले—आपने चन्द्र और सूर्यके वंशका वर्णन किया है तथा इस वंशमें उत्पन्न पुरूरवा, ककुत्स्थ आदि राजाओंके परम अद्भुत चरित्रका वर्णन किया है ॥१॥

श्रीभागवतामृतवर्षिणी व्याख्या—महाराज परीक्षित्‌के प्रश्नके अनुसार परमहंसचूडामणि श्रीशुकदेवजीने योग-धारणा, महापुरुष-संस्थान, समष्टि और व्यष्टि विराट्-वर्णन, मनुवंश-वर्णन, भूगोल आदिके वृत्तान्तका वर्णन तथा अनेकों भक्तोंके जीवन-सम्बन्धी कथाओंका वर्णन करके अन्तमें नवम स्कन्धमें सूर्य और चन्द्रवंशका वर्णन किया है । चन्द्रवंशके वर्णनके प्रसङ्गमें संक्षेपसे श्रीकृष्णलीलाका संकेत किया है । महाराज परीक्षित्‌ने माताके गर्भमें रहते समय जिनकी श्रीमूर्तिका दर्शन किया था; पाण्डवकुलके जो एकमात्र आधार थे; जिनके चरण-सम्बन्धकी स्मृतियोंके सहारे जन्म-जन्मान्तरके भजन-संस्कार महाराज परीक्षित्‌का निरन्तर अनुगमन करते थे तथा जिनके प्रभावसे महाराज परीक्षित् भूमण्डलके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्यकी वासना त्यागकर गङ्गातटका आश्रय लेनेमें समर्थ हुए थे; उन विधि-भव-वन्दित-चरण, दीनैकशरण श्रीगोविन्दकी कथा सुनते ही उनका अन्तर्निहित गुप्त प्रेम-बीज अङ्कुरित हो उठा।

विस्मृत—खोये हुए धनका कुछ अंश प्राप्त होनेपर जैसे स्मृति होते ही उस धनके अवशिष्ट अंशको पानेकी प्रबल उत्कण्ठा हो जाती है, उसी प्रकार महाराज परीक्षित् भी श्रीकृष्णलीलाका कुछ अंश श्रवण करनेपर शेष अंशको सुननेके लिये व्याकुल हो उठे। प्रेम हृदयकी वस्तु है, तथापि उसे हृदयके भीतर छिपाकर नहीं रख सकते; बाहर भी उसके नाना प्रकारके विकार प्रकट हो उठते हैं। महाराज परीक्षित्की श्रीकृष्णलीला सुननेकी प्रबल लालसासे देखते-ही-देखते उनके नयनोंमें अश्रु, अङ्गमें रोमाञ्च और वाणीमें गद्गद-भाव प्रकट हो उठे। वे प्रेम-कान्तिसे कान्तिमान् तथा प्रेम-सम्पद्से यथार्थ महाराज हो गये। राजवेषका त्याग तथा अपने दैहिक श्री और राजत्वका परित्याग करनेके कारण उनको ऐहिक श्रीविहीन देख करके विषयासक्त लोग उन्हें भले ही श्रीहीन कहें, परंतु तत्त्वज्ञ पुरुष कहेंगे कि **'का श्रीस्तत्पदाम्बुजरतिर्न वा धनजनग्रामादिभूयिष्ठता'**—

> **सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन सम्पत्ति गनि।**
> **राधाकृष्ण प्रेम जार सेइ बड़ धनी॥**
> (श्रीचैतन्य-चरितामृत)

अतएव वे ही यथार्थ श्रीमान् है। इसी कारण श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके प्रारम्भमें 'श्रीराजोवाच' अर्थात् श्रीकृष्ण-प्रेमसम्पत्तियुक्त राजा बोले—ऐसा कहा गया है।

श्रोता यदि वक्ताके वक्तव्य विषयको हृदयंगम कर सके तो वक्ताको विशेष आनन्द और उल्लास प्राप्त होता है। तब वह हृदय खोलकर आगेके प्रश्नोंका उत्तर देता है। महाराज परीक्षित् श्रीकृष्णलीला-सम्बन्धी प्रश्नका इसी प्रकार खुले हृदयसे दिये हुए उत्तरको सुननेके लिये श्रीशुकदेवजी-के पूर्वोक्त प्रसंगका उल्लेख करके बोले—'हे गुरो! मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया। आपने जो चन्द्रवंशी राजाओं-के पुत्र-पौत्रादि वंशक्रम तथा उन महान् प्रतापी राजाओंके अलौकिक चरित्रका वर्णन किया है, उसको सुनकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ।'

श्रीभगवान्ने श्रीकृष्णरूपमें चन्द्रवंशमें और श्रीरामचन्द्रके रूपमें सूर्यवंशमें जन्म लेकर इन दोनों वंशोंको परम कृतार्थ और प्रातःस्मरणीय बना दिया है। महाराज परीक्षित् श्रीभगवान्की इस परम करुणाके सम्बन्धमात्रसे श्रीशुकदेवजी-से बोले—'आपने चन्द्र और सूर्यवंशका वर्णन किया है।' श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्धसे नवम स्कन्धतक पाठ करनेपर ज्ञात होता है कि उसमें चन्द्र और सूर्यवंशके अतिरिक्त अन्य अनेक वंशोंका वर्णन हुआ है। परंतु भक्तका यह स्वभाव है कि श्रीभगवान्के सम्बन्धका लेशमात्र भी पाकर वह उसमें मत्त हो उठता है; दूसरी कोई बात मनमें नहीं आने देता, अथवा मुखसे प्रकट नहीं करता है। जिस प्रकार विषयासक्त मनुष्य मन, वचन और कर्मसे केवल विषयके सम्बन्धको ही ग्रहण तथा व्यक्त करते हैं, उसी प्रकार श्रीभगवद्भक्त जन भी मन, वचन और कर्मसे केवल श्रीभगवान्के ही सम्बन्धको ग्रहण तथा अभिव्यक्त करते हैं। भक्तचूड़ामणि महाराज परीक्षित्ने श्रीयदुनाथ और श्रीरघुनाथका सम्बन्ध देखकर चन्द्र और सूर्यवंशको ही परम उपादेय रूपमें ग्रहण और अभिव्यक्त किया है।

व्याकरणके नियमके अनुसार श्रेष्ठ और कनिष्ठवाचक पदोंमें द्वन्द्व समास होनेपर श्रेष्ठवाचक पद ही पहले प्रयुक्त होता है। चन्द्र उपग्रह और सूर्य ग्रह है। चन्द्र सूर्यके आलोकसे आलोकित होकर जगत्को आलोकित करता है। चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य आकारमें भी बहुत बड़ा है। इस प्रकार समालोचना करनेपर जान पड़ता है कि चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य ही श्रेष्ठ है। अतएव सोम और सूर्य शब्दोंका समास करनेपर 'सोमसूर्य' न होकर 'सूर्यसोम' होना ही उचित है। परंतु महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीके सामने 'सूर्यसोमयोः' न कहकर **'सोमसूर्ययोः'** कहा है। उनके मनका भाव यह है कि जागतिक श्रेष्ठ-कनिष्ठभाव न लेकर श्रीभगवत्सम्बन्धसे ही श्रेष्ठ-कनिष्ठका व्यवहार करना समीचीन है। चन्द्रवंशमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तथा सूर्यवंशमें उनके ही प्रथम व्यूह वासुदेव श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अतएव स्वयं श्रीभगवान्के सम्बन्धकी गुरुताकी दृष्टिसे चन्द्र ही श्रेष्ठ आसन पानेयोग्य हैं। विशेषतः चन्द्र ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि अत्रिके पुत्र हैं तथा सूर्य ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि मरीचिके पौत्र हैं। अतएव जन्म-सम्बन्धसे भी चन्द्र ही श्रेष्ठ हैं।

महाराज परीक्षित् श्रीकृष्णलीलाकी कथा सुननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गये हैं और यही उनका एकान्त अभीष्ट है। श्रीकृष्णलीलाकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्यसे ही वे श्रीशुकदेवजीके पूर्वोक्त विषयका अनुमोदन करके क्रमशः अभीष्ट पथमें अग्रसर हो रहे हैं। इसी कारण 'पहले चन्द्र और सूर्यवंशका वृत्तान्त सुन चुका हूँ'—यह कहकर संकेत किया है कि 'इस विषयमें उनको कोई जिज्ञासा नहीं रह गयी है।' इसके बाद कहते हैं कि 'हे मुनिसत्तम! आपने धर्मात्मा यदुके वंशका जो वर्णन किया है, उसे भी मैंने सुना है।' महाराज परीक्षित्की यह बात गम्भीर उद्देश्यसे पूर्ण है। उन्होंने **'मुनिसत्तम!'** पदसे सम्बोधन करके बतलाया है कि 'आपने जो वर्णन किया है तथा मैं जो प्रश्न करूँगा, उसका उत्तर देनेकी शक्ति मुनिसत्तमके सिवा अन्य किसीमें सम्भव नहीं है।' जो विश्वातीत सच्चिदानन्द वस्तुका मनन करनेमें रत रहते हैं, वे 'मुनि' हैं। मुनियोंमें जो श्रीगोविन्दके भक्त हैं, वे 'सत्' हैं, जो निरन्तर श्रीगोविन्दके चरणोंके भजनमें रत रहते हैं, वे 'सत्तर' हैं तथा जो दास्य-सख्य आदि सम्बन्धसे श्रीगोविन्दके चरणोंमें निरन्तर रत रहते हैं, वे 'सत्तम' हैं। महाराज परीक्षित्के मनका भाव यह है कि "हे गुरो! आप 'मुनिसत्तम' हैं, अर्थात् श्रीगोविन्दके चरणोंके साथ प्रेम-सम्बन्धमें बँधकर आप निरन्तर उनकी लीलावलीका मनन करते हैं। ब्रह्मा, शिव, अनन्त आदिके लिये दुर्ज्ञेय होनेपर भी श्रीगोविन्दकी मधुर लीलाका आप अनवरत प्रेमसम्बन्धके बलसे अनुभव करते हैं। अतएव श्रीकृष्णलीलाका वर्णन करके मुझको कृतार्थ करनेमें एकमात्र आप ही समर्थ हैं।"

महाराज परीक्षित्ने यदुको 'धर्मात्मा' कहकर भक्तिपथका एक अपूर्व सिद्धान्त दिखलाया है। यदुके चरितकी आपाततः समालोचना करनेपर उनको 'धर्मात्मा' नहीं कहा जा सकता। उनके पिता ययातिने शुक्राचार्यके शापसे जराग्रस्त होकर शुक्राचार्यके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना की। उन्होंने कृपा करके आदेश दिया—'यदि कोई तुम्हारी वृद्धावस्था ले ले तो तुम उसको अपनी वृद्धावस्था अर्पण करके नवयौवन और स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हो।' तब ययातिने अपने पुत्र यदुको वृद्धावस्था ग्रहण करनेके लिये कहा। परंतु यदुने उसे स्वीकार नहीं किया, बहाना करके पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया।

महाराज परीक्षित्ने पिताके आदेशका उल्लङ्घन करनेवालेको भी 'धर्मात्मा' कहा है। इसका कारण यह है कि श्रीभगवान्ने अपने श्रीमुखसे उद्धवजीसे कहा था—**'धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तः'** अर्थात् 'जिससे मेरे प्रति भक्ति-सम्बन्ध हो, वही धर्म है।' यदुने पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके भक्ति-सम्बन्धकी मर्यादाकी रक्षा की। पिताके आदेशको सुनकर यदुने सोचा कि 'जिस दिन मैंने श्रीकृष्ण-मन्त्र ग्रहण किया, उसी दिन देह और सारे दैहिक सम्बन्धको श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित कर दिया। अतएव इस शरीरके द्वारा केवल श्रीकृष्ण-सेवाके कर्म ही किये जायँगे। जरा-ग्रस्त होनेपर श्रीमन्दिरका मार्जन, पुष्प, तुलसीदल आदिका चयन, जल-कलशका वहन करना आदि श्रीकृष्ण-सेवाके कार्योंसे वञ्चित होना पड़ेगा। अतएव पिताके आदेशका उल्लङ्घन करके भी भक्ति-मर्यादाकी रक्षा करना मेरा एकमात्र कर्तव्य है।' 'पद्मपुराण'में श्रीभगवान्ने कहा है—

मन्निमित्तं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापः स्यान्मत्प्रभावतः॥

'मेरे निमित्त किया हुआ (गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घनादि-रूप) पाप भी धर्म हो जाता है तथा मेरा अनादर करके किया हुआ धर्म भी पाप हो जाता है।'*

यदुने श्रीकृष्ण-सेवाके लिये पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। अतएव श्रीभगवान्के आदेशसे वह 'धर्म' ही है। यदुने यदि अपने सुख-भोगकी लालसासे पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया होता तो वे अधर्म करते; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। **'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया'**—गुरुजनके आदेशको बिना सोचे-विचारे पालन करना चाहिये।' इस शास्त्रवचनका उद्देश्य यह है कि 'गुरुजनकी शास्त्रसम्मत आज्ञाका बिना सोचे-विचारे पालन करना चाहिये; शास्त्र-विरुद्ध आज्ञा होनेपर उसका पालन नहीं करनेपर दोष नहीं लगता। गुरुजन शास्त्र-विरुद्ध आज्ञा दें तो मनमें सोचना पड़ेगा कि क्या मेरे धर्मकी परीक्षाके लिये इस प्रकारका आदेश दिया गया है।' ययातिने यदुको जो आदेश दिया था, वह पूर्णतः समीचीन नहीं जान पड़ता; क्योंकि ययातिने अपने पुत्रके नवयौवन और स्वास्थ्यके द्वारा जो कामोपभोगकी बात सोची थी, वह धर्मविरुद्ध थी।

* पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन पाप है; प्रह्लादने भी पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया था, किंतु भगवान्के लिये, भगवद्भजनके लिये; अतः भगवत्सम्बन्धके कारण वह 'पाप' न होकर 'धर्म'-रूप हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तचूड़ामणि महाराज परीक्षित्ने इस अपूर्व भक्ति-सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखकर ही यदुको 'धर्मात्मा' कहकर श्रीगुरुदेवका आनन्दवर्धन किया है।

दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णका लीला-विन्यास—इस स्कन्धमें श्रीकृष्णकी लीला तीन प्रकारसे वर्णित है—व्रजलीला, मथुरा-लीला और द्वारका-लीला। दशम स्कन्धकी अध्याय-संख्या नब्बे है। इसमें प्रथम चार अध्यायोंमें ब्रह्माकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये श्रीकृष्णका जन्म तथा पाँचवें अध्यायसे उनचालीसवें अध्यायतक व्रजलीला, चालीसवें अध्यायमें यमुनाके जलमें अक्रूरकृत श्रीकृष्णकी स्तुति, इकतालीससे इक्यावन अध्यायतक मथुरा-लीला तथा बावनसे नब्बे अध्यायतक द्वारका-लीला वर्णित है।

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम। तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥

अन्वय—(हे) मुनिसत्तम ! (प्रेमावेशेन निरन्तरश्रीकृष्णलीलामननशील !), धर्मशीलस्य (सर्वमहं परित्यज्य श्रीकृष्णभक्तावेव निष्ठाप्राप्तस्य), यदोश्च (यस्य वंशे श्रीकृष्णोऽवतीर्णस्तस्य यदुनामकस्य ययातिपुत्रस्य च), (वंशविस्तारः कथित इति पूर्वेणान्वयः), तत्र (धर्मशीलत्वादेव तत्र यदोर्वंशे), अंशेन (श्रीबलदेवेन सह), अवतीर्णस्य (गोलोकाख्यनिजपरमलोकात् प्रपञ्चे अभिव्यक्तस्य), विष्णोः (व्यापकतापर्यवसानस्य स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य), वीर्याणि (महाप्रभावमयचरितानि), किं वा नः (अस्माकं कुलदैवतस्य), विष्णोः (श्रीकृष्णस्य वीर्याणि शंस); (अथवा) अंशेन विष्णोः (यत्र श्रीकृष्णः जगत्पालनार्थम् अंशेन विष्णुर्भवति तस्य), वीर्याणि शंस; (यद्वा) विष्णोः वीर्याणि अंशेन (सहस्रवदनेनापि साकल्येन तेषां वक्तुमशक्यत्वात्, मम च आयुषः अल्पावशिष्टत्वात्, भवता वर्णितानामपि मत्कर्तृकश्रवणासम्भवात् कतिपयलीलामात्रं शंस) ॥ २ ॥

मूलानुवाद—हे मुनिसत्तम ! आपने धर्मशील (भक्तश्रेष्ठ) यदुके वंशका वर्णन किया है। उसी परम धर्मात्मा यदुके वंशमें बलदेवके साथ अवतीर्ण होकर श्रीकृष्णने जो परम अद्भुत लीलाएँ की थीं, उनका हमलोगोंके निकट वर्णन कीजिये ॥२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः। कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥

अन्वय—भूतभावनः (भूतानि भावयति प्रेमदानेन पालयतीति तथा; प्रेमदानेन सर्वजगत्पालक इत्यर्थः), विश्वात्मा (चेतनादिशक्तिप्रेरकत्वेन सर्वेषामेव स्वाभाविकहितकर्ता 'कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्' इति परमसिद्धान्तेन सर्वात्मनामात्मत्वात् सर्वेषामेव प्रेमविषयः), भगवान् (सर्वैश्वर्यपरिपूर्णः श्रीकृष्णः), यदोः (यदुनामकभक्तचूडामणेः), वंशे (अन्वये), अवतीर्य (आविर्भूय), यानि (परमान्तरङ्गाः लीलाः), कृतवान् (अकरोत्), तानि (सर्वाण्येव), नः (अस्माकं निकटे), विस्तरात् (प्रयोजनादिनिर्देशपूर्वकम्), वद (संकीर्तय), (अत्र सर्वाण्येव वदेत्युक्तिः परमलालसयैवेति द्रष्टव्यम्) ॥ ३ ॥

मूलानुवाद—प्रेमदान करके जगत्का पालन करनेवाले तथा सबके स्वाभाविक हितकारी सर्वैश्वर्यमय श्रीकृष्णने यदुवंशमें अवतीर्ण होकर जो परम अन्तरङ्ग लीलाएँ की थीं, उन्हें प्रयोजन आदिका निर्देश करते हुए हमारे निकट विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ३ ॥

श्रीभागवतामृतवर्षिणी व्याख्या—पूर्व श्लोकमें महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीके पूर्वोक्त विषयोंका अनुमोदन करके और परम उपादेय रूपमें समर्थन करके यह अभीष्ट प्रश्न किया—

'तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोः वीर्याणि शंस नः'—आपके द्वारा पहले कथित धर्मात्मा यदुके वंशमें अंशके साथ अवतीर्ण विष्णुके अत्यन्त प्रभावशाली चरितका आप हमारे लिये वर्णन करें।'

महाराज परीक्षित्की यह प्रार्थना श्रीकृष्ण-लीलाकथा-श्रवण करनेकी प्रबल उत्कण्ठासे पूर्ण है तथा उनकी प्रत्येक बातमें भक्ति-सिद्धान्तकी छटा है। महाराज परीक्षित् कहते हैं 'तत्र'—अर्थात् आपके द्वारा पूर्वकथित तथा मेरेद्वारा 'धर्मात्मा' कहकर समर्थित हुए यदुवंशमें। श्रीभगवान्की लीला दो प्रकारकी होती हैं—ऐश्वर्यमयी और माधुर्यमयी। जिस लीलामें श्रीभगवान् कहीं भी जन्म ग्रहण नहीं करते, अथवा किसीके साथ माता-पिता, भाई आदिका सम्बन्ध नहीं रखते, केवल अपने अचिन्त्य ऐश्वर्य-प्रभावसे भक्तकी मनःकामना पूरी करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं, श्रीभगवान्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह लीला 'ऐश्वर्यमयी' कहलाती है। जिस लीलामें वे जन्म ग्रहण करते हैं तथा माता-पिता आदि सम्बन्धका अनुगमन करते हुए भक्तका मनोरथ पूर्ण करते हैं, वह लीला 'माधुर्यमयी' कहलाती है। श्रीभगवान् जिनके साथ सम्बन्ध स्थापित करेंगे, वे किसी भी प्रकारसे अधार्मिक नहीं हो सकते; अथवा यों कह सकते हैं कि प्रबल धर्मबलके बिना कभी श्रीभगवान्के साथ सम्बन्ध नहीं जुट सकता। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके स्वामी श्रीभगवान् क्या कभी किसी बहिर्मुख, आत्मसुखरत व्यक्तिको माता या पिता आदि बना सकते हैं? जिनके प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार, प्रत्येक वचनका उद्देश्य केवल श्रीकृष्ण-सेवामात्र है, उनके ही साथ भगवान्के ऐसे सम्बन्ध हो सकते हैं। इसी कारण श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्ध८।३२में कुन्तीदेवी श्रीभगवान्की स्तुति करती हुई कहती हैं—**'यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम्'**—अर्थात् 'चन्दन जैसे मलयगिरिपर ही उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तुम भी अपने परम प्रिय भक्तके कुलमें ही जन्म लेते हो। इसी कारण इस बार आपने भक्तचूड़ामणि यदुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है।'

यदु श्रीभगवान्के परम प्रिय थे; महाराज परीक्षित्ने 'तत्र' पदके द्वारा इसी परमतत्त्वकी ओर संकेत किया है। श्रीभगवान्ने भक्तचूड़ामणि यदुके वंशमें वसुदेवके पुत्रके रूपमें जन्म लिया था। महाराज परीक्षित्ने 'जन्म-ग्रहण' न कहकर 'वे अवतीर्ण हुए'—ऐसा कहा है। यहाँ इतना ही कहना है कि श्रीभगवान्का जन्म जीवके समान उत्पन्न होना नहीं है, बल्कि आविर्भावमात्र है। जीव-देह मातृगर्भसे उत्पन्न होता है। श्रीभगवान्का सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह उत्पन्न नहीं होता, वह नित्यसिद्ध है। वात्सल्य-प्रेमी भक्त-चूड़ामणिके वात्सल्यरसका आस्वादन करनेके लिये श्रीभगवान् जन्मका अनुकरण करके आविर्भूत होते हैं। बहिर्मुख जीव इसी कारण अप्राकृतिक श्रीभगवान्की श्रीमूर्तिको 'पाञ्चभौतिक' कहा करते हैं; वे इस मधुर लीलाके निगूढ़ मर्मको नहीं समझ पाते—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
(गीता ९। ११)

श्रीभगवान्के प्रेममुग्ध माता-पिता आदि आत्मीयजन भी अपने-अपने सम्बन्धके अनुसार ही बर्ताव करते हैं, परंतु उनमें बहिर्मुख जीवके समान अवज्ञा या अनादरका भाव नहीं होता। टीकाकार श्रीसनातन गोस्वामीपादने अपनी 'वैष्णवतोषणी' टीकामें **'अवतीर्णस्य'** पदकी व्याख्या इस प्रकार की है—**'गोलोकाख्यनिजपरमलोकात् प्रपञ्चेऽभिव्यक्तिमागतस्य'**—'अवतीर्ण अर्थात् गोलोक नामक निज परम धामसे प्रपञ्चमें अभिव्यक्त हुए (भगवान्की लीलाएँ हमसे कहिये)।'

श्रीभगवान् चिन्मय निर्विशेष ब्रह्मरूपमें सर्वत्र अवस्थित हैं, अन्तर्यामिरूपसे सब जीवोंके हृदयमें अवस्थित हैं तथा वैकुण्ठ आदि धाममें लीलामय चिद्विग्रहरूपमें अवस्थित हैं। जहाँ श्रीभगवान् लीलामय रूपमें अवस्थान करते हैं, उस स्थानको ही उनके 'गोलोक' या 'धाम'के रूपमें शास्त्रकारगण निर्देश करते हैं। ब्रह्माण्ड और जीवके हृदयमें वे ब्रह्मरूपमें तथा अन्तर्यामिरूपमें अवस्थित हैं, तथापि ये उनके लोक या धाम नहीं कहला सकते। श्रीभगवान्का धाम ब्रह्माण्डके समान मायिक वस्तु नहीं है; वह प्रकृतिसे परे सच्चिदानन्दमय स्थान है। 'गोपालतापनी उपनिषद्'में कहा गया है—**'स हि भगवान् कुत्र तिष्ठति ?'**—वे श्रीभगवान् कहाँ अवस्थित हैं? इस प्रश्नका उत्तर है—**'महिम्नि स्वे'**—अपनी महिमामें अर्थात् निज स्वरूपभूत त्रिपाद्विभूतिमय धाममें वे अवस्थान करते हैं।' जैसे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त जीव अपने-अपने कर्मफलको भोग रहे हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी अनन्त मूर्तियोंमें अनन्त वैकुण्ठोंमें अनन्त लीलारसोंका आस्वादन कर रहे हैं। यद्यपि **'एकमेवाद्वितीयम्'** आदि श्रुतिकी आलोचना करनेपर ज्ञात होता है कि ब्रह्म एक है, तथापि **'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति'** आदि श्रुतियोंसे स्पष्ट जाना जाता है कि वह एक होकर भी एकरूपमें ही अभिव्यक्त नहीं है। वे भगवान् अनन्त वैकुण्ठमें अनन्त श्रीमूर्तिमें प्रकट होकर लीला-रसास्वादन करते हैं। अनन्त वैकुण्ठमें—गोलोक नामक वैकुण्ठधाममें ही उनकी लीलाकी परिपूर्णता है; क्योंकि वहाँके सभी पार्षद ऐश्वर्य-ज्ञानके गन्धसे भी रहित केवल शुद्ध माधुर्यमय होते हैं। इसी कारण गोलोकधाम उनका 'परम लोक' अर्थात् श्रेष्ठ लोक कहलाता है। ब्रह्मसंहिता ५४३ में लिखा है—

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जिन्होंने गोलोक-नामक निजधाममें तथा उसीके निम्न भागमें स्थित देवी, महेश और हरिके धामोंमें भिन्न-भिन्न लीलाएँ प्रकट की हैं, उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ।'

श्रीचैतन्यचरितामृत-ग्रन्थमें गोलोकधामके सम्बन्धमें लिखा है—

सर्वोपरि श्रीगोकुल व्रजलोक धाम।
गोलोक श्वेतद्वीप वृन्दावन नाम॥
सर्वग अनन्त विभु कृष्णतनु सम।
उपर्यधो व्यापि आछे नाहिक नियम॥
ब्रह्माण्डे प्रकाश तार कृष्णेर इच्छाय।
एकइ स्वरूप तार नाइँ दुइ काय॥

श्रीभगवान् इसी गोलोक-नामक धाममें गो, गोप तथा गोपियोंके साथ नित्यलीला-विलास करते हैं। कभी-कभी जगत्‌को कृतार्थ करनेके लिये ये धाम, पार्षद और लीलाएँ ब्रह्माण्डमें भी प्रकाशित होती हैं।

अष्टाविंश चतुर्युगे द्वापरेर शेषे।
ब्रजेर सहित हय कृष्णेर प्रकाशे॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके इस सिद्धान्तमें यह तत्त्व स्पष्टतः समझमें आ जाता है। जिस समय श्रीभगवान्‌की यह अप्राकृत धाम, पार्षद और लीला ब्रह्माण्डमें प्रकट होती है, उसी समय यह व्यवहारमें आता है कि भगवान्‌ने अवतार लिया है। श्रीमद्भागवत (१० । १४ । ३७) की 'ब्रह्मस्तुति' में देखा जाता है—

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले।
प्रपन्नजनतानन्दसंदोहं प्रथितुं प्रभो॥

'हे भगवन्! आप प्रपञ्च अर्थात् प्राकृतिक जगत्‌से परे होकर भी ठीक प्राकृतके अनुकरणमें प्राकृत जगत्‌में प्रकट हो लीला-विहार करते हैं। आपके श्रीचरणोंके आश्रित भक्त-वृन्दका आनन्द बढ़ानेके लिये ही आपकी यह करुणालीला प्रवर्तित होती है।'

'तत्रांशेनावतीर्णस्य' इस श्लोकांशके तात्पर्यकी आलोचना करनेपर ज्ञात होता है कि अप्राकृतिक धाममें विहार करनेवाले श्रीभगवान् प्रपञ्चरत भक्तजनोंको कृतार्थ करनेके लिये परम धर्मशील यदुवंशको कृतार्थ करके अवतीर्ण हुए थे। उनका यह अवतार ब्रह्माण्डमें आत्मप्रकाशमात्र है। प्राकृत जीवके समान उनके जन्म आदि सम्भव नहीं हैं; क्योंकि **'अनादि-रादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।'** (ब्रह्मसंहिता ५ । १) अर्थात् श्रीगोविन्द अनादि हैं; आदिमें वे ही रहते हैं; वे ही सब कारणोंके कारण हैं।

धर्मात्मा यदुके वंशमें श्रीभगवान् किस रूपमें अवतीर्ण हुए थे, यह प्रश्न करते समय महाराज परीक्षित्‌ने **'अंशेन'** इस पदका प्रयोग किया है। इस 'अंशेन' पदकी आलोचना करनेसे जान पड़ता है कि श्रीभगवान् अंश और पूर्ण—द्विविधरूपमें अवतीर्ण होते हैं। यद्यपि श्रीभगवान्‌के अंश और पूर्णमें स्वरूपतः कोई भेद नहीं है, तथापि 'लघुभागवतामृत' ग्रन्थमें लिखा है—

'शक्तेर्व्यक्तिस्तथाव्यक्तिस्तारतम्यस्य कारणम्।'

श्रीभगवान् अचिन्त्य-अनन्त-शक्तिसमन्वित हैं; वे किसी मूर्तिमें सारी शक्तियोंको प्रकट करते हुए लीला करते हैं और किसी मूर्तिमें किंचित् अल्पशक्ति प्रकट करते हुए लीला करते हैं। इस शक्ति-प्रकाशके तारतम्यके अनुसार किसी मूर्तिमें पूर्ण तथा किसी मूर्तिमें अंशरूपसे प्रकट होनेकी शास्त्र उद्भावना करते हैं। यदुवंशमें भगवान् किस रूपमें अवतीर्ण हुए थे, इसको श्लोकस्थ 'अंश' पदसे जान सकते हैं; अर्थात् वे अंशरूपमें अवतीर्ण हुए थे। विशेषतः श्रीमद्भागवत (१० । ३८ । ३२)के **'अंशेन बलकेशवौ'**, **'अथाह-मंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे'**। 'श्रीविष्णुपुराण २ । १ । ६०) **'प्राप्स्यामि'** (१० । २ । ९) तथा **'उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने'** एवं श्रीमहाभारत (आदि० १९६ । ३२ के **'स चापि केशौ हरिरुद्बबर्ह शुक्लमेक-मपरं चापि कृष्णम्'** आदि श्लोक देखनेपर उनको अंशावतार अथवा श्रीनारायणके केशावतारके रूपमें समझा जा सकता है। इसी कारण श्रीधरस्वामीपादने **'अंशेन'** पदकी व्याख्या करते हुए लिखा है—**'अंशेनेति प्रतीत्यभिप्रायेणोक्तम्'** अर्थात् **'अंशेन'** पद लोक-प्रतीतिके अनुसार कहा गया है। श्रीसनातनगोस्वामीपादने श्रीधरस्वामीपादके अभिप्रायको ही व्यक्त किया है कि **'प्रतीतिस्तु साधारणजनानामेव ज्ञेया'** अर्थात् यहाँ प्रतीति साधारण लोगोंकी प्रतीति ही समझनी चाहिये। श्रीधरस्वामीपादने जो कहा है कि **'अंशेन'** पद 'लोक-प्रतीतिके अनुसार अंश-अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ है।' इसका मर्म यह है कि साधारण लोग अर्थात् जो श्रीकृष्ण-तत्त्वके विशेषज्ञ नहीं हैं, वे ही उनको अंशावतारके रूपमें जानते हैं। महाराज परीक्षित् प्रश्न करते समय साधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-प्रतीतिमें बाधा न देकर तदनुसार ही बोल गये हैं। महाराज परीक्षित्‌के इस प्रकार कहनेका उद्देश्य यही है कि 'उनकी गङ्गा-सभामें जो लोग उपस्थित थे, वे सभी तत्त्वज्ञ नहीं थे; उनमें अधिकांश श्रीकृष्णको अंशावतारके रूपमें ही जानते थे। वे यदि प्रश्न करते समय उनकी धारणाके विरुद्ध कोई बात बोलते तो श्रीकृष्णकथा-सम्बन्धी प्रश्नके प्रथम चरणमें ही वे संदिग्ध हो उठते और इससे उनका चित्त चञ्चल हो उठता और वक्ताके उल्लासमें बाधा पड़ती। अतएव इस रूपमें प्रश्न किया कि किसीको किसी प्रकारका संदेह न रहे। जो लोग श्रीकृष्णलीलाके तत्त्वज्ञ थे, वे 'अंशेन' शब्दके प्रयोगसे ही प्रकृत तत्त्वको समझ सकते थे।'

'अंशेन' शब्दका आपात अर्थ लेकर यदि कोई श्रीकृष्णको अंशावतार समझता है तो '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'— इस श्रीमद्भागवतके अवतार-निर्णायक श्लोकके साथ विरोध होता है।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्रह्म० ५। ३९)

जो श्रीरामादि अवतारोंमें अल्पशक्ति प्रकट करके ब्रह्माण्डमें नाना प्रकारकी लीला करते हैं तथा श्रीकृष्णरूपमें पूर्णशक्ति प्रकट करके स्वयं अवतीर्ण होते हैं, उन आदि-पुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ।' इस 'ब्रह्मसंहिता'-के श्लोकसे भी ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण अंशावतार नहीं हैं। 'अंशेन' पदका आपात अर्थ करनेपर 'ब्रह्मसंहिता'के श्लोकके साथ भी महाविरोध उपस्थित हो जाता है। अतएव 'अंशेन' पदके आपाततः प्रतीत अर्थका परित्याग करना ही समीचीन है।

'**नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।**'

(गीता ७। २५)

'योगमायाके आवरणमें मैं सबके द्वारा दृश्यमान नहीं होता।' इस गीताके वचनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीभगवान्‌को सब लोग पूर्णरूपमें नहीं जान सकते। जिसका जितना ही योगमायाका आवरण अपसारित होता है, वह उतना ही श्रीभगवान्‌को जान पाता है।—इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीसनातनगोस्वामीपादने '**अंशेन अवतीर्णस्य**' इस पादांशकी एक और व्याख्या की है—'**असर्वसुबोधस्वभावस्य**' अर्थात् जिसका स्वरूप सबके लिये सुबोध नहीं है, जिसको पूर्णरूपसे जाननेमें सब समर्थ नहीं होते।'

'अंशेन' पदकी प्रकारान्तरसे योजना करके टीकाकार श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीपादने व्याख्या की है कि—'**तत्र यदोर्वंशे अवतीर्णस्य आविर्भूतस्य विष्णोः स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य वीर्याणि अंशेन शंस। साकल्येन वक्तुं श्रोतुं वा न कस्यापि शक्तिरित्यर्थः।**'—'स्वयं भगवान्‌ने श्रीयदुवंशमें अवतीर्ण होकर जो-जो लीलाएँ की हैं, उनके कुछ अंशका मुझसे वर्णन कीजिये; क्योंकि उन लीलाओंका सम्पूर्णतः वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है।' यही व्याख्याका प्रतिपाद्य है—

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि॥

(श्रीमद्भागवत १०। ५। ४७)

'मेरे जन्म, लीला और नाम असंख्य हैं; अतएव मैं भी उन सबका पूर्णतया वर्णन नहीं कर सकता।'— श्रीभगवान्‌की इस उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है कि उनका पूर्ण वर्णन तथा श्रवण असम्भव है। इसी कारण महाराज परीक्षित्‌ने यह प्रार्थना की है कि—'**अंशेन शंस**'—'मेरे सप्ताहकालरूपी परमायुके तीन दिन बीत गये हैं, शेष चार दिनमें मैं और कितना सुनूँगा; अतएव उस अनन्त लीलाका कुछ अंश मुझसे वर्णन कीजिये।'

'व्याख्यालेश' नामक श्रीमद्भागवतकी एक अप्रकाशित प्राचीन टीका है। उसमें 'अंशेन' शब्दकी व्याख्या मिलती है—'**अंशानां मत्स्याद्यवतारवृन्दानाम् इनः प्रभुः अंशीत्यर्थः**'— जो मत्स्यादि अंशोंके 'इन' अर्थात् प्रभु हैं, वे 'अंशेन' हैं।'' इस व्याख्यामें 'अंशेन' पद विष्णुका विशेषण है, '**अंशेनविष्णोः—सर्वावतारावतारिणः श्रीकृष्णस्य**'—यही इस व्याख्याका प्रतिपाद्य है।

श्रीमद्भागवतके प्रत्येक श्लोकका प्रत्येक शब्द कामधेनु-तुल्य है। उसका जो जिस भावसे दोहन करेगा, उसे उसी भावके अमूल्य सिद्धान्तकी प्राप्ति होगी, इसमें संदेह नहीं है। टीकाकारोंने कृपा करके इस प्रकार अनेक सिद्धान्तोंको व्यक्त किया है। सबको प्रकट करना असम्भव है, यहाँ यथासाध्य कुछ प्रकाशमें लाये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोकस्थ 'विष्णु' शब्दकी कुछ आलोचना होना ठीक है। 'विष्णु' कहनेपर आपाततः वैकुण्ठपति विश्वप्रतिपालक नारायणका बोध होता है। विष्णु और श्रीकृष्णमें क्या भेद है, इसकी भी लोग विवेचना नहीं करते तथा बहुतोंकी यह धारणा है कि विष्णु ही श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इस कारण श्रीसनातनगोस्वामिपादने व्याख्या की—'**विष्णोः व्यापकतापर्यवसानस्य स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य।**' 'विष्णु' शब्दके धातु-प्रत्यय आदिका विश्लेषण करके अर्थ करनेसे ज्ञात होता है—'**वेवेष्टि—प्राकृताप्राकृतं सर्वं व्याप्नोतीति विष्णुः।**' *

श्रीधरस्वामी, श्रीवीरराघवाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीसनातनगोस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी, श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती आदि श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके जितने टीकाकार हैं, उनमें कोई भी श्रीकृष्णको अंशावतार नहीं मानते। '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'—इस मूलमन्त्रका अवलम्बन करके नाना प्रकारसे '**तत्रांशेनावतीर्णस्य**' आदि श्लोककी व्याख्या करते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं; परंतु उनके ऐश्वर्य, माधुर्य और स्वरूपकी परिपूर्णताको सब लोग ग्रहण नहीं कर सकते। इसी कारण साधारण आदमीकी दृष्टिमें वे अंश हैं, इस भावको लेकर श्रीधरस्वामिपाद तथा श्रीसनातनगोस्वामिपादने जो कुछ कहा है, उसकी पहले चर्चा हो चुकी है। टीकाकारगण केवल इतनी ही आलोचना करके '**अंशेन**' पदको नहीं छोड़ते; उन्होंने और भी कुछ रहस्योद्घाटन किया है। श्रीसनातनगोस्वामिपाद और श्रीजीवगोस्वामिपाद कहते हैं कि '**अंशेन**' इस पदमें जो '**सहार्थे तृतीया**' विभक्ति है, उसके द्वारा '**अंशेन श्रीबलदेवेन सह**'—यह अर्थ प्राप्त होता है।' श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धमें जिस प्रकार श्रीकृष्ण-लीला वर्णित है, उसी प्रकार श्रीबलदेवकी भी अनेक लीलाएँ वर्णित हैं। विशेषतः श्रीबलदेवकी लीलासे श्रीकृष्णलीलाके माधुर्यका पोषण होता है, अतएव महाराज परीक्षित्‌के प्रश्नमें उनकी कथाका उल्लेख होना नितान्त युक्तिहीन अथवा असम्भव नहीं है। दस अवतारोंकी गणनामें श्रीबलदेवके नामका उल्लेख मिलता है; अतएव उनको अंशावतार कहनेसे शास्त्र-विरोधकी भी आशङ्का नहीं है। 'धर्मात्मा यदुके वंशमें श्रीबलदेवके साथ अवतीर्ण श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन मुझसे कीजिये'—यही इस व्याख्याका तात्पर्य है।

* जो प्राकृत और अप्राकृत सबमें व्याप्त हैं, वह 'विष्णु' है।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिपादने '**अंशेन**' पदकी अन्य प्रकारसे योजना करके और भी एक प्रकारकी व्याख्या की है। उसमें '**तत्र यदोर्वंशे अवतीर्णस्य आविर्भूतस्य अंशेन विष्णोः यः खलु अंशेन विष्णुर्भूत्वा जगत्पालयति तस्य स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य वीर्याणि नः शंस**'—इस प्रकार अन्वय करके श्लोकका अर्थ लगानेकी चेष्टा की गयी है। 'जिनका अंश विष्णुरूपमें जगत्‌का पालन करता है, उन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन करें।' यही इस व्याख्याका प्रतिपाद्य है। स्वयं भगवान् गोलोकमें गो, गोप तथा गोपियोंके साथ नित्य लीला-विलास करते हैं; ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि कार्य उनके अंशद्वारा निष्पन्न होते हैं, यही शास्त्र-सिद्धान्त है; अतएव यह व्याख्या असम्भव नहीं है। जो प्राकृत और अप्राकृत सबमें व्याप्त है, वह 'विष्णु' है; अतएव स्वयं भगवान् ही 'विष्णु' शब्दका मुख्य अर्थ है। अमरकोशमें भी लिखा है—'**विष्णुर्नारायणः कृष्णः**' आदि श्रीकृष्णके ही नाम हैं। यदि किसीके मनमें अन्य धारणा हो तो उसके निवारणके लिये आगे लिखते हैं—'**वसुदेवोऽस्य जनकः**'। अतएव विष्णु, नारायण, कृष्ण आदि नाम वसुदेवनन्दनके हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वैकुण्ठपति स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके ही अंश हैं, अतएव उनमें 'विष्णु' शब्दका व्यवहार शास्त्र-विरुद्ध नहीं है। महाराज परीक्षित्‌ने 'विष्णु' शब्द स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे ही व्यवहृत किया है; यह श्रीशुकदेवजीके द्वारा वर्णित लीलासे स्पष्ट समझा जा सकता है।

महाराज परीक्षित्‌ने श्रीकृष्णलीला-श्रवण करनेकी इच्छासे कहा—'**विष्णोर्वीर्याणि शंस नः**—श्रीकृष्णकी लीलाका मुझसे वर्णन कीजिये।' यहाँ '**मे**' इस एकवचनान्त पदका व्यवहार न करके '**नः**' इस बहुवचनान्त पदका व्यवहार करनेका उद्देश्य यह है कि वे श्रीकृष्णलीलाका प्रश्न करके अपनेको गौरवान्वित समझ रहे हैं, इसी कारण गौरवके लिये बहुवचनका व्यवहार किया है। अथवा वे अकेले सुमधुर श्रीकृष्णलीलाको श्रवण करना नहीं चाहते; अतएव प्रार्थना की कि '**नः**' अर्थात् हम सबके लिये इसका वर्णन कीजिये। 'हम सबके लिये वर्णन कीजिये'—इस प्रार्थनामें महाराज परीक्षित्‌की सबके प्रति अपार कृपा तथा भक्तोचित विनय प्रकटित हो रही है। श्रीकृष्णलीला-कथा भक्तचूडामणिगणके गुप्त भंडारका धन है। महाराज उसे सबको बाँटनेके लिये प्रस्तुत हैं। 'हमसे वर्णन करें'—यह कहकर महाराज परीक्षित्‌ने वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा भविष्यत्-श्रोतृवृन्दके ऊपर परम कृपा प्रदर्शित की है और उनको अपना संगी बना लिया है। श्रीभगवान्‌के भक्त विनयकी खान होते हैं। महाराज परीक्षित्‌की इस बातमें विलक्षण विनय प्रकटित हुई है। उनके मनका भाव यह है कि 'श्रीकृष्णलीलाकी कथा श्रवण करनेकी योग्यता मुझमें नहीं है; सब भक्तगणके लिये आप उसका वर्णन करें तो उनके सङ्गके प्रभावसे मेरा भी सुनना हो जायगा।' प्रेमी भक्तगणके सामने जिस-किसी प्रकारसे श्रीकृष्णकथा कही जाय, वे सुनकर आनन्दमग्न हो जायँगे; परंतु प्रेमशून्य व्यक्तिको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकता। उनसे यदि उनकी रुचिके अनुकूल भावसे कहा जाय तो वे कुछ माधुर्य ग्रहण करनेमें समर्थ होंगे। इसी कारण महाराज परीक्षित् प्रश्न करते समय कहते हैं कि 'शंस' अर्थात् लीलाके उत्कर्षको दिखलाते हुए वर्णन करें। वैसी दशामें मेरे-जैसा भक्तिशून्य जीव भी रस ग्रहण कर सकेगा।''

'अप्रकट' और 'प्रकट' भेदसे श्रीभगवान्‌की लीला दो प्रकारकी होती है। श्रीभगवान् जगत्‌के जीवोंके अगोचर अपने नित्यधाममें जो लीला करते हैं, वह 'अप्रकट-लीला' है तथा जगत्‌के जीवोंके लिये दृश्यरूपमें जो लीला करते हैं, वह 'प्रकट-लीला' है। प्रकट-लीलामें श्रीभगवान् जगत्‌के जीवोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करके उनको कृतार्थ करते हैं। विशेषतः महाराज परीक्षित्‌का प्रकट-लीलाके साथ सम्बन्ध है; क्योंकि प्रकट-लीलामें श्रीभगवान् महाराज परीक्षित्‌की पितामही सुभद्राके भाई हैं; इसी कारण महाराज परीक्षित्‌ने प्रकट-लीलाको श्रवण करनेके विषयमें प्रश्न किया है। 'अवतीर्य यदोर्वंशे' आदि श्लोककी आलोचना करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है। महाराज परीक्षित्‌ने श्रीकृष्णकी प्रकट-लीला सुननेकी अभिलाषासे उनके स्वरूपका वर्णन किया कि ''वे भगवान्' अर्थात् सारे ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं; जब जो इच्छा हो, उसे पूरा करनेमें समर्थ हैं; उनके ऐश्वर्यका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है; तथापि करुणाके वशवर्ती होकर उन्होंने 'यदुवंश' में जन्म लिया था। वे 'भूतभावन' हैं, अर्थात् सब जीवोंका पालन करना उनका स्वभाव है। वे 'विश्वात्मा' हैं, अर्थात् सब जीवोंके स्वभावतः हितकारी हैं। जीव उनके साथ सम्बन्ध रखे या न रखे, वे सबकी सारी इन्द्रियोंमें अन्तर्यामिरूपसे शक्ति-संचार करते हैं तथा चेतना-शक्ति प्रदान करके जीवित रखते हैं। जगत्‌का पालन करना ही उनकी लीलाका उद्देश्य है; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अतएव हे गुरो! इस परम करुणाकी लीलाका विस्तारपूर्वक वर्णन करके हमें कृतार्थ कीजिये। यद्यपि उनकी लीला अनन्त है, तथापि हमारी प्रबल लालसा हमको स्थिर रहनेकी शक्ति देती है तथा श्रवणको असम्भव नहीं समझने दे रही है, आप कृपा करके उसका वर्णन करें।'' ॥ २-३ ॥

(शेष आगे)

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें दो महापुरुषोंके अनुभव

मेरा विश्वास और अनुभव है कि श्रीमद्भागवतके पढ़ने और सुननेसे मनुष्यको ईश्वरका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और उनके चरण-कमलोंमें अचल भक्ति होती है। इसके पढ़नेसे मनुष्यको दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इस संसारको रचने और पालन करनेवाली कोई सर्वव्यापक शक्ति है—

एक अनंत त्रिकाल सच, चेतन सक्ति दिखात। सिरजत, पालत, हरत जग, महिमा बरनि न जात॥

और ग्रन्थोंसे क्या, जिन सुकृतियोंने पुण्यके कर्म कर रखे हैं और जो श्रद्धासे भागवतको पढ़ते या सुनते हैं, वे इसका सेवन करनेके समयसे ही भक्तिसे ईश्वरको अपने हृदयमें अविचलरूपसे स्थापित कर लेते हैं। ईश्वरका ज्ञान और उनमें भक्तिका परम साधन—ये दो पदार्थ जब किसी प्राणीको प्राप्त हो गये, तब कौन-सा पदार्थ रह गया, जिसके लिये मनुष्य कामना करे; और ये दोनों पदार्थ श्रीमद्भागवतसे पूर्ण मात्रामें प्राप्त होते हैं। इसीलिये यह पवित्र ग्रन्थ मनुष्यमात्रका उपकारी है। जबतक मनुष्य भागवतको पढ़े नहीं और उसकी इसमें श्रद्धा न हो, तबतक वह समझ नहीं सकता कि ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका यह कितना विशाल समुद्र है।

—महामना मदनमोहन मालवीय

* * *

आज मैं देख सकता हूँ कि 'भागवत' ऐसा ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर धर्मरस उत्पन्न किया जा सकता है। मैंने गुजरातीमें उसको बड़े रससे पढ़ा है। परंतु मेरे इक्कीस दिनके उपवासमें जब मैंने भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके शुभ मुखसे भागवतके कुछ अंश सुने, तब मुझे ऐसा लगा कि बचपनमें इनके-जैसे भागवत-भक्तके मुखसे मैं सुनता तो भागवतपर मेरी प्रीति बचपनमें ही अच्छी हो जाती।

—महात्मा गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मधु वाता ऋतायते'

(लेखक—अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज)

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके चौदहवें अध्याय एवं नवतितम (९० वें) सूक्तमें 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि तीन ऋचाएँ हैं। तीन ऋचाओंके समूहको 'तृच' कहते हैं। इन ऋचाओंका पाठ इस प्रकार है—

१–मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥

२–मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

३–मधुमान्नो वनस्पतिः मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

अब इनका पदपाठ दिया जा रहा है—

१–मधु, वाताः, ऋतायते, मधु, क्षरन्ति, सिन्धवः, माध्वीः, नः, सन्तु, ओषधीः।

२–मधु, नक्तम्, उत, उषसः, मधुमत्, पार्थिवम्, रजः, मधु, द्यौः, अस्तु, नः, पिता।

३–मधुमान्, नः, वनस्पतिः, मधुमान्, अस्तु, सूर्यः, माध्वीः, गावः, भवन्तु, नः।

अब इन मन्त्रोंके अन्वयपर दृष्टिपात कीजिये—

१–ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति, सिन्धवः मधु क्षरन्ति, नः ओषधीः माध्वीः सन्तु।

२–नक्तम् मधु अस्तु; उत उषसः मधूनि सन्तु; पार्थिवम् रजः मधुमत् अस्तु; नः पिता द्यौः मधु अस्तु।

३–वनस्पतिः मधुमान् अस्तु; सूर्यः मधुमान् अस्तु; नः गावः माध्वीः भवन्तु।

इनके ऋषि, छन्द और देवता

इस 'तृच'के गौतम ऋषि, गायत्री छन्द एवं मधु देवता हैं।

दुप् टीका

इस 'तृच'का विस्तृत रूपसे भाष्य आगे प्रस्तुत किया जायगा। पहले सरलतासे पद-पदार्थोंका बोध करानेके लिये 'दुप् टीका' दी जाती है। अतिशय संक्षिप्त व्याख्याको 'दुप् टीका' कहते हैं।

१–ऋतायते–प्राकृत नियमोंके अनुकूल चलनेवाले मानवके लिये; वाताः–वायुगण; मधु–माधुर्यको; क्षरन्ति–चुवाते हैं। सिन्धवः–नदियाँ अथवा समुद्र भी; मधु–माधुर्य; क्षरन्ति–चुवाते हैं। नः–प्राकृत नियमोंके अनुकूल चलनेवाले हमलोगोंके लिये; ओषधीः–अन्नवर्ग भी; माध्वीः–मधुर रससे सम्पन्न; सन्तु—हों।

२–नक्तम्–रात्रि; मधु–सुखमय; अस्तु—हो। उत—और; उषसः–दिन; मधु–मधुर; सन्तु—हों। पार्थिवम्–पृथिवी-सम्बन्धी; रजः–प्रत्येक रजःकण; मधुमत्–सुख-सम्पन्न; अस्तु–हो जाय। नः–हमारे (हम प्राणियोंके) लिये; पिता–जनक; द्यौः–द्युलोक भी; मधु–सुखरूप; अस्तु–हो।

३–नः–हमलोगोंके लिये; वनस्पतिः—चन्द्रमा अथवा वृक्ष; मधुमान्–मधु-सम्पन्न; अस्तु–हो जावें। सूर्यः–सूर्य भी; मधुमान्–सुखरूप; अस्तु–हों। नः–हमारी; गावः–गौएँ माध्वीः–मधुर दुग्ध देनेवाली; भवन्तु–होवें।

तृचका भाष्य

सरलतासे मन्त्रोंके अर्थका बोध करानेके लिये पहले 'तृच' (तीनों ऋचाओं)की 'दुपट्टीका' प्रस्तुत की गयी है। अब इनका विस्तृत भाष्य दिया जाता है। 'वेद'के किसी भी मन्त्रका भाष्य करते समय उसके ऋषि, छन्द, देवता एवं पदपाठ—इन चारोंपर ध्यान रखना अनिवार्य माना गया है। इनमेंसे जो पदपाठ है, वह मन्त्रका संक्षिप्त अर्थ ही है। इन चारोंकी उपेक्षा करके जो वैदिक मन्त्रोंका अर्थ किया जाता है, वह अर्थ न होकर अनर्थ हो जाता है। अर्थात् व्याख्याता अपने मनमाने अभिप्रायको ही मन्त्रपर आरोपित करता (या लादता) है। ऐसा करना एक प्रकारसे 'वेद'के साथ विद्रोह करना है।

मन्त्रके द्रष्टा अथवा प्रस्तुतकर्ताको 'ऋषि' कहते हैं। वेद-भेदसे मन्त्रके द्रष्टा एवं प्रस्तुतकर्ता, दोनों ऋषि माने गये हैं। वेद दो प्रकारके हैं—एक तो तत्त्वात्मक वेद और दूसरा शब्दात्मक-वेद। इनमें प्रकृति (प्रधान) तत्त्वात्मक वेद है एवं उसकी प्रतिकृति (प्रतिमा) शब्दात्मक वेद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्वात्मक वेदका द्रष्टा होनेसे ऋषिको 'वेदका द्रष्टा' कहा गया है। शब्दात्मक वेदका प्रस्तुतकर्ता होनेसे वह वेदका कर्ता भी है। तत्त्वात्मक वेद पुरुषके ज्ञान, इच्छा एवं प्रयत्नसे जन्म न होनेके कारण 'अपौरुषेय' है, शब्दात्मक वेद पुरुषके ज्ञान, इच्छा एवं प्रयत्नसे जन्य होनेके कारण 'पौरुषेय' है। परंतु मीमांसा-शास्त्रमें शब्द एवं अर्थमें परस्पर अभेद-सम्बन्ध माना गया है। अतः शब्दात्मक वेद भी तत्त्वात्मक वेदसे अभिन्न होनेके कारण अपौरुषेय मान लिया गया है। 'मधु वाताः' इस तृचके द्रष्टा एवं कर्ता 'ऋषि' गौतम हैं। इस रहस्यको न जाननेके कारण मानव वेदके अपौरुषेयत्वके विषयमें संशयात्मा बना रहता है।

छन्द

'येन छन्द्यते तत् छन्दः' यह 'छन्दः' शब्दकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति है। इसका अर्थ है—आच्छादन। अर्थात् जो वस्तु जिससे आच्छन्न होती है, वह आच्छादक वस्तु उस आच्छाद्य वस्तुका 'छन्द' है। छन्द दो प्रकारके हैं—एक प्राणच्छन्द और दूसरा वाक्छन्द। इनमें प्राणच्छन्दके चार भेद हैं—मा छन्द, प्रमा छन्द, प्रतिमा छन्द एवं अस्त्रीवि छन्द।

वाक्छन्दके भी तीन भेद हैं—वर्णच्छन्द, गणच्छन्द एवं मात्राछन्द। इनमेंसे नियत वर्ण-समुदायवाला छन्द 'वर्णच्छन्द' है एवं गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् एवं जगती—ये सात वर्णच्छन्द हैं। वेदमें अधिकांश वर्णच्छन्द ही हैं। छन्दोभेद ही वस्तुभेदका कारण है। इस 'तृच'का गायत्री छन्द है। कोई भी अग्नि गायत्री छन्दसे आच्छादित होनेपर पार्थिव अग्निके रूपमें परिणत हो जाता है।

देवता

वेदोंमें प्राणको 'देवता' कहते हैं। देवता चार प्रकारके होते हैं—पार्थिव, आन्तरिक्ष्य, दिव्य एवं आत्मा। वेदमें जन्य पदार्थोंके छन्द, देवता एवं स्तोम—ये तीन कारण माने जाते हैं; अतः जिस वस्तुका जो कारण है, वह उसका देवता है—यह देवताका सामान्य लक्षण है। जिस मन्त्रमें जिसका वर्णन हो, वह भी उसका देवता है—यह देवताका पारिभाषिक लक्षण है। इस तृचमें मधुका वर्णन है, अतः मधु इसका देवता है। यह मधु स्थूल, सूक्ष्म एवं पर-भेदसे तीन प्रकारका होता है। इसका आगे चलकर निर्देश होगा।

संधियुक्त रूपमें पठित मन्त्रोंके पदोंका संधि-विच्छेद-पूर्वक पाठ 'पदपाठ' कहलाता है। यह मन्त्रोंका अत्यन्त संक्षिप्त अर्थ ही है। इससे संहितायुक्त रूपसे पठित पदोंका निर्णय होता है। ऋग्वेदके पदपाठकार शाकल्यमुनि हैं। पदपाठकार पदोंका यथार्थ अवच्छेद करता है अथवा नहीं, इसका निर्णय पदगत स्वरोंसे होता है। ऋषि, छन्द, देवता एवं पदपाठ—इन चारोंपर ध्यान रखते हुए हम इस तृचका भाष्य प्रस्तुत करेंगे।

मन्त्रोंके तीन-तीन अर्थ

वैदिक मन्त्रोंके अर्थ करते समय जैसे ऋषि, छन्द, देवता एवं पदपाठपर ध्यान रखना आवश्यक माना गया है, वैसे ही प्रत्येक वैदिक मन्त्रके अधिभूत, अध्यात्म एवं अधिदैवत भेदसे तीन-तीन अर्थ होते हैं, इस नियमपर भी ध्यान रखना आवश्यक है। वैदिक ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें इस प्रक्रियाके पद-पदपर दर्शन होते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें कहीं-कहीं तो एक मन्त्रके तीन, चार, पाँच, छः या सात अर्थ भी देखनेको मिलते हैं। इनमें अधिभूत-अर्थमें मन्त्रगत पद, आधिभौतिक स्थूल पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, अध्यात्म-अर्थमें शरीरगत इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं आत्मा आदिका प्रतिपादन होता है एवं अधिदैवत-अर्थमें ब्रह्माण्डगत सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तियोंका प्रतिपादन किया जाता है। इन अधिभूत आदिके क्रमशः स्थूल अर्थ, सूक्ष्म अर्थ एवं पर अर्थ भी नामान्तर हैं।

स्थूल अर्थका लक्षण

इन स्थूल, सूक्ष्म एवं पर अर्थोंका पृथक्-पृथक् लक्षण भी आगम-शास्त्रमें उपलब्ध है। स्थूल अर्थका लक्षण 'अहिर्बुध्न्य-संहिता'पर आधारित 'रहस्यत्रयसार' ग्रन्थमें श्रीवेदान्तदेशिकने इस प्रकार किया है—

'अत्र स्थूलोऽर्थो नाम—व्याकरणानुबद्धयास्फुटव्युत्पत्त्या प्रतीयमानोऽर्थः।'

अर्थात् मन्त्रोंका स्थूल अर्थ वह है, जो व्याकरणसे अनुबद्ध स्फुट व्युत्पत्तिसे होता हो। सारांश यह कि क्रिया-कारक-संसर्गसे प्रतीयमान अर्थ 'स्थूल अर्थ' है।

सूक्ष्म अर्थका लक्षण

सूक्ष्म अर्थका लक्षण करते हुए श्रीवेदान्तदेशिकने 'रहस्यत्रयसार' ग्रन्थमें कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सूक्ष्मो नाम—वर्णसाम्यादीनवलम्ब्य प्रवर्तमानस्य निरुक्तस्य बलेन प्रतीयमानोऽर्थः ।' अर्थात् वर्णकी समता आदिका अवलम्बन करके निरुक्तबलसे प्रतीयमान अर्थ 'सूक्ष्म अर्थ' है। तात्पर्य यह कि प्रातिपदिक (शब्द)के स्वरूपके आलोचनसे जो अर्थ प्रतीत होता हो, वह 'सूक्ष्म अर्थ' है।

पर अर्थ

वेद-मन्त्रोंके 'पर' अर्थका लक्षण करते हुए श्रीवेदान्त-देशिक आचार्य कहते हैं —

'परो नाम—रहस्यशास्त्रप्रतिपादिताक्षरनिघण्टुप्रक्रियया प्रतीयमानोऽर्थः ।'

अर्थात् रहस्य (तन्त्र) शास्त्रमें प्रतिपादित अक्षरोंके अर्थोंसे प्रतीत होनेवाला अर्थ 'पर अर्थ' है। वर्णकोश, बीजकोश एवं मन्त्रकोश आदि ग्रन्थोंमें प्रत्येक अक्षरके अनेक अर्थोंका प्रतिपादन है।

'मधु वाताः' आदि तृचके तीन अर्थ

'**मधु वाताः**' तृचके भी स्थूल, सूक्ष्म एवं पर—ये तीन अर्थ हैं। इनमें 'स्थूल' अर्थका प्रतिपादन 'आश्वलायन-गृह्यसूत्र' (१ । २४ । २४)में इस प्रकार है—

"ऋत्विगाद्यर्थमाहृतं मधुपर्कं 'मधु वाताः' इति तृचेन ऋत्विगादिः प्रतिग्रहीतावेक्षेत ।'

अर्थात् होता, उद्गाता, अध्वर्यु एवं ब्रह्मा आदि ऋत्विजोंके लिये लाये गये 'मधुपर्क' को वे ग्रहण करनेवाले ऋत्विग् '**मधु वाताः**' इस तृचसे देखें। इस प्रकार आश्वलायनके मतमें '**मधु वाताः**' तृचमें भौतिक 'मधु'का प्रतिपादन है। तृचगत पद—इस मधुका प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं—

१—**ऋतायते**—सरल मार्गमें चलनेवालेके लिये; **वाताः**—वायुगण; **मधु**—मधुको; **क्षरन्ति**—चुवाते हैं। **सिन्धवः**—नदियाँ भी; **मधु**—मधुको; **क्षरन्ति**-चुवाती हैं। **नः**—यज्ञमार्गसे चलने-वाले हमलोगोंके लिये; **ओषधीः**—ओषधियाँ; **माध्वीः**—मधुरूपा; **सन्तु**—हो जायँ।

२—**ऋतायते**—यज्ञ-मार्गसे यात्रा करनेवालेके लिये; **नक्तम्**—रात्रि; **मधु**—मधुरूप, अर्थात् सुखरूप हों। **उत**—और; **उषसः**—दिन भी; **मधूनि**—सुखरूप; **सन्तु**— हो। **पार्थिवम्**—पृथिवी-सम्बन्धी; **रजः**—प्रत्येक रजःकण; **मधुमत्**—मधु-सम्पन्न हो। **नः**—हम प्राणियोंके; **पिता**—जनक; **द्यौः**—द्युलोक भी; **मधु**—मधुरूप; **अस्तु**—हो जाय।

३—**नः**—यज्ञमार्गके अनुयायी हमलोगोंके लिये; **वनस्पतिः**—चन्द्रमा; **मधुमान्**—मधुर; **अस्तु**—हो। **सूर्यः**—तीक्ष्ण-किरण सूर्य भी; **मधुमान्**—मधुर रूप; **अस्तु**—हो; **नः**—हमारी; **गावः**—गौएँ भी; **माध्वीः**—मधुर दूध देनेवाली **सन्तु**—हों। हम जिस मधुको देखते हैं, वह अव्यक्त-रूपसे सर्वत्र व्याप्त है।

इस अर्थमें 'तृच'का तात्पर्य यह है कि 'जो स्वयं मधु है, उसके लिये सम्पूर्ण विश्व ही मधुमय है। जो स्वयं विष (कुटिल) है, उसके लिये सम्पूर्ण विश्व ही विषरूपमें परिणत हो जाता है।

तृचका सूक्ष्म अर्थ

इस तृचका सूक्ष्म अर्थ श्रीसायणाचार्य महाभागने अपने ऋग्वेद-भाष्यमें इस प्रकार किया है—

१—**ऋतायते—ऋतं यज्ञमात्मन इच्छते यजमानाय,** अर्थात् जो अपने लिये ऋत (यज्ञ)की इच्छा करता है, उस यजमानके लिये; **वाताः**—वायुगण; **मधु**—माधुर्य-सम्पन्न यज्ञ-फलको; **क्षरन्तिः**—क्षरण करते हैं। **सिन्धवः**—नदियाँ भी; **मधु**—माधुर्य-सम्पन्न कर्मफलको; **क्षरन्ति**—झरती हैं। **नः**—हम यजमानोंके लिये; **ओषधीः**—अन्नवर्ग भी; **माध्वीः**—मधुर-रससे सम्पन्न, **सन्तु**—हों।

२—**ऋतायते**—यजमानके लिये; **नक्तम्**—रात्रियाँ; **मधु**—सुखरूपा; **अस्तु**—हो जायँ। **उत**—एवं; **उषसः**—दिन भी; **मधूनि**—माधुर्यसे परिपूर्ण; **सन्तु**—हो जायँ। **नः**—हम यजमानोंका; **पिता**—रक्षक; **द्यौः**—द्युलोक भी; **मधु**—मधुर कर्मफलका दाता; **अस्तु**—हो। **पार्थिवम्**—पृथिवी-सम्बन्धी; **रजः**—रजःकण; **मधुमत्**—मधुरिमासे भरपूर; **अस्तु**—हो जाय।

३—**नः**—हम यजमानोंके लिये; **वनस्पतिः**—चन्द्रमा; **मधुमान्**—मधुर कर्मफल प्रदान करे। **सूर्यः**—सूर्य भी; **मधुमान्**—मधुरतापूर्ण कर्मफलका प्रदाता; **अस्तु**—हो। **नः**—हम यजमानोंके लिये; **गावः**—गौएँ भी; **माध्वीः**—मधुमती; **भवन्तु**—हो जायँ।

इस सूक्ष्म अर्थमें मन्त्रका फलितार्थ **यह है** कि यज्ञसे प्रकृतिके अणु-परमाणु, **चन्द्र-सूर्य**, पृथिवीलोक, आकाश, वृक्ष, अन्न, ओषधियाँ, नदियाँ, समुद्र, रात-दिन एवं गो-गण आदि सब पदार्थ यजमानके लिये सदा कर्मफलरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखकी वृष्टि करते हैं। दूसरे शब्दोंमें प्रकृति यजमानके लिये सदा कामधेनु हो जाती है। यज्ञके अभावमें प्रकृति क्षुब्ध होकर रुक्ष हो जाती है, सदा दुःखोंकी वृष्टि करने लगती है। अतः विश्व-शान्ति, समृद्धि, सौहार्द, सुख एवं अभ्युदयके लिये व्यष्टि एवं समष्टिके द्वारा—'**यज्ञो वै श्रेष्ठतरं कर्म**–यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म है'—इस उक्तिके अनुसार यज्ञ-कर्मका सम्पादन अनिवार्य है।

तृचका 'पर' अर्थ

'तृच'के स्थूल एवं सूक्ष्म अर्थोंके प्रतिपादनकी पद्धतिका निरूपण किया गया। अब 'पर' अर्थका प्रतिपादन किया जाता है। यह 'पर'अर्थ तीन प्रकारका है—१–अधिदैवत अर्थ, २–अक्षरोंसे लभ्य अर्थ एवं ३–कार्यद्वारा उन्नीत अर्थ। इनमेंसे अधिदैवत अर्थमें 'तृच'-कथित 'मधु'का अर्थ अमृत-रस है। 'शतपथब्राह्मण'में उपलब्ध '**तृतीयस्यां वै दिवि सोम आसीत्**'—इस विज्ञानके आधारसे इस अमृत-रसका आधार चतुर्थ आपोलोक है, जो सूर्यके ऊपर है। जब वह अमृत-रस सूर्यलोकमें आता है, तब 'मधु' रूपमें परिणत हो जाता है। वही अन्तरिक्षमें 'घृत' एवं पृथिवीलोकमें 'दधि' रूपमें परिणत होता है। इस विषयमें 'वेद'का विज्ञान है कि '**दधि हैवास्य लोकस्य रूपम्। घृतमन्तरिक्षस्य। मध्वमुष्य।***—दधि ही इस पृथिवीलोकका रूप है, घृत अन्तरिक्षलोकका और मधु इस आदित्य-लोकका रूप है।' सूर्य इस मधुसे मधुरूप है। सूर्य-रश्मियाँ इस मधुसे माध्वी हैं। इस मधु-तत्त्वसे चन्द्ररश्मियाँ भी माध्वी बनी हुई हैं। 'मधु अप्सरसः'के आधारसे इस मधु-तत्त्वसे ओषधियाँ मधुमती बनी हुई हैं। वेदमें ओषधियोंको भी 'अप्सरा' कहा गया है। इसी मधु-तत्त्वसे पिता द्युलोक मधुमान् है। वसन्त ऋतुके प्रारम्भमें इस मधु अग्निका पार्थिव रजःकणोंमें आधान होता है, अतः '**मधुमत् पार्थिवꣳ रजः**' है। इस मधु अग्निके विकासके कारण ही वसन्त ऋतुके दो मास चैत्र-वैशाख 'मधु' और 'माधव' नामसे अभिहित होते हैं। सौर-शक्तियाँ चान्द्रनाड़ियों (नक्षत्रों) द्वारा पृथिवीमें प्रविष्ट होती हैं।† इस दिव्य मधुका पदार्थोंमें आधानकाल वसन्तकाल है। दिव्य अग्निका आधानकाल ही आर्योंके अग्न्याधानका समय है। इससे प्रमाणित होता है कि आर्योंके आचारोंका सम्बन्ध प्रकृतिसे है, न कि भावुक मनुष्योंकी कल्पनाओंसे। प्रकृतिमें व्याप्त इस सौर मधु—अग्निका प्रतिपादन '**मधु वाताः**' इत्यादि तृचके 'पर' अर्थमें घट रहा है।

१—**ऋतायते**–प्राकृत नियमोंके अनुगामी पदार्थमात्रके लिये; **वाताः**–वायुगण; **मधु**–विश्व-जीवन सौर 'मधु' अग्निका; **क्षरन्ति**–क्षरण (वर्षण) करते हैं। दूसरे शब्दोंमें विश्वका जीवनभूत यह सौर मधु वायुगणोंमें भी व्याप्त है और उनके द्वारा सब पदार्थोंको प्राप्त होता है। **सिन्धवः**-नदियाँ भी; **मधु**–उस मधु-अग्निका; **क्षरन्ति**–क्षरण (वहन) करती हैं। **नः**–हमलोगोंका; **ओषधीः**–अन्नवर्ग भी; **माध्वीः**–उस मधु-अग्निसे सम्पन्न; **सन्तु**–हो।

२—**नक्तम्**–रात्रि; **मधु**–उस मधुसे मधुमती हो। **उत**-और; **उषसः**–उषाएँ भी; **माध्वीः**–उस मधु-अग्निसे सम्पन्न हो। **पार्थिवम्**–पृथिवी-सम्बन्धी; **रजः**–रजःकण भी; **मधुमत्**-उस दिव्य मधु-अग्निसे सम्पन्न हों। **नः**–हम प्राणियोंके; **पिता**–उत्पादक; **द्यौः**–द्युलोक भी; **मधुमान्**–उस दिव्य सौर मधुसे परिपूर्ण हो।

३—**वनस्पतिः**–चन्द्रमा अथवा वृक्ष; **मधुमान्**–उस दिव्य मधुसे मधुमय हो। **सूर्यः**–सूर्यमण्डल भी; **मधुमान्**-उस जीवनरूप मधुसे परिपूर्ण; **अस्तु**–हो। **नः**–हमलोगोंके लिये; **गावः**–सूर्य-किरणें भी; **माध्वीः**–उस दिव्य मधु-अग्निसे सम्पन्न; **भवन्तु**–हों। इस मधु-अग्निकी व्याप्तिका वर्णन यह ऋङ्मन्त्र भी कर रहा है—

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमान्नो भवन्त्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नोऽस्तु अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥

(ऋक्० ४। ५७। ३)

अर्थात् ओषधियाँ, दिव्यलोक, जलरूप तीर्थ, अन्तरिक्ष तथा क्षेत्रपति (पृथ्वी आदि पदार्थ) मधु-अग्निसे परिपूर्ण हों। हम उसकी प्राप्तिमें बाधा न डालते हुए उसकी उपासना करें।

उपनिषदोंमें प्रसिद्ध 'मधु'-विद्यामें इस सौर 'मधु' अग्निका ही प्रतिपादन है। वेदान्त-सूत्रोंमें भगवान् व्यासने '**मध्वादिष्वसम्भवात् अनधिकारं जैमिनिः**' आदि सूत्रोंमें इस 'मधु'-अग्निका ही विवेचन किया है। इसका प्रत्यक्ष दर्शन वसन्तकालमें नवपल्लवों एवं आम्र आदि फलोंमें

* मधु, घृत, दधि—ये अमृतके तीन रूपान्तर हैं। दुग्ध एवं शर्करा—ये दो भी अमृतके परिणाम हैं। आर्योंकी पूजामें इन पाँचोंको एकत्र करके 'पञ्चामृत' बनाया जाता है।

† पृथ्वीको सौर मधु अग्निकी प्राप्ति भरणी नक्षत्रद्वारा होती है। जैसा कि कहा गया है—'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीन् आदधीत। —वसन्तमें ब्राह्मण अग्निका आधान करे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा सकता है। प्रकृतिमें व्याप्त विश्वके जीवन इस दिव्य मधुके प्रथम द्रष्टा दध्यङ् आथर्वण 'ऋषि' हैं। उन्होंने इसका ब्राह्मण (विज्ञान) अश्विनीकुमारोंको बताया था। विश्वके जीवन इस दिव्य 'मधु'-अग्निको गौतम 'ऋषि'-ने भी देखा था; उन्होंने अपने इस तत्त्वात्मक वेदके दर्शनको 'मधु वाता ऋतायते' इस शब्दात्मक वेद (तृच) में किया है। ऋषिने उक्त 'तृच'में उन अक्षरों एवं उस छन्दका संनिवेश किया है, जिनके उच्चारणसे उस 'मधु'-अग्निका अध्यात्ममें भी प्राकट्य हो जाता है। स्तुतिकर्तामें प्रकट इस अग्निका इसके परिसरमें विद्यमान सब जड-चेतनोंसे भी सम्बन्ध हो जाता है।

'पर' अर्थका दूसरा प्रकार

'मधु वाताः' इत्यादि 'तृच'के अधिदैवत पक्षमें एक प्रकारके 'पर' अर्थका प्रतिपादन किया गया है। अब दूसरे प्रकारके 'पर' अर्थका निरूपण किया जाता है। यह मन्त्रगत प्रत्येक अक्षरका अर्थ है। वर्णभैरव, वर्णमातृका, बीजकोश एवं मन्त्रकोश आदिमें एक-एक अक्षरके अनेक अर्थोंका प्रतिपादन है।

'मधु वाताः'-तृचमें प्रयुक्त कतिपय अक्षरोंके अर्थोंका निर्देश किया जाता है। 'तृच'का प्रारम्भ 'मधु'-शब्दसे होता है। 'मधु'-शब्दमें मकार, अकार, धकार एवं उकार—ये चार अक्षर हैं। इनमें 'मकार'का अर्थ मर्दन, काल एवं प्रधान आदि है, मकारोत्तर 'अकार'का अर्थ अप्रमेय, व्यापक, प्रथम आदि है, 'धकार'का अर्थ शार्ङ्गधर, धारणकर्ता, माधव आदि है, धकारोत्तर उकारके उद्दाम, उदय, भुवन आदि अर्थ हैं। इन अर्थोंके मेलसे 'मधु' शब्दका यह अर्थ होता है कि 'मधु'-नामक सौर अग्नि विश्वगत शिशिरभाव (जडभाव)का मर्दक (नाशक) है। यह व्यापक है, विश्वका धारक है और उदयका कारण है। अर्थात् इसीसे सब पदार्थ उदित (अभिव्यक्त) होते हैं। इसी प्रकार 'वाताः'पदमें विद्यमान वकार, आकार, तकार, आकार एवं विसर्ग—इन पाँच अक्षरोंके अर्थ मिलाने-पर 'वाताः' पदका अर्थ यों प्रकट होता है—'वायु भी वह अमृतरूप—सृष्टि-कारक 'मधु'-नामक अग्नि है।' इसी तरह 'क्षरन्ति' आदि पदोंके भी 'पर' अर्थोंको जानना चाहिये।

मधु-शब्दके निर्वचन

वर्णों (अक्षरों)के अर्थोंसे उत्पन्न 'मधु' शब्दके 'पर' अर्थका प्रतिपादन 'मधु' शब्दके निर्वचनोंसे भी हो रहा है। 'निरुक्त' आदि ग्रन्थोंमें 'मधु'-शब्दके अनेक निर्वचन उपलब्ध हैं। भट्ट भास्करमिश्रने 'मधु'शब्दकी निष्पत्ति **'मन ज्ञाने'** धातुसे मानी है। **"मननीयं मधु**—जो मनन (ज्ञान) से युक्त हो, वह 'मधु' है।" 'मधु'-अग्नि चेतनायुक्त है। विश्वमें इसके उदित होते ही विश्वके पदार्थोंमें चेतनाका संचार हो जाता है। मधुमास (चैत्र) में इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। वैयाकरण भी **'मन ज्ञाने'** धातुसे ही 'मधु'-शब्दकी व्युत्पत्ति मानते हैं। **"मन्यते इति मधु**—जो ज्ञानमय है वह 'मधु' है।" देवराज यज्वाने **'मद तृप्तौ'** धातुसे 'मधु' शब्दकी सिद्धि मानी है। 'मधु' अग्निमें तृप्ति है, अतः वह पूर्ण है। पूर्ण होनेसे ही वह पल्लव, पुष्प एवं फल आदिकी सृष्टि करता है। 'निरुक्त'में भगवान् यास्कने 'मधु' शब्दका **'मधु धमतेर्विपरीतस्य'**—यह निर्वचन किया है। 'धमति' का यहाँ 'गति' अर्थ है। यास्कके मतमें 'मधु'-अग्नि तरलताका सम्पादक है, अर्थात् घनताका नाशक है। इसकी गतिशीलताके कारण ही शिशिरमें अवरुद्ध प्राणोंमें गति आ जाती है। **'मन ज्ञाने'** धातुसे उत्पन्न 'मधु'-शब्दका विपरिणाम आंग्ल प्राकृतमें 'होनी' हो गया है।

'मधु वाताः' तृचमें विद्यमान 'मधु' एवं 'वाताः' शब्दोंके वर्णोंके अक्षरोंसे उत्पन्न अर्थके अवलोकनसे वेदोंके अर्थ गाम्भीर्य एवं पद-संनिवेश-गाम्भीर्यकी प्रतीति होती है। अतः **'अग्निमीळे पुरोहितम्'**के स्थानपर **'वह्निमीळे पुरोहितम्'** नहीं पढ़ा जा सकता; क्योंकि अकार, गकार, नकार एवं इकार, इनके समुदायसे उत्पन्न अर्थ भिन्न है। यह अर्थ वकार, हकार, नकार एवं इकार, इस वर्ण-समुदायसे नहीं प्राप्त हो सकता।

तीसरे प्रकारका 'पर' अर्थ

'शतपथब्राह्मण'में एक तीसरे प्रकारके 'पर'अर्थका भी प्रतिपादन देखा जाता है। भगवान् याज्ञवल्क्यने **'विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा।'** इस मन्त्रमें उसे प्रस्तुत किया है। इस मन्त्रकी व्याख्यामें याज्ञवल्क्य कहते हैं—

'विश्वो देवस्येति तदस्या वैश्वदेवम्; नेतुरिति तत्सावित्रम्; मर्त इति तन्मैत्रम्; विश्वो द्युम्नामिति तद्बार्हस्पत्यम्। द्युम्नं हि बृहस्पतिः। पुष्यसे इति तत्पौष्णं रूपम्।'

प्रत्येक मन्त्र देवतामय अथवा देवतारूप है। देवता-शब्दका पर्याय लौकिक भाषामें 'शक्ति' एवं वैदिक भाषामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्राण' है। मन्त्रोंमें कई मन्त्र एक ही देवता (शक्ति)-वाले हैं। अनेक मन्त्र अनेक शक्तिरूप है। **'विश्वो देवस्य नेतुः'**—यह मन्त्र अनेक देवता (शक्ति) वाला मन्त्र है। इसके स्थूल अर्थमें अनेक देवताओंका प्रतिपादन नहीं है, किंतु कार्यसे उन्नीत या अनुमित अर्थ (पर अर्थ)में अनेक देवताओंका इसमें प्रतिपादन है। इस मन्त्रका **'विश्वो देवस्य'**—यह खण्ड 'विश्वेदेवमय' है। **नेतुः**—यह खण्ड सावित्र है। अर्थात् इसके देवता सविता हैं। नेतापदसे सविताकी प्रतीति 'पर अर्थ' है। यहाँपर कार्यसे कारणका अनुमान है। **'मर्तः'** पद मित्रदेवतामय है। **'विश्वो द्युम्नम्'**—यह खण्ड बृहस्पतिका बोधक है। 'द्युम्न' (एक प्रकारका तेज) बृहस्पतिसे उत्पन्न होता है। अतः जहाँ 'द्युम्न' है, वहाँ 'बृहस्पति' है। यह भी कार्यसे कारणका अनुमानरूप पर अर्थ है। विश्वके पदार्थोंमें जहाँ भी 'द्युम्न' होगा, वहाँ बृहस्पति है।' **'पुष्यसे'** खण्ड पूषा-देवताका प्रतिपादक है। कारण कि इसमें 'पुष्टि'का प्रतिपादन है। पुष्टि पूषाका कार्य है। अतः जहाँ पुष्टि, वहाँ पूषा—इस न्यायसे पूषाकी स्थिति वहाँ है। यह भी 'पर अर्थ' ही है।

इस प्रकार यहाँ 'मधु वाताः' तृचके स्थूल, सूक्ष्म एवं 'पर' अर्थ रूप तीन अर्थोंका प्रतिपादन सप्रमाण किया गया है। इससे वैदिक मन्त्रोंकी अलौकिकता एवं अर्थ-गाम्भीर्यके दर्शन होते हैं। मानवके लिये वेदमें वर्णित प्रकृति-रहस्योंके ज्ञानमें रुचि रखना परम आवश्यक है। वेदके बिना 'मधु'-के स्वरूपका रहस्य अन्यत्र कहाँ उपलब्ध हो सकता है। अतः **'माध्वीर्गावो भवन्तु नः'**। हमारी वेदवाणी (वेदज्ञान) में रुचि हो, यह प्रार्थना है। वे मानव विश्वद्रोही हैं, जिन्होंने अपनी भावुकता (मूर्खता)के कारण मानव-वाणियोंको ईश्वरवाणी (वेद)-के समकक्ष घोषित किया हो। प्रकृति-रहस्यके ज्ञानके लिये मानवको 'कुमारिलभट्ट'द्वारा प्रतिपादित 'वेदार्थज्ञानरत्न'में कथित 'तृष्णातीव विजृम्भते' इस मार्गका अनुसरण करना चाहिये।

ज्योति दयामयि !

[Cardinal Newman के प्रसिद्ध भजन "Lead kindly Light!" का भाषानुवाद]

व्याप्त चतुर्दिक् अन्धकारमें, ज्योति दयामयि ! हाथ पकड़कर
मुझे बढ़ाती आगे ले चल
निबिड़ अँधेरी अमा-निशा है, और दूर है, दूर बहुत घर,
मुझको तू ले चल रे ! ले चल ॥
चरणोंको रह दिये सहारा, नहीं चाहता मुझे दिखा दे
दृश्य दूरका, जहाँ पहुँचना; बस, केवल पग एक टिका दे।
ऐसा कभी न पहले मैं था, कभी न मैंने तुझे पुकारा,
कहा कि 'मुझको आगे ले चल ।'
मुझको रुचता स्वयं खोजना, पाना निज पथ; पर अब हाराः
मुझको तू ले चल रे ! ले चल ॥
रंग भरे दिन थे प्रिय लगते यद्यपि भय रहता था भीतर,
दर्प-अधिप था संकल्पोंका; ध्यान न देना गत वर्षोंपर
अबतक मेरे लिये वरद थी शक्ति तुम्हारी, अब भी निश्चय
मुझको ले जायेगी आगे,
दल-दल, जंगल, गिरिवर, निर्झर, सबके ऊपर—जबतक न विलय
हो रजनीका, वह उठ भागे;
और उषाके साथ पड़ेगा उन सुर-सदृश मुखोंसे स्मित झर
प्रीति-पात्र जो मम चिर-दिनके जिनको खो बैठा इस क्षणपर ॥

—माधवशरण, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार-नियोजन और भारतीय संस्कृति

(संत विनोबा भावे)

परिवार-नियोजन—'फैमिली प्लैनिंग'में मैं अपने देश-का कल्याण नहीं देखता; बल्कि इसमें आध्यात्मिक और नैतिक मूल्योंकी हार है, ऐसा मैं मानता हूँ। इसके कई पहलू हैं—आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक। यह चीज ही ऐसी है कि बिल्कुल जीवनके केन्द्रमें खड़ी है। इसलिये यों ही सहज भाव-से कह देना कि 'हाँ भाई, जन-संख्या बढ़ रही है तो करो नियमन,' यह मुझे जँचता नहीं।

पृथ्वीको पापका भार, संख्याका नहीं

मैंने एक सूत्र बनाया है—'पृथ्वीको पापका भार है, संख्याका नहीं। संतान पापसे बढ़ सकती है, पुण्यसे भी बढ़ सकती है। संतान पापसे घट सकती है, पुण्यसे भी घट सकती है। पुण्य-मार्गसे संतान बढ़ेगी तो पृथ्वीको बोझ नहीं होगा। पुण्य-मार्गसे संतान घटेगी तो नुकसान नहीं होगा। पाप-मार्गसे संतान बढ़ेगी तो पृथ्वीको भार होगा और पाप-मार्गसे संतान घटेगी तो नुकसान होगा। यह मेरा अपना एक विचार है। इसलिये संतति-निरोधके जो कृत्रिम उपाय चलते हैं, उनको मैं मातृत्वकी विडम्बना कहता हूँ।

युद्धसे भी भयानक

आज मानव-समाजमें सेक्सका उधम मचाया जा रहा है। मुझे इसमें युद्धसे भी ज्यादा भय मालूम होता है। अहिंसाको हिंसाका जितना भय है, उससे ज्यादा काम-वासनाका है। हर जगह विज्ञानकी मदद ली जा रही है, लेकिन सेक्समें नहीं। आज समाजकी स्थिति ऐसी है कि सेक्समें भी साइंटिफिक अट्टियूड (वैज्ञानिक वृत्ति) की आवश्यकता पैदा हुई है।

वैज्ञानिक दृष्टि और संयम

परिवार-नियोजनका मतलब है—आत्मसंयम, अपनेपर काबू रखना। यह चीज नामुमकिन नहीं। विज्ञानके जमानेमें पहलेसे ज्यादा आसान होनी चाहिये। उस विषयका स्वरूप क्या है, परिवारका उद्देश्य क्या है, ब्रह्मचर्यकी साधना क्या होती है, उसमें कौन-सी शक्ति भरी है, इन बातोंका विज्ञानके जमानेमें प्रजाको अधिक स्वच्छ ज्ञान होगा। जितना पहले कभी नहीं था, उतना होगा। हममें एक ऐसी शक्ति है कि उसे ऊपर उठाया जा सकता है। जैसे दीपक या लालटेनकी प्रभा होती है; उसके लिये नीचेसे तेल सप्लाई होता है, तभी उसकी प्रभा, बत्ती, ज्योति अच्छी तरह चमकती है। मनुष्यके लिये 'ब्रह्मचर्य' तेल है और प्रज्ञाकी प्रभा, उसकी बुद्धिमत्ता उसका प्रकाश है। ब्रह्मचर्यके तेलकी सप्लाई उसे सतत मिलती रहे तो बुद्धिमत्ता तेजस्वी होती है। वह न रही तो बुद्धि ही कमजोर पड़ जाती है, बुद्धिकी प्रतिभा कम होती है।

देश तेजोहीन होगा

कृत्रिम उपायोंके अवलम्बनसे सिर्फ संतान ही नहीं रुकेगी, बुद्धिमत्ता भी रुकेगी। यह जो क्रिएटिव एनर्जी (सर्जक शक्ति) है, जिसे हम 'वीर्य' कहते हैं, उसीमेंसे वाल्मीकि-जैसे महाकवि पैदा हुए, महावीर हनुमान उसीमेंसे निकले। प्रतिभावान् पुरुष और तत्त्वज्ञानी उसीमेंसे निकले। उस निर्माण-शक्तिका मनुष्य दुरुपयोग करता है; अर्थात् संख्या-नियमन करके संतानको रोक लिया और उस शक्तिका दूसरी तरफ जो उपयोग हो सकता था, उसे विषय-उपभोगमें लगा दिया। विषय-वासनाका जो अङ्कुश रहता था, वह नहीं रहा। पति-पत्नी संतान उत्पन्न न हो, ऐसी व्यवस्था करके विषय-वासनामें व्यस्त रहेंगे तो उनके दिमागका कोई संतुलन नहीं रहेगा। ऐसी हालतमें देश तेजोहीन बनेगा। संतान कम होगी तो लाभ होगा, मानकर ये लोग उसे उत्तेजन देंगे। लेकिन सिर्फ संतान ही कम नहीं होगी, ज्ञान-तन्तु क्षीण होंगे, प्रभा कम होगी, प्रज्ञा कम पड़ेगी, तेजस्विता कम होगी।

पुरुषार्थ बढ़ायें

दुनियाका अनुभव है कि जब जीवनमें पुरुषार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ता है, तब विषय-वासना कम होती है। सबको अच्छी तरह पुरुषार्थ करनेका मौका मिलेगा तो स्वभावतः विषय-वासनापर नियन्त्रण हो जायगा। साथ ही हिंदुस्तानका पुरुषार्थ जितना बढ़ेगा, उतना ही पोषण-का इन्तजाम भी बढ़ेगा। जहाँ पोषण अच्छा नहीं मिलता, वहाँ भोग-वासना बढ़ती है। जानवरोंमें भी यह देखा गया है। शेरके बच्चे कम होते हैं, बकरीके ज्यादा। मजबूत जानवरोंमें विषय-वासना कम होती है और कमजोरमें ज्यादा। फिर कमजोरोंकी जो संतान पैदा होती है, वह भी निर्वीर्य या निकम्मी होती है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि यह विषय सामाजिक और आध्यात्मिक है; उससे खिलवाड़ न किया जाय। ऐसा वातावरण निर्माण किया जाय, जो संयमके अनुकूल हो। समाजमें पुरुषार्थ बढ़ायें, साहित्य सुधारें और गंदा साहित्य, गंदे सिनेमा रोकें।

चार आश्रमोंकी योजना

यह सब सोचते हुए ध्यानमें आयेगा कि हमारे पूर्वजोंने जो योजना बनायी थी, वह ठीक थी—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम। अगर ऐसी मर्यादा हम बनाते हैं तो उससे हमें लाभ होगा। गृहस्थाश्रमका पैमाना २५ सालकी उम्रसे ४५ तक २० सालका हो तो संतानका भी थोड़ा बहुत नियमन होना चाहिये। वह होगा तो लाभ ही लाभ मिलेगा और आध्यात्मिक शक्तियाँ भी मिलेंगी।

हमारे सामने एक आदर्श होना चाहिये कि इतने वर्षोंके बाद हम गृहस्थाश्रमसे निवृत्त होंगे। जैसे विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं, वैसे ही विधिपूर्वक गृहस्थाश्रमका विसर्जन होना चाहिये। इससे हम विषय-वासनासे मुक्त होते हैं।

'विषय-वासनासे मुक्ति सहज ही मिलेगी—ऐसे भ्रममें जो रहता है, वह स्वयं अपनी कब्र खोदता है'—ऐसा महाराज ययातिने कहा है। वे बूढ़े हो गये थे, लेकिन उन्हें वासना-तृप्ति नहीं हुई थी, इसलिये उन्होंने अपने बच्चोंसे जवानी माँगी। बच्चोंने दे दी। जवान होकर दुबारा भोग भोगा, लेकिन फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। फिर महाराज ययातिने अपना अनुभव श्रीमद्भागवतके एक श्लोकमें बता दिया—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
(९। १९। १४)

'कामके उपभोगसे काम-शक्ति कम नहीं होती। घीसे जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही वह बढ़ती चली जाती है।' चाहे शक्ति घट जाय, इच्छा बढ़ती ही रहती है। इसलिये उसको तोड़ना ही होता है। स्वायम्भुव मनुकी कथा तुलसीदासजीने रामायणमें दी है कि **'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन'**—बुढ़ापा आया, लेकिन विषय-वासना नहीं मिटी। मनुको बड़ा दुःख हुआ कि **'जन्म गयउ हरि भगति बिनु।'** तब उन्होंने क्या किया? **'बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा।**—जबरदस्ती राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया' और **'नारि समेत गवन बन कीन्हा।**—पत्नीके साथ वनमें प्रवेश किया।' ये तुलसी-रामायणके शब्द हैं। इस तरह अपने ऊपर, अपनी इन्द्रियोंपर, मनपर जबरदस्ती करनेका अधिकार पुरुषको होता है। उसका उपयोग उन्होंने किया और वनमें चले गये। सारांश यह कि विषय-वासना ऐसे ही टूटेगी। उसमेंसे हम छूटेंगे, ऐसा मानना बिलकुल गलत है।

विषय-वासनाकी एक मर्यादा होनी चाहिये। जब लोकमत होता है, तभी यह सम्भव होती है। और जिन्होंने यह वानप्रस्थाश्रमकी कल्पना निकाली, उन्होंने इस विषयमें लोकमत बनाया था। लेकिन वह लोकमत आज टूट गया, वानप्रस्थाश्रम खतम हो गया। गृहस्थाश्रम-की प्रतिष्ठा गयी। ऐसी हालतमें जो समाज रहता है, वह कैसे आगे बढ़ेगा? यह शोचनीय बात है। इसलिये वानप्रस्थकी बात करनी चाहिये।

जिस दिन चार आश्रमकी स्थापनाकी आशा मैं छोड़ूँगा, उस दिन हिंदू होनेका दावा भी छोड़ दूँगा। और कहना चाहिये कि यह सिर्फ हिंदुओंकी वस्तु नहीं है। मुहम्मदने भी लिखा है कि '४० सालके बाद मनुष्यका ध्यान भगवान्‌की ओर जाना चाहिये' और जाता है। उन्होंने ४०की मर्यादा मानी, जिसमें मनुष्यको विषय-वासनासे अलग होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

प्रेम मनकी चीज है। बोलने और न बोलनेसे प्रेम बढ़ता अथवा घटता हो, ऐसी बात नहीं है। आप अपने बाहरी व्यवहारमें ऐसी चेष्टा करें, जिससे घरवालों अथवा अन्य लोगोंको कोई उद्वेग उत्पन्न न हो और मनमें परस्पर निस्स्वार्थ और पवित्र प्रेम रखें। जिस प्रेममें मिलावटकी आवश्यकता है, वह तो प्रेम ही नहीं है।

❀ ❀ ❀

सत्सङ्गके पवित्र वातावरणमें रहकर ऊँचा-से-ऊँचा लाभ उठावें—यही कहना है। मनसे निरन्तर भगवान्का स्मरण, जीभसे आवश्यकताभर बात करनेके बाद निरन्तर नाम-जप तथा शरीरसे भगवद्रूप संतोंकी—समस्त प्राणियोंकी सेवा—यही सत्सङ्गका सच्चा लाभ है। इसमें कसर नहीं आने पावे।

❀ ❀ ❀

भगवान्के भक्तको किसी भी परिस्थितिमें निराश नहीं होना चाहिये। आप विश्वास रखें, मङ्गलमय प्रभुका प्रत्येक विधान मङ्गलसे भरा होता है—आप यह विश्वास अपने मनमें दृढ़ करें तथा अत्यन्त साहसपूर्वक अपने चित्तको शान्त करनेकी चेष्टा करें। उद्विग्नतासे कोई लाभ नहीं होता।

❀ ❀ ❀

भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार रखना चाहते हैं, उसीमें अतिशय प्रसन्न रहना चाहिये। आपकी कोई परिस्थिति बहुत प्रतिकूल दीखनेपर भी उसीमें आपका मङ्गल निहित है। प्रतिकूल-से-प्रतिकूल वातावरणको भगवान्का प्रसाद समझकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उसमें रहना चाहिये।

❀ ❀ ❀

आप व्रजमें निवास कर रहे हैं, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। व्रजमें रहते हुए भी आप बुखारके कारण भगवान्के रासके दर्शनसे वञ्चित हो गये, इससे मनमें व्यथा होनी स्वाभाविक है; पर यदि आप इस बुखारके तापको भगवद्विरहके तापमें बदल सकें तो रासका फिर ऐसा दर्शन हो जाय कि उसके बाद आपकी आँखें कुछ दूसरी वस्तुको देखेंगी ही नहीं। आप बड़े भाग्यवान् हैं कि बुखारकी अवस्थामें भी आपका मन श्रीरास-दर्शनके लिये तड़पता है। श्रीराधारानी ऐसी कृपा करें कि दर्शन भले मत हो, पर दर्शनके लिये तड़पन उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाय। रसिक प्रेमी भक्त मिलनसे भी अधिक वियोगको महत्त्व देते हैं। यह तो हुई पारमार्थिक दृष्टिकी बात। व्यावहारिक दृष्टिकी बात यह है कि चिन्ता तो बिल्कुल नहीं करनी चाहिये, पर यथायोग्य औषध एवं पथ्यका सेवन करना चाहिये। व्रजको छोड़कर अन्यत्र जानेकी सलाह तो मैं कदापि नहीं दे सकता।

❀ ❀ ❀

अनन्त सौभाग्यसे श्रीव्रजधाममें आप निवास कर रहे हैं। शरीर तो श्रीधाममें है ही, अब मनमें श्रीधाम बस जाय, इतनी भिक्षा आप राधारानीसे और माँगिये। अनन्त असीम अनुरागकी धारा निरन्तर श्रीधाममें प्रवाहित हो रही है। मनको उस धाराके सामने कर दें, फिर अपने-आप अनुरागका एक स्रोत मनमें प्रविष्ट हो जायगा तथा मन अनुरागमय होकर श्रीधामसे एकमेव हो जायगा। फिर देखेंगे—

आज गोपाल रास-रस खेलत
पुलिन कल्पतरु तीर री, सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत,
रोचक त्रिबिध समीर री, सजनी॥
चंपक बकुल मालती मुकुलित,
मत्त मुदित पिक-कीर री, सजनी।
लेत सुधंग राग-रागिनि कौ,
ब्रज जुवतिन को भीर री, सजनी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मघवा मुदित निसान बजायौ,
व्रत छाँड्यौ मुनि धीर री, सजनी ।
(जै श्री) हित हरिबंस मगन मन स्यामा,
हरत मदन धन पीर री, सजनी ॥

अधिक-से-अधिक नाम जपिये और श्रीकृष्णके भरोसे बैठे रहिये, इससे बढ़कर उत्तम सलाह मेरे पास है नहीं । और क्या बताऊँ ।

बस, निरन्तर प्रिया-प्रियतमकी स्मृति बनी रहे—यही करना है ।

समर्थ रामदास

(लेखक—श्रीरामलालजी)

संत समर्थ रामदासका भागवती शक्तिके मध्यकालीन व्याख्याकारोंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने महाराष्ट्रमें आध्यात्मिकताका—निर्गुण ब्रह्म और सगुण लीलामय ब्रह्मकी उपासनाका राष्ट्रीकरण किया । उन्होंने स्वराज्यका—संतमत-सम्मत शासन-परम्पराका शुद्ध तथा परम निर्मल स्वरूप समझाकर प्राणीमात्रको परमात्माकी ओर उन्मुख किया । उन्होंने कहा कि सबको जगदीशका भजन करना चाहिये । जब उपासना प्रकट हुई, तभी लोगोंकी समझमें यह बात आने लगी; ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये । सबके लिये उपासना ही बहुत बड़ा आसरा है । उसके बिना सब निराश्रय हैं । फिर चाहे कितने ही उपाय क्यों न किये जायँ, कार्य-सिद्धि नहीं हो सकती । जिसे समर्थका सहारा नहीं होता, उसे जो चाहे वही कूट-मार सकता है । उठते-बैठते ईश्वरका ही भजन करना चाहिये । भजन-साधन और अभ्याससे ही परलोक मिलता है । दासका कथन है कि इस बातका मनमें विश्वास रखना चाहिये—

समजणें जें विवेकाचें । तेंहि आत्म्याविण कैंचें ।
कोणीयेकें जगदीशाचें । भजन करावें ॥
उपासना प्रकट जाली । तरी हे विचारणा कळली ।
याकारणें पाहिजे केली । विचारणा देवाची ॥
उपासनेचा मोठा आश्रयो । उपासनेविण निराश्रयो ।
उदंड केलें तरी तो जयो । प्राप्त नाहीं ॥
समर्थाची नाहीं पाठी । तयास भलताच कुटी ।
याकरणें उठाउठी । भजन करावें ॥
भजन साधन अभ्यास । येणें पाविजे परलोकास ।
दास म्हणे हा विश्वास । धरिला पाहिजे ॥
(दासबोध १६ । १० । २७–३१)

महाराष्ट्रमें श्रीहनुमान्‌के अवतारके रूपमें घर-घरमें समर्थ रामदासकी पूजा होती है । वे दशरथनन्दन राघव राजा रामके परम भक्त थे । उन्होंने मौलिक ढंगसे रामका चिन्तन किया । उनका कथन है—

सकळ जनामधें नाम । रामनाम उत्तमोत्तम ।
श्रम जाउनी विश्राम । चन्द्रमौळी पावला ॥
(दासबोध १६ । ८ । ३)

आशय यह है कि 'रामका नाम सब नामोंमें श्रेष्ठ है । उसीसे चन्द्रमौलि शिवका कष्ट दूर हुआ और उन्हें विश्राम मिला ।' 'मनाचे श्लोक'में संतसमर्थकी स्वीकृति है कि जिसके मुखमें राम रहते हैं, उसे उन्हींमें विश्राम मिलता है, वह अखण्ड आनन्दस्वरूपका भागी होता है । राम-नामके सिवा सब कुछ संशयजनक और थकावट देनेवाला है । नाम दुःखहारी परमात्माका धाम है—

मुखीं राम विश्राम तेथेंचि आहे । सदानंद आनंद सेऊनि राहे ।
तयावीण तो शीण संदेहकारी । निजधाम हें नाम शोकापहारी ॥
(मनाचे श्लोक ८६)

जिस समय देवदुर्लभ परम पवित्र भारतभूमिमें विदेशी शासकोंकी धार्मिक कट्टरता अपनी पराकाष्ठापर थी, कुराज्यका बोलबाला था, भारतीय संस्कृतिका गौरवमय भविष्य-अन्धकारके सीकचोंमें तड़प रहा था, उस समय महाराष्ट्रमें भागवत दूतके रूपमें ईश्वरीय संदेशका प्रचार करनेके लिये, धरतीपर रामराज्यका अवतरण सम्भव करनेके लिये समर्थ रामदासका प्राकट्य हुआ । निस्संदेह वे समर्थ रामके दास थे । उन्होंने स्वराज्यके संस्थापक महाराज छत्रपति शिवाजीसे तथा भारतीय जनतासे कहा कि 'जब धर्मकी ग्लानि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाय, तब जीनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है। धर्मके समाप्त होनेपर जीवित रहनेका कोई अर्थ नहीं है।' उन्होंने महाराज शिवाजीसे कहा—'मराठोंको एकत्र कीजिये, धर्मको फिर जीवित कीजिये, हमारे पूर्वज, पितर स्वर्गसे हमारे ऊपर हँस रहे हैं।' समर्थ रामदासने समस्त भारत-भूमिको उस समय धार्मिक जागरण प्रदान किया, धर्मराज्यकी स्थापनाका शुभ संदेश दिया।

संत समर्थ रामदासने प्राणोंकी बाजी लगाकर स्वदेश और स्वधर्म तथा स्वराज्यपर सर्वस्व निछावर करनेका पाठ पढ़ाया। उनका उदय-काल विक्रमीय सत्रहवीं शतीका तीसरा चरण था। उस समय दिल्लीके सिंहासनपर औरंगजेबका आधिपत्य था। समर्थ रामदासने धार्मिक क्रान्तिका सृजन किया। उनका धर्म भागवतधर्म था, सद्धर्म था। समर्थ युगपुरुष थे। उनके सत्प्रयत्नोंसे भारतीय संस्कृति यथास्थान रह सकी। उन्हें धार्मिक या आध्यात्मिक क्रान्ति करनी नहीं पड़ी; वह अपने आप हो गयी। उन्होंने सामाजिक और धार्मिक रीति-नीतिमें संतुलन सम्भव किया। उन्होंने दोनोंका वैष्णवीकरण किया, वैष्णव धर्म-वैष्णव समाज—भागवत धर्म-भागवत समाजको मान्यता दी।

समर्थ रामदासके पूर्वज बड़े भगवन्निष्ठ और धर्मपरायण थे। उनका कुल परम भागवत था। हैदराबादके औरंगाबाद जनपदके आवन्द नामक मण्डलके जाम्ब गाँवमें उनके मूल पुरुष कृष्णाजी पन्त आकर बस गये थे। समर्थ रामदासके पिता सूर्याजी पन्त थे। वे भगवान् सूर्यके भक्त थे। उनकी माता रेणुबाई भी सती-साध्वी और धर्ममें अमित रुचि रखनेवाली थीं। सूर्याजी पन्तने छत्तीस सालतक भगवान् सूर्यकी उपासना की थी; उनके वरदानसे उन्हें दो पुत्र हुए। पहले पुत्रका नाम गंगाधर—रामी रामदास था। दूसरे पुत्रने संवत् १६६५ वि०में चैत्र रामनवमीको ठीक दोपहरके समय जन्म लिया। उनका नाम 'नारायण' रखा गया। वे ही चरितनायक रामदासके रूपमें प्रसिद्ध हुए।

एक बार उनके माता-पिता उन्हें महात्मा एकनाथका दर्शन करानेके लिये पैठण ले गये। एकनाथजीने देखते ही कहा कि 'ये हनुमानजीके अंशसे प्रकट हुए हैं; बहुत बड़े महात्मा होंगे।'

समर्थ रामदासका पालन-पोषण धार्मिक वातावरणमें हुआ। वे बचपनमें बड़े चञ्चल स्वभावके थे। खेल-कूदमें ही उनका अधिकांश समय बीतता था। नदीके तटपर घूमना, पहाड़के शिलाखण्डोंपर चढ़ना-उतरना तथा वृक्षोंपर झूला झूलना ही उनका काम था। पाँच सालकी अवस्थामें उनका उपनयन-संस्कार हो गया। पिताकी मृत्यु हो गयी। शिक्षा-दीक्षापर रेणुबाईने ध्यान रखा। उनकी कृपामयी वत्सलतासे रामदासमें शील, संयम और सदाचार आदि बढ़ने लगे। सूर्यदेवको नित्य वे दो हजार नमस्कार करते थे। हनुमानजीके प्रति उनके मनमें सहज अनुराग था। उनका निश्चय था कि हनुमानजी ही मेरे गुरु हों। वे अपने गाँवके हनुमान-मन्दिरमें जाकर ध्यान करने लगे। उनका दृढ़ व्रत था कि जबतक हनुमानजीका दर्शन नहीं होगा, तबतक मैं अन्न-जल—कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा। हनुमानजीने उनकी निष्ठासे प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया; स्वयं श्रीरामने भी दर्शन दिया कि 'धर्मका प्रचार करो, लोक-कल्याण करो।' श्रीरामने उनका नाम नारायणसे रामदास रखा।

जब नारायण (रामदास) की अवस्था बारह सालकी हुई, माँने उनका विवाह करनेका निश्चय किया। विवाहकी बात सुनते ही वे उदास हो जाते थे। एक दिन तो विवाहकी चर्चा छिड़ते ही घरसे भाग निकले और दो-तीन दिनोंतक कहीं छिपे रहे। माताके समझानेपर कहा कि 'बड़े भाईने तो विवाह कर ही लिया है, वंश चलते रहनेका निश्चय तो हो ही गया है; अब मेरे लिये विवाहकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी है।' बहुत कहने-सुननेपर वे विवाहके लिये प्रस्तुत हो गये। माँने कहा कि 'जबतक अन्तरपटका संस्कार समाप्त न हो जाय, तबतक विवाहसे इंकार मत करना।' रामदासने बात मान ली। उनका विवाह आसन-नामक गाँवमें निश्चित हो गया। वे सजकर मण्डपमें बैठे थे। ब्राह्मणोंने वर-वधूके बीच अन्तरपटवाला विधान सम्पन्न करना चाहा। उसके समाप्त होते ही पण्डितोंने कहा—'शिवमङ्गल! सावधान।' रामदासके अन्तश्चक्षु खुल गये। उन्होंने सोचा कि मैं तो सावधान हूँ ही, पर यदि ब्राह्मण सावधान होनेकी चेतावनी देते हैं तो इसका कोई-न-कोई विशेष अर्थ अवश्य है। उन्होंने ब्राह्मणोंसे रहस्य पूछा तो वे बोल उठे कि 'अब तुम गृहस्थीकी बेड़ीमें जकड़ गये, इसलिये सावधान हो जाओ।' रामदास सावधान हो गये। वे उसी समय विवाह-मण्डपसे भाग चले। गोदावरीके तटपर पहुँचकर कहा कि 'माँ! मुझे अपनी गोदमें लेकर उस पार उतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीजिये। आप पुण्यसलिला हैं, पापताप-संहारिणी हैं, असहाय-की रक्षा कीजिये।' वे गोदावरीकी धारामें कूद पड़े, तैरकर उस पार राघवेन्द्र और भगवती सीताकी तपोभूमि पञ्चवटीमें पहुँच गये। पञ्चवटीमें उन्हें साक्षात् श्रीरामका दर्शन हुआ। उन्होंने करुणापूर्ण मार्मिक वाणीमें भगवान्‌का स्तवन किया। इस घटनाके बाद उन्होंने तपस्याका जीवन आरम्भ किया। वे गोदावरी और नन्दिनीके संगमवाले तटपर टाकली-नामक एक गाँवकी गुफामें निवास कर तप करने लगे। वे रातके पिछले पहरसे ही उठकर श्रीरामका चिन्तन करते थे। दोपहरतक नदीमें स्थिर होकर 'श्रीराम जय राम जय जय राम' मन्त्रका अनुष्ठान करते थे। अड़ोस-पड़ोससे मधुकरी माँगकर भगवान्‌को समर्पित करके प्रसाद पाते थे। तपसे उनका शरीर तेजोमय हो उठा। मुखमण्डलपर दिव्य प्रकाश छा गया। उन्होंने टाकलीमें तीन सालतक कठोर तप किया। एक दिन उपर्युक्त संगमपर वे अनुष्ठान कर रहे थे। एक युवतीने उनको प्रणाम किया। संतने 'अष्टपुत्रसौभाग्यवती भव' आशीर्वाद दिया। स्त्री आश्चर्यचकित हो गयी। उसने कहा कि 'महाराज! मैं तो विधवा हूँ; मेरे पतिकी मृत्यु हो गयी है। मैं सती होने जा रही हूँ। कुल-परम्पराके अनुसार चितामें चढ़नेके पहले आपसे आशीर्वाद लेने आयी थी।' संत समर्थने स्त्रीके पतिके शवपर गोदावरीका पवित्र जल छिड़का, रामनामका स्मरण किया। वह जीवित हो उठा। उसने उनकी चरणधूलि मस्तकपर चढ़ाकर कहा कि 'मैं आपके दर्शनसे धन्य हो गया। आपने मुझे मृत्युके हाथसे छुड़ा लिया। मेरा नाम गिरिधर पन्त है। यह मेरी पत्नी अन्नपूर्णा बाई है।' समर्थने कहा कि 'पहले मैंने आठ संतान होनेकी बात कही थी, भगवान्‌की कृपासे दस संतानकी प्राप्ति होगी।' गिरिधर पन्तने अपने पहले पुत्र उद्धव गोस्वामीको समर्थके चरणोंपर समर्पित किया था। वे उनके प्रधान शिष्य थे। संत समर्थने बारह सालतक टाकलीमें तप किया। उसके बाद भगवान् श्रीरामके आदेशसे वे तीर्थयात्रा और भागवत धर्मके प्रचारके लिये निकल पड़े।

समर्थ रामदासने काशी, अयोध्या, गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, श्रीनगर, बदरीनारायण, केदारेश्वर, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर आदिकी यात्रा की; संतोंका समागम-लाभ किया। गोकर्ण, महाबलेश्वर, शेषाचल, शैलमल्लिकार्जुन, पञ्चमहालिङ्ग, किष्किन्धा, पम्पासरोवर, परशुराम-क्षेत्र तथा पंढरपुर होते हुए वे पञ्चवटी पहुँच गये। उन्होंने इस तीर्थ-यात्रा-कालमें अनेक मठ स्थापित किये, श्रीराम और हनुमानजीके मन्दिरोंका निर्माण कराया। इस प्रकार बारह सालकी तीर्थयात्रामें उन्होंने देश-कालकी परिस्थितिका अनुभव कर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अभ्युत्थानका महामन्त्र जगाया। उन्होंने धर्मका सारतत्त्व समझाकर देशको श्रीराघवेन्द्रके राज्यादर्शका मर्म बताया, धर्माचरणका पवित्र संदेश दिया।

उन्होंने गोदावरीकी परिक्रमा आरम्भ की। वे एक दिन एकनाथ महाराजकी समाधिका दर्शन करने पैठण गये। लोगोंने उनको पहचान लिया। कहा कि 'आपकी माताकी नेत्र-ज्योति चली गयी। वे आपको देखनेके लिये रोते-रोते अन्धी हो गयी हैं।' समर्थ माताके दर्शनके लिये चल पड़े। जाम्बमें अपने द्वारपर पहुँचते ही उन्होंने 'जय जय रघुवीर समर्थ' की आवाज लगायी। भावज भिक्षा देने आयी तो संत समर्थने कहा कि 'यह साधु केवल भिक्षा लेकर ही लौटनेवाला नहीं है।' माताने उनकी आवाज पहचान ली। वे 'नारायण-नारायण' पुकारती बाहर आ गयीं। माताकी चरण-धूलि लेनेके बाद समर्थने उनके नेत्रोंपर हाथ फेरा, ज्योति लौट आयी। माँने पूछा कि 'तुमने किस जादूगरको वशमें किया है?' समर्थने कहा कि 'माँ! मैंने अयोध्या और मथुरा-वृन्दावनमें लीला करनेवालेको वशमें किया है।' घरमें आनन्द छा गया। बड़े भाईने उनको देखते ही गले लगा लिया। माताके आग्रहसे वे कुछ दिन घरपर ठहर गये। चलते समय उन्होंने माँको 'कपिलगीता' सुनायी, जिसको भगवान् कपिलने देवहूतिको सुनाया था। इस प्रकार आत्मबोध देकर वे गोदावरीकी परिक्रमामें प्रवृत्त हुए। उसके बाद पञ्चवटी आकर श्रीरामचन्द्रका दर्शन किया। उन्होंने टाकलीकी यात्रा की। टाकलीमें उनसे उद्धव गोस्वामी मिले। इस प्रकार बारह साल तपस्या और बारह साल यात्रामें लगाकर वे कृष्णा नदीके तटपर आ गये। कृष्णा नदीके उद्गम महाबलेश्वर क्षेत्रमें रहकर उन्होंने धर्म-प्रचार किया। चार मासके बाद वे कृष्णा और वेणा नदीके संगमपर माहुली क्षेत्रमें आकर रहने लगे। बड़े-बड़े साधु-संत उनका सत्सङ्ग करने लगे। उनके शिष्योंकी संख्या वेगसे बढ़ने लगी। तुकारामजी महाराजका भी उनसे सत्सङ्ग हुआ था। कुछ दिनोंके बाद वे शाहपुरके निकट एक पहाड़ी गुफामें एकान्त-सेवन करने लगे। बड़े-बड़े सामन्तों और राजाओं-महाराजाओंने अपने आपको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत समर्थ अधिकांश रूपमें चाफलमें रहते थे। कभी-कभी देशके विभिन्न भागोंमें परिभ्रमण भी कर लिया करते थे। एक बार पंढरपुरमें उनकी श्रीतुकाराम महाराजसे भी भेंट हुई थी। यह मिलन अध्यात्म और इतिहास—दोनों-की दृष्टिसे अमित गौरवपूर्ण है। दोनोंने भगवती भीमाके तटपर एक-दूसरेका साक्षात्कार-लाभ किया। तुकारामजी उन दिनों पंढरपुरमें थे। उन्होंने पंढरीनाथके दर्शनके लिये संत समर्थका आगमन सुनकर स्वागतके लिये अपने शिष्योंके साथ भीमाके तटकी ओर प्रस्थान किया। समर्थ भीमाके उस किनारेपर थे। दोनोंने एक-दूसरेको दोनों तटोंसे देखा। तुकाराम जोर-जोरसे रोने लगे और संत समर्थ हल्ला मचाने लगे, जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। शिष्यों तथा दर्शनार्थियोंकी समझमें यह बात तनिक भी न आ सकी। जिज्ञासा प्रस्तुत करनेवालोंसे तुकारामने कहा कि 'मैं अपनी आँखोंमें आँसू भरकर संसारके लोगोंको समझा रहा था कि विनाशशील संसार और उसकी भौतिकताका त्याग कर भगवान्‌के भजनमें लग जायँ, लेकिन मेरी बात कोई सुनता ही नहीं।' समर्थ रामदासने कहा कि 'मैं संसारके लोगोंसे जोर-जोरसे यही कह रहा था कि भौतिक समृद्धि-वृद्धिके लिये वे जिस रास्तेपर चल रहे हैं, वह व्यर्थ और गलत है; पर मेरी भी कोई नहीं सुनता।' रामदासजीने संत तुकारामसे कहा कि 'आपके अश्रुका इस जागतिक प्रपञ्चमें मूल्य ही क्या है। मेरी आवाज भी सांसारिक जीवनमें आसक्त लोगोंके शोरगुलमें दब गयी है।' दोनों-के-दोनों एक-दूसरेकी आध्यात्मिक सिद्धियोंके प्रति अमित आकृष्ट थे।

संत समर्थ और छत्रपति शिवाजीका मिलन भी तत्कालीन इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उस समय महाराष्ट्रमें संत तुकारामकी प्रसिद्धि बहुत बढ़ रही थी। शिवाजी महाराजने उनको अपना गुरु बनाना चाहा था। पर तुकारामजीने बड़ी विनम्रतासे समर्थ रामदासके लिये सम्मति दी। शिवाजी संत समर्थके दर्शनके लिये बड़े उत्सुक थे। उनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था। एक ही स्थानपर वे कभी स्थायी रूपसे नहीं रहते थे। इधर-उधर घूमते रहते थे। महाराजने एक पत्र लिखकर उनसे पथ-प्रदर्शनका आग्रह किया था। संवत् १७०६ वि०के लगभग चाफलके समीप शिंगणवाड़ीमें एक गूलरके पेड़के नीचे बैठे हुए संत समर्थका शिवाजी महाराजको दर्शन हुआ। वे उस समय उन्हींका पत्र पढ़ रहे थे। समर्थ रामदासजीने शिवाजीकी विशेष श्रद्धा देखकर उनको शिष्य-रूपमें स्वीकार कर लिया और धर्मपूर्वक राज्य करनेका सदुपदेश दिया। इस घटनाके बाद समर्थ रामदासने कुछ दिनोंतक पार्लीमें निवास किया। पार्लीका नाम सज्जनगढ़ हो गया। संवत् १७१२ वि०के लगभग महाराज शिवाजी साताराके किलेमें निवास कर रहे थे। एक दिन कुछ शिष्योंके साथ भिक्षा माँगते हुए समर्थ सतारा पहुँच गये। किलेके द्वारपर पहुँचते ही उन्होंने 'जय जय समर्थ रघुवीर'का जयघोष किया। शिवाजी महाराजने एक पत्र लिखवाकर उनकी झोलीमें डाल दिया। पत्रमें लिखा था कि 'आजसे मेरा समस्त राज्य पूज्य गुरुदेवका है।' संत समर्थने शिवाजीकी परीक्षा ली—आप क्या करेंगे।' उन्होंने कहा—'मैं आपके पीछे-पीछे घूमूँगा।' शिवाजीने उनके साथ कंधेपर झोली रखकर भिक्षा माँगी। समर्थने समझाया कि 'आपका धर्म है—राजकार्य करना।' उन्होंने सद्गुरुतत्त्वपर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'जो ब्रह्मज्ञानका उपदेश करे, अज्ञानका अन्धकार नष्ट करे, जीवात्माका परमात्माके साथ संयोग करावे, जीवत्व और शिवत्वके कारण ईश्वर और भक्तमें होनेवाला भेद दूर करे, परमेश्वरसे भक्तको मिलावे, वही सद्गुरु है'—

जो ब्रह्मज्ञान उपदेसी। अज्ञानअंधारें निरसी ॥
जीवात्मयां परमात्मयांसी। ऐक्यता करी ॥
बिघडले देव आणी भक्त। जीवशिवपणें द्वैत ॥
तया देवभक्तां येकांत। करी तो सद्गुरु ॥

(दासबोध ५ । २ । ९-१०)

शिवाजीने सिंहासनपर संत सद्गुरुदेवकी चरण-पादुका रखकर राज्य करना आरम्भ किया; धर्मराज्यकी स्थापना हुई। उन्होंने गुरुके प्रति आदर दिखानेके लिये ध्वजाका भगवा रंग कर दिया। शिवाजीने उनकी छत्रछायामें भागवत धर्म स्वीकार कर स्वराज्य-व्रतका पालन किया। संत समर्थ-ने समझाया कि 'देव-मन्दिर विदेशी शासनद्वारा भ्रष्ट हो रहे हैं, सज्जन उत्पीड़ित किये जा रहे हैं, धर्म और संस्कृति खतरेमें हैं। हे वीर! भारतभूमिका संरक्षण कीजिये। आप धर्मको बचाइये, उसकी रक्षा कीजिये। ईश्वरके भक्तोंकी सदा विजय होती है।' समर्थ रामदासके संकेतपर शिवाजी सर्वस्वकी बाजी लगा देनेमें आत्मगौरव समझते थे। संत समर्थने जनताको स्वराज्यका वास्तविक रूप समझाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने स्वराज्यका तात्पर्य आत्मनिष्ठामें प्रतिष्ठित किया। स्वराज्य अथवा आत्मराज्यका रहस्य संतोंसे ही जाना जाता है। निराकार आत्मा ही शाश्वत सत्य है। उस आत्माका किसीको पता नहीं चलता। विना ज्ञानके उसका आकलन नहीं होता। उसके सम्बन्धमें संतोंसे पूछना चाहिये—

शाश्वत आत्मा निराकार। सत्य जाणावा ॥
तो आत्मा कोणास कळेना। ज्ञानेंविण आकळेना ॥
म्हणोनियां संतजना। विचारावें ॥

(दासबोध १३। ६। ११-१२)

संत समर्थ अच्छी तरह समझते थे कि 'स्व'पर राज्य करनेके लिये सात्त्विकता और धर्माचरणकी बड़ी आवश्यकता है। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि भारतीय स्वराज्य और धर्मका संरक्षण संत ही कर सकते हैं। संत समर्थ रामदासकी कृपासे लोगोंमें आत्मचेतना जागरित हो उठी। उन्होंने लगभग सात सौ मठोंकी स्थापना कर देशको आत्मज्योति, सांस्कृतिक गौरव और धर्मराज्यसे सम्पन्न किया। उन्होंने जनताको संत-मतका स्वरूप समझाया। महाराजने कहा कि 'साधुका मुख्य लक्षण यह है कि वह सदा अपने स्वरूपका अनुसंधान करता रहता है। ज्यों ही उसकी दृष्टि स्वरूपपर पड़ती है, त्यों ही उसकी सांसारिक चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं और अध्यात्म-निरूपणके प्रति ममता उत्पन्न होती है।'

सदा स्वरूपानुसंधान। हें मुख्य साधूचें लक्षण ॥
जनीं असोन आपण। जनावेगळा ॥
स्वरूपीं दृष्टी पड़तां। तुटोन गेली संसारचिंता ॥
पुढें लागली ममता। निरूपणाची ॥

(दासबोध ८। ९। ९-१०)

उन्होंने स्वराष्ट्र—भारतदेशको भगवान् रामकी भक्तिसे सम्पन्न किया। उन्होंने कहा कि 'जिसने मद, मत्सर और स्वार्थका त्याग कर दिया है, जिसे सांसारिक बन्धन नहीं है, जिसकी वाणी नम्र और मधुर है, वही रामका सच्चा सेवक अथवा भक्त है। पृथ्वीपर उसका जीवन धन्य है।' उन्होंने श्रीरामचन्द्रकी भक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ और परम श्रेयस्कर स्वीकार किया; आत्मस्वरूपस्थ रहनेकी ही सीख दी। उनकी सरस उक्ति है—

घनश्याम हा राम लावण्यरूपी। महाधीर गंभीर पूर्ण प्रतापी ॥
करी संकटीं सेवकांचा कुडावा। प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा ॥

(मनाचे श्लोक ६७)

'श्रीराम नीले बादलके समान सुन्दर हैं। वे बड़े गम्भीर, धीर और प्रतापी हैं, संकट-कालमें भक्तकी रक्षा करते हैं। हे मन! प्रभात कालमें उन्हींका स्मरण करो।'

श्रीरामको ही उन्होंने परम शक्तिमान् स्वीकार किया, संतोंका उपास्य बताया। उन्होंने कहा कि 'जिस मनुष्यके मुखसे राम-नाम-मन्त्रका उच्चारण नहीं होता, वह संसारमें बहुत बड़ी हानि उठाता है। जिसका जीवन व्यर्थ है, उसीको राम-नाममें रस नहीं मिलता। भगवन्नाम ही परम श्रेष्ठ है, यह वेद और शास्त्र तथा व्यासजीका मत है।' हमें इसीका आश्रय लेना चाहिये। यह सर्वथा सत्य है।' संत समर्थने वर्णाश्रम-धर्ममें बड़ी निष्ठा प्रकट की। आत्मकल्याण और लोकहितको सत्य और आत्माकी ज्योतिसे समृद्ध कर समर्थ रामदासने अपने संतपनकी रक्षा की। महाराजने कहा कि 'भगवान्‌को जाननेवाला ही संत कहलाता है और वही शाश्वत तथा अशाश्वतका निर्णय करता है। जिसने मनमें समझ लिया है कि "ईश्वर अचल हैं, उसको महानुभाव तथा संत और साधु समझना चाहिये।"

जो जाणेल भगवंत। तया नांव बोलिजे संत ॥
जो शाश्वत आणि अशाश्वत। निवाडा करी ॥
चळेना ढळेना देव। ऐसा ज्याचा अँतर्भाव ॥
तोचि जाणि चे माहानुभाव। संत साधु ॥

(दासबोध ६। १। १६-१७)

संत समर्थने भगवान् रामकी भक्तिके बलपर सत्य-धर्मका संरक्षण किया; संतका कर्तव्य निबाहा। उन्होंने भगवद्भक्तिकी व्याख्यामें कहा कि 'भगवच्चरणकी शरणागति ही श्रेय है, मृत्युपर विजयकर अमरताका वरण करना ही आत्मचिन्तनका परम रहस्य है। आत्मचिन्तनसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं, समाजका कल्याण होता है, प्राणियोंको सुख मिलता है।' महाराजका कथन है कि 'जिन लोगोंके पास पूर्वजन्मकी संचित यथेष्ट पुण्य-सामग्री होती है, वे ही भगवद्भक्ति कर सकते हैं। जो जैसा करता है, वह वैसा फल पाता है।'

पुण्यसामग्री पुरती। तयासीच घडे भगवद्भक्ती ॥
जे जे जैसें करिती। ते पावती तैसेंचि ॥

(दासबोध २। ४। २७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत समर्थ रामदासने रामभक्तिको ही परमगति स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि 'राम राघवका रूप आकाशके समान है। उनके रूपका चिन्तन करते रहनेसे भवका जडोन्मूलन हो जाता है, संसारका अस्तित्व समाप्त हो जाता है—देहभाव मिट जाता है। मन उन्हींको सदा देखना चाहता है; उसे कभी तृप्ति मिलती ही नहीं'—

नभासारिखें रूप या राघवाचें। मनीं चिंतितां मूळ तूटे भवाचें॥
तया पाहतां देहबुद्धि उरेना। सदा सर्वदा आर्त पोटीं पुरेना॥
(मनाचे श्लोक १९७)

महाराजने भगवान्के कीर्तनपर बड़ा जोर दिया। उन्होंने कीर्तनको कलियुगका धर्म कहा। कीर्तनके स्वरूपका बड़ा ललित वर्णन उन्होंने 'दासबोध'में किया है। 'कलियुगमें भगवान्का कीर्तन करना चाहिये। वह कीर्तन केवल कोमल शब्दोंमें कुशलतापूर्वक करना चाहिये। कठोर, कर्कश और बुरी बातें एकदम छोड़ देनी चाहिये। कीर्तनके द्वारा संसारके सब झगड़ों-बखेड़ोंका अन्त कर देना चाहिये। खलोंसे झगड़ा नहीं करना चाहिये, न झूठी-सच्ची बातोंसे अपनी शान्ति भङ्ग होने देनी चाहिये'—

कलयुगीं कीर्तन करावें। केमळ कोमळ कुशळ गावे॥
कठीण कर्कश कुटें सांडावे। येकीकडे॥
खटखट खुंट्टून टाकावी। खळखळ खळांसीं न करावी॥
खरें खोटें खवळों नेदावीं। वृत्ती आपुली॥
(दासबोध १४।४।१-२)

संत समर्थने भगवान्की भक्ति सुदृढ़ करनेके लिये शास्त्रोंको मथकर तथा आत्मानुभूतिका प्रश्रय लेकर 'दासबोध', 'मनाचे श्लोक' आदि आध्यात्मिक काव्योंके रूपमें भागवत वाङ्मय—दिव्य अध्यात्म-साहित्य प्रदान किया। उन्होंने कविताकी सार्थकतापर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'कविता शब्दरूपी फूलोंकी माला है और उसमेंसे अर्थरूपी सुगन्धित परिमल निकलता है, जिससे संतरूपी भ्रमर आनन्द प्राप्त करते हैं।'

कवित्व शब्द-सुमनमाला। अर्थ परिमळ आगळा॥
तेणें संतषट्पदकुळा। आनन्द होये॥
(दासबोध १४।३।१)

संत समर्थ रामदासने गृहस्थ, संन्यासी, विरक्त और भक्तके लिये भक्तिका ही मार्ग उत्तम बताया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'भगवान् केवल भक्तिभावके भूखे हैं। वे भक्ति देखकर भूल जाते हैं और भक्तकी संकटसे रक्षा करते हैं। जिसे भगवान्से प्रेम होता है, उसकी भगवान् भी चिन्ता रखते हैं और अपने दासके समस्त सांसारिक दुःख दूर करते हैं। जो लोग ईश्वरके समीप पहुँच जाते हैं, वे आत्मानन्दका भोग करते हैं। ऐसे लोग धन्य हैं'—

भगवंत भावाचा भुकेला। भावार्थ देखोन भुलला॥
संकटीं पावे भाविकाला। रक्षितसे॥
जयास भगवंत आवडे। तयाचें देवांसीं सांकडें॥
संसारदुःख सकळ उडे। निज दासाचें॥
जे अंकित ईश्वराचे। तयास सोहळे निजसुखाचे॥
धन्य तेचि दैवाचे। भाविक जन॥
(दासबोध ३।१०।१०-१२)

उन्होंने कहा कि 'धर्म भगवद्भक्तिसे ही सुरक्षित रह सकता है। भक्ति ही आत्माका धर्म है, इसलिये प्राणीमात्रके लिये भगवान् ही—राम ही सेव्य हैं; उपास्य और आराध्य हैं।' महाराजने मनको प्रबुद्ध किया कि 'हे मन! भगवत्कीर्तनमें रामका प्रेम धारण करना चाहिये, निरूपण करते समय देहका विस्मरण कर देना चाहिये। परधन और परस्त्रीकी कामनाका त्याग करना चाहिये'—

हरीकीर्तनीं प्रीति रामीं धरावी। देहेबुद्धि निरूपणीं वीसरावी॥
परद्रव्य आणीक कांता परावी। यदर्थीं मना सांडि जीवीं करावीं॥
(मनाचे श्लोक १०३)

समर्थ रामदासका 'दासबोध' भक्तिशास्त्र है, स्वराज्यका साहित्य है, आत्माका भागवत काव्य है। 'दासबोध'के अक्षर-अक्षरमें परमात्माकी भक्ति अङ्कित है। उसमें राष्ट्रीय जागरणके महामन्त्रकी—स्वराज्य-मन्त्रकी व्याख्या संतवाणीमें की गयी है। 'दासबोध' मध्यकालीन संत-साहित्यके उज्ज्वलतम रूपके परिचायकोंमेंसे एक है। आत्माराम, पञ्चमान, मानपञ्चक, पञ्चीकरणयोग आदि उनके अन्य ग्रन्थ हैं।

संत समर्थ रामदासने राष्ट्रीय जागरणका मूलाधार परमात्माके अन्वेषणमें—सत्यके अनुसंधानमें स्थिर किया। उन्होंने कहा—

जगीं पाहतां साच तें काय आहे।
अतीआदरें सत्य शोधूनि पाहे॥
पुढें पाहतां पाहतां देव जोडे।
भ्रम भ्रांति अज्ञान हें सर्व मोडे॥
(मनाचे श्लोक १४४)

आशय यह है कि संसारमें बड़ी सावधानीसे सत्यकी खोज करनी चाहिये। ऐसा करनेपर ईश्वरकी प्राप्ति होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, भ्रम-भ्रान्ति और अज्ञानका अन्त हो जाता है। महाराजका कथन है कि 'अनन्त जन्मोंका पुण्य संचित होनेपर ही परमार्थका साधन होता है और स्वयं परमात्माका अनुभव होता है। जिसने परमार्थको पहचाना, उसने अपना जन्म सार्थक कर लिया। और नहीं तो उस पापीने कुलका क्षय करनेके लिये ही जन्म लिया। जो बिना भगवान्‌को प्राप्त किये संसारका काम करता है, उस मूर्खका कभी मुख भी नहीं देखना चाहिये। अच्छे लोगोंको उचित है कि परमार्थकी सिद्धि करते हुए अपना शरीर सार्थक करें और ईश्वरकी भक्ति कर अपने पूर्वजोंका उद्धार करें'—

अनंत जन्मीचें पुण्य जोडे। तरीच परमार्थ घडे॥
मुख्य परमात्मा आतुडे। अनुभवासी॥
जेणें परमार्थ वोळखिला। तेणें जन्म सार्थक केला॥
येर तो पापी जन्मला। कुलक्षयाकारणें॥
असो भगवत्प्राप्तीविण। करी संसाराचा सीण॥
त्या मूर्खाचें मुखावलोकन। करूंच नये॥
भल्यानें परमार्थीं भरावें। शरीर सार्थक करावें॥
पूर्वजांस उद्धरावें। हरिभक्ती करूनी॥

(दासबोध १। ९। २४-२७)

संत समर्थके सहस्रों शिष्य थे। उनमें कल्याणस्वामी और उद्धव गोस्वामी प्रधान थे। कल्याणस्वामी प्रायः उन्हींके साथ रहा करते थे। उनके बनाये लेख, भजन तथा उपदेश लिपिबद्ध कर लिया करते थे। दत्त, अकाबाई और वेनुबाईकी गणना विशेष शिष्योंमें ही होती है।

समर्थ रामदासकी ईश्वरमें पूर्ण निष्ठा थी। उनकी शक्तिके सामने वे जगत्‌का मस्तक नत देखना चाहते थे। एक दिन सज्जनगढका किला बनवाते समय शिवाजी महाराजको अपनी शक्तिपर बड़ा अभिमान हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरेद्वारा नित्य सहस्रों व्यक्तियोंका भरण-पोषण होता है। इतनेमें दैवयोगसे संत समर्थ आ पहुँचे। उन्होंने एक मजदूरसे पत्थरका एक टुकड़ा तोड़नेका संकेत किया। उसके भीतर एक छोटा-सा मेढ़क था, थोड़ा-सा पानी था। महाराजने शिवाजीसे कहा कि 'आप बड़े शक्तिशाली हैं। आपके सिवा जगत्‌के जीवोंका पालन-पोषण दूसरा कौन कर ही सकता है।' शिवाजीको अपनी भूल समझमें आ गयी। वे गुरुदेवके चरणोंपर गिर पड़े; उन्होंने क्षमा माँगी।

इसी प्रकार 'मनाचे श्लोक'की रचनाके सम्बन्धकी एक घटनाका उल्लेख संत समर्थके जीवन-चरित्रका आवश्यक अङ्ग-सा प्रतीत होता है। रामदासजी महाराज चाफल-निवास-कालमें प्रत्येक वर्ष रामनवमी-उत्सव धूमधामसे करते थे। शिष्य भिक्षा माँगकर उत्सव सम्पन्न किया करते थे। शिवाजी महाराजने बादमें उत्सवके लिये अपनी ओरसे सामग्री भेजना आरम्भ किया। एक साल उनकी ओरसे किसी कारणवश सामग्री समयपर न आ सकी। उत्सवमें केवल पंद्रह दिन रह गये थे। शिष्योंने आग्रह किया कि शिवाजीके पास पत्र लिखकर सामग्री मँगा ली जाय। महाराजने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि 'भगवान् सर्वसमर्थ हैं; वे सामग्री भेज देंगे।' महाराजने रातको कल्याणस्वामीको अपने पास बैठाकर दो-सौ पाँच श्लोक लिखा दिये और तप करने चले गये। दूसरे दिन कल्याणस्वामीकी प्रेरणासे महाराजके शिष्योंने घर-घर घूमकर उन श्लोकोंका गान किया। भिक्षामें अमित सामग्री प्राप्त हुई। महाराजके आनेपर उत्सव विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि संतकी वाणीमें जो शक्ति है, वह राजाकी सत्तामें नाम-मात्रको भी नहीं है। इस प्रकार 'मनाचे श्लोक'की रचना कर समर्थ रामदासने अपनी भगवन्निष्ठाकी सत्यता चरितार्थ की। उनका सम्पूर्ण जीवन वैराग्य और त्यागमय था।

संवत् १७३७ वि० में उनके प्रिय शिष्य महाराज शिवाजीका स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्युसे समर्थ रामदासके हृदयको बड़ा धक्का लगा। उन्होंने अन्नका त्याग कर दिया, केवल दूधपर रहने लगे। लोगोंको दर्शन देना बंद कर दिया। कभी मढ़ीसे बाहर नहीं निकलते थे। महाराज शम्भाजी शक्तिहीन थे। महाराष्ट्रपर औरंगजेबके उत्पात आरम्भ हो गये। ऐसी परिस्थितिमें संत समर्थकी चिन्ता बढ़ गयी। संवत् १७३९ वि०की माघ कृष्ण नवमीको उन्होंने महाप्रयाण किया। उनके मुखसे 'हर-हर'का उच्चारण होनेके बाद राम-नामका जयघोष हुआ। उसके बाद उनके मुखसे एक दिव्य ज्योति निकलकर श्रीरामके विग्रहमें समा गयी। उनका अन्तिम समय सज्जनगढ़में ही उपस्थित हुआ था। शिष्योंने उनके आदेशके अनुसार शरीरका दाह-संस्कार कर दिया। संत समर्थने अन्तिम समयमें कहा था कि "दासबोध' और 'आत्माराम' ग्रन्थमें मेरी आत्माका निवास है, उसीका पाठ करना चाहिये।" निस्संदेह वे समर्थ संत थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना

[जीवनसहचरसे]

दर्शन दो

निराशाकी तिमिरावृत रजनीमें दिङ्मूढ़ होकर म आशाकी एक किरण खोजता हूँ, विश्रान्त बटोहीकी भाँति गन्तव्य-पथका संकेत चाहता हूँ; कहाँ है मेरे जीवनाकाशका कमनीय किरणमाली, जो कृपाकी काञ्चन किरणें बिखेरकर अन्तर्लोकको नूतन आलोकसे भर दे ? कौन असहायका सहायक होगा, कौन हाथ पकड़कर मुझे मेरी मंजिलतक पहुँचा देगा ? हे मेरे नित्य सहचर ! तुम कहाँ छिपे बैठे हो ? आओ, दर्शन दो, कृतार्थ करो। ले चलो मुझे अपने साथ, जहाँ तुम्हारा जी चाहे। तुम्हीं मेरे मार्ग हो, तुम्हीं मंजिल। अनाथनाथ ! तुम्हारे ही हाथ थामकर साथ-साथ चलना है और तुमको ही पाना है। सुना है, तुम सबको नित्यप्राप्त हो; किंतु मेरे लिये ? मेरे लिये तो तुम अप्राप्त-से ही हो रहे हो; अत्यन्त निकट रहकर भी दूर हो गये हो; कोमलचित्त होकर भी क्रूर बन गये हो। संसारके इस निविड़ कान्तारमें मेरी आर्त्त-पुकार सुनकर भी क्यों अनसुनी कर रहे हो ? प्राणोंके प्राण ! तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन परित्राण करेगा करुणामयके सिवा ! कौन कुटिलका कल्याण करेगा !

माधव ! मेरा मानस युगोंसे रसहीन—शुष्क पड़ा है; हे मेरे नीलचन्द्र ! इसमें अपनी अमृतमयी चन्द्रिका उड़ेल दो। प्रणय-रसकी उत्ताल तरंगें उत्थित होने दो। यहाँ प्रीतिकी कुमुद-पङ्क्ति प्रस्फुटित हो, श्रद्धा एवं सद्भावके शतदल खिल उठें तथा रसप्रवण प्राण-मधुपोंका कृतज्ञतापूर्ण गुञ्जारव सब ओर गूँजने लगे। इसका तटप्रान्त तुम्हारी पावन लीलास्थली बन जाय। तुम तो लीलामय हो; जहाँ रहते हो, वहीं लीलाका प्रवाह चलता रहता है। एक बार इस मानस-तटको भी निज-लीलाका रङ्गस्थल बननेका सौभाग्य प्रदान कर दो न, नाथ ! नटवरनागर नन्दकिशोर !

मेरा मानस तो केवल तुम्हारा अभिराम आराम है; इसमें 'काम' कहाँसे घुस आया ? श्यामके धाममें उद्दाम वामपंथी काम ! राम-राम ! यह तो बड़े अनर्थकी बात है !! मैं तो दुर्बल हूँ, अतः इस बलवान् दस्युका, जो क्रोधका भी उद्भावक है, प्रतिरोध नहीं कर पाता हूँ; परंतु तुम तो सबल-शिरोमणि हो, दलबलसहित इस खलका काम तमाम क्यों नहीं कर देते ? यह इन्द्रिय, मन और बुद्धि—सबपर अधिकार जमाये बैठा है, गर्वसे ऐंठा है। इसके कान उमेठना तो बस, तुम्हारे ही बसकी बात है। मैं तुम्हारा, तुम मेरे; हम दोनोंके बीच यह क्यों आये ? हमारे मधु-मिलनमें यह टाँग क्यों अड़ाये ? इस ढीठकी पीठ तो तुम्हीं लगा सकते हो ? इसके साथी-सँघाती बहुत हैं, इसमें हजार हाथियोंका बल है, परंतु बक्र-चालसे चलनेवाला तुम्हारा चक्र तो नक्रको भी धराशायी कर चुका है, फिर यह विषैला भुजङ्ग तुमसे क्या जंग करेगा ! तुम इसके विषोद्गारी दाँत तोड़ दो और मोड़ दो इसकी गतिको। यह तुम्हारा लीलाह्रद छोड़कर रमणकद्वीपमें भुजङ्गोंके ही समीपमें चला जाय।

और यदि रखना ही हो तो इस कामको गुलाम बनाकर रखो। तुम्हें देखकर तो कोटि-कोटि काम भी गुलाम बन जाते हैं; फिर इस एक कामकी क्या बिसात, जो रात-दिन तुम्हारी चाकरी न बजाये। यह रहे तो मेरे मनमें तुम्हारे संस्पर्श-सुखकी ही कामना जगाये, सांसारिक विषयोंके गीत न गाये, भोगोंकी भीख न मँगवाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे प्रार्थनीय ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ। प्रार्थना याचनाका ही दूसरा नाम है। मेरे अन्तरकी अनन्त कामनाएँ और तृष्णाएँ जाने कहाँ-कहाँ हाथ पसारनेको विवश कर देती हैं और वहाँ मिलते हैं अपमान, उपेक्षा तथा रिक्तहस्तता। एक तुम्हीं ऐसे धनी हो, जहाँ याचना करनेसे याचककी याचकता ही जल जाती है, माँगने-याचनेकी इच्छा भी शान्त हो जाती है। तुम वह दाता हो, जो माँगनेवालेकी दीनता ही नहीं दूर करता, उसकी दयनीय दैन्यवृत्तिका ही दमन कर देता है। मैं भी यही चाहता हूँ, कुछ माँगने-पानेकी चाह ही न रह जाय। यदि कोई इच्छा हो तो तुम्हें पानेके लिये, तुम्हारे चिन्तन और भजनके लिये। यह इच्छा कभी शान्त न हो; तुम्हें पाकर भी और पानेके लिये उमड़ती रहे; एक बार देखकर भी पुनर्दर्शनके लिये निरन्तर उद्दीप्त होती रहे। तुम सर्वत्र भरपूर हो, फिर मुझसे दूर क्यों हो ? कृपया ऐसा करो, जिससे अन्तरका अन्तर मिट जाय, बाहरकी दूरी दूर हो जाय। उतार फेंको त्रिगुणात्मिका मायाके आवरणको। मैं शरणागत हूँ, प्रपन्न हूँ, फिर मुझसे पर्दका क्या काम ? यह दैवी माया मेरे लिये तो दुरत्यय नहीं रहनी चाहिये, मेरे जीवन-सहचर ! —तुम्हारा ही एक अकिंचन

योगिराज शिवका स्वरूप

(लेखक—श्रीभगवानशरणजी भारद्वाज 'प्रदीप')

भगवान् शिव विद्यातीर्थ हैं। उनसे निम्नलिखित विद्याओंका आविर्भाव हुआ है—१. योगशास्त्र, २. धनुर्वेद, ३. तन्त्र, ४. साबर मन्त्र, ५. व्याकरण, ६. आयुर्वेद, ७. भक्ति-शास्त्र, ८. स्वर-विज्ञान, ९. हस्त-रेखा-विज्ञान, १०. कथा। राजयोग, मन्त्रयोग और लययोगके प्रवर्तक भगवान् शिव माने जाते हैं। वे योगिराज हैं। शिवपुराणके अनुसार प्रत्येक युगके आदिमें भगवान् शंकर योगाचार्यके रूपमें आविर्भूत होकर शिष्योंको योग सिखाते हैं। शिवयोगके आचार्योंकी संख्या ११२ बतायी जाती है।

शिव भारतके जन-देवता हैं। प्रभासमें सोमनाथ, दक्षिणमें रामेश्वर, उत्तरमें केदारनाथ, अमरनाथ, उड़ीसामें भुवनेश्वर, उज्जैनमें महाकालेश्वर, मद्रासमें मल्लिकार्जुन, विहारप्रदेशमें वैद्यनाथ, हैदराबादमें घृष्णेश्वरके रूपमें वे सम्पूर्ण भारतमें सुपूजित हैं। काठमाण्डूके पशुपतिनाथकी पूजा नेपालियोंद्वारा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक होती है। बालिद्वीपमें बुद्धके साथ शिवकी पूजाका व्यापक प्रचलन है। बुद्धको उनका छोटा भाई माना जाता है। लाओसमें किसान खेतमें हल चलानेसे पूर्व शिवकी पूजा करते हैं। बैंकाकमें उच्च न्यायालयके सामने गङ्गाधर महादेवकी मूर्ति है। स्याममें भववर्माद्वारा प्रतिष्ठापित त्र्यम्बकेश्वरका लिङ्ग मिला है। मलायामें विष्णु और ब्रह्माके साथ शिवकी मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। बर्माके पगानमें शिवकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। जापानके आईस-नगरमें शिवलिङ्गका अर्चन होता है। तिब्बतमें भगवान् शंकरके प्राचीन मन्दिर हैं। मंगोलियामें गङ्गाधर महादेवके प्रति अत्यन्त श्रद्धा है। गङ्गाजल वहाँ साक्षात् अमृत माना जाता है। अफगानिस्तानमें सरायखाजाके पास कलाम नगरमें 'जटाशंकर' प्रतिष्ठित हैं। अरबमें बड़ी मात्रामें शिवलिङ्ग मिले हैं और उन्हें 'संग-ए-असबद' नामसे पूजा जाता है। दक्षिण अमेरिकाके पेरु राज्यमें ब्राजीलके खण्डहरोंमें शिव-प्रतिमाएँ मिली हैं। मिस्रमें असिरिस और आईसिस नामसे नन्दीश्वर महादेवका पूजन होता है। कम्बूजके अनेक नगरोंके नाम भगवान् शिवके नामपर है। जैसे शम्भुपुरी। चम्पाके अनेक शासक शिवभक्त थे। उन्होंने अपना नाम जोड़कर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठापित किये। जावाके कुंजरकुंज मार्गमें भगवान् शिवका मन्दिर है। यूनानमें बेसके और प्रियसान नामसे वृषभवाहन भगवान् शंकरकी पूजा प्रचलित रही है।

दुष्टोंको रुलानेके कारण वे 'रुद्र' कहलाते हैं—रोदयति दुष्टान् इति रुद्रः। दो नेत्र, दो नाक, दो कान, एक मुख, गुदा, उपस्थ, नाभि और आत्मा ही आध्यात्मिक क्षेत्रमें 'रुद्र' हैं। आधिभौतिक रुद्र हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत्, पवमान, पावक और शुचि। आधिदैविक रुद्र हैं—अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित। (मत्स्य पु० अध्याय ५)। आत्मासहित दस वायु—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजयको भी एकादश रुद्र कहा गया है।

शिवका डमरू नादका प्रतीक है। हाथी है—अहंकार। उसका चर्म धारण करनेका अर्थ है—अहंकारको वशीभूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लेना। मृग चञ्चलताका प्रतीक है। मृग-चर्म धारण करनेका आशय है, चञ्चलताको नष्ट कर देना। व्याघ्र कामका द्योतक है। व्याघ्र-चर्मपर बैठनेका अर्थ है, काम-विजय। सर्प क्रोधका प्रतीक है। शिवने उसे वशीभूत कर लिया है।

उनका रंग श्वेत है। श्वेत रंग सत्त्वगुण, ज्ञान, प्रकाश और अद्वैतका प्रतीक है। शंकर अपरिग्रहके प्रतीक हैं। अन्नपूर्णाको सम्मान देकर उन्होंने नारी-जातिकी गरिमा बढ़ायी है। स्वामी कार्तिकेय अग्नि-तत्त्वके प्रतीक हैं और गणेश सोम-तत्त्वके। विद्वानोंने स्कन्दको जीवात्मा और गणेशको अन्तःकरण भी माना है। विपरीत प्रकृतिवालोंके बीच भगवान् सामञ्जस्य रखते हैं। गणेश-वाहन चूहा, शिववाहन नन्दी और भगवतीका वाहन सिंह अपनी हिंसावृत्ति और द्वेष एवं भय भुलाकर शिव-परिवारके अङ्ग हैं। अग्निके पाँच प्रकार हैं—द्युलोक, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष और स्त्री। पञ्चदेव हैं—विष्णु, शिव, देवी, सूर्य और गणेश। पञ्च महाभूत हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। तन्मात्राएँ भी पाँच ही हैं—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। कोश पाँच हैं—अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द। ये ही भगवान्के पाँच मुख हैं। भगवान् पञ्चाननके पाँच मुख पाँच चक्रोंके प्रतीक भी बताये जाते हैं। आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मानुभव, आत्मलाभ और आत्मकल्याणकी प्रेरणा प्रत्येक मुखसे प्राप्त होती है।

भगवान्की आठ मूर्तियाँ हैं—जल, अग्नि, याज्ञिक, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, भीम, वायु। यह भगवान्के विराट् रूपका दर्शन है। शिवपुराणमें शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—अष्टमूर्ति माने गये हैं। दार्शनिक दृष्टिसे पञ्चतन्मात्राएँ और अव्यक्त, महत् एवं अहंकार ही भगवान्की अष्टमूर्ति हैं। भगवान् शिवकी एकादश मूर्ति भी मानी जाती है जिनके नाम पहले दिये गये हैं। एक स्थूल मूर्तिके दोनों ओर पाँच-पाँच पतली मूर्तियोंका निर्माण किया जाता है। स्थूल मूर्ति है, आत्मा और दोनों ओरकी मूर्तियाँ दस प्राणोंकी प्रतीक हैं। शरीरसे निकलते समय सम्बन्धियोंको रुलानेके कारण इन्हें 'रुद्र' कहा जाता है।

शिवका वाहन वृषभ है। धर्मशास्त्रोंमें धर्मका नाम वृषभ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—उसके चार पैर हैं। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूल व्यक्तिको निरन्तर कष्ट देते हैं। भगवानका त्रिशूल इन तीनोंके शमन और सत्त्व, रज एवं तम—त्रिगुणोंसे परे—त्रिगुणातीत होनेका संकेत देता है। तीनों गुण प्रकृति-राज्यके हैं। इन तीनोंको पारकर ही पुरुष अपने स्वरूपको प्राप्त कर सकता है।

भगवान् शिव 'व्योमकेश' भी कहलाते हैं। आकाश उनकी जटा है। वे तीन नेत्रवाले हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि ही भगवान्के तीनों नेत्र हैं। सूर्य बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। अन्य साधनोंसे कामकी चिन्त्यमान और भुज्यमान दशाओंका निरोध किया जा सकता है, किंतु संस्कार-दशाका निरोध ज्ञाननेत्रसे ही सम्भव है। यही शिवका मदन-दहन है।

उनमें उग्रता भी है, किंतु जटाओंमें बहनेवाली गङ्गा (शान्ति) उन्हें संतुलन प्रदान करती है। वेदमें चन्द्रमाको 'सोम' भी कहा गया है। सोम वनस्पतियोंका प्रतीक है। और शतपथब्राह्मण (९। ३। ८)के अनुसार भगवान्का 'पशुपति' नाम ओषधिसूचक है। चन्द्रमा मनका प्रतीक भी माना जाता है। कुण्डलिनी-शक्तिके जागरणसे उत्पन्न होनेवाला दाह ही समुद्र-मन्थनसे निकला विष है, जिसकी शान्तिके लिये योगीश्वर शिव चन्द्रमा एवं गङ्गाको धारण करते हैं।

भगवान् शिवके धनुषका नाम 'पिनाक' है। श्रीवासुदेव-शरण अग्रवालके अनुसार पिनाक 'मेरु-दण्ड'को कहा जाता है। इसकी दो कोटियाँ हैं। पहली कोटि है—मूलाधार चक्रमें, कुण्डलिनी है—प्रत्यञ्चा। भगवान् इस प्रत्यञ्चाको आज्ञाचक्ररूपी दूसरी कोटिपर चढ़ा देते हैं, इसीलिये वे 'पिनाक-पाणि' हैं।

भगवान्के शरीरपर लगी भस्म शरीरकी अनित्यताका स्मरण कराती है। उनके गलेमें पड़ी मुण्डमाला यह स्मरण कराती है कि वे कालके स्वामी हैं। इसीलिये उन्हें मृत्युंजय कहा जाता है। आगम-शास्त्रके समस्त अक्षर ही भगवान्की मुण्डमाला है। उनके चारों हाथोंमें मृग, परशु, वर और अभय हैं। शतपथब्राह्मण (१। १। ४) के अनुसार मृग ब्रह्मका प्रतीक है। मृग यज्ञ एवं वेदके रक्षकका प्रतीक भी है। इसीलिये वह भगवान्के हाथमें है। मृगवाले हाथमें काम, परशुवाले हाथमें शत्रुनाश और दिग्विजय, वरवाले हाथमें धर्म और अभयवाले हाथमें मोक्ष है। भगवद्-उपासनासे ही चारोंकी उपलब्धि होती है।

मूल सृष्टि जलसे ही हुई है। भगवान्के सिरपर स्थित गङ्गा इसी सत्यकी ओर संकेत कर रही है। सर्पको 'अहि' भी कहते हैं। निघण्टु (१। १०)के अनुसार 'अहि' मेघका नाम भी है। रुद्रको वेदमें 'विद्युत्' कहा गया है। विद्युत्का भूषण मेघ ही है। निघण्टु (१। १२)के अनुसार विष शब्द जलका पर्याय है। इस विष अर्थात् जलके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करनेवाले अहि अर्थात् मेघ भगवान् शिवके स्वरूपके अलंकार हैं।

सुषुम्णा ही पार्वती हैं। मेरुदण्ड है—हिमवान्। सुषुम्णा और कूर्मके मिलनसे कुण्डलिनी-शक्तिका जागरण होता है। यही कुमार-जन्म है। तारकासुर है—दुष्प्रवृत्तियाँ, जिनका वध इस शक्तिके द्वारा योगी करता है। तुलसीदासने पार्वतीको 'श्रद्धा' और शिवको 'विश्वास' माना है। पार्वतीको 'शक्ति' और शिवको 'धर्म' भी माना जाता है। शिवको धनात्मक आवेश और शक्तिको ऋणात्मक आवेश भी कहा गया है। शिव-तत्त्वसे ही लोभ, व्यामोह और अहंकारकी तीन पुरियोंका—त्रिपुरका विनाश होता है। वायुपुराण (६६। १०९-१६) के अनुसार शिव, ब्रह्मा और विष्णुको भिन्न मानना मूर्खतापूर्ण है। वायुपुराण (६१। २। ६) एवं ब्रह्मपुराण (१२०। ८) के अनुसार तीनों देव एक ही हैं।

सिन्धु-सभ्यताके उत्खननोंसे प्रमाणित होता है कि उस समय शिव-पूजाका प्रचलन था। सिन्धु-सभ्यता ५-६ हजार वर्ष पुरानी बतायी जाती है। इससे शिव-पूजाकी प्राचीनता स्वयं प्रमाणित होती है। लाहौर म्यूजियमके सूची-प्लेट १५ एवं ४३ और प्लेट २८ एवं ८ से पार्थियन राजा गोंडाकर निस एवं सूची-प्लेट १७ एवं ६५ से कुषाणवंशीय वीम बुड काइसीस और कनिष्कके शैव होनेका प्रमाण मिलता है। कुषाण राजा वासुदेवके सिक्कोंपर भी शिव और नन्दीके चित्र द्रष्टव्य हैं। नागवंशीय शासक भी शैव थे। यद्यपि गुप्तवंशीय सम्राट् वैष्णव थे, किंतु शिवमें उनकी आस्था थी, जिसकी सत्यता राजा कुमारगुप्तद्वारा निर्मित शिवलिङ्ग (लखनऊ म्यूजियम)से प्रमाणित होती है। ऐलौरा, ऐलीफण्टाकी शिवमूर्तियाँ अद्वितीय हैं। हूणनरेश मिहिर-कुलके सिक्कोंपर नन्दीका चित्र है। मौखरिनरेश तो अपने नामके साथ ही 'परममाहेश्वर' शब्दका प्रयोग करते थे। बलभी-नरेशोंमें शिव-उपासनाका प्रचलन था।

शिव-लिङ्गको अश्लील बताना भयंकर भ्रम है। 'लिङ्ग' शब्दका अर्थ है—चिह्न। शिवलिङ्ग निष्कल, निष्क्रिय, अद्वय, अजन्मा, अविकारी, निर्गुण-निराकार ईश्वर-तत्त्वका बोधक है। उसका कोई आकार नहीं; अपितु वह निराकारिताका वाचक है। शिवपुराणके अनुसार लिङ्गका सूक्ष्म रूप ओंकार और स्थूल रूप ब्रह्माण्ड है। स्वामी विवेकानन्दके शब्दोंमें 'यज्ञाग्निकी ज्वाला, उससे उठनेवाला धुआँ, अपनी पीठपर सोमवल्ली ग्रहण करनेवाला वृषभ, वैदिक यज्ञको सम्पन्न करनेके लिये समिधाएँ, उनके जलनेसे बचनेवाली भस्म, इससे शिवका लोहित वर्ण, जटाजूट, नीलकण्ठ, शरीरके समस्त अङ्गोंपर धारण की हुई भस्म, वृषभारोहण आदि मान्यताएँ प्रचलित हुईं।'

रूसी विद्वान् निकोलस रोरिकने भगवान् शिवके गुणों-पर मुग्ध होकर लिखा है—

'इस सृष्टिसे हमें सदा भगवान् शिवके त्यागमय कार्यों-की याद आती रहेगी कि उन्होंने किस प्रकार जगत्के रक्षण-के लिये स्वयं विष पिया और अब भी हम जब नीलकण्ठ नामका स्मरण करते हैं, हमें उनके उस महान् वीरतापूर्ण कार्यकी स्मृति हो जाती है, जो सृष्टिके आरम्भमें हुआ था और जिसे सुनकर मानव-हृदय उत्साह एवं श्रद्धासे ओत-प्रोत हो जाता है।'

कार्य-कारण, योग-विधान, दुःखान्त—इन सबका मूल शिव ही हैं। शिव योग-विद्याके प्रवर्तक, ज्ञान, भक्ति, मुक्ति-के प्रदाता, सत्य, सुन्दर एवं मृत्युंजय हैं। सृष्टिके आविर्भाव-के मूलमें काम-कलासे भी शिव सम्बन्धित हैं। नादसे भी शिव सम्बन्धित हैं, जिससे विश्वमें उत्पन्न समस्त वस्तुओंके नामकरणकी कल्पना की जाती है। उपनिषदोंमें उन्हें 'ईश्वर' कहा गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेदमें शिवको मङ्गलका प्रतीक माना गया है।

फ्रांसीसी मनीषी रोमां रोलाने शिव-तत्त्वका रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा है—

'शिव अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अनधिगम्य परब्रह्मके स्वरूप हैं, जो केवल ज्ञानगम्य है। साथ ही वे हमारी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले ईश्वर भी हैं। वे रचयिता हैं और ऐसे आत्मीयसे भी आत्मीय हैं, जिनके चरण-कमलोंमें हम सिर झुका सकते हैं, जिनके पास हम आत्मनिवेदन कर सकते हैं और जो हमारे सुख-दुःखमें सहायक होते हैं। पशुपति शिव हमारे-जैसे पशुओंको बन्धनोंसे मुक्ति दिलाते हैं। नटराज शिव अपने नृत्य-विलाससे विश्व-ब्रह्माण्डको स्पन्दित करते हैं। यह यहाँतक ही सीमित नहीं है, यह नृत्य तो हमारे श्वास-प्रश्वासमें प्रतिक्षण चल रहा है।'

श्वेताश्वतर उपनिषद् (३। ११) ने भगवान्के विराट् रूपका वर्णन इस प्रकार किया है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

'भगवान् शिवके मुख, सिर और ग्रीवाएँ सभी ओर हैं। वे सब प्राणियोंके हृदयमें रहते हैं। वे सर्वान्तर्यामी और विश्वका हित करनेवाले हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' एवं मानसकारका अभिनन्दन !

चातक भाव अनन्य एक रति गति पहिचानी।
हटकि देवधुनि बारि टेक स्वाती पै ठानी ॥
गज्ज तज्ज घनस्याम सहै सब पंख फुलाये।
अनुपम साहस बिसद प्रेमपन सिद्धि दिखाये ॥
कबि कोकिल पूरब हते त्रेता जे हरिबंसहित।
हरिनाम-स्वाति कलि माँहि तेइ तुलसिदास चातक उदित ॥

—हितहरिवंशजी

* * *

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु-भ्राता पद बंदे।
सेष सनातन बिपुल ज्ञान जिन पाइ अनंदे ॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमलहारी।
करि पोथी पर सही आदरेउ आप पुरारी ॥
राखी जिनकी टेक मदनमोहन धनु-धारी।
बालमीकि अवतार कहत जेहि संत प्रचारी ॥
'नन्ददास'के हृदय-नयन को खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई ॥

—कविवर नन्ददासजी

* * *

यह खानि चतुष्फल की सुखदानि अनूपम आनि हिये हुलसी।
पुनि संतन के मन-भृंगन को अति मंजुल माल लसी तुलसी ॥
अस मानुष के तरिबे कहँ 'तोष' भई भवसागर के पुल-सी।
सब कामन-दायक कामदुहा-सम रामकथा बरनी तुलसी ॥

—कविवर तोष

* * *

सुरतरु-लतान चारि फल है फलित किधौं कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी।
किधौं चिंतामनिन की माल उर सोभित बिसाल कंठ में धरे हैं ज्योति झलकावनी ॥
प्रभु की कहानी ते गोसाइँ की मधुरी बानी मुक्तसुखदानी 'रसखानि' मन भावनी।
खाँड की खिजावनी-सी, कंद की कुदावनी-सी, सिता को सतावनी-सी, सुधा सकुचावनी ॥

—रसखान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै
संत औ असंतन को भेद को बतावतो ।
कपटी, कुराही, कूर कलि के कुचाली जीव
कौन रामनामहू की चरचा चलावतो ॥
'बेनी' कवि कहै मानो-मानो हो प्रतीति यह
पाहन-हिये में कौन प्रेम उपजावतो ।
भारी भव सागर उतारतो कवन पार
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो ॥

—बेनी कवि

* * *

बोयो बिधि बीज रघुनाथ-जस-कामतरु, कुंभज-बसिष्ठ साखा-पल्लव लगायो है।
ब्यास, सुकदेव आदि किसलै-कुसुम कीन्हे, बाल्मीकि सुफल अमल दरसायो है ॥
माधव धुरीनाचार्य, रामानुजाचार्य आदि बीनि-बीनि फल ग्रन्थ-पथ में धरायो है।
'रघुराज' तुलसी सनेह सों परोसे पानि सीतापति सेवक निवत ऋषि आयो है ॥

—रीवाँनरेश राजर्षि श्रीरघुराजसिंहजू देव

* * *

सुरसरि पावन सुहावन सलिल धारा कमनीय कल्पना कलित कलसी की है।
रंजिनी कलाकर अलौकिक कला समान, व्यंजना बिभावरी बिपुल बिलसी की है ॥
सुरुचि मयूरी की प्रमोदिनी घटा है मंजु कौमुदी कुमोदिनी सुमति हुलसी की है।
बुध बृन्द बिपुल बिकच अरबिन्द हेतु सविता-सी कविता कविंद तुलसी की है ॥

बन राम रसायन की रसिका रसना रसिकों की हुई सफला।
अवगाहन मानस में करके जन-मानस का मल सारा टला ॥
बने पावन भाव की भूमि भलीं हुआ भावुक भावुकता का भला।
कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी या तुलसी की कला ॥

—अयोध्याप्रसादसिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

* * *

सियारामकी मंजु महा महिमाका
अलौकिक ही जिसमें रस है।
जहाँ प्रेमसे पीन हो मीन-सा है
रमा संत-समाजका मानस है ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सित कंज-सा कुन्द-सा सोह रहा
जहाँ जानकीजीवनका यश है ।
वह मानस यह, जहाँ पापका तापका
नेक नहीं चलता वश है ॥
यहाँ नौ रस हैं, रस एक वहाँ,
यह बानी है संतकी, पानी नहीं ।
मल धोया करे कहीं भी तनका,
मनका मल तो धुलता है यहीं ॥
इस रामचरित्रके मानसकी
उस मानससे तुलना है कहीं ।
वहाँ डूबता जो मर जाता, यहाँ—
पर डूबता जो तर जाता वही ॥
विषयोंके विषैले भुजंगमोंका
चलता यहाँ नेक प्रभाव न है ।
यह जीवन-मूरि सँजीवन है,
विधिका दिया दिव्य उपायन है ॥
भव-आधि-विआधिसे छूटनेको
इसके सम कोई उपाय न है ।
इस मानसका करे सेवन तू,
इसमें अरे ! राम-रसायन है ॥

—रामनारायणदत्त 'राम'

* * *

सरि जात संचित, असंचित बिसरि जात, करि जात भोग, भव-बंधन कतरि जात ।
तरि जात काम-सरि, बरि जात कोप-करि, कर्म कलिकाल, तीनि कंटक भभरि जात ॥
भरि जात भाग्य भाल 'किंकर गोबिंद' त्यों ही, ज्यों ही तुलसीकी कविताईपर नजरि जात ।
जरि जात दंभ, रोप-दूषण दररि जात, दुरि जात दारिद, दुकालहू निसरि जात ॥
भक्तिकी प्रसूतिका है, युक्तिहूकी दूतिका है, भवकी विभूतिका है, सुद्ध उक्तिका है जू ।
सची-रंभा-मेनका है, हिमवंत-कन्यका है, कामधेनुका है, कैधौं मातु रेणुका है जू ॥
अमी-मूरिका है, मोह-तम-दूरिका है, हरि-पद-धूरिका है, कैधौं कामपूरिका है जू ।
सुर-सरिता है कै, विसुद्ध चरिता है कैधौं, 'किंकर गोबिंद' तुलसीकी कविता है जू ॥

—किंकर गोविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'श्रीहनुमान-अङ्क'

[सम्मान्य लेखक महानुभावोंसे सादर प्रार्थना]

'कल्याण', फरवरी, १९७४ के टाइटिलके अन्तिम पृष्ठपर प्रकाशित निवेदनसे सम्मान्य पाठक-पाठिकाओं, महात्माओं, विद्वानों एवं विचारकोंको यह ज्ञात हुआ ही होगा कि जनवरी १९७५के विशेषाङ्कके रूपमें 'श्री-हनुमान-अङ्क'के प्रकाशनका निश्चय हुआ है। सबसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे सदाकी भाँति अपना आशीर्वाद, सद्भाव एवं अमूल्य सहयोग हमें प्रदान करें, जिससे भक्तराज श्रीहनुमानकी यह अर्चना सर्वाङ्गपूर्ण बन सके।

विशेषाङ्कमें कौन-कौनसे विषय रहेंगे, इसका दिग्दर्शन करानेके लिये एक संक्षिप्त विषय-सूची नीचे दी जा रही है। सम्मान्य लेखक महानुभाव चाहें तो विषय-सूचीके अतिरिक्त श्रीहनुमान-सम्बन्धी किसी अन्य विषयपर भी रचना भेज सकते हैं। रचना स्पष्ट, सुवाच्य, संक्षिप्त (लगभग ५ पृष्ठोंकी) एवं विषयसे सम्बद्ध होनी चाहिये। रचना हिंदी, संस्कृत, बँगला, मराठी, गुजराती अथवा अंग्रेजी—किसी भी भाषामें प्रस्तुत की जा सकती है।

सैकड़ों रचनाओंको पढ़ने, उनमेंसे उपादेय सामग्रीको छाँटने, सजाने, चित्र तैयार करवाने तथा लगभग पौने दो लाख प्रतियाँ मुद्रित करनेमें छः-सात मासका समय अपेक्षित होता है। अतएव सम्मान्य लेखक महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना है कि वे अपनी बहुमूल्य रचनाएँ अधिक-से-अधिक जूनके अन्ततक अवश्य भेज दें, जिससे अङ्क समयपर तैयार हो सके। विलम्बसे आनेवाली रचनाओंको उचित स्थानपर सजाने अथवा उन्हें स्वीकार करनेमें कठिनाई होगी।

बड़ी ही विनम्रताके साथ यह निवेदन है कि रचना भेजनेकी कृपा वे ही महानुभाव करें, जिनका विषयपर अधिकार हो, जो लेखन-कलासे परिचित हों तथा जो अपने भावोंको सुचारुरूपसे व्यक्त कर सकें। आशा है, सम्मान्य लेखक महानुभाव कृपा एवं प्रीतिपूर्वक सदाकी भाँति अपना उदार सहयोग हमें प्रदान करेंगे। —सम्पादक

प्रस्तावित विषय-सूची

१–भगवद्भक्तिका स्वरूप एवं माहात्म्य
२–भक्तिमें दास्यभावका स्थान एवं महत्त्व
३–भगवान्‌के दास्यभक्त एवं उनमें श्रीहनुमानका स्थान
४–श्रीहनुमानका चरित—दास्य-भक्तिकी व्याख्या
५–भगवद्भक्तका अलौकिक माहात्म्य
६–भक्त एवं भगवान्‌का सम्बन्ध
७–श्रीहनुमान—भगवदनुग्रहके प्रतीक
८–भक्तको भगवान्‌से मिलानेवाले श्रीहनुमान
९–भगवान् श्रीरामके नित्य परिकर एवं उनमें श्रीहनुमानका स्थान
१०–नित्य साकेतमें श्रीहनुमानका स्वरूप एवं उनकी सेवा
११–श्रीहनुमानका भक्त रूप
१२–भक्तोंके परमादर्श श्रीहनुमान
१३–श्रीहनुमानका देवरूप
१४–रुद्रावतार श्रीहनुमान
१५–भगवान् श्रीशंकर और हनुमान
१६–भगवान् श्रीकृष्ण और हनुमान
१७–श्रीराम-पञ्चायतनमें श्रीहनुमान
१८–पञ्चदेव और श्रीहनुमान
१९–श्रीहनुमत्तत्त्व
२०–श्रीहनुमान और हनुमदीश्वर
२१–चिरजीवी श्रीहनुमान
२२–भगवती सीताके भक्त श्रीहनुमान
२३–सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्य-विहारी श्रीहनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४-श्रीरामहृदय हनुमान
२५-श्रीरामदूत हनुमान
२६-श्रीरामसेवक हनुमान
२७-श्रीरामभक्तिके प्रवर्तक हनुमान
२८-श्रीराम-नाम-कीर्तनासक्त हनुमान
२९-श्रीराम-कथानुरागी हनुमान
३०-श्रीराम-कथा-गायक हनुमान
३१-'रामकाज करिबे को आतुर'
३२-'भानुकुल-भानु-कीरति-पताका'
३३-'जासु गुनगाथ रघुनाथ कह'
३४-धर्मार्थकामापवर्गद श्रीहनुमान
३५-अघटित-घटन श्रीहनुमान
३६-भक्त-संताप-चितापहर्ता श्रीहनुमान
३७-'राम के गुलामनि को कामतरु'
३८-मङ्गलमूर्ति श्रीहनुमान
३९-गति, मति, शक्ति एवं भगवद्रतिके प्रतीक श्रीहनुमान
४०-ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमान
४१-सर्वगुण-सम्पन्न श्रीहनुमान
४२-आशुतोष श्रीहनुमान
४३-ब्रह्मचारी श्रीहनुमान
४४-श्रीहनुमान और सदाचार
४५-श्रीहनुमान और सेवाधर्म
४६-धर्ममूर्ति एवं धर्मरक्षक श्रीहनुमान
४७-आसुरी वृत्ति-प्रवृत्तिके विध्वंसक श्रीहनुमान
४८-'अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता'
४९-संकटमोचन श्रीहनुमान
५०-आदर्श सखा एवं आदर्श मन्त्री श्रीहनुमान
५१-संगीताचार्य श्रीहनुमान
५२-आयुर्वेद-शास्त्र और श्रीहनुमान
५३-श्रीहनुमानका राजनीतिक चातुर्य
५४-शौर्य एवं पराक्रमके प्रतीक श्रीहनुमान
५५-सम्भाषण-कला-निपुण श्रीहनुमान
५६-श्रीहनुमानका युद्ध-कौशल
५७-भगवान् श्रीरामके विभिन्न भावोंके भक्त तथा उनमें श्रीहनुमानका स्थान
५८-श्रीभरत एवं श्रीहनुमान
५९-श्रीलक्ष्मण एवं श्रीहनुमान
६०-श्रीशत्रुघ्न एवं श्रीहनुमान
६१-श्रीलव-कुश एवं श्रीहनुमान
६२-श्रीसुग्रीव एवं श्रीहनुमान
६३-श्रीअङ्गद एवं श्रीहनुमान
६४-श्रीविभीषण एवं श्रीहनुमान
६५-वानरोंका स्वरूप, शक्ति, सामर्थ्य आदि
६६-वानर-जातिकी परम्परा, संस्कृति, वेष-भूषा, शिक्षा-दीक्षा, रीति-नीति आदि
६७-वानर-ऋक्ष-सिरमौर श्रीहनुमान
६८-'श्रीहनुमान'-नामकी व्युत्पत्ति एवं रहस्य
६९-श्रीहनुमानके विविध नाम और उनका विवेचन
७०-'संकर-सुवन', 'पवन-सुत', 'अंजनी-पुत्र' और 'केसरी-नन्दन' नामोंका रहस्य एवं सार्थक्य
७१-श्रीहनुमानका रूप-सौन्दर्य
७२-श्रीहनुमानके वस्त्र, आभूषण, शृङ्गार आदि
७३-श्रीहनुमानके आयुध और उनका रहस्य
७४-श्रीहनुमच्चरित (विभिन्न शास्त्रों एवं संतोंके अनुभवके आधारपर)
७५-श्रीहनुमज्जयन्ती-महोत्सव
७६-गोवर्धन गिरि और श्रीहनुमान
७७-धनंजय-रथ-त्राण-केतु श्रीहनुमान
७८-वैदिक साहित्यमें श्रीहनुमान
७९-उपनिषदोंमें श्रीहनुमान
८०-आगमोंमें श्रीहनुमान
८१-तन्त्रोंमें श्रीहनुमान
८२-पुराणोंमें श्रीहनुमान
८३-योग-शास्त्रमें श्रीहनुमान
८४-विभिन्न रामायणोंमें श्रीहनुमान
८५-महाभारतमें श्रीहनुमान
८६-संगीत-नृत्य-शास्त्रमें श्रीहनुमान
८७-मन्त्र-शास्त्रमें श्रीहनुमान
८८-ज्यौतिष-शास्त्रमें श्रीहनुमान
८९-चित्रकलामें श्रीहनुमान
९०-स्थापत्य एवं मूर्तिकलामें श्रीहनुमान
९१-अपभ्रंश, प्राकृत एवं पाली भाषाके साहित्यमें श्रीहनुमान
९२-संस्कृत काव्यों और नाटकोंमें श्रीहनुमान
९३-हिंदी-साहित्यमें श्रीहनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

९४-विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंके साहित्यमें श्रीहनुमान
९५-लोकगीत एवं लोकाचारमें श्रीहनुमान
९६-जैन-रामकथामें श्रीहनुमान
९७-बौद्ध-रामकथामें श्रीहनुमान
९८-नाथ-पंथमें श्रीहनुमान
९९-भारतके विभिन्न सम्प्रदायोंमें श्रीहनुमान
१००-वाल्मीकिके श्रीहनुमान
१०१-तुलसीके श्रीहनुमान
१०२-समर्थ रामदासकी श्रीहनुमान-भक्ति
१०३-सूरदासके श्रीहनुमान
१०४-गुरुगोविन्दसिंहकी श्रीहनुमान-भक्ति
१०५-विभिन्न रामभक्त कवियोंकी रचनाओंमें श्रीहनुमान
१०६-भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें श्रीहनुमान-उपासना
१०७-बृहत्तर भारतमें श्रीहनुमान-उपासना
१०८-विदेशोंमें श्रीहनुमान-उपासना
१०९-पाश्चात्योंद्वारा श्रीहनुमानका स्मरण
११०-श्रीहनुमानके विभिन्न क्षेत्र, तीर्थ, मन्दिर आदि
१११-श्रीहनुमान-प्रतिमा-निर्माण-विधि एवं प्राण-प्रतिष्ठा-पद्धति
११२-श्रीहनुमान-मन्दिर, पीठिका आदिका स्वरूप एवं निर्माण-विधि
११३-श्रीहनुमानके विभिन्न रूपोंका ध्यान एवं प्रयोजन
११४-श्रीहनुमान-सम्बन्धी सिद्ध स्तोत्र, पटल, कवच आदि
११५-श्रीमारुति-गायत्री
११६-श्रीहनुमानके विभिन्न मन्त्र एवं उनकी अनुष्ठान-विधि
११७-श्रीहनुमान-पूजन-यन्त्र
११८-श्रीहनुमान-पूजनके आवश्यक द्रव्य
११९-श्रीहनुमान-सम्बन्धी पर्व, व्रत, महोत्सव आदि
१२०-पञ्चमुखी श्रीहनुमानका स्वरूप एवं उपासना
१२१-श्रीहनुमत्कृपा एवं दर्शन-प्राप्तिके लिये उपासना
१२२-विभिन्न कामनाओंकी सिद्धिके लिये श्रीहनुमान-उपासना
१२३-श्रीरामार्चा-पद्धति और हनुमान
१२४-श्रीहनुमान-उपासनाके अनुभव
१२५-श्रीहनुमान-उपासकका स्वरूप, व्रत, आचार, विचार, व्यवहार आदि
१२६-श्रीहनुमानके प्राचीन एवं अर्वाचीन भक्त
१२७-श्रीहनुमत्सहस्रनाम
१२८-श्रीहनुमान-सम्बन्धी मुद्रित-अमुद्रित साहित्य* (देश-विदेशकी विभिन्न भाषाओंमें)
१२९-भारतीय मानस एवं जीवनपर श्रीहनुमानका प्रभाव
१३०-भारतकी भावात्मक एकताके परिपोषणमें श्रीहनुमान-उपासनाका योगदान
१३१-वर्तमानकालमें श्रीहनुमान-उपासनाकी आवश्यकता

श्रीरघुनाथजीके चरण

(रचयिता—श्रीप्रयागनारायणजी त्रिवेदी)

मञ्जुल मराल हैं महेश-मन-मानस के,
जन्मदाता जाह्नवी के, पङ्कज-वरन हैं।
गौतम-वधू के शाप-मोचन, त्रिलोचन-
विलोचन-विषय, त्रय-ताप के हरन हैं॥
अधम-उधारण हैं, दिव्य द्युति-धारण हैं,
भक्त-आभरण, जग-तारण-तरण हैं।
आनन्द-करण, दुःख-दारिद-हरण,
अशरण के शरण रघुनाथ के चरण हैं॥

* ग्रन्थोंका परिचय देवनागरी लिपिमें इस प्रकार रहना चाहिये—
(क) ग्रन्थका नाम, (ख) रचयिता या सम्पादकका नाम, (ग) प्रकाशक-पता, (घ) पृष्ठ-संख्या आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रशंसाके प्रति वितृष्णा

सन् १९३१ की बात है । संत विनोबाभावे आश्रमकी डाक देख रहे थे । वे एक-एक पत्रको पढ़कर विषयके अनुसार उन्हें पृथक्-पृथक् रखते जाते थे । उनके समीप बैठे थे प्रसिद्ध देशभक्त श्रीजमनालालजी बजाजके सुपुत्र श्रीकमलनयन बजाज । अवस्था छोटी ही थी । वे कौतूहलके साथ पत्रोंकी बनावट, उनपर लिखे गये पतेकी लिखावट आदिको देख रहे थे । अचानक श्रीविनोबाजीने एक लिफाफा उठाया, जिसकी बनावट तथा उसपर लिखे गये पतेके अक्षरोंसे स्पष्ट समझा जा सकता था कि वह पत्र महात्मा गांधीका था । उस समयतक महात्मा गांधीके प्रति देशमें बड़ी ही आदर-बुद्धिकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी । लोग उनके हस्ताक्षरोंको प्राप्त करनेके लिये व्यग्र एवं प्रयत्नशील रहते थे । इसके अतिरिक्त महात्माजीके पत्र बड़े ही महत्त्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद होनेके कारण लोग उनका संग्रह करने लगे थे । श्रीकमलनयन बजाजको तो बाल्यकालसे ही बापूका प्यार प्राप्त हुआ था । अतः बापूके पत्रोंके प्रति उनके मनमें विशेष अभिरुचि होनी स्वाभाविक थी । वे उस पत्रको बड़े गौरसे देखने लगे ।

श्रीविनोबाजीने पत्र खोला, उसे आद्योपान्त पढ़ा । उनके चेहरेपर वितृष्णा-जनित उद्विग्नताकी रेखाएँ उभर आयीं और उन्होंने पत्रको फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया । श्रीकमलनयन यह सब बड़े ध्यानसे देख रहे थे । बापूके पत्रको इस प्रकार अरुचि-सूचक मुद्रामें पढ़ना और पढ़नेके पश्चात् उसे फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें फेंक देना—बापूके प्रति गहरी श्रद्धा और प्यार रखनेवाले श्रीविनोबाजीद्वारा यह सब होते देख उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ । उन्होंने लपककर रद्दीकी टोकरीमेंसे पत्रके फटे हुए टुकड़े उठा लिये । पत्र अधिक फटा हुआ नहीं था; अतएव उसे जोड़कर पढ़नेमें विशेष असुविधा नहीं हुई । पत्रमें लिखा था—'तुम्हारे-जैसी किसी दूसरी महान् आत्मासे मेरा सम्पर्क आजतक नहीं हुआ ।'

श्रीविनोबाजीके प्रति बापूके इतने सुन्दर उद्गार ! फिर क्या हेतु था जो उन्होंने बापूके पत्रको फाड़ दिया । युवक श्रीकमलनयनने श्रीविनोबाजीसे पूछ ही तो लिया—'आपने बापूका पत्र क्यों फाड़ा ?'

श्रीविनोबाजीने सहज भावसे उत्तर दिया—'अपने गुरुजनसे भी स्नेह या गफलतके कारण कुछ भूल हो सकती है । श्रद्धालुओंको चाहिये कि वे उस भूलको महत्त्व न दें ।'

'बापूने इस पत्रमें कोई भूल की है—यह आप कैसे मानते हैं ?'—श्रीकमलनयनने पुनः पूछा ।

श्रीविनोबाजीने कहा—'बापूसे लाखों लोग मिले हैं—एक-से-एक महान् विभूतियाँ और एक-से-एक महान् आत्माएँ । दो ही बातें हैं—या तो बापू उन महान् विभूतियोंको नहीं पहचान सके अथवा पत्र लिखते समय उनके बड़प्पनकी विस्मृति उन्हें हो गयी । यही हेतु है कि उन्होंने मेरे सम्बन्धमें ऐसे बड़प्पनके शब्द लिख दिये । मैं यह ठीक समझता हूँ कि उन्होंने स्नेह या मोहके कारण ही ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण बात लिख दी है । इस प्रकार लिखनेसे उन महान् विभूतियोंकी महानता तो कम नहीं हुई, किंतु बापूद्वारा उनकी महानताका आदर न होनेकी भूल तो हो ही गयी । हम श्रद्धालुओंको बापूकी इस भूलको क्यों सहेजकर रखना चाहिये ।'

श्रीकमलनयनने पुनः तर्क किया—'बापूद्वारा भूल नहीं हो सकती । वे एक-एक शब्द सोच-समझकर लिखते हैं । सचमुच उन्हें आप-जैसी महान् आत्मा और न मिली हो ।'

श्रीविनोबाजीने विनम्रताभरे शब्दोंमें कहा—'अच्छा, मान लेते हैं कि बापूने सोच-समझकर ही लिखा है । हो सकता है, यह सच भी हो । परंतु उससे मुझे क्या काम ! उससे यदि कुछ हो सकता भी है तो अहंकार ही पैदा होगा ।'

श्रीकमलनयनमें युवावस्थाका जोश उभर आया । वे आवेशके स्वरमें बोल उठे—'बापू-जैसे महापुरुषकी लिखी हुई चीज, भले ही वह आपके ही बारेमें क्यों न हो, केवल आपके लिये नहीं दुनियाके लिये है । उसे फाड़नेका आपको कोई अधिकार नहीं ।'

श्रीविनोबाजी समझ गये कि युवक श्रीकमलनयन आवेशमें है । उन्होंने बड़े ही शान्तभावसे उन्हें समझाया—'बापूने जो कुछ मेरे सम्बन्धमें लिखा है, उसमें महत्त्वकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस है—उनका स्नेह, प्यार, विश्वास, वह मैंने ग्रहण कर लिया। बाकीको नष्ट कर देनेमें ही लाभ है। यदि बापूकी मान्यता सच्ची है तो मेरे पत्र फाड़नेसे वह नष्ट नहीं हो जायगी। लेकिन यदि वह उनका मोह है तो उसे रखनेमें हानि ही होगी। इसलिये मैंने बापूका पत्र फाड़नेमें कोई जोखिम नहीं समझी और न उसे रखनेमें कोई लाभ।'

प्यारभरा समाधान पाकर श्रीकमलनयन संतुष्ट हो गये।

(२)

प्रार्थना-निष्ठा

प्रभु सर्वसमर्थ हैं, प्रभु सर्वसुहृद् हैं; उनका प्रत्येक विधान जीवमात्रके लिये अशेष मङ्गलकारी होता है—इस सिद्धान्तपर परम श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार-की अद्भुत निष्ठा थी। वे अपने प्रवचनोंमें कहा करते थे—

"विधाता और विधान—दो नहीं हैं। अतएव विधाताके प्रत्येक विधानमें मङ्गल-ही-मङ्गल भरा है। इतना होनेपर भी जो विधान प्रतिकूल प्रतीत हो, उसके निवारणके लिये सत्प्रयत्न करनेके साथ-साथ मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्‌की प्रार्थनामें अमोघ एवं असित शक्ति है। भगवत्प्रार्थनासे कठिन-से-कठिन कार्य सहजमें सम्पन्न हो जाते हैं। परंतु भगवान् सहज सर्वज्ञ एवं सर्वसुहृद् हैं। अतः वे उसी प्रार्थनाको पूर्ण करते हैं, जिसमें हमारा परिणाममें परमहित—परममङ्गल होता है। हमारी कोई प्रार्थना पूर्ण न हो तो निश्चय समझें कि उसकी अपूर्णता ही मङ्गल-कारिणी है। किंतु प्रार्थना होनी चाहिये—सच्चे मनसे और अचल विश्वासके साथ। प्रार्थनाके लिये किसी विशेष प्रकारके शब्दोंकी आवश्यकता नहीं, भगवान् सब भाषाएँ समझते हैं। प्रार्थनामें चाहिये हृदयकी भाषा।"

बात सन् १९१८ की है। देशकी स्वतन्त्रताके लिये क्रान्तिकारी गतिविधियोंको अपनानेके कारण प्राप्त शिमलापाल (पश्चिम बंगालके बाँकुड़ा जिलेका पुलिस-स्टेशन) के अज्ञातवासको पूरा करके श्रीभाईजी मुक्त हुए थे। बंगाल-सरकारने बंगालसे उनके निष्कासनका आदेश भी जारी कर दिया था। अतएव श्रीभाईजी अपने पैतृक स्थान रतनगढ़ (बीकानेर राज्यका एक कस्बा) चले आये थे।

विधिका-विधान! अचानक वहाँ प्लेगका प्रकोप हो गया। परिवार-के-परिवार नियतिके क्रूर हास्यमें विलीन होने लगे। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति सबको दिखा देना चाहती थी—जीवन कितना क्षणभङ्गुर है!

शिमलापालके जीवनमें भगवान्‌की मङ्गलमयता तथा भगवत्प्रार्थनापर श्रीभाईजीकी आस्था बहुत दृढ़ हो गयी थी। साथ ही लोकसेवाकी भावना भी परिपुष्ट हुई थी। सब रूपोंमें अपने प्रभु ही हैं; इससे प्राणिमात्रकी सेवा अध्यात्म-साधनाका ही प्रतिरूप था श्रीभाईजीके लिये। प्राणि-सेवामें भी आर्तनारायण—रोग-कष्टसे पीड़ित व्यक्तियोंकी सेवाके लिये विशेष तत्पर रहते थे वे। प्लेगके प्रकोपसे सेवाका उन्मुक्त क्षेत्र सामने था। श्रीभाईजी इस अवसरपर कब चूकनेवाले थे। वे रोगियोंकी सेवामें जुट गये। घर-घर रोगियोंकी सँभाल करना, उनके उपचारकी व्यवस्था करना तथा सबके मनोबलको बनाये रखना—यही दिन-रातका उनका कार्यक्रम था। प्लेगका रोग भीषण रूपसे संक्रामक होता है। अतएव श्रीभाईजीके कतिपय हितचिन्तकोंने उन्हें यह सलाह दी कि उन्हें कुछ समयके लिये यह स्थान छोड़ देना चाहिये; पर श्रीभाईजी सबको हँसते हुए यही उत्तर देते थे—"यदि साँस समाप्त हो गयी होगी तो कहींपर भी रहूँगा, मृत्यु निश्चित है और यदि जीवन शेष होगा तो यहाँ भी कुछ नहीं हो सकता। फिर इस समय तो मुझे प्रभुने सेवाका अवसर दिया है, इसे क्यों छोड़ूँ।" श्रीभाईजीकी निष्ठापूर्ण प्रभु-अर्चनाके रूपमें होनेवाली सेवाका अद्भुत प्रभाव भी परिलक्षित हुआ। अनेकों निराश व्यक्तियोंने स्वास्थ्य लाभ किया। एक घटना नीचे दी जा रही है—

एक अत्यन्त साधारण स्थितिका जाट-परिवार जीवनकी कटुताओंको सहते हुए वहाँ निवास कर रहा था। परिवार बड़ा था, आय कम थी। अचानक इस परिवारके सबसे बड़े नवविवाहित पुत्रपर प्लेगका प्रकोप हुआ। यथासम्भव सभी प्रकारके इलाज करवाये गये, पर दशा बिगड़ती ही चली गयी। सबसे बड़े पुत्रको अपनी आँखोंके सामने जाता देख, निःसहाय जाट रोता-कलपता श्रीभाईजीके पास पहुँचा। श्रद्धाकी गरिमा, याचनाकी सीमा, विश्वासकी गुरुताके साथ जाटने श्रीभाईजीके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। उसकी करुण-गाथा सुन परदुःखकातर श्रीभाईजी सहज ही उसके साथ चल दिये दुःखमें उसका हिस्सा बँटानेके लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र पहुँचनेपर बालककी स्थिति देख श्रीभाईजीके मुख-मण्डलपर भी गम्भीर चिन्ताकी रेखाएँ उभर आयीं। चुनी हुई उत्तम-से-उत्तम ओषधि निरर्थक साबित हो रही थी। लगता था कि बालक अब कुछ ही घंटोंका मेहमान है। बाह्य चेतना प्रायः लुप्त हो चुकी थी। मुखपर किंचित् विकृति भी आ गयी थी। नवविवाहिता वधू लाज-शर्म छोड़कर सामने आयी और फटते हृदय तथा अजस्र अश्रु-धाराके साथ वह श्रीभाईजीके चरणोंपर मस्तक टेक बिलख उठी। भाषासे शून्य, भावनासे पूर्ण, वेदनाकी मूर्ति वह कुछ कह न सकी। कहनेकी आवश्यकता भी नहीं थी। श्रीभाईजी-के नेत्र भी भर आये।

परिवारके सदस्योंको समझानेका प्रयास करते हुए श्रीभाईजीने कहा—"भगवान्पर विश्वास रक्खो—उनकी कृपाका अवलम्बन लेकर बालकको गङ्गाजल देना आरम्भ कर दो। ओषधि सर्वथा बंद कर देनी चाहिये। बालकके समीप सुमधुर स्वरमें भगवन्नामका गान आरम्भ कर दो। भगवान्की कृपासे सब कुछ सम्भव है।"—इतना कहकर स्वयं श्रीभाईजी वहाँ बैठ गये। सुमधुर स्वरमें उन्होंने नामध्वनि आरम्भ कर दी। गङ्गाजल भी मँगवाया गया। श्रीभाईजीने स्वयं अपने हाथोंसे उसे गङ्गाजल दिया।

कुछ देरतक बैठनेके बाद श्रीभाईजी जाने लगे। जाते-जाते उन्होंने पुनः कहा—"भगवान्के सौहार्दपर विश्वास करके नाम-ध्वनि सुनाते रहो। बीच-बीचमें बालक जब भी पानी माँगे, उसे गङ्गाजल ही देना। भगवान्की कृपामें अद्भुत शक्ति है।"

श्रीभाईजी घर लौट आये। भगवान्की अपार कृपासे बालककी स्थिति सुधरने लगी। कुछ ही घंटों बाद बालककी चेतना लौट आयी। वह सबको पहचानने लगा। अब उसके जीवनकी आशा हो गयी। उपचारके साथ प्रार्थना चलती रही। श्रीभाईजी बराबर उसकी सँभाल करते रहे। कुछ दिनोंमें वह नीरोग हो गया।

बालक जब चलने-फिरने योग्य हो गया, तब जाट—अपने पूरे परिवारसहित श्रीभाईजीके निवासस्थानपर पहुँचा। प्रत्येकका रोम-रोम पुलकित था, प्रसन्नतामें सारे-के-सारे डूबे हुए थे। कृतज्ञताके शब्द तो उनके पास थे नहीं—आनन्दके अश्रु बहाते हुए जाटने श्रीभाईजीके चरण पकड़ लिये। उनकी प्रसन्नताको देख श्रीभाईजीका हृदय भी प्रफुल्लित था। प्यारभरे आतिथ्यके बाद श्रीभाईजीने कहा—"मुझमें कुछ भी नहीं है; यह सब तो प्रभुकी कृपा है। आपलोगोंकी प्रार्थनामें सचाई थी और प्रभु तो करुणा-वरुणालय हैं ही! उनपर निरन्तर विश्वास बढ़ाते रहिये; और मुझे भी ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरे हृदयमें भी उनके प्रति प्रेम दृढ़तर, दृढ़तम होता चला जाय। मैं तो किसी योग्य ही नहीं हूँ।"

जाट-परिवार हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करके चला गया, पर परिवारका प्रत्येक सदस्य ले गया अपने साथ एक ऐसी अनुपम निधि, जिससे भवरोगका भी सहज रूपमें ही शमन किया जा सकता है—भगवत्प्रार्थनापर विश्वास। सचमुच प्रार्थना ऐसी ही चमत्कारिणी है—करुणासागर प्रभु भी विवश हो जाते हैं; उन्हें भी वह करुण पुकार सुननी ही पड़ती है।

(२)

सच्चा प्रायश्चित्त

बात पुरानी है। बादशाह सुल्तान सीमाप्रान्तका दौरा कर रहे थे। एक घाटीमें पड़ाव किया गया। बादशाह शिकारका बड़ा शौकीन था। सूर्यास्त होते ही चारों ओर अन्धकार छा गया। बादशाहने देखा—सामनेके ऊँचे टीलेपर कोई जानवर बैठा है। बादशाहने धनुर्-बाण उठाया और निशाना साधकर तीर छोड़ दिया। तीक्ष्ण तीरके लगते ही एक चीखकी आवाज आयी। बादशाह दौड़कर टीले-पर पहुँचा और ज्यों ही वह लक्ष्यके नजदीक पहुँचा, वह देखकर सन्न हो गया कि बाणसे विद्ध होनेवाला जीव पशु नहीं, एक छोटा-सा लड़का था।

बच्चेकी तड़पन देखकर बादशाहको बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने बच्चेके पिताको खोजनेका आदेश दिया। चारों ओर सैनिक दौड़ पड़े। पिता एक खानमें काम कर रहा था। उसे लाकर बादशाहके सामने उपस्थित किया गया। पिताने अपने मासूम बच्चेको देखा। मुँहसे चीत्कार निकली और नेत्रोंसे टप्-टप् आँसू।

बादशाहने पिताको धीरज बँधाया और कहा—'बच्चेको घायल करनेका अपराध मुझसे हुआ है। जानवर समझकर मैंने तीर छोड़ा था, पर धोखा हुआ, तीर तुम्हारे बच्चेको लग गया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाहने तत्काल दो थालियाँ मँगवायीं; एक अशरफीसे भरी हुई थी और दूसरीमें तलवार रक्खी हुई थी। बादशाहने पितासे कहा—'यदि तुम चाहो तो थालमें रक्खी हुई अशरफियाँ लेकर अपना जीवन चलाओ और यदि तुम मुझे माफ करना न चाहो तो दूसरी थालीमें रक्खी हुई तलवार लेकर मेरा सिर धड़से अलग कर सकते हो।'

मजदूर पिता बादशाहकी न्यायप्रियताको देखकर दंग रह गया, किंतु वह उदात्त भावनाओंका व्यक्ति था। वह बादशाहके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—'जहाँपनाह! मुझे दोनों ही चीजें स्वीकार नहीं हैं। आप अपनी भूलके लिये अनुताप कर रहे हैं—इससे बड़ा दण्ड और क्या हो सकता है। बस! यह भूल जीवनमें फिर न दोहरायी जाय। केवल मनुष्य ही नहीं, जीवमात्रके प्रति आपके हृदयमें दयाभावना रहनी चाहिये।'

बादशाहने विनम्रताके साथ कहा—'तुम्हारा 'आदेश' शिरोधार्य है। सचमुच तुम दलित नहीं, महान् हो!'

(४)

रिक्शाचालककी ईमानदारी

बड़ौदा (गुजरात) के नये बाजारमें नरेन्द्र बाघेला नामक एक क्षत्रिय युवक रहता है। परिवारकी स्थिति सामान्य होनेके कारण वह रिक्शा चलाकर आजीविका अर्जन करता था।

गतवर्षकी घटना है। एक दिन वह स्टेशनके बाहर रिक्शा लिये खड़ा था कि ट्रेनसे आनेवाला एक यात्री अपना सूटकेस लिये हुए उसके रिक्शेमें आकर सवार हो गया। वह यात्रीको लेकर बड़ौदाके प्रमुख बाजारमें पहुँचा। यात्री अपने व्यवसायके कामसे आया था। बाजारके उतार-चढ़ावसे वह बहुत चिन्तित था। बाजारमें पहुँचते ही उसने रिक्शा-चालकको किरायेके पैसे दिये और स्वयं उतरकर बाजारमें चला गया। वह अपना सूटकेस उतारना भूल गया। नरेन्द्रने भी सूटकेसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह रिक्शा एक ओर खड़ा करके नयी सवारीकी प्रतीक्षा करने लगा। अचानक उसने देखा कि रिक्शेमें सूटकेस रखा हुआ है। वह हकबका गया। उसने सूटकेसको सँभाला तो पता चला कि उसमें ताला नहीं है। अतएव उसे खोलकर देखनेमें उसे असुविधा नहीं हुई। उसने ज्यों ही सूटकेस खोला—उसे सामने एक रूमालमें बँधे हुए कुछ नोट दिखायी दिये। उसने उस बंडलको खोला—उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा—तेईस हजार रुपयेके नोट उसमें बँधे थे! कुछ कीमती कपड़े भी शूटकेसमें थे। अब तो नरेन्द्रको चिन्ता हुई कि किसी भी प्रकार सूटकेसके मालिकको खोजा जाय। सूटकेसकी सँभाल करते हुए उसने पूरे बाजारके दो चक्कर लगाये, किंतु मालिकका कहीं भी पता न लगा।

तेईस हजार रुपये कोई कम नहीं थे। आजके भ्रष्टाचार एवं लूट-खसोटके युगमें अगर कोई दूसरा नरेन्द्र होता तो बड़ौदासे छूमन्तर होकर किसी बड़े शहरमें तरह-तरहके आमोद-प्रमोद करता। किंतु वह तो सच्चा 'नरेन्द्र' था। इतनी बड़ी रकम देखनेके बाद भी उसका चित्त चञ्चल नहीं हुआ। उसके मनमें इन रुपयोंसे भी कहीं अधिक ईमानदारीका मूल्य था। मालिकका पता नहीं मिलनेके कारण उसने नजदीकके पुलिस-स्टेशन—सयाजीगंजकी ओर अपना रिक्शा बढ़ाया। वहाँ पहुँचकर उसने पुलिस इन्सपेक्टरके समक्ष २३ हजार रुपयेवाला सूटकेस पेश कर दिया और रिपोर्ट लिखवाकर वह अपने कामपर निकल पड़ा।

इधर सूटकेसके मालिकको जब ख्याल आया कि रिक्शेमें सूटकेस रह गयी है, तब उसके होश उड़ गये। एक घंटेके बाद रिक्शेवालेका पता कैसे मिल सकता था? उसने नजदीकके पुलिस-स्टेशनपर जाकर रिपोर्ट लिखवा दी। एक घंटेमें सयाजीगंज-पुलिसस्टेशनसे शुभ समाचार मिला कि रिक्शा-ड्राइवरने वहाँ जाकर सूटकेस जमा कर दिया है।

सूचना मिलते ही सूटकेसका मालिक थानेपर उपस्थित हो गया। सूटकेसकी चीजोंका पूरा व्योरा उसने थानेके अधिकारीको लिखवा दिया। पुलिस-अधिकारीको पूरा संतोष हो गया कि सूटकेस उसीका है। उसने आवश्यक लिखा-पढ़ी करके सूटकेस यात्रीको सौंप दिया। रुपयेसे भरा सूटकेस प्राप्तकर यात्रीका हृदय गद्‌गद हो गया। यात्री तथा थानेके सभी अफसर-सिपाही रिक्शे चलानेवालेकी ईमानदारीकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

—विनोदकुमार राय पुरोहित, एम. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' एवं तत्सम्बन्धी साहित्य

	मूल्य
१-**श्रीरामचरितमानस**—मोटा टाइप, बृहदाकार, भाषाटीकासहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या ९८४, सजिल्द	.... १८.००
२-**श्रीरामचरितमानस**—मोटा टाइप, भाषाटीकासहित, सचित्र, पृष्ठ १२००, सजिल्द	.... ८.५०
३-**श्रीरामचरितमानस**—सटीक, मझला साइज, महीन टाइप, सचित्र, पृष्ठ १००८, सजिल्द	.... ४.००
४-**श्रीरामचरितमानस**—बड़े अक्षरोंमें केवल मूल पाठ, सचित्र, पृष्ठ ५१६, सजिल्द	.... ५.००
५-**श्रीरामचरितमानस**—मूल, मझला साइज, सचित्र, पृष्ठ ६०८	.... २.००
६-**श्रीरामचरितमानस**—मूल, गुटका साइज, पृष्ठ ६८८, सचित्र, सजिल्द	.... १.००
७-**श्रीरामचरितमानस**—बालकाण्ड—सटीक, पृष्ठ ३१२, सचित्र	.... १.२५
,, —अयोध्याकाण्ड—सटीक, पृष्ठ २६४, सचित्र	.... ०.९०
,, —अरण्यकाण्ड—मूल, पृष्ठ ४०	.... ०.२०
,, —सटीक, पृष्ठ ६४	.... ०.३०
,, —किष्किन्धाकाण्ड—सटीक, पृष्ठ ३६	.... ०.१५
,, —सुन्दरकाण्ड—मूल, पृष्ठ ३२	.... ०.१५
,, —सटीक, पृष्ठ ६०	.... ०.३०
,, —लङ्काकाण्ड—सटीक, पृष्ठ १३२	.... ०.६०
,, —उत्तरकाण्ड—सटीक, पृष्ठ १४४	.... ०.६०
८-**मानस-रहस्य**—सचित्र, पृष्ठ ५१२, मूल्य अजिल्द १.५०, सजिल्द	.... १.९०
९-**मानस-शंका-समाधान**—पृष्ठ १८४, सचित्र	.... ०.६०
१०-**मानस-पीयूष**—[सम्पादक—महात्मा श्रीअंजनीनन्दनशरणजी]	
,, —खण्ड १ (बालकाण्ड भाग १)	.... ९.००
,, ,, २ (,, ,, २)	.... १२.००
,, ,, ३ (,, ,, ३)	.... १३.००
,, ,, ४ (अयोध्याकाण्ड)	.... १४.००
,, ,, ५ (अरण्य तथा किष्किन्धाकाण्ड)	.... ८.५०
,, ,, ६ (सुन्दर तथा लङ्काकाण्ड)	.... १४.००
,, ,, ७ (उत्तरकाण्ड)	.... १०.५०

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनिये और बनाइये

(१) प्रतिवर्ष 'कल्याण'का मूल्य भेजनेकी बात समयपर स्मरण न रहनेके कारण वी० पी० द्वारा 'कल्याण' मिलनेमें देर हो जाती है, जिससे ग्राहकोंको क्षोभ होता है। इसलिये जो लोग भेज सकें, वे एक साथ रुपये भेजकर 'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बन सकते हैं--ऐसी योजना आठ-दस वर्षों पूर्व चालू की गयी थी। इस योजनाका लाभ उठाकर पर्याप्त संख्यामें लोग आजीवन ग्राहक बने थे। परंतु कतिपय कारणोंसे यह योजना गत दो-तीन वर्षोंसे स्थगित कर दी गयी थी। ग्राहकोंके आग्रहसे उसे पुनः चालू किया जा रहा है। एक साथ एक सौ पचीस रुपये देकर कोई भी 'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बन सकते हैं। इससे आजीवन ग्राहक बननेवाले जबतक रहेंगे और जबतक 'कल्याण' चलता रहेगा, उनको प्रतिवर्ष 'कल्याण' मिलता रहेगा। आजीवन ग्राहकका देहावसान हो जानेपर उनके उत्तराधिकारीको भी 'कल्याण' उसी रूपमें मिलता रहेगा।

(२) जो लोग प्रतिवर्ष सजिल्द विशेषाङ्क लेना चाहें, उन्हें १५०-०० रुपये भेजने चाहिये।

(३) भारतवर्षके बाहर (विदेश) का आजीवन ग्राहक-मूल्य अजिल्दके लिये १५०.०० रुपये या ८ पौंड १० पैंस और सजिल्दके लिये १७५.०० रुपये या ९ पौंड ५० पैंस है।

(४) मन्दिर, आश्रम, पुस्तकालय, मिल, कारखाना, उत्पादक या व्यापारीसंस्था, क्लब या अन्यान्य संस्था तथा फर्मोंको भी आजीवन ग्राहक बनाया जा सकता है।

(५) चेक या ड्राफ्ट--'व्यवस्थापक, गीताप्रेस, पो०--गीताप्रेस (गोरखपुर)'के नामसे भेजना चाहिये।

सभी प्रेमी ग्राहकों एवं पाठक-पाठिकाओंसे हमारा अनुरोध है कि वे इस योजनाका लाभ उठावें और स्वयं तो आजीवन ग्राहक बनें ही, विशेष चेष्टा करके अपने परिचित सज्जनों, सगे-सम्बन्धियों, इष्टमित्रों आदिको भी आजीवन ग्राहक बनावें। ऐसा करके वे गीताप्रेसके सत्साहित्य-प्रचार-कार्यमें सहयोग प्रदान करनेके साथ-साथ उन सज्जनोंकी भी सेवा करेंगे।

—व्यवस्थापक—'कल्याण'

श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

इस संस्थाकी संस्थापना लगभग ५२ वर्ष पूर्व ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रयत्नसे हुई थी। तबसे अबतक इसका कार्य सुचारुरूपसे चल रहा है। इसमें प्रवेश आदिके नियम इस प्रकार हैं--

प्रवेश-आयु--(१) आठसे ग्यारह वर्षतकके द्विज--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ब्रह्मचारी लिये जाते हैं।
(२) सोलह वर्षकी अवस्थातक ब्रह्मचारीको आश्रममें रखा जाता है।

पढ़ाई--संस्कृत--वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयकी प्रथमा परीक्षातक; अंग्रेजी--मैट्रिक (राजस्थान माध्यमिक शिक्षा-परिषद्), गीता--सम्पूर्ण (उत्तमा परीक्षातक); वेद--रुद्री, दण्डक, कर्मकाण्ड आदि।

संध्या अनिवार्य--ब्रह्मचारियोंके लिये उपनयन-संस्कारयुक्त होकर त्रिकाल-संध्या, गायत्री-जप तथा अग्निहोत्र करना एवं नियमित व्यायाम करना अनिवार्य है।

शुल्क--(१) ब्राह्मण, क्षत्रिय ब्रह्मचारीसे ३३.०० और वैश्य ब्रह्मचारीसे ३५.०० मासिक। इसमें शिक्षा, वस्त्र, औषध, भोजन, दूध आदि सबका व्यय सम्मिलित है। कम-से-कम छः मासका शुल्क अग्रिम देना पड़ता है। (२) ब्रह्मचारीके प्रवेशकालमें अभिभावकको १००.०० (एक सौ) रुपये जमानतके रूपमें जमा कराने पड़ते हैं, जो पूरी शिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मचारीके आश्रमसे निकलनेपर लौटा दिये जाते हैं; किंतु ब्रह्मचारीको बीचमें निकालनेपर ये रुपये वापस नहीं किये जाते। छः मासतक ब्रह्मचारीको अस्थायी भर्तीमें रखा जाता है, तदनन्तर योग्य सिद्ध होनेपर स्थायी भर्तीमें ले लिया जाता है। अपने सुयोग्य बालकको इस आश्रममें भर्ती करानेकी इच्छा रखनेवाले महानुभावोंको चाहिये कि वे निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें। ब्रह्मचारियोंकी भर्ती आषाढ़ शुक्ल ११, तदनुसार ३० जून, १९७४ तक की जायगी।

—मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,६५,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख २०२७, अप्रैल १९७०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें वरदहस्त श्रीकृष्ण [कविता]	८२१
२—कल्याण ('शिव')	८२२
३—कृपाके विलास (अनन्तश्री स्वामीजी अखण्डानन्दजी सरस्वती)	८२३
४—सबमें प्रभुको देखकर सबका आदर-सम्मान करो [कविता]	८२८
५—जप और उसका प्रभाव [पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश] (प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी, एडवोकेट)	८२९
६—तेरा प्यार !···तेरा प्यार !!···तेरा प्यार !!! [गद्य-काव्य] (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा, बी० ए०, एल-एल्० बी०)	८३०
७—परमार्थ-पत्रावली (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अप्रकाशित पत्र)	८३१
८—आस्तिकताकी कसौटी	८३५
९—मनकी हलचलका कारण क्या है ? [अनन्तश्री स्वामीजी रामसुखदासजीके प्रवचनसे]	८३७
१०—उत्तराखण्डकी भिखारिन बालिका [Truth]	८३७
११—सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन	८३८
१२—पाश्चात्त्य जगत्में श्रीकृष्णभक्तिका विस्तार—'हरे कृष्ण हरे राम' की तुमुल ध्वनि	८४२
१३—और यदि वहाँ भी ऐसा ही हुआ तो···? [ऐतिहासिक कहानी] (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	८४६
१४—अद्वैत-वेदान्तमें पुनर्जन्म एवं परलोकका स्वरूप (डा० श्रीराममूर्तिजी शर्मा, एम्० ए० [संस्कृत-हिंदी], शास्त्री, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)	८४९
१५—प्रार्थना (पण्डित श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव, एडवोकेट)	८५१
१६—दुःख (श्रीधर्मेन्द्रनाथजी वेदालंकार, शास्त्री, नैरोबी, केन्या)	८५३
१७—भारतीय धर्म तथा लोक-परलोकका प्रमाण (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)	८५५
१८—चायका मूल्य [कहानी—सत्य घटनाके आधारपर] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	८५९
१९—बोलनेमें पाँच बातका ध्यान रक्खो (स्पिरिच्युअल कंवट)	८६१
२०—एक प्रश्नका उत्तर (श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा)	८६२
२१—साधुताके लक्षण (श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)	८६४
२२—क्रोधकी परीक्षा	८६५
२३—परमार्थकी पगडंडियाँ	८६६
२४—बोध-कथाएँ (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)	८७१
२५—पढ़ो, समझो और करो	८७२

चित्र-सूची

१—मुरलीकी मस्तीमें युगल	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२—कुरुक्षेत्रके रणाङ्गणमें वरदहस्त	(तिरंगा)	८२१
३—न्यूयार्क अमेरिकामें वहाँके नर-नारी भक्त कीर्तन कर रहे हैं।	(सादा)	८४४
४—लंदनके एक पार्कमें वहाँके नर-नारी भक्त कीर्तन कर रहे हैं।	(,,)	८४४
५—लास एंजिल्सके मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णकी मूर्ति	(,,)	८४५
६—लास एंजिल्सके मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति	(,,)	८४५
७—मन्दिरमें कीर्तन करता नर-नारियोंकी भीड़का एक अंश	(,,)	८४५
८—न्यूयार्ककी सड़कोंपर कीर्तन और नृत्य	(,,)	८४५

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरुक्षेत्रके रणाङ्गणमें वरदहस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

देवादिदेव भगवान् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद् रामाय ते नमः ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च । असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥

वर्ष ४४ } गोरखपुर, सौर वैशाख २०२७, अप्रैल १९७० { संख्या ४
पूर्ण संख्या ५२१

कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें वरदहस्त श्रीकृष्ण

अज अविनाशी अखिल भुवनपति मायापति स्वतन्त्र भगवान ।
प्रकट हुए निज लीलासे ही चिदानन्दविग्रह द्युतिमान ॥
लीला ललित दिव्य व्रजमें कर, भक्तोंको कर शुचि रसदान ।
पहुँचे द्वारावती, रचे लीलाके अद्भुत अमित विधान ॥
कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें बने पार्थ-सारथि तज मान ।
शरणागतको वरदहस्त हो करते अक्षय अभय-प्रदान ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—मनुष्य-जन्मका एकमात्र उद्देश्य है—उस परमार्थ गतिपर पहुँच जाना, जिसे भगवत्प्राप्ति, भगवत्प्रेम-प्राप्ति, मोक्षलाभ, मुक्ति, आत्मसाक्षात्कार आदि भिन्न-भिन्न अनेक नामोंसे निर्दिष्ट किया जाता है। इसीलिये जीवको भगवत्कृपा तथा उसके पुण्यबलसे मनुष्य-शरीर मिलता है। मनुष्य कर्मयोनि है, इसमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता है। कौन-से कर्म कर्तव्य हैं और कौन-से त्याज्य हैं, यह बतलानेके लिये विधि-निषेधात्मक शास्त्र मनुष्यको दिये गये हैं।

याद रक्खो—कर्मके प्रधानतया तीन परिणाम होते हैं—(१) नरक, नारकी योनि, आसुरी शरीर आदिकी प्राप्ति—मनुष्य-शरीर मिलनेपर भी कर्मानुसार न्यूनाधिक रूपसे अङ्गहीनता, विकलाङ्गता, रोग, दरिद्रता, अभाव, अपमान, भय, विषाद, दासत्व, भाँति-भाँतिके कष्ट और विपत्तियोंसे घिरे रहना। (२) स्वर्गादि लोक, दिव्य योनि, उत्तम शरीर आदिकी प्राप्ति और मानव-शरीरमें कर्मानुसार न्यूनाधिकरूपसे सर्वाङ्ग-पूर्णता, स्वास्थ्य, समृद्धि, धनैश्वर्य, अधिकार, सम्मान, निर्भयता, प्रसन्नता, भाँति-भाँतिके भोग-सुख-सम्पत्तियोंका मिलते रहना। (३) जीवन्मुक्ति, भगवत्प्राप्ति, भगवद्धामकी प्राप्ति, मोक्ष—मुक्ति, निर्वाण आदि विभिन्न नामोंसे निर्दिष्ट परम गति-लाभ।

याद रक्खो—जिन कर्मोंके परिणाम नरक—नारकी योनि आदि हैं, वे ही निषिद्ध या पापकर्म हैं। अज्ञान, ईश्वर तथा परलोकमें अविश्वास, धर्ममें अनास्था, मिथ्या ममता-आसक्ति-कामना, द्रोह-दम्भ-द्वेष, इन्द्रियोंके दासत्व, भोगोंमें सौभाग्य-सुखकी आस्था; धर्म, राष्ट्र, सम्प्रदाय, प्रान्त, जाति, वर्ण, भाषा, भूमिकी सीमा, दल, दलान्तर्गत दल आदिके मिथ्याभिमानवश सीमित नीच स्वार्थके कारण मनुष्य भविष्यके परिणामको भूलकर पापकर्ममें प्रवृत्त होता है और बार-बार प्रवृत्त होनेपर उसीमें गौरव-बोध करने लगता है। वह क्रमशः पूरा नास्तिक होकर विवेकहीन पशु तथा घोर विषयासक्त असुर-राक्षस-पिशाचसे बढ़कर नीच-स्वभाव बन जाता है और मानव-योनिमें प्राप्त कर्माधिकार, साधन-सामग्री आदिका पूर्ण दुरुपयोग कर अपने भविष्यको दीर्घकालके लिये नष्ट-भ्रष्ट और दुःख-दावानलसे जलनेवाला बना लेता है। उसकी मिथ्या मान्यता या उसी विचारके बहुसंख्यक लोगोंके बहुमतसे निश्चित मिथ्या मान्यतासे सत्य सिद्धान्त-पर—कर्मानुसार परलोक-पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरकादि लोकों, योनियों एवं परिस्थितियोंकी प्राप्तिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कर्मानुसार बाध्य होकर उसे कर्मफलरूपमें उन सबका भोग करना ही पड़ता है। वह किसी प्रकार भी उनसे छूट नहीं सकता।

याद रक्खो—जैसे पाप—निषिद्ध अपवित्र कर्मका परिणाम नरकादि-फल-भोग होता है, वैसे ही पुण्य—वैध पवित्र कर्मोंका परिणाम स्वर्गादि-सुखभोग होता है और यही पुण्यकर्म यदि ममता, कामना, आसक्तिका त्याग करके लोकहितकी दृष्टिसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ, भगवान्‌की पूजाके लिये किये जायँ तो मानव-जीवनके परम और चरम उद्देश्यकी सिद्धिरूप भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये पापकर्मका तो सर्वथा ही त्याग करें, पुण्यकर्म भी सकामभावसे न करें; क्योंकि वे भी बन्धनकारक ही हैं और निष्कामभावसे भगवत्सेवा या भगवत्प्रीतिके लिये पुण्य-पवित्र कर्मोंका आचरण करें।

याद रक्खो—मानव-जीवन बहुत दुर्लभ है और है क्षणभङ्गुर; पता नहीं, कब समाप्त हो जाय। इसलिये जरा भी समय व्यर्थ न खोकर इसी कामको सबसे पहला तथा सबसे प्रधान समझकर पूर्णरूपसे इसीमें लग जायँ। मन-बुद्धि-शरीरसे जितनी भी आभ्यन्तरिक और बाह्य क्रिया हो—सब केवल और केवल भगवत्प्रीत्यर्थ हो; मनकी सारी ममता, सारी आसक्ति केवल श्रीभगवान्‌में हो और उन्हींके चरणकमलोंकी निरन्तर संनिधि और स्मृति रहे—यही एकमात्र कामना हो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपाके विलास

(लेखक—अनन्तश्री स्वामीजी अखण्डानन्दजी सरस्वती)

१. ईश्वरवादी मानवसमाजमें यह सिद्धान्त सर्वसम्मतिसे मान्य है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अपराधीन, परमप्रेमास्पद एवं परम कृपालु है। किसी-किसी सम्प्रदायमें ऐसा स्वीकार करते हैं कि ईश्वर सर्वथा स्वतन्त्र होनेपर भी प्रेमके परतन्त्र है। इसमें यह प्रश्न है कि ईश्वर जीवके हृदयमें रहनेवाले प्रेमके परतन्त्र है अथवा अपने हृदयमें रहनेवाले प्रेमके ? जीव जैसे भगवान्के सौन्दर्य, औदार्य, सौशील्य, माधुर्य आदि सद्गुणोंको देखकर उनपर मुग्ध हो जाता है, तो ईश्वर जीवके किन गुणोंको देखकर उसके प्रति मुग्ध होता है ? वस्तुतः ईश्वर किसी अन्यके गुणोंको देखकर मुग्ध नहीं होता। उसमें ही उसका स्वरूपसिद्ध कोई सहज स्वाभाविक गुण है कि वह स्वयं अपनी कृपा बरसाने लगता है—'मेघ जलमय प्रभु कृपामय', 'कृपैव प्रभुतां गता', 'प्रभु मूरति कृपामयी है।' प्राचीन ग्रन्थोंमें कारुण्य, कृपा, अनुकम्पा, अनुग्रह, पुष्टि, दया आदिके नामसे एक ही वस्तु प्रसिद्ध है और वह है—भगवान्का सहज स्वभाव। वह नैमित्तिक नहीं है, भागवत-आनन्दका सरल-सरल, तरल-तरल पावन-प्रवाह है।

२. भगवत्सम्बन्धी अनेक प्रश्नों और समस्याओंका समाधान उनकी कृपामें ही निहित है, जैसे निराकार साकार क्यों होता है ? अव्यक्त व्यक्तिके रूपमें क्यों प्रकट होता है ? पूर्ण परिच्छिन्न कैसे होता है ? अकाल कालकी धारामें कैसे आ जाता है ? कारण कार्यके रूपमें कैसे परिणत होता है ? वह मनुष्य, पशु-पक्षी आदिके रूपमें क्यों अवतीर्ण होता है ? असम्बन्ध होनेपर भी सम्बन्धी क्यों बनता है ? इन सबका और ऐसी अनेक मानसिक विकल्प ग्रन्थियोंका, बौद्धिक उलझनोंका एक ही समाधान है—दृश्यके अनेक नामरूपमें अजस्र प्रवहमान एवं तरङ्गायमान कृपा-स्रोतस्विनीकी अखण्ड धारा। सत् पुरुष अपनी अन्तर्दर्शिनी, तत्त्वावगाहिनी दृष्टिसे इसका संतत दर्शन करते रहते हैं। कृपा एक दर्शन है, भाव नहीं। श्रीमद्भागवतमें अनुकम्पाके 'समीक्षण'का वर्णन है, 'प्रतीक्षण'का नहीं। समीक्षण प्राप्तका होता है और प्रतीक्षण अप्राप्तका। सम्पूर्ण जीव-जगत्का कृपामय परमेश्वरमें ही उन्मज्जन-निमज्जन हो रहा है। कृपा-प्राप्तिकी लालसा मत करो, उसको पहचानो।

३. श्रीमद्भागवतके व्याख्याकार महापुरुषोंने कहा है कि जब श्रीयशोदा माताने बालकृष्णको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी उठायी तो भगवान्की स्वतःसिद्ध अनेक शक्तियाँ उसमें बाधा डालनेके लिये उद्यत हो गयीं। व्यापकता कहती थी कि जिसका ओर-छोर नहीं, वह रस्सीकी लपेटमें कैसे आयेगा ? पूर्णता कहती थी कि जिसमें बाहर-भीतर नहीं, वह रस्सीके भीतर कैसे अँटेगा ? असंगता घोषणा कर रही थी कि प्रभुके शरीरके साथ रस्सीका संग असम्भव है। अद्वितीयताने स्पष्ट मना कर दिया कि स्वमें स्वका क्या बन्धन ? बन्धन परके साथ होता है। इस आपाधापीके समय श्रीमती भगवती भास्वती कृपादेवी मन-ही-मन मुसकुरा रही थीं। उन्होंने एक बार अपनी तिरछी चितवनसे देखा और सब शक्तियाँ निष्प्राण-सी धरी-की-धरी रह गयीं। बालकृष्ण प्रभु बन्धनमें आ गये। 'दामोदर' नाम-रूप प्रकट हो गया। भक्त केवल प्रेमकी रस्सीसे ही नहीं, पशु बाँधनेकी रस्सीसे भी प्रभुको बाँध लेते हैं। भक्तमें इतना सामर्थ्य कहाँसे आता है ? इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नका उत्तर है—'कृपयासीत् स्वबन्धने ।' ठीक ही है, भगवती कृपा ही 'शक्ति-चक्रवर्तिनी' हैं, भगवान्‌की प्रेयसी पटरानी ।

४. जब घर-बाहर—सर्वत्र प्रलयाग्निकी ज्वाला धधकने लगती है, अपने पाप-तापकी मायासे सम्पूर्ण विश्व झुलसने लगता है, उस समय एक सच्ची माँ जैसे अपने शिशुओंको गोदमें उठा लेती है, वक्षःस्थलसे चिपका लेती है, उनको बाहरकी आती वायु भी नहीं लगने देती, उनकी शय्या बन जाती है, अपने छातीके दूधसे ही उनका पालन-पोषण करती है, वैसे ही महाप्रलयके समय भगवान् सब जीवोंको अपनी ही सत्ता, ज्ञान और आनन्दमें लीन कर लेते हैं । उनके संस्कार-शेष बीजके सिवा अर्थात् उनके जीवत्वके सिवा और कुछ भी शेष नहीं छोड़ते । जैसे माँके गर्भमें शिशु समग्र सम्पोषण और संवर्द्धन प्राप्त करता है, उसी प्रकार यह जीव ईश्वरके गर्भमें विश्राम, आराम, शान्ति और पुष्टि प्राप्त करता है । महाप्रलयके समय भी इस प्रकार जीवकी शय्या बनकर उसे आराम देना और प्रलय-कालानलके तापसे बचा लेना—यह भगवान्‌की कृपाका ही एक स्वरूप है । यह 'जननी कृपा' है और जीवके जीवनमें भी सर्वदा ही अनुगत रहती है । जब-जब जीवका पौधा मुरझाने लगता है, तब-तब उसकी वृद्धि-समृद्धि एवं पुष्टि-तुष्टिके लिये वह जननी ही 'उज्जीवनी' बनकर आती है । आप किसी भी जीवके जीवनमें इस माँका दर्शन कर सकते हैं । यह उपवास और भोजन, शोषण और पोषण, प्रक्षालन और स्नेहन—सभी प्रक्रियाओंसे जीवका हित करती रहती है । इसको पहचाननेमें देर-सबेर हो सकती है, परंतु इसके क्रियान्वयमें कभी कोई रुकावट नहीं पड़ती ।

५. प्रलयके समय जीव शयनमें होता है । विस्मृति और अज्ञानका गहरा पर्दा इसको चारों ओरसे आच्छादित करके रखता है । उसे कोई दुःख-चिन्ता नहीं है—यह तो ठीक है । परंतु इस शयन-दशामें कुछ धर्म, अर्थ, भोग, मोक्ष भी तो नहीं है । कोई शिशु सोता ही रहे निद्रा-तन्द्रामें अलसाया हुआ, निकम्मा पड़ा रहे—यह बात किसी भी वात्सल्यमयी जननीको कैसे रुचिकर हो सकती है ? वह चाहती है कि हमारा बेटा उठे, भले-बुरेको पहचाने, कुछ करे, कुछ कमाये, अपने पौरुषसे कुछ भोगे । भला कौन ऐसी माँ होगी, जो यह न चाहे ? वही माँ अपने बालकको जगाती है । एक-एकको अलग-अलग जगाती है । एक साथ जगाती है । सबके आलस्य भगाती है । स्नान-मार्जन कराती है । हाँ, वही माँ जो जननी थी, 'प्रबोधनी' हो गयी । वह प्रबोधनी कौन है ? वह प्रभुकी कृपा है । यदि यह जीव प्रलयकी प्रगाढ़ निद्रामें सोता ही रहता तो क्या इसको किसी पुरुषार्थकी प्राप्ति होती ? सोते हुए जीवोंको जागरण-दशामें लाना यह प्रबोधनी कृपा है ।

६. श्रीमद्भागवतमें, सोते हुए ग्वाल-बालोंको जगानेके लिये स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् शृङ्ग-ध्वनि करते हुए आते हैं—'प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा ।' जागरणके पश्चात् श्रीकृष्णके साथ ही वे भव-वनमें प्रवेश करते हैं । अनेक रूप-प्रपञ्चका दर्शन होता है । यदि ईश्वर चैतन्य साथ न हो तो न प्रपञ्चका दर्शन हो और न उसकी क्रीड़ा हो, इसलिये यहाँ आकर कृपा ही 'प्रपञ्चनी' हो जाती है, अर्थात् अनेक प्रकारके दृश्योंका सर्जन-विसर्जन करने लगती है । जो कुछ कारण-शरीरमें लुप्त, गुप्त या सुप्त था, उसको वह विस्तारके साथ फैलाती है । अन्तःकरण, बहिःकरण, विषय, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश, मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि सभी स्थूल-सूक्ष्म विषयोंका विस्तार, प्रचार-प्रसार प्रपञ्चनी कृपा ही करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अविद्या-निद्रामें सुषुप्त जीवको जहाँ कुछ भी प्रतिभात नहीं होता था, वहाँ अब सब कुछ प्रतीत होने लगा। शिशुके नेत्र खुल गये, मन काम करने लगा। यह जो दृश्य, दर्शनकी सामान्य शक्ति है, वह प्रबोधनी है और जो दृश्यकी अभिव्यक्ति है, वह प्रपञ्चनी है।

७. अब कृपाका एक नया विलास प्रकाशमें आता है। बिना इस कृपाकी अभिव्यक्तिके कोई भी प्राणी अपनी अनुकूलता और प्रतिकूलताको, सुपथ्य और कुपथ्यको नहीं जान सकता। वृक्ष अपनी वृद्धिके लिये कहाँसे मुड़े? चींटी शक्करके साथ कैसे जुड़े? पक्षी कौन-सा चारा खाये? पशु कौन-सी घास चरे? यह भोजन जीवनका साधन है और यह मरणका—यह कैसे जान पड़े? करना न करना, खाना न खाना, छिपना प्रकट होना, बोलना न बोलना—ये सब प्राणियोंको कैसे ज्ञात हो? सचमुच वही वात्सल्यमयी जननी कृपा-प्रशिक्षणी रूप धारण करके जीवनमें विशेष ज्ञानकी एक धारा प्रवाहित करती है। अग्निका स्पर्श दाहक है। माताका वक्षःस्थल वाहक है। पाँवसे चलना, हाथसे खाना, प्यास लगनेपर जल पीना, इष्ट-अनिष्टकी पहचान कराना—यह सब भगवान्की 'प्रशिक्षणी' कृपाका विलास है।

८. इसी प्रशिक्षणसे जीवनमें प्रणयन अर्थात् निर्माणका अवतरण होता है। जीवनके प्रणयनका मूल प्रशिक्षण ही है। इसके बिना जीव-जगत् सब अंधे ही रहें। अन्तरमें बैठकर प्रवृत्ति और निवृत्तिके लिये उन्मुख कौन करता है? वह अन्तःप्रविष्ट शास्ताकी प्रशासन शक्ति ही है। वह सभी वस्तुओं, व्यक्तियों और भावोंका परस्पर विलक्षण विशेष-विशेष रूप, आकृति, गुण, धर्म, स्वभावकी रचनामें भिन्न-भिन्न प्रकारका उत्पादन, सम्भरण और संहरण क्यों करती है? वह किसीके पूर्व-संस्कारोंका अनुगमन अथवा नवीनीकरण ही क्यों करती है? विचारदृष्टिसे देखनेपर वह शक्ति किसी हेतु, निमित्त या प्रयोजनसे प्रेरित नहीं जान पड़ती। जब शक्ति अहैतुक ही कार्य करती है तो 'प्रणयनी' कृपाके सिवा उसके लिये दूसरा नाम नहीं हो सकता।

९. इसी प्रणयनके अनन्तर इष्ट-अनिष्टका भाव परिपक्व हो जाता है; तब इष्टकी प्राप्तिकी इच्छा होती है और अनिष्टको दूर करनेकी। यह इच्छा ही 'अभिलाषणी' कृपाका रूप है। जो अभिलाष देता है, वही प्राप्त भी कराता है और प्राप्तिके साधन भी देता है। धर्म, अर्थ, काम—कुछ पाना है। उसके लिये लौकिक-वैदिक कर्म चाहिये। कर्मके कारण उपकरण चाहिये। कर्मका अधिकारी कर्ता चाहिये। उपयुक्त स्थान और समय चाहिये। सहायक और सामग्री चाहिये। फलकी प्राप्तिके साथ-साथ उसमें रुचि चाहिये। उसके भोगके योग्य शरीर चाहिये। निर्विघ्न निर्वाह चाहिये। विशेष ज्ञान चाहिये। यह सब लेकर कौन आता है? प्रभुकी 'प्रापणी' कृपाके ही ये भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह है सर्वदा, सर्वत्र, सबपर; परंतु पहचानता है कोई-कोई।

१०. अनुकूल अथवा प्रतिकूल वस्तुकी प्राप्ति होनेपर दातापर दृष्टि जानी चाहिये, परंतु कुछ ऐसी मोहमयी लीला चल रही है कि अनुकूलमें राग हो जाता है, प्रतिकूलमें द्वेष और दातापर दृष्टि नहीं जाती। रागसे पक्षपात और द्वेषसे क्रूरताका जन्म होता है। रागमें स्वाद और द्वेषमें कटुता; परंतु ऐसा क्यों होता है? ऐसी दशामें प्रभुकी कृपा कहाँ प्रसुप्त हो जाती है? गम्भीरतासे देखो तो वह कहीं जाती नहीं है। हमारी स्वतन्त्र विवेकशक्तिको जाग्रत् करती रहती है। क्या कल्पित गणित ठीक-ठीक सीख लेनेपर वास्तविक गणितका साधन नहीं बनता? बिना सुख-दुःखके झकोरे सहन किये किसके जीवनमें स्फूर्तिका उदय हुआ है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी हम मान लेते हैं कि राग-द्वेष विवेककी ओर नहीं, मूर्च्छा अथवा मोहकी ओर ढकेलते हैं। एक ऐसी मोहनी माया छा जाती है कि उससे देवता-दैत्य ही नहीं, शिव भी मोहित हो जाते हैं। यह मोहनी आत्माकी अक्षुण्ण प्रकाश-शक्तिपर ही आधारित है। जो मोहनी देवता-दैत्य—दोनोंके लिये 'लोभनी' है, वही फलकी प्राप्ति और अप्राप्ति—दोनों ही दशामें 'क्षोभणी' हो जाती है और परिणामतः देवासुर-संग्राम होता है। इस संग्राममें कृपा भक्तके प्रति 'उत्कर्षणी' और अभक्तके प्रति 'अपकर्षणी' होकर प्रकट होती है। यही दैत्यराज बलिके भी सर्वस्वात्मसमर्पण और भगवद्वशीकरणमें हेतु बनती है। प्रह्लाद इसको पहचानते हैं, बलिकी धर्मपत्नी भी। यह 'मोहनी' कृपा किसीको जहाँ-का-तहाँ जड बना देती है और 'रोधनी' संज्ञा धारण करती है। किसीके मनमें विरोध उत्पन्न करके 'विरोधनी' बन जाती है और उसका स्मरणोद्दीप्त मन प्रभुके सम्मुख कर देती है। इस प्रक्रियामें जो लोग प्रभुके कृपा-वैभवको देखकर मुग्ध होने लगते हैं, उन्हें वह प्रभुके सम्मुख कर देती है और 'अनुरोधनी' बन जाती है।

११. यह मोहनी किस-किस विलक्षण और विचक्षण-रीतिसे विभिन्न लक्षण जीवोंको संसारकी विविध प्रवृत्तियोंमें लगाकर 'प्रवर्तनी'का काम करती है और भिन्न-भिन्न योनियोंमें डालकर परिवर्तनीका रूप धारण करती है। किसी-किसीको पूर्वावस्थामें लौटाकर अपनेको 'परावर्तनी' बना लेती है। यह पृथक्-पृथक् निरूपण करना शक्य नहीं है। संसारमें जितनी क्रिया है, भाव है, संज्ञा है—सभी इस मोहनीके नवनवायमान 'अभिव्यञ्जनी'के ही रूपान्तरण हैं। जो इनके बाह्य स्वाङ्गके रंगमें ही अपने अन्तरङ्गको रँग लेता है, वह चक्रवातमें तृणके समान उड़ता-पड़ता रहता है और जो इसके अन्तरङ्गमें विराजमान करुणा-वरुणालय प्रभुके तरङ्गायित रूपको देख लेता है, वह क्षण-क्षण उनका दर्शन करके आनन्दमग्न रहता है।

१२. प्रभुकी कृपाका एक रूप है—'आकर्षणी'। परंतु वह प्रारम्भमें 'विकर्षणी'का रूप ग्रहण करके आता है। विकर्षणी भी अपना सहज सौरभ तब प्रकट करती है, जब वह तापनी होकर हृदयमें प्रपञ्च-संवेदनके प्रति 'तापनी' बन चुकती है। कहनेका अभिप्राय यह है कि जब ईश्वर-वियोगिनी वृत्ति प्रपञ्च-संयोगमें ताप और ज्वाला-का अनुभव करने लगती है—संसारकी सुरभित वस्तुमें भी दुरभिसंधिकी शङ्का होती है, रसमें भी विष घोला हुआ जान पड़ता है, सरूपतामें छिपी कुरूपता दीखने लगती है, सुकुमार मारका दूत लगने लगता है, मधुर स्वर सुख-विधुरताके कर्णभेदी ध्वनिसदृश प्रतीत होने लगते हैं और प्रिय-सम्बन्ध बन्धन लगने लगते हैं। तब यह तापनी संसारकी ओरसे विकर्षण करके प्रभुकी आकर्षण-धारामें डाल देती है। अब ऐसा लगने लगता है कि कोई मेरा प्रेमी है। वह मुझे अपनी ओर खींच रहा है बलात्। मेरा वास्तविक प्रियतम वही है। मेरा निवास-स्थान उसीके पास है। इतने दिनोंतक मैंने घोर अन्धकारमें, पराये घरमें जीवन व्यतीत किया है। मैंने भ्रमवश दुःखको सुख माना है। मैं जहाँ हूँ, वहाँ शान्ति नहीं है, प्रकाश नहीं है, सुख नहीं है। मुझे अपने प्रियतमके उस रसमय, मधुमय प्रदेशमें चलना चाहिये, जहाँ बस वही-वह विहार करता है।

१३. जब इस प्रकारके संकल्प उठने लगते हैं तब इनके प्रवाहमें वासनाके मल धुलने लगते हैं। कृपा 'क्षालनी' होकर आ जाती है और धीरे-धीरे अन्तर्देश पवित्र होने लगता है। वह कृपा 'द्रावणी' और 'स्नेहनी' भी बनती है। प्रभुके लिये तीव्र व्याकुलताकी ज्वालासे वह अन्तःकरणको द्रुत करती है और उसमें परमानन्द-मय प्रभुके लिये एक प्रकारकी स्निग्धता उत्पन्न करती है। इस क्षालन, द्रावण और स्नेहनकी प्रक्रियाके बिना हृदयमें रासायनिक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता और उसमें भगवदाकार होनेकी योग्यता नहीं होती। वासनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा आकार बना देती हैं। ममता कठोर बनाती है और अन्योन्यमुखता रुक्ष करती है। इन तीनों दोषोंकी निवृत्तिके लिये कृपा उक्त तीनों रूप धारण करती है और क्षालित, द्रावित एवं स्निग्ध हृदयमें भगवान्‌के प्रासादिक रूपका अनुभव कराती है। यही उसका एक नाम 'प्रसादनी' भी हो जाता है।

१४. इस अवस्थामें ईश्वरके जिस स्वरूपका अनुभव होता है, वह अत्यन्त विविक्त एवं स्पष्ट नहीं होता; क्योंकि वासनाओंके शान्त हो जानेपर भी अविद्याके संस्कार बने रहते हैं, परंतु हृदय शुद्ध होनेके कारण ईश्वरको सम्पूर्ण रूपसे अपना विषय बनानेके लिये एक दिव्य वृत्तिका उदय होता है। उसमें व्याकुलता नहीं है। दाह और ताप भी नहीं है, परंतु एक सम्पूर्ण अनुभूतिके लिये आन्तरिक प्रयत्न होता रहता है। इस प्रयत्नको 'अन्वेषणी', 'विवेचनी' अथवा 'जिज्ञासनी' कृपाका नाम दिया जा सकता है। इसमें अपने अन्वेष्य अथवा अनुसंधेय वस्तुके अतिरिक्त किसी और विषयकी ओर चिन्तनकी धारा नहीं गिरती। परिणामतः 'प्रकाशनी' कृपा अभिव्यक्त हो जाती है। उस समय अपने अन्तः-करणके ही सूक्ष्मतम आधार प्रदेशमें भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति होने लगती है। वह स्वरूप न घटादिके समान प्रत्यक्ष होता है और न स्वर्गादिके समान परोक्ष। वस्तुतः वह अवेद्य अपरोक्ष ही होता है, परंतु अन्वेषणीसे पृथक्, विवेचनीसे स्वरूप और जिज्ञासनीसे प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न ब्रह्मके रूपमें अनुभव होता है। इस अनुभूतिको 'मेलनी' की संज्ञा दी जा सकती है; क्योंकि जिसका अनुसंधान कर रहे थे वह अब मिल गया है। यह मेलनी ऐसी है कि फिर वियोजनी अथवा संयोजनी वृत्तिका संसर्ग नहीं होता; क्योंकि वियोग-संयोगकी कल्पनाके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। कर्मके नष्ट होनेपर फलका नाश अथवा ह्रास होता है, किंतु प्रमाण वृत्तिके रहने, न रहनेका प्रमेय वस्तुपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वस्तुके लिये स्मरणी-विस्मरणी भी अकिंचित्कर है। भक्तिमार्गसे भी मेलनी केवल नित्य सम्बन्धकी अभिव्यञ्जनी होती है, उत्पादनी नहीं।

१५. इसमें संदेह नहीं कि यह सर्वविध बन्धनसे मुक्त कर देती है, चाहे इसका रूप कुछ भी क्यों न हो? इसलिये मेलनीका ही एक नाम 'मोचनी' हो जाता है। यह अनात्मासे, अनिष्टसे, द्वैतभ्रमसे सर्वथा मुक्त करनेमें समर्थ है। इसके बाद तीन रूप प्रकट होते हैं—'शमनी'में सम्पूर्ण वृत्तियोंकी उपशान्ति होकर प्रपञ्चका अभाव हो जाता है। 'स्वच्छन्दनीमें' वृत्तियोंकी प्रतीतिमात्र उपस्थिति-अनुपस्थितिका कोई महत्त्व नहीं रहता और 'ह्लादनी' रसिक, रस्य और रसनको परमा-नन्द, एकरस कर देती है। तब भूमि, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, पर्वत, नदी, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, समीर, आकाश, मन, भोक्ता, भोग्य, कर्ता, कर्म—कहाँतक गिनायें—सब कुछ भगवन्मय हो जाता है। धाम, नाम, रूप, लीला, गुण, स्वभाव, दुर्जन, सज्जन—सब कुछ रस-स्वरूप परमात्माकी निर्माय लीलामात्र होते हैं। यह ह्लादनी कभी 'प्रसादनी', कभी 'अभिसारणी' और कभी 'माननी' होकर आती है। सुखकी व्यञ्जनाके लिये मनाती है। मिलनेके लिये नदीकी तरह बहती है। आनन्दधारामें हिम-शिलाके समान मान करके बैठ जाती है। यह चाहे जो रूप धारण करे, रहती है—'भावनी', 'रञ्जनी', 'तर्पणी, और 'नन्दनी'। चाहे आँख-भौं चढ़ी हो, चाहे प्रसन्न; वह प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये अपनी प्रियताकी अभिव्यक्ति ही होती है; क्योंकि अब आनन्द-रसके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसीसे यह कभी मिलकर 'मोदनी' दिखाती है तो कभी 'मादनी' दीखती है। संयोग और वियोग घुल-मिलकर एक हो चुके होते हैं और उनकी आकृति-विशेष होनेपर भी तत्त्व विशेष नहीं होता। वह रस-विशेषका उल्लास है, प्रेमका प्रकाश है, प्रीतिमहार्णवके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरङ्ग हैं; कभी दो हैं, कभी एक हैं। वहाँ 'कभी' है, परंतु काल नहीं। 'वहाँ' है; परंतु देश नहीं। दो हैं परंतु द्वित्व नहीं। यह 'सरूपणी' कृपा अभेदस्वरूपा ही है।

१६. इस कृपाका स्वरूप देश-काल-वस्तु-व्यक्तिसे परे भी है और उनमें अनुस्यूत भी है। वस्तुतः कृपाके अतिरिक्त और कोई महत्ता, सत्ता नहीं है। वह अरूपिणी रहकर सर्वरूपमें प्रकाशित होती है। कृपा और कृपालु दो तत्त्व नहीं हैं। जब, जहाँ, जो कृपालुका स्वरूप है, 'तब' वहाँ, वही कृपाका स्वरूप है। आत्मा-परमात्माका भेद और अभेद—दोनों ही कृपा हैं। जब सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च अन्धतमसाच्छन्न होता है, तब क्या हमारे नेत्रोंके भीतरसे सूर्य-ज्योति बेरोक-टोक झाँकती हुई नहीं ज्ञात होती? अन्धकारके पीछे क्या सूर्यमण्डल जगमगाता हुआ नहीं होता? अन्धकार, दुःख, मृत्युके आगे-पीछे सर्वत्र वही मङ्गलमय ज्योति झिलमिला रही है। इस 'अरूपिणी' कृपाको केवल पहचानना पड़ता है, पाना नहीं। तत्त्वज्ञानका अर्थ भी इसे पहचानना ही है। इसको चाहे ब्रह्म कह लो या आत्मा? सगुण-निर्गुणका भेद व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं।

१७. 'रूपिणी' कृपा तब समझमें आती है जब वह हमारे इष्टके स्मरणमें हेतु बनती है—जैसे सत्संग मिले, भगवद्धाम मिले, कुछ कालतक भगवान्‌की आराधना मिले। भक्तकी दृष्टिसे वह रूपिणी कृपा होगी; क्योंकि वह साधनका रूप धारण करके आयी है। यह कृपा अपने-अपने पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिमें अनुकूलता उत्पन्न करनेपर पहचानी जाती है। जिज्ञासुको संत मिले, अर्थीको सेठ मिले, कामीको कामिनी मिले और धर्मात्माको सत्पात्र, तो उसे वह भगवान्‌की रूपिणी कृपा समझेगा। परंतु यह दृष्टि पुरुषार्थकी उपाधिसे है। इसमें कृपाकी सच्ची पहचान नहीं है। सच्ची कृपामें अपनी इच्छा या आवश्यकतापर दृष्टि नहीं जाती। उसमें तो प्रत्येक परिस्थितिमें ही उसका समीक्षण होता है, प्रतीक्षण नहीं; प्रार्थना भी नहीं। जो है, उसके लिये क्या प्रतीक्षा और क्या प्रार्थना? उसकी अनेकरूपता वैसे ही है, जैसी रास-लीलाके समय श्रीकृष्णकी अनेकरूपता या ब्रह्माके प्रति अनन्त रूपका दर्शन। कृपाकी पहचान हो जानेपर उसमें स्मरण, प्रतिष्ठा और निष्ठाकी भी आवश्यकता नहीं रहती। जो कुछ है, नहीं है, भासता है, नहीं भासता, प्रिय है, अप्रिय है, भेद है, अभेद है—कृपाका ही विलास है।

सबमें प्रभुको देखकर सबका आदर-सम्मान करो

जीवमात्रसे द्वेषरहित रह, रखो सभीमें मैत्री भाव।
दुखियोंको नित सुख देनेका रखो विनययुत सक्रिय चाव॥
छीनो नहीं कभी, मनसे भी—पर-धन, पर-यश, पर-अधिकार।
करो सभीसे सदा सत्य-हित-प्रेम-भरा सात्त्विक व्यवहार॥
समझो सबके हितमें निज-हित, सबके सुखको निज-सुख मूल।
करो न हनन किसीके हित-सुखका कदापि मनसे भी भूल॥
सबमें सदा देख प्रभुको ही दो सबको आदर-सम्मान।
छाये रहें सदा ही मनमें एकमात्र प्रियतम भगवान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जप और उसका प्रभाव

[पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश]

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी एडवोकेट)

यह संसार प्रतिदिन हमसे पीछे छूटा जाता है, इसकी किसीको कल्पना भी नहीं होती। एक-एक क्षण सामने आता है तथा वह अतीतमें परिणत हो जाता है और इसी तरह इस जीवनका शेष होकर कर्मानुसार पुनर्जन्म होता है। यह हमारे धर्मका अकाट्य सिद्धान्त है—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

तो इससे यह सिद्ध होता है कि इस संसारके कालचक्रमें जीवको बार-बार आना-जाना पड़ता है। अतएव लोग महात्माओंसे प्रश्न करते हैं कि इस जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पानेका क्या उपाय है ? महात्मालोग मुक्तकण्ठसे इसका उत्तर देते हैं कि 'जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पानेका सरल साधन है—भगवन्नाम-स्मरण और जप। इसके अतिरिक्त इस असार संसार-सागरसे पार होनेका दूसरा कोई सरल साधन नहीं है। योग, तप, ज्ञान आदि अनेक मार्ग परमात्माकी प्राप्तिके लिये बताये गये हैं, किंतु ये सबके लिये सरल और सुलभ नहीं हैं। इस कलिकालमें सबके लिये सरल, सुलभ और अमोघ साधन तो यह भगवन्नाम-स्मरण और जप ही है।'

भगवान्‌के अनन्त नाम, अनन्त गुण और उनकी अनन्त महिमा है, जिनका पूरा वर्णन करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं। आवश्यकता है केवल विश्वासकी और वह विश्वास भी दृढ़ होना चाहिये। जिन साधकोंको दृढ़ विश्वास है और दृढ़ विश्वासके साथ जो अपने चित्तकी सारी वृत्तियोंको भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें लगाकर भगवन्नामका जप करते हैं, वे ही सफलता प्राप्त करते हैं।

प्रायः लोग पूछा करते हैं कि जप कैसे करना चाहिये। शास्त्रमें जपके तीन प्रकार बतलाये गये हैं—

(१) वाचिक, (२) उपांशु और (३) मानसिक।

वाचिक जप वह है, जो हम वाणीके द्वारा भगवान्‌के नामका जप (उच्चारण) करते हैं और श्रोता सुनते हैं। उपांशु जप वह है, जिसमें नामोच्चारणमें ओष्ठ हिलते हैं, परंतु कोई शब्द सुनायी नहीं पड़ते हैं। तीसरा मानसिक जप है। वह भीतर-ही-भीतर होता रहता है। उस जपमें न तो ओष्ठ हिलता है, न कोई शब्द होता है और न कोई शब्द सुनायी पड़ता है।

ये सभी जप अच्छे हैं। जिस साधकको जो पसंद हो, वह उसीको अपने सुविधानुसार अपनावे, किंतु सब जपोंमें एक ही स्मरणीय महत्त्वकी यह बात है—भगवान्‌के चरणोंमें अपनी सारी वृत्तियोंको लगाकर जप करना।

ऐसे जपका प्रभाव क्या होता है, इसको अपने शब्दोंमें न कह करके गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें ही कहना श्रेयस्कर है—

सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।
तेहिकें हृदयँ रहहु रघुराई॥
मन ते सकल बासना भागी।
केवल राम चरन लय लागी॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें॥

गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंका भाव स्पष्ट है कि जिन साधकोंका चित्त भगवान्‌के चरणोंमें लगा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जिनके चित्तमें कोई विषय-वासना या अहंकार नहीं है, उन्हीं साधकोंके हृदयमें भगवान्का निरन्तर निवास है और उन्हीं भक्तोंके वशमें भगवान् रहते हैं। स्वयं भगवान्ने नारदजीसे कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

'नारद! न तो मैं वैकुण्ठमें रहता हूँ और न तो योगी-तपस्वियोंके हृदयमें निवास करता हूँ। मेरा तो निवास वहीं होता है, जहाँ प्रेमानुरागी मेरे भक्त मुझे स्मरण करके मेरा नाम-गुण-गान करते हैं।'

जिन साधकोंने त्याग और तपस्याके द्वारा अपने हृदयको भगवान्का निवासस्थान बना लिया है, उनका क्या प्रभाव होता है, इसके विषयमें तैत्तिरीयोपनिषद्में एक मन्त्र है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति॥
(२।४)

इसका भावार्थ यह है कि जिस परमात्माको जाननेकी शक्ति मन और इन्द्रियोंमें नहीं है, उस परमपिता परमात्माके नामका निरन्तर जप करके और उस नाम-जपके आनन्दको जानकर साधक किसीसे भयभीत नहीं होता है; बल्कि महान् आत्मबल प्राप्तकर निर्भय बन जाता है।

अब कल्पना कीजिये कि ऐसे साधुसंतों या साधकोंका, जो ऐसे स्थानोंपर निवास करते हों जहाँ एकान्त स्थान या घोर जंगल हो, भादोंकी अँधेरी रात हो, पास ही हिंसक जीव-जन्तु घोर गर्जना करते हों, ऐसे लक्षण दिखायी पड़ें कि बिना आक्रमण किये वे नहीं छोड़ेंगे, सर्वथा निर्भय बने हुए, भगवान्के भरोसे सभी जीवोंमें प्रेम-दृष्टि रखते हुए भगवन्नाम-जपमें निमग्न रहना कितने महत्त्वकी बात है। ऐसे साधक कुछ ही दिनोंमें भगवान्के समीप पहुँच जायँगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। साधकोंके सामने ऐसी परिस्थितियाँ यदा-कदा उत्पन्न होती हैं, किंतु भगवन्नाम-जपका ऐसा प्रभाव है कि ये सारे संकट उस साधकका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते। वह साधक क्रमशः आगे बढ़ता हुआ परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

तेरा प्यार!....तेरा प्यार!!....तेरा प्यार!!!

जीवन-संध्या-आलोकवान,
एकाकी-स्निग्ध-ज्योति-दीपकवत्
तेरा प्यार
अनिश्चयमें पटु पथ-प्रदर्शक!
संघर्षमें सरस, सुपुष्ट सम्बल!
और—
अवसादमें अबाध ताजगी! असीम स्फूर्ति!!
तेरा प्यार
तीखा पर तरल, सरल,
—पंडिती-ज्ञान-गुत्थी-अबोझिल!
तेरा प्यार
सदाबहार,
अचल आधार
रहा है सदैव और रहेगा आगे भी
जीवन-संध्या-आलोकवान
एकाकी-स्निग्ध-ज्योति-दीपकवत्
तेरा प्यार!...तेरा प्यार!!...तेरा प्यार!!!

—बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल्-एल० बी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अप्रकाशित पत्र)

(१)

सादर प्रणाम ! आपका पत्र मिला । समाचार विदित हुए । सनातन धर्मके विरोधियोंकी ओरसे किये जानेवाले प्रश्न लिखकर उत्तर पूछा, सो क्रमसे नीचे उत्तर लिखे जाते हैं । पर इन सज्जनोंसे तर्क करनेमें कोई लाभ नहीं है; क्योंकि ये लोग शास्त्रोंका रहस्य तो समझते नहीं, सुनी-सुनायी बातोंपर अथवा आग्रहवश प्रश्न करके लोगोंकी बुद्धिमें भ्रम डालनेकी चेष्टा करते हैं ।

(१) कलियुगका अर्थ कलयुग—कलोंका युग माननेवालोंसे पूछना चाहिये कि कलोंका विकास पहले हुआ या इस युगका नाम 'कलियुग' पहले रक्खा गया । यह तो मानना ही पड़ेगा कि युगका नामकरण उस समय हो चुका था, जब कलोंका विकास नहीं हुआ था । अतः इन लोगोंकी मान्यताके अनुसार भी नाम निर्देश करनेवाले भविष्यके ज्ञाता सिद्ध हो जाते हैं । फिर उनकी सभी बातें क्यों नहीं माननी चाहिये । उनको मूर्ख बतानेवाले स्वयं अनभिज्ञ सिद्ध होते हैं, विचार करें ।

(२) सत्ययुगको कृतयुग अर्थात् चौथा युग भी कहते हैं । उससे नीचा त्रेता अर्थात् तीसरा, उससे नीचा द्वापर अर्थात् दूसरा और उससे नीचा कलियुग । यह इसका क्रम है । इसको बिना समझे महर्षियोंको दोषी बताना सर्वथा अनुचित है ।

(३) सिंहस्थ (कुम्भ) नाटक नहीं है । उस समय सूर्यका कुम्भ राशिसे सम्बन्ध होता है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । संसारको उपदेश देनेके लिये उस समय मेला करनेके लिये चार उत्तम स्थानोंको निश्चय करके ज्ञान-चर्चाका मार्ग निकाला गया तो इसमें बुराई ही क्या है ? यह तो अच्छी बात ही है । उन महर्षियोंको मूर्ख क्यों बताया जाता है ?

(४) श्रीगणपति ही नहीं, सभी प्राणी मैलसे ही बनते हैं । पर जो जिस माता-पिताके मलसे बनता है, उसका स्वभाव प्रायः वैसा ही होता है । इस कारण पूर्वजोंका ही वर्ण संतानका वर्ण होना चाहिये । वर्ण-संकरता और व्यभिचार बढ़ जानेसे आज वर्ण-व्यवस्थामें जो कठिनाई आ गयी है, यह कोई शास्त्रीय विधानका दोष नहीं है; लोगोंके बुरे भाव और प्रवृत्तियोंका दोष है ।

(५) खास वेदोंमें यह स्पष्ट लिखा है कि **'पद्भ्यां शूद्रोऽजायत'**—ईश्वरके दोनों चरणोंसे शूद्र जाति उत्पन्न हुई । अतः ब्राह्मणके निम्न श्रेणीके अङ्ग—पैरमें अपने सर्वोत्तम अङ्ग—सिरको झुकाना—यही नियम है, सिर चूमना नहीं । सिर सूँघना तो अपने छोटोंको प्यार देनेकी प्रथा है जो कि बहुत ही उचित है ।

(६) श्रीहरिश्चन्द्रके युगमें बच्चे और स्त्रीको बेचनेके मार्केट खुले हुए नहीं थे, श्रीहरिश्चन्द्रने अपने सत्य पालन करनेके लिये यह कष्ट स्वीकार किया था; इस इतिहाससे त्यागका आदर्श दिखाया गया है । इसका उल्टा अर्थ निकालना पागलपन है । आजका युग तो तब अच्छा माना जाता, यदि कोई सत्यकी रक्षाके लिये कुछ भी त्याग करनेको राजी होता । आज तो त्यागका दम्भ करनेवाले भी अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये त्यागका नाटक प्रदर्शित करते रहते हैं । अपनी छातीपर हाथ रखकर बतावें, क्या आजके ५० वर्ष पहले इतना छल-कपट और बेईमानी थी, जितनी आज है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) अजामिल पहले कितना भगवद्भक्त और सदाचारी था—इसका पता उसका पूरा जीवन-चरित्र पढ़नेसे चल सकता है। उसने 'नारायण' नामसे यद्यपि अपने पुत्रको ही पुकारा था, परंतु पूर्वसंस्कारोंके कारण उसे भगवान् नारायणकी स्मृति हो आयी। इसमें क्या आश्चर्य है? क्या हमारे जीवनमें ऐसा नहीं होता? उसके अपराधोंको क्षमा करके उसे सत्कर्मोंमें प्रवृत्त किया गया है—पूरा चरित्र पढ़नेकी कृपा करें। इसका यह मतलब निकालना कि 'दिनभर पाप करते रहें और शामको ईश्वरका नाम ले लें, बस उद्धार हो गया।'—यह तो अनुचित है। नामकी महिमामें तो इसे (नामके बलपर पाप करनेको) 'नामापराध' माना है और इस भावसे किये जानेवाले पापोंको 'वज्रलेप पाप' बताया गया है।

(८) 'भगवान्-भगवान्' कहनेसे क्या होता है—इसका उनको क्या पता, जो कभी नाम-जप नहीं करते या लोगोंको ठगनेके लिये नामका ढोंग करते हैं। नामके उच्चारणसे नामीकी स्मृति होती है, यह तो स्पष्ट ही है। इसके सिवा, इसका महत्त्व तो वे ही जान सकते हैं, जो विश्वासपूर्वक नाम-स्मरण करके प्रभुके प्रेममें निमग्न हो जाते हैं और उस रसास्वादके सामने जगत्के बड़े-से-बड़े भोगको नगण्य अनुभव करते हैं। तहसीलदारको पुकारनेसे वह यदि कानोंसे बहरा नहीं होगा तो उचित बातको अवश्य सुनेगा; पर प्रभुके नाममें जो महत्त्व है, वह उसमें कहाँसे आयेगा?

(९) 'पुराण गप्प हैं और मूर्ख ब्राह्मणोंके रचे हुए हैं'—ऐसा कहनेवाले स्वयं मूर्ख हैं। पुराणोंमें बहुत-सी अत्यन्त उपयोगी विद्याएँ भरी हैं। उदाहरणके लिये अग्निपुराण, नारदपुराण आदिको देखिये। बिना समझे बुराई करना कहाँतक उचित है, विचार करें।

(१०) 'ब्राह्मणोंने दुनियाका सत्यानाश किया'—यह कहना प्रमादमात्र है। सत्यकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मण ही हुए हैं। उन्होंने अपने स्वार्थका त्याग करके किस प्रकार संसारकी सेवा की थी, वनमें तप-त्यागपूर्ण जीवनमें रहकर किस प्रकार वे विद्याका अर्जन तथा बिना मूल्य प्रसार करते थे—यह उनकी जीवनीसे स्पष्ट है।

(११) ब्रह्मपुराण, शिवपुराण, विष्णुपुराण आदि सभी ठीक हैं। एक ही भगवान्के तीन रूप माने गये हैं। उपासकोंकी रुचि विभिन्न होती है; अतः उसे पुष्ट करनेके लिये एक-एक स्वरूपकी अलग-अलग महिमा बतायी गयी है। अतः सभी सत्य हैं।

(१२) देवीपुराणमें क्या लिखा है, उसे पूरा पढ़नेसे उसका महत्त्व समझमें आ सकता है। जिस घटनाका उदाहरण दिया जाता है, उसका रहस्य छिपा हुआ है, इसलिये साधारण मनुष्य उसे नहीं समझ पाते।

(१३) श्रीतुलसीदासजीको मूर्ख बताना अपनी मूर्खताका परिचय देना है। उनकी सर्वगुणसम्पन्न काव्यरचनाको और दिव्य भावोंको समझनेवाला कभी ऐसा कहनेका साहस नहीं कर सकता। शूद्र, पशु, स्त्रीको ताड़नका अधिकारी बताना कोई बुरी बात नहीं है। ताड़नका अर्थ डंडेसे ढोलकी तरह पीटना नहीं है। जो जैसे शासनके योग्य है, उसके अनुसार उसपर शासन करनेका नाम ताड़न है। आवश्यकतापर नीतिके* अनुसार शासन न किया जाय तो गृहस्थ सुचारुरूपसे चल ही नहीं सकता। जिनमें बुद्धि कम हो, उनको भयसे ही रास्तेपर लाया जा सकता है। इसीलिये तो राज्य-सत्ता स्वीकार की गयी है।

* नीतिमें पाँच वर्षके बाद दस वर्षतक बच्चेको ताड़ना देनेकी बात कही गयी है—'लालयेत् पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।' तो क्या इसका अर्थ बच्चेको डंडेसे पीटना है? यहाँ उसे नियन्त्रणमें रखना ही अभिप्रेत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) श्रीहनुमान् क्या थे, थे या नहीं—इसका निर्णय वे किस इतिहासके आधारपर करना चाहते हैं ? क्योंकि सबसे प्राचीन श्रीहनुमान्का चरित्र वाल्मीकीय रामायणमें है । उसके रचयिताको यदि कोई मूर्ख कहे तो वह स्वयं मूर्ख सिद्ध होगा । उसे झूठा मान लेनेपर श्रीहनुमान्जीकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होगी । अतः कहनेवाले अनर्गल बात करनेवाले सिद्ध होंगे । वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट ही श्रीहनुमान्जीको वानर (पशु) माना है ।

(१५) जाम्बवान्के विषयमें भी श्रीहनुमान्जीवाला ही उत्तर है । शङ्का करनेवाले महोदयको यह पता नहीं कि ये देवताओंके अवतार थे एवं इनमें मनुष्यरूप धारण करनेकी भी शक्ति थी ।

(१६) रावणके दस सिर थे, उसी प्रकार उसके शयन करनेके लिये पलंग भी बना हुआ था । उस समय कारीगरोंकी कमी नहीं थी । उनके लिये कपड़े बनानेवालोंकी भी कमी नहीं थी । इस विषयमें शङ्का करना सर्वथा निराधार है ।

(१७) कुम्भकर्णके मुँह, नाकसे बंदर निकल भागते थे, यह बात आपकी समझमें न आवे तो आप मत मानिये । पर कोई आश्चर्य नहीं है । जैसे मुर्देके मुँह, नाकमेंसे चींटी आती-जाती रहती है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण-जैसे राक्षसोंके मुँह-नाकमेंसे बंदर निकल जायँ तो क्या आश्चर्य है ?

(१८) वाल्मीकीय, अध्यात्म और तुलसीकृत रामायणमें जो कथाभेद है, इसका कारण तो श्री-तुलसीदासजीने स्पष्ट बताया है । विभिन्न कल्पोंमें अनेक प्रकारसे श्रीरामने विभिन्न लीलाएँ कीं । उन सबका पूरा वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता, जिनसे जितना हो सका, वर्णन किया । कल्पभेदके लीलाभेदोंके कारण कथाभेद हैं; अतः सभी सत्य हैं, ऐसा मानना चाहिये ।

(१९) पति पत्नीका ईश्वर है, यह बात तो स्त्रीके लिये कही गयी है । पुरुषको तो यह कहा गया है कि वह अपनी स्त्रीको अर्धाङ्गिनी माने, उसका आदर करे, हरेक काममें एक मित्रकी भाँति उससे सम्मति ले और घरके कामका सारा अधिकार उसको सौंपकर निश्चिन्त रहे । उसे घरकी सम्राज्ञी माने । इतना ही नहीं, स्त्रीका अनादर करना घोर पाप माना गया है । चरित्रका भाव पूरा समझे बिना आक्षेप करना भोलापन है ।

(२०) श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, उसी प्रकार श्रीकृष्णमें उतने ही रूप धारण करनेकी शक्ति भी तो थी; फिर आश्चर्य क्या ? छप्पन करोड़ यादवोंको समस्त भारतके छप्पन करोड़ प्राणी किस आधारपर मानते हैं, यह तो माननेवाले ही जानें । इतिहासका तो यह कथन नहीं है । श्रीनन्दबाबाकी नौ लाख गौओंके चरनेके लिये कई कोसोंमें जंगल था, यह बात वहीं लिखी है । उसे समझ लें तो शङ्का नहीं रहेगी । सब व्रजवासियोंकी गौएँ कितनी थीं, उनकी संख्या वहाँ नहीं लिखी है, तब कौन बतावे ?

(२१) श्रीशिवके लिङ्ग गिरनेकी बात रूपक है; इसका रहस्य बिना समझे शङ्का करना निरर्थक है । इसी प्रकारके और भी रहस्यमय वर्णन वेदोंमें और पुराणोंमें भरे पड़े हैं । आज उनको समझने-समझानेवालोंकी कमी हो जानेके कारण भ्रम होता है । अतः सज्जनोंको चाहिये कि जो अंश समझमें न आवे, उसे छोड़ दें । उन बातोंको काममें लाना आवश्यक नहीं, जो कि युक्तियुक्त न हों ।

(२)

सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । उत्तर इस प्रकार है—

ब्रह्मचर्य-पालनके लिये आवश्यक है—श्रम, संयम, सदाचार, स्वाध्याय और सेवायुक्त जीवन । जो मनुष्य हर समय किसी-न-किसी कर्तव्य-पालनमें लगा रहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निठल्ला नहीं रहता, उसके मनमें कामवासनाका वेग नहीं रहता। अधिकतर निठल्ले मनुष्योंके मनोंमें ही बुरे संकल्प उठा करते हैं।

संयमी मनुष्यका मन और इन्द्रियाँ भोगोंकी ओर नहीं जाते। उनमें स्वतः वैराग्यकी भावना जाग्रत् हो जाती है।

सदाचारका आदर करनेवाला न तो दुराचारियोंका सङ्ग करता है, न उस विषयकी बातें सुनता है, न उस प्रकारके दृश्य, खेल-तमाशे, नाटक-सिनेमा ही देखता है। अतः उसके जीवनमें कामवासनाका प्रायः उदय ही नहीं होता।

स्वाध्याय—सद्ग्रन्थोंके अध्ययनसे भगवद्भक्ति, ज्ञान, शम, दम, त्याग, वैराग्य आदिके भाव उठते तथा बढ़ते रहते हैं। ऐसा पुरुष अश्लील तथा कामोत्तेजक साहित्य नहीं पढ़ता।

सेवा करनेवालेको तो इन्द्रिय-सुख-भोगका त्याग सर्वप्रथम करना पड़ेगा। जो दूसरोंसे सुखकी आशा रखता है, अपनी सेवा करवाना चाहता है, वह कैसा सेवक? अतः सेवकके जीवनमें भी कामके लिये स्थान नहीं है।

उपर्युक्त पाँच बातें मनुष्यके जीवनको सुन्दर बनाकर उसे प्रभुके सम्मुख कर देनेवाली हैं। इनके होते ही जीवनमें त्याग और ईश्वर-प्रेमका प्राकट्य स्वतः होता है। उसके फलस्वरूप योग, ज्ञान और प्रभुप्राप्ति अपने-आप हो जाती है।

उपर्युक्त पाँचों गुण मनुष्यमें सत्सङ्गसे आते हैं, अतः सदाचारी तथा संयमी संतोंका सङ्ग और सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

अपने सुधारमें मनुष्य सदैव स्वतन्त्र और समर्थ है; अतः उसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। जो दोष समझमें आ जायँ, उनको तुरंत हटा देना चाहिये। कमजोरी मालूम हो तो सर्वसमर्थ प्रभुका आश्रय लेकर दुखी हृदयसे करुणापूर्वक उनके सम्मुख विनयके साथ अपना दुःख-निवेदन करना चाहिये।

आपको अपनी दिनचर्याका शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तन करके ऐसी दिनचर्याका अवलम्बन करना चाहिये, जिसमें एक क्षण भी व्यर्थकी बातोंके लिये न बचे।

घरके किसी भी कार्यको छोटा नहीं समझना चाहिये। जिसमें घरवालोंको सुख मिले, वह होने करनेयोग्य निर्दोष कार्य, जिस प्रकार करना चाहिये, उस प्रकार स्वार्थत्यागपूर्वक सावधानीके साथ पूरा कर दिया जाय तो वह किसी भी बड़े-से-बड़े समझे जानेवाले कार्यसे कम महत्त्वका नहीं है। कर्ममें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, भावकी प्रधानता है।

यदि आपको आधुनिक शिक्षा सारहीन मालूम होती है तो फिर समयको व्यर्थ खोना, व्यर्थ कार्योंमें और चिन्तनमें लगाना क्यों अच्छा लगता है? क्या आधुनिक शिक्षा उससे भी अधिक निकम्मी है? मेरी समझमें आपको आपकी आरामतलबीका स्वभाव यानी प्रमाद और आलस्य धोखा दे रहा है। अतः सावधान होना चाहिये।

व्यर्थ चेष्टामें समय न खोकर समस्त समयको साधनमें लगाना चाहिये। मनुष्यजीवन बड़े ही महत्त्वका है, यह इस प्रकार बर्बाद करनेके लिये नहीं मिला है।

आपके नये प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) गायत्री-मन्त्र वैदिक है। किसी भी वैदिक मन्त्रको पढ़नेका और जप करनेका अधिकार द्विजातियोंको बिना यज्ञोपवीतके नहीं है। भगवान्‌की उपासनामें सबका अधिकार है। वह हरेक प्रकारसे हरेक मनुष्य कर सकता है, पर वैदिक मन्त्रका पठन-पाठन उसके विधिके अनुसार होनेपर ही उसमें शक्तिका प्रादुर्भाव होता है।

(२) अपनेको शरीर मानकर किसी जाति, गुण, योग्यता, वैभव और अधिकारके सम्बन्धसे मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़प्पनका अभिमान होना स्वाभाविक है । उससे बचनेके लिये अपनेको क्षुद्रातिक्षुद्र और अधम माननेकी बात कही गयी है । यह मान्यता सर्वथा हितकर और आवश्यक है एवं जिन ग्रन्थोंमें अपनेको छोटा न माननेकी बात कही गयी है, वहाँ शरीरसे अलग शुद्ध आत्मस्वरूपमें 'अहंबुद्धि' करके कही गयी है ।

इस प्रकार इनका उपयोग समझ लेनेपर दोनों ही विश्वास करने और काममें लाने योग्य हैं । गलतीकी गुंजाइश तो दोनोंमें ही है । यदि अपनेको अधम मानकर मनुष्य निषिद्ध कामोंमें लग जाय और अपने जीवनको अवनत बना ले तो वह मान्यता हितकर नहीं है । वैसे ही अपनेमें बड़प्पनका अभिमान करके दूसरोंको तुच्छ समझने लगे, उनका अपमान करने लगे तथा उनसे घृणा और द्वेष करने लग जाय तो यह और भी अधिक भयानक है । इस रहस्यको समझकर यथावश्यक उचित मान्यता करना ही हितकर और श्रेष्ठ है ।

(३) पहले स्नान करके पीछे व्यायाम करे और बादमें दूध पी ले तो दोनों काम बन सकते हैं ।

(४) 'सहजाभ्यास' नामकी पुस्तकसे मेरा परिचय नहीं है, अतः उसमें लिखी हुई बातके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता । यह तो मामूली बात है, आप करके परीक्षा कर लें ।

(५) प्रामाणिक माने जानेवाले शास्त्र अनेक हैं और सभीमें गुह्यभाव भरे पड़े हैं, अतः किस-किसका नाम लिखा जाय ? अपना जीवन सुन्दर बनानेके लिये तो एक गीता ही काफी है ।×××

आस्तिकताकी कसौटी

आस्तिकताकी नींव अर्थात्—'श्रीकृष्ण तो हैं ही';—इस बातका विश्वास कितनी गहराईसे मेरे मनमें स्थान पाये हुए है, इसपर भी विचार प्रत्येक साधक-साधिकाको अवश्य करते रहना चाहिये । परमार्थकी साधना जितनी देर तुम उपासना-मन्दिरमें बैठकर करते रहो—वह तो उत्तम है ही, किंतु जीवनका प्रत्येक क्षण जबतक साधनामय नहीं बन जाता, तबतक साधना अधूरी ही चलती है । इसीलिये व्यवहार-जगत्में उतरनेपर भी सावधानीसे मनका विश्लेषण करके आस्तिकताकी नींवको—श्रीकृष्णके अस्तित्वमें विश्वासकी भावनाको—तुम्हें निरन्तर सुपुष्ट बनाते रहना चाहिये ।

जो सचमुच श्रीकृष्णसे तादात्म्य-लाभ कर लेते हैं अथवा जो प्रभुकी चिन्मयी गोदमें लाड़ले शिशुकी भाँति निरन्तर खेलते रहते हैं, उनके कण-कणमें सात बातें निरन्तर अभिव्यक्त रहती हैं—

(१)

स्वप्नमें भी किसी भी प्रतिकूलताकी प्राप्ति होकर उन्हें रंचमात्र भी क्षोभ नहीं होता और यदि क्षोभ होता है, तो समझ लेना चाहिये कि अभी वे आस्तिककी श्रेणीमें नहीं हैं, नहीं हैं । उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं । वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं और यह कहना कठिन है कि उनकी आस्तिकताकी नींव नापनेपर कितनी गहराईमें मिलेगी, कितनी सुपुष्ट मिलेगी ?

(२)

स्वप्नमें भी, जाग्रत्की तो बात ही क्या, उन्हें अनुकूलताकी प्राप्तिकी अनुभूति होकर हर्ष-विकार नहीं होता । यदि होता है तो वे आस्तिककी श्रेणीमें नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं । उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं । वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं और यह कहना कठिन है कि उनकी आस्तिकता अर्थात् श्रीकृष्ण तो हैं ही—इस बातका विश्वास कितनी गहराईसे उनके मनमें स्थान पाये हुए है ?

(३)

स्वप्नमें भी, किसी भी निमित्तसे, प्राणीसे, पदार्थसे उन्हें भय नहीं होता । यदि भय होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो समझना चाहिये कि वे अभी आस्तिक भी नहीं बन पाये हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। और यह कहना कठिन है कि प्रभुकी गोदमें वे सचमुच शिशु बनकर खेल रहे हैं कि नहीं ? अथवा श्रीकृष्णसे आत्यन्तिक तादात्म्यकी स्थिति प्राप्त कर चुके हैं या नहीं और उनकी आस्तिकताकी नींव सचमुच कितनी सुपुष्ट और कितनी गहरी है ?

(४)

स्वप्नमें भी, किसी भी निमित्तसे, किसी प्राणी या पदार्थपर उन्हें वास्तवमें क्रोध नहीं आता—क्रोधकी लीला-सी—एक अभिनय-सा उनके जीवनमें देखा जा सकता है—और यदि वास्तवमें क्रोध आता है तो वे अभी आस्तिककी श्रेणीमें अवस्थित नहीं हैं। प्रभुकी गोदमें भावनासे भले ही खेलते हों, किंतु सचमुच नहीं खेल रहे हैं। अभी वे अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। उनकी आस्तिकताकी नींव बड़ी ही लचड़-पचड़-सी दीख रही है।

(५)

स्वप्नमें भी यदि मनमें ऐसी वृत्ति आती हो कि यह वस्तु मेरे पास है तो अवश्य, किंतु इसमें इतना-सा परिवर्धन और हो जाता तो अच्छा रहता, तो समझ लेना चाहिये कि वे सचमुच प्रभुमय नहीं बने हैं। वे सचमुच अभी साधनाके क्षेत्रमें ही हैं। हो सकता है कि काफी उठ चुके हों अथवा मामूली ही उठे हों। आँखें तो उनकी बिल्कुल खुली ही नहीं हैं। वे हैं अन्धे ही, अन्धे ही, अन्धे ही। प्रभुके सर्वत्र होनेपनेके सम्बन्धमें उनका विश्वास भी डगमग ही करता रहता है।

(६)

स्वप्नमें भी यदि मनमें अपनापना, परायापना अथवा उदासीनता अर्थात्—

(१) यह मेरा है अथवा मेरा मित्र है।

(२) यह पराया है अथवा मेरा शत्रु है।

(३) इस व्यक्तिका तो क्या लेन-देन है, यह न मेरी ओर है, न दूसरी ओर है। यह तो उदासीन रहनेवाला है।

—इन तीन भावनाओंका आरोप, किसी भी व्यक्तिके प्रति उनके द्वारा हो ही नहीं सकता और यदि होता है तो समझ लेना चाहिये कि अभी वे सचमुच जीवनकी सर्वोच्च स्थितिसे आत्यन्तिक लाभ नहीं कर पाये हैं अथवा सच्चिदानन्दमय, रसमय प्रभुकी गोदमें 'उनके आत्मस्वरूप शिशु' वे अभी नहीं बन पाये हैं, नहीं बन पाये हैं, नहीं बन पाये हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं, नहीं खुली हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। उनकी आस्तिकताकी नींव बहुत ऊपरकी सतहपर है तथा वह कमजोर है।

(७)

जिनके अहंकारकी आत्यन्तिक निवृत्ति होकर उसके स्थानपर एकमात्र अनन्त महिमामय प्रभुका ही अस्तित्व रह जाता है अथवा प्रभुकी सच्चिदानन्दमयी गोदीके एक अनिर्वचनीय, अचिन्त्य कहने भरके लिये सच्चिन्मयी अहंतासम्पन्न शिशु बन जाते हैं, उनके मनमें स्वप्नमें भी किसी कामना, वासना, स्पृहाका उन्मेष होता ही नहीं। यदि होता है तो समझ लेना चाहिये कि सचमुच वे अभी साधनाके ही क्षेत्रमें हैं। हो सकता है कि कुछ ऊपर उठ गये हों, अथवा अभी वे इस क्षेत्रमें उतरे ही हों। उनकी आँखें अभी खुली नहीं हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। उनकी आस्तिकताकी नींव ऊपरी धरातलपर है और दुर्बल है।

अब भैया ! इन्हीं सातों बातोंपर विचार करते हुए तुम्हें साधनाके क्षेत्रमें निरन्तर ऊपर उठते रहना चाहिये और अपनी आस्तिकताकी नींवको निरन्तर गहरी-से-गहरी, पुष्टसे पुष्टतर, पुष्टतम बनाते रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनकी हलचलका कारण क्या है ?

[अनन्तश्री स्वामीजी रामसुखदासजीके प्रवचनसे]

अपनी 'मनचाहीका न होना' और 'न मनचाहीका हो जाना'—यही मनकी हलचलका कारण है ।

भक्तियोगकी दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि तथा 'मैं'पन अपना नहीं है, अपितु सब कुछ भगवान्‌का है । इनको अपना और अपनेको भगवान्‌से अलग मान लेना—इस विपरीत मान्यतासे ही दुःख और मनमें हलचल होती है । हलचल होनेका और कोई कारण नहीं है । जो कुछ होता है, वह हमारे परम सुहृद् प्रभुका मङ्गलमय विधान है । उसमें अपने मनको मैला करना सर्वथा बेसमझी ही है ।

ज्ञानयोगकी दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि तथा 'मैं'पन सब कुछ प्रकृतिका है । 'मैं'का आधार परमात्म-तत्त्व है, वह अपना स्वरूप ही है । प्रकृति ही प्रकृतिके गुणोंमें वर्त रही है । (गीता १३ । २९) स्वरूप तो अपने आपमें नित्य स्थित है ही । उसमें क्रिया—करना-कराना सम्भव ही नहीं है । तब फिर हलचल कैसी ?

कर्मयोगकी दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि तथा 'मैं'पन अपना नहीं, सब कुछ संसारका है और इनको संसारकी सेवामें ही लगाना है । अपने लिये इनकी आवश्यकता नहीं है । इनको अपना तथा अपने लिये माननेसे ही दुःख और हलचल होती है । यह भूल मिट गयी, फिर दुःख और हलचल कैसे रह सकती है ?

उपर्युक्त दृष्टियोंसे यह बात सिद्ध होती है कि शरीर आदिको चाहे तो भगवान्‌का, चाहे प्रकृतिका और चाहे संसारका मान लो । ये अपने नहीं हैं । इस नित्यसिद्ध बातको न मानकर अपना मानना भूल और बेसमझी है । यही दुःखोंका और हलचलका कारण है । भूल मिटनेके बाद हलचलके लिये किंचित् मात्र भी स्थान नहीं है । फिर तो केवल आनन्द-ही-आनन्द है ।

उत्तराखण्डकी भिखारिन बालिका

सन् १९६७ की बात है । 'मेसर्स जेस्सप एण्ड कम्पनी'के कर्मचारी श्रीरविन पाल श्रीकेदारनाथ एवं बद्रिकाश्रमकी यात्राके लिये गये । जब वे गुप्तकाशीसे श्रीकेदारनाथकी ओर बढ़ रहे थे तो रास्तेमें एक भिखारिन बालिका उनके समक्ष आयी और बोली—'बाबा ! एक पैसा दो ।' उत्तराखण्डके तपःपूत, शान्त एवं मनोरम वातावरणका श्रीपाल महोदयके मन एवं प्रकृतिपर विशेष प्रभाव हुआ था । भिखारिन बालिकाकी माँगपर उनके मनमें आया—इस बालिकाको एक पैसा क्या दिया जाय, आजके युगमें एक पैसेसे क्या मिलेगा ? ऐसा सोचकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ अपने ओवरकोटकी जेबमें डाला और मुट्ठा भरकर पैसे निकाले । इस प्रकारकी तीर्थयात्रामें देनेके लिये यात्रीलोग पैसोंसे अपनी जेब भर लिया करते हैं । श्रीपाल महोदयकी जेब भी केवल पैसोंसे भरी थी । श्रीपाल महोदयने लड़कीके हाथोंमें पैसोंका मुट्ठा उँड़ेल दिया । अपनी माँग स्वीकृत होनेसे लड़कीको प्रसन्नता हुई, पर जब उसने अपने हाथोंमें इतने पैसे देखे तो उसकी प्रसन्नता लुप्त हो गयी । उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी । कुछ दूरपर बच्चे खेल रहे थे । सम्भव है, वे भी भिखारी बालक थे । बालिका दौड़कर उनके पास गयी और उसने प्रत्येक बालकको अपने हाथमें लिये पैसोंमेंसे एक-एक पैसा बाँट दिया । उसने अपने पास केवल एक पैसा रक्खा । बालिकाकी इस उदार निःस्पृह चेष्टासे श्रीपाल महोदयका हृदय भर आया । (Truth)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१–भगवान्‌का विश्वास साधकके मनमें जहाँ आया, वहाँ वह सदाके लिये निहाल हो गया। फिर उसके प्रत्येक काममें यह विश्वास सहायक होता है। परंतु विश्वास होना चाहिये सच्चा और हर हालतमें अडिग तथा विश्वासमें व्यभिचार—दूसरे विश्वासका मिश्रण—नहीं होना चाहिये।

२–भगवान्‌को छोड़कर किसी भी दूसरेकी आशा करना, दूसरेपर विश्वास करना—यही जीवकी जडता है, इसीसे जीव दुखी हो रहा है। इस जडताको मिटाना चाहिये।—'और आस बिसवास भरोसो हरौ जीव जड़ताई।'

३–भगवान्‌के आधारपर जीवन रहे; अन्य कोई भी आधार न रहे। हमलोगोंने तो और-और न जानें कितने आधार बना रक्खे हैं। भगवान् कहते हैं—'इन सब आधारोंको छोड़कर एकमात्र मुझे ही आधार बनाओ—'**मामेकं शरणं व्रज।**'

४–भगवान्‌के शरणागत हो जानेपर दो बातें निश्चितरूपसे अवश्य आती ही हैं—निर्भयता और निश्चिन्तता। भगवान्‌के शरणापन्न होनेपर—विश्वासपूर्वक भगवान्‌के चरणोंपर अपनेको डाल देनेपर किसी भी हालतमें भय नहीं रहता। यदि आश्रय लेनेपर भी भय बना है तो या तो हमने आश्रय लिया नहीं है, अथवा जिनका आश्रय लिया है, वे भगवान् नहीं हैं।

५–विश्वासपूर्वक भगवान्‌के शरणापन्न हो जाओ, फिर मौज करो। जैसे बच्चा माँकी गोदमें आ जाय तो उसकी सब चिन्ता माँ करती है, भगवान् भी शरणापन्न भक्तकी सब चिन्ता स्वयं करते हैं।

६–'शरणापन्न भक्तको कर्म करना चाहिये कि नहीं ?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वह अथक रूपसे कर्ममें रत रहता है, पर उसके कर्म करनेके भावमें अन्तर रहता है। जो भगवान् उसपर इतनी कृपा करते हैं कि उसकी सब चिन्ता वे स्वयं रखते हैं, उनके प्रति उसका हृदय इतना कृतज्ञ रहता है कि जीवमात्रमें अभिव्यक्त उन भगवान्‌की सेवा करनेसे वह कभी थकता नहीं।

७–पुरुषार्थका सम्मान करना चाहिये और उसका सेवन भी करना चाहिये, पर कर्तव्यके भावसे, उसपर निर्भर न होकर। भगवान्‌ने कहा है—'अनन्यचित्तसे मेरा चिन्तन करनेवाले भक्तका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।' दूसरेसे कहकर भक्तका काम करवा देंगे, जैसे धनी व्यक्ति नौकरोंकी व्यवस्था करके दूसरोंकी सेवा करवा देते हैं, यह बात नहीं। भगवान् स्वयं भक्तका कार्य सम्पन्न करते हैं। भगवान्‌की इस घोषणापर विश्वास करके भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये पुरुषार्थ करें, न कि पुरुषार्थका भरोसा करके। भरोसा तो एकमात्र भगवान्‌का ही रहे।

८–जगत्‌की कोई वस्तु चिन्ताका शमन नहीं कर सकती, बल्कि वह चिन्ताको बढ़ाती है—हम सबका यह अनुभव है, कोई दुराग्रहसे इसे न माने तो उसकी मूर्खता है। पर भगवान्‌पर विश्वास होनेसे निश्चिन्तता आ ही जाती है; क्योंकि विश्वासी भक्तको दीखता है कि भगवान् स्वयं मेरी सँभाल कर रहे हैं। भगवान् जिसकी सँभाल करें, उसके लिये फिर क्या कमी रह सकती है ?

९–भगवान्‌का भक्त किसी प्राणी, पदार्थ अथवा परिस्थितिको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रखता। भगवान् उसे जिस परिस्थितिमें रखते हैं, वही उसके लिये परम मङ्गलमय है। यदि भगवान् मृत्युमें उसके लिये मङ्गल समझते हैं तो उसे मरनेसे भय नहीं, यदि वे जीवित रखनेमें मङ्गल समझते हैं तो उसे जीवित रहनेमें कोई आपत्ति नहीं। असुक वस्तुकी प्राप्तिमें भगवान् उसके लिये मङ्गल समझते हैं तो उसे उस वस्तुको लेनेमें इन्कार नहीं और अमुक वस्तुकी अप्राप्तिमें मङ्गल समझते हैं तो वह वस्तु चाहे कभी न मिले। बस, उसकी तो एक ही कामना रहती है—'नाथ! मेरे लिये वही कीजिये, जिसमें आप मेरा मङ्गल समझते हैं।'

१०–भगवान्‌का विश्वास खरीदनेसे नहीं मिलता; यह बाजारकी चीज नहीं है और न यह बाहरी क्रियाका फल ही है। यह तो स्वाभाविक ही भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌के प्रति भाव उत्पन्न होता है। पर इसके लिये चाह अवश्य होनी चाहिये। भगवद्विश्वासकी चाह भक्तके हृदयमें भगवद्विश्वासकी प्रतिष्ठा कर देती है।

११–भगवान्‌की चाह उत्तम है, पर भगवान्‌के विश्वासकी चाह और भी उत्तम है तथा प्रेमकी चाह उससे भी उत्तम है। वस्तुतः भगवत्प्रेमकी चाह ही सर्वोत्तम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२–विश्वास कर लीजिये—'हम भगवान्‌के हो गये, उन्होंने हमें अपना लिया। अब यदि सुधार अवशेष है तो वे करें।' बस, आपका काम बन गया। विश्वासी भक्त कभी अपनी ओर नहीं देखता। उसके मनमें यह भाव प्रतिष्ठित रहता है कि 'हम मैले-कुचैले जैसे हैं, भगवान्‌के हो गये हैं, उन्होंने हमें अपना लिया है। अब वे हमारी गंदगी-को नहीं धोते तो वे जानें। अब उनके हो जानेपर हम गंदे नहीं रह सकते।' जहाँ यह भाव प्रतिष्ठित हुआ कि भगवान्‌का सम्पर्क हुआ और फिर सारी गंदगी सदाके लिये विलीन हो गयी।

१३–विश्वास करें—भगवान् नित्य हमारे साथ हैं, वे कभी हमारा साथ छोड़ नहीं सकते। नरकके कीड़ेके आत्मा-रूपमें भी जब भगवान् उसके साथ रहते हैं तो हम कैसे भी क्यों न हों, उनकी संनिधिपर अविश्वास क्यों करें?

१४–साधकको चाहिये कि अपनी ओरसे त्रुटि अथवा बेईमानी न करे। जितना अपनेसे बन सके, तन-मनसे करता रहे और विश्वास रक्खे कि जो कुछ होगा, उनकी कृपासे ही, उनकी कृपाके बना कुछ हो जायगा, यह कभी सम्भव नहीं।

१५–साधकको चाहिये कि भगवान्‌की कृपाका भरोसा करके वह निश्चिन्त रहे। वह अपने मनकी कल्पनाके अनुसार भगवान्‌की कृपाकी जाँच करना चाहेगा तो वह कभी भी भगवान्‌की कृपाका रहस्य नहीं समझ सकेगा। बाहरी परिस्थिति, बाहरी क्रिया, बाहरी वस्तुके द्वारा भगवान्‌की कृपाकी जाँच नहीं हो सकती। यह तो हृदयकी वस्तु है। हृदय ही भगवान्‌की कृपाकी अनुभूति कर सकता है।

१६–भगवान्‌की कृपापर यदि हम विश्वास करें तो स्वयं भगवान् आकर हमें अपने साथ अपने धाममें ले जायँ, हमें उनके पास जाना नहीं पड़े। जो कमी हो रही है, वह विश्वासकी ही है।

१७–लोकमें देखते हैं—बुद्धिमती एवं स्नेहमयी माँ बच्चेका सारा काम स्वयं करती है, सुचारुरूपसे। बच्चा आगकी ओर झाँकता है तो उसकी चिन्ता माँ करती है; क्योंकि वह माँपर निर्भर है। अब सोचिये, अनन्त-अनन्त माताओंके हृदयका वात्सल्य जिन भगवान्‌के हृदयवात्सल्य-समुद्रके एक बूँदके बराबर भी नहीं है, वे भगवान् क्या हमें कभी भूल सकते हैं?

१८–हमें साधन करना चाहिये, पर यह साधन भगवान्‌की कीमत है, इसके द्वारा हम भगवान्‌को खरीद लेंगे, ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये। कोई भी साधन भगवान्‌की कीमत नहीं है। सारा भरोसा भगवान्‌की कृपाका ही करना चाहिये। वस्तुतः भगवान् अपनी कृपासे ही मिलते हैं।

१९–कौसल्या-दशरथ, यशोदा-नन्द आदिमें वात्सल्य; कोसल तथा व्रजके सखाओंमें सख्य, पटरानियों तथा गोपाङ्गनाओंमें विभिन्न रतिकी मधुर भक्ति थी। इसीका नाम रागात्मिका भक्ति है। अर्थात् भगवान्‌के साथ कोई सम्बन्ध जोड़कर उस सम्बन्धकी जैसी आसक्ति होती है, उस आसक्तिके अनुसार चित्तका भगवान्‌में सर्वथा परम अनुरक्त हो जाना 'रागात्मिका' भक्ति है। इस रागात्मिका भक्तिका अनुकरण करके—भगवान्‌के साथ कोई सम्बन्ध जोड़कर जो भक्ति की जाती है, उसे 'रागानुगा' भक्ति कहते हैं। यही प्रेमलक्षणा भक्ति है। परम अनुरक्ति ही इसका स्वरूप है।

२०–प्रेमका भाव नित्य है। यह अनुभवकी वस्तु है, वाणीकी नहीं। अनुभवमें नित्य नवीनता रहती है, वाणी-द्वारा कथन करनेपर उसमें पुनरावृत्तिका अनुभव होता है।

२१–जबतक जगत्‌के किसी प्राणी-पदार्थमें कहीं कुछ भी 'मेरा' रहता है, तबतक भगवच्चरणोंमें प्रेम नहीं है।

२२–जबतक जगत्‌में कोई 'मेरा' है, तबतक गोपीप्रेम-की बात क्या की जाय? केवल एक श्रीश्यामसुन्दर ही मेरे और मैं केवल श्यामसुन्दरका ही, इस अनन्यभावको लेकर श्रीकृष्णसे जो नित्य सम्बन्ध हो जाता है, वह है गोपीप्रेम।

२३–संतका प्रभाव अपार है। संत चाहे उपदेश न करे, चाहे वह छिपकर रहे, चाहे वह अज्ञातवास करे, उसकी स्थितिमात्र समाजके लिये, देशके लिये, विश्वके लिये परम कल्याणकारिणी है। संतके अंदर जो भगवत्-परमाणु हैं, वे बिखरकर यथायोग्य न्यूनाधिकरूपमें सबका सहज कल्याण करते हैं।

२४–भगवान् ही सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के रूपमें अभिव्यक्त हैं, अतएव कभी किसीसे भी दुर्व्यवहार न करे। सबमें भगवान्‌को अनुभव कर जो यथायोग्य व्यवहार करेंगे, वह निर्दोष होगा। भगवान्‌को भूलकर, आत्मभावना-को भूलकर, जो व्यवहार होता है, उसमें दोष आ ही जाता है; क्योंकि उससे कहीं राग हो जाता है तो कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेष । इसलिये सबको भगवान्‌की अभिव्यक्ति समझकर, सबमें भगवान्‌को समझकर अथवा सबको भगवान् ही समझकर सबका सम्मान करना चाहिये; अपने प्रत्येक कर्म-के द्वारा सबकी पूजा करनी चाहिये—उनका हित-सुख सम्पादन करना चाहिये । ऐसा करनेसे भगवान् संतुष्ट होंगे और मानव-जीवन सफल हो जायगा ।

२५–मलमें भरा बच्चा रोता है । वह माँका नाम लेकर नहीं पुकारता, पर वह मातृपरायण है । माँ नहीं कहती कि तुम नहा-धोकर आओ, तब लूँगी । वह दौड़ती है और बच्चेको धो-पोंछकर छातीसे लगा लेती है । भगवान्‌के परायण होनेवाले भक्तको भगवान् स्वयं स्वच्छ निर्मल करके हृदयसे लगा लेते हैं । वे उसे कभी नहीं कहते कि पहले तुम शुद्ध होकर आओ, तब हृदयसे लगाऊँगा । पर होना चाहिये बच्चेकी भाँति भगवत्परायण ।

२६–जहाँ अधिक दौर्बल्य है, अपवित्रता है, वहाँ भगवान्‌का अधिक प्यार है । पर उस प्यारको अनुभव करना, यह जीवका काम है ।

२७–भगवान्‌की शरणागतिमें यह प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं कि हम पापमुक्त होंगे, तब भगवान्‌की शरण ग्रहण कर सकेंगे । जब जिस समय शरणागत होनेकी अभिलाषा जाग्रत् हो, तब उसी समय—'नाथ ! हम जैसे हैं, तुम्हारे हैं, हमारे पास जो कुछ पाप-पुण्यकी सम्पत्ति है, सब तुम्हारी है ।'''पुकारकर शरण ग्रहण कर लें । भगवान् सदा अपनानेको प्रस्तुत हैं ।

२८–अपने दैन्यका विश्वास और भगवान्‌की कृपाके महत्त्वका विश्वास—जहाँ दोनों मिल जाते हैं, वहाँ काम बन जाता है । यह सारे पापोंका ध्वंस करनेवाला तत्त्व है । इसलिये यह प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं कि 'कब पाप नाश हों और कब हम भगवान्‌के शरणापन्न हों ।'

२९–भगवान् जीवके पूर्वका इतिहास नहीं देखते, भगवान् जीवके पिछले पापोंके लिये आँख मूँद लेते हैं । वे देखते हैं, वर्तमानके हृदयको; उसमें सच्ची अनन्य चाह है तो भगवान् कह देते हैं—'तू मेरा हुआ । तेरे पाप मैं धो डालूँगा । तू निश्चिन्त हो जा ।'

३०–साधकको चाहिये कि अपना इष्ट, अपना गुरु, अपनी साधन-प्रणाली—ये तीन कभी न बदले । कभी किसी दूसरेका खण्डन न करे और अपनी तीनों बातें अपने लिये सर्वोच्च माने । इनका बदलना 'व्यभिचार'का लक्षण है ।

३१–गुरुने जो मार्ग बताया है, उस मार्गपर चलता रहे । ध्येय सच्चा है तो भगवान् सहायक होते हैं ।

३२–साधनामें आसन, स्थान, काल, मन्त्र, माला आदि सबकी विशेषता है । ये बार-बार बदले जायँ तो इनकी शक्ति क्षीण होती है ।

३३–साधकको चाहिये कि जिस मार्गको पकड़े, उसमें सर्वोपरि बुद्धि रक्खे ।

३४–पतिव्रता स्त्री पराये पुरुषके गुणोंको क्यों सुने ? उसके लिये तो उसका पति ही सर्वोपरि है । अतएव जिस साधनका साधक हो, उसे उतनी ही बात सुननी चाहिये, जो उसके साधनमें सहायक है । पर दूसरे साधनोंके प्रति कभी हेय-बुद्धि न करे ।

३५–भगवान्‌के विश्वासके पाँच स्वरूप हैं—

१–भगवान् हमसे अधिक बुद्धिमान् हैं ।

२–भगवान्‌से कभी भूल नहीं होती ।

३–हमारा भला किसमें है, इसे भगवान् जानते हैं ।

४–भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं । सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ।

५–भगवान् हमारे सुहृद् हैं ।

—जहाँ भगवान्‌पर विश्वास, श्रद्धा, भक्ति है, वहाँ भक्त भगवान्‌से यही प्रार्थना करता है—'नाथ ! आप जो चाहते हैं, वही हो ।' अपनी सारी चाह वह भगवान्‌की चाहमें मिला देता है ।

३६–हम भगवान्‌के हाथके खिलौने बन जायँ, वे अपनी लीला-सामग्री बना लें हमको—बस, यही साध्य हो हमारा । अब भी हम बाध्य हैं भगवान्‌का किया हुआ विधान माननेके लिये, पर यह होता है कानूनन । किंतु जब हम उनके हाथका खिलौना बन जाते हैं, तब हमारे द्वारा उनकी लीला सम्पन्न होती है ।

३७–प्रेमस्वरूप भगवान्‌के सुखकी सामग्री बन जाना प्रेमीका स्वभाव है । यदि न मिलना भगवान्‌को सुखदायी है तो प्रेमी उनके अमिलनकी आकाङ्क्षा करता है । यदि संसारमें उसके पददलित, निन्दित होनेमें प्रेमास्पदको सुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है तो वह सदा पददलित, निन्दित होते रहना चाहता है।

३८–जहाँ-जहाँ कामना है, वहाँ-वहाँ मधुरतामें विषका मिश्रण है। मोक्षकी इच्छा भी मधुर-भावमें विष ही है। मधुर भावमें न तो कामनाका कलङ्क है, न अहंकी मङ्गलाकाङ्क्षा है।

३९–वैराग्यकी परम भूमिकापर प्रेमी नाचता है। जहाँ वैराग्यकी परम भूमिका है, वहीं प्रेम देवता आते हैं।XXXX भगवत्प्रेममें जगत्का वैराग्य स्वाभाविक है। भगवत्प्रेम-रसमें डूबा हुआ प्रेमी जगत्के सम्पूर्ण विषय-भोगोंके प्रति सहज वैराग्यवान् होता है। जहाँ विषयानुराग, जगदनुराग ही नहीं, पर मोक्षानुराग भी है, वहाँ भी भगवत्प्रेम प्रकट नहीं होता!

४०–'सर्वात्म-निवेदन'में जबतक निवेदन करनेवाला अलग रहता है, तबतक 'सर्वात्म-निवेदन' पूर्ण नहीं होता। 'सर्वात्म-निवेदन'में निवेदन करनेवाला खो जाता है।

४१–भगवान्की चाह—प्रेमास्पदकी अनन्य चाह जब उत्पन्न हो जाती है, तब यह जगत् नहीं रह जाता, केवल रह जाते हैं—भगवान् या प्रेमास्पद।

४२–मधुर भावमें जहाँ साधना अत्युच्च कोटिमें पहुँचती है, वहाँ साधक और साध्यका भेद मिटने लगता है और जहाँ यह भेद मिट जाता है, उस स्थितिका वाणीद्वारा कथन नहीं हो सकता। वह स्थिति अनिर्वचनीय है; वह अनुभूतिकी वस्तु है। वह अचिन्त्य, चित्तद्वारा चिन्तनकी वस्तु भी नहीं है। व्रजकी साधनाका यही स्वरूप है—वहाँ प्रेमी प्रेमास्पद हो जाता है और प्रेमास्पद प्रेमी।

४३–पित्तके रोगीकी जीभ कड़वी होती है। उसे मिश्री भी कड़वी लगती है। पर मिश्री पित्तको शमन करनेकी दवा है, इस नाते मिश्री खाना आरम्भ कर दें—मिठासके लिये नहीं—तो जैसे-जैसे पित्तका शमन होगा, वैसे-ही-वैसे जीभका कड़वापन भी मिटता जायगा। फिर मिश्री तो मीठी है ही। इसी प्रकार भगवान्का नाम यदि मीठा न भी लगे तो दवाकी भाँति उसे लेते रहो। हृदयका मल ज्यों-ज्यों नष्ट होगा, त्यों-ही-त्यों नाममें रुचि उत्पन्न होती जायगी। अन्तर्मलके नाशके लिये भगवान्का नाम सर्वोपरि मधुरतम साधन है।

४४–साधकको चाहिये कि वह व्यर्थका बोलना बंद कर दे और उठते-बैठते, चलते-फिरते, शुद्धि-अशुद्धिमें जीभसे बराबर भगवान्का नाम लेता रहे। अपने जिम्मेका काम सब करे, पर कामभरको बोले और जीभको लगाये रक्खे—भगवान्के नाम-जपमें। व्यर्थ बोलना बंद कर देनेसे चार लाभ होते हैं—झूठ छूटता है, परनिन्दा छूटती है, व्यर्थकी चर्चा छूटती है तथा वाणीमें शक्ति आती है।

४५–साधकको चाहिये कि जो कुछ करे भगवान्की सेवाके भावसे, जो कुछ बोले भगवान्के गुणानुवादकी भावनासे और जो कुछ सोचे भगवान्के सम्बन्धसे।

४६–भगवान् दुर्लभ नहीं हैं, भगवान्की प्राप्तिके लिये संतापका जगना ही दुर्लभ है। इसे ही जगाना चाहिये। भगवान्की प्राप्तिका संताप क्या है?—भगवान्का अमिलन, भगवान्का विछोह, भगवान्के अमिलनमें बीतनेवाला एक-एक निमेष युगके समान अनुभव हो।

४७–कूड़ेमें आग डाल दी जाय तो कूड़ा आग बन जाता है। भगवान्की प्राप्तिकी आग हृदयमें जला ली जाय, यह परम साधन है। आग उत्पन्न हुई कि वह सम्पूर्ण तृष्णाको, सम्पूर्ण कामनाओंको, सम्पूर्ण मलिनताओंको जला डालेगी और हृदय भगवत्स्वरूप हो जायगा—भगवान् उसमें आकर बस जायँगे।

४८–यदि हम सच्चे हृदयसे भगवान्को पुकारते हैं तो भगवान्का हृदय हमको पुकारता है। हम जिस प्रकार भगवान्को चाहते हैं, उसी प्रकार भगवान् हमको चाहते हैं। पर हमारी और भगवान्की शक्ति अलग-अलग है। उदाहरण-रूपमें—यदि चींटी और गरुडजीमें मैत्री हो जाय और यह शर्त भी तय हो जाय कि जैसे एक चलेगा वैसे दूसरा भी, तो चींटीके एक पैर बढ़ानेपर गरुडजी अपना एक पैर बढ़ायेंगे। गरुडजीके पैरके सामने चींटीके पैरकी क्या तुलना है? दोनोंकी गतिका विचार करें, कोई अनुपात नहीं। ठीक इसी प्रकार भक्तके मनमें संकल्प हो—'भगवान् मिलें' तो उधर भगवान्के मनमें भी संकल्प होता है 'भक्त मिले'। भगवान्का संकल्प और उसकी सिद्धि दो नहीं होते। बस, भगवान्में संकल्प उदय होते ही भक्त निहाल हो जाता है। अतएव भक्तको चाहिये कि अपने हृदयमें यह अनन्य संकल्प उत्पन्न करे कि 'भगवान् मिलें'।

४९–भगवान्के साथ जो सम्बन्ध जोड़कर हम भगवान्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपना मानेंगे, भगवान् उसी सम्बन्धके साथ हमारे साथ जुड़ जायँगे—यह सुनिश्चित है। हम संतान हैं, भगवान् माता हैं; हम पुत्र हैं, वे पिता हैं; हम धनके लोभी हैं, वे हमारे धन हैं। कोई सम्बन्ध ऐसा नहीं कि जिस सम्बन्धमें भगवान् हमारे साथ नहीं रह सकते।

५०—भगवान्‌की कृपापर भरोसा करके—'जैसे भी हम हैं 'भगवान्‌के हैं,' 'जगज्जननी माँकी गोदके बच्चे हैं,'—इस विश्वासके साथ अपने आपको भगवान्‌का स्नेहभाजन मान लें। स्नेहभाजन स्नेहीके दोषोंको नहीं देखता, यह जगत्‌का व्यवहार है, तब क्या जगज्जननी माँ हमारे दोषोंको देखेगी? भगवान्‌के मनमें भक्तके दोषोंकी कभी कल्पना भी नहीं हो सकती।

पाश्चात्त्य जगत्‌में श्रीकृष्णभक्तिका विस्तार
'हरे कृष्ण हरे राम'की तुमुल ध्वनि

(अमेरिका, यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा जापानमें २५ श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर)

[श्रीकृष्ण-भावना-प्रसारक अन्ताराष्ट्रिय संघ]

(International Society for Krishna Consciousness)

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य महात्मा श्रीभक्तिसिद्धान्तजी महाराजके एक विद्वान् शिष्य श्रीभक्ति-वेदान्तजी सन् १९६५ में अमेरिका गये थे। उनके पास पूँजी थी—'श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवकी महती कृपा, गुरुकृपा, श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता एवं अखण्ड अनन्त दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवत्स्वरूपाभिन्न श्रीभगवन्नामकी परम आश्रयता।' उन्होंने वहाँ न्यूयार्कमें कथा आरम्भ कर दी और कभी-कभी संध्याके समय टाम्पकिन (Tompkin) पार्कमें वे 'हरे कृष्ण' मन्त्रका मधुर कीर्तन करने लगे। तरुणवर्ग आकर्षित हुआ। कवि गिन्सवर्ग मिलने आने लगे। इनके संकीर्तनकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। नाम-संकीर्तनसे भगवद्भावकी प्रवाहिनी-सी बह चली। लोगोंमें नामोन्मादका प्रादुर्भाव होने लगा। कवि गिन्सवर्गके कथनका सारांश है—"यह संकीर्तन भावोन्मादकी स्थिति उत्पन्न कर देता है। संकीर्तनकी स्वर-ध्वनिसे बलात् मानो यौगिक क्रिया होने लगती है। इस संकीर्तनमें ऐसी मादकता है कि अन्य तमाम मादक द्रव्योंसे पिण्ड छूट जाता है। 'हरे' 'कृष्ण' 'राम' नाम ही ऐसा विलक्षण है।" ओहियो राजकीय विश्वविद्यालयके अंग्रेजीके प्राध्यापक श्रीहावर्ड एम ह्वीलर, जिन्होंने अपना पूरा जीवन ही श्रीकृष्णसेवाके लिये समर्पित कर दिया है, कहते हैं कि 'मैं स्वयं पिछले दो वर्षोंमें एल० एस० डी० की पचास खुराक तथा एक-एक दर्जन पियोटे (Peyote)—जैसे मादक द्रव्योंका सेवन कर चुका हूँ, पर अब नामकी मादकताने सबको छुड़ा दिया है। अब कभी कुछ भी नहीं लेता।'

स्वामीजीने पहले न्यूयार्कमें एक केन्द्रकी स्थापना की। नाम रक्खा गया—'श्रीकृष्णभावना-प्रसारक अन्ताराष्ट्रिय संघ' (International Society for Krishna Consciousness).

युवक-युवतियोंका आकर्षण बढ़ता गया और धीरे-धीरे शाखाएँ खुलती गयीं। इस समय तक अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया और जापानमें—कुल मिलाकर पचीस मन्दिर स्थापित हो चुके हैं। इन मन्दिरोंमें श्रीबलरामजी और श्रीसुभद्राजीके साथ भगवान् जगन्नाथजीकी तथा भगवान् राधाकृष्णकी पूजा भारतीय वैष्णव-पूजा-पद्धतिके अनुसार होती है। अपने गुरु महाराजकी आज्ञाके अनुसार पहले श्रीजगन्नाथजीकी पूजा आरम्भ की जाती है। प्रायः सभी मन्दिरोंमें भगवान् जगन्नाथ और श्रीचैतन्यमहाप्रभुके संकीर्तनके चित्र हैं। फिर क्रमशः प्रत्येक मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णके विग्रहोंकी स्थापना होती जा रही है। भारतवर्षसे बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ स्थापनार्थ जा चुकी हैं। अभी और भी मूर्तियोंकी आवश्यकता है। कोई सज्जन भेजना चाहें तो वे स्वामीजीसे पत्र-व्यवहार करके जानकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लें कि किस आकारकी कैसी मूर्ति चाहिये। उनका पता नीचे दिया गया है।

इस समय स्वामीजीके हजारों अमेरिकन तथा यूरोपियन दीक्षित शिष्य हैं। अदीक्षित भक्तोंकी संख्या तो बहुत अधिक है और दीक्षित-अदीक्षित दोनोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इनमें वकील, अध्यापक, सामाजिक कार्यकर्ता, विद्यार्थी—सभी श्रेणीके लोग हैं। ये सभी प्रायः सच्ची भावनावाले लोग हैं। स्वामीजीका वैष्णव सदाचारपर बड़ा जोर है, जिससे शारीरिक-मानसिक अनैतिकता नष्ट हो रही है और जीवन पवित्र होता जा रहा है।

प्रत्येक पुरुषको धोती, महिलाको साड़ी—भारतीय वेश-भूषाके अनुसार पहननी पड़ती है। पुरुष पीले गेरुवे रंगके वस्त्र धारण करते हैं। सिरका मुण्डन कराते हैं। शिखा (चोटी) रखते हैं। हिंदू नाम-जैसे—दामोदरदास, भगवानदास आदि। स्त्रियोंके गोपिकादासी, दीनदयार्द्रदासी आदि रख दिये जाते हैं। मस्तकपर सभी गोपीचन्दनका तिलक लगाते हैं।

नियम हैं—प्रातः चार बजे उठना, दिनमें दो बार स्नान करना, भगवान्‌की नियमित पूजा करना, हरे कृष्ण आदि १६ नामोंकी १६ मालाका प्रतिदिन जप करना और प्रातःकाल तथा सायंकालके सत्संगमें अनिवार्यरूपसे उपस्थित होना।

१. किसी भी मादक वस्तुका यहाँतक कि चाय, काफी, सिगरेटका भी सेवन न करना।

(No addiction to or indulgence in any form of intoxication, including coffee, tea and cigarettes.)

२. मांस, मछली, अण्डा आदिका सेवन कदापि न करके पूर्णतया शाकाहारी भोजन करना।

(No eating of meat, fish or egg. Must be strictly Vegetarian.)

३. विवाहित दाम्पत्य जीवनके अतिरिक्त अवैध यौन-सम्बन्धका त्याग।

(No illicit sexual relationship.)

४. जूआ या मानसिक हवाई किले बनानेसे दूर रहना।

(No gambling or mental speculation.)

५. अभक्तोंके साथ अत्यधिक सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

(Should not extensively mix with non-devotees.)

६. अभक्तोंके द्वारा बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिये।

(Should not eat food cooked by non-devotees.)

७. व्यर्थकी बातचीतमें समय नहीं खोना चाहिये।

(Should not waste time in idle talks.)

८. सारहीन खेल-तमाशोंमें सम्मिलित नहीं होना चाहिये।

(Should not become engaged in frivolous sports.)

९. निरन्तर भगवान्‌के पवित्र नामोंका जप-कीर्तन करते रहना चाहिये।

(Should always chant and sing the Lord's Holy Names.)

दस नामापराधोंसे बचनेकी भी शिक्षा दी जाती है। नामापराध ये हैं —

१. भगवान्‌के भक्तकी निन्दा।

२. भगवान् तथा उपदेवताओंको समान समझना अथवा अनेक भगवान् मानना।

३. पारमार्थिक गुरुकी आज्ञाओंकी अवहेलना करना।

४. धर्मशास्त्रोंके महत्त्वको सीमित करना।

५. भगवान्‌के पवित्र नामको अर्थवाद बताना।

६. भगवन्नामके बलपर पाप करना।

७. अश्रद्धालु लोगोंके सामने भगवन्नामकी महिमाका उपदेश करना।

८. भौतिक सदाचारके साथ पवित्र भगवन्नामकी तुलना करना।

९. पवित्र नाम-जपके समय उसमें प्रीतिरहित रहना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. नामजप-कीर्तनके समय जागतिक विषय-भोगोंमें आसक्ति रखना।

भक्तमें ये २६ सद्गुण आवश्यक हैं—

१-हर-एकके प्रति दयालु, २-किसीसे झगड़ा न करना, ३-परम सत्यमें प्रतिष्ठा, ४-सबके प्रति समताका भाव, ५-निर्दोष, ६-दानशील, ७-मृदु, ८-स्वच्छ, ९-सरल (कपटहीन), १०-उदार, ११-शान्त, १२-श्रीकृष्णके प्रति पूर्णतया आसक्त, १३-सांसारिक कामनासे शून्य, १४-विनीत, १५-धीर, १६-आत्मनिग्रही, १७-मितभोजी, १८-विवेकशील, १९-आदरपूर्ण, २०-दीन (अभिमानशून्य), २१-गम्भीर, २२-करुणार्द्र, २३-मैत्रीपूर्ण, २४-काव्यमय, २५-दक्ष और २६-मौन।

कलियुगमें भगवत्प्रीति या भगवत्प्राप्तिका प्रधान साधन भगवन्नामजप तथा कीर्तन ही माना गया है। यहाँ इसीका उपदेश तथा आचरण किया-कराया जाता है। सभी भक्त नाम-जप करते हैं, अखण्ड कीर्तनके आयोजन होते हैं। नगर-कीर्तन सर्वत्र रोज ही किया जाता है।

जिस समय पवित्र भगवद्भावमें निमग्न पुरुषों तथा महिलाओंके दल (पुरुष) पवित्र गेरुआ वस्त्र तथा (स्त्रियाँ) साड़ी पहने, शुभ्र तिलक लगाये, पुरुषगण अपने मुण्डित सिरोंपर शिखा लटकाये, सभी गलेमें तुलसीकी कण्ठी पहने, हृदयपर भगवन्नाम-जपमालाकी झोली झुलाये, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाते हुए, ऊर्ध्वदृष्टि तथा ऊर्ध्वबाहु किये अमेरिका तथा यूरोपके वर्तमान भोगप्रधान नगरोंकी सड़कोंपर उन्मत्त नृत्य करते निकलते हैं,—उस समय उन्हें देखकर वहाँके नर-नारी चकित रह जाते हैं, उनके मस्तक श्रद्धासे झुक जाते हैं, हृदय द्रवित हो जाते हैं और बरबस वे भी नामकीर्तन करने लगते हैं।

अमेरिकाके लोग तो इनके कीर्तनसे बहुत ही प्रभावित हैं। लन्दनके कीर्तनके सम्बन्धमें 'टाइम्स आफ लन्दन' (Times of London) में एक लेख छपा था—लिखा था 'हरे-कृष्ण-कीर्तनने लन्दनको चकित कर दिया।' (Hare Krishna Chant Startles London.)

स्वामीजी गीता तथा श्रीमद्भागवतका नियमित उपदेश करते हैं। लोगोंकी शङ्काओंका मौखिक तथा लिखित उत्तर भी देते हैं। पुस्तकें भी लिखते हैं। इनकी एक पुस्तक 'कृष्ण' जापानमें छप रही है, जिसके लिये इनके एक अदीक्षित भक्त प्रसिद्ध अंग्रेज संगीतज्ञ श्रीजार्ज हरीसनने १९००० पाउण्ड दिये हैं।

'ईश्वरकी ओर मुड़ो' (Back to Godhead) नामक पत्र अंग्रेजी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषामें निकलते हैं, जिनमें सदाचार, भक्ति तथा उच्च पारमार्थिक विचारोंके लेख, महाभारत तथा भागवतकी कथाएँ, श्रीमद्भगवद्गीताके उपदेश और धार्मिक भारतीय चित्र रहते हैं।

श्रीस्वामीजी महाराज, जिन युवकोंका विवाह नहीं हुआ है, उनको ब्रह्मचर्य-व्रतपर दृढ़ रहनेकी शिक्षा देकर उन्हें श्रीकृष्ण-सेवामें लगाते हैं। जो युवक-युवती विवाह करना चाहते हैं वे पहले अपने गुरु-भाइयोंकी राय लेते हैं, फिर स्वामीजीसे आज्ञा प्राप्त करते हैं। वे युवक-युवती अपनी प्रसन्नता तथा सुखके लिये विवाह करना नहीं चाहते। वे एक सूत्रमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी और भी अच्छी सेवा करना चाहते हैं। गुरुजी उनके नाम बदल देते हैं और हिंदू-पद्धतिसे देवता तथा अग्निकी साक्षीमें गठबन्धन कराके विवाह-संस्कार कराते हैं। न कोर्टशिप होती है, न रजिस्ट्रेशन। विवाहित स्त्रियाँ, भारतीय पद्धतिके अनुसार मस्तकपर कुंकुम या सिन्दूरका टीका लगाती हैं।

ये लोग जब टेलीफोनमें बात करते हैं, किसीसे मिलते हैं तो पहले 'हरे कृष्ण'का उच्चारण करते हैं। डेट्रायटमें एक ऐसा ही विवाह हुआ है, वहाँ नववधूकी माता श्रीमती रेमाण्ड क्लासनने बताया कि "मैंने तथा मेरे पतिने श्रीकृष्ण-मन्दिरकी पूजामें भाग लिया है। मेरा साढ़े तीन वर्षका पौत्र 'हरे कृष्ण'का उच्चारण करके टेलीफोनपर उत्तर देता है।"

अबतक २५ श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर या केन्द्रोंकी स्थापना हो चुकी है। श्रीस्वामीजी कुल १०८ केन्द्र स्थापित करना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि उनके भक्त हैम्बर्ग (जर्मनी) से टोकियो (जापान) तक तथा टोकियोसे सिडनी (आस्ट्रेलिया) तक फैले हुए हैं। नास्तिक लोग आस्तिक बनते जा रहे हैं। वे श्रीकृष्णके रूपमें भगवान्को पा रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूयार्क अमेरिकामें वहाँके नर-नारी भक्त कीर्तन कर रहे हैं।

लन्दनके एक पार्कमें वहाँ नर-नारी भक्त कीर्तन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

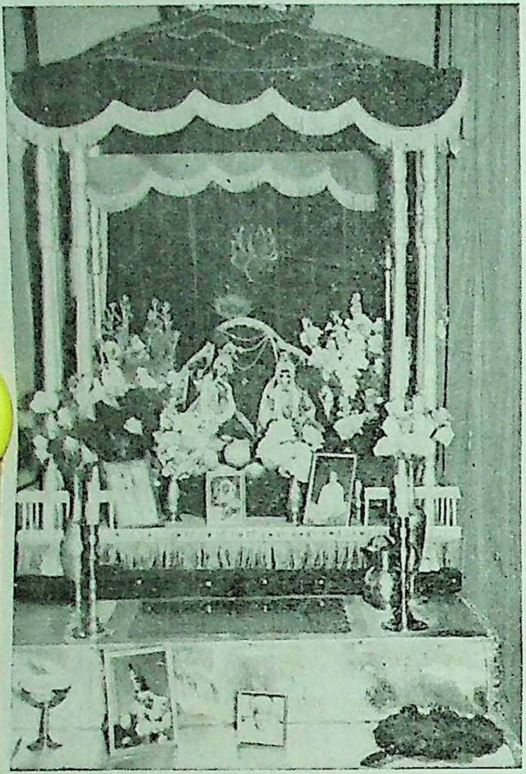

लास एंजिल्सके मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णकी मूर्ति

लास एंजिल्सके मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति

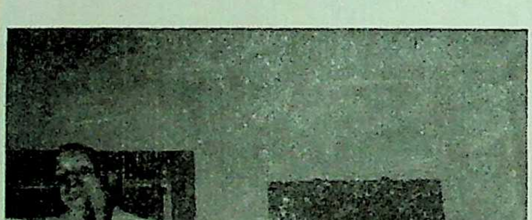

मन्दिरमें कीर्तन करती नर-नारियोंकी भीड़का एक अंश

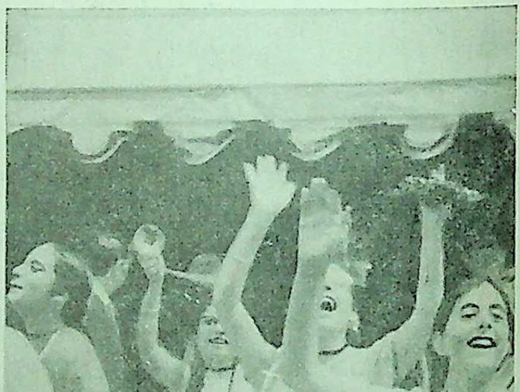

न्यूयार्ककी सड़कोंपर कीर्तन और नृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यह सब महाप्रभु श्रीचैतन्यकी कृपा है।' ये लोग भक्तिके साथ ही भागवत-गुण—सदाचार, सद्भावना, मैत्री, सहिष्णुता, संयम आदिका क्रियात्मक आदर्श चरितार्थ कर रहे हैं।

इनकी सहनशीलता, नामकीर्तनमें विश्वास, मैत्री-भावनाका एक उदाहरण देखिये—

'एक जगह राधाकृष्ण-मन्दिरके पीछे सिगमाची संघ (Sigma Chi Fraternity) का भवन था। वे लोग इन श्रीकृष्णसेवकोंकी कार्यवाहियोंको पसंद नहीं करते थे और बड़े हैरान थे। कुछ सप्ताह पूर्व एक दिन अर्धरात्रिके समय सिगमचीके कुछ लड़के शराबकी शीशियोंको कमरमें खोंसे मन्दिरमें आये और उन्होंने कुछ खिड़कियाँ तोड़ डालीं।

'श्रीकृष्ण-मन्दिरके सदस्य बिस्तरोंसे निकले और कपड़े पहनकर झाँझ-खड़ताल-मृदंग आदि लेकर उन्हें बजाते, कीर्तन करते और नाचते हुए संघके भवनके सामने पहुँच गये।

'पहले तो उन्होंने इन लोगोंपर शराबके खाली बर्तन फेंके। फिर उन्होंने दिल्लगी उड़ाते हुए कीर्तनकारोंको अंदर बुलाया। ये कीर्तन करते हुए अंदर चले गये। आरम्भमें तो उन लोगोंने इनका उपहास किया, परंतु बीस ही मिनट बाद वे सब इनके साथ कीर्तन करने और गाने लगे। फिर तो वे इन सबको निकटके सोरोरिटि हाउस (Sorority House) में ले गये और वहाँकी लड़कियाँ भी इनके साथ नाचने तथा कीर्तन करने लगीं।

'सारा वातावरण बिल्कुल बदल गया। यह दृश्य बड़ा ही सुन्दर था। सारी शत्रुता नष्ट हो चुकी थी।'

एक सज्जन लिखते हैं कि 'यह बड़ा सुन्दर अद्भुत व्यापार चल रहा है—अमेरिका और यूरोपमें। बाल डान्सके स्थानपर कीर्तन-नृत्य-स्थल बन गया है। इन्द्रियपूजनके स्थानपर ब्रह्मचर्य, नशीली वस्तु तथा चाय, काफी, तम्बाकू आदिके स्थानपर नामामृतपान, मांस-मछली-अण्डोंकी जगह पवित्र शाकाहार, शत्रुताके स्थानपर मैत्री, अहंकारके स्थानपर विनम्रता और साथ ही परमात्माकी प्राप्तिका सबसे सरल साधन नाम-जप और नाम-संकीर्तन। सचमुच चमत्कार है।'

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व कहा था—

पृथिवीते जत आछे नगर आदि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मम नाम ॥

'पृथ्वीमें जितने भी नगर-ग्राम आदि हैं, सर्वत्र मेरे (कृष्ण) नामका प्रचार होगा।' भगवान्ने कलियुगके जीवोंपर कृपा करके स्वामीजी श्रीभक्तिवेदान्तजीके द्वारा सम्भवतः अमेरिका, यूरोप तथा जापान आदि देशोंके नगरोंकी गली-गलीमें भगवन्नाम-कीर्तनका प्रसार कराके उसीका सूत्रपात किया हो।

श्रद्धेय श्रीभक्तिवेदान्तजी महाराज पाश्चात्य जगत्के लोगोंके जीवनको सदाचार-सम्पन्न बनाकर नाम-प्रसारके द्वारा उनका कल्याण करनेमें सफल हों। भगवत्कृपासे यह बहुत ही कल्याणकारी कार्य हो रहा है। इसमें जो हजारों युवक-युवतियाँ क्रियात्मक सहयोग दे रहे हैं, उनपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। वे अभी तो पूर्णतया सच्चे भावसे ही कार्य करते प्रतीत होते हैं। उनमें कहीं भी बनावटीपन नहीं मालूम होता। आगे चलकर कैसे क्या होगा, सो भगवान् जानें। भगवान् इस मङ्गल-कार्यके सम्पादनमें सबको सद्बुद्धि, सद्भाव, सत्-साहस तथा सफलता प्रदान करें।*

स्वामीजीसे कोई पत्र-व्यवहार करना चाहें तो पता यह है—

Tridandi Goswami Sri
A. C. Bhaktivedanta Swami,
International Society for Sri Krishna Consciousness,
Center: 1975 So. ha Cienega Blvd.
Los Angeles, CALIFORNIA.

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

* यद्यपि इनके सब कार्य सब लोगोंके लिये समर्थन योग्य नहीं हो सकते, तथापि जो कुछ हो रहा है—अधिकांशमें बहुत ही उत्तम हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यदि वहाँ भी ऐसा ही हुआ तो....?

[ऐतिहासिक कहानी]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी **महेन्द्र**, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

(१)

राजकुमारी वासवदत्ता हर प्रकार शील-गुणसम्पन्न अत्यन्त रूपवती थीं। उनके पिता इस सुशील कन्याके लिये एक योग्य वरकी खोजमें चिन्तित रहते थे। जो कोई योग्य युवक दृष्टिमें आता, राजा उसे लुब्ध-दृष्टिसे देखते और उसमें भावी जामाताके दर्शन करते। शायद राजकुमारीके अनुरूप उच्चतम गुणोंसे विभूषित कोई राजकुमार उपलब्ध हो जाय।

किंतु राजकुमारी वासवदत्ताके अनुरूप राजकीय कुलका युवक न मिला। उनके नेत्र, जैसे चातक स्वाति नक्षत्रकी बूँद-के लिये तरसता रहता है, उसी प्रकार अतृप्त आकाङ्क्षासे खुले रहे।

पर राजाने खोज जारी रक्खी कस्तूरीकी तलाशमें मृग-की तरह!

संयोगसे एक दिन उस नगरमें गौतमबुद्धने पदार्पण किया, चन्द्रमाके उदय होनेकी तरह सर्वत्र एक अलौकिक प्रकाश फैल गया। राजा युवक गौतमके रूप-गुण-सौन्दर्य और उच्च विचारोंसे मन्त्र-मुग्ध हुए। चुम्बक-सदृश गौतमका व्यक्तित्व सचमुच अत्यन्त आकर्षक था।

'क्या ही सौभाग्य हो, यदि गौतम-जैसा योग्य दामाद मुझे प्राप्त हो जाय! तब मैं वासवदत्ता-जैसी शीलगुणसम्पन्न पुत्रीसे सच्चा न्याय कर सकूँगा।'—राजाने मन-ही-मन निर्णय किया—'मुझे गौतमको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये हर युक्तिसे।'

राजाने युवक गौतमके पास राजकीय विवाहका प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव स्वीकार करवानेके लिये बड़ी खुशामद की। नाना प्रकारके सांसारिक प्रलोभन भी दिये। जीतनेका हर प्रकारसे प्रयत्न किया।

किंतु सब उपाय व्यर्थ!

उनके भेजे गये संदेशवाहकोंको नकारात्मक उत्तर मिले!

'अच्छा, अब मैं स्वयं ही गौतमसे प्रार्थना करने जाऊँगा। मैं उन्हें राजी कर सकूँगा।' राजाने निर्णय किया।

मनमें आशाका दीप जलाये राजा पूरे राजसी ठाटबाटसे गौतमके पास पहुँचे। अपना ऐश्वर्य दिखाकर वे युवक गौतम-का मन जीत लेना चाहते थे।

गौतम जिज्ञासुओंमें धार्मिक प्रवचन कर रहे थे। जनता उनकी वाणीका रसास्वादन कर रही थी। जब गौतम अपना प्रवचन समाप्त कर चुके और तृप्त श्रोताओंकी भीड़ छँट गयी, तब एकान्त पाकर राजाने अत्यन्त मधुर और विनीत स्वरमें निवेदन किया—

'वत्स! मेरी सुपुत्री वासवदत्ता रूप-शील और गुणोंमें सर्वथा आपके योग्य है। मैं बहुत दिनोंसे आप-जैसे उदीयमान, विचारशील और सच्चरित्र वरकी खोजमें था। सौभाग्यसे घर बैठे ही गङ्गाजी-सदृश आप हमारे नगरमें पधारे हैं। आप मेरी पुत्री वासवदत्ताको सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कीजिये। कृतार्थ होऊँगा। ऐसी कुशल गृहिणीको पाकर आपका दाम्पत्य जीवन सुखी होगा।'

गौतम इस प्रकारके सुझावके लिये किंचित् भी तैयार न थे। भला क्या उत्तर देते? बातको सुनी-अनसुनी कर दी।

राजाने पुनः मधुर शब्दोंमें दोहराया—

'भगवन्! मेरी पुत्री रूप-शील-गुणमें सर्वथा आपके योग्य है। कृपा कर इसे जीवन-सहचरीके रूपमें ग्रहण कीजिये। मैं अपनेको धन्य मानूँगा।'

गौतम तबतक विचारोंमें खोये हुए थे।

राजा चन्द्र-चकोरकी तरह एकटक उनकी ओर उत्सुकता-पूर्वक उत्तरकी प्रतीक्षामें निहार रहा था।

'राजन्! मैंने यशोधरा-जैसी रूपशीलवती धर्मपत्नीको धर्म-प्रचारके उद्देश्यमें लगे रहनेके कारण त्याग दिया है। क्या यह बात आपको विदित नहीं है?'

'यह मैं जानता हूँ तथागत! वासवदत्ता यशोधरासे कई दृष्टियोंमें आगे है। आप वासवदत्ताके साथ रहकर यशोधराको भूल जायँगे। वासवदत्ता बहुत योग्य, चतुर और आकर्षक है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भूल जाऊँगा ? सो कैसे ? आप अपना अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ।' बुद्धने पूछा ।

'वासवदत्ता हर दृष्टिसे यशोधरासे रूप-शील-गुणमें ऊँची है।'

'वह यशोधरासे ऊँची तो भला क्या होगी ?'

'नहीं''नहीं' राजाने प्रार्थना की, 'वासवदत्ता गुणोंमें बढ़ी-चढ़ी है । आप उसे देख तो लीजिये ।'

'पर''पर''एक शङ्का है !' गौतम झिझके ।

'क्या शङ्का है भगवन् ! कहिये, मैं उसका निवारण करूँगा।'

'राजन् ! मुझे आत्मज्ञानकी जिज्ञासा हुई थी, वैराग्यकी भावना उदित हुई तो मैंने यशोधरा-जैसी प्रिय, शील-गुण-सम्पन्न धर्मपत्नीतकका परित्याग कर दिया था; फिर''अब भला'''''।'

'फिर, अब भला क्या ? भगवन् ! मेरी पुत्री वासवदत्ता उसकी अपेक्षा श्रेष्ठतर है ।'

'एक भोगत्यागी वैरागी भला किसीकी भी कन्याको कैसे स्वीकार करेगा ?'

'ओफ़ ! तो यह बात है, तथागत !'

'हाँ राजन् ! विवशता है, क्षमा करें । शेष जीवनमें अब मैं विवाहकी कल्पना भी नहीं कर सकता ।'

राजा निराश होकर चले गये, टूटा हृदय लिये हुए !

यह सारी घटना और बातें राजकुमारी वासवदत्ताके कानों-तक पहुँचीं । उसने इसे अपना व्यक्तिगत अपमान समझा । वह उग्र हो उठी और उसने गौतमबुद्धसे अपने अपमानका बदला लेनेकी ठानी ।

घायल सर्पिणीके समान फूत्कार करते हुए उसने गर्जना की—

'गौतमने हमारे साथ सरासर अन्याय किया है । यह तो मेरा और मेरे पिताजीके अपमानका प्रश्न है । उनसे इस अपमानका प्रतिशोध लेकर रहूँगी । जीवनमें कभी तो अवसर आयेगा ही ।'

प्रतिशोधका भाव एक अग्निकी तरह है । इसकी अग्नि गुप्त-रूपसे धधकती रहती है और मनको सर्वदा अशान्त तथा उद्विग्न करती रहती है । एक बार जब किसीसे बदला लेनेकी भावना मनमें बैठ जाती है, तो वह व्यक्ति अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित, देर-सबेरपर ध्यान नहीं देता । प्रतिशोधका दुष्ट विकार मनुष्यके विवेकको लुप्त कर देता है ।

.... ।

(२)

बहुत दिनों बाद ।

युगका प्रवाह तेजीसे आगे बहता गया । जो किशोर थे, वे अब युवक बन गये ।

राजकुमारी वासवदत्ताका विवाह कौशाम्बीके राजा उदयनसे हुआ । वासवदत्ता अब महारानीके पदपर आसीन थीं । उनके हाथमें अब सत्ता थी । वे कौशाम्बीके राजमहलों-में ऐश्वर्यका राजसी जीवन व्यतीत करती थीं ।

एक दिन संयोगसे उन्हें समाचार मिला कि गौतमबुद्ध अपने शिष्योंके साथ कौशाम्बीमें पधारे हैं । गौतमका नाम सुनते ही अतीतकी स्मृतियाँ जाग्रत् हो आयीं ।

प्रतिशोधकी अग्नि एकाएक जल उठी । बदला लेनेका यह अच्छा मौका लगा ।

'अब मैं अपनी उच्च स्थितिसे लाभ उठाकर गौतमको नीचा दिखाऊँगी । नारीको कोमल माना जाता है, किंतु मैं दिखा दूँगी कि मैं कितनी शक्तिशालिनी हूँ ।' उसने मनमें सोचा ।

वासवदत्ताने दुष्टोंको धन देकर यह सिखाया कि गौतमबुद्धको खूब तिरस्कृत और हर प्रकारसे अपमानित किया जाय । अधिक-से-अधिक सताया जाय ।

दुष्ट अपनी दुष्टता कब छोड़ते हैं ? उन्हें पात्र-कुपात्रका ध्यान नहीं रहता । वे यह भी नहीं देखते कि किससे बदला लिया जाय और किसे छोड़ा जाय !

यहाँ भी ऐसा ही हुआ । गौतमको भयानक सामाजिक विरोधका सामना करना पड़ा । उकसाये हुए दुष्ट उनके पीछे पड़ गये ।

कौशाम्बी राज्यमें गौतमबुद्ध जहाँ भी गये, दुष्टोंने उन्हें परेशान किया । नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित किये । मान-हानि की । वे जहाँ कहीं भी प्रवचनके लिये तैयारी करते, वहींसे उन्हें निराश होना पड़ता । कोई दुष्ट उन्हें अपशब्द कहता, तो कोई बदमाश सड़ी वस्तुएँ उनपर फेंकता था । उनके धार्मिक भाषणोंमें आनेवाले श्रोताओंको बहकाया जाता था । खुलेआम उनकी निन्दा की जाती थी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अपमानित जीवन किसी भी भावुक व्यक्तिके लिये असह्य होता। महात्मा बुद्धका अपमान होते देखकर उनके प्रधान शिष्य आनन्दको बड़ा मानसिक आघात पहुँचा। और शिष्योंने भी अपमानका विष सहा, पर वे कुछ कह न सके।

पर आनन्द इसे न सह सके। उन्होंने कहा—'भगवन्! यहाँके लोग धर्मका अर्थ तनिक भी नहीं समझते। आपके अमृतमय उपदेशोंसे वे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। उलटे आपका उपहास करते हैं।'

'फिर क्या चाहते हो, आनन्द ?' गौतमने पूछा।

'तथागत! यहाँके लोग बहुत खराब हैं। इनमें धार्मिक चर्चासे कुछ भी लाभ न होगा। यह सब अरण्यरोदनके समान व्यर्थ ही जायेगा। हम सबको अन्यत्र सज्जनोंमें चलना चाहिये, जहाँ जीवनकी गूढ़ गुत्थियोंको समझनेवाले विवेकशील व्यक्ति हों। वे कुछ धर्मका मर्म समझें!'

'आनन्द! यदि वहाँ भी लोगोंने हमारा ऐसा ही अपमान किया तो हम क्या करेंगे ?'

'तो हम आगे और कहीं चलेंगे, सज्जनोंकी तलाशमें।'

'और यदि वहाँ भी ऐसे ही खराब आदमी मिले तो···?' बुद्धने शङ्का की।

'तो हम किसी चौथी जगह चलेंगे, पर शरीफ लोगोंमें ही प्रवचन करेंगे।'

'आनन्द! तो क्या हम इसी प्रकार अच्छे लोगोंकी तलाशमें इधर-उधर दुनियामें चक्कर लगाते रहेंगे ?'

'जी हाँ, सुपात्रकी खोज तो करनी ही होगी।'

यह कहकर आनन्द गौतमबुद्धका मुँह निहारने लगे। वे समझते थे कि गौतम उनके उत्तरसे सहमत होंगे। पर गौतमने फिर कहा—

'नहीं, आनन्द! तुम्हारा दृष्टिकोण सही नहीं है।'

'फिर क्या करना धर्म रहेगा? धार्मिक दृष्टिसे भला सेवा-का क्या मतलब है, भगवन्?'

'आनन्द! सेवाका अर्थ है दीन, हीन अविद्याग्रस्त लोगोंको, वे चाहे कहीं भी मिलें, ऊपर उठाना। भूलेको मार्ग दिखाना।'

'पर उसके लिये अच्छा वातावरण और उर्वर क्षेत्र भी तो होना चाहिये भगवन्!'

'नहीं, आनन्द! धर्मकी चेतना और आत्मोन्नतिका कार्य तो किसी भी क्षेत्रसे किया जा सकता है।'

'क्या स्थान और क्षेत्र बदलना जरूरी नहीं है? किसान बीज बोनेसे पूर्व अच्छे खेतकी तलाश करता है। उसे खूब जोतता-गोड़ता है। तब कहीं बीज बोता है। इसलिये अच्छे लोगोंमें जाना जरूरी है।'

'नहीं, आनन्द! लोग सब जगह प्रायः एक-से ही हैं। यह समझना कि दूसरी जगह लोग ज्यादा अच्छे होंगे, एक भ्रान्ति है। हर स्थानके लोग थोड़े-बहुत अन्तरसे प्रायः एक-से ही होते हैं। उनकी समझमें थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है, पर मूल रूप एक ही है।'

'तो फिर इस नगरके लिये हमारी कौन-सी धर्म-नीति ठीक रहेगी, भगवन्?'

'हम इन्हींमें अपने प्रवचन करना जारी रखेंगे आनन्द! इनमें कुछ तो ऐसे समझदार होंगे ही, जो हमारी बातें समझेंगे। अच्छी बातें विवेकशील मस्तिष्कोंमें जरूर बैठेंगी, दुर्जन और कुपात्र स्वयं एक दिन चुप होकर बैठ जायँगे। सज्जन और दुर्जन सब जगह समान-रूपसे सुख और दुःख-की तरह मौजूद हैं।'

'फिर दूसरी जगह चलना·····।'

'हाँ, आनन्द! स्थान छोड़कर कायरतासे भागना बेकार है। जो थोड़े-से सज्जन हैं, विवेकशील हैं, धर्मके सच्चे जिज्ञासु हैं, उन्हींके समझ लेनेसे हमें संतुष्ट हो जाना चाहिये। गहरी बातें तो कम ही लोगोंके मनमें उतरती हैं। वैसे संसार-में सब जगह लोग एक-जैसे ही हैं। दूसरी जगहके लोग यहाँवालोंकी अपेक्षा बेहतर होंगे, उनमें अच्छाई-ही-अच्छाई होगी, संकीर्णता, अहंकार, अज्ञान या अविद्या न होगी, ऐसा सोचना गलत है।'

'सब जगहके लोग एक-से ही हैं?'

'हाँ, जबतक यह अज्ञानरूपी अन्धकार मनुष्यसे नहीं छूटता, तबतक हर व्यक्ति पशु-जैसा ही अविकसित है। हमें अच्छे-बुरे सबमें देवत्वका विकास करना है। अज्ञानियोंके ज्ञान-नेत्र खोलने हैं। अधर्मप्रिय बुरे आदमियोंको भला बनाना है। वे तो विशेषरूपसे पात्र हैं। उन्हींमें धर्मकी चेतना जगानी है। बुरे आदमियोंसे डरकर भागनेसे काम न चलेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो इन्हीं दुष्टोंमें धार्मिक जागृतिका कार्य करना होगा क्या ?'

'हाँ आनन्द ! तुम जरा धैर्य रक्खो । अन्धकारमें ही प्रकाश फैलाना है । एकाग्र होकर प्रतिकूलताकी परवा न कर उत्साहसे धार्मिक जागृतिका कार्य करो । अन्तमें सत्य ही विजयी होता है । एक दिन तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी ।'

आनन्द निरुत्तर हो गये । गौतमबुद्धके अमृतमय उपदेश धीरे-धीरे सर्वत्र फैलते गये । दुष्टलोग हटते गये । सत्य, प्रेम और विवेकका दिव्य प्रकाश फैलता गया । जब यह तत्त्व वासवदत्ताको विदित हुआ, तो उसने भी अपनी गलती अनुभव की और गौतमबुद्धके पास आकर अपनी मूढ़ताके लिये क्षमा-प्रार्थना की ।

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ।

(सामवेद ९)

'परमात्मा ज्ञानियोंके हृदयमें प्रकाशरूप और मस्तिष्कमें विचाररूपमें प्रकट होता है ।'

अद्वैत-वेदान्तमें पुनर्जन्म एवं परलोकका स्वरूप

(लेखक—डॉ० श्रीराममूर्तिजी शर्मा, एम्० ए०, [संस्कृत-हिंदी] शास्त्री, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

अद्वैत-वेदान्तका सिद्धान्त यद्यपि भारतवर्षकी ही देन है, पर आज वह विश्वभरका सम्मानित सिद्धान्त है । इस दर्शन-पद्धतिको यह प्रतिष्ठा केवल अन्ध-श्रद्धाके आधारपर नहीं प्राप्त हुई है, अपितु इसकी विशदता, सार्वभौम स्थिति एवं तर्कपूर्णताने सभीको मुग्ध कर दिया है । मेरे विचारसे अद्वैत-वेदान्त ही एक ऐसी पद्धति है, जिसके अन्तर्गत सभी दार्शनिक समस्याओंका समुचित समाधान प्राप्त हो सकता है । यहाँ यह कथन भी अप्रासङ्गिक न होगा कि अद्वैत-वेदान्तके इस युगके समग्रतया प्रतिष्ठापक आचार्य श्रीशंकराचार्य हैं और उन्हींके द्वारा प्रतिष्ठापित दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत-वेदान्तके नामसे प्रसिद्ध है ।

जहाँतक पुनर्जन्म एवं परलोक सम्बन्धी विचार-का प्रश्न है, यह प्रश्न नया नहीं है; अपितु वैदिककालसे ही इस प्रश्नकी समालोचना होती चली आ रही है । परंतु आजकल अनेकानेक पश्चिमी विद्वानों एवं नागरिकोंने भी इस ओर विशेष रुचि ली है, इसलिये भारतवर्षमें भी इस सम्बन्धमें, इस युगमें कुछ विशेष जिज्ञासा हो रही है । शांकरवेदान्तके अन्तर्गत ही नहीं, उससे पूर्ववर्ती अद्वैत-वेदान्तमें भी यह विचार पूर्णतया स्पष्ट मिलता है कि आत्माके सम्बन्धमें पुनर्जन्म एवं परलोक-गमनके सिद्धान्त सर्वथा अयुक्त हैं; क्योंकि आत्मा कूटस्थ, अचल एवं सनातन है । उपनिषदोंके साररूप एवं शांकर-वेदान्तके आधार-ग्रन्थ गीतामें यह स्पष्ट ही कहा गया है कि यह आत्मा जन्म-मरणका विषय नहीं है ।[1] मृत्यु उसी-की सम्भव है, जिसका जन्म हो । जब आत्माका जन्म ही नहीं होता तो मृत्यु ही किस प्रकार सम्भव हो सकती है ।[2] श्रीशंकराचार्य ही नहीं, अपितु उनके परम गुरु आचार्य गौड़पादने भी आत्माकी अजातताका ही प्रतिपादन किया है । इस प्रकार आत्माकी शाश्वतता, अजरता एवं नित्यताके सिद्ध होनेसे उसके लिये जन्म-मृत्यु एवं परलोकके प्रश्न वास्तविक नहीं प्रतीत होते । फिर दर्शनशास्त्रमें विवेचित पुनर्जन्म एवं परलोकवादकी स्थिति क्या है । इस सम्बन्धमें नीचे विचार किया जा रहा है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जन्म एवं मृत्युका विषय शुद्ध अविद्यारहित आत्मा न होकर अविद्याकी वासनासे वासित जीव है । वासनायुक्त चेतनाको या प्रकृतिस्थ पुरुष-को* जीव कहते हैं । जन्म एवं मृत्युका विषय यही वासना-युक्त चेतना अर्थात् प्रकृतिस्थ पुरुष—जीव है और इस जीवत्वका आधार आत्मा है ।[3]

मृत्युका स्वरूप

जब विविध प्रकारकी बाधाओंके द्वारा नाड़ियोंमें संकोच एवं विकासन होता है तो शरीरस्थित प्राणवायुकी स्थिति बिगड़ जाती है । परिणाम यह होता है कि भीतर प्रविष्ट श्वास कठिनतासे बाहर आता है और बहिर्निःसृत श्वास कठिनता-से भीतर जाता है । इस प्रकार शरीरकी नाड़ियोंकी गति

१—गीता २ । २०

२—शा० भा० गीता २ । २०

* गीता १३ । २१

३—चेतनं वासनातत्त्वं स्वात्मतत्त्वेऽवतिष्ठति ।
(योगवासिष्ठ ३ । ५५ । ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब इतनी अस्त-व्यस्त हो जाती है कि प्राणवायुकी गति रुक जानेके कारण श्वासका आना-जाना बंद हो जाता है तो इसीको 'मृत्यु' कहते हैं। इस स्थितिमें प्राणवायु निकलकर आकाशमें व्याप्त हो जाता है। केवल वासनामय चेतना आत्मामें स्थित रहती है, यही जीव है और जन्म एवं मरणका विषय भी यही है। गीताके अनुसार यही जीव (देही) शरीरके जीर्ण होनेपर नवीन वस्त्रोंके समान नवीन शरीरोंको धारण करता है। या इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर जा बैठता है, उसी प्रकार जीव भी एक शरीरका त्यागकर दूसरा शरीर ग्रहण करता है।

क्या जीव एक शरीरका त्याग करनेके पश्चात् तुरंत दूसरा शरीर ग्रहण कर लेता है ?

यह एक कौतूहलपूर्ण प्रश्न है। इस सम्बन्धमें हमारी धारणा यह है कि जो अज्ञानी जीव शरीर त्याग करते हैं, वे तुरंत ही स्थूल शरीर ग्रहण नहीं करते, वरं अपने-अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंके आधारपर विभिन्न लोकोंकी प्राप्ति करते हैं। इन पुण्यापुण्य कर्मोंका भोग करनेके पश्चात् ही जीव दूसरे शरीरको ग्रहण करते हैं।[4] यही हिंदूधर्मकी परलोकवाद-की स्थिति है, जिसका आधार कर्मवादका सिद्धान्त है।

कर्म और विभिन्न लोक

यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि विभिन्न लोकोंकी प्राप्ति करनेवाली प्रेतात्माएँ हैं। ये प्रेत वासनायुक्त जीव ही हैं। इनमें पुण्यवान् जीव अपने-अपने शुभ कर्मोंके अनुरूप स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त करते हैं।[5] इसके विपरीत जो पापी जीव हैं, वे नरकादि लोकोंको भोगते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मध्यम कोटिके जीव भी होते हैं, जो स्वर्ग एवं नरक दोनोंकी ही वासनाओंका अनुभव करते हैं। वैसे भारतीय दर्शनमें, सामान्य पापी, मध्यम पापी, स्थूल पापी, सामान्य धर्मवाले, मध्यम धर्मवाले और उत्तम धर्मवाले—ये छः प्रकारके जीव बतलाये गये हैं। यह व्यवस्था भी कर्मोंके अनुसार ही है। कर्मोंके अनुसार जीव स्वर्ग एवं नरकका भोग करके निज-निज कर्मानुरूप विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उदाहरणके लिये उत्तम कोटिके जीव स्वर्गमें विद्याधर आदि योनियोंमें सुख भोगकर मनुष्यलोकमें सम्पन्न गृहोंमें जन्म लेते हैं।[6] इसी प्रकार मध्यम एवं अधम कोटिके जीव निज-निज कर्मानुसार अनेक योनियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं।

जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तकी स्थिति

जहाँतक जीवन्मुक्त और विदेह मुक्तकी स्थितिकी बात है, दोनोंकी मुक्ति-सम्बन्धी स्थितिमें भेद नहीं देखा जा सकता; क्योंकि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' के अनुसार मुक्त जीव ब्रह्मरूपताको ही प्राप्त हो जाता है और अखण्ड ब्रह्म-रूपतामें भेद देखना भ्रम ही कहा जायगा।[7] अविद्या-निवृत्ति एवं ज्ञानोदय होनेपर भी प्रारब्धकर्मके भोगपर्यन्त मुक्त जीवको भी शरीर धारण करना पड़ता है। आचार्य शंकरने इस सिद्धान्तको स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार एक बार चलाया हुआ कुम्भकारका चक्र तबतक नहीं रुकता, जबतक कि उसका वेग समाप्त नहीं हो जाता, उसी प्रकार मुक्त पुरुषको भी फलदानोन्मुख—प्रवृत्त फलवाले कर्मोंके भोगके लिये जीवन धारण करना पड़ता है।[8] जहाँतक जीवन्मुक्तोंके लौकिक व्यवहारका प्रश्न है, ये जीवन्मुक्त प्राणी संसारमें रहते हुए भी संसारसे असम्बद्ध रहते हैं। परंतु ये अकर्मण्य नहीं कहे जा सकते; क्योंकि स्वभावतः इनके द्वारा कल्याणप्रद कर्म सम्पन्न होते हैं और इन कर्मोंमें इनकी शुभाशुभ भावना नहीं होती। जब जीवन्मुक्त प्राणीके समस्त शुभाशुभ कर्मभोग समाप्त हो जाते हैं तब वह शरीर धारण नहीं करता। यही विदेहमुक्तिकी स्थिति है। जिस प्रकार घटादिकी स्थितिके नष्ट होनेपर आकाशमात्र अवशिष्ट रह जाता है, उसी प्रकार केवलावस्थामें अज्ञानो-पाधि एवं तज्जन्य संस्कारोंके नष्ट होनेपर ब्रह्ममात्र अवशिष्ट रह जाता है।

४—प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
(गीता ६ । ४१)

५—देखिये, छान्दोग्योपनिषद् ५ । १० । ३—६ ।

६—ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
(गीता । ९ । २१)

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
(गीता ६ । ४१)

७—ब्रह्मैव हि मुक्त्यवस्था, न च ब्रह्मणोऽनेकाकारयोगोऽस्ति।
(ब्र० सू० शा० भा० ३ । ४ । ५२)

८—ब्र० सू० शा० भा० ४ । १ । १५ ।

९.—वेदान्तसार—३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँतक ब्रह्मरूपताको प्राप्त ज्ञानीके जन्मग्रहण करनेकी बात है, **'भूयो न स आवर्तते, न स आवर्तते'**, **'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'** के अनुरूप उसका पुनर्जन्म न होना सिद्ध ही है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानीके स्वर्गादि परलोक-गमनकी बात भी सर्वथा असङ्गत है; क्योंकि जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, शुद्ध आत्माकी स्थिति कूटस्थता, नित्यता एवं अचलताकी स्थिति है। यदि फिर भी आत्माके ब्रह्मलोक प्राप्त करनेकी बात कही जाती है तो उसका आशय यही है कि अविद्योपाधिक जीव जब अपने स्वरूपका बोध कर लेता है तो वह ब्रह्मरूपताको प्राप्त होता है। इस प्रकार यह ब्रह्मरूपता जीवकी स्थिति-विशेष है। यों, इस ब्रह्मरूपताकी स्थिति-विशेषको ही ब्रह्मलोककी प्राप्ति कहा जा सकता है, न कि ब्रह्मलोक नामक किसी लोक-विशेषकी प्राप्तिको। संक्षेपमें, अद्वैतवेदान्तके अन्तर्गत अविद्यावासित जीवके सम्बन्धसे ही पुनर्जन्म एवं परलोकके प्रश्नोंकी सङ्गति है, न की परमार्थ ब्रह्मकी दृष्टिसे।"

प्रार्थना

(लेखक—पण्डित श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव, एडवोकेट)

मानव-जीव दैवी प्रकृतिका प्राणी है। मनुष्यके हृदयके तहमें एक अलौकिक शक्ति विराज रही है। मनुष्यका जो मनुष्यत्व है, वह उसकी प्रवृत्तिका अध्यात्मभाव, उसका सदाचार, उसकी पवित्रता और उसके मन, बुद्धि, आत्मा और परमात्माके साथ योग है। वह सहज-स्वभावसे सदैव ईश्वरचिन्तन करता रहा है और ऐसी सिद्धि लाभ करनेके खोजमें रहा है, जिससे चिरन्तन अमरत्व और परब्रह्मके साथ पूर्ण सायुज्य प्राप्त हो।

ईश्वरके याद करनेके न जाने कितने प्रकार हैं। उसे प्राप्त करनेके लिये न जाने कितने मार्ग एवं मत हैं। हम वन्दना, स्तुति, पूजा, पाठ, जप और प्रार्थनासे ईश्वरको याद और प्रसन्न करनेका प्रयास करते हैं। पर भगवत्प्राप्तिमें प्रार्थनाका बहुत बड़ा महत्त्व है। प्रार्थना मनुष्यकी जन्मजात सहज-प्रवृत्ति है। प्रार्थनाकी वृत्ति देश-कालसे सीमित नहीं, वह विश्वव्यापक है। मानवताके पथप्रदर्शनके लिये संसारमें बहुतसे दीपक जले हैं, पर प्रार्थनाका दीपक अद्भुत एवं दिव्य है।

वन्दना, स्तुति, पूजा, पाठ, जप और प्रार्थना—इनमें जो अन्तर है, उसे समझना आवश्यक है। वन्दनाका अर्थ—हम जिसकी वन्दना करते हैं उसके जो आभार-उपकार हमारे ऊपर हैं, उनको व्यक्त करते हुए कृतज्ञता प्रकट करके उसे नमस्कार करना। (नमस्कारका अर्थ है, अपने अहंकार-को प्रणम्यके सम्मुख झुका देना।)

स्तुतिका अर्थ है—प्रशंसा। इसमें हम जिसकी स्तुति करते हैं, उसके गुणोंका, उसकी महिमाका वर्णन प्रधान रहता है।

पूजाके दो अङ्ग हैं। एक भक्ति; दूसरा भजन। प्रभुके प्रति प्रेम या अनुराग 'भक्ति' है। सत्य, दया, ब्रह्मचर्य, धैर्य आदि जिन दैवी गुणों और चरित्रोंमें देवता देवत्वमें स्थित हैं, उसके साधनमें पूर्ण योग देना, अपनेको समर्पण करना यह भजन है। पाठ या जप स्तोत्रों एवं मन्त्रोंका उच्चारण करना भी भजन है।

इन सबमें अचिन्त्य-शक्ति है और सबमें बहुत लाभ होता है।

प्रार्थनाका अर्थ है—याचना करना, माँगना। प्रार्थना आत्माकी पुकार है। संसार तथा शरीरको थोड़ी देर भूलकर, प्रभुको दयासिन्धु, सर्वशक्तिमान् मानकर, सब कुछ छोड़कर, उनपर भरोसा कर, स्वमतिके अनुसार जब हम उनसे कुछ माँगते हैं, तब हमारी उनसे प्रार्थना होती है। प्रार्थनाका स्रोत, कण्ठ नहीं, हृदय है। जीवात्माका परमात्माके साथ हृदयकी अनन्यभक्तिसे प्रेममय सम्बन्ध जोड़ना—प्रार्थनाका उद्देश्य है। नित्य-निरञ्जन निराकार ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त रहनेपर भी सबको नहीं मिलता। उस गहन, गम्भीर, विराट् और अनन्त-तत्त्वको पानेकी साधनामें जिस धैर्य और तत्परताकी आवश्यकता है, वह दुर्लभ है। पर प्रार्थना चित्तको प्रभुके सम्मुख उपस्थित कर देती है और यह अवसर ला देती है कि साधक उनसे बोल सके, उनके सामने अपने हृदयको खोलकर रख सके, उनसे कुछ पानेको उत्सुक और व्याकुल हो उठे और उनसे परमार्थकी दीक्षा लेकर जीवनको सत्य, शिव और सुन्दर बना सके। एक ऐसा क्षण, जिसमें प्रभुकी सच्ची याद हो, लाखों मुद्राओंसे अधिक मूल्यवान् है।

१०—विशेष देखिये, ब्र० सू० शा० भा० ४ । ३ । ७ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होनेकी आतुरताको सूचित करती है। महत्त्व इसका है कि साधक प्रार्थनामें कितना तल्लीन हो सकता है। सच्ची प्रार्थनाके प्रभावसे साधकके सभी आचार-विचार और उच्चार दिव्यत्वसे ओत-प्रोत रहते हैं। हर सच्ची प्रार्थनाके पश्चात् एक नये और दृढ़ आत्मबलका लाभ होता है। साधककी प्रत्येक क्रिया प्रभुको समर्पित होनी चाहिये, प्रत्येक क्षण प्रार्थनासे परिपूरित होना चाहिये। समस्त जीवन ही प्रार्थनामय होना चाहिये।

प्रायः लोग कुछ पद्य या श्लोक याद कर लेते हैं। प्रारम्भमें ये बहुत रोचक लगते हैं, किंतु कुछ समयमें श्लोक या पद्यके शब्दमात्र बोले जाते हैं। मनको उन शब्दोंका अर्थ स्पर्श ही नहीं करता। उन श्लोकों या पद्योंको प्रतिदिनकी प्रार्थनामें रखते-रखते पाठमात्र न बनने देना चाहिये। जब भी साधकके भाव उनसे जाग्रत् न हों तो उन्हें बदल देनेमें संकोच न होना चाहिये। उत्तम प्रार्थना वही है, जिसके शब्द पहलेसे निश्चित न हों। प्रार्थना करनेके समय जो भाव चित्तमें उठें, उन्हें अपने शब्दोंमें व्यक्त होना चाहिये। जो साधकके हृदयके उद्गार हों और वे उसीके शब्दोंमें उसके भावोंको पूर्णताके साथ प्रकट करते हों, ऐसी प्रार्थना होनी चाहिये। यही प्रार्थनाका रहस्य है। यह बात साधकपर ही निर्भर है कि उसे कैसी प्रार्थना अनुकूल पड़ती है।

रात्रिमें निद्रासे पूर्व तथा प्रातः निद्रा-त्यागके तुरंत पश्चात्के क्षण प्रार्थनाके सर्वोत्तम क्षण हैं। दिनभरके किये गये कर्म ईश्वरके सम्मुख रखना और निकृष्ट कर्मोंके लिये क्षमा माँगना एवं संकल्प करना कि आगे जहाँतक होगा, ऐसा कर्म फिर न होगा। इस प्रतिज्ञाके साथ विराम करना—फिर प्रातः नवीन शक्ति और सुझावके लिये प्रार्थना करके दिनका कार्य प्रारम्भ करना, यह प्रतिदिनका कर्तव्य होना चाहिये। प्रार्थनासे शयन तथा प्रार्थनासे जागरण—जीवनको प्रार्थनामय बनानेका प्रथम सोपान है।

श्रीरामकृष्ण परमहंसने कहा था—'साधना करनी चाहिये—एकान्त वनमें, मनमें या घरके निर्जन कोनेमें (वने, मने, कोने)। स्वच्छ-सुन्दर एकान्त स्थान हो, तन-मन पवित्र हो, जहाँ चित्त एकाग्र हो सके और अवकाश मिले, तभी प्रार्थना सुलभ है।

प्रार्थना क्या की जाय?—यह प्रश्न अति गम्भीर है। अनेक संकटोंसे ग्रस्त और उलझनोंसे घिरा मानव व्यग्र और व्याकुल हो उठता है। वह दुःख और व्यथासे छूटनेके लिये प्रार्थी होता है। वह मान्यता करता है कि 'अमुक कार्य होनेपर यह पूजा करूँगा, यह पुण्य करूँगा।'—यह वास्तवमें प्रार्थना नहीं, लेन-देनका व्यापार है। कुछ लोग प्रार्थना करते हैं कि 'मेरा अमुक कार्य अमुक ढंगसे ही हो।' वे भगवान्‌को अपनी इच्छा-पूर्तिके ढंग भी सुझाते हैं। उनको भगवान्‌की समझदारीपर भी भरोसा नहीं रहता। भगवान्‌के ढंगसे उनका हित हो, इतनी भी स्वतन्त्रता वे भगवान्‌को देना नहीं चाहते। यह आज्ञा है, प्रार्थना नहीं है। आदर्श प्रार्थना सकाम नहीं होती। सकाम भाव या स्वार्थमय प्रार्थना उसे सच्चे और विशुद्ध स्वरूपसे भ्रष्ट कर देती है। साधक अपनी प्रार्थनाको इस कसौटीपर रखकर देख ले कि कैसी प्रार्थना प्रभुकी दृष्टिमें उसे कौन स्थान देगी?

घोर आपत्तिके समयमें प्रार्थना आवश्यक है। श्रेष्ठ पुरुषोंका अनुभव है कि परमात्मा दीन-दुखीकी पुकारके आसपास ही रहते हैं। उनको 'खिन्न' परम प्रिय हैं। जब हम सच्चे हृदयसे प्रार्थना करते हैं तो उस प्रार्थनाका उत्तर मिलता है। यदि हमें प्रार्थनाका उत्तर न मिले तो समझना चाहिये कि प्रार्थना उचित मनोयोगसे नहीं की गयी—विफलता भगवान्‌की उपेक्षाके कारण नहीं, बल्कि अपनी शिथिलताके कारण है। ज्ञानसे-अज्ञानसे, जानेमें, अनजानेमें, स्वार्थसे, दुःखसे, जिज्ञासासे और जिस प्रकारसे भी जो परमेश्वरके पथपर आगे बढ़ते हैं, परमेश्वर उतने अंशोंमें और उन्हींके मानसिक रूपमें उन्हें मिलते हैं।

दीन-दुखियोंपर दया करना, उनकी व्यथामें सहायता करना—ईश्वरकी सर्वोत्तम प्रार्थना है।

जब ईश्वरने जीवन दिया और हृदयमें अपना स्थान बनाया तो फिर अपने लिये उनसे कहने-सुननेके लिये कौन-सी बात रह गयी? 'तुम्हींको तुमसे ही माँगते हैं, बस, और हमारा सवाल क्या है।' कितनी उच्च भावना है। ईश्वर प्राणीमात्रके भूत, वर्तमान, भविष्य-जीवनपर नजर डालकर स्वयं समझते हैं कि उनके भक्तका हित किसमें है और अहित किसमें है। जिस प्रकार एक अबोध बालक अपने-आपको अपने माता-पिताकी स्नेहमयी गोदमें सुरक्षित पाता है, उसी प्रकार भक्तको प्रभु-शरणमें निश्चिन्त होना चाहिये। प्रभु उसके योगक्षेमका भार स्वयं वहन करते हैं और उसके हिताहितका ध्यान पूर्णतः रखते हैं। समस्त जीवन उन्हींकी इच्छा और संकल्पसे पूरित होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, अपने जन्मदाता माता-पिताकी आत्माकी शान्तिके लिये प्रार्थना करना मत भूलिये। जिनसे कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ हो या जिनसे आपको दयाभाव मिला हो या जिनको आपसे कुछ दुःख पहुँचा हो, उनकी आत्माकी शान्तिके लिये भी आप अपनी प्रार्थनामें स्थान दें।

विश्वका साहित्य अनेकानेक प्रार्थनासे भरा पड़ा है, पर गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह प्रार्थना विशेष उल्लेखनीय है—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

परमात्माकी स्तुति और प्रार्थना करके वेदमन्त्रसे इस प्रकार उनसे वरदान माँगना चाहिये—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।
(शुक्लयजुर्वेद १९। ९)

'हे परमपिता परमात्मन्! आप प्रकाश-स्वरूप हैं, कृपा कर मुझमें कुछ प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं, इसलिये मुझमें अपनी कृपासे कुछ पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं, मुझमें भी बल प्रदान कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, इसलिये मुझमें भी कुछ सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट कार्योंको और दुष्टोंपर क्रोध और क्षमा करनेवाले हैं, आप निन्दा-स्तुति और अपने अपराधियोंको सहन करनेवाले हैं, कृपा करके मुझे भी सहनशील बनाइये।'

यही प्रार्थनाका फल होना चाहिये कि हम सब ईश्वरीय गुणोंको अपने हृदयमें धारण करें और संसारको सुखी करते हुए अपनी जीवन-यात्रा पवित्रतापूर्वक पूर्ण करें।

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

दुःख

(लेखक—श्रीधर्मेन्द्रनाथजी वेदालंकार, शास्त्री, नैरोबी, केन्या)

एक बार एक विवेकी धनवान्के घर चोरी हो गयी। उसका सारा धन लूट लिया गया और वह कंगाल हो गया। उसकी स्त्री रोने लगी। उसके बच्चे घबरा गये। सगे-सम्बन्धी और मित्र हमदर्दी जतानेके लिये उसके पास एक-एक कर आने लगे। किंतु उस विवेकी अमीरका हाल तो दूसरा ही था—वह खूब खुश था। वह कहता था कि 'भगवान्ने मुझपर बड़ी कृपा की है—मेरा सारा भार उतार लिया है और मुझे हलका कर दिया है।' ऐसी ही एक घटना गुरु नानकदेवजी महाराजके बचपनकी है। उनके रिश्तेदारने उन्हें कुछ पैसे दिये और बाजारमेंसे कुछ सामान खरीद लानेको कहा। जब गुरु नानक जा रहे थे तो मार्गमें उन्हें भूखसे व्याकुल कुछ साधु दिखायी दिये। उन्होंने उस धनसे उन भूखे साधुओंकी भूख मिटायी और फिर वे खाली हाथ घर लौट आये। उनके रिश्तेदारने उन्हें खूब खरी-खोटी सुनायी। गुरु नानकजीने इसके जवाबमें कहा—'भूखोंको भोजन खिलाकर मैंने पुण्यका जो सौदा किया है उससे अच्छा सौदा और क्या हो सकता था?' इस तरह हरेक घटनाको अलग-अलग दृष्टिकोणसे देखा जा सकता है। अमीर अपना धन चोरी हो जानेपर व्याकुल होनेके स्थानपर आनन्दित हुआ और गुरु नानकजीने पैसोंसे आटा, दाल, चावल खरीदनेके स्थानमें भूखोंको भोजन देना उत्तम समझा। जिस तरह आकाशका कोई रंग नहीं है, उसी तरह संसारकी हरेक घटना न तो अपनेमें बुरी है और न अच्छी, किंतु हम उसे जिस दृष्टिसे देखते हैं, वह वैसी ही दिखायी देती है। यदि हम आसमानको हरे रंगका चश्मा चढ़ाकर देखें तो वह हमें हरा दीखता है और पीले रंगकी ऐनक आँखोंपर चढ़ाकर देखें तो वह हमें पीला दिखायी देता है। इसी प्रकार दुःख, बीमारी और अभावोंको भी अलग-अलग दृष्टियोंसे देखा जा सकता है। इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि दुनियामें दुःख और दर्द है, वह था और वह रहेगा। हम दुःख, दर्द, बीमारी और मौत—इनसे इतना घबराते हैं कि हमारा वश चले तो हम इन्हें संसारसे निकाल फेंकें। जैसे हम फलोंके छिलकोंको कूड़ेदानमें डाल देते हैं, ठीक उसी तरह हम दुःखको भी घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, परंतु देखना यह है कि क्या हमारा सोचना ठीक है? इसका जवाब यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम दुःखको एक दूसरी दृष्टिसे देखें तो हमें यह अपना प्यारा दोस्त, सच्चा मित्र मालूम होगा और हम इसका स्वागत करेंगे। जब हम बीमार होते हैं तो डाक्टर हमें कड़वी दवाई पीनेको देता है। हम उसे खुश होकर पीते हैं; क्योंकि हम बीमारीसे छूटना चाहते हैं। यदि कड़वी दवाई हमें बीमारीके बन्धनसे छुड़ाती है तो दुःख हमें पापके बन्धनसे मुक्त कराता है। हमें जो दुःख मिलता है, वह अपने ही बुरे कर्मोंके फलस्वरूप मिलता है। माता-पिता अपने बच्चोंको बहुत प्यार करते हैं, पर वे भी अपने बच्चोंके किये हुए बुरे कर्मोंके फल—दुःख नहीं भोग सकते। इसलिये हमने जो भी पाप या बुरे काम किये हैं, उनका परिणाम तो हमें स्वयं ही भोगना पड़ेगा। दुःख तो हमारे पापके बोझको हल्का करने आता है। इसलिये उसे अपना सच्चा दोस्त ही मानना चाहिये। हमने जो-जो बुरे काम किये हैं, वे फौलादी जंजीरोंसे भी ज्यादा मजबूत हैं। इन अपने किये हुए बुरे कर्मोंने हमें ऐसा जकड़ रक्खा है, इतना कसकर बाँध रक्खा है कि हमारी आत्मिक उन्नति बहुत रुक-सी गयी है। इसलिये हम दुःखका स्वागत करते हैं; क्योंकि यह हमारी इन जंजीरोंको काट डालता है और आगे बढ़नेमें हमारी सहायता करता है।

दूसरी बात यह है कि दुःख कँटीले तारोंवाली बाड़के समान है—आगे आनेवाली बड़ी मुसीबतसे बचानेवाली चेतावनीके समान है। ज्यों ही हम रास्तेसे भटकते हैं, त्यों ही काँटेदार बाड़के काँटे चुभकर हमें सचेत करते हैं कि हम मुसीबतकी ओर बढ़ रहे हैं। हम अपने दिमागसे अधिक काम लेते हैं तो सिरमें दर्द होने लगता है—यह दर्द हमें याद दिलाता है कि हम अपने दिमागपर बहुत बोझ डाल रहे हैं। यदि यह दर्द न हो तो हम अपने दिमागको आराम देना ही बंद कर दें और हो सकता है कि हम एकाएक Nervous Breakdown के शिकार हो जायँ। इसी तरह जब हम अपनी आँखोंसे अधिक काम लेते हैं तो वे दुखने लगती हैं और हम उन्हें कुछ देरके लिये विश्राम देते हैं। यदि यह दर्द न होता तो हो सकता है कि हम धीरे-धीरे अपनी आँखें ही खो बैठें। इसलिये दुःख या दर्द एक तरहका चौकीदार है—पहरेदार है, जो हमें हमेशा चौकन्ना करता है, सावधान करता रहता है। यह ऐसा पहरेदार है, जो कभी आँख नहीं झपकता और अपना काम निहायत ईमानदारी और मुस्तैदीसे करता है।

एक और तरहसे भी दुःख हमारी मदद करता है। दुःखमें हम अपने आपको असहाय, निराश्रय समझते हैं और अपने सगे-सम्बन्धियों, परिचितों या मित्रोंसे सहायताकी आशा करते हैं। जहाँ वे सहायता नहीं कर सकते, वहाँ हम परमात्मासे सहायता माँगते हैं। दुःखके समय हमारा अहंकार, हमारा घमण्ड चूर-चूर हो जाता है और हम अपनेसे बड़ी शक्ति अर्थात् परमात्माकी ओर देखते हैं—उसका सहारा ढूँढ़ते हैं। परंतु सुखके समय अभिमानका नशा इस प्रकार हमें बेसुध कर देता है कि हम प्रभुका नामतक भूल जाते हैं। कबीरजीने इसलिये ही तो कहा है—

सुखके माथे सिल पड़ो जो राम हृदैसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी जो पल-पल राम रटाय॥

चौथी बात यह है कि दुःख हमें सहानुभूति या हमदर्दीका पाठ पढ़ाता है। जिसने अपने किसी नजदीकी रिश्तेदारकी मृत्युका दुःख सहा है, वही जान सकता है कि दूसरोंको अपने समीपके सम्बन्धीकी मृत्युपर कितना कष्ट होता है। जिसके ऊपर मुसीबत आ चुकी है, वही दूसरोंकी मुसीबतमें उनके साथ आँसू बहा सकता है।

यह भी सच्ची बात है कि दुःख ही झूठे और सच्चे मित्रकी पहचान कराता है। खरे और खोटे सोनेकी पहचान पत्थरकी कसौटीपर या आगमें तपानेपर ही होती है। इसी प्रकार सच्चे मित्रकी पहचान विपत्तिरूपी कसौटीमें ही होती है। सुखमें साथ-साथ हँसनेवाले अनेक बनावटी दोस्त होते हैं, पर दुःखमें साथ-साथ रोनेवाला, आँसू पोंछनेवाला, घावपर मरहम लगानेवाला या सहानुभूति दिखानेवाला मित्र विरला ही होता है।

मैले कपड़ेकी मैल तभी उतरती है, जब वह उबलते हुए पानीकी गरमी और साबुनकी रगड़ सहता है—ऐसे ही दुःख खौलते पानीके समान हमारी मैल धो डालता है। जो दुःख सह चुकता है, वह नम्र और सहनशील बन जाता है। सच्चा सोना तो आगमें तपाये जानेपर भी खरा उतरता है। खानमेंसे निकलनेवाली धातुएँ—लोहा, ताँबा आदि भी जब कच्ची धातुके रूपमें होते हैं तो इनका कोई मूल्य नहीं होता। पर जब इन कच्ची धातुओंको पानी, एसिड, आग या अन्यान्य शुद्ध करनेवाली चीजोंकी सहायतासे शुद्ध कर लेते हैं, तभी ग्राहक इनको मुँहमाँगा दाम देनेको तैयार होते हैं। इसी तरह जो मनुष्य दुःखकी आगमें तप चुकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वह उजला हो जाता है। इसलिये संत लोग दुःखके समय हाय-हाय नहीं करते; किंतु वे उसे अपने प्रियतमकी भेजी हुई भेंट समझकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। हम भी यदि दुःख या पीड़ाको इस दृष्टिसे देखेंगे तो हम प्रत्येक भयानक-से-भयानक प्रतिकूल परिस्थितिमें भी अनुकूलताका अनुभव कर उसका प्रिय वस्तुके समान स्वागत कर सकेंगे।

भारतीय धर्म तथा लोक-परलोकका प्रमाण

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

आजके १९ वर्ष पूर्व 'कल्याण'(सौर आश्विन सं० २००८) के अङ्कमें श्रीसुदर्शनसिंहका एक महत्त्वपूर्ण लेख 'संस्कृतियोंकी जननी' प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया था कि भारतकी प्राचीन सभ्यता ही विश्वकी समूची संस्कृतियोंकी जननी है। उस लेखको पढ़कर शायद लोग भूल भी गये होंगे। भारतीय गौरव तथा गरिमाकी बात भारतीयोंको स्वयं याद नहीं रहती।

उस लेखके अनुसार यहूदी लोगोंके पूर्वज 'युदा'की संतान हैं—जो वास्तवमें यदुवंश है। तातार लोग 'अय' के वंशज हैं, अय पुरूरवाके पुत्र हैं। यदुके पौत्र 'हय' से चीनी वंश चला! राजा सगरने भवनोंको 'पल्ली' नगर बसानेको कहा। उसीसे पल्लीस्थान—फिलस्तान बना। मैंने इस विषयपर भारतस्थित यहूदी कौंसल श्रीयाकोव मॉरिसको पत्र लिखा और उनसे पूछा कि इस सम्बन्धमें उन्हें क्या कहना है? तीन सप्ताहतक उनके उत्तरकी प्रतीक्षा की; कोई उत्तर न मिला। निश्चयतः भारतीय शाखाका होना अब विदेशियोंको सम्मानजनक नहीं प्रतीत होता।

आजकलकी संकुचित राष्ट्रीयताकी भावनामें कोई राष्ट्र अपनी वास्तविकतासे कितना ही नेत्र मूँद लेना चाहे, सत्य छिपता नहीं। इसरायल सरकारद्वारा प्रकाशित 'एरील' नामक त्रैमासिक पत्रिकाके गत मास (२५वीं संख्यामें प्रकाशित) अङ्कमें १९वीं शताब्दिका एक चित्र छपा है। यहूदियोंके पैगम्बर एजेकीलके सम्मुख एक सुदर्शन चक्र और गरुड प्रकट हुआ। गरुडके चारों ओर अनुपम प्रकाश बिखरा हुआ था। उसी प्रकाशमेंसे एक सुन्दर हाथ निकला, जिसमें धर्मशास्त्रकी पोथी थी, जो एजेकीलको भगवान्ने दी। एक कोनेमें वायुदेवता वेगसे मुखसे हवा फेंककर अन्धकाररूपी मेघ उड़ा रहे हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि एरील अथवा 'आर्यल' एक नगरका नाम था, जहाँ यहूदी—ईसाईके पूर्वज डेविडने प्रथम प्रवास किया था। 'आर्यल' तथा 'आर्यावर्त' में कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता।

अद्भुत खोज

हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें भारतीय संस्कृतिके विस्तार तथा प्रवाहकी जो बातें लिखी हैं, उनपर सबसे कम विश्वास आजके पढ़े-लिखे भारतीयोंका है। मनु आदिपुरुष थे, जिनकी हम संतान हैं, वे मिस्र 'प्रदेश'में रहते थे। पाताललोकमें बड़ी विकसित सभ्यता थी और जिस प्रकार सत्रहवीं-अठारहवीं सदीमें इंगलैंडसे निर्वासित लोग उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिकामें जाकर बस गये, उसी प्रकार हमारे देशसे भी जिन राक्षसों (आततायियों) को निकाला जाता था, वे पाताललोक चले जाते थे।

'यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ।' भगवतीने दुर्गासप्तशतीमें शुम्भ-निशुम्भके लिये कहा है। दक्षिण अमेरिकामें 'मय देश' (मय दानव) की जो लगभग १ लाख वर्ष पुरानी सभ्यताका पता अब चला है, उसने संसारको अचम्भेमें डाल दिया है। सूर्य भगवान्‌का विशाल मन्दिर, १८०० फुट ऊँचा शिवलिंग, वस्त्र, पठन-पाठन-सामग्री, विशाल भवन, दस्तकारी, पच्चीकारी, वास्तुकला—यहाँतक कि 'पञ्चाङ्ग' भी प्राप्त हो चुका है। इस सम्बन्धमें हम आगे लिखेंगे। पर हमारा समूचा प्राचीन इतिहास तभी महत्त्व रखता है, जब यह सिद्ध हो जाय कि पुराणोंमें वर्णित मानचित्र—देश तथा पहाड़ एवं राज्योंकी स्थिति सही है। एक अद्भुत खोजने सवा सौ वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद इसे भी सिद्ध कर दिया है।

सन् १८वीं सदीकी बात है—दो सौ वर्ष पूर्वकी। तुर्की नौ-सेनाके प्रधान पीरी रईसके सामानके साथ, तोपकापीके राजभवनमें बहुत पुराने मानचित्र (नक्शे) बरामद हुए थे। इसीके साथ दो बड़े मानचित्र भूमध्यसागर तथा वर्तमान 'मृत-समुद्र' के क्षेत्रके थे। ये दोनों नक्शे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्लिनके सरकारी अजायबघरमें रख दिये गये, पर इन विचित्र नक्शोंको कोई समझ नहीं पाता था। युगोंके बाद ये मानचित्र अमेरिकाके विशेषज्ञ आर्लिंगटन मलारीको परीक्षणके लिये दिये गये। उनकी रिपोर्ट थी कि ये बहुत प्राचीन मानचित्र हैं और भूगोलके प्राचीन रूपको प्रकट करते हैं। उसके बाद अमेरिकन नौ-सेना विभागको यह काम सौंपा गया। तबसे बराबर अध्ययन होनेके बाद वह पुराना नक्शा पूरी तरहसे पढ़नेमें आ गया और सन् १९५२ में यह निश्चित हो गया कि वह प्राचीन मानचित्र लाख-दो-लाख वर्ष पूर्वके संसारकी एकदम सही तस्वीर है—भारत, मिस्र, एशियाके मध्यपूर्वके देश, जैसे ईरान, ईराक, अरब और यूरोप सब एक साथ मिले हुए हैं। अफ्रिकासे लेकर चीनतक भूमि है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका उतना बड़ा नहीं है, जितना आज है। उनका काफी अंश पानीमें था, पर उनकी शक्लसे ही वे पाताललोक प्रतीत होते हैं।

इस नक्शेकी सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि मिस्रकी राजधानी काहिरा और उसके चारों ओर ५००० मीलकी दूरी तक तो नक्शा बहुत स्पष्ट है। उसके बाद रेखाएँ धूमिल होती जाती हैं। लेखक डेनिकनका कथन है कि निश्चय ही यह वायुयानसे लिया गया नक्शा है, मानो उस समय हमारे पास वायुयान थे।

ग्रह, नक्षत्र, गणित

गणितशास्त्रके श्रेष्ठ ग्रन्थ 'लीलावती'के देशवासी नयी शिक्षामें यह समझते हैं कि गणितशास्त्र यूनानसे आया और संसारमें फैला तथा ज्योतिषशास्त्र अरबसे। यह माननेमें उन्हें संकोच होता है कि हमसे उन देशोंने लिया। उसने और भी वृद्धि की। गणितशास्त्रकी सबसे महत्त्वपूर्ण खोज थी—दशमलव और उसे निकाला भारतीय गणितज्ञोंने। न्यूटनके 'गुरुत्वाकर्षण'के सिद्धान्तके १८०० वर्ष पहले गुप्त साम्राज्यमें पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिकी घर-घर जानकारी थी। जब ब्रिटिश लोग जंगली थे, सम्राट् समुद्रगुप्तने मुफ्त चिकित्सालय तथा रोगीको रखकर चिकित्सा करनेके लिये जगह-जगह अस्पताल खुलवाये थे। विश्वका पहला 'अस्पताल' भारतमें संगठित हुआ था।

अस्तु, ग्रह-नक्षत्रकी जो अनुभूति तथा गणना हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलती है, उसकी काफी खिल्ली हम स्वयं उड़ाते हैं, पर नवीनतम खोजोंने इन गणनाओंको सत्य सिद्ध कर दिया है। पेरु (अमेरिका) में पिछले १८-२० सालमें जो खुदायी हुई है, उसमें बड़ी अद्भुत चीजें प्राप्त हुई हैं। ८५० फीट ऊँचा शंकरका त्रिशूल मिला है। पासमें जो सड़क मिली है, वह ठीक हवाईजहाजके उतरनेके लिये बनी सड़क जैसी है। २४ फुट लम्बा तथा २० टन वजनका एक विशाल शिवलिंग मिला है, जिसपर ग्रह-नक्षत्र सब बने हुए हैं। मि० एच्० एस्० बेलामी तथा पी० अलानने तिआ-हुआनाको (पेरु) नामक स्थानसे प्राप्त इस शिवलिंग-पर एक पुस्तक ही लिखी है। सन् १९२७ में यह लिंग मिला था और इसपर बने हुए प्रतीकोंको लगातार चालीस वर्षतक अध्ययन करनेके बाद यह सिद्ध हुआ है कि मूर्ति २७,००० वर्ष पुरानी है। उस समय ग्रह-नक्षत्र आदिकी जानकारी थी। यहाँतक कि 'कलेंडर' 'तिथि-मान' भी था। उस जमानेकी गणना थी कि २८८ दिनमें पृथ्वी सूर्यकी ४२५ बारकी फेरी लगाकर सूर्यकी परिक्रमा करती है।

इस नगरमें अद्भुत वास्तुकला प्राप्त होती है। एक विशाल सूर्यद्वार है—१० फुट ऊँचा, १६½ फुट चौड़ा, एक ही पत्थरमें तराशा हुआ। वजन १० टन। इसपर तीन कतारमें ४८ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं, जिनका नखशिख भारतीय है, आभूषण भी। इन्हीं प्रतिमाओंके लेखोंसे पता चलता है कि आकाशके वायुमार्गसे ओरियान (आर्या) नामक एक स्त्री पृथ्वीपर उतरी, ७० बच्चोंको जन्म देकर पुनः स्वर्ग चली गयी। इसीसे पृथ्वीपर मानवका जन्म हुआ। अब आदम-हौआ, मनु-इला या कश्यप-दिति-अदितिकी कथामें क्या अन्तर है?

गणित तथा इतिहास

पेरुमें ही नगर 'सचस्य हुआ मान' (सत्य हनुमान्) में २०,००० टन वजनका तथा चार मंजिल इमारत इतना ऊँचा बहु चित्रित शिवलिंग प्राप्त हुआ है। सुमेर सभ्यताकी प्राचीन गणनाएँ अद्भुत हैं। उनको ज्योतिषका अद्भुत ज्ञान था। उनके शिलालेखोंमें जो सितारे बने हैं, उनके चारों ओर भिन्न आकारके ग्रह बने हुए हैं यानी उनको ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिकी भी जानकारी थी। उनकी ग्रह-नक्षत्रकी गणना तथा आजकी गणनामें केवल ४ सेकेंडका अन्तर मिलता है। प्राचीन यूनानी सभ्यताके गणितज्ञ १०,००० से अधिककी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या नहीं गिन सकते थे, पर सुमेर सभ्यतामें १,९५,९५,-५२,००,०००,००० (पंद्रह अंक) की गणना मिलती है। इनका लिखित इतिहास ४, ५६,००० वर्ष पुराना है। प्रथम दस राजाओंने ३५,००० वर्षतक राज्य किया तथा २३ नरेशोंने २४,५१० वर्ष ३ महीना, ३½ दिनोंतक। यह लिखित सुमेर इतिहास है। इससे पुराने दीर्घ-जीवनका भी अनुमान लगता है, जिस दीर्घ-जीवनकी बात हमारे पुराणोंमें भरी पड़ी है, पर इसकी खिल्ली उड़ायी जाती थी।

कोहिस्तान (एशिया) की कन्दराओंमें जो चित्र मिले हैं, उनसे पता चलता है कि १९,००० वर्ष पूर्व ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थिति ज्ञात थी और उतनी ही पुरानी वह चित्रकला है। जो चीजें आजकी खोज समझी जाती हैं, वे १०,००० वर्ष पुराने खंडहरोंसे निकाली जा रही हैं, जैसे बगदादमें बिजलीकी सूखी बैटरी, मिस्र तथा ईराकमें बढ़िया तराशा हुआ स्फटिक शीशा, जिसका उपयोग चश्माके लिये होता है, दिल्लीका लौह-स्तम्भ, जिसपर किसी ऋतुका असर नहीं होता, सहारा (मिस्र) रेगिस्तानके तास्सिली नगरमें दीवालों-पर हजारों चित्र मिले हैं, जो हजारों साल पुराने हैं और उनमें आजकलके ढंगका कोट पहने हुए लोग हैं। भारतीय इतिहास तथा पुराणकी ऐसी कौन-सी वस्तु या कथा है, जिसे आज असम्भव तथा मनगढ़ंत कहा जाय !

प्रलयकी गाथा प्रत्येक धर्मग्रन्थमें है। आदिपुरुष तथा नारीकी कहानी भी समान रूपसे है। पुरानी बाइबिलमें डेविड तथा दानवका युद्ध है। हजरत मूसाने कहा है कि 'हौवा (इला) ने आकाशमार्गसे आते हुए चार प्रकाशपुञ्ज चीलोंसे जुता हुआ देदीप्यमान विमान देखा था। विमान आदम (मनु)के पास उतरकर आ गया।' आकाशसे विमान उतरनेकी कथा पेरुमें प्राप्त शिलालेखोंमें भी है। असीरियाके राजा असुर बनिपालके १२ लेख मिट्टीके टुकड़ोंपर खुदे हुए मिले हैं। शरीरभरमें बालवाले, बंदर-मुख 'एनकिट्' (अंगद) की वीरगाथा भरी पड़ी है, जिन्हें सूर्य देवने (राम) अपने वशमें कर लिया था। पाँचवें लेखमें गाथा है कि किस प्रकार एनकिट् (अंगद) देव-लोककी यात्रापर चले। पर आकाशवाणी हुई:—

'वापस जाओ, देहधारी देवलोक नहीं आ सकता।'

मय दानव पाताल्लोकमें रहता था। मय देशकी सभ्यता अब कल्पनाकी वस्तु नहीं है। दक्षिण अमेरिकामें मयसभ्यताके अद्भुत भग्नावशेष मिले हैं, मिलते जा रहे हैं। वे अति विज्ञ तथा पण्डित लोग थे। उनके लेखोंसे यहाँतक मालूम हो गया है कि उनको दैत्योंके गुरु शुक्र और शुक्र ग्रहकी यहाँतक जानकारी थी कि शुक्रका एक वर्ष ५८४ दिनका होता है तथा पृथ्वीका एक वर्ष ३६५.२४२० दिनका होता है। यह दस हजार वर्ष पहलेकी गणना है। आजके विज्ञानने पृथ्वीका एक वर्ष ३६५.२४२२ दिनका निर्धारित किया है। इसमें एक बहुत ही मार्केकी बात है। मयकी गणनाके अनुसार समूचे ग्रहलोककी गति तथा परिक्रमाका योग अन्ततोगत्वा बराबर होता है, जो वास्तवमें सृष्टिके अखण्ड विधानको सिद्ध करता है। मयके गणितज्ञोंने ६ करोड़ ४० लाख वर्षतककी गणना कर दी है। न उन्हें 'कम्प्यूटर'की जरूरत पड़ी, न बिजलीके दिमागकी।

विमानका उपयोग मय करते थे। राम तथा भीमके द्वारा विमानके उपयोगकी हँसी उड़ाना आसान है; पर सुमेर, बैबीलोन, मिस्र, असीरियन-शिलालेखको कैसे झूठा कहा जाय ! तिब्बतके प्राचीन ग्रन्थ तन्तुप तथा कन्तुपमें विमान-का जिक्र है। ईसासे १५०० वर्ष पूर्व राज्य करनेवाले मिस्र-नरेश तथमोसि (तत्त्वमसि) तृतीयने आकाशसे तेजपुञ्ज विमान आते देखा—इसका लेख उपलब्ध है।

प्राचीन ज्ञानका भण्डार

प्राचीन जगत्के विषयमें आज हमें इतना कम मालूम है कि हम आजके संसारको ही सब कुछ समझ बैठे हैं। आज जब हम जेरिकोमें १०,००० वर्ष पुरानी कब्रमें प्राप्त प्रमाण तथा ८,००० वर्ष पुराने पेरिस प्लास्टरके बने नर-मुण्ड देखते हैं, जब हम चीनके गोभी रेगिस्तानमें खारा-खोताके खंडहरोंमें प्राप्त १४,००० वर्ष पुराने वस्त्र तथा आभूषण देखते हैं या ११,००० वर्ष पुराने मिस्री मुर्दे खोद रहे हैं तो नेत्र आश्चर्यसे खुले रह जाते हैं। मिस्रमें महान् पिरामिडको अब हम समझ पाये हैं—ये जिस स्थानपर बने हैं—शासक खूफ़ूका चियूपमें बना पिरामिड, वह पृथ्वी-के गुरुत्वाकर्षणके केन्द्रबिन्दु हैं तथा समूचा भूगोल उसी स्थानसे एक सीधी रेखा खींच दी जाय तो दो टुकड़ेमें बँट जाता है। उस पिरामिडकी ऊँचाईको दस हजार लाखसे गुणा कर दे तो ठीक पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९ करोड़ ३० लाख मील निकल आयेगी। इसी मिस्रके विश्वविख्यात इतिहासकार तथा यात्री, यूनानी हेरोदोतुसने ११,३४० वर्ष पुरानी सभ्यताका वर्णन किया है। इसी इतिहासकारने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमेर जातिवालोंको मरदुक (मारति) अथवा (मङ्गल)-पूजक लिखा है, जिनकी विशाल प्रतिमा स्वर्णकी थी—२४,०००सेर सोना एक प्रतिमामें।

आर्यदेव, इन्द्रदेवकी पूजा चारों ओर होती थी। पुराने 'नार्दक' तथा जर्मन लोग (इंगलैंडसे जर्मनी तक) थोर (इन्द्र) देवताकी पूजा करते थे, जो जलके देवता थे। वर्षा तथा अन्नके स्वामी थे। वज्र धारण किये हुए थे। प्रोफेसर कुहनने संस्कृत तनमित्तुको जर्मन 'वानेन तथा मेघनाथ' कहा है। सभी एक देव थे।

पर प्राचीन सभ्यताका ज्ञान लुप्त हो गया। नालन्द विश्वविद्यालयकी लाखों पुस्तकें खिलजी-नरेशने फूँक दीं। दक्षिण अमेरिकामें मय सभ्यताकी लाखों पुस्तकें ६३वें 'इंका'-नरेश पस्चकुटी चतुर्थने—क्रोधवश जलवा डालीं। सिकंदरियाके विशाल पुस्तकालयकी ५,००,००० पुस्तकें रोमन विजेताओंने नष्ट कर दीं। जो बची रह गयी थीं, उन्हें खलीफा उमरने जला दिया। यरुशलमके मन्दिरका पुस्तकालय विजेताओंने नष्ट कर दिया। लगभग २ लाख पुस्तकें उस मन्दिरके पुस्तकालयमें थीं। ईसासे २१४ वर्ष पूर्व चीनी सम्राट् चि हुआंगने अपने देशमें प्राप्त ज्योतिष तथा दर्शन शास्त्रके सभी ग्रन्थ जलवा डाले। ईसाइयों तथा मुसल्मानोंने धर्म-परिवर्तनके अपने अभिमानमें लाखों-लाखों प्राचीन ग्रन्थ नष्ट कर दिये।

फिर भी एक अद्भुत पुस्तक-संग्रह प्राप्त हुआ है। प्राचीन सुमेर लोग मिट्टीके पत्रपर लिखते थे। ऐसी ६०,००० पुस्तकें बगदादसे ९५ मील दक्षिणमें निपुर (निपुण) नगरमें एक साथ प्राप्त हो गयी हैं। ये रत्न भारतीय सभ्यताकी प्राचीनताको प्रमाणित कर देते हैं, यहाँ-तक कि महाप्रलयतकका वर्णन इनमें उपलब्ध है।

परलोककी बात

बड़े-बड़े विदेशी विद्वान् अब भारतीय सभ्यता तथा प्राचीन अद्भुत वैज्ञानिक प्रगतिकी बात स्वीकार कर रहे हैं। एरिक फान डेनिकनकी पुस्तक 'वाज गाड ऐन एस्ट्रोनोट' (क्या ईश्वर अन्तरिक्ष-यात्री था ?) हालमें प्रकाशित हुई है और लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। चार्ल्स स्मिथकी पुस्तक सन् १८६४में ही छप चुकी थी। पिरामिडके सम्बन्धमें बेलामी और अलॉन लेखकोंकी पुस्तक और होर बिगरकी किताबोंने सभ्य जगत्की आँखें खोल दी हैं।

पर हम भारतीय सोचते हैं कि कहाँके अन्धविश्वासमें पड़े हैं। पृथ्वीलोकके अलावा कोई लोक नहीं है। कहीं कोई ऐसा ग्रह-नक्षत्र नहीं, जहाँ देव या दानव निवास करते हों। स्वर्ग तथा नरक एक कपोल-कल्पना है।

भगवान्की सृष्टिकी थाह पाना असम्भव है। यों आँखसे देखनेसे हरेकको लगभग ४,५०० तारे आकाशमें दिखायी पड़ते हैं। अच्छी दूरबीनसे २० लाख सितारे दिखायी देते हैं। बहुत-से तारे इतने दूर हैं कि सैकड़ों वर्षसे प्रकाश वहाँसे चला है, पर अभीतक हमारे पास नहीं पहुँचा है। प्रकाशकी गति १,८६,००० मील प्रति सेकेंड है, इसलिये एक प्रकाश वर्ष १,८६,००० × ६० × ६० × २४ × ३६५ मीलके बराबर हुआ। इस हिसाबसे १५ लाख प्रकाश वर्षकी दूरीमें केवल आकाशगङ्गा है, जो अँधेरी रातमें थोड़ी दूर फैली दिखायी देती है। ऐसी २० आकाश-गङ्गाओंका पता लग चुका है।

डा० एस० मिलर तथा डा० विली लेका कहना है कि इस पृथ्वीलोकके अलावा कम-से-कम १ लाख ऐसे ग्रह-नक्षत्र हैं, जिनपर प्राणी रहते हैं। पृथ्वीके प्राणियोंसे भी कहीं उन्नत अवस्थामें। पृथ्वीके रहनेवाले सोचते हैं कि बिना अद्रुजन (आक्सीजन) तथा नद्रुजन (नाइट्रोजन) के जीव नहीं रह सकता, यह मूर्खता है। उन प्राणियोंको इन चीजोंकी जरूरत ही नहीं है।

डा० ले कहते हैं कि आकाशगङ्गामें ३०० अरब तारे हैं। नवीनतम खोजके अनुसार १०००अरब तारे हैं। डा० लेके अनुसार कम-से-कम १८ करोड़ तारोंपर प्राणी अवश्य रहते होंगे। मानव-जैसे या उनसे भी उन्नत प्राणी १८,००० तारोंपर अवश्य रहते हैं। यदि यह मान लें कि इनमेंसे १ फीसदी तारोंमें जीव निवास करते हैं, तब भी १८० परलोक तो हो ही गये—कोई नरक होगा, कोई स्वर्ग।

विज्ञानके पण्डित डा० फान बन लिखते हैं—'मेरा ध्रुव विश्वास है कि मानवसे कहीं अधिक उन्नत प्राणी अनेक ग्रहोंमें निवास करते हैं। उनका वातावरण तथा उनका जलवायु हमसे बिल्कुल भिन्न है।'

भारतीय आर्य धर्म, प्राचीन सभ्यता, स्वर्ग-नरक, लोक परलोककी हँसी उड़ानेवालोंके लिये इससे अच्छा और क्या उत्तर होगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चायका मूल्य

[कहानी—सत्य घटनाके आधारपर]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

श्रीभगवान्‌का यों मन-ही-मन स्मरण करते हुए सेठ धनदासजी मोटरसे उतर स्नेहियोंका बिदाई-सत्कार स्वीकार करते हुए रेलके तीसरी श्रेणीके डिब्बेमें जा बैठे, उन यात्रियोंके पास, जो फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। प्रधान मुनीम दीनानाथजीने सामानकी व्यवस्था-हेतु ट्रेन थोड़ी देर रुकवा दी। पैसेमें बड़ी करामात है। एक अन्ध भिक्षुकने हाथ पसारे हुए कहा—'भला हो सेठ बाबाका, कुछ मिल जाय।' पर सेठजी सीटपर जा बैठे थे।

चौथे स्टेशनके प्लेटफार्मपर यह दृश्य सभीने देखा कि एक बेचारा चायवाला यात्रीसे चायके पैसे लेनेको गाड़ीकी धीमी गतिके साथ गिरता-पड़ता हाँफता भागा जा रहा है। पर माईके लाल यात्रीने उसे पैसे नहीं दिये, बल्कि उसकी व्याकुलताके दृश्यको खिड़कीमेंसे देखकर प्रसन्न होता रहा। ट्रेनने तीव्र गति पकड़ी। चायवाला अदृश्य हो गया। मालिकने उसके वेतनमेंसे २५ पैसे ले लिये। यात्रीके पास बैठे हुए एक हरिजन हरिभक्तको यह दृश्य देखकर मनमें बड़ा दुःख हुआ।

दिल्ली स्टेशनसे अपनी पेढ़ीपर जाते हुए सेठ-मुनीमने श्रीकृष्ण-प्रिया तरणिजा श्रीयमुनाजीके चलती मोटरमेंसे दर्शन कर—'**कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं मुरारिप्रियस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम्।**' कहते हुए उन्हें सभक्ति नमस्कार किया। 'अहा! प्रयागराजमें—जहाँ श्वेत गङ्गनीर एवं यमुन-नीलनीरका संगम हुआ है, वह अति मनोहर दृश्य देखते ही बनता है।' सेठजीकी इस बातको मुनीमजीने मानो सुना ही नहीं। उनका चेहरा तो उस समय न जाने क्यों एकदम उदास हो रहा था। सेठ धनदासने धर्मार्थकी मदमें ५००) रु० मासिकका खर्च और बढ़ा देनेकी स्वीकृति दी, तब मुनीमका मन अंदरसे इतना जरूर चाह रहा था कि इस निधिको १०००) रुपये कर दें, तो अच्छा।

अनमना मन, मुखकी विवर्णता, पश्चात्तापके चिह्न, चेहरेकी सिकुड़ी रेखाएँ—ये उदासीके भाव भला छिपते कबतक? एक दिन धनदासजीने पूछ ही लिया—'मुनीमजी! पहले आपका मुखमण्डल पाटल-पुष्पकी किंजल्क मानो बिखेरता रहता था—अब यह कैसा क्या हो गया?'

पहले तो दीनानाथने कारण बतानेमें आनाकानी की, परंतु सेठजीके बहुत आग्रह करनेपर धीरे-धीरे, रुकते-रुकते शब्दोंमें, डबडबायी आँखोंसे पश्चात्तापकी आह भरते हुए कहना आरम्भ किया—'कोटा स्टेशन-पर आपको स्पेशल चाय पिलाकर मैंने २५ पैसे बेईमानीसे बेचारे चायवालेको नहीं दिये। उलटे उसकी भागदौड़, चिल्लाहटभरी माँगको ट्रेनकी खिड़कीमेंसे देख-देखकर मैं मन-ही-मन हँसता रहा। किंतु जब मैं ट्रेनमेंसे उतरा तो मेरी जेबका ५००) रु० के नोटोंका बटुआ गायब था। मैं फौरन जान गया कि मुझे यह उसी बेईमानीका हाथोंहाथ फल मिला है।'

सेठजी मुस्कुराकर बोले—"मुनीमजी! यात्रामें असावधान रहना कभी अच्छा नहीं होता। कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राह कहीं, राही कहीं, राहबर कहीं,
ऐसा भी सफर कामयाब होता है, कहीं !'

अब आप इतने शोकमग्न क्यों हैं ? मुझे आपकी ईमानदारी, स्वामी-भक्ति और वर्षोंकी निस्स्वार्थ सेवाएँ भलीभाँति ज्ञात हैं। कहते हो—'वेतनमेंसे थोड़ा-थोड़ा जमा कर ५००) रु०की पूर्ति कर दूँगा' तो क्या मुझे निरा धन-दास ही समझ रहे हो ? ऐसा कभी नहीं होने दूँगा। 'बनजारेके बैलके समान स्नेह-सम्बन्ध बड़ी कठिनाईसे जुड़ता है, उसे तोड़ना कभी अच्छा नहीं होता।'*आप ये ५००) रु० बट्टाखाते मँडवाकर चैनकी साँस लीजिये और आनन्द-पूर्वक पूर्ववत् काम कीजिये। देखते हो, भगवान् श्रीहरि अहैतुकी कृपासे प्रत्येक सौदेमें कितना-कितना धन प्रदान कर रहे हैं! तो क्या—

पानी बाढ़ो नावमें, घरमें बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

यह मैं क्यों न करूँ ?''

सेठजीकी इस उदारता, दरियादिली, गुणग्राहकता, वर्षोंके प्रेम-सम्बन्ध एवं ममत्व-अपनत्वका विचार करके दीनानाथ गद्गद होकर प्रेमाश्रु बहाने लगे।

परंतु उनके मनमें यह प्रश्न बराबर उठने लगा कि ''मुझसे यह पाप हुआ ही क्यों ? मैं आस्तिक हूँ, करुणावरुणालय श्रीहरिसे डरता हूँ। फिर ? अरे हाँ, आज मैंने शुद्धाशुद्धका विचार न कर होटलमें भोजन कर लिया था। सम्भव है, यह उसीका कुफल है। 'जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन्न।' परम सेवक-भक्त सेठजीकी महती कृपासे ५००) रुपये तो आये-गये हो गये, किंतु उन अन्याय, अधर्म, बेईमानी, दूसरेको दुःख देकर हानि पहुँचाकर, उसका दिल दुखाकर बचाये पचीस २५ पैसोंका प्रायश्चित्त कैसे करूँ ? यह तो जीवनमें अवश्य करना ही पड़ेगा !''

वही स्टेशन, वही प्लेटफार्म, उस चायवालेकी भागदौड़, स्वयंकी हँसी सभी बातोंकी स्मृति दीनानाथके मनमें हलचल मचाने लगी। पर, सौभाग्यकी बात हुई कि लौटते समय वही चायवाला स्टेशनपर चाय बेचता मिल गया। दीनानाथने उसे देखा तो मानो भगवान् मिल गये। पास बुलाकर चुपचाप २५) रु० देकर बिदा किया। मनमें इतना हर्ष माना कि मानो एक भारी पापका प्रायश्चित्त कर चुका हूँ। पर प्रेरणा हुई। लड़केको पुकारकर बुलाया और सेठजीसे परिचय कराकर उसे १०१) रुपये इनामके रूपमें दिलवाये।

× × × ×

भवनको आकर धनदास इस घटनाको भूले नहीं। उनके मनमें ग्लानि उत्पन्न हुई कि 'बिना पैसेकी चाय पीकर मानो मेरा नेम-धर्म बिगड़ गया है। इनाम देना मूल्य नहीं हो सकता। मैं भी मुनीमजीकी बेईमानीमें शामिल हूँ। तो भी दयानिधान भगवान् क्षमा करते हुए घरमें धनकी वर्षा करते हैं। क्यों न मैं २५ पैसेके बदलेमें २५ हजार रुपयोंकी लागतसे एक अनाथालय बनवा दूँ!'

सेठकी यह धर्म-भावना कार्यरूपमें परिणत हो गयी। अनाथालय बन गया और उसका सारा प्रबन्ध-कार्य मुनीम दीनानाथके ही सुपुर्द हुआ। समय निर्झर-जलकी भाँति बहते-बहते कुछ वर्ष बीत गये। सुकृतका पैसा, बिना कीर्तिकी चाहका काम, सुप्रबन्ध, दीनोंको सभी भाँति आराम पहुँचानेकी लालसा—इन सभी विषयोंकी चर्चा सर्वसाधारणमें दूर-दूरतक फैल गयी।

× × × ×

*जोड़े ज्यूही जोड़ बिणजारेके बैल ज्यूं।
तनफ जोड़ मत तोड़ नातो तातो 'नागजी'॥
(नागजीका मारवाड़ी बोलीका दोहा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ओहो ! कितना कष्टमय था जेल-जीवन ! वे दिन कितनी कठिनाईसे बीते । सच ही कहा है—

अय्याम मुसीबतके तो काटे नहीं कटते ।
दिन ऐशके घड़ियोंमें गुजर जाते हैं ॥

पर पाप-कर्मका भोग तो भोगना ही पड़ता है । दिन गिनते-गिनते छुटकारेका समय आया । परंतु अब भी क्या हुआ है । बुढ़ापा है । किंतु भरोसा एक उसी बिगड़ी बनानेवाले प्रभुका है ।'

इन विचारोंकी शृङ्खला बाँधे हुए अनाथालयमें भर्ती हुआ एक वृद्ध आकाशकी ओर हाथ पसारे हुए क्षमा-याचना कर रहा था—

या रब ! तबाहकारोंका तू कारसाज है ।
बन्देको नाज है कि तू बन्दानवाज है ॥

मुनीम दीनानाथने जब यह ध्वनि सुनी तो वृद्धको पास बुलाकर पूछा—भाई ! तुम जाने-पहचाने-से मालूम होते हो ?'

कृशकाय अनाथ वृद्ध बोला—'हाँ, मैं वही चायवाला हूँ, जिसे आपने २५ पैसेके बदले २५) रुपये चायके दिये थे; किंतु मैंने अज्ञानवश उनको बढ़ानेकी थोथी लालसासे एक स्थानपर चोरी कर काफी धन हथिया लिया । पता लग गया । कैद भोगनी पड़ी । वहाँसे छूटकर उदरपूर्ति-हेतु अब यहाँ आया हूँ ।'

यह कहते-कहते वृद्ध रामदीन रुक गया । फिर रोते-रोते बोला—'धर्मात्मा लोग दीन-हीन याचकोंको धर्मार्थ पैसा देते तो हैं, पर वे उसका दुरुपयोग करके बुरी गतिको प्राप्त हो जाते हैं । ऐसे लोगोंके सुधारनेका कोई सामूहिक उपाय नहीं किया जाता, जिससे याचक सच्चे अर्थमें मानवोचित गुण प्राप्त करके देश, समाज एवं अभावग्रस्त लोगोंकी तन-मनसे सेवा करते हुए उद्यम-परिश्रमसे उपार्जनकर अपना जीवन-यापन करें ।'

मुनीमके मानसमें वृद्धकी इन बातोंके सुननेसे प्रेम, सहानुभूति, मानव-समानता, सेवा एवं श्रमकी महानताके उन्नत भावोंका उदय हुआ । लिपट गये वे रामदीनसे । सान्त्वना देते हुए बोले—'भाईजी ! लालच तो बुरी बला होती ही है । यह बड़े-बड़े ज्ञानियोंका मन चलायमान कर देती है । किंतु अब आप संतापको छोड़कर यहाँ आरामसे रहो ।'

इस प्रसङ्गके पश्चात् दीनानाथने यह नियम बना दिया कि 'अनाथालयके सभी अनाथ निरन्तर हरिभजन करते रहें और 'सब तज हरि भज'का पालन करें ।' तदनुसार होता है ।*

बोलनेमें पाँच बातका ध्यान रक्खो

प्रत्येक मनुष्य अपनेको दूसरोंसे अधिक बुद्धिमान् समझता है और बात करते समय आवश्यकतासे अधिक बोल जाता है, जो लोगोंको अखरता है । इसलिये मनुष्य यदि बोलनेमें पाँच बातोंका ध्यान रक्खे तो बहुतसे संकटोंसे बच जाय । (१) जहाँतक हो चुप रहे, काम पड़नेपर कार्यमात्रकी बात ही बोले । (२) जोरसे चिल्लाकर या हुकूमतके ढंगसे न बोले । (३) अपनी या अपने पूर्वजोंकी बड़ाई न करे । पर यदि कोई दूसरा अपने लिये ऐसी डींग मारे तो उसको न बुरा कहे, न टोके । (४) अपने पड़ोसीकी, सिवा इसके कि जब उसकी प्रशंसा करनेका प्रसंग हो, कभी चर्चा ही न करे । (५) भगवान्की अपार दयाकी सदा चर्चा करता रहे और अवसर मिले तो विशेष लाभदायक मानकर भगवच्चर्चा सुने भी । (स्पिरिच्युअल कंबट)

* इस कहानीमें पात्रोंके नाम बदल दिये गये हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रश्नका उत्तर

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा)

सफाई देना मुझे पसंद नहीं, परंतु आपको बतलाना भी आवश्यक है, इसलिये आपसे निवेदन कर दूँ कि मैं शास्त्रोंका ज्ञाता नहीं हूँ और संस्कृतका भी पण्डित नहीं हूँ। इसका मुझे दुःख है। श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतका स्वाध्याय करता रहता हूँ। इसी जानकारीके आधारपर आपसे निवेदन कर रहा हूँ।

(२) विश्व तथा इसके अंदर जो कुछ दृष्टिगोचर और अनुमानित है, उसका कारण पुरुष और प्रकृति है। जड-चेतन और दृश्य-अदृश्यकी प्रत्येक वस्तु, प्रकृतिके तीन गुण—सत्त्व, रज और तम—पाँच तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका पुञ्ज है। पुरुष-परमेश्वर सबमें व्याप्त और सबका नियन्ता है। आदिसे अन्ततक यही व्यवस्था रहती है। अतः महाभारतकालमें ही नहीं, सब कालोंमें प्रतिक्षण और सब जगह अच्छाई और बुराई रहती है। यह दूसरी बात है कि कभी और कहीं सात्त्विक गुणोंका बाहुल्य होता है, कभी कहीं राजसका तो कभी कहीं तामसका बाहुल्य होता है।

(३) मनुष्यके धर्म अथवा कर्तव्यके बारेमें मैंने पढ़ा है। मनुष्यके अधिकारका उल्लेख प्रभुके मुखारविन्दसे ही केवल एक स्थानपर मिलता है—**'कर्मण्येवाधिकारस्ते।'** परंतु प्रभुने तुरंत ही बड़ी कठोर शर्त लगा दी है, **'मा फलेषु कदाचन।'** अतः मनुष्य कोई भी कार्य करे—पापकी कमाई करे अथवा पुण्यकी—उसका फल देनेवाले एक वही हैं, वही हैं; क्योंकि **'कदाचन'** शब्दका प्रयोग है। वे सबको स्वीकार करते हैं। यदि वे स्वीकार न करें तो उसका फल कौन दे। वे दयासागर इसीलिये हैं कि प्राणी जो कुछ करता है, उसे वे स्वीकार करते हैं। वे पूर्ण न्यायमूर्ति हैं। पुण्यात्माको पापके लिये क्षमा नहीं, पापात्माको पापके लिये अधिक दण्ड नहीं। इसीलिये वे निर्लिप्त हैं, आसक्तिसे रहित हैं। स्वीकार करनेका तात्पर्य केवल इतना है कि वे पूर्ण न्याय करते हैं। उन्होंने इसकी स्पष्ट घोषणा की है—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।

अतः भगवान् किसीके भागीदार, प्रेरक और आधार नहीं हैं।

(४) मनुष्य जबतक कर्ममें अहंता रखता है, तबतक पुण्य-पाप कमाता है। अहंकारशून्य होनेपर ही कहा जा सकता है कि वह पुण्य-पाप नहीं कमाता है। तब वह परमहंस हो जाता है और संसारमें परमहंस कितने हैं, यह आप सोच सकते हैं। अधिक सात्त्विक कर्म करनेसे संत, अधिक राजस कर्म करनेसे सांसारिक और अधिक तामस कर्म करनेसे नीच-में गणना की जाती है। नीच भी कुछ सात्त्विक कर्म करता है; क्योंकि कर्मकी उसे स्वतन्त्रता है और प्रभु पूर्ण न्यायकारी उस नीचको उसका शुभ फल देते हैं, ऐसा मेरा विचार है। इसकी पुष्टि प्रभुके वचन—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

—से हो जाती है। कर्ममें भावना प्रमुख है। दण्ड-विधानमें भी भावना (इंटेन्शन) को प्रमुख लिया जाता है। इस आधारपर यदि संत किसीसे पैसा लेकर अच्छे कार्यमें लगाते हैं तो ठीक ही है। हाँ, यह आवश्यक है कि उसके बुरे कर्मों-के लिये वे उसकी भर्त्सना भी करें और उसमें आसक्त न हों। यदि ये उसमें आसक्त हो जाते हैं तो उसके पाप-पुण्य-का भागीदार उनको बनना पड़ेगा। उन्हें तो प्रभुकी शर्तके अनुसार—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

—होकर कार्य करना चाहिये। अन्यथा इस पाप-पुण्य-के दलदलमें वे फँस जायँगे। उसके नखरेदार व्यञ्जनोंका रसास्वादन करनेसे, उसकी कीमती मोटरोंमें घूमनेसे और हवाई जहाजोंमें उड़ते रहनेसे वे निश्चित भागीदार होंगे, फँसेंगे और महापुरुषोंके शब्दोंमें उनकी दशा उस कुत्तेकी होगी जो अपनी उलटी वस्तुको स्वयं फिर खा लेता है; क्योंकि वे उसमें आसक्त होकर फिरसे वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणामें फँस जायँगे। उनको शुभ कार्यके लिये पैसा लेकर उस कार्यमें लगा देना चाहिये और उसमें आसक्तिको छोड़कर अपने लिये अन्नादि ग्रहण नहीं करना चाहिये। भीष्मपितामहके वाक्य सदैव सत्य हैं।

(५) यह कहना न्यायसंगत नहीं है कि सभी धनवान् पापका पैसा कमाते हैं और सभी गरीब पुण्यात्मा हैं। हर वर्गमें, समाजमें और घरमें—दोनों प्रकारके व्यक्ति मिलेंगे। सच्चे संत, प्रचारक, भक्त और विद्वान् कोई भेद-भाव नहीं बरतते। उन्हें शुभकार्यसे मतलब रहता है। वे किसीमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्त नहीं होते। यह सत्य है कि लोकैषणाके शिकार होकर कुछ लोग भटक जाते हैं। आज चारों ओर भौतिकवादका प्रचार है, इसके लिये स्पर्धा है। निरासक्त रहनेका प्रयत्न करनेवाले भी इस आगमें झुलस जाते हैं। इस आगकी तापसे जितनी दूर हो सके, उतनी दूर रहकर सज्जन पुरुष कार्य कर सकें, तो ही अच्छा है।

दैवी और आसुरी विचार संसारमें सदैव रहे हैं, सदैव रहेंगे। ये बढ़ते-घटते अवश्य रहते हैं। मनुष्यका परम कर्तव्य है कि वह दैवी विचारोंको ग्रहण करे और उनके प्रचार-प्रसारमें यथाशक्ति सहयोग करे। निराश होकर बैठे नहीं।

(६) प्रिय महोदय! अब मैं कुछ आपसी बात भी कह लूँ। आपका प्रश्न एक सच्चे व्यावहारिक साधकका आन्तरिक प्रतिद्वन्द्व है। मैं स्वयं आपके प्रश्नके आन्तरिक भावसे पूर्ण सहमत हूँ। हालाँ कि न तो मैं साधक हूँ और न पण्डित। मैं एक कर्मचारी हूँ। ईमानदारीसे जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न करता हूँ। कभी-कभी संतकी खोजमें भटकता था, परंतु आपके द्वारा व्यक्त विचार—संघर्ष कहीं जमने नहीं देता था। आजके प्रसिद्ध वैष्णव, संन्यासी-संतोंके पास भी आपके द्वारा व्यक्त विचारोंके कारण मुझे संतोष न मिला। अन्तमें मुझे दो महानुभावोंके दो वाक्यों तथा श्रीमद्भागवत और महाभारतमें वर्णित दो उपदेशोंसे शान्ति मिली। आपद्वारा उठाये गये प्रश्नका समाधान सम्भवतः इन वाक्योंसे हो जाय।

(७) सन् १९४८ में 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ' के सत्याग्रहके सम्बन्धमें मैं नैनी जेलमें था। सभी स्वयंसेवकोंके भोजनका प्रबन्ध करनेकी सेवा मुझे मिली थी। मैंने प्रचारक-वर्गको अन्य लोगोंसे अधिक घी लेते देखा तो मेरा मन क्षुब्ध हो उठा। मैंने इसकी शिकायत जेलमें स्वयंसेवकोंके सर्वोच्च अधिकारी, श्रीराजेन्द्रसिंहजी प्रोफेसरसे, जिन्हें 'रज्जू भैया' कहते थे, की। ये बड़े सरल स्वभावसे बोले, 'पण्डितजी! आप प्रबन्धक हैं। आप उनको ऐसा करनेसे तुरंत रोक दीजिये।' मैंने ऐसा ही किया और सफलता मिली; परंतु कुछ नैराश्य छा गया। एक दिन रज्जू भैया फिर बोले—'प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण आदर्शका पालन नहीं कर सकता। श्रेणियाँ होती हैं। संसारमें सभी रहते हैं। बुद्धिमत्ता इसमें है कि अच्छाई ग्रहण करे और किसीकी कमीके कारण उससे घृणा न करे।' मेरा समाधान हो गया। एक दिन खीर बहुत अच्छी बनी थी। सबको एक-एक प्याला दी गयी। रज्जू भैयाके लिये मैं स्वयं दो प्याले खीर लेकर देने गया। वे बोले—'आज बहुत-बहुत खीर बँटी है।' मैंने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'सबको एक-एक प्याला मिली है। आपके लिये दो प्याले बँ लाया हूँ।' बस, रज्जू भैयाकी चेष्टा बदली और वे गम्भीर होकर बोले—'पण्डितजी! आप और मेरे लिये दो प्याले लेकर आये हैं!' मैं जमीनमें गड़ गया। मेरे पास शब्द न थे। चुपकेसे खीर वापिस लेकर लौट गया। फिर एक प्याला भेजी। यह है उज्ज्वल चरित्र और आदर्श जीवन। इसीको व्यावहारिक आदर्श जीवन कहते हैं। यह छोटी-सी घटना मुझे जीवनमें जाग्रत् रखती है, हालाँ कि रज्जू भैयासे मेरा सम्पर्क छूटे २२ वर्ष हो चले।

(८) मुझे जब प्रसिद्ध संतोंके पास संतोष न मिला तो मैंने प्रतिमास श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा प्रारम्भ की। लगभग नौ वर्ष पश्चात् एक बंगाली महान् संतके दर्शन हुए। वे त्यागकी मूर्ति हैं। किसीसे कोई वस्तु नहीं लेते। रात्रिको पासके ग्राम जतीपुरासे मधुकरी माँगकर पाते हैं और उन्हीं गृहस्थोंके चिथड़े लेकर पहनते हैं। उनके दर्शनसे मुझे बड़ी शान्ति मिली। जिसके हाथमें माला न हो, उससे केवल तीन वाक्य बोलते हैं—'परिक्रमा देने आये हो? कहाँसे आये हो? जाओ।' अन्तिम वाक्यके पश्चात् कोई ठहर नहीं पाता। यदि माला हो तो दो-चार मिनट उपदेशके शब्द बोलते हैं। वैसे उनका दर्शन ही उपदेश है। मेरी प्रबल इच्छा रही कि मैं उन्हें कोई वस्तु दे सकूँ। परंतु असफल रहा। संस्कृतके विद्वान् हैं। खैर, एक बार मैं थोड़ी-सी मिश्री लेकर गया। मैंने प्रार्थना की—'आप प्रातः भगवान्के भोगके लिये यह मिश्री स्वीकार कर लें तो बड़ी कृपा हो।' वे पागलोंकी तरह हँसने लगे और बोले—'तुम मुझे फँसाना चाहते हो। हम स्वतन्त्र जंगली साधु हैं। तुलसीदल और जलका भोग लगाते हैं। अन्य वस्तुसे हम किसीके आश्रित हो जायँगे।' प्रत्येक मास जाता रहा। उनसे विदा लेते समय मन दुखी होता था कि मैं कोई सेवा न कर सका। एक बार स्वयं बोले—'हम कोई वस्तु नहीं लेते, इससे तुम दुखी हो।' मैंने कहा—'जी महाराज!' गम्भीर होकर बोले—'सत्य बोलना। पापका पैसा तो नहीं कमाते हो?' मैंने कहा—'महाराजजी! मैं पापका पैसा नहीं लेता।' अब वे सरल स्वभावसे बोले—'भैया! हम व्रजके बाहरकी भिक्षा नहीं लेते। एक काम करो, हमारे लिये श्रीमद्भगवद्गीताका श्रीचक्रवर्तीका भाष्य मँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना।' शास्त्रोंमें वर्णित संत ऐसे होते हैं। एक बार मेरी पत्नीके प्रश्न करनेपर खड़े-खड़े दो मिनटके उपदेशमें कहा—'देखो, स्त्रीके लिये गुरुकी बिल्कुल कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई स्त्रीके लिये गुरुकी कहे तो वह धूर्त है, चाहे वह कोई हो। पुरुषको गुरु मिलना कठिन है। मिल जाय तो उसमें कभी भी दोष-दृष्टि होनेसे घोर पाप लगता है। इसलिये श्रीराधेगोविन्दको गुरु मानो। वे तुम्हारा पथ-प्रदर्शन अवश्य करेंगे। विश्वास रक्खो। श्रीराधेगोविन्द ही सबके सच्चे गुरु हैं। वे भवसागर पार लगायेंगे। जाओ।' ये हैं सच्चे संत—जो त्यागकी मूर्ति होते हैं। बाकी क्या है, यह मैं आपसे पहले निवेदन कर चुका हूँ।

(९) महाभारतमें कलियुगका वर्णन करते समय यह प्रश्न उठा है कि 'इस कालमें उत्थानका क्या मार्ग होगा?' उसके उत्तरमें कहा गया है कि 'सामूहिक उत्थान कठिन है। मनुष्यको अपने-आपको सँभालना चाहिये। उसीसे समाज और देशके उत्थानमें सहयोग हो सकेगा।' अतः अपनी चुंदरिया देखिये कि उसके दाग धुल जायँ और नये दाग पड़ें नहीं। दूसरे आपको देखकर सुधार करेंगे इसमें कोई संदेह नहीं।

(१०) श्रीमद्भागवतमें गुरुका महत्त्व बताते हुए कहा है कि 'कलियुगमें गुरु मिलना दुर्लभ है, इसलिये श्रीगोविन्दको गुरु मानिये। वे आपका पथ प्रदर्शन करेंगे और आपको भवसागरके पार ले जायँगे।'

(११) यदि आपका प्रश्न एक साधकका अन्तर्द्वन्द्व है तो मुझे आशा है कि आपको कुछ समाधान, कुछ शान्ति मिलेगी। परंतु यदि आपका प्रश्न राजनीतिक, मानसिक परेशानी है तो इस लंबे पत्रके पढ़नेमें आपके अमूल्य समयके व्ययका मुझे दुःख है और निवेदन है कि आप इस अपव्ययके लिये मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।

साधुताके लक्षण

(लेखक—श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)

साधुका मुख्य लक्षण यह है कि वह सदा अपने स्वरूप-का अनुसंधान करता रहता है और सब लोगोंमें रहकर भी सबसे अलग रहता है। ज्यों ही उसकी दृष्टि अपने स्वरूपपर पड़ती है, त्यों ही उसकी सारी चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं। सिद्धलोग बाहरसे देखनेमें तो सीधे-सादे जान पड़ते हैं; पर उनका आत्मस्वरूप परमात्मस्वरूपमें ही लीन रहता है। संदेहरहित साधन ही सिद्धोंका लक्षण है और उनके अन्तःकरणके बाहर-भीतर अचल समाधान रहता है। अन्तःकरणकी स्थिति अचल हो जानेपर फिर उनमें चञ्चलता नहीं रह जाती। जब उनकी वृत्ति सत्स्वरूपमें लग जाती है, तब वह सत्स्वरूप ही हो जाती है। वृत्तिमें किसी प्रकारका अलगाव नहीं रहता। साधु चलते रहनेपर भी अचल और चञ्चल रहनेपर भी निश्चल रहता है। जब वह सत्स्वरूपमें मिलकर सत्स्वरूप हो जाता है, तब वह चाहे कहीं पड़ा रहे, अथवा वहाँसे उठकर किसी अन्य स्थानपर चला जाय, वह वास्तवमें अचल ही रहता है। चञ्चलता मनकी स्थितिपर आधारित है। जिसका मन चञ्चलतासे निवृत्त होकर ईश्वरमें लग गया है, वही साधु है। साधुका बाहरी रूप और कार्य चाहे जैसा हो, पर उसका मन सत्स्वरूपमें लगा रहता है। इस समय इस प्रकारके साधु बहुत कम होंगे, किंतु कहीं-कहींपर कोई छिपे हुए साधु मिल ही जाते हैं। उनकी वृत्ति निर्गुणमें लगी रहती है और वे नित्य-निरन्तर अविरल भावसे अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं। साधुकी कल्पना जब लीन हो जाती है और वह जब स्वरूपमें स्थित हो जाती है, तो उसमें कामना रह ही नहीं जाती। साधुकी सम्पत्ति अक्षय होती है, इसलिये उसमेंसे कुछ सम्पत्तिका नुकसान होनेपर भी उन्हें क्रोध नहीं आता। उनका किसीपर अपना अथवा पराया भाव नहीं; वे सदैव अपने आनन्दमें मग्न रहते हैं। वहाँ किसी प्रकारका वाद-विवाद नहीं रह जाता। साधुमें मत्सर होता ही नहीं, साधु तो अनायास ही ब्रह्मस्वरूप होता है। साधु स्वयं आनन्दस्वरूप होता है। इसलिये उसमें दम्भ कैसे हो सकता है? साधुमें द्वैत होता ही नहीं। साधुने दृश्योंको बिल्कुल नष्ट कर दिया। उसके सामने प्रपञ्च ठहर ही नहीं सकता। साधु निष्प्रपञ्च है। साधुका घर सारा ब्रह्माण्ड है। वह इस पाञ्चभौतिक विस्तारको मिथ्या समझकर छोड़ देता है। साधुमें लोभ नहीं होता। साधुकी कामना शुद्ध स्वरूपमें मिलकर ठीक उसीके समान हो जाती है। साधु सदा शोक-रहित रहता है। वह समझता है कि सब कुछ अपना-आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है, तब उसे किस बातका कैसा दुःख ? साधु सदा नश्वर दृश्यको छोड़कर शाश्वत स्वरूपमें स्थित रहता है । साधु शोकातुर नहीं होता । उसकी वृत्ति निवृत्त हो जाती है, इसलिये साधु कल्पनारहित रहता है । साधु मोहजालमें नहीं फँसता; वह मोहातीत है । साधु अभयपदको प्राप्त होता है, अतः उसे भय होता ही नहीं । संसारमें सबका अन्त होता है, पर साधु अनन्त है । जो सत्य स्वरूपमें मिल अमर हो गया हो, उसका अन्त कैसे हो सकता है ? साधुमें द्वन्द्व-भेद नहीं होता । उसमें देहबुद्धिका खेद नहीं, अतः वह अपने ही अभेदमें मस्त रहता है । साधुकी बुद्धिमें निर्गुण निश्चित होता है और वह निर्गुण उससे कोई छीन नहीं सकता । वह स्वयं अकेला ही होता है, इसलिये उसे दुःख और भय नहीं होता । साधु आकाशकी तरह विस्तृत होता है, अतः उसमें सीमा नहीं होती । साधु सदा वीतराग, सब प्रकारके राग-द्वेषसे रहित रहता है । साधुकी स्वरूप-स्थिति हो जानेसे शरीरकी चिन्ता छूट जाती है; भविष्यकी कोई चिन्ता उसे नहीं रह जाती । साधु मान-अपमानसे परे होता है । साधु अलक्ष्यकी ओर अपना लक्ष्य रखता है, इसलिये वह परमात्म-स्वरूप होता है । साधु ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाता है, इसलिये वह निर्मल होता है । उसमें धर्म-सम्प्रदायके बारेमें मतभेद नहीं होता । वह ब्रह्मके स्वरूपमें स्थित रहना ही धर्म समझता है । साधुका यही मुख्य लक्षण है । ऐसे अनुभवी साधुकी संगति करनेसे मनुष्यमें जिज्ञासा जाग्रत् होती है और उसे स्वरूप-स्थितिकी प्राप्ति होती है । जो संतका सत्सङ्ग करता है, वही सत्सङ्ग करता है । अध्यात्मका निरूपण सुनते-सुनते मनुष्यमें साधुके लक्षण आ जाते हैं ।

साधु वह है, जिसका मन मननशील और मौन है । साधु किसी-जैसा नहीं होना चाहता, बल्कि जो वह है, वैसा ही जानना चाहता है । साधु किसी प्रक्रिया-क्रियासे बँधा नहीं होता, वह स्वतन्त्र है । साधु पग-पगपर परमात्माका अनुभव करता है और जगत्के सभी प्राणी उसको परमात्म-स्वरूप नजर आते हैं । साधुकी दृष्टिमें कोई पापी नहीं, वह सबको निष्पाप समझता है ।

साधु भूत-भविष्यका विचार न कर वर्तमानमें जीता है, वह अपने कर्तव्यका सहज पालन करता है । साधुसे लोकहित अनायास ही होता है; क्योंकि वह सहज ही परम कृपालु और परम दयालु होता है ।

क्रोधकी परीक्षा

एक सज्जनको कभी भी क्रोध नहीं आता था । कुछ लोगोंने उनकी परीक्षाके लिये उनके पुराने निजी नौकरसे कहा कि 'तुम यदि एक क्षणके लिये भी उन्हें क्रोध दिला दोगे तो तुम्हें बड़ी रकम इनाममें दी जायगी। नौकर जानता था कि उसके मालिकको यदि पलंगपर बिछौना सिकुड़ा या टेढ़ा-मेढ़ा बिछा दिया जाय तो नापसंद होता है, अतः उसने क्रोध दिलानेके लिये रातको बिछौना ठीक नहीं बिछाया । सबेरे उन्होंने पूछा तो नौकरने कह दिया—'मैं भूल गया था ।' दूसरे दिन और भी बुरी तरह बिछौना लगाया । सबेरे जब मालिकने अपनी सहज शीतल वाणीसे पूछा तो नौकर बोला कि 'समय नहीं मिला था ।' तीसरी रातको फिर वैसा ही किया और सबेरे जब डरता हुआ वह मालिकके सामने गया तो उन्होंने मुसकराकर कहा कि 'मालूम होता है कि तुम मेरी इस आदतको नापसंद करते हो । पर डरो मत । मेरी आदत अब यों ही सो रहनेकी पड़ती जा रही है ।' यह सुनकर नौकर लज्जित हो गया और उसने चरणोंपर गिरकर सारा विवरण कह सुनाया । वे सुनकर हँसने लगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

मनुष्य परिस्थितिपरवश होता है। उसकी स्थितिपर विचार करना चाहिये, क्रियापर नहीं। मनुष्य कभी-कभी ऐसे कर्म कर बैठता है, जिनको वह स्वयं करना नहीं चाहता और करनेपर पछताता भी है।

प्रतिकूलतामें प्रभु-कृपाका दर्शन करनेके सिवा दुःखनाशका और सहज उपाय नहीं है। मनकी स्थिति समझकर, मनको तो ठीक करना ही पड़ेगा। प्रतिकूलता तो रहेगी ही। किसीको भी आजतक सम्पूर्ण अनुकूलताएँ नहीं प्राप्त हुईं। अतः प्रतिकूलतामें अनुकूल भावना करके ही प्रतिकूलताको मिटाना पड़ेगा। प्रत्येक परिणामको परम सुहृद् भगवान्‌की कृपाका विधान मान लेनेपर प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिणत हो जाती है, पर इसके लिये भगवान्‌की कृपापर, उनके कृपारचित विधानपर अटल विश्वास और भरोसा होना चाहिये। मनमें कभी निराशा, उदासी और भय आवे तो उसी समय भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपाका स्मरण करना चाहिये। निश्चय करना चाहिये—भगवान्‌की हमपर बड़ी कृपा है। भगवान्‌के साथ चित्तका सम्पर्क दृढ़ हो जानेपर अपने-आप ही परम प्रसन्नता आ जाती है।

× × × ×

जबतक यह प्रतिकूलताका काल्पनिक स्वरूप हमारे सामने है और हम इससे दुखी होते हैं, तबतक हमारा भगवान्‌पर विश्वास नहीं है। जबतक भगवान्‌में पूर्ण विश्वास नहीं है—भगवान्‌को हम अपना नहीं मानते—तबतक दुःख नहीं मिटेंगे।

अँधेरेसे अँधेरा कैसे मिटे? चोरोंको निकालनेका प्रयत्न करें और चोरोंके ही गिरोहमें निवास करें। इसलिये यदि दुःखोंसे छूटना हो तो भगवान्‌में विश्वास करना होगा, भोगोंमें नहीं।

कैसी बेतुकी बात है कि हम उन भगवान्‌पर विश्वास नहीं करते, जिनपर सारी सृष्टि, सारा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है, जो सबका शासन-संरक्षण करते हैं, जो सर्वशक्तिमान् हैं। जो इतने महान् होते हुए भी हमारे सुहृद् हैं। उन भगवान्‌पर हमारा विश्वास नहीं है। हमारा विश्वास है—जगत्‌के क्षणभङ्गुर भोगोंपर, जिनका अन्त—भयंकर दुःख, क्लेश, व्याधियोंसे भरा हुआ है।

हम सुखके रास्तेपर ही नहीं हैं। भोगोंमें सुख है, हमारी यह दृढ़ आस्था है। वस्तुतः भोग हैं 'दुःखयोनि'। उन दुःखमय भोगोंमें हमने सुखकी कल्पना कर रक्खी है। दुःखमें ही हमारे सुखकी भ्रान्त धारणा अवलम्बित है। तब सुख मिले कैसे? दुःखोंसे छुटकारा पाना हो तो हमें भगवान्‌में ही सुख मानकर दृढ़ताके साथ भगवान्‌पर तथा उनकी कृपापर विश्वास करना होगा, उनकी शरणागति स्वीकार करनी होगी, उनपर सर्वथा निर्भर हो जाना पड़ेगा।

× × × ×

अपुनपौ आपुनही बिसर्‌यौ। जैसे स्वान काँच-मंदिर मैं भ्रमि-भ्रमि भूकि मर्‌यौ॥
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि फिर्‌यौ। ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ तसकरि अरि पकर्‌यौ॥
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप पर्‌यौ। जैसे गज लखि फटिक-सिला मैं दसननि जाइ अर्‌यौ॥
मरकट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिर्‌यौ। सूरदास नलिनी के सुवटा कहु कौनैं पकर्‌यौ॥

—हमने अपना ही बन्धन अपने लिये बना रक्खा है—अपने ही मोहपाशमें हम बँध रहे हैं। अपने-आप हम दुःखको बुलाते हैं और फिर रोते हैं। यदि हम अनुभव करें कि हम भगवान्‌के आनन्दसे निकले हैं, आनन्दमें स्थित हैं और भगवान्‌के आनन्दमें ही चले जायँगे तो दुःख रहे ही नहीं। हम अपनी असली चीजको तो भूल गये और जगत्‌के मिथ्या आनन्दमें, क्षणिक सुखमें विश्वास कर बैठे हैं। अनेक-अनेक जन्मसे हम इसी भ्रान्तिके जालमें फँसे हुए हैं—भोगोंमें, दुःखोंमें सुखकी आशा कर रहे हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगतृष्णाकी भाँति भटक रहे हैं। यदि हमें इस गोरखधंधेसे बाहर आना है तो एकमात्र उपाय है—'भगवान्पर विश्वास।'

× × × ×

जब हम स्वयं ठीक हो जायँगे तो हमारे सम्पर्कमें आनेवाले भी स्वतः ठीक हो जायँगे।

तेरे भावैं जो करौ भलौ बुरौ संसार। 'नारायन' तू बैठिकै अपनौ भवन बुहार॥

—किसीको उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं है, किसीकी ओर ताकनेकी भी आवश्यकता नहीं है। हमें तो सबसे पहले अपने-आपको सुधारना है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु जब मस्त होकर कीर्तन करते थे, तब कीर्तनमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि अपनी सुध-बुध खो देते थे। जो भी उनके साथ कीर्तन करता, वह भी अपनी सुध-बुध खो बैठता। इसी प्रकार हमें दूसरेकी बुराइयोंको न देखकर सबसे पहले अपने दोषोंको देखना तथा उन्हें निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। दूसरोंके दोषोंको देखते-देखते जीवन निकल जायगा। न तो अपना सुधार हो सकेगा, न दूसरोंका।

× × × ×

नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण करते रहना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि श्रीभगवान् अत्यन्त कोमलस्वभाव, दीनबन्धु, पतित-पावन हैं। वे सहज ही क्षमाशील हैं। अपनी भूलोंके लिये पश्चात्ताप करते हुए हम उनकी दयालुतापर विश्वास करके उनके शरणापन्न हो जायँ तो वे हमें तुरंत अपना लेते हैं। वे कुछ भी दोष-अपराध नहीं देखते। वे अकारण कृपालु तथा सहज सुहृद् हैं। अतएव उनके शील-स्वभावकी ओर देखकर निरन्तर उनके शरणापन्न हो रहना चाहिये। जहाँतक बने, मनमें सांसारिक वासनाका—इन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाका लेश भी नहीं आना चाहिये। यह बहुत बड़ी बाधा है, इससे सदा बचना चाहिये और सब कुछ भगवान्के अर्पण करके उन्हींकी स्मृतिमें चित्तको अखण्डरूपसे लगाये रखना चाहिये। मनको कभी निराश, उदास, विषादग्रस्त नहीं होने देना चाहिये। भगवान् कहते हैं—'मा शुचः' 'मत शोच कर।' फिर भी यदि हम शोच करते हैं तो दो ही बात हैं—या तो हम शरणापन्न नहीं हैं, या उनपर हमारा विश्वास नहीं है।

× × × ×

भगवान्के हृदयमें रहनेपर कामना-वासनाका वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे धनके प्राप्त हो जानेपर निर्धनताका। तथापि जबतक उस धनका प्रत्यक्ष बोध नहीं हो जाता, तबतक निर्धनता दीखती है। इसी प्रकार हमारे मनमें भगवान्के आ जानेपर भी, उनका मङ्गलमय स्पर्श सदा न होनेके कारण कभी-कभी कलुषित चीजें दिखायी दे जाती हैं, पर वस्तुतः यह कलुष नहीं है। भगवान्की मधुर मनोहर सत्ता ही इस रूपमें दिखायी देती है।

अपनेमें हीनताका बोध तो शुभ लक्षण है। यह प्रेम-साम्राज्यके विशुद्ध भावका एक निदर्शन है—

मिलना और बिछुड़ना जगमें है निश्चय प्रारब्धाधीन।
किंतु चित्तका स्मृति-सम्मेलन रहता नित अन्तरसे हीन॥
बढ़ती रहती ममता प्रतिपल रहता चित्त दिवस-निशि लीन।
होता नित्य-निवास हृदयमें रहती जैसे जलमें मीन॥

× × × ×

बड़भागी वही है, जो भगवच्चरणानुरागी है। अपने भाग्यको कभी कोसना नहीं चाहिये। अधिक-से-अधिक भगवत्प्रेमका रसास्वादन कर अधिक-से-अधिक सद्भाव प्राप्त करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें अपनी ओर देखकर कभी निराश नहीं होना चाहिये। वरं सदा-सर्वदा भगवान्‌की अहैतुकी कृपा तथा प्रीतिकी ओर देखकर परम आश्वस्त तथा निश्चिन्त रहना चाहिये।

सूर्यके सामने जैसे गहरे-से-गहरा अन्धकार नहीं टिक सकता, इसी प्रकार भगवत्कृपाके सामने हमारी कोई भी अयोग्यता नहीं ठहर सकती। भगवान् अकारण सुहृद् हैं। वे हमारी ओर देखकर नहीं, अपने स्वभावसे ही, सहज ही, प्रीति तथा कृपा करते रहते हैं। हमें उनके सहज सौहार्दपर विश्वास होना चाहिये। यह विश्वास ही पात्रता है।

× × × ×

जो भगवान्‌का हो गया, जिसके भगवान् हो गये, उसपर दूसरे किसीका अधिकार-प्रभुत्व-प्रभाव कैसे रह सकता है? तुम अपने मनमें निश्चय करो—प्रभुके रहते तुम्हारे पास पाप, ताप, अशान्ति, जलन, दोष, दुर्विचार, शोक, भय, विषाद आदि आ ही नहीं सकते। इनको ललकारते रहो और दूरसे दीखते ही प्रभुके बलसे तुरंत मारकर इन्हें भगा दो। तुलसीदासजीने 'संसार'से कहा था—

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट आगार॥

× ×

सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार।

× ×

निज हित सुनु सठ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार॥

'अरे संसार! मैंने तुझको अच्छी तरहसे जान लिया है। तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है। मुझे हरिका बल प्राप्त है, इससे अब तू मुझे नहीं बाँध सकेगा। तू अपने सहायकोंके साथ वहाँ जाकर रह, जिस हृदयमें नन्दनन्दन भगवान् न बसते हों। अरे शठ! अपने हितकी बात सुन, कुटुम्ब-परिवारसहित अपनी कुशल चाहता है तो हठ मत कर। (इतनेपर भी यहाँ आया तो सपरिवार मारा जायगा।)'

जिसने अपने हृदयके नेत्रोंसे भगवान्‌के हृदयकी ओर देख भर लिया है, वह भी आनन्दमय, प्रकाशमय हो जाता है—

जिसने देखा कभी हृदय-दृगसे प्रभुके अंतरकी ओर। उसके द्वन्द्व मिटे सारे वह हुआ अमल आनन्दविभोर॥
तमके सभी कारणोंका, तमका हो गया समूल विनाश। मिला उसे आत्यन्तिक निर्मल शीतल सुखद अनन्त प्रकाश॥

× × × ×

भगवान्‌का मङ्गलविधान ही सर्वत्र काम कर रहा है। मनुष्य अपने मनके अनुसार फल प्राप्त करना चाहता है, इसीसे वह निराश तथा दुखी होता है। भगवान् जब जैसी सुबुद्धि दें, तब वैसा काम तो अवश्य करना चाहिये, सुचारुरूपसे; पर आसक्तिरहित होकर; फल भगवान्‌के हाथ छोड़ देना चाहिये। न छोड़नेपर भी तो वह है भगवान्‌के हाथमें ही—अपने चाहनेसे इच्छानुसार फल नहीं मिलता। पर भगवान्‌के मङ्गलविधानपर विश्वास करके उन्हींपर छोड़ देनेसे प्रतिकूल फल होनेपर भी हमें क्षोभ नहीं होता, प्रसन्नता बनी रहती है। सदा प्रसन्न रहनेका यही तरीका है कि हम फल भगवान्‌पर छोड़ दें तथा प्रत्येक फलकी मङ्गलमयतामें अटल विश्वास रक्खें।

प्रेमकी चीज तो इससे भी बहुत ऊँची है। वहाँ तो मङ्गल-अमङ्गल या लाभ-हानिकी कल्पना ही नहीं है। प्रियतम भगवान्‌का मनोरथ ही अपना मनोरथ है। सदा, सर्वत्र, सब दिशाओंमें आनन्द-ही-आनन्द,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस-ही-रस है। कहीं दुःख, क्लेश, विषाद, भय, चिन्ताको स्थान ही नहीं है। बार-बार इन पंक्तियोंको दोहराते रहो तथा इनके अनुसार बननेके लिये प्रयत्न करते रहो—

जीना-मरना आना-जाना रखता कुछ भी अर्थ नहीं। एक तुम्हारे मनकी हो बस स्वार्थ यही परमार्थ यही॥
नष्ट हुए दोके अभावमें भय, चिन्ता, विषाद, मद, मान।

प्रेमीका यही स्वभाव होता है।

× × × ×

भगवान्‌की परम आत्मीयताका तथा उनकी सदा संनिधिका प्रत्यक्षवत् अनुभव करते रहना चाहिये। शरीरके लिये प्रारब्धानुसार जो होना होगा, होता रहेगा। उसकी जरा भी परवा न करके सदा-सर्वदा परम प्रसन्नतामें, अपने भगवान्‌के साथ नित्य सम्बन्धित रहनेमें, परम आनन्दमें मग्न रहना चाहिये। हमलोग शरीर और नामकी क्षुद्र सीमामें रहकर केवल उसीमें अनुकूलता-प्रतिकूलताका मिथ्या अनुभव करते हुए द्वन्द्वात्मक अनित्य मिथ्या सुख-दुःखोंसे ग्रस्त होते रहते हैं। एकमात्र भगवान्‌से सम्बन्ध मान लेनेपर, जो वास्तवमें है, हम इस द्वन्द्वात्मक जगत्‌से ऊपर उठ जाते हैं। फिर इसमें किसी अनुकूलता-प्रतिकूलताका अनुभव नहीं होता; वरं समस्त दृश्यमें सदा एकमात्र अपने भगवान्‌का ही अनुभव होता है। तुम इसका अनुभव किया करो। तुमपर भगवान्‌की अनन्त कृपा है। भगवान् सदा तुम्हारे पास—तुम्हारे साथ रहते हैं, इसमें जरा भी संदेह मत करो। सदा उनके साथ, उनके परमानन्द-सागरमें डूबे रहो।

× × ×

हमारा जिसमें यथार्थ परम हित है, भगवान् हमें उसी परिस्थितिमें रख रहे हैं—यह सदा विश्वास रखना चाहिये। तुम शरीरकी ओर न देखकर अपने सच्चे स्वरूपको देखो कि तुम एकमात्र भगवान्‌की वस्तु हो। शरीरका संयोग भगवान्‌का ही कराया हुआ और उनके इच्छानुसार बरतनेके लिये है। इसका सुख-दुःख भी उनका ही है और सच्ची बात भी यही है कि किसी भी आत्मनिवेदित जीवनका सारा सुख-दुःख भी उन्हींका है। तुम तो बस खेलकी वस्तु हो। हृदय उनका, हृदयकी सारी सुख-दुःखकी अनुभूति उनकी, भोक्ता वे, कर्ता वे। उनको सुख चाहिये तो सुखका निर्माण करें। सबके निर्माण-कर्ता वे ही हैं। जैसा चाहें, बनावें और भोगें। अपने तो हँसना-ही-हँसना है। उनके मनकी क्या अनुभूति है, इसको वे ही जानते हैं। पर यह याद रखना चाहिये कि वे सर्वरूप होते हुए भी अपने प्रेमीके प्रेमरसास्वादनके लिये लालसारूप बने रहते हैं। अतएव प्रेमीका जरा-सा भी दुःख, प्रेमी-हृदयकी जरा-सी भी वेदना उन्हें इतना रुला देती है, उनके हृदयमें इतना भयानक दुःख तथा भयानक वेदनाका निर्माण कर देती है, जिसकी कहीं कोई उपमा नहीं है। इसीलिये यह कहा जाता है कि श्रीकृष्णके वियोगमें राधा जितनी पीड़ित हैं, उनसे अनन्तगुना अधिक श्रीकृष्ण श्रीराधा-विरह-तापसे संतप्त हैं। यद्यपि विरह-पीड़ा, संताप भी सब स्वयं वे ही हैं, पर लीला तो है ही। तत्त्वतः तो श्रीराधा भी वे स्वयं ही हैं।

× × ×

असली स्वस्थता तो है—हमारी नित्य-निरन्तर 'स्व' में—अपने भगवान्‌में स्थिति बनी रहे। क्षणभरके लिये भी भगवान्‌को छोड़कर जगत्‌में स्थिति न रहे। केवल भगवान् हमारे और हम केवल भगवान्‌के ही रहें। उनके सिवा हमारी ममताका सम्बन्ध—असली 'मेरेपन' का सम्बन्ध किसी भी अन्य प्राणि-पदार्थसे है ही नहीं। सबसे व्यावहारिक सम्बन्धमात्र है; नाटकके खेलकी ज्यों है। व्यावहारिक सम्बन्धको लेकर जहाँ जैसा करना आवश्यक है, करना चाहिये, पर वह केवल व्यवहार है। वस्तुतः उसके बनने-बिगड़नेमें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृजन-संहारमें कहीं भी न लाभ है, न हानि; न सुख-दुःख है; न वास्तवमें अपना कुछ भी बनता-बिगड़ता ही है। खेलमात्र है। खेलमें मरण हो या जन्म—दोनोंमें ही समता है। बस, यही भाव बना रहे। केवल भाव ही नहीं, यही वास्तविक सत्य है। इस सत्यका सदा अनुभव करते रहो और हर-हालतमें नित्य-नित्य परमानन्दमें रहो। यह आनन्द ही तुम्हारी सम्पत्ति है, तुम्हारा स्वरूप है—स्वभाव है, इसका बार-बार अनुभव करो। फिर तुम्हें पता लगेगा—तुम्हारे दिव्य अनन्त परम सुखके सामने सुरराज इन्द्रका स्वर्ग-सुख भी तुच्छ है, नगण्य है।

× × ×

यह सर्वथा सत्य है कि भगवान्‌का भजन, भगवान्‌का स्मरण, भगवान्‌में मन-बुद्धिका समर्पण—यह सब भगवत्कृपासाध्य ही है; अपने पुरुषार्थसे यह सब कुछ नहीं होता। परंतु बात इतनी ही समझनेकी है कि 'क्या हमपर भगवत्कृपा नहीं है ?' 'भगवान्‌की कृपा नहीं है' ऐसा सम्भव ही नहीं है। उनकी अपार, अनन्त, असीम कृपा निरन्तर है; हम उसी कृपा-समुद्रमें डूबे रहते हैं। बस, कसर इतनी ही है कि उस नित्य अमित कृपापर हमारे विश्वासमें कुछ त्रुटि है। विश्वास जितना ही दृढ़ होगा और यथार्थ होगा उतनी ही कृपाकी अनुभूति होगी और उतना ही उनका स्मरण अधिक होगा एवं जगत्‌का चिन्तन घटेगा। जगत्‌की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी तभीतक है, जबतक हम जगत्‌के दास बने हुए हैं, अपनेको हमने विषयोंकी गुलामीमें समर्पण कर रक्खा है। जिस क्षण हम भगवान्‌के हो जायँगे, उसी क्षण सारी अनुकूलता-प्रतिकूलता मिट जायगी। भगवान्‌का मधुर स्मरणजनित परमानन्द ही हमारा जीवन बन जायगा। न जागतिक दुःख रहेगा, न सुख। ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा था—

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्। तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः।

—'श्रीकृष्ण! जबतक मनुष्य तुम्हारा नहीं हो जाता, तभीतक राग-द्वेषादि चोर लगे रहते हैं, घर कैदखानेके समान सदा कैदमें बाँधे रखता है और मोहकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं।'

अतः हमें उनकी कृपाका अनुभव करके उनके ही बन जाना चाहिये। यह अनुभव कृपापर विश्वास करनेसे ही हो जायगा।

परिस्थिति कैसी भी हो, उसको भगवान्‌की कृपाके साथ जोड़कर उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये। जगत्‌के प्राणि-पदार्थोंसे कोई आशा रखनी ही नहीं चाहिये।

× × ×

भगवान्‌को आत्मसमर्पण (सम्पूर्ण आत्मनिवेदन) करनेके पश्चात् अपने कुछ भी सोचने-जैसी बात नहीं रहनी चाहिये। भला-बुरा सोचना भी उनको है और करना भी उनको है। अपनेको तो यह भी पता नहीं होना चाहिये कि भला क्या है और बुरा क्या है। सचमुच अभी भी यह पता हमें नहीं है। हम जिसे भली वस्तु मानते हैं, वह बुरी निकल आती है और जिसको बुरी मानते हैं, वह भली साबित हो जाती है। वस्तुतः यह भला-बुरा हमसे कोई सम्पर्क ही नहीं रखता। हमारी आत्मा, हमारे प्राण, हमारा जीवनधन, हमारा जीवनसर्वस्व, हमारा अपना, हमारा पूर्ण ममतास्पद तो वह एक ही है, एक ही रहेगा। बस, यह विश्वास तथा यही सम्बन्ध अटल रहना चाहिये।

तुम ही मेरे प्राण-प्राण हो, तुम हो मेरे जीवनधन।
तुम ही अहंकार-ममता हो, तुम ही हो मेरे मति-मन॥
तुम ही मेरे परम-साध्य हो, तुम ही एकमात्र साधन।
तुम ही मेरे हो अनन्यगति, तुम ही मेरे आनँदघन॥
तुम ही हो सम्पत्ति अतुल, तुम ही हो मेरी कीर्ति-धवल।
तुम ही वर्तमान हो मेरे, तुम ही हो भविष्य उज्ज्वल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम ही हो सर्वस्व---तुम्हीं हो मेरे नित्य पराक्रम-बल ।
तुम ही नित्य रहोगे मेरे, तुम ही मेरे हो केवल ॥

—जिसका भगवान्‌के प्रति यह आत्मनिवेदन तथा अनन्य-सम्बन्धका भाव है, भगवान् सदा उसके हाथों बिके ही रहते हैं, उस अकिञ्चन भक्तके चरण-रज-कणसे अपनेको पवित्र करनेके लिये सदा-सर्वदा उसके पीछे-पीछे चला करते हैं। वे स्वयं यह कहते हैं—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः । (भागवत ११ । १४ । १६)

वे पाप-पुण्य नहीं देखते, वे केवल इतना ही देखते हैं कि 'यह केवल और केवल मुझे ही अपना जीवन-धन, जीवन-सर्वस्व मानता है या नहीं, यह एकमात्र मुझे ही अपनेको पूर्णतया समर्पित कर चुका है या नहीं।'

× × ×

बोध-कथाएँ

(लेखक---श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

(१)

मृत्युशय्यापर पड़े हुए युवकसे उसकी युवती पत्नी-ने पूछा—'मुझे किसपर छोड़े जा रहे हो ?'

युवकने शान्तिसे उत्तर दिया—'जिसपर मैं अपनेको छोड़ रहा हूँ। जो मृत्युपथपर मेरा मार्ग प्रदर्शित करेगा, क्या तुम समझती हो कि वह तुम जीवितकी ओरसे उदासीन हो जायगा ?'

(२)

जिज्ञासु—भक्त ! तुम जो रात-दिन पूजा-पाठ करते थे, उसका फल तो तुम्हें मिल गया । तुम्हारे पास अब धन है, सत्ता है और पुत्र भी तुम्हें प्राप्त हो गया है । अब और क्या चाहते हो जो भगवान्‌के पीछे पड़े हुए हो ?

भक्त—मैं चाहता हूँ कि मेरी बुद्धि सदैव धनके सदुपयोगमें लगी रहे। धनका अभिमान एवं दुरुपयोग न हो । धनहीन होना अभिशाप है, परंतु उससे भी बड़ा अभिशाप धनका अभिमान और दुरुपयोग है । पुत्रहीन होना दुर्भाग्य है, परंतु उससे भी बड़ा दुर्भाग्य कुपुत्रको जन्म देना है। सत्ता बड़े पुण्य-कर्मसे प्राप्त होती है। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि मैं इस सत्ताके बलपर राष्ट्रका सेवक तथा रक्षक होनेके स्थानपर सेव्य तथा भक्षक न बन जाऊँ। तुम स्वीकार करोगे कि सत्ताधारी भक्षकोंकी अपेक्षा सत्ताहीन ही रहना कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

(३)

चीत्कार करती हुई युवतीके आगे उसके पुत्रको खड़ा करते हुए लोगोंने कहा, 'अब जो होना था सो हो चुका । इस लड़केपर आस रक्खो ।'

कुछ वर्षों पश्चात् लड़का भी मर गया । तब चीत्कार करती हुई प्रौढ़ाके आगे उसके पौत्रको रखते हुए लोगोंने कहा, 'अब जो होना था सो हो चुका । अब इस बालकपर आस रक्खो ।'

कुछ वर्षों पश्चात् पोता भी मर गया। तब चीत्कार करती हुई वृद्धासे लोगोंने कहा, 'अब तो भगवान्‌पर ही आस रक्खो । वही सबका बेड़ा पार लगाते हैं ।'

वृद्धा बोली, 'यह सब तुमने पहले ही क्यों नहीं बतला दिया था ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

जैसा कर्म, वैसा फल

रामप्रताप और हजारीमल दोनोंके हिस्सेदारीमें दूकान चलती थी। दोनों राजस्थानके एक ही स्थानके रहनेवाले थे और बराबर थोड़ी-थोड़ी पूँजी लगाकर उन्होंने पूर्व बंगालके एक छोटे शहरमें, जो आजकल पाकिस्तानमें है, रामप्रताप हजारीमलके नामसे एक दूकान की थी। इनमें रामप्रताप बहुत ईमानदार, सच्चा, सबका भला चाहनेवाला तथा सदाचारी पुरुष था और हजारीमल ठीक इसके विपरीत बेईमान, मिथ्यावादी, दूसरोंका बुरा चाहने-करनेवाला, भ्रष्टाचारी-व्यभिचारी था। कारोबार तो ठीक चला, पर दोनोंकी नीतिमें बड़ा अन्तर था। हजारीमलने बेईमानीसे अलग पैसे इकट्ठे कर लिये। वह झूठे जमाखर्च करके दूकानके नफेकी अधिकांश आय हड़प जाता। आखिर रामप्रतापने हिस्सेदारीमें निर्वाह न होते देखकर अलग होनेका प्रस्ताव किया। हजारीमलके पास पैसा था, उसको कोई परवा नहीं थी। अलग-अलग हो गये। पुरानी दूकान रामप्रतापके हिस्सेमें रही। उसकी नगद पूँजी प्रायः खर्चमें समाप्त हो गयी थी। नफेकी रकम तो उस बहीखातेमें हजारीमलकी बेईमानीके कारण बहुत कम ही जमा होती थी। बचा मकान, जो तीस हजारमें रामप्रतापके जिम्मे लगाया गया। रामप्रतापने किसी तरह रुपये हजारीमलको दे दिये। पहलेका लेन-देन भी रामप्रतापके ही जिम्मे लगा। हजारीमलने अलग दूकान कर ली।

पर हजारीमल चाहता था, यह मकान भी रामप्रतापके न रहे। दूकान भी न चले। अतएव उसने वहीं आस-पासके एक बेईमान जमींदारसे साजिश करके उसे चालीस हजार रुपये कर्ज लेनेका एक दस्तावेज रामप्रताप हजारीमलके नामसे उस समयकी तारीखोंका लिख दिया, जिस समय उनकी हिस्सेदारीकी दूकान थी। उसपर स्टाम्प लगाकर रामप्रताप-हजारीमलके नामसे हस्ताक्षर कर दिये। उस समय हजारीमलको दस्तखत करनेका अधिकार था ही। जमींदारसे नालिश करवा दी। उससे तै कर लिया कि 'डिक्री हो जानेपर मकान कुर्क करके नीलाम करा दिया जायगा। जो रुपये मिलेंगे, उसमेंसे पाँच प्रतिशत जमींदारको दे दिये जायँगे' वह राजी हो गया।

नालिश हो ही गयी। हजारीमलने बयान दे दिया। रुपये लेना स्वीकार किया। डिक्री हो गयी। पहलेका लेन-देन रामप्रतापके जिम्मे था ही। रामप्रतापके पास रुपये तो देनेको थे ही नहीं, अतएव उसके मकानपर कुर्की भिजवा दी गयी। नीलामकी तारीख निश्चित हो गयी। उस तारीखतक रुपये न भरनेपर मकान नीलाम हो जायगा। बेचारा रामप्रताप निर्दोष मारा गया। पर उसके भगवद्विश्वासी तथा उदार हृदयने कहा—'यह जो कुछ हुआ या हो रहा है, सब निश्चय ही मेरे अपने ही किये हुए पूर्व कर्मोंका फल है। बेचारा हजारीमल तो निमित्त बना है। पर बुरी नीयतके कारण इस पापका दण्ड उसे मिलेगा। भगवान् उसे क्षमा करें।'

संयोगकी बात या दण्ड-पुरस्कार-विधाता परमात्माके विधानका चमत्कार! मकानके नीलामकी तारीखके पाँच दिन पहले ही रात्रिको हजारीमलके घर भयानक डाका पड़ा। हजारीमलके सिरमें दावकी गहरी चोट लगी। उसका सब कुछ लूटकर डाकू ले गये। सबेरे जब यह खबर सुनी तो रामप्रतापको बड़ा दुःख हुआ। वह हजारीमलके घर गया। उसे उसी अवस्थामें कुछ दूरपर स्थित अस्पतालमें ले गया। अस्पताल जानेपर कुछ चिकित्सा होनेपर उसे होश आया। देखा तो पता लगा कि इलाजकी तथा इलाजके सारे खर्चकी व्यवस्था रामप्रताप कर रहे हैं। हजारीमलको डाक्टरोंने अभी खतरेसे खाली नहीं बताया। इसलिये मैजिस्ट्रेटने आकर उसके बयान लिये। उसके हृदयमें परिवर्तन हो चुका था। उसने डकैतीका सारा विवरण बतानेके साथ, जमींदारके साथ साजिश करके रामप्रतापपर झूठी डिक्री कराने तथा उसके मकानपर कुर्की भिजवानेकी बात स्वीकार करते हुए कहा कि यह सारा मेरे इस पापका ही फल है।

मामला कलक्टरके पास पहुँचा। कलक्टरने उक्त जमींदारको बुलाया। उसने भी सत्य स्वीकार करके कहा कि 'मैंने रुपयेके लोभसे ऐसा किया।' डिक्री कोर्टसे खारिज हो गयी। पर हजारीमल बच नहीं सका। उसने मरते समय रामप्रतापसे क्षमा माँगी। हजारीमलकी इस दशाको देखकर सचमुच ही रामप्रतापको बड़ा दुःख हो रहा था। वह रोने लगा। हजारीमलको आश्वासन दिया और हजारीमलके मरनेके बाद उसकी पत्नी तथा दो बच्चों (एक लड़का, एक लड़की) को अपने घर ले आया। उनका दूकानमें आधा हिस्सा कर दिया। रामप्रतापकी सचाई, ईमानदारी तथा सद्भावनाकी कीर्ति दूर-दूरतक फैल गयी थी। अतः उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूकान खूब चल निकली। व्यापारमें लाभ हुआ। लाभका आधा हिस्सा बराबर हजारीमलकी स्त्री-बच्चोंको मिलता रहा। उनके पास साठ हजारकी पूँजी हो गयी तथा लड़का काम सँभालने लायक हो गया, तब रामप्रतापने उसे अलग दूकान करवा दी। हजारीमलकी भली पत्नी रामप्रतापके उपकारोंको सदा ही बड़ी कृतज्ञतासे बखान किया करती थी। भगवान्ने रामप्रतापपर बड़ी कृपा की और उसने सब तरहसे समुन्नत होकर भगवान्की भक्ति-भावनामें जीवन लगाया। उसके भले लड़के घर-व्यापारका काम करने लगे। —जीवनराम ब्राह्मण

(२)

शिष्टताकी पराकाष्ठा

कुछ समय पूर्व व्यापारके कामसे इंगलैंड और यूरोपके अन्यान्य देशोंकी यात्रा करके लौटे हुए एक आदरणीय सम्बन्धी सज्जनसे सुनी हुई घटना उन्हींके शब्दोंमें नीचे दे रहा हूँ—

इंगलैंडमें मैं दस दिन ठहरा था। व्यापार-सम्बन्धी कामकाज निपटाकर वहाँसे सीधे बम्बई जानेका कार्यक्रम था। अन्तिम दिनोंमें एक संध्याके समय मैं परिवारके लिये कुछ चीजें खरीदने डिपार्टमेंटल स्टोरमें गया। वहाँ विविध प्रकारकी बहुत-सी चीजोंके साथ एक बहुत बढ़िया नाजुक तथा सुन्दर कैमेरा भी खरीदा। कैमेरा बहुत कीमती था, अतएव उसे टेबलपर न रखकर मैंने अपने हाथमें रक्खा और फिर अनजानमें ही उसे पहने हुए लंबे ओवरकोटकी जेबमें डाल दिया। सारी चीजें ज्यों-ज्यों पसंद आती गयीं, लेता गया और साथ-ही-साथ उनका बिल बनता गया। आखिरी पैकिंगके समय हमलोग चीजोंकी गिनती और सँभाल करते हुए बातोंमें लग गये। ड्यूटीवाली बहन हेड केशियरके साथ चुपके-चुपके कुछ बात कर रही थी। तदनन्तर हमारे सारे सामानके साथ एक कैमेरा भी पैक किया गया। बिल चुकाकर मैं डेरेपर पहुँचा।

रातको भोजनके बाद कुछ निकालनेके लिये मैंने खूँटीपर लटकते हुए ओवरकोटकी जेबमें हाथ डाला और जैसे बिजली-सा झटका लगा हो, तुरंत मैंने हाथ बाहर निकाल लिया। हमलोग स्टोरमें बातें कर रहे थे, उस समय पहलेवाला कैमेरा न मिलनेपर उन लोगोंने वैसा ही एक दूसरा कैमेरा दिया था, यह बात याद आयी। पर अब क्या हो? स्टोर बंद हो गया होगा। रातको नींद नहीं आयी। सबेरे टैक्सी करके मैं स्टोरमें गया। ड्यूटीवाली बहन मुझे देखते ही मुस्करायी। कुछ ही देर बाद हेड केशियर बहन भी अपनी जगहसे उठकर वहाँ आ गयी। मैंने ओवरकोटकी जेबसे कैमेरा निकालकर टेबलपर रख दिया और बहुत अफसोस जाहिर करते हुए कहा—"भूलसे अनजानमें ही मैंने इस नाजुक कैमेरेको हाथसे जेबमें डाल लिया था और आपलोगोंने, खो गया समझकर, दूसरा दे दिया। रातको ही मुझे जेबमें यह मिला। मुझे दुःख है कि मैंने आपको कष्ट और मानसिक अशान्ति दी। रातको हिसाब मिलाते समय इस कैमेरेकी कीमतके सम्बन्धमें क्या करना चाहिये—इस विषयको लेकर आपलोगोंके मनोंमें उथल-पुथल जरूर हुई होगी। इतना होनेपर भी इस समय वापस मिल जानेसे आप दोनोंको खुशी हुई है, यह आपके मुखके भावोंसे मैं समझ रहा हूँ।' वे दोनों एक दूसरीकी ओर देखती मुस्कराती रहीं।

कुछ देर बाद हेड केशियर बहन बोली—"भाई साहेब! आप खरीदी पूरी करके बातोंमें लगे थे, उस समय उन बातोंमें ही आपने कैमेरा ओवरकोटकी जेबमें डाल लिया था। इसको ड्यूटीवाली बहनने देखा था। जब पैकिंगके समय मैं कैमेरा ढूँढ़ रही थी, तब आपने देखा होगा, यह बहन मुझे एक कोनेमें ले गयी थी। इसने मेरे कानमें कहा भी था कि 'कैमेरा आपकी जेबमें है और उसे निकलवा लेना चाहिये।' पर आप सोचिये, दूसरे कई ग्राहकों तथा हमारे स्टाफके लोगोंके सामने (चाहे जितनी मृदु वाणीमें कहकर) मैंने यदि आपकी जेबसे कैमेरा निकलवाया होता तो आपको कितना संकोच होता। भले ही आपकी नीयत जरा भी खराब न हो; पर सबके सामने आपकी फजीहत होना आपके लिये बहुत ही दुःखप्रद होता और आप बड़े ही शर्मिंदा हो जाते। यह सोचकर मैंने इस बहनसे कहा कि 'भले ही वह कैमेरा ग्राहककी जेबमें हो, वैसा ही दूसरा कैमेरा देकर पैक कर दो और उसकी रकम मेरे नाम लिख दो। मुझे विश्वास है कि यह आदमी दोनों कैमेरे नहीं रख सकता। पता लगते ही वापस भेजनेकी व्यवस्था करेगा।' यों कोनेमें जल्दीसे बात पूरी करके दूसरा कैमेरा पैक कर दिया गया। देखिये, अब रजिस्टरमें मेरे नाम लिखी कैमेराकी रकम काटी जा रही है।'

उसकी बात सुनकर मैं तो दंग ही हो गया। अपनेको पता होनेपर भी ग्राहकको बुरा न लगे और उसकी प्रतिष्ठामें धक्का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पहुँचे—केवल इसीलिये पाँच हजार (कैमेराकी कीमत) की बड़ी रकमकी जोखिम अपने सिर लेनेवाली इस बहनको मैं वन्दन करता रहा। 'अखण्ड आनन्द'—

—सुबोधचन्द्र कानजी ठक्कर

(३)

त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर

बचपनसे ही मेरे हृदयमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और माता सीताके प्रति प्रेम था, परंतु अबोध एवं अल्पज्ञ होनेके कारण उपासना-अर्चना करनेमें समर्थ नहीं था। कालान्तरमें मेरी रुचि सांसारिक मोह-मायाके प्रति अधिक हो गयी। लेकिन प्रभुने मुझे तुरंत सचेत कर दिया। मैं हाईस्कूलकी परीक्षामें दो बार अनुत्तीर्ण हुआ और इस असफलतासे मेरे जीवनमें एक नया परिवर्तन हुआ। मैं परीक्षामें असफल होनेपर इतना उदासीन एवं निराश हो गया था कि मुझे जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा था! अधिक दुखी होनेपर मेरे मनमें अकस्मात् यह भाव उत्पन्न हुआ कि 'मुझे भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये, तभी मेरी कामना पूर्ण होगी।' इस विचारके अनुरूप मैंने प्रभुकी उपासना करना आरम्भ किया और इतना दृढ़ संकल्प किया कि नित्य-क्रियाके उपरान्त उपासना करनेके बाद ही जल ग्रहण करता था। इस पुनीत कार्यके शुभारम्भके बाद मेरे मनमें फिर हाईस्कूलकी परीक्षा देनेकी तरङ्ग उठी। मैंने तीसरे वर्ष फिर परीक्षा दी। इस बार प्रभुकी असीम अनुकम्पासे मैं द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हो गया। इस सफलतासे मेरे अन्तस्‌में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा माता सीताके प्रति पवित्र पितृ-मातृभावकी अनन्य निष्ठा सम्भूत हुई। हाईस्कूलके बाद आगेकी शिक्षाके हेतु विचार करने लगा। इसी बीच मेरी माताका आकस्मिक निधन हो जानेसे मेरी शिक्षामें महान् बाधा उपस्थित हुई। इस विषम परिस्थितिमें भी प्रभुने अपूर्व सहायता की और मेरी प्रगतिका द्वार खोल दिया। मैंने प्रभुकी कृपासे इंटर प्रथम वर्षकी परीक्षा दी ही थी कि इसी समय मेरे पिताजी एक भयानक रोगसे पीड़ित हो गये। उनकी दशा बहुत ही गम्भीर होती गयी। मैं उनके जीवनसे निराश हो गया था। अब केवल भगवान्‌का ही सहारा था, उन्हींकी कृपाका भरोसा था। मैं रात-दिन प्रभुका आह्वान आर्तस्वरोंमें करने लगा। प्रभुने मेरी प्रार्थना सुन ली और तुरंत मेरे पिताजीको आराम होने लगा एवं धीरे-धीरे पिताजी स्वस्थ हो गये, जब कि उस भयानक रोगसे डाक्टर भी हताश हो गये थे। पिताजीके स्वस्थ हो जानेपर मैंने किसी तरह एफ्० ए० पास किया। अध्ययनकालमें इसी बीच प्रभुकी कृपासे विद्यालयमें सम्पन्न होनेवाले चुनावमें भी मैं विजयी हुआ। इंटर करनेके बाद बिना किसी कठिनाईके प्रभुने मुझे माध्यमिक विद्यालयमें शिक्षक नियुक्त करवा दिया। उनकी कृपाका मुझे अब पूरा भरोसा था। मेरा जीवन 'सीय राम मय' बनने लगा। दिनोंदिन मेरी आस्था श्रीचरणोंके प्रति दृढ़ होती गयी। शिक्षणकालमें ही मेरे मनमें स्नातक (बी० ए०) की परीक्षा पास करनेका भाव जाग्रत् हुआ। मैंने भगवान् श्रीरामजीके सहारे बी० ए०की परीक्षा दी और उसमें भी उत्तीर्ण हुआ। इसी शृङ्खलामें मैंने स्नातकोत्तर (एम्० ए०) की भी परीक्षा उत्तीर्ण की। वाञ्छित शिक्षा प्राप्त हो जानेपर प्रभुके प्रति मेरा अनुराग बढ़ता ही गया। सब सुख और शान्तिके प्राप्त होनेपर भी निःसंतान होनेसे कुछ चिन्ता बनी रहती थी। घरमें संतानका मुँह देखनेके लिये सभी लालायित थे। इस इच्छाको भी मैंने परम पिता और माताके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया। उन्होंने मुझे विशेष दुखी समझकर एक पुत्र और एक पुत्री प्रदान की, जिससे मेरे घरमें प्रकाश हो गया। प्रभुकी इस अपार देनसे मेरे परिवारके सभी सदस्य तथा हम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और माता सीताके बहुत ही अनुगृहीत तथा ऋणी हो गये हैं। अयोध्या मेरा एकमात्र तीर्थस्थान हो गया है और अवधराज मेरे परम आराध्य हो गये हैं। आज जो मैं थोड़ी-बहुत साहित्य-सेवा कर रहा हूँ, यह सब उन परम पिता और माताकी ही कृपा है। मैं आज प्रतिपल प्रति पगपर प्रभुकी कृपाका अनुभव कर रहा हूँ। कठिन-से-कठिन कार्य प्रभुकी ही कृपासे सम्पन्न होते जा रहे हैं।

अब मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि दृढ़ आस्थाके साथ भगवान्‌का भजन एवं गुणगान किया जाय तो सभी संकट दूर हो सकते हैं।

अटूट श्रद्धाके साथ प्रभुकी उपासना करनेपर उसका फल बहुत ही चामत्कारिक तथा श्रेष्ठ होता है। निरन्तर ११ वर्षोंसे मेरा यह अनुभव होता आ रहा है कि बिना प्रभुकी कृपाके मानवका कल्याण सम्भव नहीं और न मनुष्य-जीवनमें वह सुख ही प्राप्त कर सकता है। अतएव समस्त सिद्धियों तथा सुख-शान्तिके लिये अपार श्रद्धा और विश्वास-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा जगज्जननी माता सीताके युगल पदाम्बुजोंकी सतत उपासना करनी चाहिये। यही जीवनका परम लक्ष्य है, जैसा कि पूज्य गोस्वामीजीने अपने 'रामचरितमानस'में लिखा है—

'साधन सिद्धि राम पग नेहू'

—देवीप्रसाद पाण्डेय 'अडिग' एम्० ए० 'गीतकार'

(४)

विद्यासागर—दयासागर

चारों ओर अंधकार छाया था। रातके लगभग दस बजे थे। बंगालके विद्यागुरु और विख्यात विद्वान् श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक परिचित गलीसे जा रहे थे। इसी बीचमें उनके कानोंमें किसीके रोनेकी आवाज आयी। विद्यासागरको आवाज करुणापूर्ण प्रतीत हुई। उनका मृदुल हृदय धड़कने लगा और उनके मनमें दुःखकी तरङ्गें उठने लगीं। वे कुछ क्षण तो वहाँ खड़े रहे, फिर जिस घरसे आवाज आ रही थी, उन्होंने वहाँ जाकर घरकी साँकलको खड़खड़ाया। दरवाजा खुला।

ईश्वरचन्द्र भीतर गये। मकान जर्जरित था। बातोंसे पता लगा कि वह घर एक गरीब ब्राह्मणका था, वही रो रहा था।

विद्यासागरने पूछा—'दादा, रो क्यों रहे हो ?'

दादाने विद्यासागरकी ओर देखा, फिर सिर पीट लिया। कुछ देर बाद सारे शरीरको हचमचाकर उसने कहा—'भाई ! दूसरेके दुःखको जानकर आजके आदमी प्रसन्न होते हैं।

आप भी मेरा दुःख जानना चाहते हैं···'

'दादा ! आपकी छातीपर हाथ रखकर कह रहा हूँ कि मैं सचमुच आपका दुःख जानना और समझना चाहता हूँ। भगवान्से तो बड़ा कौन है ? परंतु मनुष्यसे यदि एक मनुष्यका दुःख हल्का हो सकता होगा, तो मैं हृदयसे प्रयत्न करूँगा।'

'सचमुच !' बूढ़ा ब्राह्मण आये हुए इस आदमीकी संस्कार-ज्योतिसे नमित हो गया। उसके सूखे होठ तथा गहरी अंदर धँसी हुई आँखोंमें हास्य छा गया। मिट्टीके दीपककी ज्योति भी जरा सजीवन-सी दिखायी दी।

'अच्छी बात है, मैं अपना दुःख आपको सुनाकर हल्का तो हो जाऊँगा।'

'मुझसे हो सकेगा तो मैं आपके दुःखको दूर करनेका प्रयत्न करूँगा।'

'यह तो ठीक है''हो या न हो''परंतु मेरी बात सुनकर बहुत-से लोगोंकी तरह आप खुश होंगे तो—'

'ऐसा माननेकी क्या जरूरत है, दादा ?' विद्यासागरने कहा।

दादामें हिम्मत आयी। रोते-रोते उसने कहा—'एकमात्र लड़कीके विवाहके लिये सराफसे तीन सौ रुपये लिये थे। वापस न लौटा सका, इसलिये सराफने नालिश कर दी और अब उस नालिशके परिणामस्वरूप यह टूटा-फूटा घर भी जा रहा है। क्या करूँ ? रो-रोकर दिन निकाल रहा हूँ। अगली सातवीं अगस्तको मुझे रकम भरनी है। नहीं तो मेरा सारा आधार ही चला जायगा और कदाचित् उस दिनके बादमें भी इस दुनियामें न रहूँ। ईश्वरके धाममें पहुँच जाऊँ।'

विद्यासागरने लंबा श्वास लिया। गरीब ब्राह्मणके हृदयमें अभी भी जीवनकी आशा थी। विद्यासागरने सोचा—फिर उन्होंने मुकदमेकी रकम, तारीख, नालिश करनेवालेका नाम, दादाका नाम तथा कोर्टकी सारी जानकारी धीरे-धीरे दादासे प्राप्त कर ली और दादाको आश्वासन देकर विदा हो गये।

वृद्ध गरीब ब्राह्मणको तो कुछ भी आशा नहीं थी, पर जब सातवीं अगस्तको वह कोर्टमें गया, तब पता लगा कि मुकदमा वापस उठा लिया गया है। ब्राह्मणको आश्चर्य हुआ। ब्राह्मणके नामपर कोई तीन सौ रुपये भर गया था। ब्राह्मणके नेत्रोंसे हर्षके आँसू ढलक पड़े और मन-ही-मन उसने रकम भरनेवालेको आशीर्वाद दिया। यह रकम कहाँसे आयी, ब्राह्मण इसका पता लगाने लगा। पीछे मालूम हुआ कि रकम भरनेवाले थे—बंगालके विद्वान् विद्यागुरु ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और तभी ब्राह्मण यह जान सका कि उस दिन रातको हृदयकी सहानुभूति देने तथा टूटे-फूटे घरमें आनेवाले वे ही महापुरुष थे। वृद्ध ब्राह्मणके हृदयमें हर्षकी तरङ्गें उछलने लगीं। 'अखण्ड आनन्द।'

—नटवर मेवाड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

मानवता लज्जित हो जाती

सन् १९६१ में मेरा स्थानान्तरण हाईस्कूल रेनवालसे भैसलाना हा. से. स्कूलमें हुआ। वहाँसे रिलीव होकर आया तब कुछ टेस्टोंकी कापियाँ जाँचकर वापिस देनी थी। स्कूल छुट्टियोंके बाद खुला था। उसी दिन मुझे वापिस देने जाना था। मैं ८ बजे रातकी गाड़ीसे सवार हुआ, जो फुलेरासे रिवाड़ी जाती है। गाड़ीमें जगह नहीं मिली। कारण यह था कि पुष्करका मेला चल रहा था। मैं गाड़ीका पायदान पकड़कर लटक गया। मेरे पास थैलेमें बोझा था। मेरे साथ दो-तीन आदमी और लटक रहे थे। गाड़ीमें जगह नहीं थी। भीड़ अत्यन्त थी। खिड़कीके शीशोंमेंसे अंदरके यात्री दिखायी पड़ रहे थे। मैं जोर-जोरसे कह रहा था, 'हमें अंदर आने दो। हमारे पास बोझा है, हाथ छूट जायँगे।' लेकिन अंदरके यात्री हँस रहे थे। एक सफेद साफा बाँधे तथा कुर्ता पहिने सज्जन जो अगले स्टेशनके रहनेवाले वयोवृद्ध संन्यासी थे, पुष्कर जाकर आये थे। खिड़की खोलकर मेरे हाथ और कमरको पकड़कर अंदर खींचकर यात्रियोंपर डाल दिया और यात्रियोंसे बोले 'इन्हें अंदर न आने देते, तो हाथ छूट जाते, तीर्थयात्रा करके आये हो! क्या इस पापसे मानवता लज्जित नहीं होती?' डिब्बेके यात्री सचमुच लज्जित थे। काश, देशमें यह मानवीय संवेदना होती।

—राधेश्याम कौशिक प्राध्यापक, राजनीतिविज्ञान

(६)

ईमानदारी

एक बार पेटलादकी एक मिलका इंजिन बिगड़ गया। मिल स्वीजरलैंडकी बनी हुई थी। अतः इंजिन सुधारनेके लिये कम्पनीकी ओरसे एक सज्जन आये और दूसरे दिन सबेरे साढ़े छः बजे ही कपड़े बदलकर हथौड़ा लेकर वे काममें लग गये। उनके काम करनेकी लगनको देखकर मिलमालिकको बड़ी खुशी हुई और उन्होंने सोचा कि 'इस आदमीको कुछ पैसे अलगसे दे दिये जायँ तो यह और भी ज्यादा काम करेगा जिससे मिल जल्दी चालू हो जायगी।' यों सोचकर उससे एकान्तमें कहा कि 'आप यदि रातको भी काम करेंगे तो मैं आपको अतिरिक्त कामका वेतन और दूँगा।' उन इंजिनीयरने उत्तरमें कहा—'हाँ, मैं काम तो जरूर करूँगा, पर वेतन नहीं ले सकता। आप इसके लिये हमारी कम्पनीको लिख दीजियेगा। यों मेरी ड्यूटी तो आठ घंटे काम करनेकी है, पर यहाँ तो चौबीस घंटेके लिये भेजा गया हूँ।'

मिलमालिक यह उत्तर सुनकर चकित रह गये। कहाँ स्वीजरलैंड? कहाँ कम्पनी? इसपर भी इस आदमीके मनमें कितनी ईमानदारी भरी है। इस ईमानदारीको ही सच्चा धर्म समझना चाहिये। आज अपने यहाँ यह ईमानदारीकी पूँजी समाप्त होती जा रही है, इसीसे सरकारको घूस-रिश्वत रोकनेके लिये एक विभाग खोलना पड़ा है। फिर, यह विभाग रिश्वत न ले, इसकी देख-रेखके लिये अफसर रखने पड़े हैं, परंतु ये अफसर भी घूस-रिश्वत या बकसीस न लें—इसकी रेख-देख कौन रक्खेगा?

'अखण्ड आनन्द' —लहरी

(७)

गुरुजनोंकी आलोचना

एक बार महात्मा गाँधीके एक पुत्रने गाँधीजीकी आलोचना की। गाँधीजीने अपने इस पुत्रको पत्र लिखा कि 'उसने अपने पिताकी आलोचना करके पाप किया है। एक पुत्रको अपने पिताकी आलोचनाका कोई अधिकार नहीं है।' जब लव-कुशने राजा श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञके अश्वको वनमें पकड़ लिया और लक्ष्मणजीके पुत्रश्री उसे छुड़ाने गये तथा श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा वर्णन करने लगे। उस समय लव-कुशने कहा कि क्या श्रीरामचन्द्र वही हैं, जिन्होंने अपनी धर्मपत्नीको निकाल दिया, इत्यादि। इसपर श्रीलक्ष्मणजीके सुपुत्रने उत्तर दिया कि बड़ों (गुरुजनों) के व्यवहार एवं चरित्र आलोचना-योग्य नहीं होते।

विगत सप्ताह मैं अपने एक सम्माननीय मित्रसे मिलने गया। वे अनुपस्थित थे। उनके पुत्र मिले। मैंने उनसे कहा कि 'आपके पिताजीका स्वभाव विचित्र है।' (वस्तुतः मेरा ऐसा कहना उचित न था।) मित्रके पुत्रने मेरी टिप्पणीका उत्तर न देकर प्रसंगको एक प्रकारसे टाल दिया। मैं उस पुत्रकी शिष्टतासे बड़ा प्रभावित हुआ और इसके लिये अपने मित्रको बधाई देता हूँ। आजकी दूषित अवस्थामें ऐसे पुत्र भी बधाईके पात्र हैं।

—सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थना तथा विशेष निवेदन

(१) इस बार 'कल्याण'—विशेषाङ्कके प्रकाशनमें बहुत अधिक देर हो गयी । इससे 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको जो कष्ट हुआ, बार-बार पत्र लिखने पड़े, इसका हमें बहुत खेद है । यह अप्रैलका अङ्क भी देरसे ही जा रहा है । तैयार तो पहले ही हो गया था, परंतु विशेषाङ्कके अजिल्द तथा सजिल्द अङ्क रजिस्ट्री तथा वी० पी०से सारे ग्राहकोंकी सेवामें गत ७ मईतक ही भेजे जा सके । सजिल्द अङ्क तैयार कम हो पाते थे तथा पाँच हजारसे अधिक एक दिनमें डाकसे जाते भी नहीं । पौने दो लाखके लगभग रजिस्ट्री तथा वी० पी० जानेमें काफी समय लग जाता है । इसीसे अप्रैलका अङ्क भी देरसे जाना शुरू हुआ; अब वी० पी० के रुपये ज्यों-ज्यों आते जायँगे, त्यों-ही-त्यों यह अङ्क सेवामें भेजा जाता रहेगा । इस विलम्बके लिये हम करबद्ध क्षमा-प्रार्थी हैं ।

(२) 'कल्याण'में काफी घाटा है, यह बात पहले बतायी जा चुकी है । लेकिन इस बार 'कल्याण' के १,६५,००० अङ्क छापे जा रहे हैं । लगभग डेढ़ लाख पुराने ग्राहक थे; उनमेंसे कुछ घटे हैं तो कुछ बढ़े हैं । लगभग दस हजार नये ग्राहक और बन जायँ तो सारे अङ्क निकल जाते हैं । आजकल प्रतिदिन ही नये ग्राहकोंकी काफी माँग आ रही है, इससे आशा है हजारों नये ग्राहक बन जायँगे; पर यदि हमारे लाखों पाठक तथा ग्राहक थोड़ी-सी मनसे चेष्टा करें तो १०-१२ हजार नये ग्राहक बहुत शीघ्र बन सकते हैं । अतः हमारा विशेष निवेदन है कि वे इस ओर ध्यान देकर विशेष चेष्टा करके दस-बारह हजार नये ग्राहक तुरंत बना दें और प्रत्येक ग्राहकसे ९.०० वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजवानेकी कृपा करें ।

विनीत—व्यवस्थापक—'कल्याण'

'कल्याण'के समस्त पाठक-पाठिकाओंसे विशेष अनुरोध

'कल्याण'के समस्त ग्राहकों तथा पाठक-पाठिकाओंसे विनम्र विशेष अनुरोध है कि यथासाध्य नीचे लिखे अनुसार आचरण करके 'कल्याण'के सच्चे प्रचारमें सक्रिय सहायक बनें तथा अपना एवं देशका यथार्थ कल्याण-साधन करें—

(क) मनमें कभी हिंसा, द्वेष, असत्य, चोरी-ठगी, अभिमान, असंयम तथा अनाचार-व्यभिचार आदिके एवं अनर्थ-व्यर्थके विचार न आने दें; सदा सद्विचार तथा सद्भावोंका मनन करें; भगवत्सेवाके भावसे प्राणिमात्रके हितकी बात ही सोचें और जहाँतक बने, नित्य-निरन्तर भगवान्के नाम-रूप-तत्त्वका स्मरण करते रहें ।

(ख) वाणीसे कभी हिंसा, असत्य, चोरी-ठगी, दूसरेके हितका नाश करनेवाले, अभिमानपूर्ण, अपमानजनक, सदाचारविरोधी, कठोर, मिथ्या तथा अनर्थ-व्यर्थ शब्दोंका उच्चारण न करें । सदा-सर्वदा सबको सुख देने तथा सबका हित सम्पादन करनेवाले सत्य, मधुर, हितकर, विनयपूर्ण शब्दोंका ही उच्चारण करें; व्यर्थ बात न करें । अनावश्यक न बोलें और जहाँतक हो—अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-गुणका जप-कीर्तन करते रहें ।

(ग) शरीरसे किसीका अहित, हिंसा, चोरी-ठगी, अवैध आचरण, अनर्थ तथा व्यर्थ कार्य न करें । आलस्य छोड़कर विनयभावसे यथायोग्य सेवा, श्रम तथा भगवत्पूजाके भावसे सब कर्म करें ।

यों मन-वचन-तनसे होनेवाले प्रत्येक पवित्र कर्मको भगवत्सेवा बना दें ।

विनीत—सम्पादक 'कल्याण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राज० सं० एल० १०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगीता एवं श्रीरामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षाका प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाओंके लिये स्थान-स्थानपर लगभग ५०० केन्द्र भी स्थापित हैं तथा और भी नियमानुसार स्थापित किये जा सकते हैं।

आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क २२ व २३ नवम्बर, १९७० को एवं रामायणकी परीक्षाएँ दिनाङ्क २४ व २५ जनवरी, १९७१ को होनेवाली हैं। केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदन-पत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थना-पत्र दिनाङ्क ३० अगस्त, १९७० तक भेज देनेकी कृपा करें।

विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन,**
पो० स्वर्गाश्रम, मार्ग-ऋषिकेश (पौड़ी-गढ़वाल) उ० प्र०

प्रकाशित हो गयीं !!

दो नयी पुस्तकें !

श्रीराधा-माधव-चिन्तन—परिशिष्ट

(ग्रन्थकार—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आकार डिमाई सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २४०, श्रीराधामाधव-युगलका सुन्दर तिरंगा चित्र, श्रीराधामाधवके चित्रसे विभूषित आकर्षक रंगीन मुखपृष्ठ, मूल्य २.००, डाकखर्च १.१०।

यह पूर्वप्रकाशित 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'का ही एक अंश है। यदि उस पुस्तकके नवीन संस्करण होनेका अवसर प्राप्त हुआ होता तो यह भाग भी उसीमें सम्मिलित कर दिया जाता; परंतु उसके प्रकाशनमें विलम्बकी सम्भावना देखकर इस अंशको 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन—परिशिष्ट'के नामसे प्रकाशित किया गया है। इसमें वि० सं० २०२१ से वि० सं० २०२६ तकके श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर दिये गये पाँच प्रवचन और अन्तमें 'श्रीराधामाधव-जय-जयकार' शीर्षक एक पृष्ठका छोटा-सा मधुरिमामय पद्य तथा सं० २०१९ वि०से सं० २०२६ वि० तकके श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सवपर दिये गये आठ प्रवचन—यों कुल चौदह प्रवचन संकलित हैं। इसकी भाषा बड़ी ओजस्विनी तथा चित्ताकर्षक है। पढ़नेसे हृदयमें श्रीराधा-माधव-विषयक प्रेम-आनन्दकी गुदगुदी उत्पन्न कर देती है। आशा है, प्रेमी जनता इस संग्रहसे भी पूर्ववत् लाभ उठायेगी।

जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग

(लेखक—स्वामी श्रीरामसुखदासजी)

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४४, मूल्य २० पैसे, डाकखर्च १० पैसे।

स्वामीजी गीताके मर्मज्ञ व्याख्याता हैं। गीता-ज्ञानार्णवमें डुबकी लगाकर इसके अमूल्य रत्नोंको जनतामें वितरण करते रहना इनका स्वभाव बन गया है। इन्हींके पाँच लेखोंका इस पुस्तिकामें संग्रह किया गया है। इसके 'सभी कर्मोंका नाम यज्ञ है' शीर्षक प्रथम लेखमें गीतोक्त निष्काम कर्मका मर्म, यज्ञका रहस्य तथा भगवत्पूजाका विधान बड़ी ही सहज, सरल भाषामें समझाया गया है। द्वितीय लेखमें मालिक और कर्मचारीके पारस्परिक सम्बन्धपर प्रकाश डाला गया है। तीन और छोटे-छोटे रहस्यपूर्ण लेख हैं। [illegible]के अत्यन्त उपयोगी तथा परम पवित्र भावोंपर ध्यान देकर इससे लाभ उठाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4 OCT 1969

वर्ष ४३] * * * * [अङ्क ६

30602

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण १,६०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०२६, जून १९६९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–नन्दलालके विचित्र चरित्र [कविता]	९३७
२–कल्याण ('शिव') ··· ···	९३८
३–एक महात्माका प्रसाद (प्रेषक—श्रीमाधव) ··· ···	९३९
४–परमानन्द [कविता] ··· ···	९३९
५–ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश ···	९४०
६–सत्सङ्गवाटिकाके बिखरे सुमन ···	९४४
७–प्रभुको पूरा अधिकार दे दो [कविता] ···	९४८
८–नारदीय भक्ति (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र) ···	९४९
९–श्रीकृष्ण-कर-कंज (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ··· ···	९५३
१०–दुखियोंके लिये आत्मदान [कहानी] (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	९५६
११–गाँधी-शताब्दीके मङ्गल प्रसङ्गमें गांधी-वाणी ('शिक्षण और संस्कृति'से) ···	९५९
१२–अपने ऐबोंपर नजर कर ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ···	९६१
१३–नित्य भगवान्‌को भजो और उन्हींके मनभाये सत्कर्म करो [कविता] ···	९६३
१४–ब्राह्मण अपनी भंगिन बूआके मकानपर भेंट लेकर गया (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ···	९६४
१५–अमृत-कण [संकलित] (संग्रहकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगरामजी) ···	९६६
१६–मानसिक विकास एवं सत्सङ्गपर एक दृष्टि श्रीजयकान्तजी झा) ···	९६८
१७–परमार्थकी पगडंडियाँ ···	९७१
१८–देशप्रेमी महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना ···	९७४
१९–कः पन्थाः (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)	९७९
२०–हुंडी [कहानी] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ··· ···	९८२
२१–'सत पंच चौपाई मनोहर' (डॉ० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०) ··· ···	९८५
२२–मूल्यवान् जीवन व्यर्थ जा रहा है [कविता] ··· ···	९८७
२३–कामके पत्र ··· ···	९८८
२४–आचार्यदेवो भव (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा, 'श्याम', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	९८९
२५–भारतवर्षमें जातिप्रथासे लाभ ···	९९१
२६–पढ़ो, समझो और करो ···	९९२
२७–'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-अङ्क' ···	९९६

चित्र-सूची

१–सिंहासनासीन गणपति	(रेखाचित्र)	··· मुखपृष्ठ
२–बालक श्रीव्रजचन्द्रकी बालक्रीड़ा	(तिरंगा)	··· ९३७

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.००
विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै०
विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

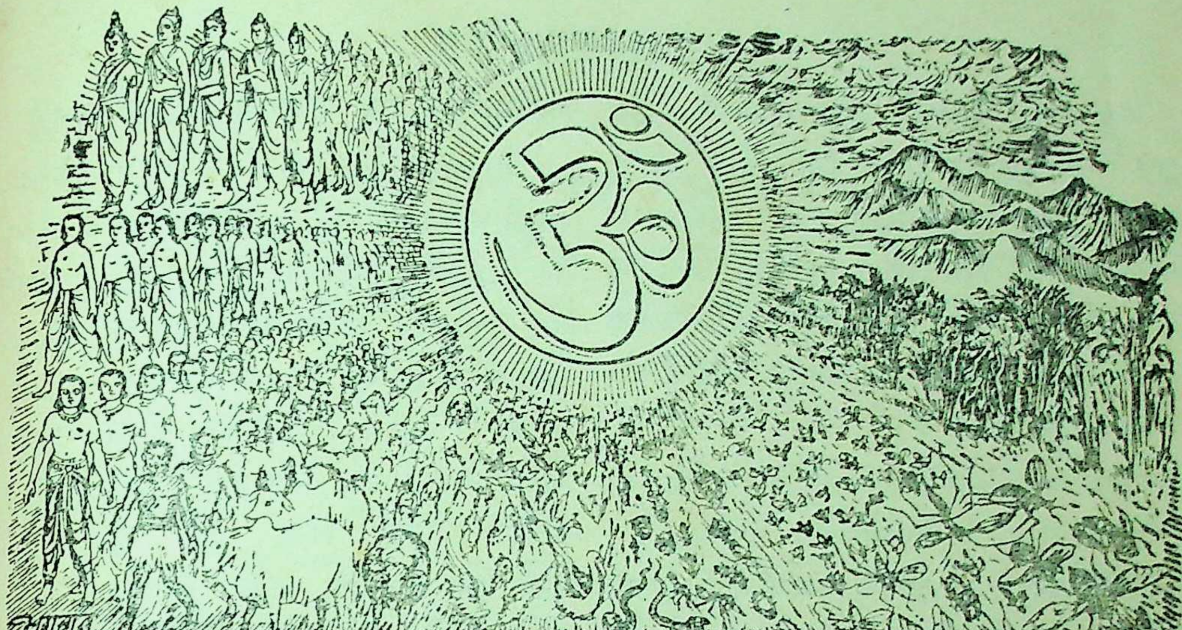

कल्याण

श्रृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ } गोरखपुर, सौर आषाढ़ २०२६, जून १९६९ { संख्या ६ / पूर्ण संख्या ५११

नन्दलालके विचित्र चरित्र

करत विचित्र चरित्र नित परम मधुर नँदलाल ।
बालसुलभ मनमोदमय अति अबोध सजि बाल ॥
खेलत, दौरत, हँसत, लै मधुर सखनि कौं संग ।
बछुरा कौं रोकन चहत पकरि पूँछ करि रंग ॥
जोर करत बहु, रुकत नहिं पै बछुरा बलवान ।
घसिटत ताके सँग चलत भाजत श्रीभगवान ॥
धन्य गोपबालक परम धन्य धन्य गोवत्स ।
जिनके सँग आनँद लहत अनवधि आनँद-उत्स ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—जिसका चित्त अशान्त, सदा क्षुब्ध है, वह चाहे किसी भी ऊँची-से-ऊँची स्थितिमें हो, कभी सुखी नहीं हो सकता। मरते समय अन्तिम श्वासतक उसका चित्त अशान्त रहता है, फलतः वह दुखी ही रहता है और यह अशान्ति तबतक मिट नहीं सकती, जबतक मनमें सांसारिक भोगोंकी—पदार्थों और परिस्थितियोंकी कामना है।

याद रक्खो—कामनाकी उत्पत्ति होती है आसक्तिसे। भोगासक्ति ही भोग-कामनाका उत्पत्तिक्षेत्र है। भोगासक्ति तबतक बनी रहती है, जबतक भोगोंमें सुखकी सम्भावना दीखती है। भोगसुखकी यह आस्था सर्वथा भ्रममूलक ही है; क्योंकि हम देखते हैं कि भोगप्राप्तिकी इच्छा होते ही जलन—दुःख आरम्भ हो जाता है। भोगोंकी प्राप्तिमें दुःख होता है, भोग प्राप्त होनेपर दूसरोंके पास अपनेसे अधिक भोग देखकर दुःख होता है, भोगकी शक्ति न रहनेपर दुःख होता है, भोगनाशमें दुःख होता है और भोगपदार्थोंको छोड़कर मर जानेमें दुःख होता है—इस प्रकार भोगमें दुःख-ही-दुःख है। इनमें सुख मानना सर्वथा भ्रम है। पर यह भ्रम जबतक बना है, तबतक दुःखपरिणामिनी भोगकामना बनी ही रहेगी।

याद रक्खो—जो मनुष्य विवेकके द्वारा अनित्य तथा अपूर्ण भोगोंमें दुःखका अनुभव करता है, उसके मनसे भोगकामना दूर हो जाती है। फिर वह भोगकी प्रतीक्षामें नहीं रहता। उसकी शान्ति तथा सुख भोगाधीन नहीं रहते। वह नित्य अपने आत्माकी शान्तिमें ही स्थित रहता है। उसे भोगस्पृहा नहीं होती, भोगोंमें ममता नहीं होती तथा दुःखमय जान लेनेपर भोगप्राप्तिमें अभिमान नहीं होता। इससे उसकी शान्ति स्वाभाविक तथा शाश्वती हो जाती है और फलतः वह नित्य सत्य अपरिवर्तनशील परम आनन्दका अनुभव करता है।

याद रक्खो—किसी भी ऊँचे-से-ऊँचे सम्राट्के पदमें, राष्ट्रकी अध्यक्षताके पदमें, ज्ञान-विज्ञान-ऐश्वर्यकी प्रचुरता तथा तज्जनित यश-कीर्तिमें, विद्या-बुद्धिकी विशालतामें और देवत्व-पदमें भी शान्ति तथा सुख नहीं है, यदि मनमें भोगकामना बनी है। कामना-जगत्में ऐसे पुरुषोंकी कामना विशेष बढ़ जाती है और उन्हें पद-पदपर प्राप्त भोगके नाशका भय, विशेष प्राप्त करनेकी चिन्ता, न मिलनेपर भयंकर विषाद बना रहता है। उनके द्वारा उन प्राप्त भोगोंका दुरुपयोग होता है, उनसे नये-नये अपराध बनते हैं और परिणामस्वरूप उन्हें बलात् अधोगतिमें जाना पड़ता है। अतः प्रत्येक दृष्टिसे भोग-कामनाका त्याग आवश्यक है।

याद रक्खो—कामनाके त्यागका तथा परम शान्तिकी प्राप्तिका बड़ा सहज, सरल और आनन्दपूर्ण साधन है—भगवान्की मङ्गलमयतामें, उनके मङ्गलविधानमें विश्वास। हमारे लिये जो कुछ भी फलविधान होता है, वह उस नियन्त्रण करनेवाली भोगविधायिनी भागवती शक्तिसे होता है। वह भागवती शक्ति भगवान्की सहज करुणासे पूर्ण होती है, अतएव उसका प्रत्येक विधान करुणामय भगवान्के जीवमात्रके प्रति रहनेवाले सहज सौहार्दसे सम्पन्न होता है। हमारे उन सहज परम सुहृद भगवान्की कृपासे हमारे लिये जो कुछ भी विधान होता है, वह निश्चय ही परम मङ्गलमय है। दीखनेमें कहीं भयानक दीखनेपर भी हमारा निश्चित परम कल्याण करनेवाला है। यह विश्वास होते ही परम शान्ति मिल जाती है और जहाँ शान्ति आयी कि वह परम सुख अपने-आप प्रकट हो जाता है, जो नित्य सत्य अखण्ड और असीम है।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

(प्रेषक—श्रीमाधव)

सुख-दुःखसे अतीतके जीवनकी खोज

प्राप्त परिस्थितिके सदुपयोगसे साधक परिस्थितियों-से परेके जीवनमें प्रवेश कर सकता है । उस जीवनमें किसी प्रकारकी विषमता, अभाव, भय या जडता नहीं है । उस जीवनकी प्राप्ति प्रत्येक परिस्थितिके सदुपयोगसे हो सकती है । इस दृष्टिसे प्रत्येक परिस्थिति साधनमात्र है, साध्य नहीं । साधन-बुद्धिसे प्रत्येक परिस्थिति आदरणीय है । इस दृष्टिसे अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों ही समान हैं । जिस प्रकार यात्री दायें-बायें दोनों ही पैरोंसे चलकर अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचता है, उसी प्रकार साधक अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियोंके सदुपयोग-से अपने अभीष्ट लक्ष्यतक पहुँचता है ।

सुख-दुःख अपने-आप आने-जानेवाली वस्तुएँ हैं । उनमें आबद्ध होना चित्तको अशुद्ध करना है । सुखमें उदारता और दुःखमें त्याग अपना लेनेपर सुख-दुःखका बन्धन स्वतः टूट जाता है । भोगकी रुचिका नाश भोगकी वास्तविकता जान लेनेपर स्वतः हो जाता है । योगकी लालसा भोगकी रुचिका अन्त करनेमें समर्थ है । प्रतिकूलता जीवनमें केवल योगकी लालसाको प्रबल बनानेके लिये आती है । योगकी लालसा भोगकी रुचिको खाकर योगसे अभिन्न कर देती है ।

सुखके आदि और अन्तमें दुःख है । यदि उस दुःखका प्रभाव इतना हो जाय कि सुखकी लोलुपता मिट जाय तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक सुख-दुःखसे अतीतके जीवनमें प्रवेश हो सकता है । सुखकी आसक्ति और दुःखके भयने ही चित्तको अशुद्ध कर दिया है । चित्त शुद्ध करनेके लिये यह अनिवार्य है कि दुःखके महत्त्वको अपना लिया जाय । इससे सुखकी दासता स्वतः मिट जायगी ।

दुःखका भय और सुखकी दासता सुख-दुःखका सदुपयोग नहीं होने देते । अतः दुःखके भय तथा सुखकी दासताका अन्त करना अनिवार्य है । सुखसे अतीतके जीवनकी जिज्ञासा भी सुखके रागको खा लेती है । सुख-दुःखसे अतीतके जीवनका विश्वास भी सुख-दुःखसे सम्बन्ध-विच्छेद करानेमें समर्थ है । उपर्युक्त तीनों बातोंमेंसे जिस साधकको जो सुगम हो, उसे वही अपना लेना चाहिये । किसी एकके भी अपना लेनेसे सफलता हो सकती है ।

—ॐ आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

परमानन्द

सुख-दुःखोंसे रहित भागवत-जीवन ही है 'परमानन्द' ।
प्रभुकी शुभ संनिधि है जिसमें नित्य बनी रहती स्वच्छन्द ॥
इन्द्रिय-मन-मति-चित्त सभी नित रहते प्रभु-सेवा-संलग्न ।
रहता जीवन नित्य दिव्य भगवद्-रस-सुधा-समुद्र निमग्न ॥
रहता नहीं तनिक भी प्राकृत जगका कहीं पृथक् अस्तित्व ।
रह जाता, बस, एकमात्र सच्चिदानन्दमय भगवत्तत्त्व ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

[पुराने पत्र]

(१)

सादर प्रणाम ! आपका पत्र ता० २० । ४ । ५७ का यथासमय मिला । समाचार विदित हुए । आपने मेरी प्रशंसाकी बातें लिखीं, वे नहीं लिखी जानी चाहिये; क्योंकि इसमें मेरा कोई हित नहीं है । मेरे प्रश्नोत्तरको पढ़कर आपको जो कुछ लाभ हुआ है, वह आपकी ही शुभ भावनाका और प्रभुकी अहैतुकी कृपाका फल है; उसमें मेरा कुछ नहीं है । आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) अनुजवधू अपने पतिके बड़े भाईको प्रणाम करे, यह उचित ही है; क्योंकि जो-जो उसके पतिके पूज्य हैं, वे सब पतिके नाते उसके भी पूज्य हैं ।

स्त्रीका गुरु पतिदेव है । इसके अतिरिक्त उसके पतिका गुरु भी पतिके नाते उसका गुरु है ही । इस परिस्थितिमें उसे अलग गुरु बनाना आवश्यक नहीं है । किंतु पतिके गुरुके भी चरणोंका स्पर्श तो किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये, दूरसे ही प्रणाम कर लेना चाहिये; क्योंकि विवाह होनेके बाद स्त्रीको अपने पतिके अतिरिक्त किसी भी अन्य पुरुषके किसी भी अङ्गका स्पर्श नहीं करना चाहिये, यह नियम है । स्त्रीके लिये पतिके सिवा अन्य पुरुषके तेल-मर्दन करना सर्वथा अनुचित है ।

(२) संसार यदि यमपुरीके समान भयानक प्रतीत होता हो तो उससे सब प्रकारके स्वार्थका परित्याग करके उसकी सेवा कीजिये । तब वह आपको वैकुण्ठपुरी-सा प्रतीत होने लग सकता है । अपना चित्त शुद्ध करनेके लिये प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है । परिस्थितिका परिवर्तन करना मनुष्यके हाथकी बात नहीं है । संसार छोड़कर जानेके लिये कोई स्थान नहीं है । जहाँ आप जायँगे, वहाँ आपके मनमें निवास करनेवाला संसार आपके साथ रहेगा ही; क्योंकि राग-द्वेषके रहते हुए संसारसे सम्बन्ध नहीं छूट सकता । एकमात्र प्रभुको अपना मानने और अन्य किसी भी प्राणी और पदार्थ आदिको अपना न मानकर राग-द्वेषसे सर्वथा रहित होनेपर ही संसारसे सम्बन्ध छूट सकता है ।

जिन विघ्न-बाधाओंसे भयभीत होकर आप घर और गाँवको छोड़कर वनमें रहना चाहते हैं, उनकी वहाँ भी कमी नहीं है । विघ्न-बाधाओंका कारण आपके मनमें है, घर-गाँवमें नहीं ।

लोग आपको यदि मिथ्याचारी और ढोंगी बताते हैं तो इसमें अशान्ति और व्यग्रता बढ़नेका कोई भी कारण नहीं है । ऐसे अवसरमें तो अपने प्रभुकी विशेष कृपाका अनुभव करना चाहिये और ऐसा कहनेवालोंका उपकार मानकर उनपर प्रसन्न होना चाहिये; क्योंकि जबतक साधक गीता-रामायणका पाठ करते हुए भी उनके उपदेशपर अमल नहीं करता, वह मान-अपमानमें सम नहीं हो जाता, उसके राग-द्वेष नष्ट नहीं हो जाते, तबतक वह ढोंगी नहीं तो क्या है ? ऐसा अनुभव करके उन चेतावनी देनेवालोंको अपना हितैषी मानना चाहिये एवं अपनेमें किसी भी गुणका अभिमान हीं करना चाहिये । गुणका अभिमान सब दोषोंकी जड़ है । अपने दोषोंको देखना ही उनके नाशका उपाय है । परदोषदर्शन और किसीपर दोषका आरोप—यह साधनमें बड़ा भारी विघ्न है ।

(३) आपने लिखा कि मैंने अभीतक गुरु-मन्त्र नहीं लिया है तो क्या आपने ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेके नाते यज्ञोपवीत भी नहीं लिया है ? यदि न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया हो तो शीघ्र ही ले लेना चाहिये । यदि ले लिया तो गुरुके द्वारा गायत्री-मन्त्र भी आपको मिल ही गया, फिर दूसरा गुरु-मन्त्र लेनेकी क्या आवश्यकता है ? क्योंकि गायत्रीसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है । भाईजी-से नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर देनी चाहिये कि मैंने एक गुरु बना ही लिया है, अब दूसरा गुरु बनानेकी आवश्यकता नहीं है । भगवान् श्रीकृष्ण तो परम गुरु हैं ही। उनको गुरु मान लेनेपर तो अन्य गुरुकी आवश्यकता ही नहीं होती । दूसरे गुरु भी प्रभुसे सम्बन्ध जोड़ देनेके नाते ही तो गुरु माने जाते हैं ।

(४) गीताके दूसरे अध्यायके २२वें श्लोकके सम्बन्धमें जो आपका प्रश्न है, उसपर आपको स्वयं विचार करना चाहिये । उसमें 'आत्मा' पद नहीं है, 'देही' पद है । उसका अर्थ होता है—जिस शरीरका नाश होता है, उसमें रहनेवाला या उसका स्वामी । अतः सर्वव्यापी आत्मा एक शरीरसे निकलकर कहाँ जाता है, यह प्रश्न नहीं बन सकता । जिन शरीरोंके सम्बन्धसे अपरिच्छिन्न सर्वव्यापी आत्मा परिच्छिन्न और एकदेशीय-सा प्रतीत होता है, वे तीन शरीर हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण । उनमेंसे केवल स्थूल शरीरका ही नाश होता है, सूक्ष्म और कारणका नहीं; उन दोनोंका सम्बन्ध रहता है । इसी कारण गीताके १५वें अध्यायके ८वें श्लोकमें कहा है कि जब यह एक शरीरको छोड़कर जाता है, तब मन और इन्द्रियोंको साथ लेकर जाता है ।

'आत्मा बाहर-भीतर सर्वत्र परिपूर्ण है, कोई स्थान खाली नहीं है'— यह बात तो ठीक है, पर शायद यह आपका अनुभव न हो । अनुभव होनेके बाद जब ऐसी वास्तविक स्थिति हो जाती है, तब तत्काल समस्त शरीरोंका सम्बन्ध टूट जाता है; उसे पुनः कहीं जाना नहीं पड़ता । जबतक मोह-ममताके कारण शरीरसे सम्बन्ध है, तबतक ही जाना-आना है ।

(५) रामायणकी चौपाईके विषयमें यह उत्तर दिया जाता है कि राक्षसलोग भयके कारण भगवान्‌का चिन्तन करते हुए मरे थे, इस कारण उनकी शरीरोंमें स्थिति नहीं रही थी, इसलिये वे जीवित नहीं हुए, मुक्त हो गये । किंतु वानर मरे थे राक्षसोंके हाथसे, उनके मनमें श्रीरामसेवाकी वासना थी; वे मुक्ति नहीं चाहते थे, इस कारण वे वहीं रहे और अमृतकी वर्षासे जी उठे । अतः इसमें अमृतकी विषमताका कोई प्रश्न नहीं रह जाता ।

(२)

सप्रेम हरिस्मरण । तुम्हारा पत्र मिला । पहले तुम्हारा जो पत्र आया था, उसका उत्तर दे दिया गया था, पता नहीं तुम्हें किस कारणसे नहीं मिला । मन न लगनेका कारण तो अनुकूल परिस्थितिकी कामना हो सकता है । अतः कामनाका त्याग करना आवश्यक है । पत्रका उत्तर देनेमें विलम्ब तो समय कम मिलनेके कारण हो जाता है, इसमें कोई रहस्य नहीं है । हरेक परिस्थितिमें प्रभुकी कृपा अवश्य रहती है, इसमें कोई संदेह नहीं । इस रहस्यको समझकर साधकको वर्तमान परिस्थितिका सदुपयोग करना चाहिये, उसमें प्रमाद नहीं करना चाहिये । मन तो यन्त्र है, उसका कोई दोष नहीं होता । उसका स्वभाव तो मनुष्यका ही बनाया हुआ है ।

········के पास तुम और····गये, सत्संगकी बातें हुईं सो अच्छी बात है । आपसमें मिलकर परस्पर सत्संगकी चर्चा करनेमें बहुत लाभ है । पर उसमें प्रसन्नताका लोभ रहना हितकर नहीं है ।········का प्रश्न और तुम्हारा उत्तर सुना । कल्याण अर्थात् मोक्ष होनेके बाद किसी प्रकारका भेद उनके लिये नहीं रहता—यह सर्वथा ठीक है । मेरा यह अन्तिम जन्म है—यह मानना बहुत अच्छा है, परंतु किसी प्रकारकी सांसारिक कामना नहीं रहनी चाहिये । केवल कथन-मात्रसे कल्याण नहीं है । जो कोई कामना या आसक्ति रहते हुए मरेगा, उसका पुनर्जन्म अवश्य होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनाका सर्वथा नाश हो जाना ही अन्तःकरणकी शुद्धि है और इसके लिये ही सब प्रकारके साधन हैं। मेरे अधिक सम्पर्कमें रहनेसे भी कल्याण हो जाय— ऐसी बात नहीं है। इसी प्रकार सेवा-विभागमें काम करना भी भावके अनुसार लाभ देता है। बिना निष्काम-भावके वह भी कल्याणका हेतु नहीं है। हरेक साधन निष्काम होनेपर ही कल्याणकारक होता है। कल्याणमें क्रिया या परिश्रमकी प्रधानता नहीं है, न वस्तु या शास्त्रज्ञानकी प्रधानता है। कल्याणके लिये तो निष्काम भाव चाहिये। दृढ़ विश्वास, भगवान्‌की दयाका अनुभव और प्रेम—ये सब भाव हैं। भावके अनुरूप कर्म तो अपने-आप होते रहते हैं। उनमें करनेका अभिमान तो कल्याणमें विघ्न है। करोड़ों रुपये हो जानेका उदाहरण इस विषयमें समीचीन नहीं है, क्योंकि रुपयेका होना तो कर्माधीन है; पर कल्याणका होना कर्माधीन नहीं है।

एक साधक यदि साधनद्वारा कल्याणकी ओर बढ़ रहा है तो उसके जीवनसे दूसरे साधकोंका भी विश्वास बढ़ता है, साधनमें रुचि होती है। उसके सदाचार और भावोंका जन-समाजपर जो प्रभाव पड़ता है, वह साधनरहित जीवनसे नहीं पड़ता। साधनयुक्त जीवनसे यदि वह जीवन्मुक्त हो जाता है तो उसके जीवनसे जो अलौकिक हित होता है और होता रहता है वह लाभ साधन बिना किये ही मुक्त होनेवालेके जीवनसे नहीं हो सकता—यह बड़ा भारी भेद है।

वास्तवमें तो बात यह है कि साधनमें परिश्रम है ही नहीं। जिसे साधन भाररूप मालूम होता है, जो उसको बेगार समझता है, उसने साधनके महत्त्वको नहीं समझा एवं साधन करना भी उसकी समझमें नहीं आया। कल्याणके साधनमें तो आनन्द-ही-आनन्द है। उसमें थकावटके लिये कोई स्थान ही नहीं है; क्योंकि परिश्रमरहित होना ही कल्याणका वास्तविक साधन है। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, चिन्ता-भय—ये तो साधनमें विघ्न हैं। इनके रहते हुए मनुष्य साधनपरायण नहीं हो सकता।

तुम्हारी यह मान्यता बहुत ठीक है कि जबतक अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्रभु-चरणोंमें समर्पित होकर समाप्त न हो जाय, तभीतक झंझट प्रतीत होता है। यह भाव मनहीतक न रहकर अन्तरात्मातक पहुँच जाय तो देरका काम नहीं है। भगवान् तो हर समय सबको अपनेमें लेनेके लिये तैयार ही हैं। इतना ही नहीं, लिये हुए ही हैं। देर तो साधककी ओरसे अहंता-ममताका त्याग न करनेकी है।

········ने जो भगवान्‌की कृपाकी बात बतायी सो उनकी कृपाकी महिमा अपार है। वह निरन्तर साधकको हरेक घटनाद्वारा अपनी ओर आकर्षित करती है। साधक घटनाके परिणामपर दृष्टि न देकर अर्थात् उसके अर्थको न अपनाकर घटनाके चिन्तनमें और सुख-दुःखके प्रभावमें पड़कर अपने जीवनको प्रभुकृपापर नहीं छोड़ता—बस, यही विलम्बका कारण है। कृपानिर्भर साधकका जीवन बदलते देर नहीं लगती। उसके जीवनमें अनुकूलताकी आशा नहीं रहती। वह तत्काल ही निश्चिन्त और निर्भय हो जाता है। भविष्यकी आशा करके वह विरह-व्यथाको दबाता नहीं। विरह-व्याकुलताको शिथिल न करके मनुष्य बहुत शीघ्र प्रभुके समीप पहुँच सकता है। × × × × सबसे राम राम।

(३)

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—

गीतामें जिस 'काम'को भगवान्‌ने नरकका द्वार बताया है, वह है—विषयभोगोंकी कामना। उसका वर्णन गीतामें अनेक स्थलोंपर आया है (गीता १६। २१)। इसके पहले जहाँ कामको अपना स्वरूप बतलाया है (गीता ७। ११), वहाँ उसके साथ विशेषण लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है—'धर्माविरुद्धः'—अर्थात् जो धर्मानुकूल काम है, जो भोग-कामना नहीं है, किंतु धर्म-रक्षाके लिये कर्तव्यबुद्धिसे जो कामना होती है, जिसमें स्वार्थ या भोगकी गन्ध भी नहीं है, वह काम भगवान्का स्वरूप है।

इसके बाद आपके चार प्रश्न और हैं, उनका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) आपकी यह चाह कि इस जीवनको निष्फल नहीं गवाँना है, इस जीवनका सही ध्येय प्रभु-दर्शन है, बहुत ही ठीक है। इस विश्वास और इच्छाको सबल और स्थायी बनाइये। इसकी विरोधी सभी मान्यताओंको त्यागकर सांसारिक भोगकी आशा और दुःखके भयका नाश कर देना ही विश्वासको पुष्ट और दृढ़ करनेमें मदद करनेवाला है।

(२) भोगोंमें सुख है ही नहीं—यह विचारपूर्वक समझकर निश्चय करना चाहिये। बिचार करनेपर यह ज्ञात हो सकता है कि भोगोंमें सुखकी प्रतीति प्रमाद और अज्ञानजनित है। वास्तवमें भोगोंमें सुखकी गन्ध भी नहीं है। भोगोंकी चाहका दुःख पहले हुए बिना तो उसमें सुखकी प्रतीति भी नहीं हो सकती। इन्द्रियोंके साथ इच्छित भोगका संयोग सदैव रह नहीं सकता; क्योंकि सभी भोग क्षणभङ्गुर हैं। भोगोंके अभावकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। उत्तरोत्तर तृष्णा बढ़ती रहती है। अभाव किसीको प्रिय नहीं है, अतः विषयोंसे सुखकी आशा करना सर्वथा प्रमाद है, और कुछ नहीं।

(३) विषयोंसे अलग रहनेका संकल्प इसलिये पूरा नहीं हुआ कि उनका महत्त्व मनसे अलग नहीं हुआ। विषयोंके उपलब्ध रहते हुए ही यदि उनमें सुखबुद्धि न रहे, उनका यथार्थ स्वरूप समझ लिया जाय तो फिर उनका सदुपयोग तो न्याययुक्त होना सम्भव है; किंतु उनमें आसक्ति नहीं रह सकती। विषयोंसे सर्वथा अलग कैसे रहा जा सकता है? कहीं भी रहें, इन्द्रियाँ तो अपना-अपना काम करती ही रहेंगी। देखना, सुनना, स्पर्श करना, स्वाद लेना और गन्धको ग्रहण करना इन्द्रियोंका स्वभाव है। इनकी अनुकूलता और प्रतिकूलतामें सुखी-दुखी होकर राग-द्वेष करना ही बन्धन है। अतः राग-द्वेषका न रहना ही वास्तविक सम्बन्ध-त्याग है।

(४) सांसारिक भोगोंके सुखके बढ़नेकी इच्छा न रहनेपर भी यदि उनको सुरक्षित रखनेकी इच्छा है, मनमें उनका महत्त्व है, उनसे सुखकी आशा है तो सुनी-सुनायी बातोंपर किये हुए पश्चात्ताप और संयमसे रागका समूल नाश नहीं हो सकता, अतः वास्तविक लाभ नहीं होता। इसलिये संयम करना तो अच्छा है, पर न तो संयमका अभिमान अच्छा है और न भोगोंमें सुखबुद्धि रखना ही अच्छा है। संयम स्वतः हो, करना न पड़े, वही सर्वश्रेष्ठ है।

(४)

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। उत्तर इस प्रकार है—

ईश्वर एक ही है। वही निर्गुण है और वही सगुण है। सर्वव्यापी सर्वसमर्थ प्रभु ही श्रीराम, श्रीकृष्ण-के रूपमें समय-समयपर प्रकट हुआ करते हैं। इस रहस्यको समझ लेनेपर दोनों स्वरूपोंकी उपासना एक साथ चलनेमें कोई अड़चन नहीं आती।

निर्गुण ब्रह्मका ध्यान शरीरमें अहंता-ममता रहते हुए होना कठिन है, अतः पहले शरीरसे आत्माको अलग अनुभव करके सर्वव्यापी परमात्माका ध्यान करना चाहिये। परमात्मा जैसा अपने शरीरमें है वैसा ही सबमें है।

शरीर, कुटुम्ब और धनमें आसक्ति इसलिये रहती है कि आप उन सबको अपना मानते हैं एवं उनमें आपकी सुखबुद्धि है। किंतु वास्तवमें इनमें सुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है; क्योंकि ये सदा रहनेवाले नहीं, नाशवान् और क्षणभङ्गुर हैं, इनकी तृष्णा नित्य नयी बढ़ती रहती है एवं तृष्णा रहते हुए सुख और शान्ति कैसे मिल सकती है ? यह समझमें आ जाय या विश्वास हो जाय तो इनमेंसे ममता निकाल लेनेपर इन सबकी आसक्तिका नाश हो सकता है। जबतक आप कुटुम्ब और धनसे सुखकी आशा रक्खेंगे, तबतक इनका मोह और आसक्ति नष्ट नहीं हो सकते।

ईश्वरका निरन्तर भजन-ध्यान करनेमें कोई परिश्रम नहीं है। बल्कि प्रयोगसे मन स्थिर नहीं होता। इसी कारण बलपूर्वक किये जानेवाले साधनमें थकावट आती है और रुचि नहीं बढ़ती। फलतः श्रद्धा भी कम हो जाती है। अतः साधन प्रकृतिके अनुकूल सरल, रुचिकर और विश्वासपूर्वक होना चाहिये।

साधनमें अरुचि और परिश्रम रहते हुए उन्नति नहीं होती। अतः ऐसा विश्वास करना चाहिये कि ईश्वर है और वही मेरा अपना है, वही सर्वस्व है, उसके सिवा किसीसे भी मेरा नित्य सम्बन्ध नहीं है, माना हुआ सम्बन्ध है। यह दृढ़ विश्वास होनेपर प्रभुमें प्रेम होनेसे जो उनका भजन-स्मरण होता है, उसमें थकावट नहीं होती। भगवान्‌में प्रेम होना ही उनकी शीघ्र प्राप्तिका सरल उपाय है। इसमें जो कुछ देर हो रही है, वह साधककी असावधानीसे ही हो रही है। वह जब चाहे संसारसे निराश होकर प्रभुको प्राप्त कर सकता है।

सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१—भजन अखण्डित हो, इसका प्रयास करना चाहिये। पहले अभ्यास करना पड़ता है। अभ्यासमें जबतक पूरा रस नहीं आता, तबतक कुछ बल लगाना पड़ता है। बाहरकी ओर जाती हुई वृत्तियोंको जबरदस्ती रोकना है, दमन करना है उनका। दमनका नाम ही 'तप' है। इसके लिये आरम्भमें कठोर नियमोंका पालन करना पड़ता है।

२—रुचिकी वस्तु बाहरसे कष्टदायक होनेपर भी अन्तरसे सुखदायक होती है। नियमोंके पालनके प्रति रुचि होनेसे उनके निर्वाहमें प्रसन्नता होती है। आरम्भमें जबतक रुचि न हो, तबतक जबरदस्ती करनी पड़ती है—'यह करना ही है, इतनी देरतक अमुक साधन करना ही है।'

३—फलकी प्राप्ति अपने हाथमें नहीं है, किंतु कर्मका सम्पादन जबतक इन्द्रियाँ सशक्त हैं तबतक अपने हाथमें है। इसमें बाधक होता है अपना ही बिना विजय किया हुआ मन। अतः नियम लेकर भजन करना चाहिये। दृढ़ निश्चय होनेपर प्रकृति एवं भगवान् सहायता करते हैं। दृढ़ निश्चय ही तप है और वह करनेकी चीज है। अतएव साधनाकी सिद्धिके लिये इच्छापूर्वक कष्ट सहन करना चाहिये तथा साधना-के नियमोंका कठोरतापूर्वक पालन करना चाहिये।

४—अपने दोषोंको मनुष्य जब स्वयं सहन कर लेता है, तब दोष रह जाते हैं। मनुष्य यदि अपना सुधार चाहता है तो अपने दोषोंको कभी सहन न करे, अपनेपर कभी दया न करे। दूसरेके दोषोंको क्षमा करे, पर अपने दोषोंके लिये अपनेको कड़े-से-कड़ा दण्ड दे। अपने लिये नियम-पालन बड़ा कड़ा होना चाहिये। कड़ाईसे यदि साधनाके नियम पालन किये जायँ तो उसमें प्रारब्ध भी बाधक नहीं हो सकता।

५—भगवान्‌की कृपाके बलको साथ रखकर दृढ़तासे भजनमें लगा रहे तो शुभ-अशुभ कर्मफलसे मुक्ति अपने-आप मिल जाती है।

६—भगवान्‌का सौहार्द साथ हो, वह है ही—'सुहृदं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वभूतानाम्' और अपनी इच्छा हो तो भजनमें कोई भी बाधक नहीं हो सकता। जितने भी कठिनाइयोंके किले हैं, वे भगवान्‌की कृपासे अपने-आप पार हो जाते हैं—**'सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'**

७—भगवान्‌की कृपापर विश्वास हो और दृढ़तासे भजनमें लगा जाय तो भजन होगा ही; कोई भी बाधा भगवान्‌की कृपाके सामने टिक नहीं सकती।

८—साधककी दृष्टिसे भोगका अर्थ है—दुःख और भोगोंकी चाहका अर्थ है—दुःखोंको बुलावा देना। भोग दुःखोंके खेत हैं। दुःखोंके खेतसे सुखकी आशा करना निराशा है।

९—जहाँ प्रकृतिका आश्रय है, वहाँ पूर्ण सुख, पूर्ण शान्ति हो ही नहीं सकती। जबतक प्रकृतिके बदलनेवाले, मिटनेवाले एक दूसरेके विरोधी द्वन्द्वोंमें मनुष्य स्थित है, तबतक वह सुखी नहीं हो सकता।

१०—मनुष्य-जीवनमें एक बहुत बड़ा खतरा है, जो दूसरे जीवनमें नहीं है। दूसरे जीवनोंमें कर्मोंका भोग होता है, वहाँ नवीन पापकर्म नहीं होते। परंतु मनुष्य-जीवनमें नवीन पापकर्म बन सकते हैं और उन्हें भोगना पड़ता है।

११—और सब हानियाँ भरी जाती हैं, पर मानव-जीवनकी व्यर्थताकी, अनर्थताकी हानि कभी भरी नहीं जा सकती।

१२—संत एवं शास्त्र कहते हैं—'घरको घर मत समझो'। पर हम तो बिना हुए घरको भी अपना घर मान लेते हैं। धर्मशालामें दस-पंद्रह दिन ठहर गये तो उसके उस कमरेको अपना घर मान लेते हैं। यह अज्ञान है। अतएव इस अज्ञानको दूर करना चाहिये और 'मेरा संसार, मेरा घर, मेरा परिवार, मेरा गृहस्थ, मेरा आश्रम'—इस प्रकारकी ममता मत करो। हम भगवान्‌मेंसे आये हैं और लौटकर हमें भगवान्‌में जाना है। यह जीवन तो बीचका पड़ाव है। जैसे रेलके डिब्बेमें विभिन्न स्थानोंके व्यक्तियोंका आपसी सम्बन्ध हो जाता है, ठीक वैसे ही हमारा घरके व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध है। हमारा घर रेलका डिब्बा है, मुसाफिरखाना है, धर्मशालाका कमरा है। यही समझकर घरमें, घरके व्यक्तियोंके साथ व्यवहार करना चाहिये। यदि संसार एवं घरको अपना मान लेते हैं तो ममता होती है, राग-द्वेष होता है, पाप होते हैं और दुःख होता है। जिसका जगत् घर नहीं रहता, उसके भगवान् घर हो जाते हैं।

१३—घरको घर न मानकर धर्मशालाका कमरा, मुसाफिरखाना, रेलका डिब्बा मान ले और उसमें ममता न करे—बस, इतना करना है।

१४—जहाँतक हम संसारमें बसे हैं, वहाँतक हम भगवान्‌से अलग हैं। जहाँ हम संसारसे निकले कि भगवान् हमें अपने घरमें बसा लेंगे। उनका घर है—उनका हृदय।

१५—समझदार व्यक्ति वह है जो भगवान्‌को अपना बना लेता है। जगत्‌की कोई भी वस्तु अपनी नहीं है। प्यारी-से-प्यारी वस्तु यह शरीर भी अपना होकर नहीं रहता, छूट जाता है। दूसरेकी वस्तुको अपनी मान लेना मूर्खता ही नहीं, पाप है। जगत्‌की प्रत्येक वस्तु भगवान्‌की है। जबतक हम उन्हें 'अपनी' माने हुए हैं, तबतक हम अपराध करते हैं।

१६—भगवान् हमें 'अपना' बनानेको तैयार हैं और भगवान् मिलते हैं 'अपना' माननेपर ही।

१७—अनुकूलताकी आशा तथा प्रतिकूलताका भय और उसकी अनुभूति साधकके जीवनमें नहीं होनी चाहिये। मनुष्य दुखी क्यों है? प्रतिकूलताकी अनुभूतिसे। मनुष्य ज्यों-ज्यों प्रतिकूलतासे छूटनेका प्रयत्न करता है, त्यों-त्यों प्रतिकूलता उसे अधिक घेरती जाती है; क्योंकि जगत्‌का स्वरूप ही अनित्य एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखमय है। उसमें प्रतिकूलता कभी मिट नहीं सकती।

१८—शुभ और अशुभ—इन दोनोंकी कोई खास परिभाषा नहीं है। हमारा मन अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलताकी धारणासे इन दोनोंकी कल्पना करता है। जब चोर चोरी करने जाता है, उस समय उसके अनुकूल परिस्थिति मिलना, अर्थात् सबका सोये हुए मिलना, आसानीसे ताला खुल जाना आदि परिस्थितियाँ उसकी दृष्टिमें शुभ हैं। पर ये ही परिस्थितियाँ, जिसके घरमें चोरी होती है, उसके लिये अशुभ हैं। इसी प्रकार भोगोंकी ओर जाता हुआ मानव यदि किसी प्रकारसे भोगोंसे वञ्चित कर दिया जाय तो वह उसके लिये अशुभ है कि शुभ? पर वास्तवमें जन्मकी भाँति मृत्यु भी मङ्गलमयी है। चिताकी अग्नि एवं प्रसूतिगृहके दीपकी ज्योतिमें कुछ भी अन्तर नहीं है, दोनों समान हैं। दोनों ही भगवान्‌के स्वरूप हैं। अतएव साधकको शुभ-अशुभकी कल्पनासे ऊपर उठना चाहिये और प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌के मङ्गलमय स्वरूपके दर्शन करने चाहिये।

१९—भगवान्‌को जो अपना मान लेता है, भगवान् उसे स्वीकार कर लेते हैं। भगवान्‌के सब अपने हैं, वे सबके अपने हैं। पर जो भगवान्‌को अपना मान लेता है, भगवान् उसे ही स्वीकार करते हैं। भगवान् स्वीकार करनेके बाद किसीको छोड़ना नहीं जानते। एक बार जो उन्हें अपनेको पकड़ा देता है, वह फिर कभी चाहे भी तो भगवान् उसे छोड़ते नहीं।

२०—भगवान्‌की अखण्ड स्मृति और अखण्ड स्मृति न होनेकी दशामें व्याकुलता—ये ही दो बातें होनी चाहिये।

२१—मनमें भगवान् आ जायँ या मन भगवान्‌को दे दें—ये दोनों ही स्थितियाँ बड़ी ऊँची हैं। पर इससे भी ऊँची स्थिति और है, जहाँ प्रेमियोंके भरे हुए मनके स्थानपर भगवान्‌का मन आकर बैठ जाता है, भगवान्‌का मन ही उनका मन बन जाता है। इसी प्रकार भगवान्‌का शरीर ही प्रेमीका शरीर बन जाता है और प्रेमीमें भगवान्‌का मन एवं शरीर कार्य करते हैं। इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

२२—एक सुखका रोना होता है, एक दुःखका रोना होता है। एक भगवान्‌के लिये भी रोना होता है। यह पहले दोनों प्रकारके रोनेसे श्रेष्ठ है। पर भगवत्प्रेमीका रोना इन तीनोंसे पृथक् है। वह इतना मधुर, इतना पवित्र होता है कि वह त्रिभुवनको पवित्र कर देता है।

२३—भगवत्प्रेमीकी यह अनुभूति होती है कि भगवान् मेरे सिवा किसीको जानते ही नहीं। अतएव वे मुझसे कैसे हट सकते हैं। तथा मैं भगवान्‌के सिवा किसीको जानता नहीं। अतएव मैं भगवान्‌से कभी अलग हट नहीं सकता।

२४—मनुष्यका मरना ऐसा होना चाहिये कि जिसमें जीवको फिर मरना न पड़े; उसकी यह अन्तिम मृत्यु हो जाय।

२५—मृत्यु नहीं मारती; मनुष्य अपने कर्मसे आप मरता है। जिसने जन्म धारण किया है, वह मरनेसे बचना चाहे तो नहीं बच सकता। हाँ, उसे फिर न मरना पड़े, ऐसा वह कर सकता है।

२६—मन जगत्‌से निकलकर भगवान्‌में लग जाय, जगत्‌में मन भटके नहीं, भगवान्‌में अटक जाय, बस, इतना करना है।

२७—मन बार-बार जिसका चिन्तन करता है, उसमें उसकी आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, फिर चाहे वह शुभका चिन्तन हो या अशुभका। आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है और कामनासे पाप होते हैं। अतएव जगत्‌के एवं विषयोंके चिन्तनके बदले भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८—जिसके पास जो चीज है, वह वही चीज बाँटता है—जानमें, अनजानमें। जिसके पास भगवान् हैं, वह भगवान्‌को बाँटता है; जिसके पास असुर है, वह असुर बाँटता है। संत एवं असंतमें यही भेद है।

२९—यह नियम है कि ठोसके स्थानपर पोल ठहर नहीं सकती। ज्यों-ज्यों ठोस चीजको हम लाते हैं, त्यों-त्यों पोल समाप्त होती जाती है। प्रकाशके आगमनसे अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों हम भगवान्‌में मन लगायेंगे, वैसे-ही-वैसे जगत् मनसे हटता चला जायगा।

३०—भगवान्‌के भजनकी इच्छा सर्वथा हमारे अधीन है। यह इच्छा जो जाग्रत् नहीं होती अथवा जाग्रत् होनेपर बढ़ती नहीं, इसमें सर्वथा हमारा अपना दोष है।

३१—जगत्‌की बहुत परवाह न करे। जिसके जिम्मे जो कर्तव्य-कर्म है, उसे अच्छी प्रकार करे, पर उसके फलके प्रति निश्चिन्त हो जाय तथा चिन्ता एकमात्र भगवान्‌की करे।

३२—भगवान्‌के प्रति विश्वास, भगवान्‌में ममत्व, भगवान् ही एकमात्र अपने हैं और कोई भी अपना नहीं, इस प्रकारकी दृढ़ आस्थाका जब उदय हो तथा जब भगवान्‌के बिना सब कुछ व्यर्थ अनुभव होने लगे, तब समझना चाहिये कि समर्पणकी इच्छा जाग्रत् हुई है।

३३—अपनी असमर्थताकी अनुभूति और भगवान्‌की कृपालुता एवं सर्वसमर्थताका विश्वास जबतक नहीं होता, तबतक समर्पणकी बात मनमें नहीं आती। शरणागतिमें दो बातें होती हैं—अपने दैन्यका पूरा-पूरा दृढ़ निश्चय और भगवान्‌की शक्ति एवं प्रीतिका पूरा विश्वास।

३४—समर्पणमें सबसे मुख्य बाधा है—अपनी योग्यता, पद, विद्या, बुद्धि, अधिकार, धन आदिका अभिमान। जहाँ अपने दैन्यपर विश्वास होता है तथा साथ-ही-साथ भगवान्‌की महत्तापर दृढ़ आस्था होती है, वहाँ समर्पण सहज हो जाता है।

३५—भगवान्‌में तीन बातें हैं। १. भगवान् केवल त्रिकालज्ञ ही नहीं, सर्वज्ञ हैं। २. वे कालके काल हैं; भगवान् सब कुछ कर सकते हैं—वे सर्वशक्तिमान् हैं तथा ३. भगवान् हमारा भला करनेके लिये आतुर हैं; क्योंकि वे हमारे सुहृद् हैं। अतएव उनके शरणापन्न होनेमें तनिक भी सोचने-विचारनेकी आवश्यकता नहीं है।

३६—जहाँ भगवान्‌पर विश्वासमें जरा भी कमी है, जहाँ अपनी बुद्धि-समझका जरा-सा भी अभिमान है, वहाँ समर्पण नहीं हो सकता।

३७—पूर्ण समर्पणमें अपनी कोई चाह ही नहीं रहती।

३८—भगवान्‌के समर्पित होनेपर भक्तमें दो बातें आती हैं—(१) उसके द्वारा फिर कभी कोई बुरा कर्म नहीं होता। (२) वह सर्वथा निर्भय-निश्चिन्त रहता है।

३९—पूर्ण शरणागति होनेके लिये सबसे पहले भगवान्‌के विधानमें मङ्गलमयताके दर्शन करके अनुकूलता-प्रतिकूलतामें हर्ष और शोक न करनेका अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् फलरूपमें जो कुछ हमें प्राप्त होता है, वह हमारे मङ्गलके लिये ही है, इस बातपर दृढ़ विश्वास करना चाहिये।

४०—जिसका अपना भला-बुरा सोचनेवाला 'अहं' जबतक बाकी है, तबतक वह समर्पित नहीं हो सकता।

४१—प्रेममें भगवान्‌के साथ एकात्मता हो जाती है। वह अपने-आपको भगवान्‌के हाथोंमें सौंपकर उनके हाथका खिलौना हो जाता है। अपने मनको खोकर वह भगवान्‌के मनको अपनेमें स्थापित कर लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४२--दरिद्र कौन है ? जिसमें तृष्णा है । धनी कौन है ? जिसकी कोई चाह नहीं है ।

४३--कोई भी भोगाकाङ्क्षी कभी यह नहीं कह सका, नहीं कह सकता, नहीं कह सकेगा कि भोगोंसे मेरी तृप्ति हो गयी है । भोगोंसे कभी आत्यन्तिक तृप्ति हो ही नहीं सकती ।

४४--मनुष्य-जीवन मिला ही एक कामके लिये है । वह है भगवत्प्राप्ति । जीव-जीवनकी पूर्ण सफलता इसीमें है ।

४५-सबसे बड़ा नुकसान है—मानव-जीवनको भोगोंमें खो देना ।

४६--मनुष्यका सबसे पहला लक्षण है—भगवान्‌की ओर लगनेका निश्चय करना तथा मानवकी मानवताका आरम्भ तब होता है जब वह भगवान्‌की ओर लगना आरम्भ करता है । नहीं तो, चौपाया नहीं होकर दो पैर-हाथवाला लम्बा जीव बननामात्र मनुष्य नहीं है ।

४७--भगवान्‌की ओर मनुष्य लगा हुआ है, इसकी जाँच है कि उसके चित्तमें पापकी बुद्धि, पापकी वासना, विषयोंकी आसक्ति-कामना, नाम-रूपका मोह आदि मिटे कि नहीं । जितने अंशमें ये विकार मिटे हुए दिखायी दें, समझना चाहिये उतने ही अंशमें उसका जीवन भगवान्‌की ओर लगा हुआ है ।

४८--जीवनकी गतिको भगवान्‌की ओर कर देना दैवी-सम्पत्तिको अपने अंदर लानेका एकमात्र साधन है ।

४९--मनुष्यको जहाँ वह खड़ा है, वहींसे अपना मुँह भगवान्‌की ओर मोड़ देना चाहिये ।

५०--भगवान् केवल एक बात देखते हैं—वह मुझे चाहता है कि नहीं । फिर वह चाहे जिस वर्णका, कुलका, पदका, स्थितिका, योग्यताका व्यक्ति हो भगवान् उसे स्वीकार कर लेते हैं ।

५१--इस 'असुखम्', 'दुःखालयम्' तथा 'दुःखयोनि' जगत्‌की कोई भी परिस्थिति, प्राणी, वस्तु मनुष्यके दुःखको नहीं मिटा सकते । मनुष्यके दुःखकी निवृत्ति तभी सम्भव है, जब भगवान् उसके मनमें आ जायँ ।

५२--संत-समागमसे, प्रेमी भक्तके संगसे, भगवान्‌की कृपासे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति बहुत सरल है ।

५३--भगवत्कृपा निष्ठावानोंपर होती है, यह ठीक है; पर भगवान्‌की कृपापर जीवमात्रका अधिकार है । वह प्राणीमात्रकी वस्तु है । जीव अपने दैन्यको एवं भगवान्‌की महत्ताको भूला हुआ है । ये दोनों जग जायँ तो भगवत्कृपाका मार्ग सहज साध्य हो सकता है और होता है ।

५४--भगवान् भक्तके लिये पहरा देते हैं, उसे सँभालते हैं तथा उसे साधनाके मार्गमें हाथ पकड़कर आगे ले चलते हैं ।

५५--भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे रहित एवं भगवत्प्राप्तिकी साधनासे शून्य मानव मानव नहीं है ।

प्रभुको पूरा अधिकार दे दो

अपने भले-बुरेका पूरा दे दो प्रभुको ही अधिकार ।
जीवनमें होने दो सब स्वच्छन्द उन्हींके मन-अनुसार ॥
करते रहो सचेत कर्म शुभ उनकी ही रुचिके अनुकूल ।
कर्म-कर्मफलमें न रखो आसक्ति तनिक भी मनमें भूल ॥
प्रभुकी सेवारूप करो प्रत्येक कार्य रखकर विश्वास ।
भय-विषाद सब छोड़, रखो नित मनमें निर्भयता-उल्लास ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारदीय भक्ति

(लेखक—प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)

भक्तिविषयक जितने प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें नारदभक्तिसूत्र प्रमुख है। नारद परम भागवतोंमें अन्यतम हैं। अहर्निश भगवान्का नाम-गुण-कीर्तन करते हुए सर्वत्र विचरण करते रहना उनकी दैनन्दिन-चर्या है। वे भगवान्के विश्वस्त प्रियपात्र हैं। अपने भक्ति-सूत्र ग्रन्थमें उन्होंने भक्तिके दार्शनिक तत्त्वकी व्याख्या न करके भक्तिके स्वरूप एवं साधनपक्षकी विशद व्याख्या की है। भक्ति-भावके साधकोंके लिये यह लघु ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है।

भक्तिसूत्रमें सूत्ररूपसे भक्ति-तत्त्वका सारांश कथित हुआ है। दस अध्यायोंमें कुल चौरासी सूत्र हैं। एक-एक सूत्रमें भक्तिके स्वरूप, लक्षण, साधन आदिके सम्बन्धमें अति संक्षिप्त रूपमें हृदयग्राही बातें कही गयी हैं। भक्तिपथके पथिक श्रद्धा-भावसे यदि इन सूत्रोंका पारायण, मनन, चिन्तन करेंगे तो अवश्य ही उनके अन्तरमें भक्ति-भावना सुदृढ़ होगी और उन्हें परम आह्लाद प्राप्त होगा।

भक्तिकी परिभाषा करते हुए प्रथम सूत्रमें उन्होंने कहा है। ईश्वरके प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। '**सा कस्मै परमप्रेमरूपा**।' (सूत्र २)अमृत-तुल्य भक्ति आनन्द-दायिनी है। जिसने इस भक्तिरूपी अमृतका एक बार आस्वादन कर लिया, वह उस आस्वादनका वाणी-द्वारा वर्णन नहीं कर सकता। भक्तिका आनन्द अनिर्वचनीय है। भगवान्के प्रति अनन्य प्रेमका जो आनन्द है, उस आनन्दकी अभिव्यक्ति वाणीद्वारा नहीं हो सकती। '**अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्**।' (सूत्र ५१) भक्तिरूपी अमृतके आस्वादनका आनन्द अन्तरमें ही अनुभव किया जा सकता है। जिस प्रकार गूँगा मनुष्य किसी मधुर वस्तुका स्वाद ग्रहण कर उससे जो तृप्ति लाभ करता है, उसे व्यक्त करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है; उसी प्रकार भक्तिरसामृतका पान करनेवाला बड़भागी व्यक्ति भी तृप्ति लाभ करके मूक बन जाता है। इसलिये नारदने भक्तिके आनन्दको '**मूकास्वादनवत्**' (सूत्र ५२) कहा है। भक्तिप्रवर सूरदासके शब्दोंमें 'ज्यों गूँगे मीठे फलको अन्तरतर ही भावैं।'

भक्तिका आनन्द अनुभूतिगम्य है। उसका प्रत्यक्ष वर्णन सम्भव नहीं है। इसलिये नारदने कहा है कि भक्तिरूपी अमृत लाभ करके मनुष्य सिद्ध होता है, अमृत होता है, तृप्त होता है। भक्तिरूपी रत्न प्राप्त करके मनुष्यकी समस्त कामनाएँ, वासनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। इसे पाकर वह और किसी वस्तुकी कामना नहीं करता; किसीके लिये शोक नहीं करता; संसारकी अन्य वस्तुको पाकर आनन्दित नहीं होता या कोई वस्तु प्राप्त करनेके लिये उत्साहित नहीं होता। इस रूपमें भक्तिका अप्रत्यक्ष वर्णन नारदने किया है। भक्तिरूपी दुर्लभ रत्नको प्राप्त करके मनुष्य मत्त होता है, स्तब्ध होता है, आत्माराम होता है और भक्तिमें अन्य कोई कामना निहित नहीं होती।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत् प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति। (सूत्र ४–६)

मनुष्य सामाजिक प्राणी होनेके नाते शास्त्रीय विधि-निषेध और सामाजिक रीति-नीतिको मानकर चलता है। किंतु भगवान्का सत्यनिष्ठ भक्त शास्त्रीय विधि-निषेध एवं लौकिक रीति-नीतिके बन्धनोंसे ऊपर उठ जाता है। उसका आचरण देखकर लोग उसे जड या उन्मत्त समझने लगते हैं। भक्तिके आनन्दमें वह इतना आत्मविभोर बन जाता है कि लौकिक निन्दा-स्तुतिकी ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता; अहंभावका लवलेश नहीं रह जानेसे वह लज्जा और संकोचकी अवस्थाका अतिक्रमण कर जाता है। जैसा कि श्रीमद्भागवतमें कहा गया है। '**विलज्ज उद्गायति नृत्यते च**' ऐसे भक्त, जो पागल-की तरह बार-बार हँसते रहते हैं, कभी-कभी रो पड़ते हैं, लज्जा-संकोच त्यागकर गीत गाते हैं। भावावेशमें नाचने लगते हैं, वे पृथिवीको पवित्र करते हैं—'**मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति**।' नारदके अनुसार इस लौकिक मर्यादाका त्याग, लज्जाहीन आचरणका नाम 'निरोध' है। भक्त एकमात्र भगवान्पर आश्रित रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अन्य सब प्रकारके आश्रयोंका वह परित्याग कर देता है। उसके मन-प्राण ईश्वरके प्रति सर्वतोभावेन समर्पित हो जाते हैं। अन्य सभी विषयोंके प्रति वह उदासीन बना रहता है। शास्त्रीय एवं लौकिक कर्तव्य-कर्म जिस सीमातक उसकी भक्ति-भावनाको पुष्ट करनेमें सहायकारी होते हैं, वहाँतक वह उनका सम्पादन करता है।

भक्तिके सम्बन्धमें नारदने विभिन्न आचार्योंके मतोंका भक्तिसूत्रमें उल्लेख किया है। पराशरके मतसे भगवान्‌की पूजा-अर्चामें अनुराग भक्ति है। गर्गके अनुसार भगवत्-कथामें अनुराग भक्तिका लक्षण है। शाण्डिल्य विरोध-हीन आत्मरतिको भक्ति मानते हैं। किंतु नारदके मतसे भगवान्‌में समस्त लौकिक विषयोंका समर्पण और एक क्षणके लिये भी भगवान्‌का विस्मरण होनेसे परम व्याकुलताका अनुभव—भक्तिका प्रधान लक्षण है। अनन्य प्रगाढ़ भक्तिमें ऐसा ही होता है। जैसा कि व्रज-गोपियोंको हुआ था। इसलिये भक्तिमार्गके साधकोंके लिये आदर्श स्वरूपा हैं—व्रजकी गोपाङ्गनाएँ। **'यथा व्रजगोपिकानाम्।'** (सूत्र २१)

भगवान्‌के प्रति प्रेमाभक्ति अनिर्वचनीय होनेपर भी उनका प्रकाश किसी-किसी व्यक्तिमें देखा जाता है, **'प्रकाश्यते क्वापि पात्रे।'** भक्ति त्रिगुणातीत अर्थात् सत्त्व, रज, तमसे परे है। भक्तिमें कोई कामना नहीं रहती, भक्ति विरामहीन तथा सूक्ष्म अनुभवरूप है। प्रत्येक क्षण उसमें वृद्धि होती रहती है। भक्ति प्राप्त कर लेनेपर साधक केवल भक्तिको ही देखता है, भक्ति ही सुनता है; भक्तिकी ही चर्चा करता है और भक्ति-विषयका ही चिन्तन करता है।'

'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भावयति तदेव चिन्तयति।' (सूत्र ५५)

किंतु भक्तिकी यह अवस्था चरम है। साधक एक-बारगी इस अवस्थापर नहीं पहुँचता। इस चरम अवस्था-पर भक्तिके क्रमविकसित रूपमें पहुँचा जा सकता है। आरम्भमें भक्तिके रूपमें कोई वैलक्षण्य नहीं देखा जाता। चाहे जिस अवस्थासे भक्तिमार्गकी यात्रा आरम्भ हो, यात्राकी अन्तिम परिणति चरम अवस्थामें ही होती है। एक-एक सोपानद्वारा इस अवस्थापर किस प्रकार पहुँचा जा सकता है, यह विशद रूपसे हमारे मानसपटलपर अङ्कित करनेके लिये नारदने निम्नतम सोपानकी भी उपेक्षा नहीं की है। अनिर्वचनीय गुणातीत भक्ति यद्यपि मुख्य है, किंतु गुण-भेद या आर्तादि भेदसे गौण भक्तिको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। सत्त्व, रज, तम या आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी। इनमें तमोगुणी भक्तिसे रजोगुणी भक्ति और रजोगुणी भक्तिसे सात्त्विक भक्ति श्रेष्ठ है। अर्थार्थीसे आर्त और आर्तसे जिज्ञासु भक्त श्रेष्ठ है। गीता (७। १६) में भगवान्‌का वचन है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थार्थी भक्त किसी लौकिक कामनाको लेकर भगवान्‌का स्मरण करता है, प्रार्थना-याचना करता है; आर्त भक्त सांसारिक दुःख-क्लेश, व्यथा-वेदनासे पीड़ित होकर भगवान्‌को स्मरण करता है; अपनेको सब प्रकारसे अनाथ एवं निरवलम्ब समझकर भगवान्‌के शरणापन्न होता है और जिज्ञासु भगवान्‌को जानना चाहता है, उनके स्वरूपसे परिचित होना चाहता है।

मनुष्य अपने जीवनमें सबसे बढ़कर जिस कठोर सत्यका सामना करता है, वह है—मृत्यु। मृत्युसे परित्राण पानेका उसे कोई उपाय नहीं सूझता। किंतु सृष्टिके आदिकालसे ही मनुष्य मृत्युका अतिक्रमण करके अमृतत्व लाभ करनेकी आकाङ्क्षा करता आ रहा है। आत्मा अमृतस्वरूप है, इसलिये मृत्यु अवश्यम्भावी होनेपर भी मनुष्य युग-युगसे मृत्युञ्जयी बननेकी चेष्टा करता आ रहा है। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शद्वारा वह समग्र विश्वको आत्मसात् कर लेना चाहता है। किंतु इन्द्रियजन्य भोगोंका चाहे वह कितना ही उपभोग क्यों न करे, उसे कभी तृप्ति नहीं होती। भोग्य वस्तुओंका वह जितना ही उपभोग करता है, उसकी भोग-वासना उतनी ही बढ़ती जाती है। उसका अन्तर और भी अधिक भोगके लिये हाहाकार करता रहता है। भूमास्वरूप होनेके कारण अल्पसे उसे तृप्ति नहीं होती। वह परिपूर्ण आनन्दलाभ करना चाहता है। शत-शत दुःख-कष्टोंके बीच भी मनुष्य सुखकी आशाका त्याग नहीं कर सकता। आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसलिये मनुष्य शाश्वत आनन्दकी कामना सतत करता रहता है; किंतु अज्ञानतावश वह इन्द्रियभोगजन्य क्षणिक सुखकी तृष्णामें इस प्रकार विमूढ़ बना रहता है कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आनन्दस्वरूपको भूले रहता है। अमृतस्वरूप आनन्दमय भूमा ही हमारे लिये इष्ट है, परम काम्य है। यही हमारी यथार्थ सत्ता है। अपनी इस सत्ताकी उपलब्धि-के लिये ही प्रत्येक प्राणी ज्ञात या अज्ञातरूपसे जीवनपथपर अग्रसर हो रहा है। अज्ञानताके कारण वह इष्टलाभ करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है, अपने आत्मस्वरूपसे अनभिज्ञ बना रहता है। इष्टको निश्चित रूपसे प्राप्त करने, अपने स्वरूपको हृदयङ्गम करनेके लिये तत्त्वदर्शी ऋषियोंने ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म—इन चार मार्गोंका निर्देश किया है।

इन चार साधनोंमें न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। देश-काल और अधिकार-भेदसे प्रत्येक मार्गकी उपादेयता एक समान है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने इन चारों मार्गों या साधनोंमें सुन्दररूपसे सामञ्जस्य-विधान किया है। संसारके बड़े-बड़े धर्मप्रचारकोंने एक-एक मत या मार्गको लेकर जिस प्रकारका पक्षपातित्व या एकाङ्गी भाव दिखलाया है, उस प्रकारका भाव गीतामें नहीं है। श्रीकृष्णने ज्ञान, कर्म, भक्तिमें समन्वय करते हुए एकको दूसरेका पूरक बताया है। ज्ञानकी चरम परिणति भक्तिमें होती है। सम्पूर्ण जागतिक कर्मोंका अवसान भगवान्के प्रति आत्मसमर्पणमें होता है। नारद कर्म, ज्ञान और योगसे भक्तिको श्रेष्ठ बताते हैं। सब साधनोंका अन्तिम फल भक्ति है, इसलिये भक्ति श्रेष्ठ है। ज्ञानमें आत्माभिमान रहता है और कर्ममें कर्तृत्वका अभिमान। भगवान् अभिमान नहीं, दैन्य-भावके प्रति आकृष्ट होते हैं। साधकके मनमें अपनी दीनता तथा भगवान्की अनुकम्पाका भाव जाग्रत् होता है, इसलिये भक्ति श्रेष्ठ है। कोई-कोई कहते हैं कि ज्ञान-साधनद्वारा भक्तिकी प्राप्ति होती है। कोई-कोई ज्ञान और भक्तिमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताते हैं। किंतु सनत्कुमार, नारद प्रभृति ब्रह्मकुमारोंका अभिमत है कि कर्म, ज्ञान और योगकी सहायताके बिना भी भक्ति स्वयं फलप्रसू है।,

'सा तु कर्म-ज्ञान-योगेभ्योऽप्यधिकतरा । फलरूपत्वात् ।'

(सूत्र २५-२६)

राजप्रासाद देखनेपर जिस प्रकार राजदर्शन-लाभ नहीं हो सकता, खाद्यसामग्रीके देखनेपर जिस प्रकार क्षुधाकी शान्ति नहीं होती, उसी प्रकार भक्तिको छोड़कर अन्य साधनोंको समझना चाहिये। इसलिये मुक्तिपथके पथिकोंके लिये भी एकमात्र भक्ति ही वरेण्य हो सकती है।

नारदके समयमें भक्तिके सम्बन्धमें जो सब मतवाद प्रचलित थे, उनमें दोका उल्लेख उन्होंने किया है—

(१) ज्ञानकी साधनाद्वारा भक्तिलाभ।

(२) ज्ञान और भक्ति परस्पर आश्रित हैं।

नारद प्रतिवाद करते हुए कहते हैं कि भक्तिका फल प्राप्त करनेके लिये अन्य किसी साधन या आश्रयकी आवश्यकता नहीं।

इस प्रसङ्गमें यह विचारणीय है कि अन्य साधनोंका यत्किंचित् आश्रय ग्रहण किये बिना क्या भक्तिपथपर अग्रसर हुआ जा सकता है? भक्तिमें भगवान्का नाम, गुण, कीर्तन, चिन्तन, मनन क्या मनःसंयमके बिना सम्भव है? साधारण दृष्टिसे देखनेपर ऐसा लगता है कि भक्तिपथके पथिकोंके लिये भी ज्ञान, कर्म आदिका अनुष्ठान अनिवार्य है। गीतामें जिस प्रकार निर्गुण या अव्यक्तोपासकके लिये **'सर्वभूतहिते रताः'** बताया गया है, उसी प्रकार भक्तके लिये भी **'सर्वकर्मफलत्याग'** है। कर्म, योग, ज्ञान, भक्ति——चाहे जिस मार्गका अवलम्बन किया जाय, साधना किये बिना सिद्धिलाभ नहीं हो सकता। भगवत्कृपा भी अनन्यभावसे ही प्राप्त हो सकता है। इनमें ज्ञान और योगका मार्ग अपेक्षाकृत कठिन बताया गया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

(१२ । ५)

परमात्माके अव्यक्तरूपमें जिनका चित्त आसक्त है, उन्हें साधनाके मार्गमें अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। जबतक देहाभिमान बना हुआ है, तबतक देहधारियोंके लिये यह मार्ग कष्टसाध्य है।

मनुष्यमें जो स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती हैं और जिनकी प्रेरणासे वह प्रतिक्षण अपने जीवनमें परिचालित होता है, उन प्रवृत्तियोंके विरुद्ध ज्ञान और योगमार्गके साधकको चलना पड़ता है। अधिकांश मनुष्योंके लिये ये दोनों मार्ग कठिन प्रतीत होते हैं। भक्तिमार्ग अपेक्षाकृत सरल इसलिये है कि इसमें प्रवृत्तियोंके विरुद्ध नहीं जाना पड़ता है। यह प्रेमका मार्ग है। मनुष्य अपने जीवनके अधिकतर कार्योंमें प्रेमसे प्रेरित होकर ही प्रवृत्त होता है। अन्य मार्गोंकी अपेक्षा भक्तिमार्ग श्रेष्ठ है। इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। नारद कहते हैं कि भक्ति स्वतःप्रमाण है—

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ। प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् ॥

(सूत्र ५८-५९)

अधिकांश मनुष्य भावप्रवण होते हैं। बुद्धिकी अपेक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाद्वारा वे अपने कर्ममय जीवनमें विशेषरूपसे परिचालित होते हैं। इसलिये भक्तिमार्ग उनके लिये सहज होता है। भक्तिकी साधनाके साथ-साथ उन्हें आनन्द मिलता है। किंतु कुछ ऐसे भी साधक होते हैं, जिनकी प्रवृत्ति चिन्तन-मनन, ध्यान-धारणा अथवा कर्मकी ओर विशेषरूपमें होती है। वे ज्ञान, ध्यान या कर्मयोगका अधिकार लेकर जन्म ग्रहण करते हैं। उनके लिये अवश्य ज्ञान, ध्यान या कर्मका मार्ग ही सहज हो सकता है। इसलिये जो लोग भक्ति-साधनाके अधिकारी हैं, नारदने उनके हेतु ही भक्तिमार्गका उपदेश दिया है। उनके लिये भक्तिमार्ग सहज और उपयोगी है, इसलिये वह श्रेष्ठ है। नारदका मत किसी पक्षपात-दोषसे दूषित नहीं है।

नारद ऐकान्तिक भक्तिको श्रेष्ठ मानते हैं। भगवत्कथा सुनकर, भगवान्‌का नाम-गुण-कीर्तन करके आनन्दसे कण्ठ-रोध हो जाना, नेत्रोंसे अश्रुधारा स्रवित होना, रोमाञ्च होना—ये सब लक्षण ऐकान्तिक भक्तके हैं। ऐसे भक्तोंद्वारा तीर्थ सच्चे अर्थमें तीर्थ बन जाते हैं, कर्म सुकर्म और शास्त्र सत्-शास्त्र बन जाते हैं। ऐसे भक्त सर्वदा भगवान्‌में तन्मय बने रहते हैं। उनके लिये पितृगण आनन्दित होते हैं, देवता नृत्य करते हैं, पृथिवी सनाथा होती है। भक्तोंमें जाति-विद्या-रूप-कुल-धन और कर्मगत कोई भेद नहीं रह जाता—

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः। कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि। तन्मयाः। मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति। नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः। (सूत्र ६७–७२)

भक्ति-साधनका सर्वोत्तम उपाय है—'महज्जनोंकी कृपा तथा भगवान्‌की लेशमात्र करुणा।' भगवान्‌के अनन्य भक्त और भगवान्‌में कोई भेद नहीं होता। महज्जनोंका संग दुर्लभ एवं अमोघ होता है। सब समय अविराम भावसे भगवान्‌का भजन करते रहना, भगवद्‌गुण-कीर्तन-भजनमें भाग लेना, भगवान्‌के विभिन्न रूपोंमें कोई भेदज्ञान नहीं रखना, नित्य दासभाव या कान्ताभावसे भक्ति करना ऐकान्तिक भक्तिके लक्षण हैं।

भक्तके समस्त कर्म भगवान्‌के प्रति निवेदित होंगे। इसलिये काम, क्रोध, अभिमान आदि भी यदि करना आवश्यक हो तो ये सब भी भगवान्‌के प्रति अर्पित होंगे। साधन मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है माया या अज्ञान। नारदने भक्तिसूत्रमें मायापर विचार करते हुए कहा है कि मायासे परे वही व्यक्ति जा सकता है जो महत्‌की सेवा करता है तथा ममताशून्य है। एकान्तसेवी बनकर त्रिगुणातीत हो जाता है। किसी वस्तुके रक्षणावेक्षणकी इच्छा नहीं करता, कर्मफलत्यागपूर्वक सर्वकर्म भगवान्‌के प्रति अर्पित कर देता है।

साधनाकालमें भगवान्‌के प्रति किसी प्रकारका सम्पर्क स्थापित कर लेनेपर भक्ति प्रगाढ़ होती है और साधना भी सहज एवं मधुर हो जाती है। अधिकारीभेदसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर—इन पाँच भावोंमें किसी एकका अवलम्बन करके साधना करनेका उपदेश आचार्योंने दिया है। किसी एक भावका आश्रय ग्रहण करके भगवान्‌की जो भक्ति की जाती है, उसे नारदने 'आसक्ति' नाम दिया है।

शास्त्र या लौकिक व्यवहारमें भक्तिमार्गका जो कुछ भी विरोधी हो, साधकको उन सबका त्याग करना होगा; किंतु नारदके कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि आरम्भसे ही शास्त्रीय अथवा लौकिक कर्मका परित्याग कर दिया जाय। उनका कथन है, जबतक भक्तिभाव सुदृढ़ नहीं हो, तबतक शास्त्रके विधि-निषेधोंको मानकर चलना उचित है। ऐसा न करनेसे पतनका भय बना रहता है। जबतक अपना तन, मन, धन तथा सर्वस्व भगवान्‌को निवेदित न कर दिया जाय, तबतक लौकिक कर्तव्यकर्मका परित्याग करना उचित नहीं। किंतु कर्तव्यकर्म करते हुए फलासक्तिका त्याग करना होगा। भगवान्‌में भक्तिभाव दृढ़ होनेपर लौकिक कर्मका परिहार हो जाता है, फिर भी जबतक शरीर है तबतक शरीरधारणके लिये तो कर्म करने ही होंगे—

'लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि।' (सूत्र १४)

नारदके भक्तिसूत्रसे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय भी भक्तिमार्गके विभिन्न मतवाद प्रचलित थे और भक्तितत्त्वके आचार्योंके सिद्धान्तोंकी समालोचना भी बहुत कुछ की गयी थी। नारदने ब्रह्मकुमार, व्यास, शुक, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु, कौण्डिल्य, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान्, विभीषण प्रभृति आचार्योंका नामोल्लेख किया है, जिनके अभिमतोंका मन्थन करके नारदने अपने भक्तिसूत्रोंकी रचना की है।

फलश्रुतिमें कहा गया है—जो नारदकथित शिवके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेशमें विश्वास करेगा, श्रद्धा करेगा उसे भक्ति प्राप्त होगी, प्रेष्ठ (प्रियतमरूपसे भगवान्) का लाभ होगा। वह अवश्य प्रेष्ठ लाभ करेगा।'

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्धत्ते स भक्तिमान् भवति स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते इति। (सूत्र ८४)*

श्रीकृष्ण-कर-कञ्ज

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

जैसे साक्षात् भगवान्में सर्वकल्याणकारिणी शक्ति निहित है, उसी प्रकार भगवन्नाम, भगवच्चरित्र, भगवद्ध्यान आदिमें भी दिव्य चमत्कारपूर्ण परम कल्याणकारिणी शक्ति भरी पड़ी है। भगवान्की श्रीचरणरजके प्रभावसे अहल्या तर गयी; विश्व कृतार्थ हुआ—

परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम गति के अधिकारी॥
परसि रामपद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा॥
(श्रीरामचरितमानस, अयोध्या०)

(अधिक जानकारीके लिये देखिये 'कल्याण' ३०। ६ का 'दिव्य चरणरज' शीर्षक मेरा लेख)

भगवान्की वाणी सुनकर मृतप्राय मनु-शतरूपा हृष्ट-पुष्ट हो गये, लाखों लोग निहाल हुए—

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड)

इसी प्रकार जिनपर प्रभुकी कृपादृष्टि पड़ी अथवा जिन्होंने भगवान्को देख लिया, वे भी मुक्त हो गये—

जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू॥

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
(श्रीमद्भागवत ९। ११। २२)

राघवः सर्वदेवानां पावनः पुरुषोत्तमः।
स्पृष्टा दृष्टाश्च तेनैव विमला देवमानवाः॥
(पाद्मोत्तर २५५। १३१) इत्यादि—

यहाँतक कि भगवत्-संगी—भगवत्प्रेमीका संग भी विलक्षण चमत्कारपूर्ण—मङ्गलजनक माना गया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(श्रीमद्भागवत १। १८। १३; ४। २४। ५७; ४। ३०। ३४ इत्यादि)

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

फिर मङ्गलमय प्रभुके साक्षात् श्रीहस्तका क्या कहना। तन्त्र-ग्रन्थोंमें हाथके द्वारा ही दीक्षा एवं शक्तिपातका विधान है। सामुद्रिक जाननेवाले हाथके द्वारा ही सब भूत-भविष्यका निर्देश करते हैं। कर्मकाण्डके पण्डित विवाहमें करग्रहणद्वारा ही स्त्री-पुरुषके जन्म-जन्मकी एकताका, स्नेह-निर्वाहका संकल्प कराते हैं। देवतालोगोंकी अभय एवं वरद मुद्रा हस्तद्वारा ही सम्पन्न होती है। किमधिकं—प्राणीकी सारी क्रियाएँ करनेके कारण ही तो इसका 'कर' नाम सार्थक दीखता है। अतः गोपियाँ भी प्रार्थना करती हैं—

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥
(श्रीमद्भागवत १०। ३१। ५)

श्रीजीवगोस्वामीने अपने 'गोपालचम्पू'† में इसे थोड़े ही अन्तरसे इस प्रकार लिखा है—

* देवर्षि नारदके भक्तिसूत्रोंकी मूलसहित हिंदी व्याख्या (प्रेमदर्शन), संस्कृत व्याख्या (प्रेमदर्शनम्) और अंग्रेजी व्याख्या (Philosophy of Love) गीताप्रेससे प्रकाशित हैं, जो उनसे लाभ उठाना चाहें, वे मँगवाकर पढ़ सकते हैं।

† श्रीगोपालचम्पू—पृष्ठ ६१८, हरिनामसंकीर्तन-मण्डल श्रीधामवृन्दावन, १९६८ ई० की नवप्रकाशित व्याख्यासे। वास्तवमें यह टीका अत्युत्तम हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति तवेशितुः सुष्ठु यः करः
प्रथितसंसृतेर्भीतिभीकरः ।
शिरसि नः कुरु श्रीकरग्रहं
तमिह नान्यथा भावयाग्रहम् ॥
(श्रीगोपालचम्पू २५ पू० ९)

अर्थात् विश्वरक्षक होनेके कारण, जो सब कामनाओंका प्रदाता एवं विस्तीर्ण जगद्भयको भी भयभीत करनेवाला है और जो लक्ष्मीका पाणिग्रहण करनेवाला है, उस अपने सर्वश्रेष्ठ हस्तकमलको आप हमारे मस्तकपर धारण कीजिये। इस विषयमें आप अन्य कोई आग्रह न करें; अर्थात् ऐसा करनेमें आप बिल्कुल ही संकोच न करें।

भक्तशिरोमणि प्रह्लाद भी श्रीहस्तसंस्पर्शकी दुर्लभता बतलाते हुए अपने सौभाग्यश्रीका वर्णन करते हुए कहते हैं—

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्
जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥
(श्रीमद्भागवत ७ । ९ । २६)

अर्थात्—हे प्रभो ! कहाँ तो इस तमःप्रधान असुर-वंशमें रजोगुणसे उत्पन्न हुआ अत्यन्त निकृष्ट मैं, और कहाँ तो यह आपकी दुर्लभतम कृपा ! यह आपके कर-कमलका प्रसाद, जो आपने मेरे मस्तकपर संस्पर्शरूपसे स्थापित किया, न तो ब्रह्माजीको प्राप्त हुआ, न शिवजीको और न भगवती परामृा महालक्ष्मीको ही । किंतु इसका तात्पर्य भगवान् नृसिंहके ही करकमलसे ही दीखता है, जैसा कि कथासे स्पष्ट है*—अन्यथा भगवती महालक्ष्मीका भी कथन है—

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥
(श्रीमद्भागवत ५ । १८ । २३)

अर्थात्—

त्वया यत् कराम्बुजं सात्वतानां शीर्ष्णि अधायि, तन्ममापि तादृशभक्तिहीनायाः शीर्ष्णि अधायीत्येकमाश्चर्यम् । किञ्च । स तादृशस्त्वं मायया—कृपया, मा—मां, वक्षसि लक्ष्मरूपत्वेन बिभर्षीति ततोऽपि परमाश्चर्यम् ।

(भागवत ५ । १८ । २३ पर जीवगोस्वामिकृत क्रमसंदर्भ)†

अर्थात्—हे अच्युत ! आपने जो करकमल श्रेष्ठ भक्तोंके सिरपर रक्खा, वही हस्तकमल मुझ-जैसी भक्तिहीनाके सिरपर भी स्थापित किया । इतना ही नहीं, बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप अपनी कृपाद्वारा मुझे (श्रीवत्स-चिह्नके रूपमें) सदा अपने हृदयपर भी धारण करते हुए वहन करते हैं । भला आपकी कृपामयी लीलाचरित्र-चेष्टाका रहस्य कौन समझ सकता है ?

अस्तु ! गोपियोंके कथनमें भगवान्के श्रीहस्तके तीन विशेषण हैं, अभयप्रदत्व, कामदत्व तथा श्रीकर-ग्रहणत्व । 'अभयप्रदत्व' का उल्लेख भागवतकार प्रह्लाद-प्रसंगमें भी करते हैं । यथा—

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं
विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं
कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥
(श्रीमद्भागवत ७ । ९ । ५)

बालक प्रह्लादको अपने पैरोंमें पड़ा देख भगवान् कृपासे परिप्लुत हो गये । उन्होंने उसे उठाकर खड़ा किया तथा उसके मस्तकपर कालसर्पसे भयभीत बुद्धिवालोंको अभयप्रदान करनेवाले अपने श्रीहस्तको संस्थापित कर दिया।

'कामद' शब्दके भागवतके व्याख्याताओंने अनेक अर्थ किये हैं । गोपियोंको श्रुति मानकर निवृत्तिपरक अर्थ करते हुए उनका कथन है कि 'कामं द्यति—खण्डयति (दो—अवखण्डने ४ । ४० धातु) इति कामदं करसरोरुहं' । अर्थात् कामनाके रहते शान्ति नहीं। अतः उसका निर्मूलन परमावश्यक है, सो यह श्रीहस्तप्राप्ति-द्वारा ही शक्य है । कहा भी है—

काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥
(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

* साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ॥
(श्रीमद्भागवत ७ । ९ । २)

† कुछ दूसरे टीकाकारोंने 'धेहि' का अध्याहार कर प्रह्लादोक्तिकी संगति बैठायी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनश्च--

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा ॥
ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥

अथवा--

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ॥

(श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड)

सामान्य पक्षमें 'कामं ददाति—यच्छति इति कामदं' यह व्याख्या है । इसमें भी विशेषता यह है कि यदि प्राणी स्वयं कामनाओंकी पूर्ति करता है तो उसकी कामनाएँ और भड़कती हैं । यथा—

सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार ॥

या—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

(मनु० २ । ११५; नारदपरि० उप० ३ । ३७; श्रीमद्भा० ९ । १९ । १४; ब्रह्मपुराण १२ । ४०; पद्मपुराण १ । १९ । २६३; विष्णुपुराण ४ । १० । २३; लिङ्गपुराण ६७ । १७; ८६ । २४; महाभारत १ । ७५ । ५०; ३ । २ । २६ इत्यादि)।

पर प्रभुद्वारा पूर्ण होनेपर कामनाशके साथ उनके पूरक साक्षात् प्रभुचरणोंकी ही महत्ता दीखकर प्राणीकी बड़े वेगसे उधर ही प्रवृत्ति होती है, इससे पूर्ण निवृत्ति, शान्ति, मुक्ति एवं दुर्लभ भक्ति भी प्राप्त हो जाती है । शास्त्र कहते हैं कि प्रभुके करचरण-द्वन्द्वोंमें ही कल्पवृक्ष तथा कामधेनुके युगपत् चिह्न हैं, अतः वे सदा सर्वकामवरास्पद हैं—

सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरणमास्पदम् ।(श्रीमद्भागवत २ । ६ । ६)

हनुमान्‌जीके मस्तकपर हाथ रखनेसे उन्हें सिद्धि मिली—

परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥

—मनुजीको भी

सिर परसेउ प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुना पुंजा ॥

शंकरजी इस दशाको स्मरणकर आनन्दमग्न हो जाते हैं ।

काकभुशुण्डिजीके सिरपर श्रीहस्त रखनेसे उनका सारा क्लेश मिट जाता है—

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयालु सकल दुख हरेऊ ॥

सुग्रीवका शरीर नीरुज, वज्र हो जाता है—

कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥

श्रीविभीषणके मस्तकपर फिरनेसे वे लंकेश्वर हो जाते हैं—

मंगलमूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगलके खनै ।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ॥

(गीतावली ५ । ४० । २)

श्रीगोस्वामीजीने आनन्दमग्न होकर प्रभुके मङ्गलमय श्रीहस्तकी महिमामें बहुतेरे पद लिख डाले हैं । उनमेंसे एक-दो यहाँ लिखे जाते हैं—

रामचंद्र-करकंज कामतरु, बामदेव-हितकारी ।
सिय-सनेह-बर-बेलि-बलित बर प्रेम बंधु बर बारी ॥
मंजुल मंगल-मूल मूल तरु, करज मनोहर साखा ।
रोम परन, नख सुमन, सुफल सब काल सुजन अभिलाषा ॥
अविचल, अमल, अनामय, अविरल, ललित, रहित छल छाया ।
समनि सकल संताप पाप रुज मोह मान मद माया ॥

(गीतावली उत्तर० १४)

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक ! धरिहौ नाथ सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे ॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो ।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यौं, परम प्रीति केवट भेंट्यो ॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंड देइ निज धाम दियो ।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभय दान देवन्ह दीन्हों ॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया ।
निसि-बासर तेहि कर-सरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥

(विनय० १३८)

कवितावली ७ । ११५ में वे प्रभुके करकञ्जकी अद्भुत कल्पित कल्पतरुसे भी श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। यथा—

कनककुधरु केदारु, बीज सुंदर सुरमनि बर ।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुरसरूप जच्छेस रच्छ तेहि ।
मरकतमय साखा-सुपत्र मंजरिय लच्छि जेहि ॥
कैवल्य सकल फल, कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख-बरिस ।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि! तौ कि होइ तुअ कर सरिस ॥

इत्यादि ।

(बांजण, (आर्की) हिमाचलप्रदेशमें किये गये एक भागवत-प्रवचनके आधारपर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुखियोंके लिये आत्मदान

[कहानी]

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

बहुत प्राचीन कालकी घटना है—

एक बार मिथिलानरेश अपने राज्यका विस्तार चाहते थे। जब आदमी अपने स्वार्थ तथा गर्वमें चूर हो जाता है, तब निर्बल और छोटे-छोटे लोगोंपर आतङ्क स्थापित करना चाहता है। बड़े राज्य छोटे राज्योंको हड़प लेते हैं। बलवान् पुरुष दुर्बलोंको दबाकर शोषण कर डालते हैं। मिथिला-नरेश भी इसी प्रकार अपने सैन्यबलपर गर्व कर रहे थे। वे अपने राज्यके विस्तारमें संलग्न हो गये। आसपासके छोटे राज्योंपर उनकी हिंसक दृष्टि जम गयी।

उनके समीपका एक कमजोर राज्य था—कौशल-राज्य। यह छोटा तो था, पर था हर प्रकार सुसंचालित, समृद्ध और सम्पन्न।

कौशलराज्यमें सभी कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। छोटा राज्य था और उसकी आय भी साधारण ही थी, पर फिर भी समृद्ध। आबादी भी कम थी, पर जनता उदात्त विचारोंवाली थी। सेना थोड़ी थी; क्योंकि वे अधिकतर आय जनताके लिये उपयोगी कार्योंमें व्यय करते थे। अपने आपमें ही सीमित, पर विकासोन्मुख और सज्जन प्रकृतिके।

किंतु घमंडी राजा गरीब और निर्बल राजाओंपर कब दया करते हैं। राज्य-लोलुप मिथिलानरेशने कमजोर कौशल-राज्यपर चढ़ाई कर दी। उन्होंने सोचा, 'यह छोटा-सा राज्य है। क्यों न आसानीसे हड़प लिया जाय! हमारे विशाल राज्यके सामने कब टिक सकेगा?'

कौशल-राज्यकी समृद्धि ही उसकी मुसीबतका कारण बनी। आखिर युद्ध हुआ। कौशलनरेश भारी विपत्तिमें फँस गये। उनकी थोड़ी-सी सेना बड़ी वीरतासे लड़ी। मरता क्या न करता! उनका किला शत्रुओंकी सेनाओंसे घिर गया। घमासान संग्राम हुआ। युद्धभूमि सैनिकोंकी लाशोंसे पट गयी। अपने यश और स्वतन्त्रताको बचाये रखनेके लिये उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। युवक देशकी खातिर जूझ गये। धन और जनकी बड़ी क्षति हुई।

लेकिन कौशलनरेश हार गये।

वे चुपचाप रात्रिके अन्धकारमें गुप्त द्वारसे किलेको छोड़कर भाग निकले। शत्रु उनके पीछे लगे थे। पता नहीं, कब कौशलनरेश अपने खोये हुए राज्यको वापिस लेनेका प्रयत्न करें। इसलिये मिथिलाके राजाने कौशल-नरेशको सदाके लिये मार्गसे हटानेकी युक्ति सोची। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। कौशलनरेशकी हत्या हो जानी चाहिये।

उन्होंने अपने सारे राज्यमें घोषणा की—

'राज्यकी ओरसे यह घोषणा की जाती है कि जो कोई शत्रुपक्षके राजा कौशलनरेशको जीवित गिरफ्तार करायेगा, उसे मिथिलाराज्यकी ओरसे एक हजार स्वर्णमुद्राएँ इनामके रूपमें दी जायँगी। कौशलनरेश हमारे शत्रु हैं। उन्हें पकड़ना या पकड़वाना हम सबका काम है।'

एक हजार स्वर्णमुद्राओंका लोभ साधारण व्यक्तिके लिये कम नहीं है।

क्षुधा-पीड़ित समाजमें कौन न चाहेगा कि शत्रुको गिरफ्तार कराकर एक हजार स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त कर लेनी चाहिये? भूखा पेट जो पापकर्म न कराये, थोड़ा है। पेटकी खातिर लोग पाप और दुष्कर्म करनेपर उतारू हो जाते हैं। किसी भी समाजमें ऐसे क्षुद्र लोगोंकी कमी नहीं है, जो पेटके लिये झूठ-कपट करते हैं।

बेचारे कौशलनरेश राज्य तो खो ही चुके थे, इधर-उधर जंगलोंमें अपने प्राण बचाते फिरते थे। हर व्यक्ति उन्हें खूनी निगाहोंसे देखता था। उनके वस्त्र ऐसे थे कि कोई अनायास पहचान न सके। मामूली गरीब आदमीकी पोशाकमें वे इधर-उधर मारे-मारे फिरते थे। किसी भी नगरमें दो-चार दिनसे अधिक नहीं रहते थे। कभी गाँव, तो कभी शहर—सारा जीवन ही भूख, अभाव, मानसिक अशान्ति, शत्रुसे रक्षामें ही लगा रहता था। कौन मरना चाहता है?

एक दिन वे एक नगरमें पहुँचे। वह एक पिसा-कुटा दुखी नगर था। युद्धकी श्मशान-जैसी काली परछाईं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसपर पड़ी हुई थी । उन्होंने जिधर देखा, उधर उन्हें केवल स्त्रियाँ और छोटे बच्चे या अतिवृद्ध ही दृष्टिगोचर हुए । युवक कोई भी न था ।

आश्चर्यसे उन्होंने एक वृद्धसे पूछा, 'क्या इस नगरमें कोई युवक नहीं हैं ? कोई जवान नजर नहीं आ रहा है ? क्या कारण है ?'

'तुम्हें नहीं मालूम, मुसाफिर ! एक वृद्धने दुखी होकर उत्तर देते हुए कहा, 'मिथिलानरेशने हमारे कौशलराज्यको हड़पनेकी कोशिश की थी । हमारा प्रदेश खतरेमें था । हम कैसे सहन कर सकते थे कि दूसरा प्रदेश हमें गुलाम बना ले । खतरेकी घंटी बजी । देशभक्तिकी लहर व्याप्त हो गयी । स्वदेशकी रक्षा और शत्रुको खदेड़नेके लिये हमारे यहाँके युवकोंने अपना तन देशके चरणोंमें समर्पित कर दिया ।' 'तो कोई भी युवक नहीं है, इस नगरमें ?' राजाने आश्चर्यसे पूछा—

'मुसाफिर, जन्मभूमिकी प्रतिष्ठामें ही सबकी प्रतिष्ठा छिपी है । जिसकी धूलिमें लेट-लेटकर हम इतने बड़े हुए हैं, जिसने हमें जल और भोजन दिया है, उसकी सेवा और रक्षासे विमुख होना कृतघ्नता है । वास्तवमें माता और मातृभूमिके ऋणसे मनुष्य मृत्युतक मुक्त नहीं होता । इन दोनोंके इतने उपकार होते हैं कि मानव उनसे आजीवन उऋण नहीं हो पाता है । हमारे नगरके युवकोंने मान-रक्षाके लिये अपने-आपको बलिदान कर दिया है ।'

राजा चित्रलिखित-सा इन शब्दोंको सुनता रहा । 'विलक्षण बलिदान !'

वृद्ध आगे कहने लगा, 'केवल स्त्रियाँ, बूढ़े और छोटे बच्चे ही इस नगरमें शेष रह गये हैं ।'

'चारों ओर बड़ा दैन्य और गरीबी दृष्टिगोचर हो रही है । क्या कोई और भी कारण है ?'

'इस वर्ष खेती भी नष्ट हो गयी है' नेत्रोंमें आँसू भर-कर वृद्ध बोला—'सारा नगर तथा आसपासका इलाका आपत्तिग्रस्त हो रहा है । कितने ही बालक और वृद्ध बीमार पड़े तड़प रहे हैं । खानेको कुछ नहीं है । सभी नरकंकालसे जर्जर हो रहे हैं । अकाल''भूख, बेबसी'' लाचारी है'' ।'

'ओह ! ऐसा संकट है ! बड़ी विपत्ति आ पड़ी है ।'

'यही नहीं, कितने ही भूखसे प्राण गवाँ रहे हैं ।'

'गरीबी''मृत्यु''अकाल''और फिर बीमारी''' अरे, इतनी परेशानियाँ हैं''''' । क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि ये संतप्त लोग बच सकें ?' वह सोच-विचारमें पड़ गया ।

मातृभूमिके निवासियोंकी करुण गाथा सुनकर कौशल नरेशकी आँखोंमें आँसू आ गये । देशवासियोंके सुख-दुःखको ही वे अपना सुख-दुःख मानते थे । छोटे-छोटे अज्ञानी पशु-पक्षियोंतकको जन्मस्थान तथा उसके प्राणियोंसे मोह रहता है । पक्षी दिनभर न जाने कहाँ उड़ते रहते हैं, किंतु संध्या होते ही वे दूर-दूर दिशाओंसे पंख फड़फड़ाते हुए जन्म-भूमिपर लौट आते हैं । नगरसे दूर निकल जानेवाली गाय दिनभर घूम-फिरकर शामको खूँटेकी स्मृतिमें रँभाने लगती है । घरपर आकर ही उसे संतोष मिलता है । कौशलनरेश अपनी प्रजाके दुःखोंको अधिक न सुन सके ।

वे अनुभव कर रहे थे कि उनकी प्रजाको आर्थिक सहायताकी आवश्यकता थी । जिस देशका राजा या शासक अपने देशके कल्याणमें अपना कल्याण, अपने देशवासियोंके अभ्युदयमें अपना अभ्युदय और अपनी प्रजाके कष्टोंमें अपना कष्ट समझता है, वही सच्चा शासक है और वही उन्नति करता है ।

किंतु वे तो आज स्वयं फटी हालतमें थे । अपनी प्यारी प्रजाको सहायता देनेके लिये उनके पास एक फूटी कौड़ी न थी । सब कुछ छिन चुका था । कोई राजसी जेवर भी नहीं था, जो बेचकर कुछ सहायता पहुँचाते''' वे तो आज अपने प्राण बचानेके लिये खुद ही मिथिला-राज्यकी खूनी नजरोंसे बचे फिर रहे थे''' ।

वे किसीको क्या आर्थिक सहायता देते ?

वे सोचने लगे, 'जिस देशके बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ और युवक अपने राष्ट्रकी बलिवेदीपर अपने स्वार्थोंको चढ़ाकर उसपर तन, मन, धन न्यौछावर कर देते है, वही देश संसारमें महान् शक्तिशाली राष्ट्र समझा जाता है।'''भारतमें अनेक देशभक्तोंकी वीर-गाथाएँ भरी पड़ी हैं, जिन्होंने देशहितके लिये बड़े-से-बड़े त्याग किये हैं । यही कारण है कि भारतमें आज भी गौरवशाली परम्पराएँ चली आ रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।...'हमारे यहाँके देशभक्तोंने अपनी स्वाधीनता और देशकी खातिर हँसते-हँसते अपने प्राण बलिदान कर दिये हैं।...'लेकिन मैं क्या करूँ? प्रजाकी आर्थिक विपत्तिको क्योंकर दूर करूँ?...कैसे इन्हें कुछ धन-सम्पत्तिका सहारा मिले?' वे सोचते रहे...।

जो गहराईसे सोचता है, उसे अन्ततः कोई उपाय मिल ही जाता है। कौशलनरेशके मनमें अटूट देश-प्रेम था। वे प्रजाको प्राणोंसे भी बढ़कर मानते थे। उन्होंने निर्णय किया कि अपने दुखी देशवासियोंके लिये वे व्यक्तिगत लाभ-हानिकी ओर ध्यान न देकर पूर्णशक्तिसे कुछ करेंगे।

उन्हें एक अजीब उपाय सूझा—

वे उस गाँवके कुछ वृद्ध पुरुषोंको साथ लेकर निर्भयतापूर्वक अपने प्राणोंके प्यासे दुष्ट मिथिलानरेशके यहाँ जा पहुँचे।

जिनके लिये राजाने एक हजार स्वर्णमुद्राओंके इनामकी घोषणा की थी, उन्हें स्वयं ही आते देख मिथिलानरेश आश्चर्यमें आ गये।

'मैंने इस व्यक्तिको गिरफ्तार करानेके लिये इनामकी घोषणा की थी। कोई इसे न पकड़ सका। अहा! आज वह सोनेकी चिड़िया स्वयं ही पिंजरेमें आ फँसी है। अब इसे फाँसीके तख्तेपर लटकाकर हमेशाके लिये काँटा निकाल डालूँगा!'

'मैं खुद ही आ गया हूँ आपके पास मिथिलानरेश!'

'लेकिन ये गाँवके कुछ वृद्ध पुरुष आपके साथ क्यों हैं?'

'मैं कौशलनरेश हूँ। मेरी ही गिरफ्तारीके लिये एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ देनेकी घोषणा आपने की थी। ये वृद्ध आजकल आर्थिक परेशानियोंमें हैं। इनकी वर्षभरकी खेती नष्ट हो गयी है। खानेको गाँवमें कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ—दाने-दानेको मुहताज हैं।...सभी युवक मेरी फौजमें भर्ती होकर आपके विरुद्ध लड़कर प्राण गवाँ चुके हैं......।'

'हम समझे नहीं; क्या मतलब है आपका?' शत्रुपक्षके राजाने पूछा।

'मिथिलानरेश! मेरे पकड़नेके लिये एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ देनेकी जो घोषणा आपने की थी, सो वे मुद्राएँ गाँवके इन वृद्ध पुरुषोंको दे दी जायँ। उससे ये अपना तथा गाँवके गरीब परिवारोंका भूखा पेट भरेंगे। देशके लिये मेरा शरीर बिक जाय; मेरी प्रजाको कुछ राहत मिले, तो मैं मरना पसंद करता हूँ। इस मुसीबतके समय इन्हें आर्थिक सहायता देनेके लिये अपने शरीरके अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है। यह शरीर देशका है।...मैं तो प्रजाका सेवकमात्र हूँ।...यह शरीर देशको ही अर्पित है...शरीर नाशवान् है।...आज नहीं तो कल नष्ट होना ही है।...यदि यह देशवासियोंके लिये बलिदान हो, तो इससे बड़ा सुख भला राजाके लिये क्या हो सकता है?...मैं देशवासियोंको आर्थिक सहायता देनेके लिये आपको बेचता हूँ।'

लोग यह सुनकर चकित रह गये।

देशभक्त राजाके आत्मसमर्पणकी बात सुनकर सबपर बड़ा अद्भुत प्रभाव पड़ा। जब इन्हें पूरी घटना विदित हुई कि भूखे मरते प्रजाजनोंकी आर्थिक सहायताके लिये कौशलनरेश अपना सर्वस्व दे रहे हैं, तो उनकी उदारता और देशभक्ति देखकर श्रद्धासे सबका मस्तक नीचा हो गया।

मिथिलानरेशको स्वयं अपनी नीचाशयता, क्रूरता और गर्वपर पछतावा होने लगा।

'हाय! मैंने क्षुद्र स्वार्थवश होकर कौशलराज्यको कैसा उजाड़ दिया है। असंख्य युवकोंकी मृत्युका पाप मेरे सिरपर चढ़ा हुआ है। मैं कितना क्षुद्र हूँ कि निर्बल राज्यपर यों अत्याचार कर रहा हूँ। मेरे हाथोंमें हत्याओंका उष्ण रक्त लगा है, जो कभी न धुल सकेगा। उफ्! मैंने कैसा जघन्य नैतिक अपराध किया है। कितने ही निरपराधियोंको यों ही प्रमादवश मौतके घाट उतार दिया है।'

पश्चात्तापकी अग्नि धधक उठी उनके हृदयमें और उसने वहाँ जमे हुए स्वार्थ, निर्दयता आदिके दुर्गन्धभरे कूड़े-कर्कटको जलाकर शुद्ध कर दिया। अतः उन्हें प्रायश्चित्तका एक उपाय सूझा।

मिथिलानरेशने आगे बढ़कर बड़े स्नेहसे उनको गले लगा लिया और कहा—'राजन्! आप-जैसे मनस्वी ही संसारके मुकुटमणि हैं, जो सब तरहके विरोधोंकी परवाह न कर एकाग्रतासे लक्ष्यकी ओर बढ़ते रहते हैं। मैंने आज आपसे सीखा है कि शुभ कार्योंमें लगनेवाले यथार्थ उन्नति और विमल विकासकी ओर बढ़नेवालोंके समक्ष एक ही मार्ग है—दृढ़तासे अपने लक्ष्यकी ओर निरन्तर गतिशील रहना। एक बार शुभ लक्ष्य और उत्कृष्ट मार्गका चुनाव कर फिर उस ओर निरन्तर आगे बढ़ते रहना कर्मवीरोंके लिये आवश्यक है। मार्गमें क्या मिलता है, किन अवरोधोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामना करना पड़ता है, क्या परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, इसकी परवाह किये बिना देशसेवा करते चलना—ऐसे उदार-हृदय देशभक्त तपस्वीका राज छीनकर मैं अपनेको कलंकित नहीं करना चाहता।'

उन्होंने जीता हुआ सारा इलाका कौशलनरेशको लौटा दिया और क्षतिपूर्तिके लिये भरसक प्रयत्न किया। तबसे वे हर प्रकार कौशलराज्यके विकासके लिये सहायता करते रहे।

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

अर्थात्—जो पुरुष उपकारी व्यक्तिके प्रति सज्जनता दिखलाता है, उसकी सज्जनताका कोई मूल्य नहीं है। सज्जनता या साधुता तो वही है, जो दुर्जनके प्रति सज्जनतापूर्ण व्यवहार दिखलाये और सच्चा साधु भी वही है, जो दुष्टके प्रति भी साधुताका ही व्यवहार करे।

गाँधी-शताब्दीके मङ्गल प्रसंगमें गांधी-वाणी

(१)

मातृभाषा—शिक्षाका शक्तिशाली माध्यम

हमने मातृभाषाका अनादर किया है। इस पापका कड़वा फल हमें जरूर भोगना पड़ेगा। हमारे और हमारे घरके लोगोंके बीच कितना ज्यादा फर्क पड़ गया है, इसके साक्षी इस सम्मेलनमें आनेवाले हम सभी हैं। हम जो कुछ सीखते हैं, वह हम अपनी माताओंको नहीं समझाते और न समझा सकते हैं। जो शिक्षा हमें मिलती है, उसका प्रचार हम अपने घरमें नहीं करते और न कर सकते हैं। ऐसा दुःसह परिणाम अंग्रेज-कुटुम्बोंमें कभी नहीं देखा जाता। इंग्लैंडमें और दूसरे देशोंमें जहाँ शिक्षा मातृभाषामें दी जाती है, वहाँ विद्यार्थी स्कूलोंमें जो कुछ पढ़ते हैं, वह घर आकर अपने-अपने माता-पिताको कह सुनाते हैं और घरके नौकर-चाकरों और दूसरे लोगोंको भी वह मालूम हो जाता है। इस तरह जो शिक्षा बच्चोंको स्कूलमें मिलती है, उसका लाभ घरके लोगोंको भी मिल जाता है। हम तो स्कूल-कालेजमें जो कुछ पढ़ते हैं, वह वहीं छोड़ आते हैं। विद्या हवाकी तरह बहुत आसानीसे फैल सकती है। किंतु जैसे कंजूस अपना धन गाड़कर रखता है, वैसे ही हम अपनी विद्याको अपने मनमें ही भरे रखते हैं और इसलिये उसका फायदा औरोंको नहीं मिलता। मातृभाषाका अनादर माँके अनादरके बराबर है। जो मातृभाषाका अपमान करता है, वह देशभक्त कहलाने लायक नहीं है। बहुत-से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि हमारी भाषामें ऐसे शब्द नहीं हैं, जिनमें हमारे ऊँचे विचार प्रकट किये जा सकें। किंतु यह कोई भाषाका दोष नहीं है। भाषाको बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। एक समय ऐसा था, जब अंग्रेजी भाषाकी भी यही हालत थी। अंग्रेजोंका विकास इसलिये हुआ कि अंग्रेज आगे बढ़े और उन्होंने भाषाकी उन्नति कर ली। यदि हम मातृभाषाकी उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजीके जरिये ही हम अपने ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विकास कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदाके लिये गुलाम बने रहेंगे। जबतक हमारी मातृभाषामें हमारे सारे विचार प्रकट करनेकी शक्ति नहीं आ जाती और जबतक वैज्ञानिक शास्त्र मातृभाषामें नहीं समझाये जा सकते, तबतक राष्ट्रको नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा। यह तो स्वयंसिद्ध है कि—

१—सारी जनताको नये ज्ञानकी जरूरत है,

२—सारी जनता कभी अंग्रेजी नहीं समझ सकती;

३—यदि अंग्रेजी पढ़नेवाला ही नया ज्ञान प्राप्त कर सकता हो तो सारी जनताको नया ज्ञान मिलना असम्भव है।

इसका मतलब यह हुआ कि यदि पहली दो बातें सही हों, तो जनताका नाश ही हो जायगा। किंतु इसमें भाषाका दोष नहीं है। तुलसीदासजीने अपने दिव्य विचार हिंदीमें व्यक्त किये हैं। रामायण-जैसे ग्रन्थ बहुत ही थोड़े हैं। गृहस्थाश्रमी होकर भी सब कुछ त्याग कर देनेवाले महान् देशभक्त भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको अपने विचार हिंदीमें प्रकट करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होती। पण्डितजीका अंग्रेजी-भाषण चाँदीकी तरह चमकता हुआ कहा जाता है, किंतु उनका हिंदी-भाषण इस तरह चमकता है, जैसे मानसरोवरसे निकलती हुई गङ्गाका प्रवाह सूर्यकी किरणोंसे सोनेकी तरह चमकता है। मैंने कितने ही मौलवियोंको धर्मोपदेश करते हुए सुना है। वे अपने गम्भीर विचार भी अपनी मातृभाषामें ही बड़ी आसानीसे प्रकट कर सकते हैं। तुलसीदासजीकी भाषा सम्पूर्ण है, अमर है। यदि इस भाषामें हम अपने विचार प्रकट न कर सकें तो दोष हमारा ही है।

ऐसा होनेका कारण स्पष्ट है—हमारी शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी है। इस भारी दोषको दूर करनेमें सब मदद कर सकते हैं। मुझे लगता है कि विद्यार्थीगण भी इस मामलेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारसे विनयपूर्वक यह बात कह सकते हैं। साथ ही विद्यार्थियोंके पास तुरंत प्रारम्भ करने लायक यह भी है कि वे जो कुछ स्कूलमें पढ़ें, उसका अनुवाद हिंदीमें करते रहें; जहाँतक हो सके उसका प्रचार घरमें करें और आपसके व्यवहारमें मातृभाषाका ही उपयोग करनेकी प्रतिज्ञा कर लें। एक बिहारी दूसरे बिहारीके साथ अंग्रेजी भाषामें पत्र-व्यवहार करे, यह मेरे लिये तो असह्य है। मैंने लाखों अंग्रेजोंको बातचीत करते सुना है। वे दूसरी भाषाएँ जानते हैं, किंतु मैंने दो अंग्रेजोंको आपसमें परायी भाषामें बोलते नहीं सुना। जो अत्याचार हम भारतमें करते हैं, उसका उदाहरण दुनियाके इतिहासमें कहीं नहीं मिलेगा।

एक वेदान्ती कवि लिख गया है कि जो शिक्षा विचार करना नहीं सिखाती, वह व्यर्थ है; किंतु ऊपर बताये हुए कारणोंसे विद्यार्थियोंका जीवन बहुत-कुछ विचार-शून्य दिखायी देता है। विद्यार्थी तेजहीन हो गये हैं। उनमें ताजगी दिखायी नहीं देती और वे अधिकतर उत्साहहीन दृष्टिगोचर होते हैं।

× × × ×

—'शिक्षण और संस्कृति', पृ० १७०-१७२

(२)

शिक्षाके माध्यमके सम्बन्धमें एक थोथी दलील

ऐसी दलील दी गयी है कि रुपया कमानेके लिये और देश-हितके विचारसे अंग्रेजीका जो उपयोग किया गया है उसमें दोषकी कोई बात नहीं है; किंतु जब हम शिक्षाके माध्यमका विचार करते हैं, तब यह दलील उचित नहीं जान पड़ती। यदि रुपया कमानेके लिये अथवा देश-हितके विचारसे कुछ लोग अंग्रेजी सीखें, तो हम उन्हें सादर प्रणाम करेंगे, परंतु इसी कारण हम अंग्रेजी भाषाको शिक्षाका माध्यम नहीं स्वीकार कर सकते। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उपर्युक्त बातोंके कारण अंग्रेजी भाषाको शिक्षाके माध्यमके रूपमें भारतमें जो स्थान मिला है, उसका परिणाम दुःखद हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोग ही देशभक्त हुए हैं, परंतु पिछले दो महीनोंसे तो हमें इससे बिल्कुल उलटी बात नजर आ रही है। यदि हम अंग्रेजीका यह दावा मान भी लें तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोगोंके सामने दूसरोंको मौका ही नहीं मिला। इसके सिवा अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोगोंके देश-प्रेमका प्रभाव जनसाधारणपर नहीं पड़ा। सच्चे देश-प्रेमको तो व्यापक होना चाहिये। इनके देश-प्रेममें यह गुण दिखायी नहीं देता।

—'शिक्षण और संस्कृति', पृ० १७२-१७३

(३)

शिक्षाके माध्यमकी समस्या

···हमारी शिक्षा-प्रणालीमें अंग्रेजी भाषाको देशी भाषाओंसे उच्च स्थान दिया गया है। यह कैसी अस्वाभाविक घटना है! अंग्रेजी भाषाके पक्षपातियोंका मत है कि छोटी-से-छोटी अवस्थामें ही अंग्रेजी भाषाको शिक्षाका माध्यम बना देना चाहिये। इसके लिये ये लोग उदाहरण पेश करते हैं कि विदेशोंमें छोटी अवस्थाके बालक भाषाको बड़ी आसानीसे सीख लेते हैं। इसका विरोध करते हुए कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशनने लिखा है—

'विदेशोंकी बात एकदम भिन्न है। वहाँ बालकोंके इर्दगिर्द वे ही लोग रहते हैं, जो सदा उसी भाषाका प्रयोग करते हैं, जिसे बालक सीख रहा है। पर यहाँ बात एकदम उलटी है। सिवा शिक्षाके उस भाषासे सब लोग अनभिज्ञ रहते हैं। अर्थात् स्कूलके दर्जेके सिवा बालकको फिर उस भाषाके सुनने और बोलनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। संक्षेपमें, विदेशोंमें तो एक भाषाका ज्ञान करानेके लिये परिस्थितियाँ समान हैं। कक्षाओंमें शिक्षाका जो तरीका है, उसको सफलता-पूर्वक चलानेके लिये बहुत अनुभवकी आवश्यकता है।

हमलोग इस बातपर सदा जोर देते आये हैं कि देशी भाषाद्वारा शिक्षा देनेसे हमारी शिक्षाका व्यय भी घट जायगा। हर्षके साथ लिखना पड़ता है कि इस बातको कमीशनने भी स्वीकार किया है।···कलकत्ता-विश्वविद्यालयकी सिफारिशें हमें एक कदम बढ़ानेके लिये उत्साहित करती हैं। इसके बाद विश्वविद्यालयोंमें देशी भाषाओंके प्रयोगकी विधि होनी चाहिये। सेडलर कमीशनने अपनी सिफारिशोंमें लिखा है कि मैट्रीकुलेशन तक तो देशी भाषामें शिक्षा दी जानी चाहिये, पर कालेजकी शिक्षाके लिये उसने भी देशी भाषाओंकी सिफारिश नहीं की है। भविष्यके लिये उसने दोनों भाषाओंके प्रयोगकी सलाह अवश्य दी है।

''मार्डन रिव्यू'के सम्पादक श्रीरामानन्द चटर्जीका वक्तव्य और भी अधिक व परिपक्व है। उन्होंने कहा था 'देशी-भाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना इतना आवश्यक है कि उसको किसी भी प्रकार टाला नहीं जा सकता। जो कुछ एतराज किये गये हैं, उनका स्थायी महत्त्व कुछ भी नहीं है; क्योंकि जिन भाषाओंको लोग आज सर्वोच्च स्थान देनेके लिये तैयार हैं, किसी समय उनकी भी यही दशा थी। उनकी उन्नति प्रयोगसे ही हुई और उसी तरह प्रयोगसे हमारी भाषाकी भी उन्नति हो सकती है।'

—'शिक्षण और संस्कृति', पृ० १८२-१८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

अंग्रेजी माध्यम-एक दारुण राष्ट्रीय विपत्ति

समाजकी सबसे बड़ी सेवा जो हम कर सकते हैं, वह यह है कि हमने अंग्रेजी भाषाकी शिक्षाके प्रति जो अन्ध-विश्वासपूर्ण सम्मान करना सीखा है उससे स्वयं मुक्त हों और समाजको मुक्त करें । अंग्रेजी हमारे स्कूलों तथा हमारे कालेजोंमें शिक्षाका माध्यम है । यह देशकी अन्तर्भाषा बनती जा रही है । हमारे सर्वोत्तम विचार इसीमें व्यक्त किये जाते हैं । लार्ड चेम्सफोर्डने यह आशा व्यक्त की है कि अंग्रेजी कुछ ही दिनोंमें उच्च परिवारोंकी मातृभाषा बन जायगी । अंग्रेजी-प्रशिक्षणकी आवश्यकताके बारेमें इस प्रकारके विश्वासने हमें गुलाम बना दिया है । इसने हमें सच्ची राष्ट्रीय सेवाके अयोग्य बना दिया है । यदि हम स्वभावसे बाध्य न होते तो हम यह अवश्य ही देख सकते थे कि अंग्रेजी-को शिक्षाका माध्यम बनानेके कारण हमारी प्रतिभा ऐकान्तिक हो गयी है और जनताको नवीन उपलब्ध विचारोंका लाभ नहीं मिल पाया है । हमने ये पिछले ६० वर्ष विचित्र शब्दों तथा उनके उच्चारणोंको सीखनेमें ही व्यतीत कर दिये हैं; तथ्योंको आत्मसात् नहीं किया है । हमें अपने अभिभावकों-से जो शिक्षा मिली थी, उसके आधारपर हमने नया निर्माण नहीं किया है; बल्कि उस शिक्षाको ही लगभग भुला दिया है । इतिहासमें इस (मूर्खता) की तुलना नहीं है । यह एक दारुण राष्ट्रीय विपत्ति है । पहली और सबसे बड़ी समाज-सेवा जो हम कर सकते हैं, वह यह है कि हम इस स्थितिसे पीछे हटें, देशी भाषाओंको अपनायें; हिंदीको राष्ट्रभाषाके रूपमें उसके स्वाभाविक पदपर पुनः प्रतिष्ठित करें और सभी प्रान्त अपना-अपना समस्त कार्य अपनी देशी भाषामें तथा राष्ट्रका कार्य हिंदीमें प्रारम्भ कर दें । हमें तबतक विश्राम नहीं लेना चाहिये, जबतक कि हमारे स्कूलों और कालेजोंमें हमें देशी भाषाओंके माध्यमसे शिक्षा नहीं दी जाती । हमारे लिये अपने अंग्रेज मित्रोंके निमित्त भी अंग्रेजीमें बोलना आवश्यक नहीं होना चाहिये । प्रत्येक अंग्रेज शासनिक तथा सैनिक अधिकारीको हिंदी जाननी चाहिये । —'शिक्षण और संस्कृति' (पृ० १८०-१८१

अपने ऐबोंपर नजर कर !

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है सन् १९६२ की ।

विनोबाजीकी पुस्तक 'रूहुल कुरान' (कुरान सार) छप रही थी । हम सबकी इच्छा हुई कि डाक्टर जाकिर हुसेन साहबसे उसकी भूमिका लिखायी जाय । उन दिनों वे गवर्नर थे विहार राज्यके ।

हमारे भाई जान अहद फातमी (सम्पादक 'भूदान-तहरीक') ने जाकिर साहबसे इसके लिये प्रार्थना की । दो पत्र भी लिखे

× × ×

कुरानशरीफके अनमोल मोतियोंका संचयन और सो भी विनोबा-जैसे संत पुरुषके द्वारा ।

और उस अमूल्य कृतिकी भूमिकाका प्रश्न ।

कौन न कृतकृत्य हो उठेगा ऐसी सम्मानजनक फर्मायशसे ?

पर जाकिर साहब उसकी भूमिका, उसका मुकद्दमा, उसका पेश-लफ्ज नहीं लिख सके, नहीं लिख सके ।

आखिर क्यों ?

× × ×

'गीता-प्रवचन' में विनोबा कहते हैं—

महाभारतमें तुलाधार वैश्यकी कथा है । जाजलि नामक ब्राह्मण तुलाधारके पास ज्ञान-प्राप्तिके लिये जाता है । तुलाधार उससे कहता है—'भैया ! इस तराजूकी डंडीको सदा सीधा रखना पड़ता है ।' इस बाह्य कर्मको करते हुए तुलाधारका मन भी सीधा सरल हो गया । छोटा बच्चा दुकानमें आ जाय या जवान आदमी, उसकी डंडी सबके लिये एक-सी रहती है । न ऊँची; न नीची ।

···तराजूकी डंडीसे तुलाधारको समवृत्ति मिली ।

सेना नाई बाल बनाया करता था । दूसरोंके सिरका मैल निकालते-निकालते उसे ज्ञान हुआ—'देखो; मैं दूसरोंके सिरका मैल निकालता हूँ; परंतु क्या खुद कभी अपने सिरका; अपनी बुद्धिका भी मैल मैंने निकाला है ?' ऐसी आध्यात्मिक भाषा उस कर्मसे सूझने लगी । खेतका कचरा निकालते-निकालते कर्मयोगीको खुद अपने हृदयका वासना-विकाररूपी कचरा निकालनेकी बुद्धि उपजती है ।

कच्ची मिट्टीको रौंद-रौंदकर समाजको पक्की हँड़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना देनेवाला गोरा कुम्हार उससे यह शिक्षा लेता है कि मुझे भी अपने जीवनकी हँड़िया पक्की बना लेनी चाहिये। इस तरह वह हाथमें थपकी लेकर हँड़िया कच्ची है या पक्की? यों संतोंकी परीक्षा लेनेवाला परीक्षक बन जाता है।

× × ×

तो जाकिर साहबके सामने जब 'रूहुल कुरान' का मसविदा पेश हुआ तो वे भी जीवनकी गहराईमें उतर पड़े।

मनुष्य जब आत्मविश्लेषण करता है, अपने दिलके भीतर झाँकता है, अपनी असलियतपर गौर फरमाता है तो उसकी रूह काँप उठती है। दम्भियों और पाखण्डियोंकी बात छोड़िये, वे तो दुनियादारीके चक्करमें रहते हैं और रात-दिन ऐबको हुनर दिखलानेकी कोशिश करते हैं। दोषोंको गुण बतानेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। कहा है—

ऐब ये है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ,
वर्ना यां ऐब तो सब फर्दोबशर करते हैं।

मनुष्य अपनी गलतीको गलती नहीं मानना चाहता। अपने दोषको दोष नहीं मानना चाहता। अपनी कमीको कमी नहीं मानना चाहता। कहेगा झूठ, उसपर मुलम्मा चढ़ायेगा सचका। करेगा गलत काम, कोशिश करेगा यह बतानेकी कि वह सही ही कर रहा है। खुद अन्याय करेगा पर बतायेगा इस तरह कि दूसरा अन्याय कर रहा है।

और यदि कभी मान भी लिया कि गलती हुई तो कह देगा कि 'To err is human'—'मनुष्यमात्रसे गलती होती है। मैं भी उसका अपवाद नहीं।'

× × ×

पर साधकोंका, जिज्ञासुओंका, महापुरुषोंका तरीका ही दूसरा होता है। अपने राई-जैसे जरा-से दोषको वे पहाड़-जैसा बड़ा मानते हैं। गांधीसे छोटी-सी भूल होती तो वे उसे 'Himalayan Blunder'—'हिमालय-जैसी भूल' बताते। उसके लिये सच्चे जीसे पश्चात्ताप करते।

जाकिर साहबका भी यही तरीका था।

विनोबाजीकी 'रूहुल कुरान' उनकी आँखोंके आगे थी और वे जीवनकी गहराइयोंमें उतर जाते।

'कहाँ कुरानशरीफकी नसीहतें और कहाँ मैं!'

एक दिन, दो दिन, चार दिन—यह संघर्ष चलता रहा।

आखिर २४ फरवरी ६२ को उन्होंने अपने दिलकी हालत कागजपर उतार कर भाई जान फातमी साहबके पास रवाना ही कर दी। पत्र क्या है—

कागज़ पै रख दिया है कलेजा निकाल कर।

लिखा उन्होंने—

राजभवन, पटना
ता० २४।२।६२

मुकर्रमी जनाब फातमी साहब,

आसूसलाम अलैकुम।

दोनों नबाजिशनामे[1] मिले। याद फरमाईका शुक्रिया और ताखीरे[2] जवाबकी माजरत कबूल फरमाइये। मैंने विनोबाजीका इंतेखाबे कुरान मज़ीद गौरसे देखा। बहुत अच्छा है। इससे मुस्लिम और गैरमुस्लिम सब कुरानकी तालीमको आसानीसे समझ सकेंगे। खुदा उनकी सअी[3] मशकूर[4] फरमाये।

मुकद्दमा[5] या पेश-लफ्ज लिखनेकी बहुत कोशिश की। मगर कुछ न बन सका। रह-रहकर यह खयाल कि तालीमात[6] कुरानीकी तामील[7]में क्या-क्या कौताहियाँ[8] मुझसे सरज़द होती हैं और अपनी जिंदगी उस नक्शेसे कितनी दूर है, जो कुरान चाहता है, कुछ लिखनेकी हिम्मत नहीं करने देता। किसी दूसरेको अपनी इस कैफियत[9]का समझाना दुश्वार[10] है। मगर यकीन फरमाइये, कि सच है, और बावजूद कोशिशके उसने कुछ न लिखने दिया। उम्मीद है कि आप मेरी माजूरी[11]को समझ सकेंगे और मुझे माफ़ फ़रमा देंगे।

अगर बात विनोबातक पहुँच चुकी है तो उनसे भी माफ़ करा देंगे। मेरे दिलमें उनका जो इहतराम[12] है, उसे मसविदे बआसानी लफ्ज़ोंमें बयान नहीं कर सकता। मसविदे रजिस्टर डाकसे बीमा करके वापिस करता हूँ।...

मुखलिस—
सही—जा० हु०

पिछले दिनों जब 'रूहुल कुरान' वाली फाइल उलट रहा था तो जाकिर साहबका यह खत पढ़कर आँखें भर

१ कृपापत्र, २ विलम्ब, ३ पराक्रम, ४ यशस्वी, ५ भूमिका, ६ शिक्षा–उपदेश, ७ व्यवहार, ८ कमियाँ, ९ हालत, १० कठिन, ११ विवशता, १२ आदर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयीं। कितने ऊँचे, पवित्र और नम्र थे हमारे ये राष्ट्रपति, जो कहते थे—

''......'रह-रहकर यह खयाल कि तालीमात कुरानीकी तालीममें क्या-क्या कोताहियाँ मुझसे सरज़द होती हैं और अपनी ज़िंदगी उस नक्शेसे कितनी दूर है, जो कुरान चाहता है, कुछ लिखनेकी हिम्मत नहीं करने देता है।''

× × ×

धर्मग्रन्थ सभी लोग पढ़ते हैं।

मन्त्र, स्तोत्र, भजन भी लाखों-करोड़ों लोग जपते हैं, पाठ करते हैं, गुनगुनाते हैं।

पर जीवनकी गहराइयोंमें कितने लोग उतरते हैं ?

मनुष्य जब जीवनके भीतरी पर्देपर नजर डालता है, तब न उसे पता चलता है कि वह कहाँ है ? उसकी असली तसवीर क्या है, कैसी है !

तभी न उसके रोम-रोमसे यह आवाज उठती है—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

आत्मविश्लेषण ही मनुष्यको ऊपर उठा सकता है। पापीको धर्मात्मा बना सकता है। नीचको ऊँच बना सकता है। असंतको संत बना सकता है। अपवित्रको पवित्र बना सकता है, दुष्टको साधु बना सकता है।

बाहरसे हम चाहे जितने बड़े, ऊँचे, पवित्र माने जाते हों, उससे क्या बनता-बिगड़ता है ? बात तो है भीतरकी।

हमारा दिल कैसा है ?

हमारा हृदय कैसा है ?

वस्तुतः हम हैं कैसे ?

हमारे भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरके विकार ठूँस-ठूँसकर भरे हैं।

इन विकारोंपर कभी हमारी दृष्टि जाती है ?

जी नहीं, इनकी तरफ हम फूटी आँख भी ताकना नहीं चाहते। तब तो हो चुका हमारा उद्धार ?

× × ×

हम यदि सच्चे अर्थमें मनुष्य बनना चाहते हैं, अपने भीतर मानवीय गुणोंका विकास करना चाहते हैं, अपनी आजकी शोचनीय स्थितिसे ऊपर उठना चाहते हैं, सच्चे जिज्ञासु, साधक, भक्त या ज्ञानी बनना चाहते हैं तो हमें अपने हृदयकी गहन-गुफामें उतरना ही पड़ेगा !

अपने भीतर जो बुराइयाँ भरी पड़ी हैं, जो कमियाँ भरी पड़ी हैं, उन्हें दूर किये बिना और हृदयको शुद्ध, पवित्र, निर्मल और निर्विकार बनाये बिना गति नहीं।

आइये, हम जाकिर साहबकी अलविदाके इन क्षणोंमें उनसे आत्मविश्लेषणकी शिक्षा लें, अपने दिलको धो-धोकर, माँज-माँजकर स्वच्छ और पवित्र बनायें। अपनेको हम निर्विकार बनायें।

अपने ऐबों पर नजर कर अपने दिल को पाक कर,
क्या हुआ गर खल्क में तू पारसा मशहूर है !

जिस क्षणसे हम अपने दिलको पाक करनेके, पवित्र करनेके पराक्रममें जुट जायेंगे, उसी क्षणसे हमारा जीवन पवित्रसे पवित्रतर, उच्चसे उच्चतर और उत्तमसे उत्तमतर होता चलेगा। इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं।

शुभं भूयात् !

नित्य भगवान्‌को भजो और उन्हींके मनभाये सत्कर्म करो

देखो अपने दोष, न देखो दोष पराये भूल कभी।
दोष मिटानेमें लग जाओ, करो प्रयोग उपाय सभी॥
बनकर विनय-विनम्र, छोड़ मद-मान, मान-सत्कार करो।
गुणी जनोंके गुण ले-लेकर उनसे अपना हृदय भरो॥
सदा सतर्क रहो, रंचक भी दोष न उर रहने पाये।
भजो नित्य भगवान, करो सत्कर्म उन्हींके मनभाये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण अपनी भंगिन बूआके मकानपर भेंट लेकर गया

[सुप्रसिद्ध कथावाचक पूज्य पं० श्रीमथुराप्रसाद शर्माजी महाराजकी जबानी]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

बिल्कुल सत्य घटना

पिछले वर्षकी बात है । हम कार्तिक पूर्णिमाके मेलेपर भारतके सुप्रसिद्ध महान् तीर्थ श्रीगढ़मुक्तेश्वर गये हुए थे। वहाँ घूमते-घूमते सहसा हमें मेरठका सनातनधर्म-रक्षिणी सभाका कैम्प दिखायी पड़ा। अंदर जाकर देखा तो सनातनधर्मके विद्वान् पूज्य आचार्य श्रीरामजी शास्त्री, वागीशजी महाराज, पूज्य पं० श्रीगंगाशरणजी रामायणी और पूज्य पं० श्रीमथुराप्रसाद शर्मा व्रजवासीजी महाराज कथावाचक आदि पूज्य भूदेव ब्राह्मण विराजमान थे । हमने सबके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। बात चलनेपर पूज्य कथावाचक —पं० श्रीमथुराप्रसाद शर्मा व्रजवासीजी महाराजने हम कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिका अपने चमार-भंगी आदि अन्त्यज बन्धुओंसे कैसा विलक्षण प्रेम था, इस सम्बन्धकी अपने स्वयंके जीवनमें घटी बिल्कुल सत्य घटना सुनायी, जिसे सुनकर सभी गद्गद हो गये । आपने कहा—

भक्त रामशरणदासजी ! आज जो यह कहा जा रहा है कि पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि सनातनधर्मी लोगोंने चमार, भंगी आदि बन्धुओंके ऊपर अत्याचार किये हैं। यह बात इनकी बिल्कुल झूठी है और सबको आपसमें लड़ाकर तथा फूटके बीज बोकर हिंदू जातिका एवं देशका सर्वनाश करनेवाली है । पहले गाँवोंमें ब्राह्मणसे लेकर भंगी तक सब आपसमें बड़े प्रेमसे रहते थे । सब आपसमें एक दूसरेको यथायोग्य ताऊ, चाचा, बाबा, दादी मानते थे तथा कहते थे एवं एक दूसरेके दुःख-सुखमें शामिल होते थे। उन दिनोंकी बातें आज भी स्मरण करके हृदय गद्गद हो जाता है । इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि पहलेके मनुष्य एक दूसरेका जूठा खाने-पीनेवाले आचारभ्रष्ट नहीं थे, पर उनका आपसका कैसा अद्भुत विलक्षण प्रेम था। इसे जरा सुनिये और इसपर विचार कीजिये ।

मैं ब्राह्मण होकर अपने विवाहमें अपनी भंगिन बूआको भेंट लेकर उसके मकानपर कैसे गया ?

यह लगभग संवत् १९७२ की बात है । मेरा विवाह था । बारात गयी थी जुनारदार गनौरा ग्राममें । जब मेरा विवाह सम्पन्न हो चुका और बारातके बिदा होनेका दिन आया तो मेरे पूज्य पिताजीने अपने मनमें विचार किया कि इस गाँवमें हमारे गाँवकी कोई बेटी तो नहीं विवाही है ! झटसे उन्हें यह स्मरण आया कि इस गाँवमें तो हमारे गाँवकी डालू भंगीकी लड़की विवाही है । फिर क्या था। पूज्य पिताजी दौड़े हुए मेरे पास आये और आकर मुझसे बोले—

पिताजी—अरे मथुरा !

मैं—हाँ पिताजी !

पिताजी—बेटा ! तू जल्दीसे अपने नये कपड़े पहनकर तैयार हो जा। तुझे मेरे साथ चलना है ।

मैं—कहाँपर चलना है पिताजी ?

पिताजी—बेटा ! इस गाँवमें तेरी एक बूआ विवाही है, उसके घरपर चलना है ?

मैं—पिताजी ! इस गाँवमें मेरी बूआ—कौनसी बूआ विवाही है ?

पिताजी—अरे मथुरा ! तुझे क्या पता—तू अभी बालक है। यहाँपर तेरी एक बूआ विवाही है। यदि हम उसके घरपर नहीं गये तो कोई क्या कहेगा और वह तेरी बूआ भी बुरा मानेगी, उसे दुःख होगा और हमारी बड़ी बदनामी होगी ।

मुझे पिताजीके मुखसे यह सुनकर मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस गाँवमें तेरी बूआ विवाही है । मैंने मनमें विचार किया कि यदि इस गाँवमें मेरी बूआ विवाही होती तो क्या मैं अपनी उस बूआको अबतक कभी भी नहीं देखता और अपनी बूआको नहीं जानता ? पिताजीके डरसे मैं ज्यादा कुछ नहीं बोला । बस, मैंने इतना पूछा—

मैं—पिताजी मुझे क्या करना है ?

पिताजी—तुझे अपनी बूआको परोसे, साड़ी और ५) रु० भेंटमें देनेके लिये मेरे साथ चलना है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताजीकी आज्ञाकी देर थी । मैं झटसे कपड़े पहनकर तैयार हो गया । पिताजीने एक थाल सजाया, जिसमें असली घीकी कचौड़ी, पूरी-मिठाई आदि परोसे रक्खे और एक सुन्दर साड़ी रक्खी और चाँदीके ५) रुपये रक्खे । आगे-आगे तासे-बाजे, ढपले बजते चले जा रहे थे और पीछे-पीछे पूज्य पिताजी और मैं अपनी बूआके यहाँपर जा रहे थे । नाई हाथमें थाल लिये जा रहा था । बड़ा ही अद्भुत दृश्य था । जब कुछ दूर आगे बढ़े तो एक मोहल्ला आया, जिसमें कुछ सूअर इधर-उधर घूम रहे थे । मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम तो जातिके ब्राह्मण हैं । यहाँ हमारी बूआ इस सूअरोंके गंदे मोहल्लेमें कहाँपर विवाही है ?

आगे जा करके देखा तो एक भंगीका घर आया । जब उस भंगी-लड़कीने तासे-ढपले बजनेकी आवाज सुनी तो वह झटसे समझ गयी कि मेरे गाँवके मेरे भैया-भतीजे आ रहे हैं । वह अपना सब काम छोड़कर दौड़ी हुई घरसे बाहर आयी और उसने आवाज देकर सबसे कहा कि 'जल्दी आओ, मेरे भैया-भतीजे आये हैं ।' अब क्या था, अब तो सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया ।

उस लड़कीके सामने आते ही पूज्य पिताजीने उससे कहा कि 'बीबी राम-राम ।' उस लड़कीने कहा—'भैया! जीते रहो, तुम्हारी बड़ी उमर हो ।' पिताजीने मुझसे कहा कि 'बेटा मथुरा ! यह देख तेरी बूआ है, तू अपनी बूआको राम-राम कर ।'

मैंने झटसे हाथ जोड़कर कहा कि 'बूआजी ! राम-राम ।' तो भंगीकी लड़कीने कहा—'भैया, तू जीता रह और तेरी बड़ी उमर हो, तू सुखी रह ।' पिताजीसे उस भंगीकी लड़कीने पूछा कि 'भैया ! तुम राजी हो ?' पिताजीने कहा कि 'हाँ बीबी ! मैं तो राजी हूँ । तुम सब राजी-खुशी हो ?' भंगीकी लड़कीने कहा, 'हाँ भैया, सब राजी-खुशी हैं । भैया ! मैं तो सबसे यह कह रही थी कि मेरे भतीजेकी इस गाँवमें बारात आयी है । मेरे भैया-भतीजे मुझसे मिलनेके लिये जरूर ही आयेंगे । मैं तो तुम्हारे आनेकी बाट देख रही थी ।'

पिताजीने कहा कि 'बीबी ! भला यह कैसे हो सकता था कि जब तेरे भतीजेका विवाह हुआ है, फिर भी हम तेरे यहाँपर न आते ।'

इस प्रकार खूब घुट-घुटकर बातें होती रहीं ।

पिताजीने मुझसे कहा कि 'मथुरा ! अपनी बूआको यह मिठाई, साड़ी और ५) भेंटमें दे दे । मैंने झटसे उसे दे दिये और मेरी उस भंगीन बूआने अपना पल्ला पसारकर बड़े प्रेमसे ले लिये । वह बड़ी प्रसन्न हुई और उसने आशीर्वादोंकी झड़ी लगा दी ।

जब हम अपनी बूआजीसे विदा होकर वहाँसे चलने लगे तो वह बूआ खूब प्रेमाश्रु बहा-बहाकर रोयी और उसे हमें विदा करते हुए बड़ा दुःख हुआ । इधर हमारे पूज्य पिताजीके भी आँसू बह रहे थे ।

जब हम वापस जनवासेको लौटने लगे तो मैंने अपने पूज्य पिताजीसे पूछा कि 'पिताजी ! यह मेरी बूआ कौन-सी है ?'

पिताजी—'अरे मथुरा ! तू नहीं जानता कि यह हमारे गाँवकी डालू भंगीकी लड़की है, यह तेरी बूआ लगती है और मेरी बहन लगती है ।

मैं—पिताजी ! मैं तो ब्राह्मण हूँ, यह भंगीकी लड़की मेरी बूआ कैसे हो गयी !

पिताजी—तू बावला है । अरे बेटा मथुरा ! तू इतना भी नहीं जानता कि हमारे गाँवकी जो भी बेटी है, वह रिश्तेमें हमारी भी बेटी लगती है । जब यह हमारे गाँवकी बेटी है तो मेरी बहन और तेरी बूआ नहीं तो और कौन है ! डालू भंगी मेरे ताऊजी हैं, इसलिये यह मेरी बहन है ।

मैं यह सुनकर और इस प्रकारके आपसके अद्भुत विलक्षण प्रेमको देखकर आश्चर्यचकित रह गया । यह था हम कट्टर छुआछूत माननेवाले सनातनधर्मी हिंदुओंका आपसका अद्भुत दिव्य प्रेम, जो सारे विश्वमें ढूँढ़े भी नहीं मिलेगा । आजके पश्चिमीय सभ्यताके रंगमें रँगे मनचले बाबू लोग इस अद्भुत प्रेमके रहस्यको भला क्या समझें !

बोलो सनातनधर्मकी जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतकण

[संकलित]

जिसका भगवान्पर विश्वास होता है, जो भगवान्के नामपर त्याग करना जानता है, जो दुःख और विपत्तियोंमें भी उन्हें भगवान्का आशीर्वाद मानकर—अपने मङ्गलकी चीज मानकर भगवान्का कृतज्ञ होता है, जो भगवान्की दी हुई बुरी-से-बुरी और दुःखसे भरी दीखनेवाली स्थितिमें भी भगवान्के मङ्गलमुखकी हास्य-छटाको देखकर हँसता है, कोई भी दुःख-भार भगवान्के विश्वासके मार्गसे जिसको नहीं डिगा सकता, जो हर-हालतमें हँसता हुआ भगवान्की हरेक देनपर सच्चे दिलसे खुशी मनाता हुआ भगवान्के नामको पुकारता रहता है,—भगवान् उसके 'योगक्षेम'का वहन स्वयं करते हैं। उसका सारा भार अपने सिर उठा लेते हैं। यह सत्य है—ध्रुव सत्य है। हम अभागे मनुष्य विश्वासकी कमीसे ही दुःख-पर-दुःख उठाते हैं और भगवान्की बरसती हुई कृपासुधाधारासे वञ्चित रह जाते हैं!

× × ×

भगवान्के पथमें चलनेके लिये विशेष समझदारीकी जरूरत नहीं पड़ती, शास्त्रोंके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान-विज्ञानके गम्भीर रहस्योंकी छान-बीनकी—पुंखानुपुंख अनुसंधानकी आवश्यकता नहीं होती और न तत्त्वोंके विश्लेषणकी ही आवश्यकता है। आवश्यकता है एकमात्र हृदय-दानकी। प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक-न-एक दिन ऐसा आता ही है, जब वह भगवान्के संकेतको, प्रभुके इशारेको स्पष्ट देख-सुन पाता है। यह इशारा प्रत्येक प्राणीके लिये—जीवमात्रके लिये होता है। किंतु अधिकांश तो इसे देख-सुनकर भी अनदेखा-अनसुना कर देते हैं और जगत्के विषय-विलासोंमें ही रचे-पचे रह जाते हैं। कुछ ही ऐसे महाभाग होते हैं, जो उस इशारेपर अपने जीवनकी बलि देकर अपने-आपको, अपने लोक-परलोकको प्रभुके चरणोंमें निछावर कर देते हैं। ऐसोंका जीवन हरिमय हो जाता है। उनके सब कर्म श्रीकृष्णार्पण होते हैं। उनका खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, हँसना-खेलना, सब कुछ सहज ही भगवत्प्रीतिके लिये होता है।

× × ×

भगवान्का रहस्य, उनका प्रेम, उनकी लीला जाननेसे थोड़े ही जानी जाती है? यह सब कुछ और इससे भी अधिक गोपनीय रहस्यकी बातें भगवान् अपने भक्तोंको स्वयं जना देते हैं और सच्चा जानना तो वस्तुतः तभी होता है, जब स्वयं श्रीभगवान् हमारे हृदय-देशमें अवतरित होकर हमें जनाते हैं—अपनी एक-एक बात कहते हैं। उनकी एक मृदुल मुस्कान, एक मन्द मधुर हास्यमें हमारे सारे प्रश्न, सारी पहेली, समस्त शङ्काएँ बह जाती हैं। जीवनकी गति गङ्गाके प्रवाहकी तरह अविच्छिन्नरूपसे श्रीकृष्णचरणोंकी ओर प्रवाहित होने लगती है; समस्त जगत् आनन्दके महासमुद्रमें डूब जाता है। श्रीकृष्णप्रेमके अतिरिक्त कोई वस्तु रह नहीं जाती। भगवान् भक्तको आलिङ्गनका सुख देकर प्रीतिसे उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको शीतल कर देते हैं। उसे बरबस गोदमें उठा लेते हैं और पावन पीताम्बरसे उसके आँसू पोंछते हैं। प्रेमभरी दृष्टिसे देखते हुए उसे सान्त्वना देते हैं। ऐसी ही उनकी लीला है। अनेक भक्तोंका जीवन इसका साक्षी है। आज भी यह अनुभव दुर्लभ नहीं।

× × ×

कितनी गजबकी है उनकी प्रीति! हम एक बार उनकी ओर देखते हैं तो वे लाख-लाख बार हमारी ओर दौड़ते हैं और हमारे प्रेमके ग्राहक बन जाते हैं। एक बार भी जो उनकी पकड़में आ गया, वह सदाके लिये उनका बन जाता है; जिसे वे एक बार छू देते हैं, उसे सदाके लिये ही अपना लेते हैं। प्रेमके लिये वह प्रेमका भूखा प्रभु दर-दर ठोकरें खा रहा है। घर-घर एक-एक व्यक्तिसे वह प्रेमकी भीख माँग रहा है। हम दुत्कारते हैं, फिर भी वह निपट-प्रेमी हमारी उपेक्षा, भर्त्सनाका ध्यान न कर बार-बार आता है और कहता है—'हे जीव! प्रेमका एक बूँद देकर मुझे सदाके लिये खरीद लो। मैं तुम्हारा गुलाम बन जाऊँगा।'

परंतु हाय रे मनुष्यका अभाग्य! इस अनोखे अतिथिकी प्रणय-भिक्षाकी ओर हमारी दृष्टि कभी जाती ही नहीं। हम डरते हैं कि एक बार उधर दृष्टि गयी नहीं कि हम बिके नहीं।

× × ×

कैसे-कैसे खेल हैं उस खिलाड़ीके! उसकी ओर न झुकों तो बार-बार दरवाजा खटखटाता है, रात-दिन परेशान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये रहता है। न खाने देता है न सोने। लेकिन जब उसकी ओर प्राणोंकी हाहाकार लेकर मुड़ो, तब वह छलिया जाने कहाँ छिप जाता है और ऐसा छिपता है कि बेनिशाँ हो जाता है। लापता हो जाता है। मिलना, मिल-मिलकर बिछुड़ना और फिर बिछुड़-बिछुड़कर, एक क्षणकी झलक दिखाकर फिर छिप जाना, यह लुका-छिपी उसकी सर्वथा निराली होती है। क्षणभरमें प्रकट होगा, क्षणभरमें छिप जायगा। हृदय खोलकर मिलेगा और क्षण ही भरमें खिसक जायगा। न उसे पकड़ते बनता है, न छोड़ते। जन्म-जन्मसे हम उस रूपको निहारते आये हैं; फिर भी आँखें तृप्त नहीं हुईं, फिर भी जी नहीं भरा, हृदय नहीं अघाया।

× × ×

जिस प्रकार वर्षा ऋतुके आनेपर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, हवा जोरसे चलने लगती है, फूल खिल जाते हैं और पक्षी आनन्दमें डूबकर कूजने लगते हैं, उसी प्रकार प्रियतम प्रभुके दर्शन हो जानेपर आनन्दित होकर नेत्र जल-वर्षा करने लगते हैं, होठ मृदुहास्य करने लगते हैं, हृदयकी कली खिल उठती है, आनन्दके झोंकेसे मस्तक हिलने लगता है, प्रतिक्षण उस प्रिय सखाके नामकी गर्जना होने लगती है और प्रेमकी मस्ती प्रभुके गुण-गानमें सराबोर कर देती है। मिलन और विरह—दोनों ही साधन हरि-मिलनके ही हैं। इस आनन्दका पता न कर्मीको है न निष्कर्मीको, न ज्ञानीको है न ध्यानीको। वेद भी इसका पार नहीं पा सकते, विधिकी यहाँतक पहुँच नहीं। यह तो केवल रसिक हृदयोंके निकट ही चिर-समुज्ज्वल है। यही है साधनाका शेष, यही है प्रेमकी चरम लीला। यही है योगियोंकी परम योग-सिद्धि, यही है भक्तोंको भक्तिकी प्राप्ति और यही है प्रेमी-जनोंका पूर्ण-प्रणय-महोत्सव!

× × ×

प्रेमके अनियारे बाणसे जिसका हृदय बिंध जाता है, उसकी दशा उन्मत्तकी-सी हो जाती है। जगत्‌की कोई चर्चा उसे नहीं सुहाती। चेष्टा करनेपर भी वह कुछ बोल नहीं सकता। उसका शरीर पुलकित हो उठता है। उसके रोम-रोमसे प्रेमकी किरण-धाराएँ निकलकर निर्मल प्रेमज्योति फैला देती हैं। समस्त वातावरण प्रेममय हो जाता है। वह प्रेमावेशमें बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने और नाचने लगता है।

× × ×

जिस-किसी भी निमित्तसे भगवान्‌में विश्वास उत्पन्न हो और बढ़े, वह निमित्त देखनेमें यदि असुन्दर भी हो, तो भी वस्तुतः बड़ा ही सुन्दर, श्रेष्ठ, वरणीय तथा वन्दनीय है।

× × ×

शरीरसे किसीका कुछ भी बुरा न करके सदा भगवद्भावसे सबकी सेवा किया करो, वचनसे किसीको कभी कठोर वाणी न कहकर सत्य, हितकर, मधुर और परिमित वाणीसे तथा भगवन्नाम-गुणादिके दिव्य कीर्तन-गायनसे सबको सुख पहुँचाया करो और मनसे द्रोह, दम्भ, काम, क्रोध, लोभ, विषाद और जगच्चिन्तनरूपी विषसमूहको निकालकर प्रेम, सरलता, सचाई, प्रसन्नता, संतोष और नित्य भगवच्चिन्तनादिकी अमृतधाराके द्वारा सबका मङ्गल किया करो और यह सब भी किया करो केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। यही यथार्थ त्रिदण्ड है। जो इनको धारण करता है, वही त्रिदण्डी है। तुम इन तीनों दण्डोंको धारण कर सदाके लिये त्रिदण्डी बन जाओ।

× × ×

यहाँके संयोग-वियोग सब उन लीलामयके लीलासंकेतसे होते हैं और होते हैं हमारे मङ्गलके लिये। इस बातका जिसको पता है, वह न तो दुःखके संयोगसे दुखी होता है न सुखके वियोगसे। उसे तो सभी समय, सभी संयोग-वियोगोंमें, सभी दुःख-सुखोंमें सदा अखण्ड सुख, अखण्ड शान्ति और अखण्ड तृप्तिका अनुभव होता है।

× × ×

हमलोग देवत्वसे मनुष्यत्वको प्राप्त हुए हैं। हमारे पूर्व-पुरुष देवलोकसे भूतलपर अवतरित हुए और वहीं गये। हम भारतवर्षीयोंका मूलस्थान स्वर्ग ही है। वहींसे हम भी अपने पूर्वजोंकी तरह आये हैं और वहीं जाना है। इसी हेतु वैदिक-कर्मोंका यथाविधि अनुष्ठान किया जाता है। उन कर्मोंमें दिव्य शक्तियाँ व्याप्त होती हैं। अनुष्ठानसे वे विकसित होकर कर्तामें अपूर्वरूपसे प्रविष्ट हो जाती हैं और अन्त समय उनके बलसे वह ऊर्ध्वलोकको खिंच जाता है। यही सामान्यतः भारतवर्षीय आर्यजातिका अपूर्व वैशिष्ट्य है। इसके परे सर्वोत्कृष्ट धर्म जीवमात्रका परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, जिसमें सम्पूर्ण दुःखोंका आत्यन्तिक अभाव है, आवागमनका राहित्य है, भव-बन्धनकी निवृत्ति है। इसे 'भागवतधर्म' कहते हैं। इसका एकमात्र लक्ष्य भगवान् ही हैं। वैदिक-कर्म इस विशेष धर्मके साधक हैं। जैसे सामान्य धर्म-कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञका उद्देश्य देवत्व है, वैसे ही इस विशेष धर्मका लक्ष्य भगवत्त्व है ।

× × ×

भगवत्पदको प्राप्त होना ही जीवमात्रका उद्देश्य है । जैसे स्वर्ग देवत्वका क्षेत्र है, वैसे ही भगवद्धाम अपराजित भगवत्त्वका देश है । स्वर्गमें पतनका भय है, सम्पूर्ण अमरत्व नहीं है; परंतु परम दिव्य त्रिगुणातीत देशकालाद्यनवच्छिन्न भगवद्धाम सर्वथा अभयपद है । वह निश्चल, निर्विकार और नित्य है । वहीं पूर्ण अमरत्व है, परंतु वह पद अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि वह वाङ्मनोगोचरातीत है । परमात्माका शब्दब्रह्म रूप ही विश्वमें प्रकट है । वही सम्पूर्ण सृष्टिको अपनी आनन्दमयी सर्वव्यापिनी अन्तर्गतिसे जीवन प्रदान कर रहा है । वह राम-नाम है । प्रणव भी उसीका भेद है । परंतु वह नियताधिकार है और राम-नाम सर्वाधिकार है । प्राणिमात्रको उसके जपका अधिकार है । जैसे प्रणव कर्मका साधक होता हुआ ब्रह्मज्ञानका उत्पादक है, वैसे ही राम-नाम पुरुषोत्तमकी भक्तिका परितोषक होता हुआ परमात्मज्ञानका परिपोषक है । अतएव उसका जप सबको करना चाहिये । कलियुगमें यही संसृति-संस्तरणका सर्वोपरि सुगम साधन और विधि-निषेधरहित अमोघ दिव्य मन्त्र है, कल्याण-कल्पतरुका बीज एवं फल दोनों है ।

(संग्रहकर्ता और प्रेषक--श्रीशालिग्राम)

मानसिक विकास एवं सत्संगपर एक दृष्टि

(लेखक--श्रीजयकान्तजी झा)

हमारी उपासना एवं कार्य-क्षमता तभी सच्चा रूप धारण करेगी, जब उसमें हमारे मनका संयोग होगा । यदि हम हाथ जोड़कर, विशेष रूपसे आसनपर ध्यानावस्थित होकर, आँखें मूँदकर भगवान्‌के सामने बैठकर प्रार्थना करनेकी मुद्रा बनावें, किंतु हमारा मन कहीं और हो तो वह प्रार्थना सच्ची न होकर एक दिखावा मात्र ही होगी । इसके विपरीत यदि किसी अपवित्र स्थानमें बैठे होनेपर भी हम हृदयसे प्रभुका स्मरण करें अथवा उनसे श्रद्धायुक्त किसी प्रकारकी विनती करें तो वह सच्चा ध्यान अथवा सच्ची प्रार्थना होगी । इसलिये बाहरी आचार-व्यवहारकी उतनी प्रधानता नहीं है, जितनी मनकी एकाग्रताकी है । हमारा मन कब किस रूपमें कहाँ जा रहा है—इस विषयमें हमें सजग रहनेकी आवश्यकता है । हमारा मन रथमें जुते हुए घोड़ेके समान है, जो अनियन्त्रित होनेपर सवारको गड्ढे, तालाब, नदी, खाई अथवा और किसी भयानक स्थानमें गिराकर उसका पतन कर सकता है । इसलिये हमें अपने मनपर सर्वदा नियन्त्रण रखते हुए उसे अपने लक्ष्यकी ओर लगानेका प्रयत्न करना चाहिये ।

जहाँ हमारा मन है, वहीं हम हैं । यदि हमारा शरीर मन्दिरमें है और हमारा मन वेश्यालयमें है तो हम उस समय सचमुच मन्दिरमें नहीं, अपितु उस अपवित्र स्थानमें हैं, जहाँ हमारा मन चक्कर काट रहा है, यह नितान्त सत्य है । जबतक हमारा मन विषयाकार होता रहता है, तबतक उसे सँभालनेकी बड़ी आवश्यकता है । मनकी सँभाल करते-करते जब वह स्थिति आ जाय कि मनमें निरन्तर परम पिता परमात्माका ही एकमात्र चिन्तन होने लगे, उस समय मनकी सँभालका प्रश्न समाप्त हो जाता है और मनुष्य उस अवस्थामें पहुँच जाता है जिसे 'ब्राह्मी स्थिति' कहते हैं; किंतु अनन्त जन्मोंके पुण्योंके फलस्वरूप ही यह स्थिति प्राप्त होती है ।

हम सबमें भोगोंकी कामना होती है । यह कामना हमारे मनद्वारा विभिन्न रूपोंमें व्यक्त होती है । हम संकल्प-विकल्प करके अपने मनके नाना प्रकारके आकार बनाते हैं और सांसारिक वैभव एवं विषयोंके चिन्तनमें लगे रहते हैं । हमारा मन सदा विषयोंकी ओर दौड़ा करता है और उनकी प्राप्तिके लिये व्यग्र रहता है । विषयोंका यह नियम है कि मनुष्य जितना ही उनकी ओर दौड़ता है, उतना ही वे दूर होते चले जाते हैं; क्योंकि सांसारिक विषय-भोग अपूर्ण हैं और जो वस्तुएँ स्वयं अपूर्ण हैं वे किसी व्यक्तिको कैसे पूर्णता (सच्ची शान्ति) प्रदान कर सकती हैं ? इसके विपरीत केवल भगवान् ही पूर्ण हैं और उन्हींकी प्राप्तिसे पूर्ण शान्ति एवं अखण्ड आनन्द प्राप्त हो सकता है । यही बात यदि हमारा मन सच्चे अर्थोंमें ग्रहण कर ले तो हमारा दुःख-दैन्य सदाके लिये दूर हो जाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भोग्य-पदार्थोंको क्यों चाहते हैं ? केवल इसीलिये तो कि हमें उनमें सुखका आभास होता है । यदि हम सुख ही चाहते हैं तो क्यों न समस्त सुखोंके केन्द्र भगवान्की कामना करें, जिनसे समस्त सुख उत्पन्न हुए हैं और जिनकी कृपापर समस्त विश्व अवलम्बित है । हमें मनको यही समझाना है, यही समझ लेनेपर हम अपने लक्ष्यतक पहुँच सकेंगे । भगवान्की प्राप्तिके लिये किसी विशेष प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है । उन्हें तो केवल तीव्र इच्छा मात्रसे ही प्राप्त किया जा सकता है । ऐसी तीव्र इच्छा विशेषकर संकटकी घड़ियोंमें ही उत्पन्न हुआ करती है । जब सांसारिक विषय-वासनाओंकी ज्वालासे संतप्त होकर मन विक्षुब्ध हो उठता है, उस समय एकमात्र प्रभुको छोड़कर किसीकी ओर ध्यान नहीं जाता और ऐसे समय मन स्वभावतः प्रभुकी ओर लगकर उनसे करुण पुकार करता है । क्षणमात्रमें प्रभु भक्तके सामने उपस्थित होकर उसकी मनःकामना पूरी करते हैं । इसीलिये माता कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे यही वरदान माँगा था कि 'हे प्रभो ! मैं जहाँ-कहीं जिस अवस्थामें रहूँ, विपत्ति हमारा साथ न छोड़े; क्योंकि विपत्तिमें ही आपका दर्शन होता है ।' सती साध्वी द्रौपदीके लिये श्रीकृष्ण भगवान्का वस्त्रावतार धारण करना, गजकी करुण पुकारपर भगवान्का प्रकट होकर ग्राहसे गजका उद्धार करना आदि सच्ची प्रार्थनाके ही उदाहरण हैं । इसीलिये हमें सतत अपने मनको विषयाकार न बनाकर भगवदाकार बनानेका प्रयत्न करना चाहिये ।

यदि हमारी भूल किसी समय प्रकट हो जाती है तो हमें लज्जा एवं संकोचका अनुभव होता है । यह संकोच केवल इसीलिये होता है कि लोग हमारी गलती जान गये । ऐसा संकोच अथवा ऐसी लज्जा बेकार है । लज्जा होनी चाहिये भूल करनेमें, किये हुए पापोंपर परदा डालनेमें । यदि हमसे कोई भूल हो जाय तो उसे शीघ्र प्रकट करनेमें ही हमारी महानता है । यदि पाप करनेमें हमें लज्जा आने लगे अथवा पापोंको छिपानेमें हमें संकोच हो तो इस लज्जा अथवा संकोचसे हम शीघ्र ही भगवान्की ओर मुड़ते हैं । हमें सतत अपनी सात्त्विकी बुद्धिका आश्रय लेकर प्रभु-चरणोंमें नत-मस्तक हो अपने मनकी सँभाल करनी चाहिये । हमें प्रभुके परम पावन धाममें जाना है और जिस रथपर सवार होकर वहाँ पहुँचना है, उस रथकी लगाम यह हमारा मन है । इसलिये इस मनकी देखभाल उचित रूपसे करनी चाहिये ।

भगवान्में पूर्ण विश्वास न होनेके कारण ही हमें नाना प्रकारके भय सताया करते हैं । जब घट-घटव्यापी सर्वशक्तिमान् प्रभु हमारे सुहृद् हैं तो भय किसका ? **'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** भगवान्के इस वचनको ध्यानमें रखते हुए हमें सतत निर्भय होकर सन्मार्गका अवलम्ब लेते हुए जीवनका प्रत्येक कार्य सुचारु रूपसे करते रहना चाहिये । यही सफलताकी कुंजी है ।

यदि हम प्रभुको छोड़कर और किसी वस्तुकी कामना न करें, अपनी कामनाकी दिशा सांसारिक विषयोंकी ओरसे मोड़कर प्रभुकी ओर कर दें तो हमें समस्त सुखोंकी खान प्रभु मिल जायँ और हमारा मन भी धुलकर विषयाकारसे भगवदाकार बन जाय । इसके लिये हमें यह ध्यान रखना होगा कि जितनी बार हमें किसी वस्तुके लिये कामना उत्पन्न हो, उतनी बार हम उस कामनाको भगवान्की कामनाके आकारमें ढाल लें और ऐसा विचार करें कि एकमात्र प्रभुके सिवा हमें कुछ भी नहीं चाहिये । अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये इससे बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है ।

यदि भगवान्में हमारा विश्वास नहीं तो जगत् हमारे लिये नरकके सिवा और कुछ नहीं । स्थूल जगत्के भोग हमें अंधा बना देते हैं और इसकी चकाचौंध हमें प्रतिक्षण व्यग्र करती रहती है । वर्तमान जगत्के प्रायः सभी क्षेत्रोंमें अविश्वास एवं अश्रद्धाका ताण्डव नृत्य दिखायी पड़ता है और इसी जगत्को सत्य समझकर लोग विषय-लोलुप होकर पतनकी ओर जा रहे हैं । किंतु ऐसे समयमें भी विषयोंकी कामनासे उत्पन्न भयंकर आघात जिस समय मनुष्योंके हृदयको विदीर्ण करते हैं और जब उसे कोई सहारा नहीं दीख पड़ता, उस समय लोग ऐसी अचिन्त्य शक्तिकी खोज करते हैं जो उन्हें शान्ति प्रदान कर सके । ऐसे समयमें बड़े पापियों एवं नारकीयोंके मुखसे भी सहसा निकल पड़ता है—'हे प्रभो ! अब आप ही मुझे बचा सकते हैं ।'

सांसारिक वस्तुओं एवं भोग्य पदार्थोंको प्राप्त करनेके लिये हमें सदैव व्याकुलता बनी रहती है; परंतु परम सुहृद् प्रभुको पानेके लिये हम कभी भी व्याकुल नहीं होते । सांसारिक पदार्थोंके लिये हमें जितनी व्याकुलता रहती है उतनी यदि प्रभुके लिये हो तो हमारा काम बन जाय । हम यदि अपने प्रभुके लिये रोयें तो हमारे आँसू सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलिनताको धोकर हृदयको स्वच्छ बना दें और ऐसे स्वच्छ हृदयमें हमें प्रभुकी झाँकी शीघ्र दिखायी पड़ने लगे। मानसिक विकासके लिये हमें सत्संगकी परम आवश्यकता है।

एक घड़ी आधी घड़ी आधिहु में पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की हरै कोटि अपराध॥

क्षणमात्रका सत्संग भी ऐसा प्रभाव दिखलाता है कि मनुष्यका जीवन आलोकमय हो उठता है और पापीसे पापी व्यक्ति भी प्रभुकी दिशामें मुड़कर उधर अग्रसर होने लगते हैं। अजामिल, गणिका आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सत्संग मुक्तिका मार्ग है। इसके फलस्वरूप समस्त संसारी भोग तुच्छ हो जाते हैं। ब्रह्मपद भी बुरा मालूम होने लगता है। असत् वस्तुओंकी चाह शाश्वत आनन्दरूप सत्का अनुभव नहीं होने देती। सत्संगद्वारा अपने-आपका निरीक्षण होता है, असत्यके प्रति विराग और सत्यके प्रति अनुराग होता है एवं दोषोंका दुःखसहित ज्ञान होता है। वास्तविक सत्संगी तो सबके साथ सद्व्यवहार रखते हुए अति सुखद या दुःखद सभी परिस्थितिमें सत्संगद्वारा प्राप्त विवेकका सदुपयोग करते हुए सदा गम्भीर और शान्त रहते हैं तथा अपने लक्ष्यको कभी न भूलते हुए त्यागद्वारा निर्दोषिता, तपद्वारा शान्तिशीलता और अपनत्वके द्वारा प्रीतिको पूर्ण बनाते रहते हैं। पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहिं बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

संसारके भोग-पदार्थोंमें सुख और नित्यताका बोध बहुत भारी मोह है। इस मोहका नाश हुए बिना भगवान्के चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं होता। मोहका नाश होनेके लिये भगवान्के गुण-प्रभाव-महत्त्वका रहस्य बतानेवाली हरिकथा होनी चाहिये और विशुद्ध हरिकथा सत्संगके बिना प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार सत्संग ही मानसिक विकासका सर्वोत्तम साधन है। श्रीमद्भागवतमें श्लोक है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(१।१८।१३)

अर्थात् भगवत्संगीके लवमात्र संगके साथ भी स्वर्ग क्या मोक्षकी भी तुलना नहीं हो सकती, फिर संसारके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है?

शास्त्र तथा सच्छास्त्रोंद्वारा सत्की महिमा सुनकर असत् वस्तुओंसे सम्बन्ध तोड़कर सत्को परमाधार जान लेना ही सत्संग है। असत्को अपना माननेसे ही मोह, लोभ, अभिमान आदिकी वृद्धि होती है। सत्को अभिन्न मान लेनेपर असत्के प्रति मोह, लोभ और अभिमानकी निवृत्ति होती है। इसी लक्ष्यपर दृष्टि रखते हुए मानसिक विकासके लिये हमें सदा-सर्वदा सत्संग करते रहना चाहिये। सत्संगमें सत्यका वर्णन सुननेपर शरीर कर्तव्य-कर्मोंमें पूर्ण परिश्रमी हो जाता है, आलस्य नहीं रहता है, इन्द्रियाँ संयमी हो जाती हैं, विषयलोलुपता समाप्त हो जाती है और प्रमादका सर्वथा अभाव होकर मन पवित्र भावोंसे भरकर निर्दोष हो जाता है। सत्संगसे हमें अपनी वास्तविक आवश्यकताका ज्ञान होता है। हमें अनुभव होता है कि हम मृत्युसे अमरत्व अर्थात् नित्य जीवन, जिज्ञासासे तत्त्वज्ञान, दुःखसे आनन्द, जडतासे चेतना और परतन्त्रतासे स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर होना चाहते हैं।

सत् परमात्माको कहते हैं। अतः सर्वोत्तम सत्संग तो परमात्माका ही संग है जो केवल संत-महात्माओंको प्राप्त रहता है। द्वितीय श्रेणीका सत्संग उन भगवत्प्राप्त संत-महात्माओंका संग है। इनके हृदयमें दिव्य गुणोंकी अपार शक्ति भरी रहती है। इनके भाषणसे उनके हृदयगत सद्भावोंका विकास होता है। इससे उसे सुननेवालोंपर तो यथाधिकार प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही वह वाणी, शब्द नित्य होनेके कारण सारे आकाशमें व्याप्त होकर स्थित हो जाती है और जगत्के प्राणियोंका सदा सहज ही मङ्गल किया करती है।

इस प्रकार सत्संगके द्वारा हमें सदैव अपना मानसिक विकास करते रहना ही अभीष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

घरमें अपार धन गड़ा है, परंतु जबतक हमें उसका पता नहीं है, तबतक हम दरिद्र ही हैं। पता लगनेके साथ ही हम धनी हो जाते हैं, चाहे उस धनको गड़ा ही रहने दें; क्योंकि अब तो वह हमारा ही है।

× × × × × ×

(१) जबतक हमारे अंदर राग-द्वेषादि, आसक्ति, कामनादि दोष है,

(२) जबतक अनायास ही प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन नहीं होता,

(३) जबतक चित्तमें जरा भी क्षोभ और विषाद है और

(४) जबतक भगवान् ही हमारे एकमात्र आकर्षण, ममत्व और निजत्वकी वस्तु नहीं बन जाते, तबतक समझना चाहिये कि हमने अपने ऊपर नित्य-निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाको पहचाना नहीं। भगवत्कृपाको पहचाननेका साधन भी भगवत्कृपा ही है।

× × × × × ×

किसी भी मनुष्यकी कृपा-अकृपासे क्या होता है? कृपा करके वह क्या कर सकता है, जो स्वयं ही दूसरेकी कृपाका भिखारी है और उसकी अकृपा भी किसीका क्या बिगाड़ सकती है, यदि भगवान् सहायक होते हैं। हाँ, भगवान्‌की कृपासे सब कुछ हो सकता है—सम्भव भी असम्भव और असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

× × × × × ×

संयोग-वियोगमें सुख-दुःख नहीं करना चाहिये। भगवान्‌का वियोग तो कभी होता नहीं और शरीर तथा संसारके सब पदार्थ निश्चित वियोगशील हैं। इनसे सदा संयोग रह ही नहीं सकता। पेड़पर संध्याको बहुत-से पक्षी आकर बैठते हैं, सबेरा होते ही अपने-अपने स्थानपर उड़ जाते हैं। या एक धर्मशालामें बहुत मुसाफिर ठहरते हैं, फिर सब अपने-अपने गन्तव्य स्थानपर चले जाते हैं। यही दशा इस संसारकी और घरकी है। यही समझकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये। कभी खिन्न नहीं होना चाहिये।

× × × × × ×

हम इस संसारके जिन लोगोंको अपना साथी समझते हैं, उनमें प्रायः अधिकांश हमारी सफलतापर ही हमारा साथ देते हैं। असफलताकी स्थितिमें विरले ही सहानुभूतिके साथ हमारी सहायता कर पाते हैं। सच्ची बात यह है कि श्रीभगवान्‌के अतिरिक्त मनुष्योंमें ऐसी सामर्थ्य ही कहाँ है, जो किसीका दुःख बँटा सकें। हम दुनियाके लोगोंसे आशा-प्रत्याशा करते हैं, यही हमारी भूल है।

× × × × × ×

यद्यपि आजका युगधर्म पैसा हो रहा है। आडम्बरहीन तथा साधनातत्पर शुद्ध परमार्थक्षेत्रको छोड़कर शेष हर एक क्षेत्रमें आज पैसेका सम्मान है। इसको देख-सुनकर मनुष्यमात्रके मनमें पैसेवाला बननेकी स्पृहा साधारणतः जाग्रत् होना कोई अचरजकी बात नहीं है। परंतु विवेकशील पुरुषका भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैसेको मूल्यवान् समझना तथा उसे महत्त्व देना खेदकी बात है। विवेकसे यह कभी समझमें आ ही नहीं सकता कि पैसेसे मनुष्यके दुःख आत्यन्तिक रूपसे दूर हो सकते हैं। इसके विरुद्ध आजतकका इतिहास, संतोंकी वाणी और अपने अनुभवसे भी यही सिद्ध होता है—पैसा परमार्थमें प्रायः बाधक ही होता है।

× × × × × ×

धनमें एक तरहकी मादकता होती है, जो मनुष्यको साधनसे गिरा देती है। उसके सामने ऐसे-ऐसे प्रपञ्च आ जाते हैं, ऐसा वातावरण बन जाता है, जिससे बरबस उसे परमार्थसे हटना पड़ता है और उसे अपनी भूल उस अवस्थामें प्रायः मालूम ही नहीं पड़ती।

× × × × × ×

सम्भव है, कोई लाखों-करोड़ों रुपये कमा ले, परंतु इससे उसकी असली स्थितिमें क्या उन्नति होगी ? समता, ईश्वरपरायणता, वैराग्य, सत्यपर दृढ़ता, निरभिमानिता, क्षमा, यथार्थ नम्रता आदि गुण ही मनुष्यको ऊँचा बनानेवाले हैं और ये ही उच्चताके लक्षण हैं। मनुष्य सब प्रकारकी सांसारिक स्थितिसे दीन-हीन हो, रोटीके टुकड़ेका भी अभाव हो, अपमानित हो, कोई पूछनेवाला न हो, साथी-संगी-सहायक, अपना या आश्रयदाता कोई न हो, शरीर भी रोगी रहता हो—यह सब कुछ होनेपर भी यदि वह कामना, क्रोध, लोभ, वैर, मद, ईश्वरविमुखता, आसक्ति, असत्य आदि दोषोंसे रहित और उपर्युक्त गुणोंसे युक्त है तो वह वास्तवमें परम श्रेष्ठ—उन्नत स्थितिमें है। इसके विपरीत मान, धन, पद, प्रतिष्ठा, नीरोगता आदि खूब हों, परंतु उपर्युक्त सद्गुणोंका अभाव हो तो वह किसी कामका नहीं।

× × × × × ×

झंझटोंसे मनुष्य मुक्ति चाहता कहाँ है ? वह तो नये-नये झंझट मोल लेना चाहता है और चाहता है कि सब लोग हमारे अनुकूल हो जायँ। आजके राग-द्वेषभरे युगमें तो यह सर्वथा ही व्यर्थ आशा है। यदि इन सब अडंगोंसे दूर रहना हो तो साहस करके धन-मानकी कमीका सामना करनेके लिये तैयार होकर सब छोड़ देना चाहिये। जबतक चीलकी चोंचमें मांसका टुकड़ा है, तभीतक चील-कौवे उसके पीछे-पीछे उड़कर हैरान करते हैं। टुकड़ा फेंका कि फिर वह पेड़की डालपर आरामसे बैठ सकती है। कोई उसे सतायेगा नहीं। सब उस टुकड़ेपर टूट पड़ेंगे। लोग टुकड़ेके पीछे दौड़ते हैं, आदमीके पीछे नहीं।

× × × × × ×

भगवान्‌के भजन करनेकी बात भाग्यवानोंसे बनती है। इसका अर्थ यह नहीं मानना चाहिये कि जिनके पहलेके भाग्य हों, वे ही भजन कर सकते हैं। भजनमें प्रारब्ध हेतु नहीं है। यह अवश्य है कि जो भजन करते हैं वे ही भाग्यवान् हैं। रुपये-पैसे, धन-दौलत और पद-अधिकारवाले भाग्यवान् नहीं! और भगवद्भजनरूप इस भाग्यकी प्राप्तिका अधिकार सभीको है। भजन जो चाहे वही कर सकता है; लगन होनी चाहिये और मानव-जीवनका यही सबसे बड़ा और अत्यावश्यक कार्य है।

× × × × × ×

मनुष्यका जीवन मिला है केवल भगवान्‌के भजन करनेके लिये ही। इसको हमलोग जो संसारके भोगोंमें बिता रहे हैं और रात-दिन केवल विषयोंका ही चिन्तन करते हैं, यह बहुत बड़ी भूल है। संसारके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान तथा जीवन-मृत्यु तो सदा आते-जाते ही रहते हैं। इनमें दोनोंमें एक-सा भाव होना चाहिये। संसारके सुख, लाभ, मान और जीवनमें तथा दुःख, हानि, अपमान और मृत्युमें केवल श्रीभगवान्‌की ही लीला हो रही है। कभी वे दुःखके स्वाँगमें आते हैं, कभी सुखके स्वाँगमें। दोनोंमें उन्हींको देखकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये। अथवा यह समझना चाहिये कि यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है। सभी कुछ अनित्य और मरणशील है। यहाँके सब सम्बन्ध केवल आरोपित हैं। एक श्रीभगवान् ही अपने हैं। उन्हींमें अपना मन लगाना उचित है।

× × × × × ×

अभी उस दिन प्लेन-दुर्घटनामें अच्छे-अच्छे आदमी क्षणोंमें मर गये। न मालूम उनके क्या-क्या मनसूबे थे। यही हाल हम सब लोगोंका होनेवाला है।

× × × × × ×

शरीरके ढाँचेका कुछ पता नहीं, कब क्या हो जाय—कहाँ गिरकर टूट जाय! प्रतिक्षण ही मृत्युके लिये मनुष्यको सर्वतोभावसे तैयार रहना चाहिये। मृत्यु वास्तवमें जीव-जीवनका अन्त नहीं है, इससे इसमें भयकी कोई बात नहीं है। और यदि ज्ञानकी प्रबल अग्निसे जीव-जीवनका सर्वथा अन्त होकर वह भूमाकी सत्तामें मिल जाय तो और भी अधिक आनन्दकी बात है। अतएव सब तरहसे सदा-सर्वदा सावधान रहना चाहिये। जीवनभरका सारा साधन मृत्युकालीन शुभवासनाके लिये ही है; क्योंकि मनुष्यका भविष्य प्रधानतः इसीपर अवलम्बित है। मृत्युकालीन ब्राह्मी-स्थिति ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त करानेवाली होती है। इससे मृत्युको सदा ही सामने समझकर सदा-सर्वदा ब्राह्मी-स्थितिमें—भगवान्‌की ही स्मृतिमें स्थित रहनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्षणभङ्गुर शरीर एक दिन अवश्य जायगा; दो दिन आगे या पीछे। परंतु क्षणभङ्गुर होनेपर भी मुक्तिका सारा दारमदार इसीपर है।

× × × × × ×

कामना न दूर होती हो तो, मेरी तुच्छ समझमें सकाम भावकी पूर्ति भी भगवान्‌से करानी उत्तम है। माना कि इसमें भक्तिकी कमी है, भगवान्‌के तत्त्व और महत्त्वका पूरा ज्ञान नहीं है, परंतु भगवान्‌को छोड़कर दूसरे उपायोंकी शरण लेना तो व्यभिचार है।

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं, जिय जाचिअ जानकीजानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥

यह पद केवल गानेका नहीं है। यह तो सिद्धान्त है—माननेका और क्रियारूपमें लानेका।

× × × × × ×

जो सकाम हैं, वे भी यदि भगवान्‌पर निर्भर करें तो उनका भी परिणाममें परम कल्याण हो सकता है। जो सफलता मानवशक्तिके लाख प्रयत्नोंसे भी असम्भव है, वही भगवान्‌के एक संकल्पमात्रसे हुई तैयार रहती है। द्रौपदीका चीर बढ़नेकी बात क्या उपन्यासकी कहानी है? हम पढ़ते-सुनते हैं, कहते हैं, परंतु फिर भी काम पड़नेपर विश्वास नहीं कर सकते, यही तो हमारी एक प्रकारकी नास्तिकता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशप्रेमी महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना

गत २० अप्रैलको स्वर्गीय डाक्टर अम्बेडकरका ७८ वाँ जन्मदिवस-समारोह 'अम्बेडकर सामाजिक और सांस्कृतिक समिति'के द्वारा नगरा, झाँसीमें मनाया गया था। समारोहमें मुख्य अतिथि और वक्ता थे—श्रीशंकरानन्दजी शास्त्री (डिप्टी डाइरेक्टर श्रम तथा नियोजन, नयी दिल्ली)। उन्होंने समारोहमें उत्तेजनात्मक एवं आपत्तिजनक भाषण दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने भगवान् राम और सीताके प्रति भी अभद्र शब्दोंका प्रयोग किया। वे बोले—

'लोग कहते हैं कि राम अछूतों, पतितोंसे प्रेम करते थे, इसीलिये उन्होंने शबरीके जूठे बेर खाये। वास्तवमें ऐसा नहीं। उसकी औरत भाग गयी थी। शायद शबरी बड़ी गोरी खूबसूरत रही होगी। इसलिये राम उस औरतको चाहने लगा होगा। अपनी प्यारीके जूठे बेर कौन नहीं खायगा?' *

ये हैं धर्मनिरपेक्ष भारत-सरकारके एक उच्च अधिकारी-के शब्द, जो उन्होंने खुली सभामें सार्वजनिक रूपसे उन भगवान् रामके प्रति कहे हैं, जिनको युगों-युगोंसे करोड़ों-करोड़ों हिंदू साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानते आये हैं तथा जो अवतारवाद नहीं मानते, वे महानुभाव भी जिन श्रीरामके चरित्रको परम पुनीत और आदर्श मानते हैं। किसी दायित्व-ज्ञानसम्पन्न व्यक्तिने आजतक श्रीरामके चरित्रके सम्बन्धमें एक शब्द भी नहीं कहा। उन्हीं भगवान् श्रीरामके प्रति इस प्रकारका खुला लाञ्छन लगानेवाले तो जरा भी दोषी नहीं! इस विषयमें संसद्की बात तो अलग, बाहर भी कोई भी कुछ भी नहीं कहता और पुरीके जगद्गुरु शंकराचार्यने परम्परागत शास्त्रकी बातके आधारपर घृणामूलक नहीं, विज्ञानमूलक अस्पृश्यताकी बात कह दी, जिसको करोड़ों-करोड़ों हिंदू पढ़ते-सुनते और मानते आये हैं, तो वह घोर जघन्य अपराध हो गया!

सबमें एक परमात्माकी अभिव्यक्ति माननेवाले स्वयं परमात्मा श्रीकृष्णने भी गीतामें—'विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, चाण्डाल, गौ, हाथी और कुत्तेमें समदर्शी होकर समानभावसे ब्रह्म देखनेवालेको पण्डित (ज्ञानी) कहा है।' पर समवर्तनकी बात नहीं कही; क्योंकि समवर्तन इन पाँचोंमें सम्भव ही नहीं।†

वस्तुतः हमारे शास्त्रोंमें किसीसे भी घृणा करनेकी बात नहीं कही है, बल्कि यही एक ऐसा सनातन आर्यधर्म है, जिसे आत्मधर्म या विश्वधर्म कह सकते हैं, जो जड-चेतन सबमें एक आत्मा या एक ही भगवान्को देखनेका सिद्धान्त प्रतिपादन करता है और स्पष्ट आदेश देता है—

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥
नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २९। १४—१६)

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—'जो ब्राह्मण और चाण्डाल, चोर और सदाचारी ब्रह्मण्य, सूर्य और चिनगारी तथा कृपालु और क्रूरमें समदृष्टि रखता है, उसे पण्डित (ज्ञानी) मानना चाहिये। जब निरन्तर सभीमें मेरी (भगवान्की) ही भावना की जाती है, तब शीघ्र ही मनुष्यके चित्तसे स्पर्धा, दोषदर्शन, तिरस्कार और अहङ्कार आदि दोष दूर हो जाते हैं। अपने ही लोग चाहे हँसी करें तो उन्हें करने दें, उनकी ओर न देखकर मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है, ऐसी देहदृष्टिको और लोक-लज्जाको छोड़ दें और कुत्ते, चाण्डाल, गौ और गधेको भी पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करें।'

योगीश्वर कविके वचन हैं—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भागवत ११। २। ४१)

'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी, समुद्र सभी भगवान्के शरीर

* देखिये, नयी दिल्लीसे प्रकाशित 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक १३ मईका अङ्क।

† विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (५।१८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् ही प्रकट हैं—ऐसा समझकर वह चराचर भूतमात्रको अनन्य भावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करता है ।'

केवल मनुष्य या चेतन प्राणीमें ही नहीं, जड वृक्ष-लता, नद-नदी आदि सबमें भगवान्‌को देखनेकी बात कही गयी है। इतना ही नहीं; जो भगवान्‌का भजन करता है, भगवान्‌के चरणारविन्दमें अपनेको अर्पण कर चुका है, वह चाण्डाल (रहते हुए ही) अध्यात्मजगत्‌में सबसे श्रेष्ठ है ।

देवहूतिजी भगवान् कपिलसे कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

(श्रीमद्भागवत ३ । ३३ । ७)

'अहो ! वह चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ है, जिसकी जीभके अग्रभागपर आप (भगवान्) का नाम विराजमान है । जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया !'

भक्तराज प्रह्लाद कहते हैं—

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । ९ । १०)

'बारह प्रकारके गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरणकमलोंसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण—भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण कर दिये हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने सारे कुलको पवित्र (भगवत्प्राप्तिके योग्य) कर देता है और बड़प्पनका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ।'

इस प्रकार कण-कणमें भगवान्‌का दर्शन करनेवाले हिंदू-धर्ममें कहीं भी घृणाको स्थान नहीं है । तथापि उपर्युक्त सभी प्राणियोंमें प्रेमपूर्ण व्यवहारभेद तो यथायोग्य रहेगा ही । वेदान्तमें 'पारमार्थिक सत्ता'के साथ 'व्यावहारिक सत्ता' भी मानी गयी है। परमार्थमें अभेद 'त्रिकाल सत्य' होनेपर भी व्यवहारमें भेद रखना पड़ता है, नहीं तो व्यवहार चलता नहीं । सोना गहना बननेके पहले भी सोना है, गहने बननेपर—गहनेका नाम-रूप धारण करनेपर भी सोना है, फिर गहना गलाया जानेपर भी सोना है । सोना त्रिकाल सत्य एक है, पर गहना बननेपर उसके नाम-रूपके अनुसार व्यवहारभेद अनिवार्य है । हमारे सारे अङ्ग हम हैं, सिरमें चोट लगे या पैरमें—चोट हमें ही लगती है । पर आत्मभाव समान होनेपर भी अङ्गोंमें व्यवहारभेद हैं । अपने ही शरीरसे हम अशौच अवस्थामें घरकी पवित्र वस्तुओंका स्पर्श नहीं करते । शौच होकर आनेपर हाथ न धोनेतक उस हाथसे ऊपरके अङ्गका स्पर्श नहीं करते । पूज्यचरणा माता और प्रियश्रेष्ठ पत्नीका भी रजस्वला अवस्थामें स्पर्श नहीं किया जाता । वह भी अपनेको पृथक् रखती है ।

कहते हैं कि रजस्वला स्त्रीके स्पर्शसे या उसकी छाया पड़नेसे ही अचार, पापड़ आदि बनती हुई चीजें खराब हो जाती हैं । अमेरिकाके प्रो० शीक (Schick) ने अनुसंधान करके यह प्रमाणित किया है कि 'रजस्वला नारीके शरीरमें ऐसा कोई प्रबल विष होता है कि वह जिस बगीचेमें चली जाती है, उस बगीचेके फूल-पत्ते आदि सूख जाते हैं, फूलोंके वृक्ष मर जाते हैं, फल सड़ जाते हैं । कभी-कभी मर भी जाते हैं ।'*

डाक्टर टी० बी०के रोगीकी नब्ज देखकर हाथ धोते हैं । आपरेशन-कक्षमें सर्जन अपने हाथोंमें मोजे पहने रखते हैं । छूरे-कैंचीको ही नहीं, पट्टी बाँधनेके कपड़ेको भी हाथसे न छूकर चिमटीसे पकड़ते हैं । इन सबमें कहीं भी घृणाकी कल्पना नहीं है । व्यवहारभेद है और वह है विज्ञानमूलक । जैसे रोगका संक्रमण होता है, वैसे ही विचारों तथा संस्कारोंका भी संक्रमण होता है, यह तथ्य भी विज्ञानसम्मत है । इसीसे हमारे शास्त्रोंमें चोर, शराबी, व्यभिचारी आदिके भी स्पर्शका निषेध है । हरेकके बिछौनेपर सोने तथा हरेकके पहने हुए कपड़े पहननेका, किसीकी जूँठन खानेका निषेध है । इनमें कहीं भी घृणा नहीं है, आत्मरक्षा है ।

* देखिये—**American gournal of Clinical Medicine May 1921, Medical Record for February 1919 (P. 317) Abstracts and Article.**
(Wein Klin Wock, May 20, 1920)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे शास्त्रोंमें जन्मसे वर्ण माना गया है। अवश्य ही इसपर मतभेद है और वह मतभेद भी पुराना है। उसका निर्णय शास्त्रज्ञ लोग करें। पर यह तो निश्चित है—प्रत्यक्ष है कि जन्मना-वर्ण लाखों-लाखों वर्षोंसे माना जाता है। उसमें अस्पृश्यता भी है। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यने जो कुछ कहा है, उसमें शास्त्रकी वह बात कही गयी है, जिसको लाखों-लाखों लोग आज भी मानते हैं। यदि वह चीज ठीक नहीं है तो वैसे प्रचारके द्वारा लोगोंके भाव बदलने पड़ेंगे। यह काम कानूनसे नहीं हो सकता। कानून प्रत्यक्ष क्रियाको रोक सकता है, सो भी वहाँतक, जहाँतक कानूनकी पहुँच है; मनकी मान्यताको कानून नहीं बदल सकता। श्रीशंकराचार्यने अपने वक्तव्यमें स्पष्ट कर दिया है कि 'वे किसी भी हरिजनसे घृणा नहीं करते। वे अस्पृश्यता कानूनका उल्लंघन-भंग नहीं करते, सार्वजनिक स्थानोंमें अस्पृश्यताका पालन नहीं करते; धर्मशास्त्रोंमें अस्पृश्यताका उल्लेख है, और उन्हें व्यक्तिगतरूपसे धर्मपालन-का अधिकार है।' इतना ही कहते हैं। वे अकेले ऐसा कहते हों सो नहीं, लाखों लोग यही कहते और मानते हैं।

शास्त्रोंके अनेक प्रसङ्गोंमें अपने-अपने मतानुसार 'अर्थभेद' है और होता है। यह भेद सदासे चला आया है। दोनों ही मतोंवाले ईमानदार हो सकते हैं। यही बात अस्पृश्यता-की है। शास्त्रोंमें—वेद-उपनिषद् तकमें यह विषय है। वहाँ भी सब विद्वानोंका यद्यपि मतैक्य नहीं है, परंतु अस्पृश्यता-की मान्यता तथा उसके संस्कार इतने पुराने हैं और हिंदू-जन-मानसमें इतने गहरे समाये हुए हैं कि जिनका निकलना कठिन है। औरोंकी बात छोड़िये—हमारे आर्यसमाजके प्रवर्तक प्रसिद्ध सुधारक तथा महान् विचारक श्रद्धेय स्वामीजी श्रीदयानन्दजी सरस्वती महोदयने भी पौल्कस—चाण्डालको दूर रखनेका संकेत अपने यजुर्वेदके भाष्यमें किया है।

(देखिये—यजुर्वेद ३० वें अध्यायके मन्त्र १७ वें तथा २१ वें का भाष्यार्थ)

उन्होंने अपने 'सत्यार्थप्रकाश' नामक प्रख्यात ग्रन्थमें उच्छिष्ट (दूसरेके जूँठे) भोजनके दोष बताते हुए आगे चलकर चाण्डालके हाथकी पकी रसोई खानेका निषेध किया है—'…जैसा रुधिर ब्राह्मणके शरीरमें है, वैसा ही चाण्डाल आदिके। पुनः मनुष्यमात्रके हाथकी पकी रसोई खानेमें क्या दोष है?'

इस प्रश्नका उत्तर देते हुए वे लिखते हैं—

'दोष है; क्योंकि जिन उत्तम पदार्थोंके खाने-पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोषरहित रज-वीर्य उत्पन्न होता है, वैसा चाण्डाल और चाण्डालीके शरीरमें नहीं; क्योंकि चाण्डालका शरीर दुर्गन्धके परमाणुओंसे भरा हुआ होता है, वैसा ब्राह्मणादि वर्णोंका नहीं, इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चाण्डालादि नीच भङ्गी, चमार आदिका न खाना। भला, जब कोई तुमसे पूछेगा कि जैसा चमड़ेका शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधूका है वैसा ही अपनी स्त्रीका भी है, तो क्या माता आदि स्त्रियोंके साथ भी स्व-स्त्रीके समान बरतोगे? तब तुमको संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा।'

(देखिये—'सार्वदेशिक प्रकाशन' दिल्लीसे प्रकाशित 'सत्यार्थ-प्रकाश, दशम समुल्लास, पृ० २७६)

अब यह विचारणीय प्रश्न है कि उपर्युक्त दूषित परमाणु-युक्त रज-वीर्यसे निर्मित बालकके इस शरीरकी शुद्धि हो सकती है या नहीं? और हो सकती है तो वह कैसे तथा कितने कालमें?

इस अवस्थामें अकेले जगद्गुरु शंकराचार्यको लेकर इतना तूफान मचाना हमारी एक सम्मोहमयी विचाररहित आवेशकी स्थितिको तो प्रकट करता ही है, साथ ही किन्हीं-किन्हींके मनमें ऐसा संदेह भी उत्पन्न करता है कि इसके पीछे कहीं श्रीशंकराचार्यका अपमान करने, हिंदू-सनातनधर्मको गिराने और सनातनधर्मके ग्रन्थों तथा सिद्धान्तोंके प्रति जनमानसमें दुर्भावना उत्पन्न करनेका षड्यन्त्र या कोई कपटपूर्ण कूट राजनीति तो काम नहीं कर रही है। नहीं तो, जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यने कौन-सा ऐसा डाके-खूनका अपराध किया, कौन-सी संविधानकी हत्या कर दी, जिससे उनपर इतना भयानक आक्षेप किया जा रहा है! ईसाई पादरी या मुसल्मान मौलवी कह सकते हैं कि 'परिवारनियोजन' हमारे धर्मसम्मत नहीं है, बहुविवाह धर्मसम्मत है।' उसमें न संविधान टूटता है, न कोई कुछ बोलता ही है। (मानो ये सारे नियन्त्रणके कानून गरीब हिंदुओंके लिये ही बने हैं) पर श्रीशंकराचार्य यदि अस्पृश्यताको धर्मशास्त्रकी बात कहते हैं तो सब तरफ आगकी लपटें-सी क्यों निकलने लगती हैं!

भगवान् रामपर खुले-आम दुराचरणका दोष लगाया जाय (रवीन्द्रसरोवरमें अगणित हिंदू-सती स्त्रियोंका सतीत्व लूटा जाय और उन्हें बेमौत मरना पड़े—इसपर कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गम्भीरतासे सोचा—कहा न जाय और न विचार किया जाय कि इस प्रकारके देशको कलङ्कित करनेवाले काम भविष्यमें न हों। चीनके माओ साहित्यके आयातपर प्रतिबन्ध है, पर मई दिवसको उसकी हजारों-हजारों प्रतियाँ बाँटी गयीं। माओवादी श्रीकनू सान्यालने खुले-आम 'माओवादी कम्यूनिस्ट पार्टी'की स्थापनाकी घोषणाके साथ ही हिंसाके द्वारा सत्तापर अधिकार करनेकी बात कही। केरलके नाक्सलाइट कम्यूनिस्ट श्रीकुन्नीकाल नारायनन्ने कालीकटमें खुले-आम 'चाइना पब्लिकेशन'की स्थापना की*। चीनके द्वारा शस्त्रोंकी सहायतासे भारतके अमुक प्रदेशोंको चीन-अधिकृत बनानेका प्रयास चल रहा है। इसपर सरकार क्या सोचती और कर रही है, पता नहीं। पर श्रीशंकराचार्यपर तो धर्मशास्त्रकी बात कहनेपर मुकद्दमा चला ही दिया गया है।†

माना, श्रीशंकराचार्यने कुछ जोशीले शब्दोंमें धर्मशास्त्र-की बात कही। पर उसपर हमारी संसद्में दायित्वज्ञानपूर्ण माने जानेवाले सदस्यों तथा अधिकारियोंने जो कुछ कहा, उसको 'श्रीअरविन्द आश्रम' पाण्डिचेरीके श्रीअनिलवरण रायने यदि 'पार्लमेंटमें हिस्टीरिया' (Hysteria in Parliament) कहा तो कोई अत्युक्ति नहीं है।‡

श्रीशंकराचार्यके द्वारा धर्मशास्त्रकी बात कहना घोर अपराध है तो क्या संसद्के सदस्यों तथा अधिकारियोंद्वारा 'फाँसी चढ़ा दिया जाय', 'अजायबघरमें रक्खा जाय', 'मेजके नीचे स्थान दिया जाय' और 'वर्णव्यवस्था'का प्रचार करनेवाले शंकराचार्य तथा ऐसे ही दूसरे लोगोंको खुलेआम कोड़े लगाये जायँ।'—आदि कहा जाना, उन्हें शंकराचार्यके पदके अयोग्य बताकर और शंकराचार्य-जैसे हिंदू सनातनियों-के द्वारा परम पूजनीय पीठका मज़ाक उड़ाना अपराध नहीं तो, क्या अविवेकपूर्ण, द्रोह-द्वेषप्रदर्शक, अनैतिक तथा अशोभनीय भी नहीं है ?

दायित्वज्ञानपूर्ण शासक, लोकनायक, संसद्-सदस्य तथा उच्चस्तरीय अधिकारियोंको तो अपना जीवन ऊँचे-से-ऊँचे नैतिक स्तरपर रखना चाहिये। उनकी वाणीमें, क्रियामें तथा मनमें संयमपूर्ण, विवेकपूर्ण, सर्वहितकर तथा शिष्टता-युक्त उच्च आदर्शके भाव भरे होने चाहिये, जिससे उनका अनुकरण करनेवाली जनताका नैतिक जीवनस्तर उत्तरोत्तर ऊँचा उठे।

यदि वे ही लोग इस प्रकार अनर्गल, अनैतिक, अशिष्टता-पूर्ण शब्दोंका उच्चारण तथा अनैतिक चेष्टा करेंगे तो जनता क्या सीखेगी ? ऐसा करके वे क्या जनताको गिरानेमें कारण नहीं बन रहे हैं ? इसपर वे शान्तचित्तसे गम्भीरतापूर्वक विचार करें। यह मेरा उनसे नम्र निवेदन है।*

इसीके साथ ऐसी बातें भी उठने लगी हैं कि—'शास्त्रोंके अमुक-अमुक अंशोंको गैरकानूनी घोषित कर दिया जाय, उनमेंसे वे अंश निकाल दिये जायँ, उनमें परिवर्तन कर दिया जाय अथवा उन ग्रन्थोंपर ही प्रतिबन्ध लगा दिया जाय।' यदि यह होने लगा तो अस्पृश्यता-निवारणके नामपर हिंदू सनातन-धर्मको समाप्त करनेका कुचक्र क्रियाशील हो गया, यह समझना चाहिये। आज

---

*"The import of Mao's Red Book is banned, yet on May day, thousands of them were being waved aloft, at the Ochterlony monument in Calcutta, as Mr. Kanu Sanyal announced the formation of a Maoist Communist Party, dedicated openly to the seizure of power through violence. And within a few days of the closer, of 'Rebel publications' Kerala Naxalite Mr. Kunnikal Narayanan's Printing Press in Calicut, a 'brand new' publishing firm began operating from the same building Name ? China Publication Ltd." ('Times of Indfa' 18 may 1969)

† संतोषका विषय है कि पटनाके न्यायाधीश महोदयने मुकदमा खारिज करके और यह कहकर कि—'श्रीशंकराचार्यने कानून भंग नहीं किया है तथा उन्हें धर्माचरणका अधिकार है—' न्यायकी रक्षा की। इस कर्तव्यपरायणता तथा न्यायशीलताके लिये धर्मानुरागी सभी उनके कृतज्ञ हैं।

‡ 'Light of India', Calcutta April 1969, page 5-'

* गुजराती साप्ताहिक 'चेतमछंदर'के १०।५।६९ के अङ्कमें सौराष्ट्रकी प्रसिद्ध श्रीभुवनेश्वरी पीठके आचार्य जगद्गुरु श्रीस्वामीजी चरणतीर्थजी महाराजने लिखा है—"... ... ... ता० १९।४।६९के बम्बईके हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स'के अङ्कमें प्रकाशित श्रीचह्वाण साहेबके द्वारा उच्चारित शब्द पढ़ने पड़े हैं—'... ... ... चातुर्वर्ण्य आदिकी वकालत करने तथा समर्थन करनेवाले लोगोंका उन्होंने देशका शत्रु और उनके साथ संघर्ष करना प्रत्येक व्यक्तिका प्रथम कर्तव्य बताया है। अतः उनके कथनानुसार तो चातुर्वर्ण्य अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रमें बँटी हुई ४५ करोड़ हिंदूप्रजा देशकी शत्रु हो तो क्या फिर शेष मुसल्मान तथा ईसाई प्रजा ही देशकी मित्र है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमुक पुराण, स्मृति या धर्मशास्त्रके अंशोंको गैरकानूनी बतायँगे, फिर पूरे ग्रन्थको बताने लगेंगे। आगे चलकर वेदोंका नम्बर भी आ सकता है। हमारे आर्यसमाजी भाई बड़े बुद्धिमान् हैं। वे अर्थभेद करना अवश्य चाहेंगे, पर ग्रन्थांश या किसी धर्मग्रन्थपर उसे गैरकानूनी घोषित कर प्रतिबन्ध लगाना उन्हें स्वीकार न होगा।

कुछ वर्षों पूर्व अपनेको 'विशुद्ध बुद्धिवादी' बतानेवाले एक नास्तिक सज्जनने कहा था कि 'मैं पुराणोंसे घबराकर 'आर्यसमाजी' बना, पर वहाँ भी 'वेद'की पोथीकी गुलामी ही दिखायी दी। तब 'बौद्ध' बना, कुछ दिन शान्ति रही, पर वहाँ भी पोथियोंका सम्मान तथा दासत्व मिला। तब उसको भी छोड़ दिया। अब मैं स्वच्छन्द विचरता हूँ। किसी भी पोथी या मत-पन्थका गुलाम नहीं हूँ।' इस मनोवृत्ति-पर ध्यान देकर सोचना है कि धर्मशास्त्रोंके अमुक अंशको गैरकानूनी घोषित करनेका क्या परिणाम हो सकता है। अतएव हिंदूमात्रको—इस विषयमें सावधान होकर पहलेसे ही गम्भीरताके साथ विचार कर मार्ग निश्चित कर लेना चाहिये। एक सज्जनने बहुत ठीक लिखा है कि 'यदि इसपर तत्काल विचार कर कदम न उठाया गया तो जो बात आज हम कह सकते हैं और जो काम आज हम कर सकते हैं, कल उनकी अभिव्यक्ति करनेसे भी हमें रोक दिया जायगा।'

मेरी अपने श्रद्धास्पद शास्त्रमर्मज्ञ विद्वानोंसे भी विनीत प्रार्थना है कि वे हिंदू-समाजमें कलह न उत्पन्न हो, इस बातको ध्यानमें रखते हुए शास्त्रवाक्योंके रहस्यार्थकी युक्तियुक्त समीचीन व्याख्या मधुर शब्दोंमें कर शास्त्रका यथार्थ मन्तव्य समझानेका प्रयत्न करें।

कुछ लोगोंके मतानुसार यह ठीक हो सकता है कि 'अखिल विश्व हिंदू-सम्मेलनमें जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज इस विषयपर न बोलते तो अच्छा था। अब भी वे बहुत न बोलें तो अच्छा है।' पर वे जो कुछ बोले हैं सो तो शास्त्रीय ही है। हमारे एक सम्मान्य उच्चपदस्थ विचारशील मित्रने बड़े सद्भावसे लिखा है कि 'श्रीशंकराचार्यजी बार-बार इस विषयपर न बोलें। देशमें हिंदुओंका एक ऐसा राजनीतिसे अलिप्त संगठन होना चाहिये, जिसमें सभी विचारोंके हिंदू इकट्ठा होकर काम करें। नहीं तो, हमारी आपसकी फूटसे हिंदूविरोधी समुदाय अनुचित लाभ उठायेंगे।'

एक वैसे ही दूसरे उच्चपदस्थ विचारशील महानुभावने लिखा है—'श्रीशंकराचार्यजीके विचारोंसे मेरा मतभेद है। हमें ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये जिससे हिंदूसमाजकी एकात्मताको चोट पहुँचे;...किंतु संसद्में जिन शब्दोंमें श्रीशंकराचार्यका उल्लेख किया गया है वह नितान्त अनुचित तथा बहुसंख्यक जनताकी भावनाको चोट पहुँचानेवाला भी है।'

ऐसे ही और भी कई पत्र आये हैं, जिनमें हिंदुत्वप्रेमी सभी मतोंके सज्जनोंको इकट्ठा होकर विचार करनेके लिये अनुरोध किया गया है।

अन्तमें मैं देशका हित चाहनेवाले सभी पक्षोंके महानुभावोंसे, खास करके हिंदू नेताओंसे विनीत प्रार्थना करता हूँ कि इस समय देशपर जो कम्यूनिस्ट तथा अन्यान्य भारतीय संस्कृति-सभ्यताके नाशक तत्त्वोंका जो हर तरफसे बहुमुखी आक्रमण हो रहा है तथा प्रबल वेगसे होने जा रहा है, सब लोग सारे मतभेदोंको भुलाकर एकमतसे सब साथ होकर उससे रक्षा पानेका सफल प्रयत्न करें।

वे गम्भीरतासे सोचें कि उनके पूर्वजोंके देश भारतकी महान् उच्च संस्कृतिपर बाहरसे और भीतरसे जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, साक्षात् कटु विषरूपमें या मीठे विषके रूपमें जो प्रबल आक्रमण हो रहे हैं, उनसे इस संस्कृतिकी रक्षा कैसे की जाय?

हिंदू-संस्कृति बची, बढ़ी, तो जगत्के सारे प्राणी सुखी होंगे और हमारा यह सहज नारा सफल होगा—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कः पन्थाः

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

यह काम नहीं आसाँ इन्सानको मुश्किल है।
दुनियामें भला होना, दुनियाका भला करना॥
(दाग)

तीन या चार वर्ष पूर्वकी बात है। गर्मीके दिन थे। मुझे तुलसी-आश्रम स्टेशनसे वाराणसी जाना था। ट्रेन आनेमें देर थी। इस कारण यात्री अपने-अपने रंगमें मस्त थे। कोई प्लेटफार्मपर टहल रहा था, तो कोई बीड़ी सुलगा रहा था। कोई पुराना समाचार-पत्र उलट-पलट रहा था, तो कोई उपन्यास पढ़नेमें तल्लीन था। कोई बातोंमें तन्मय था, तो कोई एकाकी बेंचपर बैठे मौन सुदूर क्षितिजपर दृष्टि गड़ाये था। इन सबके बीच गाँवका एक किसान अपना घुटना हाथसे दाबे बैठा था। घुटनेसे नीचेका पैर फीलपाँवकी बीमारीके कारण हाथीके पैरकी भाँति फूल ही नहीं गया था, उसमें चारों तरफसे मवाद निकल रहा था।

मेरी दृष्टि पड़ी तो मैं सिहर गया। कितनी पीड़ा थी उसे, वह ही जानता था। उसके साथ कोई था भी नहीं, जो उसके साथ सहानुभूति दिखाता। वह किसान कदाचित् चिकित्साके लिये वाराणसी जा रहा था।

'वह अपने पापका फल भोग रहा है।' मेरी दृष्टि उधर गयी तो देखा लगभग सोलह वर्षका गौरवर्णका बालक, आँखपर धूपका चश्मा चढ़ाये अपने समवयस्कके गलेमें बाँह डालकर हँसता हुआ कह रहा था।

हृदयसे जैसे अग्निमय शलाकाका स्पर्श हो गया हो। मैं छटपटा-सा गया। ये अबोध-से बालक, 'पाप' क्या है और उसका क्या परिणाम होता है, यदि ये सचमुच समझ पाते।

ट्रेन आयी, ठसाठस भरी। सामनेके डब्बेमें मैं चढ़ा और उसीमें वे बालक भी। गाड़ीने सीटी दी और चल पड़ी।

'सिर्फ आठ रुपये।' हँसते हुए चश्मेवाले लड़केने अपने साथीको रुपये दिखाते हुए कहा। 'पापीके पास होता भी क्या?'

मेरा सिर घूम गया। उस दुखी, दरिद्र और पीड़ित किसानका पुराना चमड़ेका मनीबेग गाड़ीमें चढ़ते समय लड़केने उड़ा लिया और शौचालयमें मनीबेग और टिकट फेंककर रुपयेके साथ बाहर आ गया था।

मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। जो बालक आज इतना निर्दय और नृशंस है, वह कल कैसा असुर मानव होगा, समझमें नहीं आ रहा था। ट्रेन धुआँ और आग उगलती मुगलसराय पहुँची।

प्लेटफार्मपर चारों ओर पुलिस। पता चला, टिकट चेक किया जा रहा है। हे भगवान्! उस किसानकी क्या दुर्दशा होगी? कष्टसे पीड़ित, ऊपरसे पैसे और टिकट गायब। धड़कते हृदयसे मैं भीड़ और पुलिसकी ओर देख रहा था।

कितनी करुण स्थिति थी उस किसानकी। और मुझे स्मरण आया, जब दो वर्ष पूर्व जाड़ेके दिनोंमें मैं वाराणसीसे गोरखपुर जा रहा था। मैं बैठा था और भीड़में एक युवक जो मेरे सामने खड़ा था, इन्दारा स्टेशनपर मुझे जरा-सी झपकी आते ही मेरा पूरा बिस्तर लेकर उतर गया। उसमें मेरे आवश्यक वस्त्रोंके साथ कार्यालयके सैकड़ों पत्र थे। वस्त्रोंपर सरकारी नियन्त्रण था। अपनी दुर्दशा मैं ही जानता हूँ।

मैंने सुना है कि विदेशोंमें भी पाकेटमारी और चोरियाँ होती हैं, किंतु वे पाकेटमार और चोर सम्पन्न व्यक्तियोंके केवल पैसेपर ही हाथ साफ करते हैं। कागज-पत्र आदि वस्तुएँ अपना नाम छिपाकर निकटस्थ पुलिस-स्टेशनपर डाकखानेके माध्यमसे भेज देते हैं। पर पद-पदपर अंग्रेजियत अपनानेवाले भारतीयोंके पास इतनी बुद्धि और विचार कहाँ? ये तो मनुष्यताको ही तिलाञ्जलि दे चुके हैं!

आये दिन इस प्रकारकी घटनाएँ भारतवर्षमें सर्वत्र घट रही हैं। एक दिन समाचारपत्रमें एक घटना पढ़कर तो अवाक् रह जाना पड़ा। कलकत्तामें एक सम्भ्रान्त परिवारका बालक चोरी चला गया। कुछ दिनों बाद चोरका पता चला; किंतु तबतक बच्चेके दोनों हाथ काट लिये गये थे और दोनों आँखें फोड़ दी गयी थीं, वह इसलिये कि बालकसे भिक्षा-वृत्ति करायी जा सके और दाता करुणार्द्र होकर उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक भीख दे सकें। स्त्री, बच्चों और कन्याओंका हरणकर उन्हें दूर ले जाकर बेच देनेकी घटनाएँ तो साधारण-सी बात हो गयी है। चोरी, डाका, खून आदिके समाचारोंसे तो आजके समाचारपत्रोंके पृष्ठ भरे रहते हैं।

स्वाभाविक ही मनमें विचार उदय होता है कि यह कैसे होता है? मनुष्य इतना निर्दय, इतना कठोर और इतना क्रूर कैसे हो जाता है कि दूसरेका गला काटनेमें उसे तनिक भी झिझक नहीं होती? वर्षों बाद अपने स्त्री-बच्चोंसे मिलने जानेवाले यात्रीका सर्वस्व हरण कर लेनेमें उसका हृदय क्यों नहीं फट जाता? यदि उसके हृदयमें दूसरेकी व्यथाके लिये तनिक भी जगह नहीं तो वह मनुष्य ही कैसा है? उसे तो 'पशु' और 'पिशाच' ही कहना चाहिये। मनुष्यका जन्म तो दूसरेके पीड़ा-निवारणके लिये हुआ है।

महमूद अयाज बंगलोरी कहते हैं कि 'ऐ मेरे मालिक! तेरी दुनियामें सम्पूर्ण प्राणियोंकी पीर छिपी हुई है। तुम्हें भूलनेका अर्थ सारे विश्वको भूल जाना है'—

तेरे आलममें जमानेका दर्द पिन्हाँ है।
तुझे भुलाऊँ तो दुनियाको भूलना होगा॥

तात्पर्य यह कि प्राणियोंके कष्टोंके प्रति सहानुभूति और उनके दुःखोंको दूर करनेके लिये प्राणार्पणकी भावना ही भगवत्स्मृति है। भक्तवर श्रीतुलसीदासजीकी उक्ति है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—द्वेष और कपटको त्याग दो। संघटित होकर दूसरोंकी सेवा करना सीखो—यही हमारे देशकी महती आवश्यकता है।

इस संदर्भमें रमण महर्षिकी एक घटना स्मरण हो आयी। एक बार रमण महर्षिके पास दो-तीन पादरी आये। उनके मनमें महर्षिके प्रति बड़ी ईर्ष्या थी। एक पादरीने महर्षिसे कहा—'हम सुनते हैं कि तुम प्रतिदिन प्रातःकाल दो-तीन घंटे भगवान्‌के समीप रहते हो, किंतु अब तुम्हारा दम्भ अधिक नहीं चल सकेगा। तुम हमलोगोंको अपने भगवान्‌के दर्शन कराओ, नहीं तो तुम्हारा पाखंड हमलोग बर्दाश्त नहीं करेंगे।'

अंग्रेजोंका शासन था, इस कारण पादरियोंका निरङ्कुश रहना कोई बड़ी बात नहीं थी। महर्षिने अत्यन्त शान्ति एवं स्नेहसे उत्तर दिया। आपलोग कल प्रातःकाल पधारें। मैं अपने भगवान्‌के दर्शन करा दूँगा।

पादरी चले गये। पर उन्हें रातमें नींद नहीं आयी। सबेरे ही तीनों महर्षिके पास पहुँचे। रमण महर्षि उनके साथ चल पड़े। डेढ़-दो मील दूर एक छोटेसे गाँवमें पहुँचे। उस गाँवमें एक अत्यन्त दरिद्र कोढ़ी रहता था। महर्षि उसके पास गये।

उन्होंने बड़े ही प्रेमसे कोढ़ीसे उसका हाल पूछा। अपने ही हाथों धीरे-धीरे उसका घाव धोया। उसपर पट्टी बाँधी। तीनों पादरी खड़े-खड़े देख रहे थे।

महर्षिने उनसे कहा—'यही मेरे भगवान् हैं, जिनके समीप मैं प्रतिदिन प्रातःकाल दो-तीन घंटे रहा करता हूँ।'

पादरी चकित थे। उन्होंने महर्षिसे क्षमा माँगी और कहा—'जीवनमें सर्वप्रथम हमने प्रभुपुत्र यीशुका दर्शन प्राप्त किया है।'

थोरो कहता है—'सिर्फ भले मत बनो, कुछ भलाई भी करो।'

याद रक्खो, निर्दोषको दी गयी पीड़ा पीड़कके लिये भयानक शिला बन जाती है, जिसके आघातसे वह चकनाचूर हो जाता है, धूलिमें मिल जाता है। कहते हैं कि एक नरेशने एक निर्दोष व्यक्तिको उसके अपराधका निर्णय किये बिना ही उसे मृत्यु-दण्ड सुना दिया।

निर्दोष व्यक्तिने कहा—'श्रीमान्! इस प्रकार मुझपर अपना रोष चरितार्थकर अपने लिये दुःखका बीजारोपण न करें, तो अच्छा रहे।'

नरेशने पूछा—'मैं अपने लिये दुःखका बीजारोपण कैसे कर रहा हूँ?' निर्दोष व्यक्तिने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'महाराज! मेरा दुःख तो क्षणभरका है, किंतु आपके सिरपर पापका बोझ बढ़ेगा। अत्याचारी तो यह समझता है कि मेरे क्रोधकी तुष्टि हो रही है, किंतु उसका वह अत्याचार असहाय मनुष्यको छूकर अत्याचारीके ही सिरपर चढ़ बैठता है और उसकी पाप-राशिमें वृद्धि करता है।'

नरेश चतुर एवं बुद्धिमान् था। निर्दोष व्यक्तिकी बातोंका उसके मनपर प्रभाव पड़ा और उसने उस व्यक्तिको मुक्त तो किया ही, क्षमा-याचना भी की।

निखिल सृष्टिके स्रष्टा श्रीभगवान् हैं, उनकी अनन्त एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिसीम दयासुधाकी वृष्टि सम्पूर्ण सृष्टिपर नित्य हो रही है । वे करुणामय प्रभु सबके हैं और कीट-पतंगादिसे लेकर पशु-पक्षी और मनुष्यतक चराचर प्राणी—सबके एकमात्र वे ही प्रभु हैं । सबमें वे ही व्याप्त हैं । तृण-लता-गुल्मादि तथा कीट-पतंगादि सभी जीवोंके रूपमें वे ही प्रभु तो लीला कर रहे हैं । फिर हम किससे घृणा करें, किससे द्वेष करें ? वह घृणा और द्वेष तो अपने-आपसे ही होगी ।

खलील जिब्रानने कहा था—'घृणाका अर्थ ही किसी मृत वस्तुको याद रखना है । तो भला कौन कब्रिस्तानमें रहना पसंद करेगा ?'

फारसीके विद्वान् शेख सादीकी प्रसिद्ध कहानीका सार है कि 'सुलतान महमूद सुबुक्तगीनकी मृत्युके सौ वर्ष बाद खुरासानके* बादशाहने एक रात स्वप्नमें देखा कि सुलतानके अङ्ग-प्रत्यङ्ग गल चुके हैं, मिट्टीमें मिल गये हैं किंतु उनके दोनों चमकीले नेत्र अपने-अपने गोलकमें बड़ी अधीरतासे इधर-उधर देख रहे हैं, जैसे कुछ खोज रहे हों ।'

स्वप्न देखकर बादशाह बेचैन हो गया । वह उस स्वप्नका अर्थ नहीं समझ पा रहा था । अन्ततः उसने अपने राज्यके प्रसिद्ध विद्वान् तथा स्वप्नफल बतानेवालोंको बुलाकर इस स्वप्नका अर्थ पूछा । किंतु, स्वप्नका समाधानकारक उत्तर किसीसे नहीं बन पड़ा ।

अन्ततः एक फकीरने कहा—'शाहंशाह, जरा-सी बात है । आज सुलतानके राज्यका शासन दूसरे लोग कर रहे हैं । इसलिये उनके नेत्र चारों ओर घूम-घूमकर देख रहे हैं कि कहीं मेरा भी चिह्न है या नहीं ? आज धरतीके नीचे असंख्य पुरुष सोये पड़े हैं, किंतु उनका इस नश्वर जगत्‌में कोई अवशेष नहीं । लेकिन ईरानके न्यायी और प्रजापालक नौशेरवाँका नाम आज भी आदरसे लिया जाता है, जब कि कब्रमें उसकी हड्डीका एक टुकड़ा भी प्राप्य नहीं । सिर्फ नेकीके कारण उसका नेक नाम कायम है । अतएव मनुष्य जबतक जीवित रहे नेकी करे और दुर्लभ जीवनसे लाभ उठाये । जितनी आयु शेष है, उसे गनीमत समझे और अमुक व्यक्ति धरतीसे उठ गया, इस शब्दके उठनेसे पहले जितना हो सके परहित कर जाय ।'

फकीरका उत्तर सुनकर बादशाहकी चिन्ता दूर हो गयी और वह शुभ कार्योंमें लग गया ।

सचमुच यह जीवन नदीके पानीके समान है । बहता हुआ नदीका पानी जो सामनेसे निकल जाता है, फिर हाथ नहीं आता । उसी प्रकार भूतकाल फिर हाथ नहीं आता । भाग्यवान् और चतुर वे हैं, जो समयके एक-एक क्षणका भरपूर सदुपयोग करते हैं ।

इंग्लैंडकी महारानी एलिजाबेथ मृत्युशय्यापर पड़ी थीं । चिकित्सकने बताया 'आप पाँच मिनट और जीवित रह सकती हैं ।' कहते हैं, रानी चिल्ला उठी 'अपने विशाल साम्राज्यका अर्द्धांश मैं उस व्यक्तिको देनेके लिये प्रस्तुत हूँ, जो मुझे इस धरतीपर आधा घंटा रोक ले; जिससे मैं अपने अपराधोंके लिये प्रभुसे क्षमा-प्रार्थना कर लूँ ।'

किंतु यह किसीके वशकी बात नहीं थी । रानीका शरीरान्त हो गया । इसी कारण भविष्यमें कुछ करनेका विचार त्यागकर तत्काल ही शुभ उद्योगमें लग जाना बुद्धिमानी है ।

धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च जरया पुनः ।
शक्तः साधयितुं तस्माद् युवा धर्मं समाचरेत् ॥

(प० पु० भू० खण्ड ६६ । ११७)

'बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता । इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये ।'

भक्तराज प्रह्लाद तो युवावस्थाकी प्रतीक्षा भी नहीं करना चाहते । वे अपने बालक बन्धुओंसे कहते हैं—'इस संसारमें मानव-जन्म दुर्लभ है । इसमें परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है । पर पता नहीं, इसका कब अन्त हो जाय; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको बचपनमें ही भागवत-धर्मोंका आचरण कर लेना चाहिये—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । ६ । १)

* ईरानका एक प्रान्त ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुंडी

[कहानी—सत्य घटनाके आधारपर]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

त्रिलोकचन्दने बचपनसे ही गुरुदीक्षा ले ली थी और वे प्रातःकाल ही ब्राह्ममुहूर्त्तमें शय्यात्याग, प्रातःकृत्यसे निवृत्त हो आसनपर बैठकर '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' इस गुरु-मन्त्रका जप, मौन हो करने लगते थे। इसके पश्चात् साधु-संत, दीन-हीन, भिक्षु, अपंग, अभ्यागतकी खोज करनेको नगरमें जाते और जहाँ कोई ऐसा अनाथ व्यक्ति मिलता, उसकी यथा-शक्ति सेवा कर सुख मानते थे।

इनके छोटी दूकान थी। पूँजी थोड़ी थी। ईमान, सचाई और ईश्वरीय भयको हृदयमें रखकर सौदासूत सही-सही तौलकर सस्ते भावोंमें ग्राहकोंको देते-लेते थे।

उनकी पत्नी संतोष भी पतिकी भाँति ही सेवाभावी थी, किंतु उसमें इतना गुण और अधिक था कि नगरमें जहाँ कोई रुग्ण होता, वहाँ पहुँचकर उसकी इतनी सेवा-शुश्रूषा करती कि बीमारको आराम मिलता। उसके पश्चात् घर आकर भोजनादि करके भगवान्के नाम-स्मरणमें तल्लीन हो जाती थी।

इस धर्मपरायण दम्पतिके केवल एक पुत्र था। धनाभावके कारण मोहनकी ऊँची शिक्षा नहीं हो सकी। तो भी इस अपढ़ पुत्रका शीघ्र ही विवाह कर देनेके सम्बन्धमें एक दिन संतोषने बड़े ही विनम्र भावसे कहा—'आप मेरे नेत्रोंके तारे, सुख-स्वार्थके सार, सिरछत्र और प्राणोंके आधार हो।* मैं अब अधिक दिनोंतक जीवित नहीं रहूँगी। पुत्र-वधूका मुखड़ा दिखा दो।'

त्रिलोकचन्दने पत्नीके विशेष आग्रहसे एक ब्याजखोर हरसुखसे रुपया उधार लेकर पुत्र मोहनका विवाह कर दिया। पुत्रवधूको देखकर संतोषको बहुत हर्ष हुआ। किंतु वर्षभरमें वह और त्रिलोकचन्द स्वर्गवासी हो गये।

× × ×

मोहनकी पत्नी शारदा भी धर्मनिष्ठ माता-पिताकी पुत्री थी। घरके काम और सेवासे निवृत्त हो नित्य भगवान्की पूजा, नामजप और तुलसीकी पूजा मन लगाकर करती थी।

कुछ दिन पत्नी-पतिके सुखपूर्वक बीते। किंतु फिर हरसुखने अपने ऋणकी वसूलीका तकाजा किया। वह प्रतिदिन आकर मोहन और उसकी पत्नी शारदाको खरी-खोटी बातें सुना जाया करता था। अपढ़ मोहन उपार्जन करनेमें असमर्थ होनेके कारण दोनोंका निर्वाह होना ही कठिन था, फिर ऋण कहाँसे चुकाता ? ब्याजसमेत ऋण बढ़ता ही गया। कहा है—

> पावक बैरी रोग ऋण, सपनेहु राखिय नाहिं।
> ये थोड़े ही बढ़हिं पुनि, महा जतन सों जाहिं॥

दिन-पर-दिन जाते रहे। उधर ब्याज बढ़ते-बढ़ते ऋणकी निधि अधिक बढ़ गयी। एक दिन हरसुखने आकर ऐसी धमकी दी कि मोहन और शारदाका जीवन भारी कठिनाईमें पड़ गया। दो दिनोंका अवकाश दे एवं असभ्य भाषाके कठोर वचन सुनाते हुए हरसुख घर चला गया।

कठोर वचन हृदयमें तीरके समान लगनेसे पति-पत्नी भारी उदास हो गये। रातभर अनेक दुःखभरे विचार मोहनके मनमें आते रहनेसे वह नितान्त हताश हो गुनगुनाता रहा। प्रातःकाल ही शारदाने उसके मुखकी ओर निहारते-निहारते जान लिया कि ये आत्म-हत्या करनेपर उतारू हैं। यह जानकर धैर्य बँधाते हुए उसने मोहनसे कहा—'आप मर्द हैं, मर्दानगी रक्खें, इस प्रकार उदास होकर आत्मघात करने-जैसा पाप करनेकी बात स्वप्नमें भी न सोचें। प्रभुके ऊपर भरोसा रक्खें। वे अशरणशरण, संकटहारी भगवान् हमारी अवश्यमेव रक्षा करेंगे। पण्डितजीके बताये हुए—

> **'कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।**
> **प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥'**

---

* आंख्यां रा तारा अबस, सुख स्वारथ रा सार।
साहब सिर रा सेहरा, आतम रा आधार॥
(राजस्थानी दोहा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—इस श्लोकका हम विश्वासपूर्वक पाठ करें और प्रभुको बारंबार नमस्कार करें और उनसे प्रार्थना करें ।

'पूजनीया सासजी मुझसे कई बार कहती थीं कि 'अपने ग्रामके सेठ जीवनदास बड़े परोपकारी, परदुःखभञ्जन और परम ईश्वरपरायण हैं। अपरिचितकी भी सहायता करते हैं।' उनपर, हरसुखकी जितनी रकम ब्याजसमेत आपको देनी हो, उतनी रकमकी हुंडी लिख दो । हुंडीका उत्तर आनेमें चार दिन तो लगेंगे ही । इन चार दिनोंतक हम अनशन व्रत रखकर खूब हरि-भजन करेंगे और विषके दो प्याले पास रख लेंगे। जब हरसुख आकर हमारे द्वारके कपाट खटखटायेगा, तभी विषपान कर लेंगे। परंतु प्रभुकी ओरसे मेरे अन्तरमें ऐसी ध्वनि हो रही है कि विषपान करनेका अवसर ही नहीं आयेगा और प्रभु अवश्य ही हमारी सहायता करेंगे।' ऐसा निश्चय करके दोनों उपर्युक्त क्रियामें जुट गये ।

दूसरे दिन हरसुखने प्रातःकाल ही आकर कर्कश वाणीमें कहा—'मैंने दो दिनोंका अवसर दिया था, परंतु आज संध्या समय मुझे अचानक एक आवश्यक कार्यके हेतु बंबई जाना पड़ रहा है। अतः आज संध्याको तुम्हारी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेचकर मेरा ब्याजसहित कुल रुपया दे दो । यदि रुपया नहीं दिया, तो स्मरण रखना, मैं आपेसे बाहर होकर तुम्हारी इज्जत-प्रतिष्ठा धूलमें मिला दूँगा ।'

इन कठोर वचनोंसे अत्यन्त दुःखित हो शारदाने हरसुखको थोड़ी देर प्रतीक्षा करनेको कहा और पतिसे बोली—'पूज्य श्वशुरजीने कुछ निधि सेठ जीवनदासके यहाँ अमानत रक्खी है और उस निधिका संकटके समयमें उपयोग करना—मुझसे कह गये हैं । आजकल सेठ अपनी पेढ़ीपर बम्बई हैं । उनपर चूकते रुपयेकी हुंडी लिख दो ।'

पति मोहनने ऐसा ही किया और हुंडीपर **'संकटोहरण प्रभु विजयते'** ऐसा लिखकर ६००) रुपयेकी हुंडी लिख हरसुखको दे दी ।

× × ×

हरसुखने यह हुंडी जब जीवनदासकी पेढ़ीके प्रधान मुनीमको ले जाकर दी, तो मुनीमने कहा कि हुंडीका रुपया देनेका नियम २४ घंटेका होनेसे आप कल आइये । इस अवधिमें मुनीमने पाँच वर्षके बहीखाते देखे, किंतु कहीं भी हुंडी लिखनेवालेकी निधि जमा नहीं पायी गयी, नामतक नहीं मिला । यह देखकर मुनीमको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

दूसरे दिन जब हरसुख हुंडीका रुपया लेनेको पहुँचा, तो मुनीमने सेठजीको सारा तथ्य बता दिया । सुनकर सेठ विचारमें मग्न हो गये । 'कोई खोटी हुंडी तो लिखता नहीं । निधि जमा कराना भूल गया होगा । अब मेरी दूकानसे यदि यह हुंडी नहीं सकारी गयी, तो मेरी साखमें बट्टा लगेगा । दूकानकी प्रतिष्ठा तो रखना ही है । हे प्रभु ! इस कठिनाईमें मुझे सद्बुद्धि दीजिये।' ऐसा विचारते हुए सेठके हृदयमें भगवत्प्रेरणासे सात्त्विक भावोंका उदय हो आया। उन्होंने हुंडीके ऊपर लिखा हुआ पढ़ा—'संकटोहरण प्रभु विजयते' इस सूत्रने सेठ जीवनदासको बहुत कुछ समझा दिया । उन्होंने हुंडीको पूरी पढ़े बिना ही धीरेसे मुनीमको कहा—'इस हुंडीके रुपये खर्चखाते लिखकर दे दो ।'

रुपया दे दिया गया । हरसुखको रुपया पाकर हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी ।

(२)

प्रातःकालका शीतल, सुखद, सुगन्धित समीरण चारों ओर आनन्दकी वर्षा कर रहा था। मोहन-शारदा अपने कक्षमें हरिभजनमें तल्लीन थे । सामने ही सिंहासनपर विराजमान श्रीमुरलीधरके दर्शन कर उनके अन्तःकरणमें हर्षातिरेक हो रहा था । पास ही विष घुले हुए दो कटोरे रक्खे थे । इतनेमें ही द्वारके कपाट खटखटानेकी ध्वनि उनके कानोंमें आयी । दोनों चौंके । सोचा, अब विष-पान करनेका समय आ गया । दोनोंने अपने-अपने विषके कटोरे उठा लिये । अधरोंसे लगाकर मुखमें विष प्रवेश कराने ही वाले थे कि शारदाको स्फुरणा हुई—द्वारपर जाकर देखूँ तो । यह सोच, विषका प्याला नीचे रख, उसने पतिसे कहा—'आप विष-पान न करें । प्याला धरतीपर रख दें । मैं कपाट खोलकर हरसुखसे विनयपूर्वक हाथ जोड़ कहूँगी कि आप दो पहरतक और रुकें, प्रभु कहींसे निधि भेजनेहीवाले हैं ।'

कपाट खुलते ही हरसुख दौड़ा हुआ घरमें आ मोहन-शारदाके पैरोंमें गिर गया और कटुवचनोंके लिये हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा । बोला—'मुझे ज्ञात नहीं था कि आपकी इतनी बड़ी साख है । मैं रुपया लेकर बम्बई नगरके दर्शनीय स्थानोंको देखनेके निमित्त वहाँ चार पाँच दिन ठहरने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला था, किंतु हृदयने प्रेरणा दी कि शीघ्रातिशीघ्र आपके पास आ दुर्व्यवहारकी क्षमा-याचना करूँ। इसीसे घर न जाकर सीधा ही यहाँ आया हूँ। मुझे बारंबार धिक्कार है कि मैंने न कहने योग्य कटुवचन भी आपसे कहे और आप दोनोंने बिना उत्तेजनाके उन्हें सहन किया। मुझ-जैसे धनवान्‌को आपके ६००) रु० की अभी आवश्यकता नहीं थी। आप धीरे-धीरे कमाकर देते तो मुझे कोई हानि नहीं होती, परंतु परम शत्रु स्वार्थने मुझे धन-मदमें अंधा बना दिया था। अब आप मुझे क्षमा कर देनेका वचन दें, तब मैं यहाँसे घर जाऊँगा।'

मोहन-शारदाने हरसुखकी आवभगत कर उसे ऊँचे आसनपर बैठाते हुए विनम्रभावसे कहा—'परम आदरणीय हरसुखजी! हम तो प्रभु-चरणोंके चेरे हैं। मानापमानका भान प्रभुने दूर भगाकर अपना कृपा-करकमल हमारे मस्तकपर रख हमें निश्चिन्त बना दिया है। उन्हींकी प्रेरणासे आपको रुपये अनायास मिल गये। हम तो प्रभुकी इस अहैतुकी कृपासे धन्य-धन्य हो गये हैं। हमारी ओरसे हजार बार क्षमा है; परंतु मन-स्वभावके विषयमें कहा है कि—'बींधते समय मोतीके फट जानेसे मोती फिर मँगाया जा सकता है, किंतु एक बोलके आघातसे फटा हुआ मन किसी भी मूल्यमें नहीं मिलता।'* मोहन-शारदाके हर्षका आज पार नहीं है। इनकी प्रभुपर अनन्य श्रद्धा तो थी ही। आजसे वे पुष्प-समान हल्के बनकर प्रभु-प्रेममें मस्त हो अर्द्धरात्रितक हरिभजन करनेमें दत्त-चित्त हो गये।

निर्धनताके कारण कोई धंधा करनेमें मोहन असमर्थ था। एक दिन शारदाने कहा—'आज स्वप्नमें मुझसे एक योगी पुरुषने कहा है कि तेरे पतिको आज थोड़ी सहायता मिलेगी, व्यापार कर।'

इस ईश्वरीय प्रेरणापर विश्वास कर जब मोहन बाजारमें गया तो एक मनुष्यने मिलते ही उससे कहा—'मोहन! तेरे पिताजीके दिये हुए आशीर्वाद मुझे फले हैं। तू मेरी दूकानपर बैठकर धंधे-व्यापारका अनुभव कर।'

मोहनने राघवकी दूकानपर बैठकर थोड़े ही दिनोंमें अच्छा अभ्यास कर लिया! इससे राघवने थोड़ी पूँजी दे उसको अलग दूकान करवा दी। अभ्यास-अनुभवके कारण मोहन व्यापारमें खूब कमाने लगा और पाँच-सात वर्षोंमें वह धनाढ्य बन गया।

दोनोंको एक दिन अचानक स्मरण आया कि हमारा विष-पान एवं आत्मघात करना टालनेवाले सहायक सेठ जीवनदासजीका रुपया चक्रवृद्धि व्याजसमेत लौटाना चाहिये। यह निश्चय होते ही तुरंत मोहन एक बड़ी निधि लेकर बम्बई गया।

बम्बईमें एक अपरिचित व्यक्तिको रुपये देते देखकर सेठ जीवनदासने बड़ा अचम्भा किया। पूछनेपर मोहनने हुंडीपर 'संकटो हरण प्रभु विजयते' लिखा होनेकी याद दिलायी। तब स्मृति आनेपर सेठ मोहनका आदर-सत्कार करते हुए बोले—'भाईजी, वह निधि तो मैंने अपने यहाँ बहीमें खर्च-खाते लिखवाकर जमा-खर्च बराबर कर दिया है। अतः इन रुपयोंकी मुझे अब आवश्यकता नहीं है।'

इधर, मोहनने निश्चय कर लिया कि सेठजीको यह निधि देकर ही घर लौटूँगा। उसने सेठके परोपकारी कार्यकी सराहना करते हुए निधि लेनेका बहुत ही आग्रह किया; किंतु सेठने लेना स्वीकार किया ही नहीं। अन्तमें कुछ धर्मात्मा सज्जनोंकी सम्मतिसे इस निधिसे एक अनाथालयका निर्माण करा दिया गया, जिसका नाम रक्खा—'जीवन-मोहन-अनाथालय'। उसके संचालन-प्रबन्धके लिये उदार सेठ जीवनदासने अपनी पेढ़ीसे पर्याप्त रकम दिलवा दी।

मोहन-शारदा, सेठ जीवनदास, राघव महाजन—ये तो हरिभक्त एवं प्रभु-पाद-पद्मोंके अनन्य सेवक थे ही। इनकी दृढ़ हरि-भक्तिको देखकर हरसुखके चित्तपर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह अब थोड़े ब्याजपर ऋण देने लगा और ऋणकी वसूलीमें कभी किसीसे कड़ी बात कहना उसने सर्वथा छोड़ दिया तथा जीवनपर्यन्त प्रभुपरायण हो आनन्दपूर्वक हरि-रसका पान करता रहा।

* मोती फाट्यौ बींध्यां, मन फाट्यौ इक बोल। मोती फेर मँगावसां, मनड़ौ मिलै न मोल॥
(राजस्थानी दोहा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सत पंच चौपाई मनोहर'

(लेखक—डा० श्रीहरिहरनाथजी टुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०)

उत्तरकाण्डके अन्तमें भक्तवर तुलसीदासजीने पूर्ण विश्वासके साथ हमें यह आश्वासन दिया है कि—

सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै ।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुबर हरै ॥

यहाँ 'सत पंच' इन दो शब्दोंने बहुत लोगोंको उलझनमें डाल रक्खा है । 'सत पंच' को गोस्वामीजीने किस अर्थमें प्रयोग किया ? उनका 'सत पंच'से क्या मतलब था ? किसीका कहना है कि 'सत पंच' का अर्थ ५१०० है । श्रीरामचरितमानसमें कुल मिलाकर ५१०० चौपाइयाँ हैं; इसलिये 'सत पंच' से सम्पूर्ण मानस अभिप्रेत है । विनायकी टीकाकारका मत है कि कविवर तुलसीदासजीका अभिप्राय किन्हीं चुनी हुई ५०० चौपाइयोंसे है; क्योंकि 'सत' का अर्थ है १०० और 'पंच'का अर्थ ५ है । किसीका विचार है कि 'सत पंच' से १०० और ५ अर्थात् १०५ का अर्थ लेना ठीक है । कोई कहते हैं कि 'सत पंच' में 'सत' का अर्थ ७ और 'पंच'का ५ है । इसलिये 'सत पंच' १२ के बराबर हुआ । बारहका अंक विशेष महत्त्व रखता है । कालचक्रमें १२ ही राशियाँ हैं, जो हमारे भाग्यका नियन्त्रण करती हैं । किसीका विचार है कि 'सत पंच' के ७ और ५ से ३५, किसीके विचारसे ५७, किसीके मतसे ७५ अर्थ लेना ठीक है । कोई कहते हैं कि 'सत पंच' से सात या पाँचका अर्थ लेना चाहिये, परंतु इसपर यह विपत्ति है कि सात या पाँच चौपाइयोंमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान कहीं भी मानसमें नहीं पाया जाता, इस कारण यह अर्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता । संक्षेपमें लोगोंका कहना है कि 'सत पंच' चौपाईसे गोस्वामीजीका मतलब चुनी हुई किन्हीं १२ या ३५ या ५७ या ७५ या १०५ या ५०० चौपाइयोंसे है, या हो सकता है ५१०० चौपाइयोंकी सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानससे है ।

'सत पंच' के अर्थमें पहली कठिनाई तो अंकको है कि 'सत पंच'से कौन-सा अंक ग्रहण करना उचित है । दूसरी कठिनाई यह है कि यदि कोई एक अंक किसी तर्कके आधारपर ठीक मान लें तो फिर प्रश्न उठेगा कि उतनी चौपाइयाँ किस स्थल या प्रसंगकी ली जायँ और फिर उस प्रसंगमें किस दोहे, सोरठे या छन्दके बादसे चौपाइयोंकी गणना आरम्भ की जाय !

कुछ महानुभावोंने 'सत पंच'को अंकोंके अर्थमें नहीं लिया है । उनका कहना है कि 'सत' का मतलब है 'सच्चा' अथवा सात्त्विक और 'पंच' का अर्थ ५ नहीं है बल्कि पंच है जो निर्णय करता है । उनके विचारानुसार 'सत पंच'से गोस्वामीजीका अभिप्राय सच्चे या अच्छे पंचसे है जो भीषण कलिकालद्वारा पथभ्रष्ट किये गये मनुष्योंको सच्ची राय देकर, उन्हें सन्मार्गपर खींचकर फिरसे ले आनेमें सहायक हो ।

यद्यपि उपर्युक्त अर्थ ऐसे साधक और मानस-मर्मज्ञोंके बतलाये हुए हैं जो हमारे आदरणीय और श्रद्धास्पद हैं और इन अर्थोंको स्पष्ट करनेमें कभी-कभी विस्तृत और सूक्ष्म तर्ककी सहायता ली गयी है । फिर भी इन अर्थोंसे चित्तको संतोष नहीं होता और घूम-फिरकर बात वहीं आ जाती है जहाँसे यह उठी थी कि 'सत पंच'से गोस्वामी तुलसीदासजीका क्या अभिप्राय था ?

मानसका अर्थ करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि श्रीरामचरितमानस उस अर्थमें पुस्तक नहीं है जिस अर्थमें हम आजकल छपी कृतियोंको पुस्तक कहते हैं । रामकथाके वानर वैसे वानर नहीं थे जैसे वानर हम आजकल देखते हैं । वे अलौकिक वानर थे—

जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरषे देव बिलंब न कीन्हा ॥
बनचर देह धरी छिति माहीं । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥

इसी प्रकार श्रीरघुनाथजीके राज्यका समय साधारण समय नहीं था । वह अलौकिक काल था—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥

× × ×

ससि संपन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भइ कृत जुग कै करनी ॥

न श्रीकौशल्यानन्दनका अवतरण मानवीय था । हम जन्म लेते हैं, परंतु करुणानिधान प्रकट हुए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

हमारी उत्पत्ति इहलौकिक है। प्रभुका अवतरण अलौकिक था। इसी प्रकार करुणानिधानकी दिव्य लीलासे परिपूर्ण श्रीरामचरितमानस अलौकिक वस्तु है। यही कारण है कि श्रीजानकीजीवन और श्रीरामचरित-मानसमें बहुत साम्य है। विभीषणने विह्वल होकर करुणानिधानसे कहा था—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

वैसे ही अनन्त आर्त्तजन श्रीरामचरितमानसका सुयश सुनकर त्राहि-त्राहि करते हुए इसके शरणागत होते हैं और अनुपम शान्ति और भय-मुक्ति पाते हैं। जिस प्रकार सरकार श्रीरघुनाथजी पतितपावन हैं, उसी तरह श्रीरामचरितमानस पतितपावन है। या तो श्रीराघवेन्द्रकी कृपा ऐसी है कि उसका अन्त नहीं हो सकता या श्रीरामचरितमानस ऐसा है—

जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती।

रहस्यमय ऐश्वर्य और माधुर्य-भरी जिस प्रकार श्रीराम-चन्द्रजीकी अवतार-लीला है, वैसी ही गुप्त ऐश्वर्य और अकथ माधुर्य रससे परिपूर्ण श्रीरामचरितमानस कथा है।

अवतारीके गुण अवतारमें प्रकट हैं; क्योंकि श्रीराम-चरितमानस करुणानिधानका पुस्तक-रूपमें अवतार है।

परंतु 'सत पंच चौपाई'के उपर्युक्त अर्थ करनेवालोंकी दृष्टिसे श्रीरघुनाथजी और श्रीरामचरितमानसकी यह समानता दूर रही—यह आश्चर्य है। इन दोनोंमें एक विशिष्ट समानता सरलपनकी है। नीलकमल राजीवनयन करुणा-निधान प्रभुके स्वभावमें अतिशय सरलता है—

सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं—

संत 'सरलचित्त' होनेके कारण ही प्रभुको अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये उनके भक्त अपने स्वभावमें सरलताको मुख्य स्थान देनेका प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसके आनन्द-प्राप्तिके लिये उसके अर्थ स्पष्टीकरणमें सरलता अभीष्ट है। मानसका जो सरलताद्वारा अर्थ प्राप्त होता है, वह उस अर्थसे अधिक संतोषप्रद होता है, जो शब्दोंको तोड़-मरोड़-कर या केवल बुद्धिबलके आश्रयपर किया जाय। 'सत पंच' का सरल अर्थ 'सात-पाँच' है, जो साधारण बोलचालमें 'कुछ'से अभिव्यक्त होता है। अगर हम यह सीधा अर्थ लें तो 'सत पंच चौपाई' का 'पाँच-सात' या 'कुछ' या 'थोड़ी-सी' चौपाइयाँ अर्थ हुआ। कुछ लोगोंका कहना है कि पाँच-सात चौपाइयोंमें श्रीकरुणामय प्रभुका अच्छा ध्यान मानसमें कहीं नहीं पाया जाता, इसलिये यह अर्थ सुसंगत नहीं है। यदि प्रभुका ध्यान कहीं भी इतनी छोटी परिधिमें मानसमें नहीं पाया जाता तो इसमें हानि क्या है?

'सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।'

—में भक्तवर तुलसीदासजी यह कहाँ कहते हैं कि 'सत पंच चौपाई' द्वारा श्रीरघुनाथजीका ध्यान हृदयमें धारण करो? वे तो चौपाइयोंको हृदयमें धारण करनेको कहते हैं, 'कुछ' चौपाइयोंको, 'सत पंच' चौपाइयोंको जो मनोहर लगें। वे प्रभुके ध्यानको उरमें धारण करनेको नहीं कहते हैं। 'श्रीरघुनाथजी'का सम्बन्ध दूसरी पंक्तिसे है।

सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै॥

श्रीरघुनाथजीका सम्बन्ध अविद्याके विकारहरणसे है, 'उर धरै'से नहीं है। यदि कोई पूछे कि सत पंच मनोहर चौपाइयोंके हृदयमें धारण करनेसे श्रीरघुवीर उस व्यक्तिका अविद्याजनित विकार कैसे हर लेते हैं तो इसका उत्तर यह है—श्रीरामचरितमानस दिव्य है। यह कोई मामूली किताब या साधारण कविता नहीं है।

राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।

इसमें श्रीरघुवीरका प्रताप स्पष्ट है, प्रकट है और अपने इस अलौकिक प्रतापके द्वारा जिसने मानसकी चौपाइयोंको मन्त्रवत् शक्ति दे रक्खी है, श्रीरघुवीर उस व्यक्तिका अविद्या-जनित विकार नाश कर देते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि कविवर तुलसीदासजी जो 'कुछ' चौपाइयोंको उरमें धारण करनेको कहते हैं, वे कौन-सी चौपाइयाँ हैं और किस प्रसंगकी हैं? गोस्वामीजीने इसका बड़े सरल शब्दोंमें स्पष्ट उत्तर दिया है। वे कहते हैं—

'मनोहर जान'

अर्थात् जो चौपाइयाँ मनोहर लगें उन्हींको उरमें धरो। कविवर किसी विशेष स्थलकी चौपाइयोंकी ओर संकेत नहीं करते। वे यह भी नहीं कहते कि जो सर्वमान्य मनोहर चौपाइयाँ हैं, उनको हृदयमें धारण करो। गोस्वामीजी तो केवल यह कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—मनोहर जानि—

अर्थात् जो चौपाइयाँ मनोहर लगें, जिन चौपाइयोंको तुम मनोहर समझो। उनका आदेश है कि किसी स्थलकी भी चौपाइयाँ हों यदि वे तुम्हारे मनको मोह लें तो उन्हें 'उर धरो'। महाकवि रुचिभेदको स्वीकार करते हैं। वे पाठकके व्यक्तित्वको पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं, इसलिये उनका आदेश है कि जो तुमको मन भावे उन चौपाइयोंको हृदयस्थ करो।

परंतु रुचि-भेद व्यक्ति-भेदपर ही नहीं समाप्त हो जाता। यह भी सम्भव है कि एक ही व्यक्तिको आज जो चौपाइयाँ मनोहर लगें वे कुछ समयोपरान्त उसे उतनी अच्छी न लगें और अन्य कोई चौपाइयाँ उसका मन मोह लें। यह पसंद उसकी परिस्थिति, वातावरण, मानसिक अवस्था या 'मूड' पर निर्भर करती है। रुचि परिवर्तनशील है तथा समय और परिस्थितिसे प्रभावित होती है। इससे यह निर्णय निकलता है कि एक स्थल या एक क्रमकी चौपाइयाँ एक व्यक्तिके लिये भी सदा एक-सी मनोहर नहीं होंगी।

यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो मालूम होगा कि कविवर तुलसीदासजीका 'मनहर' और 'जानि' शब्दोंपर विशेष आग्रह है। चौपाइयाँ 'मनहर' हों और जो उनको चुने वह किसीकी कही हुई बात मानकर नहीं, बल्कि अपने अनुभवसे 'जानि' अर्थात् अपनी रुचिके अनुसार उनको मनोहर जानकर पसंद करे। गोस्वामीजीका यह अभिप्राय है कि श्रीरामचरितमानसके सम्पर्कका प्रभाव क्षणिक न रहे। पाठोपरान्त हम मानसके अमूल्य आनन्दको भूल न जायँ। इस कारण कविवरका यह कहना है कि प्रतिदिनके मानस-पाठमें जो कुछ पाँच-सात चौपाइयाँ हमको मनहर लगें, पसंद आ जायँ, दिलमें चुभ जायँ उनको दिनभरके लिये हम अपने उरमें धारण कर लें अर्थात् उस दिन उन चौपाइयोंको समय-समयपर मनमें दोहराते रहें, उन चौपाइयोंके अर्थपर विचार करते रहें, उनका रसास्वादन करते रहें, उन मनहर चौपाइयोंका ध्यान करते रहें। उन सुन्दर चौपाइयोंमें जो श्रीवचन हैं उनका, अथवा करुणा-निधानकी जो लीला उन चौपाइयोंमें वर्णित है उसका, या जो भक्ति, ज्ञान या नीति उन चौपाइयोंमें निहित हों उनका ध्यान समय-समयपर करते रहें। इस प्रकार 'सत पंच चौपाइयों' अर्थात् 'कुछ' मनोहर चौपाइयोंको हृदयमें धारण करनेसे हमारा उस दिन सदा सत्संग चलता रहेगा। अरण्यकाण्डके अन्तमें भक्तवर तुलसीदासजीने कहा है—

करहि सदा सतसंग—

इस 'सदा सत्संग'की केवल इसी विधानके मानसपाठ द्वारा सम्भावना है। जो सत्संग किसी अन्य व्यक्तिकी भेंट या रुचि या कृपापर निर्भर हो, वह हमारे 'सदा सतसंग' का आधार नहीं बन सकता। आजकल जब—

दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।

और

मारग सोइ जा कहुँ जो भावा।

तब सच्चे मन-चाहे सत्संगका अवसर और उसकी सम्भावना बहुत कम हो गयी है। ऐसे कलिकालमें यदि हम 'सदा सत्सग'का सौभाग्य प्राप्त करके अपना जन्म सफल करना चाहते हैं तो इसका एकमात्र उपाय यह है कि परम भागवत गोस्वामी तुलसीदासजीके इस सदुपदेशका अनुकरण करें—

सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै॥

मूल्यवान् जीवन व्यर्थ जा रहा है

मानव-जीवन मूल्यवान यह बीता चला जा रहा व्यर्थ।
'परम अर्थ' प्रभुको कर विस्मृत, संग्रह हम कर रहे अनर्थ॥
प्रभुका चिन्तन छोड़, रात-दिन करते हम भोगोंकी याद।
बढ़ती भोगासक्ति दिनोंदिन, बढ़ते भय, भ्रम, शोक-विषाद॥
सत्पथ त्याग इसीसे चलते हम कुमार्गपर भर उत्साह।
नये-नये पापोंका संचय होता, बढ़ता नित उर-दाह॥
पता नहीं, क्या-कैसा होगा, इसका दुस्सह दुष्परिणाम।
इससे बचनेका उपाय है एकमात्र—'भजना श्रीराम'॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामके पत्र

(१)

भोगसे मानवजीवनमें सुख नहीं

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला था । आपका यह लिखना सत्य है कि 'जगत्‌में नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारोंके प्रभावसे सुखके साधन बढ़े हैं। मनुष्यको आज उसकी मनचाही प्रचुर भोग-सामग्री सुलभतासे प्राप्त हो सकती है । जगत्‌में विद्या-शिक्षाका प्रसार भी बढ़ा है । तथापि देखा यह जाता है कि मनुष्यका दुःख और भी बढ़ा है । आज मनुष्य जितना अशान्त और दुखी है, उतना पहले नहीं था और यह अशान्ति-दुःख उत्तरोत्तर बढ़ते ही चले जा रहे हैं ।' वास्तवमें मनुष्यका आत्मा है— आनन्दस्वरूप । अतएव उसकी आनन्दकी चाह स्वाभाविक है । पर वह चाहता है—सदा रहनेवाला पूर्णतया अखण्ड आनन्द । ऐसा सम्पूर्ण तथा अखण्ड आनन्द एकमात्र भगवान्‌में है । भगवान् सच्चिदानन्दघन हैं । वे ही रस हैं— 'रसो वै सः' । इन भगवान्‌के सिवा यह अन्य कहीं भी नहीं है । इस बातको न समझकर मनुष्य उन वस्तुओं, परिस्थितियोंमें आनन्द—सुख खोजता है और जैसे उत्तप्त मरुभूमिमें जलके भ्रमसे भटकनेवाला हरिन उस मरीचिकाके पीछे दौड़कर जलता-भुनता है, वैसे ही मनुष्य भी भौतिक पदार्थों—भौतिक ज्ञान-विज्ञानों एवं भौतिक भोगोंके पीछे दौड़-दौड़कर जलता रहता है। वह पाना चाहता है विशुद्ध अखण्ड परमानन्दको, और पाता है विकृत अशुद्ध 'अर्थ'के नामसे ख्यात'अनर्थ'को—सुखके नामसे व्यक्त भीषण दुःखको।

फिर ज्यों-ज्यों भोग-सुविधा तथा भोग-वस्तुएँ बढ़ती हैं, त्यों-ही-त्यों उनकी तृष्णा और भी बढ़ती जाती है । इससे मनुष्य मनुष्यसे डाह करता है, दूसरेके भोग छीनकर स्वयं विशेष भोग-सम्पन्न बनना चाहता है । परिणाममें सभी ओर दुःख बढ़ जाते हैं । इसपर भी, मनुष्य बार-बार दुःखका अनुभव करनेपर भी उन्हीं पदार्थोंमें—परिस्थितियोंमें सुखकी खोज करता है । मरते समय चिन्ताग्रस्त, अशान्त-मानस, दुखी रहता है और नये-नये पाप बटोरकर उन्हें भोगनेके लिये देहत्याग कर चला जाता है । जगत्‌में यही हो रहा है और जबतक मनुष्य इस भ्रमपूर्ण भोग-सुखकी ओर दौड़ता रहेगा, तबतक उसके दुःख उत्तरोत्तर बढ़ते ही जायँगे । इस दृष्टिसे देखा जाय तो ऐसा अनुमान होता है कि विज्ञानकी चाहे जितनी उन्नति हो जाय—मानव-जीवनमें सुख नहीं होगा, वरं दुःखकी ज्वाला बढ़ती ही जायगी । आज वैज्ञानिक जगत्‌के उन्नतिशील देशोंमें जो अनवरत जघन्य अपराधोंकी संख्या बढ़ रही है, यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—शेष भगवत्कृपा ।

(२)

वर्तमान प्रगतिका परिणाम विनाश

आपका कृपापत्र मिला । मेरी समझसे इस समय जगत् विकासकी ओर नहीं, विनाशकी ओर ही जा रहा है । बुद्धि तमसाच्छादित होनेके कारण 'विनाश'को 'विकास' बताया जा रहा है । जितना ही आध्यात्मिक भावोंका ह्रास होता है और भौतिक पदार्थोंकी, भोग-सुख—सुविधाओंकी विपुलता, सुलभता, आसक्ति तथा कामना बढ़ती है, उतना ही जगत्‌के मानवोंमें आसुरभाव बढ़ता है, जिसमें अहंकार, मद, ममता, राग, द्वेष, क्रोध, लोभ, वैर, हिंसा, प्रतिहिंसा आदि दोष, दुर्गुण, दुर्विचार और दुष्कर्म भरे रहते हैं । इस प्रकारकी आसुरभावाश्रित परिस्थितिसे अशान्ति, दुःख तथा पाप उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं, चाहे कितनी ही भौतिक-वैज्ञानिक उन्नति हो । आज जगत्‌में यही हो रहा है । सभी लोग ध्वंस-साधन सामग्रीके सृजन, संग्रह और प्रयोगमें लगे हैं ।

हालमें दिल्लीके सोवियत दूतावाससे रूसकी सामरिक शक्तिके सम्बन्धमें एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है । उसमें कहा गया है कि दससे बीस मेगाटनका परमाणु बम १५ से २० किलोमीटर स्थानके सब कुछको ध्वंस कर सकता है और ऐसे ५० से १०० मेगाटन अत्यन्त शक्तिशाली बम रूसके पास हैं । इन परमाणु बमोंको ले जानेके लिये जिन राकेटोंका आविष्कार हुआ है, उनकी शक्ति भी असीम है । यह राकेट पृथिवीके वायुमण्डलको भेद करके किसी भी आबहवा, समय या कालकी बाधाको दूर हटाते हुए १५ सौ किलोमीटर ऊपरतक जा सकता है । राकेटोंकी गति-शक्ति भी पर्याप्त भयानक है । चार लाख लारियोंके केन्द्रीभूत इंजिनों-के समान चालके साथ राकेटके इंजिनकी गति-शक्तिकी तुलना की जा सकती है । इन राकेटोंके आक्रमणकी शक्ति भी सीमातीत है । पृथिवीके किसी भी स्थानसे जिस किसी वस्तुका लक्ष्य करके उसपर किसी भी प्रतिरोधकी उपेक्षा करके ये राकेट आघात कर सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस और अमेरिकामें तो होड़ लगी है। वे इन सभी विषयोंमें एकसे दूसरा निरन्तर आगे बढ़नेकी चेष्टामें लगा है। चीन आदि अन्यान्य देश भी यथासाध्य मारणास्त्रोंके निर्माणमें संलग्न हैं। परस्पर स्पर्धा, अविश्वास, संदेह और द्वेष बढ़ते ही जा रहे हैं। कहीं किसी ओरसे जरा-सी छेड़खानी हुई कि गीतोक्त सम्मोह, स्मृतिभ्रंश और बुद्धि-नाशकी स्थितिमें मारणास्त्रोंका प्रयोग हो सकता है और इससे जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंका विनाश अनिवार्य है।

आचार्यदेवो भव

(लेखक—प्रो० डॉ०—श्रीसीतारामजी झा, 'श्याम', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आचार्यमें देवत्वकी प्रतिष्ठा करना भारतीय शिक्षापद्धतिके चरम विकासका परिचायक है। परंतु आधुनिक कालमें अधिकांश लोगोंको 'आचार्यदेवो भव' एक हास्यास्पद प्रसङ्ग प्रतीत होता है। श्रद्धा एवं भक्तिके अभावमें ऐसी धारणाका उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। उच्छृङ्खलताका जैसा वातावरण प्रायः आज चारों ओर उपस्थित है, उसमें शिक्षकका साधारण सत्कार भी नहीं किया जाता, फिर उन्हें देव-तुल्य समझनेका प्रश्न ही नहीं उठता। यद्यपि शिक्षक भी अपने आदर्शसे विचलित अवश्य हो गये हैं, पर अभी भी सम्मानकी जिस ऊँचाईपर उनका जीवन अधिष्ठित है, लोलुप समाजकी दृष्टि उधर नहीं जा रही है। समाजके अन्य लोगोंकी तरह शिक्षकके महत्त्वको भी भौतिक सम्पदाओंके आधारपर ही आँका जाने लगा है। उन्हें देवताकी भाँति पूज्य माननेकी आवश्यकता नहीं समझी जा रही है। निश्चय ही यह हमारे सामाजिक वातावरण तथा शिक्षाप्रणालीकी पतनोन्मुखी स्थितिका सूचक है।

आदिकालसे ही आचार्योपासनाको सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। गुरुको ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंका प्रतिरूप मानकर आराधना करनेका विधान विख्यात है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'गुरु-गीता'में तो ईश्वर-पूजनके समस्त रूपों एवं सिद्धिके सभी प्रकारोंका मूल गुरुको ही स्वीकारा गया है। यहाँतक कि मोक्षकी प्राप्ति भी गुरु-कृपाश्रित ही समझी गयी है—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

वस्तुतः निखिल ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त परमेश्वरसे साक्षात्कार करानेवाले सद्गुरु ही होते हैं। इसलिये सर्वप्रथम उनके पावन चरणोंमें दृढ़ भक्तिका होना परमावश्यक है—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो आचार्य और ईश्वर अभिन्न हैं। सच्चे अर्थमें गुरु तो वे ही हैं जो भगवान्‌को पहचान चुके हैं—पा चुके हैं। जो गुरु स्वयं भगवान्‌से अपरिचित हैं, वे अपने शिष्यको उनसे परिचित भी कैसे करा सकते हैं? जैसा कि श्रीमद्भागवतपुराणमें निर्दिष्ट है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः॥
(११। ३। २१-२२)

धर्मप्रधान देश भारतवर्षमें श्रेय भी उसी व्यक्तिको दिया जाता है, जो मृत्यु—अर्थात् मायान्धकारसे परित्राण दिलाकर जीवात्माको प्रकाशके प्रशस्त पथपर अग्रसारित कर सके। गुरु, माता, पिता आदिका महत्त्व एक इसी बातमें निहित है। वह गुरु गुरु नहीं, वह माता माता नहीं, वह पिता पिता नहीं, वह देवता देवता नहीं, वह पति पति नहीं जो मृत्युसे न बचा सके—

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥
(श्रीमद्भागवत ५। ५। १८)

हमारे देशमें गुरु-पूजनकी एक विशिष्ट परम्परा प्रचलित रही है। जैसे पुत्र अपने पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिको परम पूज्य मानकर उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति निवेदित करता है, ठीक उसी प्रकार गुरु-परम्पराके प्रति भी व्यवहार किया जाता था। जैसे—गुरु, परमगुरु (गुरुके गुरु), परापर गुरु, परमेष्ठि गुरु। इसके अतिरिक्त अन्य दृष्टियोंसे भी गुरुके अनेक भेदोपभेद किये गये हैं। यथा—शिक्षा-गुरु, दीक्षा-गुरु, लौकिक-गुरु, वैदिक-गुरु, अध्यात्म-गुरु आदि। पर सभी प्रकारके गुरुओंका कर्तव्य एक ही होता है और वह है—अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले जाना। ऐसे समुद्धारकके प्रति नमन सहज स्वाभाविक है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

आजकी अपेक्षा प्राचीन कालकी शिक्षा अधिक तेजस्वी होती थी, इसे स्वीकार करनेमें प्रायः किसीको भी आपत्ति न होगी। प्रश्न है, आज तो बड़ी संख्यामें विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं, फिर भी विद्याका तेज क्यों नहीं फैल रहा है? सच तो यह है कि शिक्षा और श्रद्धामें घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज श्रद्धाका तिरोभाव हो गया है, इसलिये विद्याका तेज भी मंद पड़ गया है। प्राचीन समयमें शिष्य श्रद्धापूर्वक आचार्यकी सेवा करते हुए शिक्षा प्राप्त करता था और गुरु सद्भावनासे उसे सच्ची और अच्छी विद्याएँ सिखलाते थे। इसलिये शिक्षा अपने मूल उद्देश्य चरित-विकासके साथ जीवनमें चरितार्थ होती थी। **'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'** का महान् आदर्श ग्रहण कर शिष्य गुरुके चरणोंमें बैठकर सत्य–प्रकाशकी किरणोंको प्राप्त करते हुए अन्धकारकी सीमा-रेखाको पारकर लोक-परलोकसे अवगत होते हुए छात्रत्वको सार्थक बनाकर अपने-अपने समाजके और समस्त संसारके कल्याणकी ओर अग्रसर होता था। पाठाध्ययन प्रारम्भके पूर्व शिक्षार्थी बार-बार ईश्वरसे प्रार्थना करता था—**'तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।'**—तैत्तिरीयोपनिषद्—अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मेरे आचार्यकी रक्षा करें और मेरी रक्षा करें। उसी प्रकार पाठ आरम्भ करनेके पहले गुरु भी ईश्वरसे प्रार्थना करते थे—**'तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।'** अर्थात् गुरु-शिष्यद्वारा पढ़ी हुई विद्या तेजस्वी हो तथा गुरु-शिष्य कभी भी द्वेष-भावको न लावें। इतने उच्च और पवित्र विचारसे प्रेरित होकर सीखी जानेवाली विद्या क्या कभी प्रभावशून्य हो सकती थी? क्या यह गुरूपेक्षाका ही दुष्परिणाम नहीं है कि आजके बहुसंख्यक विद्यार्थी अपना हित-साधन करनेमें भी अक्षम सिद्ध हो रहे हैं और समाज, राष्ट्र एवं विश्वके कल्याणकी कल्पना भी वे नहीं कर पाते?

वर्तमान युगमें शिक्षाके प्रति छात्र और उनके अभिभावकोंका दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकवादी बन गया है। वे सोचते हैं, हम शुल्क देते हैं, इसलिये शिक्षक शिक्षा देते हैं। किंतु यह धारणा वास्तवमें अनुचित है। शिक्षा खरीदनेकी वस्तु नहीं है, सीखनेकी वस्तु है और सीखनेमें श्रद्धाके पूर्ण सहयोगकी अपेक्षा है। जिस ज्ञानको सहस्रों रुपये खर्च कर नहीं प्राप्त किया जा सकता है, उसे सच्चे मनसे गुरुकी सेवा करनेपर उपलब्ध किया जा सकता है। अतएव व्यर्थके चक्करमें न पड़कर गुरुके प्रति श्रद्धा रखते हुए ज्ञानकी प्राप्तिमें समयको व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है—

अधिगच्छति शास्त्रार्थः स्मरति श्रद्दधाति च।
यत्कृपावशतस्तस्मै नमोऽस्तु गुरवे सदा॥

जैसे यह सत्य है कि फावड़ेसे मिट्टीको कोड़नेवाला पानीको प्राप्त करेगा ही, वैसे ही यह भी ध्रुव सत्य है कि गुरुकी सेवा करनेवाला विद्यार्थी भी गुरुकी सभी विद्याओंको सीख लेनेमें सफल सिद्ध होगा—

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥
(मनुस्मृति)

आजके कतिपय छात्र अपने गुरुको प्रणाम करनेमें भी कष्ट और संकोचका अनुभव करते हैं। यही कारण है कि सभी दृष्टियोंसे उनका जीवन पतनोन्मुख होता चला जा रहा है। मनुस्मृतिके अनुसार आयु, विद्या, यश एवं बलकी वृद्धिके लिये गुरुकी सेवा ही पर्याप्त है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

यदि थोड़ी देरके लिये यह मान भी लें कि बिना गुरुकृपासे धनका संचय हो जाता है। पर उस धनके बलपर भव-सागरको कथमपि नहीं पार किया जा सकता। उसके लिये तो गुरुकी कृपाको छोड़कर कोई भी दूसरा साधन सिद्धिप्रद नहीं हो सकता। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा भी है—

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जो बिरंचि संकर सम होई॥
(उत्तरकाण्ड-रामचरितमानस)

गुरुके इसी तुल्य गुणके कारण कबीरदासजीने ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गुरुकी एक साथ उपस्थितिमें पहले गुरुको प्रणाम करना ही उचित समझा । गुरुके अभावमें ईश्वरत्वकी पहचान ही असम्भव है । ईश्वर-दर्शनका सारा श्रेय गुरुको ही है, इसलिये प्रथम 'नमस्य' भी वे ही हैं:—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविन्द दियो मिलाय ॥

प्रस्तुत संदर्भमें यह विचारणीय है कि आजके अधिकांश छात्रोंमें गुरुके प्रति श्रद्धा क्यों नहीं दिखायी पड़ती है ? इसका कोई एक कारण नहीं है । सर्वप्रथम तो भोजन, वस्त्र और आवासकी भिन्नताके कारण परस्परके व्यवहारोंमें अन्तर आ गया है । मनुस्मृतिमें इसका स्पष्ट उल्लेख है कि छात्रको चाहिये कि वह गुरुके समक्ष साधारण वस्त्र पहने, साधारण भोजन करे और साधारण ढंगसे रहे—

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात् सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत् प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥

आजके विद्यार्थियोंके रहन-सहनको देखते हुए ऐसे आचरणकी अपेक्षा करना निरर्थक है । चटकीले और भड़कीले वस्त्रोंको पहनना एवं गुरुकी निन्दा करना आजके बहुसंख्यक छात्रोंका स्वभाव-सा बन गया है । पहले जहाँ ऐसा विधान था कि गुरुकी निन्दासे छात्रको सदा दूर रहना चाहिये—

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥

वहाँ आजके छात्र ध्वनि-विस्तारक यन्त्रसे गुरु-निन्दाका प्रचार करते हैं और कानोंको खोलकर उनकी शिकायत सुननेमें विलक्षण रसका आस्वादन करते हैं । छात्रके लिये गुरुके समान या उच्च आसनपर बैठना भी पहले असभ्यताका सूचक माना जाता था, पर आज तो शिक्षकको नीचा दिखानेमें बहुत-से छात्र अपना बड़प्पन समझते हैं । मनुस्मृतिका विधान है—

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥

समान या उच्च आसनपर नहीं बैठने या उठकर खड़े होकर नमनकी बात तो दूर रहे, अब तो शिक्षकके वर्गमें जानेपर खड़े होनेके अनुशासनको भी बहुत-से छात्र पसंद नहीं करते । अवश्य ही इस प्रसंगमें शिक्षकोंके आचरणोंपर दृष्टिपात करना भी अत्यन्त प्रयोजनीय है । मेरे जानते प्रणाम, सत्कार, अभिवादन आदि माँगकर नहीं प्राप्त किये जाते । शिक्षकोंका ऐसा महान् आदर्श तथा व्यक्तित्व होना चाहिये—ऐसा बाह्य तथा आभ्यन्तरिक सात्त्विक चरित्र-बल होना चाहिये जिससे सम्मान उनके पीछे-पीछे चला करे । सम्मान शिक्षकका दूसरा नाम है, पर सम्मान त्याग खोजता है, सदाचार खोजता है, उच्च चरित्र खोजता है और महान् आत्मबल खोजता है । आजके अधिकांश शिक्षक रुपयोंपर न्योछावर हैं । रुपयोंके लोभमें वे साधारण-से-साधारण लोगोंकी खुशामद करनेमें तथा हीन व्यवहार करनेमें भी संकोचका अनुभव नहीं करते । फिर उनके आचार-विचार, आचरण, संयम, नियम आदि भी बहुत गिर गये हैं । ऐसी स्थितिमें यदि छात्र और उनके अभिभावक उनकी ऊँचाईको रुपयोंके आधारपर आँकते हैं तो आश्चर्यके लिये अवसर नहीं रह जाता है । अवश्य ही आज भी ऐसे शिक्षक हैं जिनके पीछे सम्मान दौड़ता चलता है, जो अपनी विद्वत्ता, आत्मबल, कर्मठता, त्याग एवं परोपकारके बलपर आचार्यपदको आजके उच्छृङ्खल युगमें भी गौरवान्वित कर रहे हैं । ऐसे गुरुओंको 'आचार्यदेवो भव' की दृष्टिसे देखनेमें किसीको भी संकोचका अनुभव नहीं होना चाहिये ।

इस प्रकार बहुत आवश्यक है कि आजके शिक्षक भी त्याग, सत्यनिष्ठा, कर्मठता, परोपकारिता, सच्चरित्रता एवं अध्ययनशीलताका आदर्श उपस्थितकर 'आचार्यदेवो भव'—औपनिषदिक उक्तिको वर्तमान जीवनमें चरितार्थ करें ।

भारतवर्षमें जातिप्रथासे लाभ

'हिंदू-विधानमें जातिविभाजन कई पहलुओंसे उत्कृष्ट व्यवस्था है—मैं ऐसा विश्वास करता हूँ । मेरी यह मान्यता है कि लोगोंके जातियोंमें विभाजित होनेके कारण ही केवल भारतवर्ष असभ्यताकी हालतमें पहुँचनेसे बचा रहा है और इसीलिये वह अपनी सभ्यताकी कला और विज्ञानको कायम रख सका है और पूर्णताकी हालतमें जा सका है, जब कि पृथ्वीकी अन्य अनेक जातियाँ असभ्यताकी हालतमें पड़ी हैं ।...'

(अठारहवीं शताब्दीमें भारतमें ईसाईधर्मके प्रचारके लिये तीस वर्षसे अधिक रहकर यहाँका अध्ययन करनेवाले पादरी मि० अब्बे जे० ए० डुबवा (Mr. Abbe J. A. Dubois) की 'हिंदुओंके रीति-रिवाज और उत्सव' (Hindu Manners. Customs and Cere monies)नामक' आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा प्रकाशित पुस्तकसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मानव-रत्न आज भी चमक रहे हैं

कानपुरके जैन-समाजके मकानमें एक दिन सबेरे अचानक एक भाई ऊँझासे आये। बातचीत हुई। उनका बारह वर्षका लड़का दो महीने पूर्व बिना किसीसे कुछ कहे घरसे निकल गया था। तीन-चार पत्र मिले। उनपर डाककी छाप कानपुरकी थी। इसीलिये ये भाई कानपुर आये। दो दिनोंतक बहुत खोज-तलाश की, परंतु पता नहीं लगा। तीसरे दिन स्थानीय एक पत्रमें विज्ञापन छपवाया। फोनके नम्बर दिये। रातको घंटी बजी—'आपका पुत्र मेरे पास है—'पता बतलाया—कहा 'सबेरे आकर ले जाइयेगा।' खुशीका पार नहीं रहा।

सबेरे ही हमलोग वहाँ जा पहुँचे। लड़का बड़े आनन्दमें था। सुन्दर तथा बढ़िया कपड़ोंमें, पहलेसे अधिक तन्दुरुस्त। उसकी देख-रेख रखनेवाले थे एक शिक्षक, उम्र लगभग पैंतालीस सालकी। उन्होंने हमारा बहुत सत्कार किया। तदनन्तर घटना सुनायी।'मैं स्टेशन जा रहा था, मेरी नजर इस लड़केपर पड़ी। तीन-चार गुंडोंने घेर रक्खा था। मुझे संदेह हुआ, मैंने गुंडोंसे बात की। पहले तो वे धमकी देने लगे। मैंने पुलिसका डर बताया, तब लड़का उनके शिकंजेसे छूटा। मैं घर ले आया। अच्छी तरह खिलाया-पिलाया। उस दिन उसने सारी बातें बतायीं। मेरे भी इसीके उम्रका एक लड़का है। दोनों हिलमिल गये। लड़केकी पढ़ाई शुरू की। उसे हिंदी सिखायी।'

ऐसे आनन्दमय वातावरणको छोड़कर लड़का किसी तरह आनेको तैयार नहीं था। परंतु शिक्षक बन्धुने उसे समझाया। हमलोग उनका बड़ा आभार मानकर सौ रुपये उन्हें देने लगे। उन्होंने एक पाई भी नहीं ली, केवल इतना ही उत्तर दिया—'ऐसे तीन लड़के मेरे यहाँ आ चुके हैं। और पता नहीं, भविष्यमें कितने आयेंगे। मेरे जीवनका यह कर्तव्य है। इसका मैं जीवनभर पालन करूँगा। मेरा यह बिना माँका अबोध एकमात्र लड़का छः वर्ष पहले खो गया था। कलकत्तेकी तरफके एक छोटेसे गाँवमें एक बिल्कुल गरीब भाईने दस महीने तक इसकी सार-सँभाल की और यथासाध्य पूरी खोज-तलाश की, पता लगनेपर स्वयं साथ आकर सकुशल मेरे घर छोड़ गये। उस दिनसे ऐसे किसी छोटे बालकको अकेला अथवा ऐसी परिस्थितिमें देखता हूँ तो स्वाभाविक ही मेरे अन्तरमें सहानुभूतिकी तरंगें उठने लगती हैं।'

हमने शिक्षक बन्धुसे अनुमति माँगी, उधर लड़के और शिक्षक महोदयकी आँखें छलक उठीं। गद्गद कण्ठसे शिक्षकने कहा—'किसी समय पत्र जरूर लिखना।' फिर आभार मानकर हमलोग मन-ही-मन नमन करने लगे। अन्तरमें एक तेज रेखा उदय होकर अदृश्य हो गयी; उसके अच्छे प्रकाशमें हम इतना ही पढ़ सके—'आज भी ऐसे अनेक मानव-रत्न इस विश्वमें लुके-छिपे चमक रहे हैं।'

'अखण्ड आनन्द'—

—जेठालाल कानजी शाह

(२)

रामनामका चमत्कार

मैंने 'कल्याण' वर्ष ४३, अङ्क चार देखा। पृष्ठ ८७५ पर श्रीअखौरी अवधेशनन्दन, राँचीद्वारा प्रेषित 'प्रार्थनाका फल' पढ़ा। श्रीनन्दन हमारे अभिन्न मित्रोंमेंसे हैं। ठीक इसी प्रकारकी परिस्थिति मेरे सामने भी थी। मैं करीब २५ वर्षोंसे 'दुर्गापाठ' नित्य करता हूँ। प्रार्थनाका फल अवश्य मिलता है, यदि शुद्ध हृदय तथा विश्वासके साथ प्रार्थना की जाय। मेरी दो लड़कियाँ अविवाहित थीं। एक और लड़की जो सबसे बड़ी थी, उसका विवाह बहुत पहले हो चुका था। दूसरी लड़की डाक्टर माया पाण्डेय (अब डाक्टर माया वर्मा) जो एम्० बी० बी० एस० हैं, असैनिक शल्य चिकित्सकके पदपर १९६४ से काम कर रही है और दूसरी कुमारी वीणा पाण्डेय (अब श्रीमती वीणा लाल) जो एम्० ए० बी० एड० है, अविवाहित थी। करीब चार-पाँच वर्षोंसे मैं इन लोगोंके लिये योग्य वरकी तलाशमें था। जहाँ जायँ, बीस-पचीस हजारकी माँग थी। इधर डाक्टर मायाका कहना था कि 'यदि तिलकका प्रश्न उठा तो मैं जन्मभर शादी नहीं करूँगी।' मेरे पास रुपये तो थे नहीं, फिर भी लड़कीकी जिद्द, जहाँ जाऊँ वहींसे निराश होकर लौटना पड़ा। मैं तो करीब-करीब निराश हो गया था; परंतु बाइबिलमें पढ़ा था कि "Marriages are arranged

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११७३२।

in Heaven" विवाह भगवान्‌के द्वारा रचा हुआ है। इस कथनपर अटल विश्वास था। मैं खोज जारी रखते हुए प्रयत्नशील रहा।

मेरे साले श्रीमहेश्वरीसहाय, जो अवकाशप्राप्त मुन्सिफ हैं, अपने ग्राम पो० हरदिया, जिला सारनमें अपने घरपर रहते हैं। वहाँसे करीब डेढ़ मील उत्तर ग्राम सुन्दरी है। वहाँ श्रीअखलेश्वरीप्रसाद वर्माके पुत्र श्रीशरवेश्वरीप्रसाद वर्माका पता चला। करीब एक महीना वहाँ रहा, परंतु काम नहीं हुआ। मैं वहाँसे भी निराश होकर पटना चला आया।

दिनाङ्क ६-५-६८ की बात है। मैं श्रीशैलेश्वर लखेयार एडवोकेट, कदमकुआ, पटना–३ के निवासस्थानपर संत नाखून साहका प्रवचन सुन रहा था। संतजीने मुझे उदास देखा। उन्होंने कहा कि 'इधर-उधर भटकनेकी आवश्यकता नहीं है। आरामसे घरमें बैठो। जिस परिवारमें शादी होना है, वे लोग स्वयं तुम्हारे पास आयेंगे।'

उसी रात्रिको १० बजे श्रीअखलेश्वरीप्रसाद वर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी मेरे पास आये। शादीकी बातें हुईं। बिना दहेजके शादी ठीक हो गयी। लड़कीको देखा, पसंद हो गयी और १३-५-६८ को विवाह सम्पन्न हो गया।

बात यह थी कि उनके लड़केकी शादी अन्यत्र निश्चित हुई थी, परंतु ऐन मौकेपर लड़का नकार गया। चूँकि शादी इसी वर्ष करना आवश्यक था। श्रीवर्मा और उनकी पत्नी इसीसे मेरे पास आये थे।

इस शादीमें करीब बारह हजार रुपये खर्च किये गये। अब दूसरी लड़कीका विवाह भी करना आवश्यक था। मेरे पास पूँजी भी बहुत कम, नहींके बराबर थी।

उस समय मैं गोन्डा (संताल परगना) में अपनी लड़की डाक्टर माया पाण्डेयके पास था। खबर मिली कि मुजफ्फरपुरमें एक लड़का है। मैं शीघ्र मुजफ्फरपुरके लिये रवाना हो गया। इसी यात्रामें दिनाक ४–१–६९ को रेलगाड़ी बरौनी जंक्शनमें रुकी। मैं दो सीटवाले तीसरे दर्जेके शयनकक्षमें था। इसी समय एक भद्र पुरुष मेरे समीप आकर बैठ गये। मेरी नींद टूट गयी तथा बातचीत होने लगी। यह बात निकल ही गयी कि मैं शादी ठीक करनेके लिये निकला हूँ। उन्होंने एक सीधा-सादा प्रयोग बताया— उन्होंने कहा कि "सफेद उजले कागजपर केवल 'राम' शब्द लाल स्याहीसे कागजके एक ही तरफ [illegible] लाख पचीस हजार [illegible] हो जायँ, तो गङ्गाजीको समर्पण कर दें। किसी प्रकारका नियम नहीं है, परंतु कुछ-न-कुछ नित्य लिखें। कभी नागा न हो।" इन भद्रपुरुषका नाम श्रीअवधविहारी पाठक है और ये बरौनी जंक्शनमें रेलवे गार्डका काम करते हैं।

उसी दिनसे मैंने यह प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। मुजफ्फरपुरमें शादी ठीक न हो सकी, परंतु नित्य ही प्रेरणा मिलती गयी। मैंने अपना प्रयत्न जारी रक्खा।

करीब एक चौथाई लिखनेपर २५–१–६९ को रायबरेली पहुँचा। वहाँ लड़केके अभिभावक डाक्टर श्री एस० के० सिन्हा, प्राचार्य फिरोज गांधी कॉलेजसे मिला तथा लड़के प्रोफेसर श्रीहरिशरणलालसे भी मिला। सबसे मिलनेपर मुझे तो यही अनुभव हुआ कि मानो कोई पहले ही वहाँ जाकर बातें पक्की कर आया है। इसके बाद दिनांक २८–१–६९ को लड़केकी मातासे, जो घरपर ही रहती हैं, जाकर मिला। (पो०–सैदपुर, जिला गाजीपुर)। उस दिन मेरा काम करीब-करीब एक तिहाई सम्पन्न हुआ था। सगुन उनको भी दे दिया और शादी करीब-करीब निश्चित हो गयी। १०–२–६९ को छेका, २–३–६९ को तिलक तथा ११–३–६९ को विवाह सम्पन्न हो गया।

इस शादीमें भी कोई लेन-देनकी बात नहीं थी। मैंने केवल रेलयात्रा इत्यादिके लिये ३०००) हजार रुपये दिये। इस विवाहमें कुल १५०००) हजार रुपये खर्च हुए।

यह रकम कहाँसे और किस प्रकार आयी, मुझे खुद मालूम नहीं होता। खर्च करते हुए मुझे मालूम होता था कि रुपया उपज रहा है। यह सब भगवान्‌की दयादृष्टिका फल है।

बोलिये दीनबन्धु प्रभुकी जय !!

पाण्डेय तारिणीप्रसाद,

—अवकाशप्राप्त अनुमंडलीय शिक्षा पदाधिकारी

पोस्ट–मटुकपुर (आरा)

जिला–शाहबाद

(३)

ऋण चुकाया जाता है *

राजस्थानके 'क' नामक नगरमें भूराराम तेली रहता था। तेली तेलका व्यापार करता था। उस समयतक

---

* घटना सच्ची है। केवल स्थान तथा पात्रोंके नाम कथाके [illegible] कल्पित रक्खे गये हैं—[लेखक—]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशीनोंसे तेल निकालनेकी क्रिया सर्वत्र सुलभ नहीं थी। वह रात-दिन अपनी घाणी (कोल्हू) चलाकर पूरी मेहनत कर ईमानदारीसे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण किया करता था। भ्रष्टाचारका नाम उस समयतक गली-गली, घर-घर नहीं फैला था। उसके पड़ोसके लोग तिलोंमें मिलावट कर कुछ अधिक कमानेकी कोशिश करते थे, पर भूराराम अपनी नेकी, ईमानदारीके कारण संतोषके साथ रूखी-सूखी खाकर जीवन व्यतीत कर रहा था।

उसने अपनी कन्याके विवाहके लिये निरन्तर प्रयास कर २५०) ढाई सौकी रकम बचायी थी। उस समय मँहगाईका यह भयानक रूप नहीं था। साधारण व्यक्तिका साधारण खर्च साधारण रकमसे चल जाता था। वह इस चिन्तामें था कि कोई कन्याके योग्य वर मिल जाय एवं वह कन्यादानके लाभको अनायास प्राप्त कर ले। परम पिता परमात्मासे दिनमें एक बार वह मूक प्रार्थना कर लेता था।

'अपना चीता होत नहीं प्रभु चीता तत्काल' के नियमानुसार उसके पड़ोसके रामधन महाजनकी कन्याका विवाह निश्चित हो गया। पड़ोसीने भूरारामसे याचना की कि 'वह २५०) ढाई सौ रुपयेकी आर्थिक सहायता कर दे। उसके रुपये दूधमें धोकर वापस दे दिये जायँगे।' गरीबोंके आत्मामें दया होती है। भूरारामने अपनी गाढी कमाईकी रकम पड़ोसीको दे दी। रुपयेकी न लिखापढ़ी हुई, न कोई अन्य बात। समय व्यतीत होता गया। ब्याज आदिकी भी कोई बात निश्चित नहीं हुई थी। रकम हाथ-उधारी ही दी गयी थी।

विवाहके दो मास बाद रामधन अकस्मात् बीमार पड़ा एवं कुछ ही दिनोंकी बीमारीमें वह रामका प्यारा बन गया। भूरारामकी स्त्रीने अपने पतिको बार-बार रुपयेके लिये रामधनकी विधवा स्त्रीसे बातचीत करनेके हेतु समझाया। अन्तमें एक दिन भूरारामको सही उत्तर मिल गया कि 'रुपयेकी कोई लिखापढ़ी हो तो बताओ, ताकि रुपये चुकानेका प्रबन्ध किया जाय।' कानून अन्धेकी लकड़ी है। जो उसके घेरेमें आता है उसे वह नहीं छोड़ता। भूरारामके पास न कोई रुक्का था, न कोई गवाह। वह अपना मुँह लेकर चुपचाप बैठ गया।

समय धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था। कन्याके विवाहकी चिन्ता उसे रात-दिन सताया करती थी। एक दिन उसके घर भैंसके एक पाडा हुआ। पाडाके तीन मुँह थे। एक बड़ा बीचमें एवं दो आस-पासमें। शहरमें हलचल मच गयी। लोग झुंड-के-झुंड उसे देखने आने लगे। ठीक उन्हीं दिनों उस शहरके पास एक माताजीका मेला लगता था। मेला केवल एक ही दिनका होता था, पर हजारों आदिवासी उस मेलेमें देवीके दर्शनार्थ आते थे। भूरारामको किसीने सलाह दी कि वह भी अपनी भैंसके पाडेकी प्रदर्शनीकी दूकान मेलेमें लगा दे। भूरारामने दस नये पैसे टिकट लगाकर दूकान लगा दी। प्रातःकालसे लेकर सायंकाल पाँच बजेतक मेला लगता था। सायंकाल ५॥ बजे भैंसके बच्चेके प्राण-पखेरू उड़ गये। भूरारामने सारे दिनकी आमदनीका जोड़ लगाया तो मेलेके टैक्सकी रकमके अलावा उसमें पूरे २५०) दो सौ पचास रुपये थे। भूरारामको किसीने उसके मनमें कहा कि 'पाडेके रूपमें रामधन ही ऋण चुका गया।'

—शिवचन्द्र 'बहुरा', वरिष्ठ अध्यापक, हा०सेकन्डरी स्कूल, डेगाना, जिला नागौर

(४)

संस्कारोंकी रक्षा

'प्रवीण सागर' नामक उत्कृष्ट काव्यग्रन्थके रचयिता ठाकुर महेरामणजीके वंशोत्तराधिकारी राजकोटके ठाकुर लाखाजी राज राजकोट सिविल स्टेशनपर राजकीय अतिथियों तथा रेलवे बोर्डके उच्च अधिकारियोंके बीच एक मजलिसमें बैठे थे।

रेशमी सोफासेटपर राजवी महानुभावोंके अतिरिक्त अंगरेज अधिकारीगण भी अपनी पत्नियोंके साथ बैठे थे।

सर लाखाजी राजको आये देखकर सब एकके बाद एक उठकर खड़े हो गये। अंगरेजोंने अपनी रिवाजके अनुसार ठाकुर साहेबसे हाथ मिलाये। उनकी मेमोंने भी पाश्चात्य प्रथाके अनुसार सर लाखाजी राजसे हाथ मिलाये।

चमकती पोशाक तथा आभूषण-अलंकारोंसे दीप्तिमान् हँसी बखेरते हुए सभी मेहमानोंसे मिलते हुए लाखाजी राज एक भारतीय अधिकारीसे मिले। फिर तो उन भारतीय अधिकारीकी पत्नीने मेमोंकी तरह ठाकुरके साथ हाथ मिलानेको अपना हाथ बढ़ाया, पर तुरंत ही ठाकुरने अपना हाथ पीछे कर उनके सामने दोनों हाथ जोड़ लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन महिलाका लंबा हाथ ऐसे ही रह गया, उसी समय ठाकुर साहेबके मुखसे ये शब्द सुनायी दिये——

'बहिन ! हमारा धर्म यह नहीं है । हमलोग आर्य हैं । हमारे संस्कार दूसरी प्रकारके हैं । पश्चिमके लोगोंका यह अनुकरण हमारे देशके संस्कारोंको लज्जित करता है । हमारी प्रथा तो परस्पर हाथ जोड़कर नमन करनेकी है ।'

(५)

प्रार्थनासे रोगनाश

करीब पाँच महीने पहलेकी बात है । मेरी पत्नीके पेटमें बीमारी हो गयी । बीमारीके कारण उसे काफी तकलीफ थी । मैंने डाक्टरके यहाँ ले जाकर इलाज करवाया । सैकड़ों रुपये फीस तथा दवामें खर्च हो गये, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ ।

एक दिन डाक्टर महोदयने स्पष्ट कह दिया कि हमसे इस बीमारीका इलाज नहीं हो सकेगा । आप किसी लेडी डाक्टरको दिखलाइये । मैं निराश हो गया । फिर भी मैं पत्नीको लेकर देवघर पहुँचा और वहाँ एक लेडी डाक्टरको दिखलाया । उन्होंने कहा—'बीमारी कड़ी है, इलाज होना मुश्किल है । मेरे बहुत कहने-सुननेपर उन्होंने २५०) लेकर आराम कर देनेका वचन दिया । इससे मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई । मैंने स्वीकार किया और कहा कि 'मैं झाझा जाकर रुपये ला देता हूँ ।' तब उन्होंने कहा—'आज दवा लिख देती हूँ । इस दवाको सात दिनतक रोज खिलाइये और आठवें दिन रुपये लेकर आ जाइये, तब मैं इलाज कर दूँगी ।'

दवाका पन्ना लेकर मैं झाझा चला गया और दवा खरीदकर पत्नीको सात दिनतक खिलाता रहा । आठवें दिन मैं रुपये लेकर उनके पास पहुँचा और २५०) रुपये उनकी टेबलपर रखकर इलाज करनेको कहा ।

लेडी डाक्टर महोदया मेरी पत्नीको अंदर 'परीक्षागृह' में ले गयीं और जाँच करके दस मिनटमें बाहर आकर बोलीं—'आप अपने रुपये वापस ले जाइये । मैं इनका इलाज नहीं कर सकूँगी; क्योंकि उसमें जानका खतरा है ।'

अब तो मैं निराश होकर पत्नीको लेकर झाझा लौट आया ।

कोई उपाय रहा नहीं, तब भगवान्का ही आसरा दिखायी दिया और सारा इलाज बंद करके मैं केवल प्रार्थना करता रहा । तीन महीनेतक मेरी यह नित्य प्रार्थना चली । भगवान् श्रीकृष्णने मेरी पुकार सुनी और मेरी पत्नीकी बीमारी मिट गयी ।

यह अक्षर-अक्षर सत्य घटना है । मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि भगवान्पर पूरा भरोसा करके प्रार्थना करनेपर भारी-से-भारी काम आसानीसे हो जाता है ।

—हरीराम बंका

(६)

कुछ उपयोगी नुसखे*

(१)

लकवे (पक्षाघात) के लिये एक तान्त्रिक उपाय

इस तान्त्रिक उपायका प्रयोग हजारों रोगियोंपर किया गया और प्रायः सफलता मिली है ।

विधि—जिस रविवारको पुष्य नक्षत्र जितने समय हो, उसी समयके अंदर काले घोड़े (घोड़ा एकदम काला हो, किसी भी जगह दूसरा रंग नहीं होना चाहिये) के किसी भी पैरकी नाल निकलवाकर किसी लोहारसे उसका कड़ा बनाकर लकवेके रोगीके किसी भी अङ्गमें पहना दिया जाय । इसके बाद लकवेका दुबारा दौरा कतई नहीं होगा । लकवेकी सम्भावना होनेपर पहलेसे पहना दिया जाय । प्रथम बार भी दौरा नहीं होगा । इस तान्त्रिक प्रयोगसे शत-प्रतिशत लाभ होता देखा गया है ।

—ब्रह्मचारी पण्डित संकर्षणाचार्य, परमार्थ-साधन औषधालय, बूढ़ा पुष्कर, अजमेर (राजस्थान) ।

(२)

मिरगीकी अनुभूत दवा

एक संतने मुझको यह दवा बतलायी थी । मैंने कई रोगियोंपर इसका प्रयोग किया, सभी रोगी अच्छे हो गये । मिरगीका रोग नया या पुराना—इससे सबको लाभ होता है—

विधि—कपिला गायका दूध प्रातःकाल बासी-मुख और संध्याको जितना पी सके, ४० दिनों तक पीना चाहिये । दूध ताजा दुहा हुआ हो । उसे गरम न किया जाय और चीनी न डाली जाय । केवल छानकर पी लिया जाय । गायके थन अवश्य काले होने चाहिये । शरीर काला हो या न हो । गाय पहले ब्यानकी न हो, दूसरे या तीसरेकी

* ये सभी नुस्खे हमारे परीक्षित नहीं हैं । जिनको लाभ हो, वे लिखनेकी कृपा करें ।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110321

भले ही हो । ईश्वरकी कृपासे इस प्रयोगसे पूरा आराम होता है ।

इसका दूसरा लाभ यह है कि कपिला गायके कच्चे दूधको एकजिमा, दाद, खारिश आदिपर खूब मलकर गरम जलसे स्नान किया जाय तो ४० दिनके प्रयोगसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है ।

—बाबूराम, गुप्ता मेडिकल स्टोर, सदर बाजार, जालंधर छावनी ।

(३)

श्वेतकुष्ठकी अनुभूत दवा

खानेकी दवा—बावची एक पाव, मेंहदीके बीज एक छटाँक, चित्रककी जडकी छाल एक तोला—उपर्युक्त तीनों चीजोंको कूटकर कपड़छान कर लें। दवा तैयार है। इसे तीन माशा प्रातःकाल और तीन माशा सायंकाल ताजे जलके साथ खाना चाहिये ।

लगानेकी दवा--

जायफल एक तोला, गेरू एक तोला, बावचीचूर्ण एक तोला, कालीमिर्च तीन माशे—चारों चीजोंको कूट-छानकर, पानमें खानेके चूनेके नितरे हुए पानीमें तीन घंटे घोटकर बेरके समान गोली बनाकर छायामें सुखाकर रख ले। तदनन्तर बछियाके मूत्रमें सूखी गोलीको घिसकर सफेद दागोंपर लगावे। प्रातःकाल स्नानके बाद और रात्रिको सोते समय लगाना चाहिये ।

अच्छे होनेपर कुछ दान-पुण्य अवश्य करना चाहिये। परमात्माकी दयासे इस दवाके प्रयोगसे सैकड़ों रोगियोंको लाभ हुआ है। सेवन करनेपर १५-२० दिन बाद लाभ शुरू हो जाता है। मैं उदासीन सम्प्रदायका साधु हूँ। मेरे पास ठहरनेका स्थान नहीं है। अतः कोई सज्जन आनेका कष्ट न करें ।

—शिवानन्द प्रवासी, कैलास मन्दिर, नगरा, झाँसी ।

(४)

कन्याकी जगह पुत्रप्राप्तिका प्रयोग

जिन माताओंको केवल लड़कियाँ होती हैं, उनको इसके सेवनसे पुत्र हो जाता है । ऐसा करनेपर साठ प्रतिशत सफलता मिली है—

विधि—मोरपंखका चँदवा लेकर उसके किनारोंके सारे बाल काट दें, केवल चँदवा बचे। उसे बारीक पीसकर पुराने गुड़में मिलाकर गोली बना ले। सुन्दरताके लिये चाहे ऊपरसे चाँदीका बरक लगा दें और गर्भके ७ वें से ९ वें सप्ताहमें (पौने दो माससे सवा दो मासके भीतर) रविवार या मंगलवारको दूधके साथ गोली निगलवा दी जाय। दूध बछड़ेवाली काली गायका हो और उस दिन केवल दूध ही लिया जाय। दूसरी वस्तु कुछ भी न ली जाय ।

—ओंकारमल पोद्दार, सम्बलपुर (उड़ीसा)

'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-अङ्क'

तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र—भारतकी प्राचीन कालसे चली आती हुई ऐसी वैज्ञानिक विद्या है, जिसमें लोक-परलोकमें सफलता, प्राणिमात्रके कल्याण तथा परमार्थ-साधन आदिके सफल साधन भरे हैं। किसी कालमें इस विद्याका यहाँ पूर्ण विकास था। दुःख है कि आज यह विद्या लुप्तप्राय है या बड़े विकृत रूपमें विद्यमान है। इस प्राचीन विद्याको जानना तथा इससे लाभ उठाना बहुत आवश्यक है, इसी अभिप्रायसे यह सोचा गया है कि 'कल्याण'का अगले वर्षका विशेषाङ्क—'तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-अङ्क' हो। पूर्ण निश्चय हो गया तो लेखोंकी विषय-सूची 'कल्याण'के जुलाईके अङ्कमें प्रकाशित की जायगी। इस विद्याके सच्चे सफल साधक, वास्तवरूपमें जानकार तथा तन्त्र-मन्त्र-यन्त्रोंके संग्रह करनेवाले महानुभावोंसे नम्र निवेदन है कि वे कृपया अपने सच्चे अनुभवकी बातें लिखकर तथा संगृहीत मूल्यवान् सामग्री भेजकर लोक-कल्याणमें सहायक हों।

सम्पादक—'कल्याण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तीन नयी पुस्तकें ! Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri प्रकाशित हो गयीं !!

श्रीरामचरितमानसका बृहदाकार मूल संस्करण

यह संस्करण हमारे सटीक १८.०० रुपयेवाले संस्करणका ही मूलमात्र निकाला गया है। वही आकार है। २२×२९ इंच, चारपेजी, पृष्ठ-संख्या ५६०, चित्र बहुरंगे ८, सजिल्द, नवाह्नपारायण एवं मासपारायणके विश्राम-स्थलोंसहित है। मूल्य केवल ११.०० रुपये, बाद कमीशन ०.७० पैसा बाकी १०.३०, डाकव्यय, पैकिंगचार्ज ३.३०, कुल लागत १३.६० है। लोगोंकी बहुत दिनोंकी माँग इस तरह पूरी की जा रही है।

Śrīmad Vālmīki-Rāmāyaṇa

(With Sanskrit text and English translation)

Part I (Bāla-Kāṇḍa and Ayodhyā-Kāṇḍa)

Size Double crown 1/8, Pages 696, Multi-coloured Pictures 26, and one Black and white, Price Rs. 12.00, less 75 Paise discount, Postage 2.15, total Rs. 13.40

Part II (Araṇya-Kāṇḍa, Kiṣkindhā-Kāṇḍa and Sundarakāṇḍa)

Size Double crown 1/8, Pages 741, Multi-coloured Pictures 19, Price Rs. 12.00, less 75 Paise discount, Postage Rs. 2.15, total Rs. 13.40

The Vālmīki-Rāmāyaṇa is read all over India with great reverence and love as it contains the most authentic story of Lord Śrī Rāma, one of the two most popular Avatars who lived amongst us thousands of years ago but have left an indelible impression on our lives, which is as fresh today as it was during the time of Vālmīki, a contemporary of Śrī Rāma. In our translation we have tried to reproduce the meaning of the original as best as possible so as to enable the reader to follow the text word by word, and made it as close as possible.

गीता-ज्ञान-प्रवेशिका

(लेखक—स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी)

आकार २०×३०=१६ पेजी, पृष्ठ-संख्या २१०, श्रीमुरलीमनोहरका सुन्दर चित्र, मूल्य .५० पैसे, डाकखर्च .९० पैसे।

हमारे श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज प्रतिदिन गीताज्ञान-महार्णवमें गोता लगाते रहते हैं और उससे प्राप्त हुए अमूल्य रत्नोंको सर्वजनहिताय मुक्तहस्तसे वितरण करते रहते हैं। यह पुस्तक श्रीस्वामीजीका सरल मधुर गीताप्रसाद है। इसमें गीताके सम्बन्धमें कुल अठारह रत्न संगृहीत हैं—जैसे गीताके प्रधान और संक्षिप्त विषय, गीताप्रतिपादित कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगका स्वरूप, गीताभ्यासकी विधि, श्रीभगवान्‌के गीतोक्त चालीस तथा अर्जुनके बाईस सम्बोधनात्मक नाम और उनके अर्थ, विभिन्न प्रकारसे श्लोकोंकी संख्या आदि-आदि। इससे गीता-शिक्षार्थियोंको गीता समझनेमें बड़ी सहायता मिल सकती है। इसकी भाषा तथा लेखन-शैली ऐसी उत्तम है कि नवीन जिज्ञासुजन भी इसके आधारपर गीताको भली प्रकार हृदयंगम कर सकते हैं। अतः सभीको इसकी एक-एक प्रति अवश्य रखनी चाहिये और गीता-ज्ञानार्जनमें इससे लाभ उठाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

सभी पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू, राजस्थान

(गीताप्रेसके द्वारा संचालित सांस्कृतिक शिक्षा-संस्था)

इस संस्थाकी संस्थापना लगभग ४७ वर्ष पूर्व श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रयत्नसे हुई थी। तबसे अबतक इसका कार्य चल रहा है।

इसमें—

पढ़ाई—१. आठसे ग्यारह वर्षतकके द्विज—ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ब्रह्मचारी लिये जाते हैं।

२. सोलह वर्षकी अवस्थातक ब्रह्मचारीको आश्रममें रक्खा जाता है।

३. पढ़ाईमें—संस्कृत—वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालयकी प्रथमा परीक्षातक।

अंग्रेजी मैट्रिकतक।

गीता १८ अध्याय—उत्तमा परीक्षातक।

वेद—रुद्री, दण्डक आदि।

संध्या अनिवार्य—ब्रह्मचारियोंके लिये उपनयन-संस्कारयुक्त होकर त्रिकाल-संध्या, गायत्री-जप तथा अग्निहोत्र करना एवं नियमित व्यायाम करना अनिवार्य है।

शुल्क—(१) ब्राह्मण, क्षत्रिय ब्रह्मचारीसे ३३) और वैश्य ब्रह्मचारीसे ३५) मासिक। एक मासका शुल्क अग्रिम देना पड़ता है। इसमें शिक्षा, वस्त्र, औषध, भोजन, दूध आदि सबका व्यय शामिल है।

(२) अभिभावकोंको १००) एक सौ रुपये जमानतके रूपमें जमा कराने पड़ते हैं, जो पूरी शिक्षा प्राप्त करके निकलनेपर लौटा दिये जाते हैं। विद्यार्थीको बीचमें निकालनेपर वापस नहीं किये जाते।

इस समय आश्रममें ८ अध्यापक हैं। छः मासतक ब्रह्मचारीको अस्थायी भर्तीमें रक्खा जाता है। तदनन्तर योग्य सिद्ध होनेपर स्थायी भर्तीमें ले लिया जाता है।

जो अपने सुयोग्य-स्वस्थ बालकको इस आश्रममें भर्ती कराना चाहें, वे निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें। विद्यार्थी १५ अगस्ततक ही भर्ती किये जायँगे।

मन्त्री—**ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)**

श्रीगीता एवं श्रीरामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दोनों ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। अतः धार्मिक शिक्षा-प्रचार करनेके लिये इनकी परीक्षाओंकी व्यवस्था की गयी है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है।

परीक्षाके लिये अनुमान ५०० केन्द्र स्थापित हैं तथा और भी नियमानुसार किये जा सकते हैं।

आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क २३ एवं २४ नवम्बर, १९६९ को तथा रामायणकी परीक्षाएँ दिनाङ्क ४ एवं ५ जनवरी, १९७० को होनेवाली हैं।

केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदन-पत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थना-पत्र दिनाङ्क ३० अगस्त, १९६९ तक भेज देनेकी कृपा करें। विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० स्वर्गाश्रम (पौड़ी गढ़वाल)**

13 DEC 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar